सपना यह संसार

प्रवचन-क्रम

1. उसका सहारा किनारा है..2
2. संसार एक उपाय है..25
3. झुकना=समर्पण+अंजुली बनाना, भजन=परम तृप्ति.............................47
4. मनुष्य-जाति के बचने की संभावना किनसे?...69
5. मिटे कि पाया..90
6. सुबह तक पहुंचना सुनिश्चित है..110
7. जीवित सदगुरु की तरंग में डूबो...132
8. बहार आई तो क्या करेंगे!..153
9. हम चल पड़े हैं राह को दुश्वार देख कर..175 10...साक्षी में जीना बुद्धत्व में जीना है
.... 198
11..झुकने से यात्रा का प्रारंभ है
.... 221
12...होश और बेहोशी के पार है समाधि
.... 247
13...राग का अंतिम चरण है वैराग्य
.... 270
14..धर्म की भाषा हैः वर्तमान
.... 298
15...करामाति यह खेल अंत पछितायगा
.... 319
16...गहन से भी गहन प्रेम है सत्संग
.... 341
17..ज्ञान ध्यान के पार ठिकाना मिलैगा
.... 362
18...मुझे दोष मत देना!
.... 386
19...मुंह के कहे न मिलै, दिलै बिच हेरना
.... 408
20...............................ज्ञान से शून्य होने में ज्ञान से पूर्ण होना है
.... 434

सपना यह संसार
पहला प्रवचन

उसका सहारा किनारा है

परस्वारथ के कारने संत लिया औतार।।
संत लिया औतार, जगत को राह चलावै।
भक्ति करैं उपदेस ज्ञान दे नाम सुनावै।।
प्रीति बढ़ावैं जक्त में, धरनी पर डोलैं।
कितनी कहै कठोर, वचन वे अमृत बोलैं।।
उनको क्या है चाह, सहत हैं दुख घनेरा।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा।।
पलटू सतगुरु पायके, दास भया निरवार।
परस्वारथ के कारने संत लिया औतार।।

हरि हरिजन को दुइ कहै, सो नर नरकै जाय।।
सो नर नरकै जाय, हरिजन हरि अंतर नाहीं।
फूलन में ज्यों बास, रहैं हरि हरिजन माहीं।।
संतरूप अवतार, आप हरि धरिकै आवैं।
भक्ति करैं उपदेस, जगत को राह चलावैं।।
और धरै अवतार रहै तिर्गुन-संयुक्ता।
संतरूप जब धरै रहै तिर्गुन से मुक्ता।।
पलटू हरि नारद सेती बहुत कहा समुझाय।
हरि हरिजन को दुइ कहै, सो नर नरकै जाय।।

चोला भया पुराना, आज फटै की काल।।
आज फटै की काल, तेहुपै है तललचाना।
तीनों पनगे बीत, भजन का मरम न जाना।।
नखसिख भये सपेद, तेहुपै नाहीं चेतै।
जोरि जोरि धन धरै, गला औरन का रेतै।।
अब का करिहौ यार, काल ने किया तकादा।
चलै न एकौ जोर, आय जो पहुंचा वादा।।
पलटू तेहु पै लेत है माया मोह जंजाल।
चोला भया पुराना, आज फटै की काल।।

तुम्हारी करुणा कृपा की कोर
सुहानी उतनी कि जितनी
धुली धरती, खुले नभ की शारदीया भोर

तुम्हारी करुणा कि जैसे विगत-वर्षा शरद के निर्मल सरोवर में
विहंसते हुए सरसिज पुंज का मकरंद,

तुम्हारी करुणा कि जिसका
तनिक-सा संस्पर्श पाकर
हो उठे हैं आज ये जीवंत मेरे छंद,

तुम्हारी करुणा
शिथिल वात्सल्य शीतल छांह में
छिन भर दुबक कर
शांति पाता है
जगत की ज्वाल में झुलसा हुआ यह मन थका हारा;

तुम्हारी करुणा

कि छिन यदि आंख मूंदूं

ले तुम्हारे रूप की झांकी विभासित विलसती है प्राण की अंतः सलिल धारा,

अब मुझे क्या भय
कि अंतःसलिल में मेरी तरी
हे सदय
पाएगी किसी दिन तो तुम्हारा छोर
तुम्हारी करुणा कृपा की कोर
सुहानी उतनी कि जितनी
धुली धरती, खुले नभ की शारदीया भोर
परमात्मा की ओर जाने वाले दो मार्ग। एक ज्ञान, एक भक्ति। ज्ञान से जो चले, उन्हें ध्यान साधना पड़ा। ध्यान की फलश्रुति ज्ञान है। ध्यान का फूल खिलता है तो ज्ञान की गंध उठती है। ध्यान का दीया जलता है तो ज्ञान की आभा फैलती है।
लेकिन ध्यान सभी से सधेगा नहीं। पचास प्रतिशत लोग ध्यान को साध सकते। पचास प्रतिशत प्रेम से पाएंगे, भक्ति से पाएंगे।
भक्ति का अर्थ हैः डूबना, पूरी तरह डूबना; मदमस्त होना, अलमस्त होना। ध्यान हैः जागरण, स्मरण; भक्ति हैः विस्मरण, तन्मयता, तल्लीनता। ध्यान है होश, भक्ति है उसमें बेहोश हो जाना। ध्यान पाता है स्वयं को पहले और स्वयं से अनुभव करता परमात्मा का। भक्ति पहले पाती है परमात्मा को, फिर परमात्मा में झांकी पाती अपनी। यह जगत संतुलन है विरोधाभासों का--आधा दिन, आधी रात; आधे स्त्री, आधे पुरुष। एक संतुलन है विरोधों में। वही संतुलन इस जगत का शाश्वत नियम है। उसी को बुद्ध कह रहे हैंः एस धम्मो सनंतनो। यह ही शाश्वत नियम कि यह जगत विरोध से निर्मित है।
वृक्ष आकाश की तरफ उठता है तो साथ ही साथ उसे पाताल की तरफ अपनी जड़ें भेजनी होती हैं। जितना ऊपर जाए, उतना नीचे भी जाना होता है। तब संतुलन है। तब वृक्ष जीवित रह सकता है। ऊपर ही ऊपर जाए और नीचे जाना भूल जाए तो गिरेगा, बुरी तरह गिरेगा। नीचे ही नीचे जो, ऊपर जाना भूल जाए, तो जाने का कोई प्रयोजन नहीं, कोई अर्थ नहीं।
विरोधों में विरोध नहीं हैं वरन एक संगीत है।
परम विरोध है ज्ञान और भक्ति का। और इस सत्य को ठीक से समझ लेना चाहिए
कि तुम्हारी रुचि क्या है? तुम ज्ञान से जा सकोगे कि प्रेम से?
ज्ञान का रास्ता कठोर है, थोड़ा रूखा-सूखा है; पुरुष का है। प्रेम का रास्ता रस डूबा है, रसनिमग्न है; हरा-भरा है; झरनों की कलकल है, पक्षियों के गीत हैं। वह रास्ता स्त्रैण-चित्त का है, स्त्रैण आत्मा का है।
ध्यान के रास्ते पर तुम अपने संबल हो। कोई और सहारा नहीं। ध्यान के रास्ते पर संकल्प ही तुम्हारा बल है। तुम्हें अकेले जाना होगा। नितांत अकेले। संगी-साथी का मोह छोड़ देना होगा। इसलिए बुद्ध ने कहा हैः अप्प दीपो भव। अपने दीये खुद बनो। कोई और दीया नहीं है; न कोई और रोशनी है, न कोई और मार्ग है। ध्यान के रास्ते पर एकाकी है खोज।
लेकिन भक्ति के रास्ते पर समर्पण है, संकल्प नहीं। भक्ति के रास्ते
पर परमात्मा के चरण उपलब्ध हैं; उसकी करुणा उपलब्ध है। तुम्हें सिर्फ झुकना है, झोली फैलानी है और उसकी करुणा से भर जाओगे। भक्ति के रास्ते पर परमात्मा का हाथ उपलब्ध है, तुम जरा हाथ बढ़ाओ। तुम अकेले नहीं हो। भक्ति के रास्ते पर संग है, साथ है।
भक्ति के रास्ते पर तुम्हें बेल बनाना है; परमात्मा के वृक्ष पर लिपट जाना है। ध्यान के रास्ते पर तुम्हें वृक्ष बनाना है, बेल नहीं। और इन दोनों में बहुत निर्णायक रूप से चुनाव करना होता है, स्पष्ट चुनाव करना होता है। क्योंकि भूल से अगर भक्त ध्यान के रास्ते पर लग जाए तो चूकता ही चला जाएगा। ध्यान सधेगा नहीं। मन विषाद से भरेगा। ध्यान पकड़ में आएगा नहीं। और अगर ध्यानी भक्ति के रास्ते पर लग जाए, तो दीया भी उठाएगा, आरती

भी सजाएगा, मगर हृदय का संग नहीं होगा। गीत भी गाएगा, मगर प्राण न गुनगुनाएंगे, ओंठ ही दुहराएंगे। धूप-दीप सजा लेगा, अर्चना-पूजा का थाल सजा लेगा, लेकिन बस औपचारिकता होगी; प्राणों का नृत्य, आत्मा की लीनता संभव नहीं होगी। सब थोथा-थोथा होगा।
भक्त अगर ध्यानी बन जाए तो सब बोझ, पहाड़ जैसा बोझ और फलश्रुति कुछ भी नहीं। और ध्यानी अगर भक्त बन जाए, तो सिर्फ औपचारिकता, पाखंड; सब ऊपर-ऊपर, प्राण अछूते। आत्मा भीगेगी नहीं; आंसू बहेंगे नहीं; पैर नाचेंगे नहीं। हां, कोशिश करोगे तो एक तरह का व्यायाम हो जाएगा, नृत्य नहीं। और कोशिश करोगे तो आंखों से पानी भी गिरेगा। लेकिन पानी और आंसुओं में भेद है। कोशिश करोगे तो ढोंग आ जाएगा--लेकिन ढोंग से कोई क्रांति नहीं होती।
और इस जगत में सबसे बड़ा दुर्भाग्य यही है कि संयोग के कारण लोगों ने धर्म चुन लिए हैं। कोई हिंदू घर में पैदा हुआ है, कोई जैन घर में पैदा हुआ है, तो जो जैन घर में पैदा हुआ है, वह बस ध्यान की बातें करता रहता है। चाहे मौलिक रूप से उसकी क्षमता भक्ति की हो। और कोई अगर कृष्ण के संप्रदाय में पैदा हुआ है तो भक्ति की बातें करता रहता है, चाहे क्षमता उसकी ध्यान की हो।
पलटू का संसार भक्त का संसार है--यह पहली बात ख्याल में रख लेना। इसलिए पलटू भक्त की भाषा बोल रहे हैं। भक्त की भाषा में पहला सूत्र हैः परमात्मा की करुणा। अपने किए कुछ नहीं होता। होता है उसके किए। हम तो बाधा न डालें तो बस। हम पर हमारी इतनी कृपा काफी कि हम बाधा न डालें, कि हम आड़े न आएं। अपने और परमात्मा के बीच में अवरोध न बनें। छोड़ दें सब उसकी मर्जी पर।
तुम्हारी करुणा कृपा की कोर
सुहानी उतनी कि जितनी
धुलीह धरती, खुले नभ की शारदीया भोर

तुम्हारी करुणा कि जैसे विगत-वर्षा
शरद के निर्मल सरोवर में
विहंसते हुए सरसिज पुंज का मकरंद,

तुम्हारी करुणा कि जिसका
तनिक-सा संस्पर्श पाकर
हो उठे हैं आज ये जीवंत मेरे छंद,

तुम्हारी करुणा
शिथिल वात्सल्य शीतल छांह में
छिन भर दुबक कर
शांति पाता है
जगत की ज्वाल में झुलसा हुआ यह मन थका हारा;

तुम्हारी करुणा
कि छिन यदि आंख मूंदं

ले तुम्हारे रूप की झांकी विभासित विलसती है प्राण की अंतः सलिल धारा,

अब मुझे क्या भय
कि अंतः सलिल में मेरी तरी

हे सदय
पाएगी किसी दिन तो तुम्हारा छोर तुम्हारी करुणा कृपा की कोर सुहानी उतनी कि जितनी

धुली धरती, खुले नभ की शारदीया भोर
भक्त को चिंता नहीं है। एक बार छोड़ दी अपनी नाव उसके सागर में--उसके भरोसे, मांझी है वह--एक बार छोड़ दी उसकी मर्जी पर नाव तूफानों में, फिर कोई चिंता नहीं है। किनारा मिले कि न मिले, जिसने उसके सहारे सब छोड़ दिया उसे किनारा मिल ही गया। उसका सहारा किनारा है। फिर नाव बचे कि डूबे, भेद नहीं पड़ता। उसकी मर्जी पर जिसने छोड़ दिया, वह डूब कर भी किनारे को पा लेता है। मझधार में भी किनारा बन जाता है।
करुणा का अर्थ हैः यह अस्तित्व तुम्हारे प्रति उदास नहीं है। यह अस्तित्व तुम्हारे प्रति उपेक्षापूर्ण नहीं है। यह अस्तित्व तुम्हारा ध्यान करता है। यह अस्तित्व तुम्हें सहारा देने को आतुर है, उत्सुक है। तुम्हीं नहीं खोज रहे हो परमात्मा को, करुणा का अर्थ है कि परमात्मा भी तुम्हें खोज रहा है। यह आग इकतरफा नहीं लगी है। यह प्रेम दोनों तरफ जला है। परमात्मा परम प्रेमी है। तुम प्रेयसी हो। या कि तुम परम प्रेमी हो, परमात्मा प्रेयसी है। जैसी मर्जी हो! भक्तों ने दोनों ही रूप स्वीकार किए हैं।
सूफी कहते हैंः परमात्मा प्रेयसी है, हम प्रेमी हैं। इस देश के भक्तों ने कहाः परमात्मा प्रेमी है, हम प्रेयसी हैं। वह कृष्ण, हम उसकी गोपियां। लेकिन एक बात तय है कि आग दोनों तरफ लगी है। यह खोज अकेले-अकेले नहीं है। तुम्हीं नहीं खोज रहे हो, वह भी खोज रहा है। करुणा का यही अर्थ है। उसका हाथ भी तुम्हें अंधेरे में टटोल रहा है। काश, हम अकेले ही खोजे हों तो मिले या न मिले; मगर वह भी खोजता है। इसलिए आश्वासन है कि मिलन होगा, होकर रहेगा।
पलटू यही कह रहे हैं कि संतों के रूप में जो आता है, वह उसी का हाथ है अंधेरे में तुम्हें टटोलता हुआ।
परस्वारथ के कारने संत लिया औतार।।
भक्त की भाषा में अवतार का बड़ा अर्थ है। ज्ञानी-ध्यानी की भाषा में अवतार का कोई अर्थ ही नहीं होता। तुम्हें स्मरण दिलाऊं, जैन शास्त्रों में अवतार शब्द का प्रयोग नहीं होता, न बौद्ध शास्त्रों में होता है। हो नहीं सकता। अवतार उनकी भाषा नहीं है। किसका अवतार? किसलिए? जैन कहते हैं, महावीर तीर्थंकर हैं। अवतार नहीं। जिन हैं, सिद्ध हैं, बुद्ध हैं, अवतार नहीं। अवतार का अर्थ होता हैः अवतरण। ऊपर से नीचे की तरफ उतरना। तीर्थंकर का अर्थ होता हैः नीचे से ऊपर की तरफ चढ़ना। सिद्ध का अर्थ होता है, बुद्ध का अर्थ होता हैः नीचे से ऊपर की तरफ चढ़ना। बुद्ध का अर्थ होता हैः जैसे कीचड़ से कमल उठे। और अवतार का अर्थ होता है जैसे चांद से चांदनी झरे। हां, कहीं मिलन हो जाता है कमल का और चांदनी का--वह बात और। कहीं चांदनी कमल पर झरती है, कहीं कमल चांदनी के साथ नाचता है, वह बात और।
ऐसी ही कुछ घटना यहां घट रही है। यहां मेरी चेष्टा यही है कि कमल भी खिलें और चांद भी ऊगे। अवतरण भी हो और तीर्थंकर भी जगे। क्योंकि चांदनी बरसे और कमल न हों, तो कुछ बात अधूरी रह जाएगी। कमल खिले और चांद न हो, तो भी बात कुछ अधूरी रह जाएगी। और जब करना ही है तो पूरा करना, अधूरा क्या करना। अब तक पृथ्वी के सारे धर्म अधूरे धर्म हैं। क्योंकि या तो धर्म ने ज्ञान का मार्ग पकड़ा या भक्ति का मार्ग पकड़ा। मेरी बातें इसीलिए थोड़ी बेबूझ हो जाती हैं। एक दिन ज्ञान की बात करता हूं, दूसरे दिन भक्ति की बात करता हूं। कल तक ज्ञान की बात चली, ध्यान की बात चली, आज से भक्ति की बात शुरू होती है। आज से हम दूसरे लोक में प्रवेश करते हैं। आज से बुद्ध और महावीर सार्थक नहीं। आज से मीरा और चैतन्य, पलटू, कबीर, नानक सार्थक होंगे। मगर चेष्टा मेरी यह है कि ऐसे तुम्हें दोनों से राजी कर लूं। जिसको जो रुच जाए। कुछ कमल की तरह खिल जाएं, कुछ चांद की तरह बरस जाएं--यह बात पूरी हो जाए।
पृथ्वी एक समग्र धर्म की प्रतीक्षा कर रही है। एक ऐसे धर्म की, जिसके मंदिर में सभी द्वार हों। एक ऐसे धर्म की जो मस्जिद भी हो, मंदिर भी हो, गिरजा भी हो, गुरुद्वारा भी हो। ऐसा मंदिर बनना ही चाहिए। बिना ऐसे मंदिर बने आदमी का अब कोई भविष्य नहीं है।

परस्वारथ के कारने संत लिया औतार।।
पलटू कहते हैं, संत को तुम आदमी ही मत समझना, नहीं तो भूल हो जाएगी।
ज्ञानी भी कहते हैं कि संत को तुम आदमी ही मत समझना, नहीं तो भूल हो जाएगी।
मगर, ज्ञानी कहते हैंः संत है सिद्धपुरुष। है तो मनुष्य ही, लेकिन अपने पूर्ण विकास को उपलब्ध हुआ; जागरूक हुआ। सारी कलुष, सारी कल्मष त्याग दी।
सारा अंधकार काट डाला। ध्यान के दीये को जला लिया। आत्मवान हुआ। लेकिन भक्त कहता हैः संत सिर्फ मनुष्य नहीं है, परमात्मा का हाथ है, जो उन्हें टटोल रहा है जो अंधेरे में भटके हुए हैं।
सिद्ध भी मार्ग बनता है, लेकिन बहुत अलग अर्थों में। सिद्ध भी अनेकों
को द्वार बनता है, लेकिन बहुत अलग अर्थों में। अपने ही आनंद को बांटने के लिए। लेकिन हमसे कितना ही ऊंचा हो, ज्ञानी की भाषा में सिद्ध हमारीशृंखला की अंतिम कड़ी नहीं है, बल्कि परमात्मा की हमें खोजने के लिए अंतिम चेष्टा है।
ऐसा ही समझो, जैसे गिलास आधा पानी से भरा हो और कोई कहेः आधा खाली है--
वह भी ठीक; और कोई कहेः आधा भरा है--वह भी ठीक; दोनों ठीक हैं। लेकिन पूरी बात नहीं है दोनों में से किसी के पास। पूरी बात तो यह है कि गिलास आधा भरा, आधा खाली है। यह गिलास के संबंध में पूरा वक्तव्य होगा।
संत के संबंध में मैं वक्तव्य देना चाहता हूं कि आधा भरा, आधा खाली। आधा मनुष्य की परम उपलब्धि, आधा परमात्मा की परम करुणा। परमात्मा ने तुम्हें छोड़ नहीं दिया है कि भटकते ही रहो। पुकार रहा है। उसने आशा नहीं त्याग दी है। तुम्हें देख कर अब तक आशा त्याग देनी चाहिए थी। मगर उसकी आशा अनंत है।
रवींद्रनाथ ने अपने एक गीत में कहा हैः जब भी कोई नया बच्चा पैदा होता
है तो मेरा हृदय परमात्मा के प्रति धन्यवाद से भर जाता है। क्योंकि इस नये पैदा होते बच्चे में मैं देखता हूं कि अभी भी उसने आदमी से आशा छोड़ नहीं दी है। अभी भी आदमी बनाए जा रहा है। अभी भी उसे भरोसा है कि आदमी में फूल खिलेंगे। अभी निराश-हताश होकर सृजन की क्रिया बंद नहीं कर दी, अभी नये बच्चे गढ़ रहा है। अभी माली उदास होकर नहीं बैठ गया है, अभी बीज बो रहा है। रवींद्रनाथ का गीत महत्वपूर्ण है। हर नया बच्चा परमात्मा की करुणा की खबर लाता है। हर नया बच्चा परमात्मा की इस चेष्टा के लिए प्रमाण बनता है कि तुम कितने ही भटको, उसकी करुणा का अंत नहीं है। वह रहीम है, रहमान है, महा करुणावान है। तुम्हारे भटकने से, तुम्हारी भूल-चूकों से उसकी करुणा कम न पड़ जाएगी। तुम्हारे पाप बड़े छोटे हैं, उसकी करुणा बहुत बड़ी है। ज्ञानी अपने पापों का हिसाब करता है। एक-एक पाप को काटना है पुण्य से। ज्ञानी का रास्ता हिसाब-किताब का है, बुद्धिमत्ता का है। जो-जो बुरा किया है, उस-उस बुरे को अच्छे से काटना है। अशुभ को शुभ से काटना है। जहां-जहां अंधेरा है, वहां-वहां रोशनी जगानी है। जहां-जहां बेहोशी है, वहां-वहां होश लाना है। ज्ञानी रत्ती-रत्ती का हिसाब रख कर चलता है। बड़ा सावधान, बड़ा सावचेत। कदम-कदम पर कांटे हैं और कांटों से बचना है।
भक्त को इस हिसाब-किताब की चिंता नहीं है। क्योंकि भक्त की मौलिक धारणा यह है कि मेरे पाप, मेरे सीमित पाप--मेरे सीमित हाथ पाप भी करेंगे तो क्या पाप करेंगे? --तेरी महा करुणा की बाढ़ में सब बह जाएगा। इसलिए भक्त अपने पापों का हिसाब नहीं करता, उसकी करुणा का विचार करता है। अपनी क्षुद्रताओं की चिंता नहीं करता। अपने घावों को गिनता नहीं, उसकी मलहम को पुकारता है। अपने कांटों की चिंता नहीं करता, उसके फूलों की वर्षा को आमंत्रित करता है। अपनी प्यास की उसे बहुत सावधानी नहीं है, उसके सागर का भरोसा है, उसके अनंत सागर का भरोसा है।
परस्वारथ के कारने संत लिया औतार।।
संत लिया औतार, जगत को राह चलावै।
भक्ति करैं उपदेस ज्ञान दे नाम सुनावै।।
संत के जीवन की पूरी प्रक्रिया क्या है? लोग भटके हैं, लोग बुरी तरह भटके हैं। लोग उलटे चल रहे हैं। जैसा होना चाहिए था वैसे नहीं हैं, कुछ के कुछ हो गए हैं। कृत्रिम हो गए हैं, झूठे हो गए हैं। एक पाखंड है जो

प्रत्येक की आत्मा पर छा गया है। संत झकझोरता है, खींचता है राह पर, लुभाता है, बांसुरी बजाता है, कि अपना इकतारा, कि गीत गाता है, कि हजार उपाय करता है, हजार विधियां खोजता है कि किसी तरह तुम्हें उस जगह ले आए जहां से परमात्मा निकट है। उस जगह ले आए जहां तुम पुनः लयबद्ध हो सको और तुम्हारे जीवन में फिर संगीत हो, फिर सुबह हो।
क्या उपाय हैं उसके? भक्ति करै उपदेस।
मौलिक रूप से तो प्रेम की पराकाष्ठा भक्ति सिखाता है। प्रेम का निम्नतम रूप है काम और प्रेम का श्रेष्ठतम रूप है भक्ति। प्रेम है मध्य, काम है निम्नतम छोर और भक्ति है उच्चतम।
लोग तो काम में ही भटक जाते हैं। बस कामवासना में ही जीवन व्यतीत हो जाता है। उनके हाथ राख ही राख लगती है। बहुत थोड़े से सौभाग्यशाली हैं जो प्रेम को जान पाते हैं। बहुत थोड़े से लोग, जो काम की कीचड़ से प्रेम के कमल को मुक्त कर पाते हैं; जिनका प्रेम कामना-शून्य होता है; जिनके प्रेम में कोई मांग नहीं होती; जिनके प्रेम में कोई शर्त नहीं होती; जिनका प्रेम बेशर्त होता है।
फिर और भी थोड़े लोग हैं, जो भक्ति को उपलब्ध हो पाते हैं। भक्ति का अर्थ हैः जो कमल से इत्र को निचोड़ लेते हैं। जो कमल का इत्र बना लेते हैं। कीचड़ के कमल बन जाए तो कामवासना प्रेम बनी और कमल से इत्र निचुड़ आए, बस सुवास ही सुवास रह जाए, तो भक्ति। भक्ति इत्र है, शुद्ध सुगंध है। दिखाई नहीं पड़ती, मुट्ठी में नहीं बांधी जा सकती है, लेकिन अनुभव में आती है। प्रेम का थोड़ा संस्पर्श होता है। प्रेम थोड़ा-थोड़ा देखा जा सकता है, धुंधला-धुंधला। प्रेम संध्याकाल है; न रात, न दिन। कामवासना तो अंधेरी रात है। भक्ति भरी दुपहर, और प्रेम है संध्या-काल, मध्यकाल। थोड़ा अंधेरा भी है, थोड़ा उजेला भी है। प्रेम मिश्रण है।
जो लोग जीवन के लिए विज्ञान को ठीक से नहीं समझते, वे सीधी छलांग लगाना चाहते हैं भक्ति में--चूक जाते हैं। वे इत्र निचोड़ने लगते हैं और कमल उनके पास नहीं। इत्र निचोड़ने लगते हैं और गुलाब की खेती नहीं की। उनका इत्र काल्पनिक ही रह जाएगा। पहले मिट्टी को गुलाब तो बनाओ। पहले कीचड़ को कमल तो बनाओ। पहले जीवन में गुलाब तो खिलने दो।
इसलिए मैं कहता हूं, प्रेम से डरना मत। क्योंकि प्रेम में ही भक्ति का सूत्र छिपा है। काम से भी बचना मत, भागना मत, पलायन मत करना। जो डर कर भाग जाते हैं, वे काम में ही अटके रह जाते हैं। डर से कोई क्रांति नहीं होती। और कौन नहीं भागना चाहेगा?
बड़ी आश्चर्य की बात है, दुनिया बड़ी अदभुत दुनिया है; इसे गौर से निरीक्षण करो तो किसी और मनोरंजन की जरूरत नहीं है। यह सारा जगत मनोरंजन ही मनोरंजन है। जो लोग यहां घरों में रुके हैं, वे डर के मारे रुके हैं। और जो घर छोड़ कर भाग गए हैं जंगलों में, वे भी डर कर भाग गए हैं। यह दुनिया बड़ी मनोरंजक है। एक है जो डर के मारे भागता नहीं कि लोग क्या कहेंगे? कि कहीं पत्नी ने पता लगा लिया जंगल में तो फिर! और बच्चे कोई ऐसे ही थोड़े छोड़ देंगे, पुलिस में रिपोर्ट करेंगे। अब किसी तरह थोड़े दिन और बचे हैं, खींच ही लो, ढो ही लो! अब इतने से दिन के लिए भागना भी क्या! और कुछ हैं जो डर के कारण भाग जाते हैं।
मुल्ला नसरुद्दीन जब भी किसी ट्रक को आते देखता, या ट्रक का हार्न बजते देखता, तो एकदम कंपने लगता है। मैंने उनसे पूछा कि नसरुद्दीन, मानसिक बीमारियां मैंने बहुत देखीं, बहुत सुनीं; जितने मनोचिकित्सक दुनिया में हुए हैं उनमें से किसी ने भी इस बीमारी का उल्लेख नहीं किया, यह कौन सी बीमारी है? ट्रक का हार्न बजता है कि तुम एकदम कंपने लगते हो! फ्रायड ने करीब-करीब सब मनोवैज्ञानिक बीमारियों का उल्लेख किया है, मगर इसमें इसका कोई उल्लेख नहीं है। नसरुद्दीन ने कहा, अब आप यह न पूछें तो अच्छा। मैंने कहा, फिर भी कुछ तो कहो, कितने दिन से यह बीमारी तुम्हें सता रही है? उसने कहा, आज पच्चीस साल हो गए। तुमने कुछ किया नहीं? उसने कहा, कुछ किया जा सकता ही नहीं। अपने हाथ के बाहर है। बस ट्रक का हार्न बजता है कि एकदम छाती बैठती है। मैंने कहा, मामला क्या है? कब शुरू हुई, कैसे शुरू हुई? उसने कहा,

मत पूछें! लेकिन मैं पूछता ही गया तो उसने कहा, अब आप नहीं मानते तो बता देता हूं। पच्चीस साल पहले मेरी पत्नी एक ट्रक ड्राइवर के साथ भाग गई। तब से हार्न बजता है कि मुझे डर लगता है कि कहीं वापस आ रही हो। बस एकदम मेरी छाती बैठने लगती है, कि अब आई!
लोग डर से भाग भी जाते हैं, डर से रुके भी हैं। लेकिन डर कोई जीवन का आधार है! डर तो मारता है, मिटाता है, बनाता नहीं। भय तो विध्वंसक है, आत्मघाती है। और तुम्हारे तथाकथित महात्मा तुम्हें यही समझाए चले जाते हैं--भोगो; भगोड़ापन। नहीं, भागना कहीं भी नहीं है। जागना जरूर है, भागना नहीं है। समझना जरूर है, क्रांति जरूर लानी है! मगर कब कोई क्रांति ला सका है भय से? क्रांति आती है बोध से।
कामवासना को समझो, तो तुम उसी में छिपे हुए बीज पाओगे प्रेम के। और फिर प्रेम को समझो, तुम उसी में बीज छिपे पाओगे भक्ति के। और जो व्यक्ति कामवासना की सीढ़ी से उठ कर भक्ति तक पहुंच गया, परमात्मा के द्वार पर खड़ा हो गया। जहां भक्ति है, वहां भगवान है।
लोग पूछते हैंः भगवान कहां?
हसीद फकीर हुआ, बालसेन। उससे मिलने कुछ और हसीद फकीर आए हुए थे। चर्चा
चल पड़ी--एक बड़ी दार्शनिक चर्चा--परमात्मा कहां है? किसी ने कहा, पूरब में, क्योंकि पूरब से सूरज ऊगता है। और किसी ने कहा कि जेरुसलम में, क्योंकि यहूदी ही परमात्मा के चुने हुए लोग हैं, और परमात्मा ने ही मूसा के द्वारा यहूदियों को जेरुसलम तक पहुंचाया। जरूर परमात्मा जेरुसलम में होगा, जेरुसलम के मंदिर में होगा! और किसी ने कुछ, किसी ने कुछ... । जो जरा और ऊंची दार्शनिक उड़ान भर सकते थे, उन्होंने कहा, परमात्मा सर्वव्यापी है; सब जगह है; ये क्या बातें कर रहे हो--जेरुसलम, कि पूरब! परमात्मा सर्वव्यापी है, सब जगह है। बालसेन चुपचाप सुनता रहा।
बालसेन अदभुत फकीर था। ऐसे ही जैसे पलटू, जैसे कबीर।
सब ने फिर बालसेन से कहा, आप चुप हैं, आप कुछ नहीं बोलते; परमात्मा कहां है? बालसेन ने कहा, अगर सच पूछते हो तो परमात्मा वहां होता है जहां आदमी उसे घुसने देता है। बड़ा अदभुत उत्तर दिया! तुम घुसने ही न दो तो परमात्मा भी क्या करेगा? तुम अपने हृदय में आने दो, तो। मगर कौन उसके लिए क्षार खोलेगा? भक्ति जहां है, वहां भगवान है।
लोग पूछते हैंः भगवान कहां है? लोग भगवान को देखने भी आ जाते हैं, मेरे पास आ जाते हैं कि भगवान दिखा दें! जैसे अंधा प्रकाश देखना चाहे। जैसे बहरा संगीत सुनना चाहे। जैसे गूंगा गीत गाना चाहे। बिना इसकी फिकर किए कि मैं अंधा हूं, कि बहरा हूं, कि गूंगा हूं। लंगड़ा ओलंपिक में भाग लेने जाना चाहता है; बिना इसकी फिकर किए कि मैं लंगड़ा हूं। उठ सकता नहीं, चल सकता नहीं, ओलंपिक में भाग लेना है! पूछते हैं लोगः ईश्वर कहां है? मैं उनसे कहता हूंः यह सवाल ही मत उठाओ। पहले यह बताओः भक्ति है? वे कहते हैं, भक्ति कैसे हो? पहले भगवान का पता होना चाहिए, तो हम भक्ति करेंगे।
इस भेद को ख्याल में रखना।
परमात्मा का पता जो पहले मांगता है, फिर कहता है भक्ति करेगा, वह कभी भक्ति नहीं करेगा। क्योंकि परमात्मा का पता भक्ति के बिना चलता ही नहीं। भक्ति की आंख ही उसे देख पाती है। भक्ति के हाथ ही उसे छू पाते हैं। भक्ति के लबालब हृदय में ही उसकी तरंग उठती है। जहां भक्ति है, वहां भगवान है। सिर्फ भक्त जानता है कि भगवान है, और कोई नहीं जानता। और लोग तो बातें करते हैं। पंडित-पुरोहित शब्दों का जाल फैलाते हैं। भक्त जानता है। भक्त ने देखा है। भक्त की आंखें उससे चार हुईं। भक्त ने उसके हाथ में हाथ लिया है। भक्त ने उसके साथ भांवर डाली। कबीर कहते हैंः मैं राम की दुल्हनिया। भक्त ने उसके साथ सात फेरे लिए हैं। भक्त जानता है। भक्त ने उसके साथ सुहागरात बिताई है। भक्त जानता है।
लेकिन भक्ति तक लाने के लिए तुम्हें कामवासना में छिपे प्रेम को मुक्त करना पड़े, और प्रेम में छिपी भक्ति को मुक्त करना पड़े। सारा उपदेश भक्ति का है। भक्ति करें उपदेश, ज्ञान दे नाम चुनावै।

संत के बस तीन काम हैं, कि भक्ति का उपदेश करे... उपदेश शब्द को समझ लेना।
उपदेश शब्द का बड़ा प्यारा अर्थ है। उपदेश का अर्थ होता हैः पास बिठाना। इसका मतलब भाषण, व्याख्यान, चर्चा? नहीं। चर्चा, भाषण, व्याख्यान अपनी जगह--शायद बहाने हैं सब पास बिठाने के--उपदेश का अर्थ होता हैः पास बिठाना। देश का अर्थ हैः स्थान, उप का अर्थ होता हैः पास। पास, और पास, और पास ले आना। जिन्हें पास लाया जा सके, उतने पास ले आना। सदगुरु के हृदय की धड़कन तुम्हें सुनाई पड़ने लगे, इतने पास ले आना। उसकी श्वास-श्वास से तुम्हारी श्वास का तालमेल बैठने लगे, इतने पास ले आना। सदगुरु के आलिंगन में आबद्ध हो जाना, इतने पास ले आना।
जो उपदेश शब्द का अर्थ है, वही उपवास शब्द का अर्थ है, वही उपनिषद शब्द
का अर्थ है। ये तीनों शब्दों का एक ही अर्थ होता है।
उपवास का अर्थ होता हैः उसके पास रहना। यह भक्त की तरफ चेष्टा करनी पड़ेगी। यह भक्त की तरफ का शब्द है, उपवास, उसके पास होना। यह शिष्य का उपाय है कि शिष्य सरकता है, कोशिश करता है, और करीब आ जाऊं, और करीब आ जाऊं--यह उपवास। उपदेश का अर्थ होता हैः पास लेनाः यह गुरु की चेष्टा है कि शिष्य को खींचता चला जाए, भटकने न दे, समय न गंवाने दे। और उपनिषद का अर्थ फोता हैः जब शिष्य गुरु के पास सरक आया, उपवासी हुआ, और गुरु ने जब शिष्य को पास ले लिया, उपदेश दिया, तब दोनों के बीच जो घटना घटती है, जो अलौकिक संभव है, जो असंभव संभव होता है, उसका नाम हैः उपनिषद। गुरु बोलता नहीं और शिष्य सुनता है। उसका नाम है उपनिषद।
उपनिषद इस जगत में श्रेष्ठतम अभिव्यक्ति हैं शिष्य और गुरु के सान्निध्य की, सामीप्य की, सत्संग की। उदघोषणाएं हैं। गुरु ने दी हैं, समग्रता से, और शिष्य ने ली हैं, समग्रता से। न तो गुरु ने देने में कंजूसी की है और न शिष्य ने लेने में झिझक की है। शिष्य ने झोली पूरी फैला दी जैसे आकाश हो, और गुरु ने पूरा अपने को लुटाया है। जैसे नदी समुद्र में उतर जाए, ऐसे गुरु शिष्य में उतरा है। उस अपूर्व घटना का नाम उपनिषद है। उस घटना के ही संस्मरण उपनिषदों में हैं।
भक्ति करैं उपदेश। और जैसे ही पास ले लेता है गुरु, प्रेम सिखाता है, भक्ति जगाता है और पास लेने लगता है, उन्हीं क्षणों में ज्ञान दिया जाता है। यह ज्ञान बहुत और है उस ज्ञान से जो ध्यान से मिलता है।
ध्यान से ज्ञान मिलता है, तुम्हारे भीतर ही उसका आविर्भाव होता है। तुम अपने ही भीतर डूबते जाते, डूबते जाते, डूबते जाते, एक क्षण तुम्हारी ही आत्मा में ज्ञान का उदय होता है। वह आत्मोदय। भक्ति में जो ज्ञान घटित होता है, वह गुरु उंडेलता है। जैसे मेघ घिर गए अषाढ़ के और मोर नाचने लगे और घटाएं घनघोर होने लगीं और बिजली तड़पने लगी और प्यासी धरती प्रतीक्षा करने लगी, ऐसे जब शिष्य प्यासी धरती की तरह गुरु के करीब आकर प्रतीक्षा करता है, या गुरु के भरे हुए मेघ के पास मोर की भांति नाचता है, तब गुरु से एक धारा बह उठती है। वह गुरु की नहीं है, परमात्मा की है।
परस्वारथ के कारने संत लिया औतार।।
इसलिए पलटू कहते हैं, गुरु का उसमें कुछ भी नहीं है। गुरु तो केवल एक माध्यम है, बांस की पोंगरी, जिसमें से परमात्मा गीत गा देता है, गीत गुनगुना जाता है। मगर शिष्य के कान करीब हों तो ही गीत सुनाई पड़ता है। यह गीत बड़ा सूक्ष्म है; निःशब्द है, ध्वनिमुक्त है, ध्वनिशून्य है। यह गीत शून्य का गीत है। यह संगीत शून्य का संगीत है। गुरु तो उतर आने देता है, मगर शिष्य इतने करीब होना चाहिए--करीब से करीब, जितना करीब हो सके उतने करीब होना चाहिए, तो ही उसके हृदय तक झंकार पहुंच सकेगी। तो ही उसके प्राण मदमस्त होकर नाच सकेंगे।
और यही घड़ी है, जब यह ज्ञान की वर्षा होती है, तो गुरु के माध्यम से परमात्मा अपना दर्शन दे देता है। नाम सुनावै... उसकी पहचान करा देता है। उसकी पहचान हो जाती है। भक्ति की भूमि में ज्ञान बरसता है। ज्ञान की वर्षा में परमात्मा का साक्षात्कार है, उसका स्मरण है। भूल गए हैं उसे हम। फिर याद हो आती है। पुनर्स्मरण है।

किससे पीर कहूं
बांह, छुड़ाकर जाने वाले
किसकी छांह गहूं
अंदर-बाहर सूनापन है
चारों ओर उदासी
चपल नयन की मीन विकल है
भरे नीर में प्यासी
पल-छिन निशा दिवस बन, निशि-दिन, मास बरस बन बीते
मत आने वाले पथ तकते
मैं हारी तुम जीते

कब तक रखूं संभाल भार-सी
यह जीवन की थाती
नेह न जाने कब चुक जाए
कब बुझ जाए बाती
यह वियोग की आग तुम्हारी कब तक सहूं दहूं

चाहे आज मुझे निदराए जग
कह हाय अभागी
किंतु किसी दिन कभी कहेगा वह मुझको बड़भागी

मैं किसका मुंह ताकूं, केवल अपना धर्म निबाहूं
प्रिय है विरह मुझे,

प्रियतर है जलती मेरी आगी
दुख शिशु तुम दे गए उसी के
सुख में मगन रहूं

किससे पीर कहूं
बांह, छुड़ाकर जाने वाले
किसकी छांह गहूं
किसी अज्ञात क्षण में, न मालूम कितने जन्म बीते तब उसका हाथ से हाथ छूट गया। न मालूम किस भूल-चूक में उसके गांठ छूट गई। इसलिए जब परमात्मा का पहली बार स्मरण आता है, तो ऐसा नहीं लगता कि नया कुछ जाना, ऐसा ही लगता हैः अति प्राचीन, पुनः जाना।
उपनिषद कहे हैंः स्मरण कर! स्मरण कर, पुनः स्मरण कर! जैसे जानते थे हम कभी और भूल गए। जैसे बात जबान पर रखी है, इतने ही करीब परमात्मा है। कभी- कभी हो जाता है न, राह पर किसी को तुम देखते हो, पहचानी शक्ल मालूम पड़ती है, जबान पर नाम रखा मालूम पड़ता, पक्का भरोसा है कि आदमी जाना-माना है, नाम भी पहचाना है, जरा भी संदेह नहीं है, मगर फिर भी है कि नाम नहीं आ रहा! कहीं अटक गया है। कहीं दूर अज्ञात में भटक गया है। कहीं उलझाव हो गया है चित्त का। नहीं उठ पाता चेतन तक, अचेतन में कहीं दब गया किस पत्थर, किसी चट्टान में। सदगुरु के सान्निध्य में--चूंकि उसे याद आ गया है--उसकी याद की भनक तुम्हारे भीतर सोई हुई स्मृति को जगा देती है। चूंकि उसने जान लिया है, उसकी आंखों में झांक कर तुम्हें फिर भूली-बिसरी यादें आनी शुरू हो जाती हैं।
और उसकी करुणा महान है। तुम एक इंच चलो, तो वह हजार मील तुम्हारी तरफ चलता है।
करुणा है स्वस्ति विपुल

धरती का दहन पर्व नभ का संतोष
नव रस की आगमनी घन का जयघोष
व्यर्थ नहीं आंसू के मिस यह गलना घुल घुल

व्यर्थ नहीं इधर उधर गिरे पड़े बीज
सृजन बन रहा पत्थर इन्हीं में पसीज
कुछ नवीन इनमें है उगने को ज्यों आकुल

धरती सी सहूं दहूं मैं प्रिय अविराम चरणों में अर्पित मैं रहूं बन प्रणाम नभता में किसी दिवस बंधन जाएंगे खुल भरोसा रखो! आश्वस्त रहो!
व्यर्थ नहीं इधर उधर गिर पड़े बीज सृजन बन रहा पत्थर इन्हीं में पसीज
कुछ नवीन इनमें है उगने को ज्यों आकुल
धरती सी सहूं दहूं मैं प्रिय अविराम
चरणों में अर्पित मैं रहूं बन प्रणाम
नभता में किसी दिवस बंधन जाएंगे खुल
करुणा है स्वस्ति विपुल
उसकी करुणा महान है। बंधन खुलेंगे। स्मृति लौटेगी। आश्वस्त रहो, भयभीत न होना।
ज्ञानी बुत भयभीत हो जाता है। क्योंकि उसे अपने पर ही सब करना है। खुद
ही नाव बनानी है, खुद ही नाव ढोनी है, तट तक ले जानी है, खुद ही पतवार उठानी है, खुद ही वह मांझी है, खुद ही वह यात्री है। दूर है किनारा। अज्ञात है यात्रा। तूफान हैं बड़े। आंधियां बहुत। डूबने की संभावना ज्यादा, पहुंचने की कम।
लेकिन भक्त को यह भय नहीं। नाव तैयार है। पतवार लिए मांझी बैठा है। पुकार दे रहा है कि आओ!
करुणा मंगलमय है
अरुण किरण की जिसमें आशा उसमें कौन अनय है

घिरे मेघ तो बरसेंगे ही तप्त धरा हरसेगी
जिसके घेरे घिरे उसी से सांस सांस सरसेगी
आज अगर तुम छाया भी है तो उससे क्या भय है

अंधकार से लड़ पड़कर ही जीव विकास भरेगा
इसी अमा पर भोर जगेगी पुलक विलास भरेगा
आशा पर जीने वाले मन की तो यही विजय है

आज हृदय फिर चंचल हो क्यों और व्यथा क्यों जागे
जी का ज्वार संभालूं प्रिय से बिछुड़ आंख के आगे
जो कुछ है सो प्रभु की कृति है, प्रभु तो सदा सदय है
अगर भटक भी गया है भक्त, तो वह कहता हैः इसमें भी उसका ही हाथ होगा। जरूर इस अभिशाप में भी छिपा कोई वरदान होगा। यह भक्त का भाव है, यह भक्त की भाषा है, यह भक्त की साधना है, कि वह कांटों में भी छिपे फूल देखता है, दुर्दिन में भी सुदिन को नहीं भूलता। अंधेरी अमावस में भी उसे पूर्णिमा का चांद याद बना रहता है। उसकी आत्मा में तो पूर्णिमा ही रहती है, बाहर कितना ही अंधेरा हो।
प्रीति बढ़ावैं जक्त में, धरनी पर डोलैं।
संत प्रीति बढ़ाते हैं जगत में। ऐसी प्रीति बढ़ाते हैं कि धरती नाचे, धरती पर लोग नाचें। संत नाचते हैं प्रीति में--और नचाते हैं। उनके पास जो आ जाता है, वह भी नृत्य से भर जाता है।

कितनी कहै कठोर वचन वे अमृत बोलैं।।
और चाहे कभी उनकी बात कितनी ही कठोर क्यों न हो, कभी सिर पर पत्थर की तरह आघात क्यों न करे, लेकिन जो जानते हैं वे जानते हैं कि वे चाहे कितने ही कठोर हों, उनकी वाणी में अमृत है। और अगर वे कठोर भी होते हैं तो इसीलिए ताकि तुम में जो कठोर हो गया है, वह तोड़ा जा सके। ताकि तुम में जो जड़ हो गया है, उसे तोड़ा जा सके। अगर वे कभी छेनी-हथौड़ी उठा कर भी तुम पर टूट पड़ते हैं, तो सिर्फ इसीलिए कि अनगढ़ पत्थर कैसे मूर्ति बने!
उनको क्या है चाह, सहत हैं दुख घनेरा।
तुम्हें चोट पहुंचाने का उन्हें कोई और तो कारण नहीं हो सकता। उनको क्या है चाह... अब कुछ पाने को उन्हें बचा नहीं है। परमात्मा को पा लिया, उसे पाने को क्या बचता है? ऐसा भी नहीं है कि तुम्हारे प्रति कठोर होते हैं तो इसलिए कि किसी तरह के दुख में पड़े हैं। और दुखी आदमी दूसरों को दुख देता है। नहीं, इसलिए भी नहीं। उन्हें कोई दुख दे नहीं सकता। कितना ही दुख उन पर बरसे, उनके पास आते-आते सुख हो जाता है। तुम फेंको कांटा, उनके पास पहुंचते-पहुंचते फूल हो जाता है। तुम दो गाली, उनके पास पहुंचते-पहुंचते गीत बन जाता है।
जिव तारन के हेतु मुलुक फिरते बहुतेरा।।
एक ही उनके भीतर धुन है, वह भी उनकी अपनी नहीं, परमात्मा की है। कि जगाएं; कि सोए हुए लोगों को उठाएं; कि स्वप्न में खोए हुए लोगों को उनके स्वप्न से, दुखस्वप्न से मुक्त करें।
पलटू सतगुरु पायके, दास भया निरवार।
पलटू कहते हैं, मैंने जिस दिन सदगुरु पाया, उसी दिन मेरा निर्वाण हो गया। फिर कोई और निर्वाण न रहा।
पलटू सतगुरु पायके, दास भया निरवार।
निरवार के दो अर्थ हैं। एक, निश्चय हो गया; और एक, निर्वाण हो गया। मगर दोनों एक ही दिशा में इंगित करते हैं। सदगुरु को पाकर निश्चय हो गया कि परमात्मा है। विश्वास न रहा, श्रद्धा हो गई कि ईश्वर है। सदगुरु है, तो ईश्वर है। सदगुरु को पाकर ऐसे निश्चय का जन्म हुआ, ऐसी आस्था जगी कि वही आस्था निर्वाण बन गई। निर्वाण का अर्थ होता हैः अब कुछ पाने को न रहा। सब पा लिया जो पाने योग्य था।
पुलकित है मन किस दर्शन में
प्रतिदिन की सी भोर आज कुछ और और छवि छाई
अपरा-उषा नई किरनों से भरा भरा रवि लाई
धरा गगन क्यों विह्वल से हैं किसके आकर्षण में

नयनों के पथ मन में उतरी मन कुछ ऐसा फेरा
बाहर-भीतर लगा पिघलने अंधकार का घेरा
सकल अपरिचय मती बन गया घुलकर अपनेपन में

परिवर्तित परिवेश प्रकृति का यह मैंने क्या देखा
सोई रत्ना के अधरों की अमल धवल स्मित रेखा--
नया रूप धर समा गई है जैसे किरन किरन में

पुलकित है मन किस दर्शन में
जिस दिन सदगुरु मिलता है, उस दिन हृदय पुलकित होता है। वह दर्शन सदगुरु का ही दर्शन नहीं है। सदगुरु तो झरोखा है। सदगुरु के झरोखे से तो परमात्मा ही झांकता है।
पुलकित है मन किस दर्शन में
और उस दर्शन के बाद यह सारा जगत रूपांतरित हो जाता है। क्योंकि जिसने परमात्मा को एक खिड़की से देख लिया, उसे फिर हर खिड़की में दिखाई पड़ने लगता है--उन खिड़कियों में भी जो कि बंद हैं। वह जानता है कि भीतर परमात्मा है। सदगुरु की खुली खिड़की से देख लिया, अब तो राह चलते लोगों में भी वही दिखाई

पड़ता है। माना कि उनके द्वार-दरवाजे बंद हैं, लेकिन भीतर तो वही मालिक छिपा है।
प्रतिदिन की सी भोर आज कुछ और छवि छाई
अपरा-उषा नई किरनों से भरा भरा रवि लाई
धरा गगन क्यों विह्वल से हैं किसके आकर्षण में
पुलकित है मन किस दर्शन में
वही है सब एक अर्थों में और कुछ भी वही नहीं। आकाश नया, सूरज नया, धरती नई। आंख नई तो सारा जगत नया। दृष्टि नई तो सृष्टि नई।
नयनों के पथ मन में उतरी मन कुछ ऐसा फेरा
बाहर-भीतर लगा पिघलने अंधकार का घेरा
सकल अपरिचय मीत बन गया घुलकर अपनेपन में
पुलकित है मन किस दर्शन में
सदगुरु को पाते ही द्वार मिल गया। सदगुरु को पाते ही पहली बार तुम्हारी नौका किनारे लगी। सदगुरु को पाते ही आश्वासन, सुरक्षा। सदगुरु के साथ ही भविष्य। सदगुरु के साथ ही जीवन में अर्थ, लयबद्धता।
परिवर्तित परिवेश प्रकृति का यह मैंने क्या देखा
सोई रत्ना के अधरों की अमल धवल स्मित रेखा--
नया रूप धर समा गई है जैसे किरन किरन में
पुलकित है मन किस दर्शन में
फिर तो एक-एक किरन सूरज की उसकी ही खबर लाती है। हवा के झोंके उसी का संदेश लाते हैं। वृक्ष नाचते और वही नाचता। जिसने सदगुरु में उसको देख लिया, उसे फिर और जगह भी वही दिखाई पड़ना शुरू हो जाता है। पहला अनुभव ही कठिन है। फिर तो अनुभव पर अनुभव। फिर तो द्वार पर द्वार जैसे अपने से खुलते चले जाते हैं।
पलटू सतगुरु पायके, दास भया निरवार।
परस्वारथ के कारने संत लिया औतार।।
हरि हरिजन को दुइ कहै, सो नर नरकै जाए।।
पलटू कहते हैं कि जो भगवान को और भगवान के भक्त को दो कहता है, वह आदमी
नरक जाता है। सावधान रहना! भक्त भगवान ही हो जाता है। दो मत कहना। वहां दुई
नहीं बचती।
हरि हरिजन को दुई कहै, सो नर नरैक जाए।।
सो नर नरकै जाए, हरिजन हरि अंतर नाहीं।
जिसने परमात्मा को जान लिया, वह जानते ही परमात्मा हो जाता है।
फूलन में ज्यों बास, रहैं हरि हरिजन माहीं।।
जैसे फूलों में बास है; दिखाई नहीं पड़ती, अनुभव होती, ऐसे ही हरिजन में भी, परमात्मा को जिसने पा लिया उसमें, सदगुरु में भी, दिखाई न पड़े, स्पर्श न आए, लेकिन अगर पास गए, अगर उपवासी बने, अगर उपदेश लिया, अगर उपनिषद को घटने दिया, तो सुवास से भर जाओगे; अदृश्य तुम्हें घेर लेगा।
संतरूप अवतार, आप हरि धरिकै आवैं।
स्वयं परमात्मा उतारता है। जो शांत हो गए हैं, मौन हो गए हैं, शून्य हो
गए हैं, वे परमात्मा के उतरने के लिए आधार बन जाते हैं।
भक्ति करैं उपदेस, जगत को राह चलावैं।।

तुम्हारे पावन चरण की धूल

हृदय में धारण किए हूं बाहुओं में भेंट
पूजती हूं मुंदी आंखों में संवार समेट
समर्पित कर अश्रु भीगे कामना के फूल

खुली आंखों में थिरकती पुतलियों के संग कभी स्मृतियों में सजाती है निराले रंग है कसकती कभी आंखों के हिंडोले झूल

क्या किसी दिन फिर न मेरे इस अजिर के द्वार
फिरेगा मेरा प्रवासी, सजेगा अभिसार
क्या न यह मेरी किसी दिन क्षम्य होगी भूल

तुम्हारे पावन चरण की धूल
जरूर सब क्षमा हो जाता है। भक्ति का यही भरोसा है। अक्षम्य कुछ भी नहीं है। सिर्फ उसके चरणों की धूल लेने की क्षमता चाहिए। सभी क्षम्य हो जाता है।
तुम्हारे पावन चरण की धूल

क्या किसी दिन फिर न मेरे इस अजिर के द्वार
फिरेगा मेरा प्रवासी, सजेगा अभिसार
क्या न यह मेरी किसी दिन क्षम्य होगी भूल

तुम्हारे पावन चरण की धूल
जरूर होगी, निश्चित होगी। होती है, होती रही है। यही नियम है। यही शाश्वत नियम है। जो उसके चरणों में झुक गया। मगर कहां उसके चरण खोजो? आज तो आंखें अंधी हैं, हाथ जड़ हैं, संवेदना शून्य हैं, कहां उसके चरण खोजो? सदगुरु को खोजो।
परमात्मा को जो खोजता है, व्यर्थ खोजता है। जो सदगुरु को खोजता है, वह चकित हो जाता है। सदगुरु को खोज कर सदगुरु तो नहीं मिलता, परमात्मा मिलता है। और परमात्मा को जो खोजता है, उसे परमात्मा तो मिलता ही नहीं, सदगुरु भी नहीं मिलता है।
सदगुरु का इतना ही अर्थ हैः जो अभी देह में प्रगट हो रहा है--वह परमात्मा। जो अभी रूप में खड़ा, आकार में खड़ा--वह परमात्मा। अभी निराकार को तुम न पहचान सकोगे। अभी आकार से थोड़ी मैत्री बांधो। तुम्हारे पावन चरण की धूल। अभी किसी सदगुरु के चरणों की धूल बन जाओ। सब क्षम्य हो जाएगा।
भक्त करैं उपदेस, जगत को राह चलावैं।।
और धरै अवतार रहै तिर्गुन-संयुक्ता।
बड़ा प्यारा वचन है। पलटू कह रहे हैं, ऐसे तो सभी परमात्मा के अवतार हैं। क्योंकि आए हम वहीं से, उतरे हम वहीं से। हम सब उसके अवतरण हैं। और धरै अवतार रहै तिर्गुन-संयुक्ता। सभी उसके अवतार हैं, तो फिर सदगुरु में और सब में अंतर क्या है? जरा सा अंतर है। बाकी जो अवतार हैं, वे त्रिगुण से संयुक्त हैं। वे बंधे हैं। वे त्रिगुण की रस्सी में बंधे हैं। तमस, रजस, सत्व--इन तीन गुणों में पकड़े गए हैं। इन तीन की रस्सी में बंधे हैं। गुण का एक अर्थ रस्सी भी होता है। त्रिगुण का अर्थ होता हैः जैसे रस्सी तीन धागों से बुन कर बनाई जाती, वैसे ही तीन धागों से बुना हुआ हमारा जीवन है।
संत रूप जब धरै रहै तिर्गुन से मुक्ता।।
इतना ही फर्क है--तुम रस्सी से बंधे हो, संत रस्सी से मुक्त है। तुम बंधे हो, संत मुक्त है। ईश्वर तो तुम भी हो, ईश्वर संत भी है, तुम सोए हो, वह जागा। तुम्हारे हाथों में जंजीर, उसके हाथ मुक्त। तुमने अपने चारों तरफ एक कारागृह बना लिया है--माया का, मोह का, ममता का, लोभ का, काम का, क्रोध का--उसने सारी दीवालें गिरा दी हैं। खुले आकाश के नीचे आ गया है।
पलटू हरि नारद सेती बहुत कहा समुझाय।
पलटू कहते हैं कि भगवान ने नारद तक को समझा-समझा कर यह बात कही, क्योंकि नारद तक को समझ में नहीं आती। नारद भी भगवान का गुणगान गाते हैं, लोगों का नहीं; नर का नहीं, नारायण का। चले, अपनी बजाने लगे वीणा, चले आकाश की तरफ! पलटू कहते हैं कि मैं तुमसे कहता हूं कि नारद को भी भगवान ने बहुत समझा-समझा कर कहा कि तुम नाहक इतना परेशान होता है, यहां आने की कोई जरूरत नहीं--इतनी दूर की यात्रा! --वहीं मौजूद हूं मैं, सब मैं मौजूद हूं मैं। नारद तक को समझ में नहीं आती यह बात, तो अगर साधारणजनों को न आती हो तो कुछ आश्चर्य नहीं।
पलटू हरि नारद सेती बहुत कहा समुझाया।

हरि हरिजन को दुइ कहै सो नर नरकै जाए।।
भूल कर भी हरि को और हरिजन को दो मत कहना। भूल कर भी सदगुरु को और परमात्मा को दो मत समझना। उतनी दुई समझी, जरा सी दुई समझी, तो तुम भटकते रहोगे--उस भटकने का नाम ही नरक है। तुम दुख पाते रहोगे--उस दुख पाने का नाम ही नरक है।
चोला भया पुराना, आज फटै की काल।।
और जरा सम्हलो! देर हुई जाती है। बहुत देर वैसे हो गई है। सांझ होने लगी। सुबह कब की बीत गई। दुपहर भी जा चुकी। सूरज ढलने-ढलने को होने लगा। चोला भया पुराना, आज फटै की काल। वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो गए हैं, कब फट जाएंगे, कुछ भरोसा नहीं है--आज कि कल। मौत कब आ जाएगी द्वार, कब द्वार पर दस्तक दे देगी--कौन जाने!
आज फटै की काल, तेहुपै है ललचाना।
आज मरोगे कि कल, लेकिन याद ही नहीं करते मृत्यु की। अभी भी ललचाए हो, अभी भी भागे फिर रहे हो संसार में। अभी भी दौड़ रहे हो वस्तुओं के पीछे। सब पड़ा रह जाएगा, सब ठाठ पड़ा रह जाएगा जब बांध चलेगा बंजारा। और देर कितनी है? कब बंजारे को चलना पड़े, कौन जाने? कब आदेश आ जाए?
तीनों पनगे बीत, भजन का मरम न जाना।
बचपन बीत गया... काश, मनुष्यता राजनीतिज्ञों, पंडितों, पुरोहितों से जरा मुक्त हो जाए, तो बचपन में ही भजन का मर्म आ जाए। जितनी जल्दी और जितनी आसानी से बच्चे को भजन का मर्म आ सकता है, उतना फिर कभी आसान नहीं होगा। रोज बात कठिन होती जाएगी। ज्ञान बढ़ता जाएगा, समझ बढ़ती जाएगी, अकड़ बढ़ती जाएगी, अहंकार बढ़ता जाएगा। अनुभव की पर्त पर पर्त, धूल पर धूल इकट्ठी होती जाएगी। दर्पण रोज मैला होता है। बच्चे के पास निर्मल दर्पण है। अभी अगर भजन का मर्म आ जाए, तो सब से सुंदर। लेकिन बच्चे को हम भजन का मर्म नहीं आने देते। हम तो डरते हैं, कि कहीं साधु-संगति में न पड़ जाए; नहीं तो काम का न रहेगा। अभी धन कमाना है, अभी दुकान चलवानी है, अभी पद पर पहुंचाना है, अभी अपने अधूरे रह गए अहंकार को इसके कंधे पर रख कर पूरा करना है--इसके कंधे पर रख कर अभी बंदूक चलानी है।
तुम्हारे बाप तुम्हारे कंधे पर रख कर बंदूक चलाते रहे, उनके बाप उनके कंधे पर रख कर बंदूक चलाते रहे, तुम अपने बेटों के कंधों पर बंदूक रख कर चलाए रखना। और बंदूक कुछ ऐसी है कि चलती ही नहीं! शायद कारतूस ही नहीं हैं उसमें। या हैं भी तो बहुत गीले हैं; हिंदुस्तान में ही बने हैं!
एक सिपाही बार-बार बंदूक चला रहा था युद्ध में--जब चीन और भारत का युद्ध हुआ--मगर बंदूक कि चले ही न। निकालकर कारतूस देखा। बड़ा हैरान हुआ! अगर लिखा होताः मेड इन इंडिया, तो भी ठीक था, लिखा थाः मेड इन यू.एस.ए.। सिर ठोंक लिया कि हद हो गई; अपने पड़ोसी साथी को कहा कि हद हो गई! हम तो सोचते थे, अपने मुल्क में बना हो तो ठीक है, चले तो चमत्कार! न चले तो भारतीय, शुद्ध देसी! मगर इस पर लिखा हैः यू.एस.ए.! और उस दूसरे ने कहा, नासमझ, यू.एस.ए. का मतलब समझता है? उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन। उल्हासनगर में कौन सी चीज नहीं बनती! और सिंधी जो न बनाएं सो थोड़ा! और नाम भी, क्या जगह चुनी उन्होंने-- उल्हासनगर! तो यू.एस.ए.। उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन। कोई कानूनी मुकदमा भी नहीं चला सकता।
बंदूक कभी चलती ही नहीं। अहंकार कभी भरता ही नहीं। भर सकता नहीं। न तुम भर पाए। अब कृपा करो, अपने बच्चों को यह मूढ़ता न दे जाओ। लेकिन तीनों पन बीत जाते--बचपन भी बीत जाता, खिलवाड़ में; कि भूगोल, कि इतिहास पढ़ने में-- जो सब व्यर्थ है। सबसे सार्थक बात तो यह है कि बच्चे को भजन का मर्म आ जाए। फिर और सब ठीक है। मैं नहीं कहता कि गणित न पढ़े, और इतिहास न पढ़े, और भूगोल न पढ़े, लेकिन वह सब गौण है। उससे रोटी-रोजी मिलेगी, जीवन नहीं। आजीविका मिलेगी, जीवन नहीं। पहले जीवन का शास्त्र पढ़े। और बच्चा जितनी जल्दी भजन में डूब सकता है उतना कोई नहीं डूब सकता। अभी चित्त तरल है, अभी चित्त निर्मल है, अभी परमात्मा के घर से आया-आया है, अभी याद भी बिल्कुल मिट नहीं गई है--कहीं न कहीं अभी याद गूंजती है, अभी स्वर्ग की थोड़ी आभा है। इसीलिए तो प्रत्येक बच्चा इतना प्यारा, इतना स्वर्गीय मालूम होता है। उसकी आंखों

में अभी ऐसी गहराई, ऐसी निर्मलता, ऐसी निर्दोषता है! ये क्षण भजन सिखाने के हैं। मनुष्यता में थोड़ी समझ आएगी, तो हर बच्चे को पहली बात होगी कि हम भजन का मर्म सिखा दें।
बचपन बीत जाता है खेलने में, खिलौनों में। जवानी बीत जाती है और तरह
के खिलौनों में--कि भागो स्त्री-पुरुषों के पीछे, दौड़ते रहो, धन कमाओ, पद कमाओ, बड़ा मकान बनाओ; और सब जानते हो कि सब पड़ा रह जाएगा, और जानते हो भलीभांति कि जो भी पाना चाहते हो, मिल भी जाता तो भी कुछ नहीं मिलता, हाथ खाली के खाली रहते हैं, दौड़ जारी रहती है, मगर जवानी ही नहीं बुढ़ापे तक में लोग भजन का मर्म नहीं मान पाते। सत्तर साल के हो गए, अस्सी साल के हो गए, मगर जमे हैं दिल्ली में! हटते ही नहीं। आश्चर्य तो यह है कि मर कर भी कैसे हट जाते हैं!
मैंने सुना है, एक आदमी को कब्जियत की महा बीमारी थी। कहते हैं कि दो महीने बीत गए और मल-विसर्जन नहीं हुआ सो नहीं हुआ। डाक्टर भी हैरान... पिला- पिला कर दवाइयां और इंजेक्शन और जो कुछ भी कर सकते थे, सब। फिर कोई जर्मनी से खबर आई कि एक नई दवा बनी है कि कैसी भी कब्जियत हो! ... तो इस आदमी को कोई साधारण डोज तो देना नहीं--जो दो महीने से साधे बैठा है... ऐसा संयमी, महायोगी! तो डाक्टर ने पूरी की पूरी बोतल पिला दी। दूसरे दिन कोई खबर नहीं आई, तीसरे दिन कुछ खबर नहीं आई, तो वह गया पता लगाने कि क्या हुआ, भाई? जर्मन दवा थी, क्या उसका भी असर नहीं हुआ? पूछा लोगों से कि क्या हालत है? उन्होंने कहा, वह आदमी तो मर गया। मगर अभी संडास से नहीं निकला है। अभी मल-विसर्जन जारी है। दवा जर्मन... आदमी तो मर चुका, मगर पहले मल-विसर्जन हो जाए तो हम उसकी अरथी सजाएं। हम अरथी लिए बैठे हैं, वह संडास में बैठा है। करीब-करीब तुम्हारे नेताओं की यही हालत है। आश्चर्य होता है कि मर कर
भी ये कुर्सी कैसे छोड़ देते हैं? ऐसी कस कर पकड़ते हैं कि लाख छुड़ाओ, नहीं छोड़ते। कोई टांग खींच रहा है, कोई हाथ खींच रहा है, कोई पैर खींच रहा है, धक्कम-धुक्की हो रही है, एक-एक कुर्सी पर तीन-तीन बैठे हैं! कुर्सी बनी है एक के लिए, उस पर तीन-तीन चढ़े हैं!
उम्र बीत जाती, मगर समझ नहीं आती।
पलटू कहते हैं, समझ एक ही है इस जगत में, वह है भजन का गरम। भक्ति का आनंद। भक्ति में तल्लीन होकर, रसलीन हो कर नाच लेने की कला।
कट गया जीवन प्रतीक्षा के सहारे
अब कहां जाऊं चरण तजकर तुम्हारे

भोर थी जब गए अब ढलने लगा है दिन
तप रहा है कठिन वय का रवि तुम्हारे बिन
कभी पाई भी तुम्हारी खबर हर्षित मन
घिरा तो, लेकिन गगन पर घरा छूंछा घन सतत पंथ निहार मेरे नयम हारे

शरद बीता शिशिर बीता हुआ मधु आगम
सुना है फूला फला है तुम्हारा शम दम
कभी की विश्वास-पत्रों से हुई खाली विकंपित निःश्वास से है अब अपत डाली
सूख रस जड़ कभी के हो गए सारे

मिल गए प्रभु तुम्हें जैसे पुण्य सब संचित रह गई हूं किंतु मैं ही अकिंचन वंचित पूछती हूं विनत तुमसे आंख में भर जल
क्या रहेगा अंक मेरा शून्य ही केवल रहूंगी कब तक इसी विधि धीर धारे

कट गया जीवन प्रतीक्षा के सहारे
अब कहां जाऊं चरण तजकर तुम्हारे

भरम छूटता नहीं माया का, ममता का, मोह का। और भरम न छूटे माया का, ममता का, मोह का, तो भजन का मरम हाथ नहीं लगता। हम व्यर्थ में ही उलझे रहें, तो शून्य ही रह जाएंगे, रिक्त ही रह जाएंगे।
थोड़ी सार्थक की तरफ आंखें उठाओ! पुकारो उसे! आकाश के तारों को जरा देखो। जरा सूरज से नाता जोड़ो। क्षुद्रता से जरा ऊपर उठो। खेल-खिलौनों से मुक्त होओ। और कहीं कोई अगर आकाश को उपलब्ध हो गया हो, तो छोड़ो मत अवसर, संग-साथ कर लो; उपदेश गह लो, उपवास कर लो, उपनिषद घट जाने दो।
तीनों पनगे बीत, भजन का मरम न जाना।।
नखसिख भए सपेद, तेहुपै नाहीं चेतै।
जोरि जोरि धन धरै, गला औरन का रेतै।।
अब तक भी आरों का गला रेतते जा रहे हो। और अभी भी कर क्या र हे हो? धन जोड़ रहे हो। मर कर इसी पर सांप बन कर फन मार कर बैठ जाना है!
अब का करिहौ यार, काल ने किया तकादा।
और पलटू कहते हैं, फिर मत कहना, अभी चेताए देता हूं, फिर मत कहना... अब
का करिहौ यार... । क्योंकि फिर कहोगे तो मैं तुमसे क्या कहूंगा, मालूम? --अब का करिहौ यार, काल ने किया तकादा। अब मौत द्वार पर आ गई, अब कुछ किए नहीं हो सकता।
चलै न एकौ जोर, आए जो पहुंचा वादा।।
जिस क्षण वह घड़ी आ जाती है मृत्यु की, फिर कोई जोर नहीं चलता।
पलटू तेहु पै लेत है माया मोह जंजाल।
जानते हो सब; जान कर अनजान बने हो! जागे हो, और आंखें बंद किए पड़े हो!
और सोने का बहाना कर रहे हो! अब जागे को जगाना बहुत मुश्किल हो जाता है। सोए को कोई जगा भी दे, मगर जो बन कर पड़ा हो!
क्या तुम्हें पता नहीं कि मौत आती है! रोज तो आती है, रोज तो कोई अरथी उठती है, रोज तो तुम किसी को मरघट पहुंचा आते हो, क्या तुम्हें पता नहीं है कि तुम्हारी भी आती होगी? कि क्यू छोटा होता जाता है, आगे के लोग सरकते जाते हैं, तुम्हारा नंबर भी ज्यादा देर नहीं, आ जाएगा। और दस वर्ष बाद आए कि बीस वर्ष बाद, क्या फर्क पड़ता है! जैसे और जिंदगी गंवा दी मूढ़ता में, बाकी बीस वर्ष भी गंवा दोगे। पलटू तेहु पै लेत है माया मोह जंजाल।
जल हो या मृगजल हो
मुझे कौन छल व्यापे मेरा मन से अगर न छल हो

मन की वल्गा हाथ रहे तो क्या कुछ साथ नहीं है
वह सनाथ क्या हो कि स्वयं जो अपना नाथ नहीं है
कहीं रहें मेरे प्रभु उनका मंदिर यह हियतल हो

अगर प्यास पर वश है तो फिर मन कैसे भटकेगा
पथ चलने के अभिलाषी को कांटा क्या खटकेगा
कुसुम कंटकों का जीवन यात्रा पर सम संबल हो

यह कह कैसे त्यागूं यह भव मेरे योग्य नहीं है
भव मेरा है, भव में क्या जो मेरा भोग्य नहीं है--
तन यदि तरल मृदुल यदि मन हो चरण न यदि चंचल हो
जरा सी बात साधनी है। जरा पैर सध जाएं, शराबी की तरह न डगमगाएं; तन संवेदनशील हो, तरल हो; मन थोड़ा मृदुल हो; देह चंचल न हो--जरा सी बात बांधनी है, जरा संगीत अपने जीवन में पैदा करना है और अपूर्व घटना शुरू हो जाता है। लेकिन तुम व्यर्थ के पीछे दौड़ रहे हो। तुम्हें सार्थक का होश ही नहीं। तुम्हें सार की जैसे खबर ही न हो। तुम असार में ही लगे रहोगे? चेतो!
चोला भया पुराना, आज फटै की काल।।
पलटू तेहु पै लेत है माया मोह जंजाल।
मौत को ठीक से पहचान लो, मौत किसी को छोड़ती नहीं। मौत का कोई अपवाद नहीं है। और देर से आए कि जल्दी आए, क्या फर्क पड़ता है। चोला भया पुराना आज फटै की काल... किसी न किसी घड़ी यह देह गिर जाएगी। साथ में ले जाने योग्य कुछ

पाथेय है, कुछ कमाई है, कि जीवन में सिर्फ गंवाया ही गंवाया? अंधेरे- अंधेरे में ही रहे या सुबह को भी चखा है? सूरज की किरणें भी पीं, या सब अंधेरे का ही भोजन किया है?
भोर आ गई
मेरे प्रिय के मन में जगी किरन, जैसे जग का कन कन छा गई
अंधकार धुल गया
ज्योति द्वार खुल गया
पौन लौ हुई चंचल
मधु झोंकों के अंचल--
जल-थल का रूप भार झुल गया
सोई धरती को झकझोर कर जगा गई भोर आ गई

रात ढली प्रीतों की
रस रंगी गीतों की
मेरी निशि शबनम की
तूफानों की तम की--
बीत गई अनघट अनरीतों की
सपनों की पलकों में चेतना समा गई भोर आ गई

कलिका चटखी, महकी
विहगिन जागी चहकी
खिल आए दल दिन के
मुख दुखिता विरहिन के--
मन में स्वर मीड़ बना, आगी दहकी

लेकिन सब कुछ खोकर मैं सब कुछ पा गई
भोर आ गई
कह सकोगे ऐसा मृत्यु के क्षण में? --
लेकिन सब कुछ खोकर मैं सब कुछ पा गई
भोर आ गई
मेरे प्रिय के मन में जगी किरन, जैसे जग का कन कन छा गई
भोर आ गई
कह सको तो धन्यभागी हो! न कह सको तो अभागी हो।
धन्यभागी होकर जाना! धन्यभागी हो कर जा सकते हो! भजन का मरम सीख लो। बस भजन एकमात्र धन है, भक्ति एकमात्र संपदा, क्योंकि उसी से मिलता है भगवान। अन्यथा शेष सब सपना है। सपना यह संसार!
थोड़े सचेत हो जाओ तो तुम भी कह सकोगे--
भोर आ गई
मेरे प्रिय के मन में जगी किरन, जैसे जग का कन कन छा गई
अंधकार धुल गया
ज्योति द्वार खुल गया
पौन लौ हुई चंचल
मधु झोंकों के अंचल--
जल-थल का रूप भार झुल गया
सोई धरती को झकझोर कर जगा गई भोर आ गई

रात ढली प्रीतों की
रस रंग की गीतों की
मेरी निशि शबनम की
तूफानों की तम की--

बीत गई अनघट अनरीतों की
सपनों की पलकों में चेतना समा गई भोर आ गई

कलिका चटखी महकी
विहगिन जागी चहकी
खिल आए दल दिन के
मुख दुखिता विरहन के--
मन में स्वर मीड़ बना, आगी दहकी

लेकिन सब कुछ खोकर मैं सब कुछ पा गई भोर आ गई

आज इतना ही।

सपना यह संसार
दूसरा प्रवचन

संसार एक उपाय है

भगवान,
उपनिषद-वाणी तेन त्यक्तेन भुंजीथाः का आप समर्थन करते हैं--भोग और फिर त्याग।
अगर त्यागना ही है तो भोग क्यों? भोग की बात ही क्यों उठाती?
भगवान,
ओ रहमतें बरसाने वाले, ओ मूक हृदय के स्रोत
तुझे कोटिशः धन्यवाद, कोटिशः वंदन!
मात्र तेरे मदिरा-ए-जाम की आशिक...

भगवान,
आपसे और अधिक सुंदर भगवान की अभिव्यक्ति और क्या होगी, पर कभी-कभी ध्यान लगने पर आप भी छट जाते हैं, और ध्यान से वापस लौटने पर मन में एक पीड़ा बनी रहती है कि जिसकी कृपा से ध्यान लग रहा है, उनका भी स्मरण भूल जाता हूं, तो कहीं यह उनके प्रति अकृतज्ञता तो नहीं है? कीर्तन में तो पीड़ा का यह भाव नहीं रहता।
मुझे ध्यान और भक्ति--दोनों में रस आने लगा है; पर जब भी आप प्रवचन में इनकी साफ-साफ विभाजन रेखा खींचते हैं तो मैं फिर उलझन में पड़ जाता हूं। कृपया इस संबंध में कुछ और कह कर मेरा मार्ग-निर्देश करें। (क्षमा करें, प्रश्न पूछना ही पड़ा।)
भगवान,
मैं आपका संन्यासी क्या हुआ, बड़ा उपद्रव हो गया है। पराए तो पराए अपने
भी पराए हो गए। मेरी मस्ती ही उनके क्रोध का कारण बन रही है। अब मैं क्या करूं?

पहला प्रश्नः भगवान, उपनिषद-वाणी तेन त्यक्तेन भुंजीथाः का आप समर्थन करते हैं--भोग और फिर त्याग।
अगर त्यागना ही है तो भोग क्यों? भोग की बात ही क्यों उठानी?

धर्मशरण दास! जीवन विरोधों से निर्मित है। यहां रात नहीं हो सकती दिन
के बिना। और जीवन नहीं हो सकता मृत्यु के बिना। जीवन द्वंद्व है। जीवन द्वैत है। द्वैत के बीच जो तनाव है, वही जीवन का आधार है। इसलिए जो द्वंद्वातीत हो गया, फिर उसका कोई जीवन नहीं, फिर उसका कोई आवागमन नहीं। त्याग और भोग इसी द्वंद्व का एक अंतर्तम पहलू है--एक आंतरिक जगत इसी दुई का, इसी द्वंद्व का।
अगर भोगा नहीं तो त्याग का तो अर्थ भी समझ में न आएगा। त्याग में अर्थ
ही क्या है? भोग का अनुभव ही त्याग में अर्थ डालता है। जिसने अंधेरा नहीं देखा, वह रोशनी को पहचान सकेगा? लाख बरसती रहे रोशनी सूरज से और चांद से और तारों से, मगर जिसने अंधेरा नहीं देखा उसे रोशनी का कुछ पता ही न चलेगा; प्रकाश की परिभाषा ही अंधकार से बनती है। अंधकार की लक्ष्मण-रेखा खींचे बिना तुम प्रकाश के वर्तुल को पहचान न पाओगे। इसलिए अंधकार एकदम व्यर्थ नहीं है।
व्यर्थ इस संसार में कुछ भी नहीं है। व्यर्थ भी व्यर्थ नहीं है, क्योंकि व्यर्थ का बोध ही सार्थक के अनुभव में ले जाता है। जिसने असार को असार की तरह पहचान लिया उसे सार के मंदिर का द्वार मिल गया।
तुम कहते होः जब त्यागना ही है तो भोग की बात ही क्यों? लेकिन त्याग का विचार ही कैसे उठेगा? त्याग का विचार कहां से उठेगा? भोग की पीड़ा ही त्याग का विचार बनती है। भोग का दंश, भोग का नरक। भोग को भुगतोगे नहीं तो त्याग का आयाम ही आवृत रह जाएगा, आच्छादित रह जाएगा; द्वार खुलेंगे नहीं। द्वार पर तुम चोट ही तब करोगे जब भोग की पीड़ा इतनी सघन हो जाएगी कि और न सह सकोगे।

जैसा मैंने कहा कि जीवन द्वंद्व है, हर पहलू पर द्वंद्व, वैसे ही इस वक्तव्य का भी दूसरा पहलू है--तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। इसका अर्थ ऐसे तो साफ है कि जिसने भोगा उसने छोड़ा। तेन त्यक्तेन, उसने त्यागा, भुंजीथाः, जिसने भोगा। जिसने भोग को जाना, उसने त्यागा। यह एक पहलू। दूसरा पहलू यह है--जिसने त्यागा, उसने ही भोगा। तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। छोड़ा जिसने, भोगा उसने।
एक संसार का भोग है, जो पीड़ा देता है, क्योंकि भ्रांति पर निर्मित है; आकांक्षाओं-अभीप्साओं की मरीचिका पर निर्मित है। दूर के ढोल सुहावने लगते हैं; और जैसे ही तुम पास पहुंचते हो, पानी के बबूले सिद्ध होते हैं। जब तक नहीं मिलता कुछ, जब तक दूरी बनी रहती है, तब तक आकर्षण बना रहता है। मिला कि आकर्षण गया। पास आए, दूरी क्या मिटती है, पाने की आकांक्षा पर भी पानी फिर जाता है। हाथ में लगते ही कोई चीज व्यर्थ हो जाती है। और के पास हो तो सार्थक, अपने पास हो तो व्यर्थ। पड़ोसी के बगीचे की घास ज्यादा हरी मालूम होती है। पड़ोसी की पत्नी भी ज्यादा सुंदर मालूम होती है। पड़ोसी के बच्चे भी ज्यादा बुद्धिमान मालूम होते हैं। निकटता से तो देखोगे, बस भ्रम टूट जाता है। भोग संसार का टूटना ही है, पानी का बबूला है; कि मरुस्थल में प्यास के कारण देखा गया जलस्रोत है।
पलटू कहते हैंः सपना यह संसार! सपना जब तक चलता है तब तक सच मालूम होता है। सपने से ज्यादा सच कुछ और मालूम होता है? सपने में कैसी-कैसी चीजों पर भरोसा कर लेते हो! बिल्कुल बेबूझ को भी मान लेते हो। सपने में अपनी पत्नी से बात कर रहे हो और अचानक पत्नी नदारद हो गई, घोड़े से बात करने लगे, इसको भी मान लेते हो! पत्थर की मूर्ति चलने लगती है सपने में, इसको भी मान लेते हो।
कल मैंने एक खबर पढ़ी। मनीला में एक आदमी रात जोर-जोर से चिल्लाने लगा-- स्काईलैब! स्काईलैब! ... सारी दुनिया में हवा गिरने की--अब गिरा, तब गिरा। अब तो गिर भी गया, यह गिरने के पहले की बात है। अब तो गिर गया समुंदर में। यह आदमी अपने बिस्तर में चिल्लाने लगा--स्काईलैब! स्काईलैब! घर के लोगों ने समझा कि मजाक कर रहा है। होगा मजाकी स्वभाव का। लेकिन वह सच में ही सपना देख रहा था, एक दुख-स्वप्न देख रहा था कि स्काईलैब गिरा। और घबड़ाहट उसे इतनी हुई कि उसका हार्ट फेल हो गया।
न कहीं कोई स्काईलैब, न कहीं कुछ गिरा अभी और वह आदमी मर भी गया! वह सपने से जाग ही न सका। इस आदमी की आत्मा अगर कहीं भटकेगी तो मानती रहेगी कि स्काईलैब के गिरने से देह छूटी। क्योंकि अब सपने के टूटने का कोई उपाय नहीं। और जिसके कारण देह छूट गई हो, वह असत्य हो सकता है? जिसके कारण मौत जैसी घटना घट गई, वह असत्य कैसे होगा! घबड़ाहट में हृदय की धड़कन बंद हो गई उसकी।
लेकिन तुम भी सपने में ऐसा ही भरोसा कर लेते हो। धन मिल जाता है तो अकड़ जाते हो; धन छिन जाता है तो.जार-.जार रोते हो। सुबह जाग कर बहुत हैरान होते हो--कैसे भरोसा कर लिया था इन बातों पर?
भोग एक सपना है। जैसे-जैसे जागोगे वैसे-वैसे त्याग फलित होगा; त्याग जागरण है। अगर संसार सपना है, तो परमात्मा जागरण है। लेकिन जागोगे कैसे अगर सोए ही न? इसलिए संसार परमात्मा को जानने की पाठशाला है। इससे दुश्मनी नहीं करनी है, इससे कुछ सिखावन लेनी है; इससे कुछ पाठ लेना है। यह विश्व वस्तुतः विश्वविद्यालय है और जो यहां से परमात्मा का पाठ लेकर गए, वही उत्तीर्ण हुए। जो धन, पद, प्रतिष्ठा इकट्ठी करते रहे, वे सपने में ही भटकते रहे।
जो इस संसार में जागा नहीं, उसने कुछ भी जाना नहीं। यह संसार आयोजन है परमात्मा का कि तुम जाग सको। लेकिन जगाने के लिए जरूरी है कि नींद को प्रगाढ़ किया जाए--इतना प्रगाढ़ कि नींद की पीड़ा इतनी बोझिल हो जो कि सोना असंभव हो जाए।
याद करो, कभी जब तुम सपना देखते हो मधुर, प्रीतिकर, तो टूटता नहीं। लेकिन जब तुम दुख-स्वप्न देखते हो तो जल्दी टूट जाता है। दुख कोई ज्यादा देर अंगीकार नहीं कर सकता क्योंकि दुख अस्वाभाविक है। सुखद सपना दे, रहे

हो कि तुम सम्राट हो गए, कि स्वर्ण के तुम्हारे महल हैं, कि हीरे-जवाहरात जड़ी हुई सीढ़ियां हैं, कि पारस पत्थर का बना हुआ तुम्हारा सिंहासन है-- जागने की आकांक्षा ही कैसे होगी? कोई जगाने भी लगे तो तुम चाहोगे कि रुको भाई! झूठ ही सही, मगर प्रीतिकर है, मधुर है, स्वादिष्ट है, थोड़ा और स्वाद ले लेने दो।
मुल्ला नसरुद्दीन रात जोर-जोर से बड़बड़ाने लगा। किसी से विवाद हो रहा है। मुल्ला कहता हैः सौ ही लेकर रहूंगा! नहीं, सत्तानबे नहीं; नहीं, अट्ठानबे नहीं; नहीं, निन्यानबे नहीं... ! दूसरा कौन है इसका तो पता नहीं चल रहा है, लेकिन पत्नी को यह सुनाई पड़ रहा है--मुल्ला जो कह रहा है। पड़ा है किसी निन्यानबे के चक्कर में। नहीं, निन्यानबे भी नहीं, कहता है, सौ ही लेकर रहूंगा। पत्नी ने जगा दिया, कि नाहक क्यों नींद खराब कर रहे हो, कहां का निन्यानबे, कहां का सौ? दुकान कर रहे हो क्या? रात भी पिंड नहीं छोड़ते ग्राहक तुम्हारा? अब रात तो कम से कम शांति से सोओ। मुल्ला बहुत नाराज हो गया। मुल्ला ने कहाः सब खराब कर दिया। बात बिल्कुल तय होने के करीब थी। अब बीच में मत बोलना!
आंख बंद कर ली और बोला कि हां भाई, वापिस लौट आओ। मगर अब कौन वापस लौटे! बहुत करवट ली, बाएं लेटा, दाएं लेटा... फिर पत्नी पर टूट पड़ा, कहा, तू भी कोई... जगाने का समय होता है एक! हर बात का समय होता है। जरा रुक जाती, सौ पर बात टिकी जाती थी। एक देवदूत प्रकट हुआ था और कह रहा था, मांग ले क्या मांगता है। तो उससे मैं सौ रुपये मांग रहा था; वह भी कंजूस पक्का था। एक से शुरू किया, किसी तरह निन्यानबे तक राजी हुआ था, बस अब एक की बात और रह गई-- जरा सी बात, सौ रुपये हाथ में होते। और अब मैं आंख बंद करके भी कह रहा हूं कि भाई लौट आ, यहां तक भी कि चल निन्यानबे ही सही, मगर कोई दिखाई ही नहीं पड़ रहा है।
सपने फिर से नहीं जोड़े जा सकते। टूटे सो टूटे। फिर कितनी ही करवट बदलो... ।
भोग एक सपना है। एक बार टूटे तो त्याग फलित होता है। और फिर त्याग एक
नए भोग का प्रारंभ है--परम भोग का, परमात्मा के भोग का। भोग है झूठा, मिथ्या--धन का, पद का, प्रतिष्ठा का। सब सपनों के नाम हैं। फिर एक और भोग है--परमात्मा का, अस्तित्व का, सत्य का। रसो वैसः। फिर उसका रस पीना।
तो एक पहलू है कि जिन्होंने भोगा, उन्होंने त्यागा। और इसका मैं दूसरा पहलू भी तुमसे कह दूंः जिन्होंने त्यागा, उन्होंने भोगा। और ये दोनों ही अंग समझ लेने जरूरी हैं। दोनों को समझोगे तो दोनों के पार भी हो सकोगे। जो दोनों के पार हो जाता है--न भोग, न त्याग--वह द्वंद्व के पार हो गया। उसे हम गुणातीत कहते हैं, द्वंद्वातीत कहते हैं। वह परम अवस्था है-- निर्विकल्प समाधि की, निर्जीव समाधि की।
मगर तुमने अगर जल्दबाजी की, कच्चे-कच्चे, तुमने कहा कि जब त्यागना ही
है तो भोगना क्या--तो तुम्हें, त्यागना ही है यह ख्याल कैसे आया? कांटा गड़ा नहीं और कांटा निकालना है, यह, ख्याल कैसे आया? जरूर किसी कांटे लगे हुए आदमी की बात सुन ली होगी। जिसे कांटा लगा, जिसने कांटे की पीड़ा जानी, जिसने कांटा निकाला और कांटा निकालने का सुख जाना, उसकी बात सुन ली होगी--किसी बुद्धपुरुष की। मिल गए होंगे कोई पलटू, कोई कबीर, कोई नानक; उनकी बात सुन ली होगी। उधार बात पकड़ ली। उनको कांटा लगा था, तो पीड़ा थी; कांटा निकाला, तो सुख पाया। तुम्हें कांटा ही नहीं लगा और तुम कांटा निकालने में लग गए-- कांटा ही नहीं है, निकालोगे क्या खाक! तुम बहुत मुश्किल में पड़ोगे। तुम कांटा निकालने का धोखा अपने को दोगे--कांटा तो होना चाहिए! बीमार दवा ले तो स्वस्थ हो जाए। और तुम किसी बीमार के स्वस्थ होने की बात सुन कर खरीद लाए दवा--स्वस्थ होओगे तो उलटे बीमार हो जाओगे।
और ऐसा ही हुआ। इस देश के बड़े से बड़े दुर्भाग्य में एक दुर्भाग्य यह है। सौभाग्य की बात थी कि यहां बड़े फकीर हुए, पहुंचे हुए फकीर हुए। लेकिन दुर्भाग्य की बात थी कि नासमझों ने उनकी बातें पकड़ लीं और उनकी बातों के आधार पर जीने की चेष्टा शुरू कर दी। कांटा टटोलने लगे, जो लगा ही नहीं है।

और कांटा छोड़े बिना तो त्याग होता नहीं, तो कांटा छोड़ने लगे जो है ही नहीं। जो नहीं है उसे कैसे छोड़ोगे? तो छोड़ने का पाखंड पैदा होगा फिर।
इसीलिए यह देश एक तरफ बुद्ध, महावीर, कृष्ण, ऐसे अदभुत ज्योतिर्मय लोगों की धारा है और दूसरी तरफ बुद्धुओं की एक महान जमात। एक तरफ जलते हुए थोड़े से दीये और दूसरी तरफ अमावस की रात। ठीक है है कि हम दीवाली अमावस की रात को मनाते हैं, वह इस देश की प्रतीक है। दीये जला लिए--वे बुद्ध, कृष्ण, महावीर, कबीर, नानक, पलटू, रैदास, फरीद! दीये जला लिए। और अंधेरी रात है, अमावस की रात है। अमावस की रात में हम दीवाली मनाते हैं, ऐसी इस देश की हालत है। देश में तो अमावस की रात है। हां, कभी-कभी कोई दीया जल जाता है और हम उसी दीये के गुणगान में लवलीन हो जाते हैं और भूल ही जाते हैं कि अमावस की रात इससे मिटती नहीं, अपनी जगह बनी है। जब तक कि प्रत्येक दीया जल न उठे, जब तक कि प्रत्येक प्राण जल न उठें, चैतन्य से ज्योतिर्मय न हो उठें, तब तक यह रात मिटेगी नहीं। पाखंड फैला। एक तरफ सदगुरुओं के वचन और दूसरी तरफ पंखड़ियों की जमात।
मुल्ला नसरुद्दीन बीच बाजार में खड़ा, अपने गधे को भगवदगीता पढ़ा रहा था। भीड़ लग गई। भगवदगीता का एक पृष्ठ पढ़े और गधा जोर से पैर पटके और सिर हिलाए। तो मुल्ला कहेः नसरुद्दीन, मजाक की भी एक सीमा होती है, और यह मजाक जरा जरूरत से ज्यादा हुआ जा रहा है। गधे को और भगवदगीता पढ़ा रहे हो! गधा और भगवदगीता समझेगा! मुल्ला नसरुद्दीन ने कहाः मैंने तो गधों के सिवाय और किसी को भगवद्गीता पढ़ते देखा नहीं। जब बाकी गधे समझ रहे हैं तो इस गधे का क्या कसूर है? और देखते नहीं कि गधा कितना कुशल और प्रवीण है, एकदम सिर हिलाता है, पैर भी मारता है; कहता है कि हां ठीक, आगे बढ़ो! इतना कंठस्थ हुआ! गीता कंठस्थ कर लो कि कुरान कंठस्थ कर लो कि बाइबिल कंठस्थ कर लो, पाखंडी हो जाओगे। अमावस मिटेगी नहीं, पूर्णिमा जगेगी नहीं। अंधेरा अंधेरा रहेगा। और खतरनाक स्थिति हो गईः अंधेरा तो बना ही रहेगा और तुम धोखा खाने लगोगे रोशनी का; क्योंकि रोशनी की बातें तुम्हें याद हो गई। हां, कृष्ण की बातों में रोशनी है। मगर कृष्ण हो जाओ तो। नहीं तो वे सब बातें हैं। तुम उन्हें दोहराओ, तोतों की तरह दोहराते रहो, कुछ फर्क न होगा। तुम जैसे थे वैसे रहोगे, शायद और भी गर्त में पड़ जाओगे, क्योंकि अब अहंकार जगेगा ज्ञान का।
धर्मशरण दास, जानोगे कैसे कि त्यागना है? त्याग की बात ही कैसे उठ सकती है? भोग जलाए, भोग तड़फाए, भोग भटकाए, लहूलुहान कर दे तुम्हारे पैरों को, तो त्याग में अर्थ आता है; तो त्याग का बोध जगता है; तो समझ आनी शुरू होती है कि अब जागूं, नींद बहुत ले ली, बहुत दुख-स्वप्न देख लिए। वे सारे दुख-स्वप्न ही तुम्हारे जगने का कारण बन जाते हैं। इसलिए उपनिषद के वचन की मैं निश्चित ही स्तुति करता हूं। अदभुत वचन हैः तेन त्यक्तेन भुंजीथाः। उन्हीं ने त्यागा, जिन्होंने भोगा!
जल्दी मत करना! फल कच्चा टूट जाए, कड़वा रह जाता है; तिक्त; कि खट्टा; खाने योग्य तो निश्चित ही नहीं। फल पके तो मीठा हो जाता है। पकने में मिठास है।
भोग को जीओ। डरो मत, भागो मत। भगोड़ों से कोई रूपांतरण नहीं होता। भोग
को पहचानो। भोग एक परिस्थिति है।
गुरजिएफ ने एक दिन अपने एक प्रमुख शिष्य को कहा कि पेरिस में मेरे कोई तीस शिष्य हैं, सबको खबर कर दो कि रविवार को सुबह फलां-फलां जगह ठीक सात बजे--मिनट भी देर न हो--मुझे मिलें। जो जगह है वह कोई तीस मील देर। सर्दी के दिन, बर्फ पड़ती है। सात बजे सुबह, जंगल के एक चौरस्ते पर, मिनट भर भी देर नहीं--सबको कह दो कि वहां इकट्ठे हो जाएं, कुछ महत्वपूर्ण बात कहनी है। कौन चूके! चूकने का मन तो बहुत हुआ; मगर महत्वपूर्ण बात से चूक जाएंगे। तो लोभवश जागे, भागे, पहुंचे ठीक वक्त पर। कोई साढ़े छः बजे पहुंच गया, कोई पौने सात, लेकिन सात बजते-बजते तो तीनों आदम वहां मौजूद थे।
गुरजिएफ ने जिससे यह संदेश भिजवाया था, उससे कहा कि और तू, सात बजे ठीक मेरे घर आ जाना। वह थोड़ा जरा हैरान हुआ कि यह मामला क्या है! सात बजे वहां शिष्यों से मिलना है और मुझे सात बजे घर बुला रहे हैं! मगर इतना समर्पण न

हो तो सदगुरुओं से साथ नहीं बनता। तो वह सात बजे गुरजिएफ के वहां उपस्थित हुआ। वह तो मस्त सोए हुए थे। नौकर ने कहा बैठो; अभी तो वह उठे ही नहीं हैं। और हैरानी हुई कि वे बिचारे सब जंगल में खड़े होंगे! कोई आठ बजे गुरजिएफ उठा, एक कागज पर लिखकर दिया किः अब तुम जा सकते हो, और कुछ नहीं कहना है। कागज, कहा कि जाकर शिष्यों को दे दो, वे जो इकट्ठे हैं जंगल में। वे बेचारे सात बजे से राह देख रहे हैं। कोई चार बजे उठा है, कोई पांच बजे उठा है, कोई तीन बजे ही उठ आया है। कोई रात भर सो ही नहीं सका कि सुबह कोई महत्वपूर्ण संदेश मिलना है। सात बज गए, सवा सात बज गए, साढ़े सात, धुकधुकी लगी है, सब एक तरफ टकटकी लगाए देख रहे हैं रास्ते पर--कोई पता नहीं है। कोई आता नहीं, कोई जाता नहीं। उस शिष्य का पता नहीं जो खबर दे गया। साढ़े आठ बजे घबड़ाहट फैलने लगी। पौने नौ बज गए, तब कहीं वह शिष्य पहुंचा। जाकर उसने चिट दे दी। चिट पढ़ी, अपनी-अपनी गाड़ियों में बैठे, घर की तरफ वापिस चले।
तुम पूछोगे, यह कोई मजाक था? नहीं, यह मजाक नहीं था। सदगुरुओं के अपने उपाय होते हैं। उन तीस में से एक ने भी यह नहीं कहा कि यह क्या ज्यादती है? मजाक की भी कोई सीमा होती है। नाहक हमारी रात खराब करवाई, सुबह सर्दी में भटकवाया! नहीं, लेकिन यह मजाक न थी। यह सिर्फ एक उपाय था। एक उपाय कि क्या तुम विपरीत परिस्थितियों में भी श्रद्धा को बचा सकते हो? जबकि संदेह स्वाभाविक हो, तब भी क्या तुम श्रद्धा को सुरक्षित रख सकते हो?
संसार ऐसा ही उस परमगुरु के द्वारा निर्णीत किया गया एक उपाय है। भोग
एक उपाय है परमात्मा द्वारा सुनिश्चित तुम्हें ढकेला गया है। श्रद्धापूर्वक स्वीकार करो। होशपूर्वक समझो, विश्लेषण करो, पहचानो। संसार की पीड़ाओं से अपनी आत्मा में धार रखो, अपने चैतन्य को प्रज्वलित करो। यह परिस्थिति चूक न जाए!
इसलिए मैं तुमसे नहीं कहता कि भाग जाओ भोग को छोड़ कर, भोग की जरूरत क्या है? भोग की जरूरत है। क्योंकि भोग से ही त्याग का फूल निकलता है। भोग के बिना कोई त्याग नहीं है। यह आकस्मिक नहीं है कि जैनों के चौबीस ही तीर्थंकर राजपुत्र हैं--तेन त्यक्तेन भुंजीथाः! जिन्होंने भोगा उन्होंने त्यागा। यह आश्चर्यजनक नहीं है कि हिंदुओं के सब अवतार राजपुत्र। बुद्ध भी राजपुत्र। इस सबके भीतर एक सुसंगति है--तेन त्यक्तेन भुंजीथाः! जिन्होंने भोगा, उन्होंने त्यागा।
जैसे ही जैसे कोई समाज समृद्ध होता है, भोग की व्यर्थता साफ होने लगती है। जैसे ही जैसे तुम्हारे जीवन में भोग से पहचान होती है, भोग का आकर्षण विदा होने लगता है। तब आता है त्याग--एक सहज नैसर्गिक त्याग! करना नहीं पड़ता, हो जाता है। हो जाए तब मजा है। करना पड़े, बात बेमजा हो गई। करना पड़े तो उसका अर्थ हैः जबरदस्ती हुई; हो जाए तो उसका अर्थ हैः सहज; स्वस्फूर्त; बोध से हुआ। और तब एक नए भोग का प्रारंभ होता है। वह परम भोग है। सच्चिदानंद उसी का नाम है।
तुम चले
देखना, यह स्वर्ण होकर मृत्तिका, न गले
राग है यदि व्यर्थ तो वैराग्य भी
तुच्छ है यदि ग्रहण तो है त्याग भी
द्वंद्व है भ्रम द्वंद्व है तम
द्वंद्व का निशिदूत रस के सहज दल न दले तुम चले
देखना, यह स्वर्ण होकर मृत्तिका, न गले

नींद भी है सत्य स्वप्निल तोष भी पंखड़ियां भी सत्य पंकज कोष भी
जागरण में या सपन में
चेतना जगती रहे तो कौन है कि छले
तुम चले
देखना, यह स्वर्ण होकर मृत्तिका, न गले

कामना शिव है सदा गति प्रगति की
शिव रहे तो भले रति की विरति की
शिव सुधासर सत्य सुंदर
तुम कहीं भी रहो फिर हे, सत्य शिव के तले
तुम चले
देखना, यह स्वर्ण होकर मृत्तिका, न गले

चेतना जगती रहे तो कौन है कि छले...
असली सवाल है चेतना के जागरण का। और जहां पीड़ा है वहां जागरण आसान है। सुख सुला देता है, दुख जगाता है। इसलिए जानने वालों ने परमात्मा को धन्यवाद दिया है--उस सब दुखों के लिए जो उसने दिए; और उन सब सुखों के लिए जो उसने दिए। सुख के लिए भी धन्यवाद, दुख के लिए भी धन्यवाद। और अगर ठीक से पूछो तो दुख के लिए ज्यादा धन्यवाद बजाए सुख के। क्योंकि सुख में तो आदमी सो जाए, दुख में नहीं सो पाता है। जीवन में तो आदमी भूल जाए, लेकिन मौत में तो परमात्मा का स्मरण आने ही लगता है। पीड़ा में तो प्रार्थना अपने आप उमगती है। इसलिए वरदान ही वरदान नहीं है, अभिशाप भी वरदान है। अभिशाप भी छिपे हुए वरदान हैं।
चेतना जगती रहे तो कौन है कि छले!
त्याग और क्या है? जाग कर जीना! होशपूर्वक जीना! फिर यही संसार परमात्मा बन जाता है।
तुच्छ समझ मत त्यागो
स्वप्न समझ भ्रम समझ न भटको, अपना कह अनुरागो

त्याग हृदय की दुर्बलता है राग हृदय का धन है
त्याग राग के युगल पुलिन में आंदोलित जीवन है
अंतर्धन का दुर्बलता पर बलि करक मत भागो

मन की धारा मुक्त, जहां चाहे जैसे बह जाए
किंतु न अगर बंधे फूलों में तो कैसे गति पाए
गति जीवन है जीवन द्रोही राग विराग न मांगो

गति के बिना व्यर्थ है सब कुछ गति बिन लक्ष्य कहां है
रति के बिना तरंगित हो जो ऐसा वक्ष कहां है
मन की ये उद्दाम तरंगें जीवन रस में पागो

त्याग सिमिट कर रह जाता है राग फैल लहराता
जो विराग में चुप रहता है वही राग में गाता
जीवन का संगीत न भूलो, जागो, जागो, जागो
न तो प्रश्न भोग का है न प्रश्न त्याग का है--प्रश्न है जाग का, जागरण का, जागृति का!
धर्मशरण दास, जल्दी न करो! जीवन में जिसने जल्दी की, वह बहुत कुछ गंवाता है। जीवन को अपनी गति से चलने दो। थोपो मत कुछ, अन्यथा पाखंड होगा। ऊपर-ऊपर ओढ़ो मत, अन्यथा दुविधा होगी। तुम्हारे भीतर ही संघर्ष खड़ा हो जाएगाः ऊपर कुछ, भीतर कुछ; चाहोगे कुछ, कहोगे कुछ। तुम्हारा जीवन एक संस्रास, एक संताप हो जाएगा। क्योंकि निरंतर अंतर्द्वंद्व रहे, निरंतर भीतर संघर्ष चले, गृहयुद्ध ही बना रहे भीतर, तलवारें ही खिंची रहें, अपने लड़ाई जारी रहे--तो कैसा आनंद, कैसा सत्य? सत्य के लिए तो शांति चाहिए; भीतर एक समन्वय चाहिए; एक समवेत संगीत की अवस्था चाहिए।
इसलिए मैं अपने संन्यासी को कहता हूंः जीवन को जीओ। हां, एक शर्त लगाता हूंः जाग कर जीओ। भोगो, जी भरकर भोगो--बस जाग कर भोगो! यही जाग भोग को त्याग में रूपांतरित कर देती है। यही जाग इस संसार को परमात्मा में बदल देती है। यही जाग पत्थर को परमात्मा की प्रतिमा बना देती है। यही जाग बस काफी है धोखे को तोड़ देने को। धोखा वृक्षों में, पत्थरों में, पहाड़ों में

थोड़े ही है--तुम्हारी नींद में है; तुम्हारी बेहोशी में, तुम्हारी मूर्च्छा में।
महावीर से किसी ने पूछा हैः मुनि कौन, अमुनि कौन? और महावीर की परिभाषा बड़ी प्यारी है। महावीर ने कहाः असुत्ता मुनि, सुत्ता अमुनि। जो सोया है, वह अमुनि; जो जागा है, वह मुनि। महावीर ने नहीं कहा कि जिसने घर छोड़ दिया, वह मुनि; पत्नी छोड़ दी, वह मुनि; धन छोड़ दिया, पद छोड़ दिया, वह मुनि। महावीर ने तो बड़ी ही गहन परिभाषा दी--असुत्ता! जो सोया नहीं है। फिर वह कहीं भी हो, बीच बाजार में हो, तो भी मुनि है। और जो सोया है, हिमालय की गुहा में सोया रहे और सपने देखता रहे, तो अमुनि है।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
ओ रहमतें बरसाने वाले, ओ मूक हृदय के स्रोत
तुझे कोटिशः धन्यवाद, कोटिशः वंदन!
मात्र तेरे मदिरा-ए-जाम की आशिक...

आनंद निष्ठा, मधुशाला है यह। यहां जो पीने आए हैं, बस वे ही आए हैं। जो पियक्कड़ होने को तैयार हैं, उनके लिए ही मेरा द्वार है। तू पीना चाहती है, तो सुराही पर सुराही ढलेगी।
मगर लोग बड़े कृपण हो गए हैं। देने में कृपण हो गए हैं सो तो ठीक, लेने में तक कृपण हो गए हैं। झोली नहीं फैलाते, हृदय नहीं खोलते।
और यह मदिरा कुछ ऐसी मदिरा नहीं कि प्यालियों में भरी जाए; यह तो तुम्हारा हृदय प्याली बने तो ही ढाली जा सकती है। यह मदिरा अंगूरों से ढली हुई तो नहीं, आत्मा से ढली हुई है। यह मदिरा ओंठों से नहीं पी जाती; इस मदिरा को पीने के लिए उपवास सीखना पड़े, पास आने की कला सीखनी पड़े, उपदेश लेने की कला सीखनी पड़े, उपनिषद सुनने की कला सीखनी पड़े।
ढलेगी, बहुत ढलेगी। पीने-पिलाने के लिए ही यह सारा आयोजन है।
मैं छोड़ चलूं
मैं रिसने वाले जर्जर घट में क्या-क्या जोड़ चलूं

जो नीड़ नीर में गले पवन में हलकोर खाए
जिसकी संकीरन सीमा में खग बंदी हो जाए
मैं गगन मुक्त उस क्षुद्र नीड़ के तिनके जोड़ चलूं
मैं छोड़ चलूं
मैं रिसने वाले जर्जर घट में क्या-क्या जोड़ चलूं मैं भूल गया था राह चाह की चंचल वेला में
मैं भूल गया था जीवन को लहरों के मेला में
जब लक्ष्य मिल गया है तो अपने पथ को मोड़ चलूं मैं छोड़ चलूं
मैं रिसने वाले जर्जर घट में क्या-क्या जोड़ चलूं

मैं चलूं तुम्हारी कल्याणी वाणी पाथेय रहे
जो ध्येय नयन के आगे है वह मन में गेय रहे
ले मर्त्य स्वरों की बीन अमर से लेने होड़ चलूं
मैं छोड़ चलूं
मैं रिसने वाले जर्जर घट में क्या-क्या जोड़ चलूं
हृदय को घट बनाना होगा। बाहर के सारे घटों में तो बाहर की ही मदिरा भरी जा सकती है। और बाहर के सब घट फूटे घट हैं; उनमें कुछ भरा नहीं; उनसे सब रिस-रिस जाता है। आत्मा का घट बनाना होगा। वही शिष्यत्व है!
निष्ठा, तू ठीक कहती हैः मात्र तेरे मदिरा-ए-जाम की आशिक।
लेकिन आश्कि खतरनाक सौदा है। प्रेम है मरने की तैयारी; उससे कम में काम नहीं चलता। इस मदिरा की कीमत अहंकार की मृत्यु से चुकानी पड़ती है। इस मदिरा की कीमत केवल वे ही चुका सकते हैं जो दीवाने हैं, पागल हैं।

समझदारों का यह काम नहीं। होशियारों का यह काम नहीं। गणित बिठालने वालों का यह काम नहीं। कौड़ी-कौड़ी का हिसाब रखने वालों का यह काम नहीं।
हिज्र की शब नाला-ए-दिल वो सदा देने लगे
सुनने वाले रात कटने की दुआ देने लगे।

किस नजर से आपने देखा दिले-मजरूह को
जख्म जो कुछ भी चले थे, फिर हवा देने लगे।

जुज जमीने-कू-ए-जानां कुछ नहीं पेशे-निगाह
जिसका दरवाजा नजर आया, सदा देने लगे।

बागवां ने आग दी, जब आशियाने को मेरे
जिन पे तकिया था, वही पत्ते हवा देने लगे।

मुट्ठियों में खाकर ले कर दोस्त आए वक्ते-दफन
जिंदगी भर की मुहब्बत का सिला देने लगे।

आइना हो जाए मेरा इश्क उनके हुस्न का
क्या मजा हो दर्द अगर खुद ही दवा देने लगे।

सीना-ए-सोजां में साकिब घुट रहा है यह धुआं
उफ करूं तो आग दुनिया की हवा देने लगे।
दीवानगी चाहिए। ऐसी दीवानगी--जुज जमीने-के-ए-जानां कुछ नहीं पेशे- निगाह--कि उस प्यारे के सिवाय कुछ भी दिखाई न पड़े। सारी गलियां उसकी गलियां, सारे घर उसके घर।
जुज जमीने-के-ए-जानां कुछ नहीं पेशे-निगाह
जिसका दरवाजा नजर आया, सदा देने लगे।
हर दरवाजे पर उसको पुकारने का जिस दिन पागलपन आ जाता है... ।
अभी तो तुमने उसके भी मंदिर चुन रखे हैं। हिंदू एक मंदिर जाता, मुसलमान मस्जिद जाता, सिक्ख गुरुद्वारा जाता। सिक्ख फिकर नहीं करता हिंदू मंदिर की, हिंदू फिकर नहीं करता मस्जिद की, मस्जिद वाले को क्या पड़ी किसी और के मंदिर की तरफ देखे! और सब मंदिर तो काफिरों के हैं, नास्तिकों के हैं, भटके हुओं के हैं। ये दीवानों की बातें नहीं हैं, ये दुकानदारों की बातें हैं।
जुज जमीने-कू-ए-जानां कुछ नहीं पेशे-निगाह
आंख के सामने जब उसके सिवाय कुछ और दिखाई ही नहीं पड़ता; जो दिखाई पड़ता
है वही दिखाई पड़ता है; हर गली उसकी गली, और हर द्वार उसका द्वार--
जुज जमीने-कू-ए-जानां कुछ नहीं पेशे-निगाह
जिसका दरवाजा नजर आया, सदा देने लगे।
दरवाजा जहां दिखाई पड़ा वहीं प्रार्थना करने बैठ गए, वहीं झुक गए... ऐसी दीवानगी चाहिए, तो जरूर तेरा पात्र मेरी मदिरा से भर जाए।
यहां जो हिसाब-किताब सलगाने वाले लोग आ जाते हैं, व्यर्थ आ जाते हैं।
जो यहां अपना सोच-विचार लेकर आ जाते हैं, न आते तो अच्छा था; समय खराब करते हैं। यह दीवानों की महफिल है। यह सत्संग कोई शाब्दिक सत्संग नहीं है। ये तो पीने-पिलाने की बातें हैं। यहां तो साहस चाहिए।
एक बेहोशी है संसार की और एक बेहोशी है परमात्मा की। संसार में जो बेहोश है, सपने में है; और परमात्मा में जो बेहोशी बड़ी अनूठी है--ऐसी बेहोशी है कि होश को बढ़ाती है, घटाती नहीं।
जिस शराब की मैं बात कर रहा हूं, यह तुम्हारे अहंकार को डुबा देगी और तुम्हारी आत्मा को जगा देगी। अनेक-अनेक ढंगों से--नृत्य में, गीत में, संगीत में यही शराब बह रही है।
लेकिन मधुशालाएं लोगों को मंदिर नहीं मालूम पड़तीं। लोगों को तो मंदिर
वे स्थान मालूम पड़ते हैं, जहां मुर्दा परंपरा की पूजा हो रही है, जहां सड़ी-

गली लाशों के ढेर लगे हैं। जितनी पुरानी लाश, उतनी ही आदृत। बुद्ध जब जिंदा होते हैं, तब तो उनका सत्संग एक मधुशाला होता है; बुद्ध जब मर जाते हैं, तब मंदिर बनता है--मंदिर मुर्दा! जब मोहम्मद के ओंठों पर कुरान होती है तो काबा एक मधुशाला होता है; मोहम्मद गए, कुरान हवा हो गई, काबा एक मुर्दा स्थान रह जाता है। पूजते रहो, जन्मों-जन्मों तक पूजते रहो, काबा और कैलास और गिरनार भटकते रहो, एक बूंद भी नहीं मिलेगी अमृत की! किसी जीवित बुद्ध के पास ही संभव होती है यह अपूर्व घटना, यह चमत्कार!
यही सबसे बड़ा चमत्कार है। पानी पर चलने में कोई चमत्कार नहीं है। मूढ़ों को चमत्कार दिखाई पड़ता है पानी पर चलने में।
मैंने सुना है, एक आदमी एक होटल में गया, चाय बुलाई। नाराजगी में मैनेजर को बुलाया और मैनेजर से कहाः देखो, चाय में मक्खी चल रही है! मैनेजर था पक्का ईसाई, एकदम घुटने के बल जमीन पर बैठ गया, हाथ आकाश की तरफ उठा दिए और कहाः हे ईसा मसीह, तो तुम आ गए! इस रूप में आओगे, ऐसा न सोचा था!
कुछ हैं जिनके लिए चमत्कारों का यही अर्थ होता है। पानी पर चल रहे हैं, हवा में उड़ रहे हैं, राख प्रकट कर रहे हैं, ताबीज और घड़ियां निकाल रहे हैं!
मैं तो सिर्फ एक ही चमत्कार जानता हूं, जो शिष्य और गुरु के बीच घटता है। उपनिषद एकमात्र चमत्कार है। सत्य का एक हृदय से दूसरे हृदय में उंडल जाना एकमात्र चमत्कार है।
यह मदिरा जो मैं अपनी सुराही में लिए बैठा हूं, तुम्हारी प्याली तक पहुंच जाए--लेकिन अवसर दो। तुम्हारे कहने की ही बात नहीं, हृदय खोलो! अखंड श्रद्धा में ही यह संभव हो सकता है। संदेह में तो आदमी बंद होता है, श्रद्धा में खुल जाता है। श्रद्धा में तुम्हारा पात्र मेरे सन्मुख हो जाए।
निष्ठा! यह घटना घट सकती है। घटेगी। घटनी चाहिए। उसके लिए ही यह विराट आयोजन चल रहा है कि हजारों लोगों के जीवन में यह घटना घट जाए। एक-दो को नहीं पिलाना है, लाखों को पिलाना है। पीने वालों को इतना बढ़ाना है कि यह मस्ती की हवा, यह मस्ती का रंग दुनिया को आंदोलित करने लगे।
जुज जमीने-कू-ए-जानां कुछ नहीं पेशे-निगाह
जिसका दरवाजा नजर आया, सदा देने लगे।

अब तो घबरा के ये कहते हैं कि मर जाएंगे
मरके भी चैन न पाया तो किधर जाएंगे।

आग दोजख की भी हो जाएगी पानी-पानी
जब ये आसी अरके-शर्म में तर जाएंगे।

हम नहीं वो जो करें खून का दावा तुझ पर
बल्कि पूछेगा खुदा भी तो मुकर जाएंगे।

शोला-ए-आह को बिजली की तरह चमकाऊं
पर मुझे डर है कि वो देख के डर जाएंगे।

जौक जो मदरसे के बिगड़े हुए हैं मुल्ला
उनको मयखाने में ले आओ, संवर जाएंगे।

निष्ठा, तू तो आई सो आई, और जो बिगड़ गए हैं, मदरसों में, उनको भी ला!
जौक जो मदरसे के बिगड़े हुए हैं मुल्ला
उनको मयखाने में ले आओ, संवर जाएंगे।
उनको भी संवारना है। संवरना ही नहीं, संवारना भी है।
मेरे संन्यासी को स्मरण रखना हैः संवरना ही नहीं, संवारना भी है। जागना ही नहीं, जगाना भी है। क्यों? क्योंकि जब तुम दूसरों को जगाने में लग जाते हो तो तुम्हारी अपनी जाग भी गहन होने लगती है। जब तुम दूसरों को

पुकारने में लग जाते हो तब तुम्हारी आत्मा भी उस पुकार को सुनने लगती है। जब तुम दूसरों को पिलाने को आतुर हो जाते हो तो फिर तुम पीने में कृपणता नहीं करते। दूसरों को समझाना अपने को समझाने का एक उपाय है। इस दुनिया में कुछ भी सीखना हो तो सबसे अदभुत कला सीखने की हैः सिखाना शुरू करो।
दिया अपनी खुदी को जो हमने उठा, वो जो पर्दा-सा बीच में था, न रहा
रहे पर्दे में अब न वो पर्दा-नशीं, कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।

न थी हाल की जब हमें अपने खबर, रहे देखते औरों के ऐबो-हुनर
पड़ी अपनी बुराइयों पर जो नजर, तो निगाह में कोई बुरा न रहा।

तेरे रुख के ख्याल में कौन से दिन, उठे मुझपे न फितना-ए-रोजे-जजा तेरी जुल्फ के ध्यान में कौन-सी शब, मेरे सर पे हुजूमे-बला न रहा।

हमें सागरो-बाद के देने में तू, करे देर जो साकी तो हाय गजब
कि ये अहदे निशात, ये दौरे-तरब, न रहेगा जहां में सदा, न रहा।

उसे चाहा था मैंने कि रोक रखूं, मेरी जान भी जाए तो जाने न दूं
किए लाख फरेब, करोड़ फुसूं, न रहा, न रहा, न रहा न रहा।

जफर आदमी न उसको जानिएगा, हो वो कैसी ही साहबे-फह्मो-जका
जिसे ऐश में यादे-खुदा न रही, जिसे तैश में खौफे-खूदा न रहा।
थोड़े से ही पाठ हैं। सच कहो तो एक ही पाठ है। और तूने वही पूछा। ठीक ही है, जल्दी करो पीने की!
हमें सागरो-बाद के देने में तू, करे देर जो साकी तो हाय गजब
किये अहदे निशात, ये दौरे-तरब, न रहेगा जहां में सदा, न रहा।
कौन जाने; आज मधुशाला है, कल हो न हो! कौन जाने; आज शराब ढाली जा रही है,
कल ढले, न ढले!
हमें सागरो-बाद के देने में तू, करे देर जो साकी तो हाय गजब
कि ये अहदे निशात...
यह रात रहेगी कि नहीं? यह बात रहेगी कि नहीं?
ये दौरे-तरब...
यह मौसम, यह वातावरण; यह समय की गति, यह चाल, यह ऋत...
ये दौरे-तरब, न रहेगा जहां में सदा, न रहा।
इतना तो पक्का है कि बुद्ध आते हैं और जाते हैं; जो पी लेते, पी लेते;
जो व्यर्थ की बातों में पड़े रह जाते हैं, वंचित रह जाते हैं।
तूने ठीक पूछा। लेकिन एक बात स्मरण रहेः साकी की तरफ से कोई भी देरी नहीं है; देरी होगी तो पीने वाले की तरफ से है। अध्यात्म के जगत में सदगुरु तो बांटने को आतुर होता है; शिष्य ही लेने में आनाकानी करते हैं, हजार बहाने खोजते हैं, हजार तरकीबें अपने को बचाने की करते हैं। क्योंकि यह मामला मिटने का है। मिटना कौन चाहता है! बीज भी मिटना नहीं चाहता। और जब तक मिटे न तब तक पौधा पैदा नहीं होता। और नदी भी मिटना नहीं चाहती, लेकिन जब तक मिटे न तब तक सागर नहीं बनती। अपने को बचाओगे तो ओस की बूंद रह जाओगे। अपने को मिटाओगे तो सागर हो तुम, महासागर हो तुम!
दिया अपनी खुदी को जो हमने उठा, वो जो पर्दा-सा बीच में था, न रहा
रहे पर्दे में अब न वो पर्दा-नशीं, कोई दूसरा उसके सिवा न रहा।
कुछ नहीं है तुम्हारे और परमात्मा के बीच, एक झीना सा पर्दा है। और वह परमात्मा पर नहीं है; वह तुमने ही घूंघट कर लिया है। वह तुमने ही अपनी आंखों को छिपा रखा है एक पर्दे में। हटाओ यह पर्दा। घूंघट उठाओ! घूंघट के पट खोल, तोहे पिया मिलेंगे! पिया मिले ही हुए हैं, मगर तुमने घूंघट ऐसे जोर से पकड़ रखा है! तुमने घूंघट में अपने सारे प्राण लगा रखे हैं।
मैं तो ढालने को तैयार हूं, निष्ठा! तू मिट! जगह दे! जगह खाली कर! यह शराब ढालूं तो कहां ढालूं? अगर भीतर मैं भरा रहा, अगर भीतर अहंकार भरा रहा, तो जगह नहीं। प्याली को खाली करो! मेरी तरफ से जरा भी कृपणता नहीं है; अति

आतुरता है। क्योंकि तुम्हें पता हो न पता हो, मुझे पता है--यह मौसम सदा नहीं रहेगा, यह ऋतु सदा नहीं रहेगी; जो आज घट सकता है, कल की कौन कहे! कल कभी आता भी नहीं है।

तीसरा प्रश्नः भगवान, आपसे और अधिक सुंदर भगवान की अभिव्यक्ति और क्या होगी, पर कभी-कभी ध्यान लगने पर आप भी छूट जाते हैं, और ध्यान से वापस लौटने पर मन में एक पीड़ा बनी रहती है कि जिसकी कृपा से ध्यान लग रहा है, उनका भी स्मरण भूल जाता हूं, तो कहीं यह उनके प्रति अकृतज्ञता तो नहीं है? कीर्तन में तो पीड़ा का यह भाव नहीं रहता।
मुझे ध्यान और भक्ति--दोनों में रस आने लगा है; पर जब भी आप प्रवचन में इनकी साफ-साफ विभाजन-रेखा खींचते हैं, तो मैं फिर उलझन में पड़ जाता हूं। कृपया इस संबंध में कुछ और कह कर मेरा मार्ग-निर्देश करें। (क्षमा करें, प्रश्न पूछना ही पड़ा।)

योग प्रीतम! मैं लाख उलझाऊं तुम उलझो मत। मैं लाख कहूं कि सात बजे पहुंच जाना, पहुंचना ही मत। अगर दोनों में रस आ रहा है, तो डूबो, दोनों में डूबो। दोनों में कुछ ऐसा विरोध नहीं है कि एक साथ रस न लिया जा सके। अंततः तो दोनों एक हो जाते हैं।
लेकिन, मैं जो स्पष्ट भेद करता हूं, उसका कारण है। सभी की इतनी सामर्थ्य नहीं कि दोनों को एक साथ सम्हाल लें। एक ही सम्हल जाए तो बहुत। इसलिए स्पष्ट भेद-रेखा खींचता हूं। कहीं ऐसा न हो कि दो को सम्हालने में एक भी न सम्हल पाए। सौ मैं से नब्बे प्रतिशत लोग एक को ही सम्हाल लें तो बहुत। एक ही नहीं सम्हलता, दो तो क्या सम्हलेंगे! हां, जिनसे दोनों सम्हल जाएं, वे सौभाग्यशाली हैं।
तुम्हें चिंता लेने की जरूरत नहीं है। सब आयाम उसके हैं। अंततोगत्वा मेरी तो चेष्टा यही है कि प्रत्येक से सारे आयाम सध जाएं। मगर मैं अपनी चेष्टा को इतनी असंभव नहीं बना देना चाहता हूं कि वह किसी के वश के ही भीतर न रह जाए। मुझे सबका ध्यान रखना है--अंतिम का भी।
शिक्षाशास्त्री कहते हैंः श्रेष्ठ शिक्षक वही है, जो इस ढंग से बात करे कि जो सबसे अंतिम विद्यार्थी है, उसकी भी समझ में आ जाए। शिक्षाशास्त्र का यह नियम तुम्हें समझ में आ सकेगा।... योग प्रीतम विश्वविद्यालय में शिक्षक हैं।... शिक्षक को तो ऐसे ही बोलना चाहिए कि अंतिम की समझ में आ जाए। अगर सिर्फ प्रथम की समझ में आए, तो बाकी का क्या हो? लेकिन जो अंतिम के लिए बोला जा रहा है, वह प्रथम के लिए बंधन नहीं है। वहीं प्रथम को रुक नहीं जाना है। वह उसकी सीमा-निर्धारण नहीं कर रहा है। वह तो केवल अंतिम भी सोया न रह जाए!
मैं जब बोल रहा हूं तो अंतिम का ध्यान रख कर बोल रहा हूं। एक भी न चूके। जब हम यात्रा पर निकलते हैं, महत यात्रा पर निकलते हैं, तो ख्याल रखना पड़ता है कोई पीछे न छूट जाए। उसमें बूढ़े हैं, बुजुर्ग हैं; उसमें छोटे बच्चे हैं; यात्रीदल में बीमार हैं, अस्वस्थ हैं। तो कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जो स्वस्थ हैं, बीमार नहीं, युवा हैं, उनको भी आहिस्ता-आहिस्ता चलना होता है, ताकि बीमार भी साथ चल सकें, अस्वस्थ भी साथ चल सकें, बूढ़े-वृद्ध-बच्चे भी साथ चल सकें। नहीं तो कुछ तो बहुत आगे निकल जाएंगे, कुछ बहुत पीछे रह जाएंगे, उनके बीच का सेतु टूट जाएगा।
और मैं एक संघ का निर्माण कर रहा हूं। इसमें सेतु टूटने नहीं हैं, सेतु बनाने हैं। इसमें प्रथम और अंतिम जुड़ा रहे, एकशृंखला निर्मित करनी है।
समस्त बुद्धों ने संघ निर्मित किए। एक विशेष कारण से। बुद्ध तो आज हैं, कल नहीं होंगे, लेकिन एकशृंखला पैदा की जा सकती है जो बुद्ध की थाती को, उनकी सौगात को, उनकी भेंट को सम्हाल सके; थोड़े दूर तक बुद्ध के जाने के बाद भी उनकी रोशनी को ले जा सके। जितनी कुशल वहशृंखला होगी, उतने दूर तक ज्योति को बांटा जा सकता है--बुद्ध के जाने के बाद भी!

संन्यास एक संघर्ष है। यह पियक्कड़ों की एक जमात है। इसमें सब तरह के लोग हैं। मैं सबको ध्यान में रखकर बोल रहा हूं। इसलिए कभी जब प्रथम को ध्यान में रखकर बोलूं तो अंतिम चिंतित न हो। कभी जब ऐसी बात कहूं कि जो अंतिम की समझ में न आए, तो वह परेशान न हो। मुझे उसका ध्यान है। उसके लिए भी कहूंगा। उसे भी पहुंचाना है। अगर वह न भी चल सका तो डोली और कहार का इंतजाम करेंगे, लेकिन उसे भी पहुंचाना है! कंधों पर ले चलेंगे, लेकिन उसे भी ले चलना है। कांवर बना लेंगे, लेकिन उसे पीछे नहीं छोड़ देना है! और जब कभी मैं अंतिम के लिए बोलूं, तो प्रथम को बेचैन होने की कोई जरूरत नहीं है।
योग प्रीतम, तुम्हें अगर भक्ति और ध्यान दोनों में रस आता है, दोनों में डुबकी लो, दोनों अपने हैं। भक्ति भी उसका घाट और ध्यान भी उसका घाट। एक घाट से उतरो तो भी वहीं तक पहुंच जाता है आदमी। और तुम्हें दोनों घाटों से तैरना आ जाए--कहना क्या!
रामकृष्ण ने उपलब्धि के बाद भी और-और साधना-पद्धतियों का प्रयोग किया, जिनकी अब कोई जरूरत न थी--सिर्फ देखने के लिए कि और भी घाट वहीं ले जाते हैं या नहीं? घाट तो बहुतेरे हैं, लेकिन सब वहीं ले जाते हैं। रामकृष्ण ने बहुत से प्रयोग किए। छह महीने तक मुसलमान हो गए थे। छह महीने तक मंदिर में नहीं तो थे, मस्जिद में रहने लगे थे। मूर्ति, काली की मूर्ति, जिसको एक क्षण को नहीं बिसार सकते थे, छह महीने के लिए बिल्कुल पीठ कर ली थी उसकी तरफ। क्योंकि मुसलमान के लिए तो मूर्ति कुफ्र है। छह महीने निराकार की साधना की। छह महीने बाद जब वापस लौटे तो अपने शिष्यों को कहाः घाट अलग हैं, मगर नाव कहीं से भी छोड़ो वहीं पहुंच जाती है। मस्जिद से भी वहीं पहुंच जाती है, मंदिर से भी वहीं पहुंच जाती है।
एक बहुत अनूठा प्रयोग रामकृष्ण ने किया। बंगाल में एक संप्रदाय है-- सखी संप्रदाय, जिसको मानने वाले मानते हैं कि कृष्ण एकमात्र पुरुष हैं और शेष सब स्त्रियां हैं। कृष्ण का भक्त अपने को सखी मानता है। यह बौद्धिक मान्यता नहीं है। रामकृष्ण ने इस परंपरा की भी साधना की। तो चाहे और मानने वाले ऊपर-ऊपर मानते हों--क्योंकि आसान नहीं है यह बात मान लेना। तुम पुरुष हो और मानो कि मैं स्त्री हूं। लाख मानो, रह-रह कर याद आ जाएगी कि हूं तो पुरुष। चाहे स्त्री के कपड़े ही पहन लो, तो भी चाल-ढाल बता देगी, व्यवहार बता देगा। कैसे छिपाओगे? यह भाव तो बहुत गहरा है। हम अपने को शरीर मानते हैं, तब तक इस भाव से छूटना आसान नहीं है, क्योंकि शरीर तो पुरुष है या स्त्री है। जब तक हमारा शरीर से तादात्म्य है, तब तक तुम कितना ही लाख ऊपर-ऊपर से कहो कि मैं सखी हूं, गोपी हूं, मगर कोई एकाध धक्का मार देगा कि गोप प्रकट हो जाएगा, गोपी विदा हो जाएगी! कोई पैर पर पैर रख देगा कि सब भूल-भाल जाएगा कि मैं सखी हूं! कि फेंक-फांक कर कपड़े ताल ठोंक कर खड़े हो जाओगे, मूंछ पर ताव देने लगोगे! शरीर से तादात्म्य हो तो।
लेकिन रामकृष्ण जैसा व्यक्ति, जिसका शरीर से कोई तादात्म्य नहीं, जब सखी-संप्रदाय की साधना करने लगे तो स्त्री ही हो गए। इस बात के वैज्ञानिक गवाह हैं। डाक्टरों ने उनकी चिकित्सा की, हैरान हुए डाक्टर, उनके स्तन उभर आए। भरोसे में नहीं आने वाली बात थी यह कि शरीर का तादात्म्य इतना छूट सकता है, भाव भी गहनता इतनी हो सकती है कि पुरुष के स्तन उभर आएं। इतना ही नहीं, रामकृष्ण को हर महीने मासिक-धर्म शुरू हो गया। अकल्पनीय घटा था। इतने भाव से स्वीकृति दी थी कि जब छह महीने बाद सखी-संप्रदाय की साधना पूरी हुई और रामकृष्ण वापिस लौटे, तो भी जल्दी घटना नहीं घटी बदलाहट की। कहते हैं कोई छह महीने लगे तब उनकी चाल वापस पुरुष की हो पाई; नहीं तो वह स्त्रियों जैसे चलने लगे थे। कोई छह महीने में वापस उनके स्तन विदा हुए और छह महीने लग गए उनके मासिक-धर्म को बंद होने में। फिर कहा अपने शिष्यों काः घाट बहुत हैं, मगर कहीं से नाव छोड़ो, उसी के किनारे पहुंच जाती है। उस तरफ उसका ही किनारा है।
तो भक्ति से चलो कि ध्यान से, बात एक है; यद्यपि दोनों मार्गों पर अलग-अलग चीजों का अनुभव होगा। इसलिए योग प्रीतम, जब ध्यान लगेगा तो मेरी याद भी छूट ही जाएगी। अगर मेरी याद भी बनी रहे तो ध्यान लगा ही नहीं। इसलिए मत सोचना, क्षण भर को भी मत सोचना कि कोई अकृतज्ञता हो रही है। भूलकर भी कभी

ख्याल मत लाना अपराध-भाव का, कि मेरे प्रति कोई अवज्ञा हो रही है। ध्यान का तो अर्थ ही यही है कि वहां सब छूट जाएगा। जब सब विचार छूट जाएंगे, तो मेरी याद कैसे करोगे? याद भी तो विचार है। जब निर्विचार घटित होगा तो उस निर्विचार में तो परमात्मा का विचार भी नहीं रह जाएगा। गुरु की तो बात छोड़ो, प्रभु की भी स्मृति नहीं रह जाएगी!
यही तो कारण है कि ध्यान के जो संप्रदाय हैं--जैसे जैन, जैसे बौद्ध-- उनमें ईश्वर को कोई जगह नहीं है। इसका यह कारण नहीं है कि ईश्वर नहीं है। इसका केवल इतना ही कारण है कि ध्यान के मार्ग पर ईश्वर के आलंबन की कोई आवश्यकता नहीं है--आलंबन की ही आवश्यकता नहीं है। एक रास्ते से जाओगे, पहुंचोगे पहाड़ की उसी चोटी पर, लेकिन दृश्य तो रास्ते के अलग होंगे। जैसे गौरी-शंकर पर्वत पर अलग-अलग दिशाओं से चढ़ाइयां हुई हैं, अलग-अलग दिशाओं के दृश्य अलग-अलग हैं। एक तरफ बर्फ ही बर्फ जमी है--अनंतकालीन, कभी पिघली नहीं। दूसरी तरफ पत्थर ही पत्थर हैं--ऐसे चिकने कि जिनसे चढ़ना मुश्किल; जिनसे आदमी फिसल-फिसल जाए। जो आदमी एक दिशा से चढ़ेगा, वह खबर लाएगा पत्थरों ही पत्थरों की--चिकने पत्थरों की। और जो आदमी दूसरी दिशा से चढ़ेगा, वह खबर लाएगा शाश्वत, सनातन जमी हुई बर्फ की--कुंआरी बर्फ, जिसको कभी किसी का स्पर्श नहीं हुआ। दोनों की बातें मेल न खाएंगी। दोनों की बातें बड़ी विपरीत लगेंगी। लेकिन दोनों जब शिखर की बात करेंगे, अगर शिखर तक पहुंच सके हों, तो बात एक हो जाएगी।
इसलिए सभी शास्त्रों में जो शिखर है, वहां तो बात एक हो जाती है। लेकिन शास्त्रों में सिर्फ शिखर ही नहीं हैं, और बहुत कुछ कचरा-कूड़ा भी है, प्राथमिक बातें भी हैं, रास्ते का वर्णन भी है, वह बहुत अलग-अलग है। अगर गीता के शिखर को समझो तो वह वही है जो कुरान का, वही है जो धम्मपद का, वही है जो बाइबिल का। लेकिन रास्ते? रास्ते के दृश्य? बड़े अलग-अलग हैं, बड़े भिन्न-भिन हैं।
ध्यान के मार्ग पर सब छूट जाता है। बुद्ध ने तो यहां तक कहा हैः अगर तुम्हारे मार्ग में कभी मैं आ जाऊं, तो उठा कर तलवार दो टुकड़े कर देना। योग प्रीतम, जरा भी न सोचना कि अकृतज्ञता हो रही है। सच तो यह है, ध्यान के मार्ग पर मुझे भूलकर तुम मेरी बात को पूरा कर रहे हो, मेरे उपदेश को पूरा कर रहे हो। यही तो मैं कह रहा हूं--यही कि तुम्हारे मार्ग पर अगर मैं आ जाऊं तो तलवार उठा कर दो टुकड़े कर देना। वहां तो कोई नहीं बचना चाहिए! वहां तो बस केवल शून्य चैतन्य बचे--निर्विकार, निर्विकल्प, निर्विचार, निर्बीज। उस शून्य में ही पूर्ण का अवतरण होगा; मगर विचार नहीं, अनुभव की तरह; विचार की तरह नहीं, भाव की तरह। और वही तुम्हारी मेरे प्रति कृतज्ञता होगी। जिस दिन तुम उस ध्यान की समाधि को पा लोगे, वही तुम्हारा धन्यवाद होगा। मैं याद आऊं न आऊं, यह सवाल नहीं है; तुमने ध्यान पा लिया, अब और धन्यवाद क्या देना है? धन्यवाद हो गया!
लेकिन भक्ति के मार्ग पर जब कीर्तन करोगे, नाचोगे, तो मुझे नहीं भूलोगे; मैं तुम्हारे साथ नाचूंगा। साथ-साथ होगा नाच। हाथ में हाथ होगा। क्योंकि भक्ति के मार्ग पर दुई का अंगीकार है। इसलिए तो भक्ति के मार्ग पर रस का आविर्भाव होता है। प्रेम है भक्ति। और प्रेम तो दो चाहता है। ध्यान है शून्य। शून्य में एक। भक्ति है प्रेम। प्रेम में दो। तो भक्ति जब करोगे तब तो मेरी याद बनी रहेगी। वह स्वाभाविक है।
इन दोनों में तुलना मत करना; ये दोनों घाट अलग हैं। और अगर दोनों घाटों में रस आता है तो कभी नौका-विहार इस घाट से, कभी नौका-विहार उस घाट से; फिक्र न करो, दूसरा किनारा एक ही है। दोनों के लिए मेरा आशीर्वाद है। भक्ति के मार्ग पर मुझे याद करना; ध्यान के मार्ग पर मुझे बिल्कुल भूल जाना। जरा भी भेद नहीं है दोनों बातों में। दोनों ही अर्थों में तुम मेरी दृष्टि को, मेरे दर्शन को पूरा कर रहे हो।
और अब रुकना नहीं है, अब रस आने लगा हो तो अब ठहरना नहीं है। अभी ऊर्जा है। अभी उमंग है। अभी उत्साह है। अभी युवा हो। अभी छोड़ दो यह नौका सागर में।
मैं न रुकूंगा आज

संयम चुका मत्त है यौवन मैं न चुकूंगा आज धारा में लहरें उठ आईं, लहर लहर तूफानी
तट के बंधन तोड़ पिया से मिलने चली दीवानी मन मझधार बीच मगन है साज असंवृत साज

हृदय उमड़ कर ही सार्थक है वह बंधन क्या जाने कूलों को ढंक लेते हैं लहरों के ताने-बाने
कूल न मिले भले, लहरों से मैं न लुकूंगा आज

कल अकूल हृदय की गति है सोच न हिम्मत हारूं
सांसों का अदम्य उत्तेजन कैसे उसे बिसारूं
प्रलय तने जितना तनना हो, मैं न झुकूंगा आज
मैं न रुकूंगा आज
बढ़े चलो, बढ़े चलो! भक्ति से, ध्यान से, प्रेम से, ज्ञान से--बढ़े चलो, जगे चलो!
बैठ जाता हूं, जहां छांव घनी होती है
हाय क्या चीज गरीबुल-वतनी होती है!

दिन को इक नूर बरसता है मेरी तुरबत पर
रात को चादरे-महताब तनी होती है।

लुट गया वो तेरे कूचे में रखा जिसने कदम
इस तरह की भी कहीं राहजनी होती है।

हिज्र में जघ है सागर का लगाना मुंह से मय की जो बूंद है हीरे की कनी होती है।

मयकशों को न कभी फिक्रे-कमो-बेश हुई
ऐसे लोगों की तबीअत भी गनी होती है।

हूक उठती है, अगर जब्ते-फुगां करता
सांस रुकती है तो बरछी की अनी होती है;

पी लो दो घूंट कि साकी की रहे बात हफीज
साफ इनकार में खातिर-शिकनी होती है।
योग प्रीतम, ऐसी गली में आ गए जहां लुटना ही पड़ेगा।
लुट गया वो तेरे कूचे में रखा जिसने कदम
इस तरह की भी कहीं राहजनी होती है।
भारत अकेला देश है, जिसने भगवान को एक नाम दिया--हरि। हरि का अर्थ होता है, लुटेरा। लूट ले जो, हर ले जो--हरि! दुनिया की भाषाओं में भगवान के बहुत नाम हैं। सूफियों के पास सौ नाम हैं। मगर नहीं कोई मुकाबला इस एक हरि का। सब नाम फीके पड़ जाते हैं। कहो रहमान, कहो रहीम, दो बहुत नाम; लेकिन हरि जैसा कोई नाम नहीं। क्योंकि भगवान अगर वस्तुतः कुछ है तो लुटेरा है। लूट लेता है।
लुट गया वो तेरे कूचे में रखा जिसने कदम
इस तरह की भी नहीं राहजनी होती है।
और लूट भी कोई लूट, ऐसी लूट! धन कोई छीन ले तो समझ में आता है, लेकिन प्राण ही कोई ले जाए! और एक बार ले गया सो ले गया, फिर लौटता नहीं प्राण।
लेकिन फिकर नहीं करते दीवाने।
मयकशों को न कभी फिक्रे-कमो-बेश हुई। उन्हें चिंता ही नहीं होती।
उन्हें कमो-बेश की भी चिंता नहीं होती। कितना मिला, कितना लुटा, कितना बचा--यह सब हिसाब-किताब वे करते भी नहीं
मयकशों को न कभी फिक्रे-कमो-बेश हुई

ऐसे लोगों की तबीअत भी गनी होती है।
ऐसे लोगों की तबियत भी बड़ी उदार होती है, पियक्कड़ों की तबियत बड़ी उदार होती है। अगर परमात्मा लूटना जानता है तो पियक्कड़ लुटना भी जानते हैं। जीसस ने कहाः जो तुम्हारा कोट छीने, कमीज भी उसे दे देना। और जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा गाल भी उसके सामने कर देना। और जो तुमसे कहे एक मील तक मेरा बोझ ले चलो, दो मील उसके साथ चले जाना। ऐसे लोगों की तबीअत भी गनी होती है! बड़ी उदार होती है, बड़ी छाती होती है, बड़ा दिल होता है।
लुट गए, योग प्रीतम! और दोहरी तरफ से लुट रहे हो--ध्यान में भी और भक्ति में भी। अब जरा तबियत को गनी करो। अब जरा उदार बनो। अब दिल खोलकर लुटो। लुटते-लुटते बात बन जाएगी। मिटते-मिटते बात बन जाएगी। यह बात मिटते-मिटते ही बनती है, लुटते-लुटते ही बनती है।

दर्दे-दिल में कमी न हो जाए
दोस्ती, दुश्मनी न हो जाए।

तुम मेरी दोस्ती का दम न भरो
आसमां मुद्दई न हो जाए।

बैठता है हमेशा रिंदों में
कहीं जाहिर वली न हो जाए।

ताला-ए-बद वहां भी साथ न दे मौत भी जिंदगी न हो जाए!

अपनी खू-ए-वफा से डरता हूं
आशिकी, बंदगी न हो जाए।

कहीं बेखुद तुम्हारी खुद्दारी
दुश्मने-बेखुदी न हो जाए।

बैठता है हमेशा रिंदों में
कहीं जाहिद वली न हो जाए।
पियक्कड़ों में आ गए! ... योग प्रीतम जैन-परिवार से हैं--तेरापंथी जैन-परिवार से। सोचा भी न होगा सपने में कि कभी किसी मधुशाला के हिस्से हो जाएंगे।
बैठता है हमेशा रिंदों में
कहीं जाहिद वली न हो जाए।
संयमी भी अगर पियक्कड़ों के साथ बैठता रहे तो ऋषि हो जाता है, वली हो जाता है। तुम्हारे मुनियों को जो नहीं मिल रहा है, तुम सौभाग्यशाली हो कि तुम्हें मिल रहा है। आचार्य तुलसी जिससे वंचित हैं, वह तुम पर बरस रहा है। तुमने हिम्मत ही रिंदों में बैठने की! हिम्मत का परिणाम तो होता ही है, उसका पुरस्कार तो मिलता ही है।
बैठता है हमेशा रिंदों में
कहीं जाहिद वली न हो जाए।

अनी खू-ए-वहा से डरता हूं
आशिकी, बंदगी न हो जाए।
आए और मेरे प्रेम में पड़ गए--आशिकी! और फिर तुम्हें पता ही न चला, कब आशिकी बंदगी होने लगी! प्रेम कब प्रार्थना बन जाता है, यह पता ही कहां चलता है! प्रेम चुपचाप प्रार्थना बन जाता है; न कहीं शोरगुल होता, न कहीं आवाज होती, न कहीं कोई डुंडी पिटती! जैसे चुपचाप ओस की बूंद सरक जाती है कमल के पत्तों से! जैसे चुपचाप रात बेला या जुही का फूल खिल जाता है और गंध बिखर

जाती है! जरा सी भी आहट नहीं होती चरण-चिह्नों की, ऐसे चुपचाप यह क्रांति घट जाती है। बस कोई आ जाए, बैठ जाए, थोड़ा खुला हो, थोड़ा पक्षपातों से मुक्त हो; थोड़ी चेतना हो, बिल्कुल जड़ न हो; थोड़ी बुद्धिमत्ता हो, थोड़ा बोध हो--तो देर नहीं लगती। ऋषि हो जाना कठिन नहीं है, हमारा स्वभाव है।
अब दोनों ही सधने दो। ध्यान भी चले, भक्ति भी चले। रहे तलवार दुधारी, दोनों तरफ धार रहे। ये दोनों तुम्हें मिटा डालेंगे। तुम तो खो जाओगे, लेकिन फिर जो बचता है, वही परमात्मा है।

आखिरी प्रश्नः भगवान, मैं आपका संन्यासी क्या हुआ, बड़ा उपद्रव हो गया है। पराए तो पराए, अपने भी पराए हो गए। मेरी मस्ती ही उनके क्रोध का कारण बन रही है। अब मैं क्या करूं?

चिन्मयानंद! अब और मस्त होओ! और क्या करोगे? अब करने को और बचा क्या? लौट सकते नहीं। लौटने का उपाय ही नहीं। कोई मस्त कभी लौटा नहीं। कोई रास्ता ही नहीं है लौटने का। जो लौट जाए वह मस्त था ही नहीं। मस्ती से कोई कैसे लौटेगा? अब तो मस्ती बढ़ेगी; इसमें नये-नये अंकुर निकलेंगे, नये-नये पत्ते निकलेंगे, नये-नये फूल निकलेंगे।
जलने दो जलने वालों को! शुरू-शुरू में जलेंगे। सदा से यहां ऐसा ही होता रहा है। निंदा भी करेंगे, विरोध भी करेंगे, पत्थर भी फेंकेंगे, मगर तुम अपनी मस्ती मत छोड़ो, किसी कीमत पर मत छोड़ो। मस्ती के लिए कभी भी भूल कर समझौता मत करना। सब गंवा देना, मस्ती मत गंवाना। क्योंकि मस्ती ही तो एकमात्र किरण है जिसके सहारे परमात्मा तक पहुंचा जा सकता है।
और अभी तो यह शुरुआत है, आगे देखिए होता है क्या-क्या! अभी तो बहुत कुछ होगा। अभी तो उन्होंने पत्थर नहीं मारे, अभी तो कोई सूली नहीं लगा दी। करते होंगे निंदा, हंसते होंगे पीठ पीछे कि पागल हो गया--इसे क्या हो गया, भला-चंगा आदमी, कभी सोचा भी न था कि ऐसी दुर्घटना और इसके जीवन में घटेगी! लेकिन तुम्हारी मस्ती अगर बढ़ती ही रही, बढ़ती ही रही, तो जो निंदा कर रहे हैं वे ही कल प्रशंसा करने लगेंगे। एस धम्मो सनंतनो। ऐसा ही सनातन धर्म है। पहले निंदा करते हैं, फिर प्रशंसा करते हैं।
और मस्ती बढ़ती ही रहे। ख्याल करना, कुछ लोग तो निंदा में ही डर जाते हैं और सिकुड़ जाते हैं और घबड़ा जाते हैं। तो बस निंदा ही बनी रह जाती है। जो निंदा की चिंता नहीं करते, जो बेपरवाही से नाचते और गाते बढ़ते ही चले जाते हैं, जितनी गालियां पड़ती हैं उतनी ही वे मृदंग बजाते हैं, उतनी ही वीणा छेड़ देते हैं--तो प्रशंसा सुनिश्चित है। वे ही लोग जो निंदा करते थे, वे ही प्रशंसा करने लगते हैं। लोग बड़े अजीब हैं! वे ही लोग कहने लगते हैं कि हमने तो पहले ही कहा था! ... वे ही लोग! ... कि यह आदमी पहुंच गया!
लेकिन प्रशंसा पर भी रुक मत जाना। निंदा भी रोक सकती है, निंदा से भी ज्यादा प्रशंसा रोक सकती है; क्योंकि प्रशंसा अहंकार को भर देती है। अगर तुम प्रशंसा पर भी न रुको तो वे ही लोग तुम्हारे रंग में भी रंगने लगेंगे। न निंदा पर रुकना, न प्रशंसा पर, तो तुम उनके जीवन में क्रांति का एक उदघोष बन जाओगे।
हंगामा है क्यों बरपा थोड़ी-सी जो पी ली है
डाका तो नहीं डाला, चोरी तो नहीं की है।

ना-तजरबा-कारी से वाइज की ये बातें हैं
इस रंग को क्या जाने, पूछो तो कभी पी है?

उस मय से नहीं मतलब, दिल जिससे है बेगाना
मकसूद है उस मय से दिल ही मैं जो खिंचती है।

वां दिल में कि सदमे दो, यां जी में कि सब सह लो उनका भी अजब दिल है, मेरा भी अजब जी है।

हर जर्रा चमकता है, अनवारे-इलाही से
हर से कहती है, हम हैं तो खुदा भी है।

सूरज में लगे धब्बा, फितरत के हैं
बुत हमको कहें काफिर अल्लाह की मर्जी है।
घबड़ाओ मत! हंगामा तो मचेगा--थोड़े से पीने से मच जाता है। और अभी तो बहुत पीना है!
हंगामा है क्यों बरपा थोड़ी-सी जो पी ली है
डाका तो नहीं डाला, चोरी तो नहीं की है।
अपने दरवाजे पर तख्ती लगा कर टांग देना--
हंगामा है क्यों बरपा थोड़ी-सी जो पी ली है
डाका तो नहीं डाला, चोरी तो नहीं की है।
और जो कर रहे हैं निंदा, उनकी निंदा का मूल्य क्या?
ना-तजरबा-कारी से वाइज की ये बातें हैं
ये बड़े बुद्धिमान जो बने बैठे हैं--पंडित-पुरोहित, त्यागी-तपस्वी-- इनको कोई तजुर्बा है, इनको कोई अनुभव है? ना-तजरबा-कारी से वाइज की ये बातें हैं! माफ करो इनको, क्षमा करो इनको, ध्यान भी न दो इन पर। बेचारे नातजुर्बाकार हैं, इन्हें कोई अनुभव नहीं।
ना-तजरबा-कारी से वाइज की ये बातें हैं
इस रंग को क्या जाने, पूछो तो कभी पी है?
कभी नाचे हैं मस्त होकर? कभी प्रार्थना में डूबे हैं? कभी किसी सदगुरु के सत्संग में डूबे हैं, डुबकी मारी है? इनकी बातों का क्या मूल्य? और फिर यहां कौन अपना है, चिन्मयानंद, और कौन पराया है! यहां न कोई अपना है, न कोई पराया है। सब मन को समझा लेने की बातें हैं। सब खेल है। सपना। बस सपना है सब। तुम तो अपनी मस्ती की आंख को अब आकाश की तरफ उठाओ, चांद-तारों की तरफ उठाओ, फिकर छोड़ो इनकी। भौंकते हैं, भौंकने दो। तुम अपनी चाल थोड़े ही खराब करोगे! हाथी कहीं पीछे दौड़ता है कुत्तों के, कि चले एक-एक कुत्ते का पीछा करने लगे! ऐसे में नाहक हाथी की भद्द हो जाए। कुत्ते भी हंसें कि हाथी बहुत देखे, मगर ऐसा हाथी नहीं देखा।
हर जर्रा चमकता है, अनवारे-इलाही से
जरा मस्ती की आंख अब ऊपर उठाओ तो दिखाई पड़ेगा कि हर कण, जीवन का कण-कण...
हर जर्रा चमकता है, अनवारे-इलाही से! ... ईश्वरीय ज्योति से जगमग हो रहा है। हर जर्रा चमकता है, अनवारे-इलाही से
हर सांस ये कहती है, हम हैं तो खुदा भी है।
डुबकी मारो भीतर! डुबकी मारो चांद-तारों में--बाहर--और डुबकी मारो भीतर--भीतर के आकाश में। और तुम्हारे भीतर ही यह ध्वनि उठनी शुरू होगीः हर सांस ये कहती है, हम हैं तो खुदा भी है। अब क्या फिकर लोगों की? अब अगर फिकर है किसी की तो खुदा की करनी है। लोगों को पता क्या है, बेचारों को पता क्या है? खुद भटके हैं और अगर कोई कभी ठीक रास्ते पर लग जाए, तो सोचते हैं भटक गया।
लेकिन भीड़ उनकी है। इसलिए अगर वोट से तय करना हो तो वे ही जीते जाएंगे। कितने लोग गौतम बुद्ध को वोट देते? और कितने लोग जीसस को वोट देते? सौ, दो सौ भी देने देने वाले नहीं मिलते वोट जीसस को। लाखों मिल जाते खिलाफ वोट देने वाले। क्यों? भीड़ अंधों की है। आंख वाले यहां कितने हैं? और आंख वाले को आंख वाले ही पहचान सकते हैं।
सूरज में लगे धब्बा, फितरत के करिश्मे हैं
हंसने दो। लोग तो सूरज पर भी धब्बे डालते हैं। लोगों की तो आदत ही धब्बे डालने की है।
सूरज में लगे धब्बा, फितरत के करिश्मे हैं
समझना कि बड़ा चमत्कार, बड़ा करिश्मा।
सूरज में लगे धब्बा, फितरत के करिशमे हैं
बुत हमको कहें काफिर अल्लाह की मर्जी है।

खुद जो काफिर हैं, खुद जो कुफ्र से भरे हैं, जिन्हें धर्म का कुछ भी पता नहीं है, वे, जो जानते हैं, जो जानने लगे हैं या जानने के मार्ग पर चल पड़े हैं, जिन्होंने थोड़ी-थोड़ी पीनी शुरू कर दी है, वे उनकी निंदा कर रहे हैं। चमत्कार है!
चिंता न लेना। हंसना और आगे बढ़ जाना। धन्यवाद देना और आगे बढ़ जाना। संन्यासी को इतनी तैयारी तो चाहिए। संन्यास एक अग्नि-परीक्षा है।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
तीसरा प्रवचन

झुकना=समर्पण+अंजुली बनाना, भजन=परम तृप्ति

भजन आतुरी कीजिए, और बात में देर।।
और बात में देर, जगत में जीवन थोरा।
मानुष-तन धन जात, गोड़ धरि करौं निहोरा।।
कांचे महल के बीच पवन इक पंछी रहता।
दस दरवाजा खुला उड़न को नित उठि चहता।।
भजि लीजौ भगवान, एहि में भल है अपना।
आवागौन छुटि जाए, जनम की मिटै कलपना।।
पलटू अटक न कीजिए, चौरासी घर फेर।
भजन आतुरी कीजिए, और बात में देर।।

प्रेमबान जाके लगा, सो जानैगा पीर।।
सो जानेगा पीर, काह मूरख से कहिए।
तिलभर लगै न ज्ञान, ताहि से चुप हवै रहिए।।
लाख कहै समुझाय, बचन मूरख नहिं मानै।
तासे कहा बसाय, ठान जो अपनी ठानै।।
जेहिके जगत पियार, ताहि से भक्ति न आवै।
सतसंगति से विमुख, और के सन्मुख धावै।।
जिनकर हिया कठारे है, पलटू धसैं न तीर।
प्रेमबान जाके लगा, सो जानेगा पीर।।

सबद छुड़ावै राज को, सबदै करै फकीर।।
सबदै करै फकीर, सबद फिर राम मिलावै।
जिनके लागा सबद, तिन्हैं कछु और न भावै।।
मरैं सबद के घाव, उन्हें को सकै जियाई।
होइगा उनका काम, परी रौवै दुनियाई।।
घायल भा वा फिरै, सबद कै चोट है भारी।
जियतै मिरतक होय, झुकै फिर उठे संभारी।।
पलटू जिनके सबद का लगा कलेजे तीर।
सबद छुड़ावै राज को, सबदै करै फकीर।।

ये दिन बहार के अब के भी रास आ न सके,
कि गुंचे खिल तो सके, खिल के मुस्करा न सके।
मेरी तबाही-ए-दिल पर तो रहम खा न सके,
मगर कभी वो नजर से नजर मिला न सके।
वो सब्जा नंगे-चमन है, जो लहलहा न सके,
वो गुल है जख्मे-बहारां जो मुस्करा न सके।
ये आदमी है वो परवाना शम्ए-दानिश का,
जो रोशनी में रहे, रोशनी को पा न सके।
उन्हें सआदते-मंजिल-रसी नसीब हो क्या,
वो पांव, राहे-तलब में जो डगमगा न सके।
न जाने आह कि उन आंसुओं पे क्या गुजरी,
जो दिल से आंख तक आए मिजह तक आ न सके।
करेंगे मर के बका-ए-दवाम क्या हासिल,
जो जिंदा रह के मकामे-हयात पा न सके।

जे खुलूसे-मुहब्बत कि हादिसाते-जहां मुझे तो क्या, मेरे नक्शे-कदम मिटा न सके।
मेरी नजर से गुरेजां बहुत रहे, लेकिन,
मेरे खुलूसे-मुहब्बत से बचके जा न सके।

ये मेघो-माह मेरे हम-सफर रहे बरसों, फिर उसके बाद मेरी गर्द को भी पा न सके।
मेरी नजर ने शबे-गम उन्हें भी देख लिया,
वो बेशुमार सितारे कि जगमगा न सके।
घटे अगर तो बस इक मुश्ते-खाक है इन्सां
बढ़े तो वुसअते-कोनैन में समा न सके।
नया जमाना बनाने चले थे दीवाने
नई जमीन, नया असामां बना न सके।

आदमी एक अभीप्सा है। एक आकांक्षा--कुछ होने की, असीम को छूने की। आदमी
एक बीज है और जब तक बीज फूल तक न पहुंच जाए, तब तक चैन नहीं। तब तक बेचैनी रहेगी ही। धन हो कितना, पद हो कितनी, प्रतिष्ठा हो कितनी, कुछ काम न आएगा। बीज का फूल तक पहुंचना, इसके अतिरिक्त और कोई संतोष का उपाय नहीं है।
एक तो संतोष है मुर्दा, कि आदमी अकर्मण्यता में कर के बैठ जाता है, कि
जो है सो ठीक है। और एक संतोष है जीवंत, जो तब उपलब्ध होता है जब बीज फूल बनते हैं। हवाओं में मुस्कुराते हैं, सुवास बिखेरते हैं, चांद-तारों से गुफ्तगू करते हैं।
ये दिन बहारे के अब के भीतर रास आ न सके,
कि गुंचद्धे खिल तो सके, खिल के मुस्करा न सके।
क्या यह जिंदगी भी ऐसे ही बिता देनी है? बीज बीज ही रह जाएंगे? ये दिन
भी रास न आएंगे? कि कलियां कलियां ही रह जाएंगी, फूल न बनेंगी? संभावना संभावना ही रहेगी या इसे सत्य में बदलना है, जो इसे सत्य में बदलने में लग जाता है, वही व्यक्ति धार्मिक है। न मंदिरों में जाने से कोई धार्मिक होता, न मस्जिदों में जाने से कोई धार्मिक होता।
ये आदमी है वो परवाना शम्ए-दानिश का,
जो रोशनी में रहे, रोशनी को पा न सके।
और जिसे हम तलाश रहे हैं, वह हमारे चारों तरफ मौजूद। परमात्मा हमें खिलाने को तत्पर, पर हम हैं कि सिकुड़े बैठे हैं। रोशनी बरस रही है और हम हैं कि आंखें बंद किए बैठे हैं। उसका संगीत बज रहा है, मगर हम बहरे बने बैठे हैं। परमात्मा से निकट और कुछ भी नहीं, उससे ज्यादा सत्यतर और कुछ भी नहीं। वही है हवाओं में, वही है सरिता की धार में, वही है सागर की लहरों में--और फिर भी इतना दूर? वही हमारी धड़कनों में, वही हमारी श्वासों में--और फिर भी इतने दूर? कहीं चूक हम से हुई जा रही है। हम शायद सूरज की तरफ पीठ किए हुए हैं।
उन्हें सआदते-मंजिल-रसी नसीब हो क्या,
वो पांव, राहे-तलब में डगमगा न सके।
हमारी होशियारी ही हमारी मौत हुई जा रही है। हमारी समझदारी ही हमें बाजारों में भटका रही है। थोड़ा निर्दोष चित्त चाहिए उसे पाने को। थोड़ी मदमस्ती चाहिए। थोड़े पैर डगमगाएं। थोड़े आंखों में आंसू हों। थोड़ा हृदय गीला हो।
उन्हें सआदते-मंजिल-रसी नसीब हो क्या...
उन्हीं नहीं मिलेगी जीवन की मंजिल, असंभव है जीवन की मंजिल का मिलना--
वो पांव, राहे-तलब में जो डगमगा न सके
जो उसे खोजते समय दीवानों की तरह न चले, प्रेमियों की तरह न चले, मस्तों की तरह न चले। न जिन्होंने कभी गीत गाया, न कभी जो मुस्कुराए, न कभी जो रोए, न कभी जो नाचे। जो कभी जीवन के आह्लाद से न भरे। और न कभी जिन्होंने जीवन के रहस्य को अनुभव किया। जोड़ते रहे धन, हिसाब लगाते रहे खाते-बहियों में, आंखें गड़ाए बैठे रहे बाजारों में, आंखें न उठाईं आकाश के चांद-तारों की तरफ।
इस जगत में दो जगत हैं। एक जगत उसका बनाया हुआ और एक जगत आदमी का अपना बनाया हुआ। जब पलटू जैसे संत कहते हैंः सपना यह संसार, तो तुम यह मत समझना कि वे परमात्मा के संसार को सना कह रहे हैं। परमात्मा का संसार तो कैसे सपना हो सकता है! स्रष्टा सत्य है तो उसकी सृष्टि कैसे स्वप्न हो सकती है?

और जिसकी सृष्टि स्वप्न हो, वह स्रष्टा कैसे सत्य होगा? नहीं, एक और संसार है जो हमने बना लिया है। फूल, चांद-तारे तो सच हैं, मगर नोट हमारी ईजाद हैं। झरने, पहाड़, सागर तो सत्य हैं, लेकिन पद और प्रतिष्ठाएं, ये हमारी खोज हैं। एक संसार है जो आदमी ने बना लिया है, अपने चारों तरफ, जैसे मकड़ी जाला बुनती है, ऐसे आदमी एक संसार बुनता है--वासनाओं का, आकांक्षाओं का, ऐषणाओं का, इच्छाओं का, भविष्य काः आज तो नहीं है, कल कुछ मिलेगा; लोभ का विस्तार है वह संसार; काम का विस्तार है वह संसार। एक तो संसार है चहचहाते पक्षियों का, खिलते फूलों का, आकाश तारों से भरा; एक तो संसार है जो परमात्मा के हस्ताक्षर लिए हुए है और एक संसार है जो आदमी ने बना लिया है। जब भी ज्ञानियों ने कहा हैः सपना यह संसार, तो तुम्हारे संसार के संबंध में कहा है, जो तुमने बना लिया है।
मगर आदमी बड़ा चालबाज है। वह अपने बनाए संसार को तो झूठा नहीं मानता,
वह परमात्मा के बनाए संसार को झूठा मान कर उसका त्याग करने लगता है। धन छोड़ देता है, पद छोड़ देता है, प्रतिष्ठा छोड़ देता है, दुकान छोड़ देता है, बाजार छोड़ देता है, घर-द्वार छोड़ देता है, भाग जाता है जंगल में। मगर यह त्याग भी तुम्हारा संसार है। यह संतत्व भी तुम्हारी ही ईजाद है। और वहां बैठ कर भी अहंकार ही निर्मित होता है। वही धन से निर्मित होता था, वही त्याग से निर्मित होता है। वही भोग से निर्मित होता था, वही तपश्चर्या से निर्मित होता है। तुमने ढंग तो बदल लिए मगर मूल आधार वही के वही हैं। तुमने पत्ते तो छांट दिए मगर जड़ें वही की वहीं हैं, फिर पत्ते आ जाएंगे, फिर वही पत्ते आ जाएंगे--नये रूप, नये रंग में, मगर रसधार वही होगी।
जब तक तुम जाग कर यह न समझो कि आदमी का बनाया हुआ सब झूठ है, जब तक यह तुम्हारा अनुभव न हो जाए--और यह मत सोचना कि मर कर पा लोगे। जीवन व्यर्थ जा रहा है तो मृत्यु भी व्यर्थ जाएगी, क्योंकि मृत्यु तो जीवन की ही पराकाष्ठा है।
न जाने आह कि उन आंसुओं पे क्या गुजरी,
जो दिल से आंख तक आए मिजह तक आ न सके।
ऐसे भी आंसू हैं जो हृदय में तो उठे, आंखों तक भी आ गए, लेकिन पलकों तक
न पहुंच पाए। ऐसे भी लोग हैं जो मंजिल के बहुत करीब थे, एक कदम और, ठीक दिशा में बस एक कदम और और मंदिर के द्वार खुल जाते, लेकिन लोग पाते-पाते चूक जाते हैं। क्योंकि चुकाने का बहुत आयोजन है। भटकाने को बहुत पंडित हैं, बहुत पुरोहित हैं। पहुंचाने को तो शायद कभी कोई बुद्धपुरुष होता। पहुंचाने को तो कभी कोई मुश्किल से सदगुरु होता है। दीया जलाने वाले तो बहुत मुश्किल से मिलते हैं, जलते दीये को बुझा देने वाली बहुत भीड़ है। करेंगे मर के बका-ए-दवाम क्या हासिल,
जो जिंदा रह के मकामे-हयात पा न सके।
क्या पा सकोगे तुम मर कर? क्या मंजिल मिलेगी मर कर? क्या परमात्मा मिलेगा? --जब जिंदगी गंवा दी और जिंदगी में ही जिंदगी की मंजिल न पा सके। जीवन है क्षण। जोड़ो अपने को प्रभु से! उस जोड़ने का नाम ही भजन है। सेतु बनाओ अपने और उसके बीच प्रेम का, भीगे हुए हृदय का, आंसुओं का; फूल खिलाओ अपने और उसके बीच, दीये जलाओ अपने और उसके बीच--सेतु बनाओ। वह तो आने को तत्पर है, तुम जरा अपने हृदय को खोलो!
बस एक चीज है जिससे परमात्मा बच कर नहीं जा सकता--
जहे खलूसे-मुहब्बत कि हादिसाते-जहां
मुझे तो क्या, मेरे नक्शे-कदम मिटा न सके।
मेरी नजर से गुरेजां बहुत रहे, लेकिन
मेरे खुलूसे-मुहब्बत से बचके जा न सके।
आंख से तो बहुत बचने की कोशिश की, बचते रहे, लेकिन मैंने जो प्रेम का जाल फेंका, उससे बच कर न जा सके। प्रेम के जाल के फेंकने का नाम भजन है। भजन कला है। तोतों की तरह दोहराने से नहीं होता, प्राणों को डालने से होता है। और तब आदमी छोटा नहीं है। भजन से जुड़ जाए तो आदमी उतना ही बड़ा है जितना भगवान--क्योंकि आदमी भगवान है।
घटे अगर तो बस इक मुश्ते-खाक है इन्सां

बढ़े तो वुसअते-कोनैन में समा न सके।
घटे तो बस एक मुट्ठी भर राख। और यही होती है हालत अधिक लोगों की--बस एक मुट्ठी भर राख! मर कर और क्या रहोगे? एक मुट्ठी भर राख! प्रियजन, परिवार के लोग उठा लाएंगे। हालांकि उस राख को भी हमने अच्छे प्यारे नाम दिए हैं, हम कहते हैंः फूल। हम छिपाते अच्छे शब्दों में सत्यों को। मुर्दे की राख बीनने जाते हैं, कहते हैंः फूल बीनने जा रहे हैं। मुर्दे की राख को गंगा में सिराने जाते हैं, कहते हैंः फूल सिराने जा रहे हैं। जो जिंदगी में फूल न हो सका, वह अब चिता पर फूल हो गया है! जिसकी जिंदगी दुर्गंध ही दुर्गंध थी, अचानक मरकर सुगंध हो गया है!
घटे अगर तो बस इक मुश्ते-खाक है इन्सां
बढ़े तो वुसअते-कोनैन में समा न सके।
घट जाए तो एक मुट्ठी भर राख, मुट्ठी भर धूल, और बढ़ जाए--तो यह सारा आकाश
भी छोटा है, यह सारा अस्तित्व भी छोटा है। बढ़ जाए तो इस अस्तित्व को अपने में समा ले। फिर उसके भीतर आकाश है; फिर उसके ही भीतर चांद-तारे हैं; फिर उसके ही भीतर परमात्मा है। मालिक उसके भीतर है। फिर अब और इससे बड़े होने की क्या संभावना है! आदमी अगर जागे न, तो मुट्ठी भर राख रह जाता है, और जागे तो विराट आकाश हो जाता है। बिना जागे तृप्ति नहीं है। जागने की प्रक्रिया का नाम ही भक्ति के शास्त्र में भजन है।
भजन आतुरी कीजिए, और बात में देर।।
और बात में देर, जगत में जीवन थोरा।
पलटू कहते हैंः जल्दी करो, आतुरी करो, तीव्रता करो, त्वरा करो! भजन में देर न हो, कौन जाने मौत कब आ जाए! भजन पूरा हो जाए, फिर आए मौत! क्योंकि भजन पूरा हो जाए तो मौत आकर भी नहीं आ पाती। भजन पूरा हो जाए तो मौत तुम्हें छू भी न सकेगी। जैसे कमल-पत्रों को जल नहीं छू पाता, ऐसे ही मौत तुम्हें भी न छू सकेगी। यह तो भजन की कमी है कि मौत जीत जाती है। अन्यथा तुम अमृत के पुत्र होः अमृतस्य पुत्रः। मौत तुम्हें छुए, असंभव! मौत तुम्हारे पास फटके, असंभव! दीया जला दो, फिर अंधेरा पास आ जाए, असंभव! हां, दीया ही बुझा हो, तो फिर तो अंधेरा होगा।
भजन आतुरी कीजिए और बात में देर।।
लेकिन लोग बड़े उलटे हैं। और बात में जल्दी करते हैं। क्रोध करना हो तो देर नहीं करते; लोभ करना हो तो देर नहीं करते; धन कमाना हो तो देर नहीं करते; दौड़ते हैं, लगे ही रहते हैं आपाधापी में--दिन-रात, चौबीस घंटे, सतत-- भजन करना हो तो कहते हैंः कल; अभी और काम हैं। भजन टालते हैं। ऐसे टालते- टालते तो मौत आ जाएगी। ऐसे भजन को कल पर टालते रहे, तो कल कभी आता है? कल कभी आया है कि आएगा?
पलटू कहते हैंः और बात में देर करो तो चलेगा। क्रोध न भी किया तो क्या बिगड़ जाने वाला है! लोभ न भी किया तो क्या खो जाएगा! माया-मोह का विस्तार न भी किया तो कुछ गंवाया नहीं! ऐसे भी मौत आएगी तो सब छीन लेगी। जिसे मौत ही छीन लेगी, उसे तुमने इकट्ठा किया या न किया, बराबर है। एक ही चीज को मौत नहीं छीन पाती--भक्त उसे भजन कहता, ज्ञानी उसे ध्यान कहता--बस उसको मौत नहीं छीन पाती। जिसे मौत न छीन पाए, वही संपदा है। और जिसे मौत न छीन पाए, ऐसी संपदा जिसके पास है, वही जीआ। उसका बीज फूलों तक पहुंचा। उसकी संभावना सत्य बनी। वह एक सपने की तरह नहीं रहा, वह एक सत्य की तरह जीआ और सत्य की तरह रहा और सत्य की तरह मृत्यु में उसने प्रवेश किया--हंसते और नाचते-- क्योंकि मौत उसका कुछ भी बिगाड़ नहीं पाती। उसके लिए मौत है ही नहीं। उसके लिए मौत एक झूठ है।
मेरी जिंदगी है जालिम तेरे गम से आशकारा
तेरा गम है दर-हकीकत मुझे जिंदगी से प्यारा।

वो अगर बुरा न मानें तो जहाने-रंगो-बू में
मैं सुकूने-दिल की खातिर कोई ढूंढ लूं सहारा।

मुझे तुझसे खास निस्बत, मैं रहीने-मौजे-तूफां

जिन्हें जिंदगी थी प्यारी, उन्हें मिल गया किनारा।

मुझे आ गया यर्की-सा कि यही है मेरी मंजिल
सरे-राह जब किसी ने मुझे दफअतन पुकारा।

मैं बताऊं फर्क नासेह, जो है मुझ में और तुझमें
मेरी जिंदगी तलातुम, तेरी जिंदगी किनारा।

मुझे गुफ्तगू से बढ़ कर गमे-इज्ने-गुफ्तगू है
वही बात पूछते हैं, जो न कह सकूं दुबारा।

कोई ऐ शकील देखे, ये जुनूं नहीं तो क्या है
कि उसी के हो गए हम, जो न हो सका हमारा।
परमात्मा का होने का अर्थ कि उसी के हो गए हम जो न हो सका हमारा। परमात्मा तुम्हारा कभी भी नहीं हो सकता, क्योंकि परमात्मा को पाने के पहले तो तुम को मिट जाना होता है। मैं मिटे तो परमात्मा मिलता है। इसलिए परमात्मा मेरा तो कभी हो ही नहीं सकता। मैं के अभाव में ही तो उसका अनुभव होता है। मैं को मिटाने की कला भजन है।
कोई ऐ शकील देखे, ये जुनूं नहीं ता क्या है
कि उसी के हो गए हम, जो न हो सका हमारा।
मैं बताऊं फर्क नासेह, जो है मुझमें और तुझमें...
हे धर्मोपदेशक, मुझमें और तुझमें क्या फर्क है...
मैं बताऊं फर्क नासेह, जो है मुझमें और तुझमें
मेरी जिंदगी तलातुम, तेरी जिंदगी किनारा।
तू किनारे पर रह रहा है, हम तूफानों में जी रहे हैं। छोड़ो नाव, किनारे छोड़ो, सुरक्षाएं छोड़ो, किनारे के मोह छोड़ो, अज्ञात की यात्रा पर निकलो। भजन तो नाव है, अज्ञात की यात्रा पर। भजन तो चुनौती है, तूफानों को स्वीकार करने की। और जो जिंदगी में तूफानों को स्वीकार करता है, निखार आता है, बहुत निखार आता है उसके प्राणों में। उसकी आत्मा उज्ज्वल होती है। उसमें एक चमक आती, एक दीप्ति आती, एक ज्योति जगती।
ज्योति मुफ्त नहीं जगती। तूफानों से टक्कर लेनी ही होती है। व्यक्तित्व की आग ऐसे ही नहीं उभरती। भीड़ के अंग ही बने रहोगे तो राख में ही दबे रहोगे। व्यक्ति बनो! भीड़ों से मुक्त होओ! न हिंदू होने की जरूरत है, न मुसलमान होने की जरूरत है। न ब्राह्मण होने की जरूरत है, न शूद्र होने की जरूरत है। आदमी होना काफी है। और अगर कुछ होना है तो अब परमात्मा होओ! अब उससे छोटा क्या होना! आदमी से भी नीचे गिरना--कि मुसलमान होना, कि हिंदू होना, कि जैन होना! कुछ ऊपर उठो! नहीं तो मुट्ठी भर खाक रह जाओगे।
और अगर प्रेम करो तूफानों से, अगर प्रेम करो असुरक्षा से, अगर प्रेम करो अज्ञात से, तो तुम्हारे जीवन में संन्यास घटित हो गया। संन्यास है असुरक्षा में जीना।
परमात्मा सुरक्षा है; तो हम अब और सुरक्षा क्या करें! परमात्मा धन है;
तो अब हम और धन के पीछे क्या दौड़ें? परमात्मा परम पद है; तो अब और सब पद छोटे हैं और ओछे हैं।
मुझे तुझसे खास निस्बत, मैं रहीने-मौजे-तूफां
जिन्हें जिंदगी थी प्यारी, उन्हें मिल गया किनारा।
तूफानों में भी किनारा मिल जाता है, बस एक प्रेम चाहिए, प्रेम की एक आंख चाहिए, प्रेम की प्रज्वलित अग्नि चाहिए।
हम चूकते हैं, क्योंकि न तो ध्यान है और न प्रेम है। हम चूकते हैं, क्योंकि न तो हम अपने भीतर उतरते और न इस विराट में प्रवेश करते। हम मध्य में ही अटके रह जाते हैं। हम त्रिशंकु हैं। एक तरफ ध्यान पुकारता है। लेकिन प्रेम है चुनौती, प्रेम है समर्पण। प्रेम है अहंकार-विसर्जन। न हम से अहंकार-विसर्जन हो पाता, और न हम से एकांत में प्रवेश हो पाता, हम अटके

रह जाते हैं बीच में। हम दो पाटों के बीच में पिस जाते हैं। बहुत बार
जिंदगी ऐसे ही खराब हुई।
भजन आतुरी कीजिए, और बात में देर।।
और बात में देर, जगत में जीवन थोरा।
मानुष-तन धन जात, गोड़ धरि करौं निहोरा।।
यह तो चली जिंदगी, यह जा ही रही जिंदगी, रोज जा रही, हाथ से छिटकी जा रही--मानुष-तन धन जात... जागो! ... गोड़ धरि करौं निहोरा।। टेक दो घुटने जमीन पर, कर लो उसका निहोरा। पुकारा लो उसे; गिरा लो आंसू उसकी प्रीति में; समर्पित हो जाओ। गोड़ धरि करौं निहोरा... घुटने टेको, अकड़े-अकड़े काम न चलेगा। लोग नदी के किनारे भी पहुंच कर प्यासे खड़े हैं, क्योंकि झुक नहीं सकते, हाथ की अंजुली नहीं बना सकते। शायद अपेक्षा कर रहे हैं कि नदी ही छलांग लगाए और उनके कंठ तक पहुंच जाए। नदी तैयार है, मगर झुकना होगा तुम्हें। हाथ की अंजुली बनानी होगी। झुकना--समर्पण; हाथ की अंजुली बनाई-- भजन। फिर तृप्ति तुम्हारी है। परम तृप्ति तुम्हारी है। फिर कौन तुम्हें वंचित रख सकता है?
मेरी जिंदगी पे न मुस्करा, मुझे जिंदगी का अलम नहीं
जिसे तेरे गम से हो वास्ता, वो खिजां बहार से कम नहीं।
मेरा कुफ्र हासिले-जोहद है, मेरा जोहद हासिले-कुफ्र है
मेरी बंदगी है वो बंदगी, जो रहीने-दैरो-हरम नहीं।
वही कारवां, वही रास्ते, वही जिंदगी, वही मरहले
मगर अपने-अपने मकाम पर कभी तुम नहीं, कभी हम नहीं।
न फना मेरी न बका मेरी, मुझे ऐ शकील न ढूंढिए
मैं किसी का हुस्ने-ख्याल हूं, मेरा कुछ वुजूदो-अदम नहीं।
न तो हमारा कोई अस्तित्व है, न हमारा कोई अनस्तित्व है।
न फना मेरी न बका मेरी...
डरते क्या हो, अपना है क्या; सब उसका है। दो तो उसका है, न दो तो उसका है। न फना मेरी न बका मेरी, न जीवन अपना है, न मृत्यु अपनी है; न होना अपना है, न न-होना अपना है; फिर क्या कंजूसी? उसका उसको देते--और कंजूसी! त्वदीयं वस्तु गोविंद तुभ्यमेव समर्पए। तेरी चीज और तुझे दे दें, इसमें भी कंजूसी आ रही है?
न फना मेरी न बका मेरी, मुझे ए शकील न ढूंढिए
मैं किसी का हुस्ने-ख्याल हूं, मेरा कुछ वुजूदो-अदम नहीं।
हम हैं ही क्या, सिवाय उसकी तरंगों के! लेकिन लहरें भी अकड़ी बैठी हैं
और सागर पर समर्पित नहीं हैं। हम सब ने अपने अहंकार को खूब मजबूत कर लिया है। इस अहंकार के अतिरिक्त और हमें कोई रोक नहीं रहा है परमात्मा को पाने से। बहाने मत खोजना कि अतीत जन्मों के पाप रोक रहे हैं। तुमसे मैं कहता हूंः नहीं; अतीत जन्मों के पाप क्या खाक रोकेंगे! अतीत जन्मों के पापों का फल तो तुम पा चुके अतीत में। और यह भी मत सोचना कि भाग्य में तुम्हारे लिखा नहीं है। परमात्मा कोरे कागज की तरह आदमी का भाग्य देता है; लिखते हो जो कुछ, तुम लिखते हो। कोई विधाता नहीं है तुम्हारे अतिरिक्त। तुम्हारी किस्मत तुम्हारा अपना निर्माण है। तुम्हारी किस्मत में तुम कुछ लिखा कर नहीं आते हो; कुछ लिखा नहीं है कि यही होगा; तुम चाहो, तो सब संभव है! हां, मगर बहाने खोजने हों, तो किस्मत प्यारा बहाना है। कि क्या करें, अपनी किस्मत में नहीं! क्या करें, अतीत जन्मों के पाप बाधा डाल रहे हैं! ये सब चालबाजियां हैं, होशियारियां हैं। और होशियारी जिसने की, भजन से बचा। भजन के लिए भोलापन चाहिए। भजन में भोलापन हो तो फिर--मेरा कुफ्र हासिले-जोहद है--फिर तो तुम्हारी नास्तिकता भी आस्तिकता हो जाए। और फिर तुम जिसको अब तक आस्तिकता समझते थे, वह नास्तिकता मालूम पड़ेगी।
मेरा कुफ्र हासिले-जोहद है, मेरा जोहद हासिले-कुफ्र है
मेरी बंदगी है वो बंदगी, जो रहीने-दैरो-हरम नहीं।
फिर तुम पहचानोगे प्रार्थना को, जिसका कोई नाता न मंदिर से है, न मस्जिद से है। प्रार्थना तो तुम्हारा अंतर्भाव है। तुम्हारे भीतर उठ आए नृत्य का नाम है। तुम्हारे भीतर जग गए उत्सव का शीर्षक है।

मानुष-तन धन जात, गोड़ धरि करौं निहोरा।।
टेक दो पैर पृथ्वी पर। झुक जाओ।
कांचे महल के बीच पवन इक पंछी रहता।
तुम्हारी हालत ऐसी है--कच्चा है महल, कांच-कच्चा, उसके भीतर तुम रह रहे हो। कब कांच का यह महल टूट जाएगा--किस घड़ी, किस पल, कुछ पता नहीं। इसका कुछ भरोसा मत करना।
कांचे महल के बीच पवन इक पंछी रहता।
और है ही क्या तुम्हारी जिंदगी? एक पवन-पंछी। सांस आई, सांस गई--एक पवन-पंछी।
दस दरवाजा खुला उड़न को नित उठि चहता।।
और इंद्रियों के दरवाजे दस खुले हैं, जिनमें से कभी भी पंछी उड़ जाए।
दरवाजे भी पिंजड़े के बंद नहीं हैं, खुले हैं--और एक भी दरवाजा नहीं, दस दरवाजे खुले हैं। कब श्वास बाहर गई और न लौटेगी, कुछ कहा नहीं जा सकता। जब तक श्वास है, समर्पित हो जाओ।
भजन आतुरी कीजिए, और बात में देर।।
और बात में देर, जगत में जीवन थोरा।
मानुष-तन धन जात, गोड़ धिर करौं निहोरा।।
कांचे महल के बीच पवन इक पंछी रहता।
दस दरवाजा खुला उड़न को नित उठि चहता।।
भजि लीजौ भगवान, एहि में भल है अपना।
चेताते हैं, जगाते हैं, होशियार करते हैं--सो मत जाना; जिंदगी सोए-सोए
न गंवा देना, भजि लीजौ भगवान, भगवान को स्मरण कर लो, उसकी स्मृति ही बचाएगी अंतिम क्षणों में।
आवागौन छुटि जाए, जनम की मिट कल्पना।।
एक ही भला है, एक ही कल्याण है, एक ही मंगल है जीवन में--वह है परमात्मा
को पा लेना। उसे जिसने पाया, सब पाया; उसे जिसने गंवाया, सब गंवाया। उसे पाते ही सारा आवागमन छूट जाता है; फिर न आना है, न जाना है। फिर बस गए। फिर बस गए अनंत में। फिर शाश्वत का अंग हो गए। फिर न कोई जन्म, न कोई मृत्यु। फिर इन पींजड़ों में भटकने की जरूरत नहीं।
आवागौन छुटि जाए, जनम की मिटै कलपना।।
और यह जो दुख है--जन्म का, और जीवन का, और मृत्यु का; और यह जो हजार-हजार दुख जीवन के मार्ग पर फैले हैं... । जीवन का रास्ता बड़ा कंटकाकीर्ण है, बड़ा पथरीला है; पहुंचना तो बहुत कम, भटकना बहुत आसान है; चोटें ही चोटें हैं, घाव ही घाव हैं।
जीवन यहां नर्क से अतिरिक्त और क्या है!
मैंने सुना है, एक आदमी मरा और जब उसने नरक के द्वार पर दस्तक दी-- सर्दी के दिन हैं और शैतान भी कंबल ओढ़े बैठा है। शैतान को भी बड़ी दिक्कत मालूम हुई कि अब फिर उठो, फिर दरवाजा खोलो। दुष्ट चले ही आते हैं! उसने ऐसे ही खिड़की से झांककर कहा कि भाई, क्यों सताते हो, क्या बात है? उस आदमी ने कहा कि मैं मर कर आया हूं, दरवाजा खोलो, मुझे भीतर आने दो।
शैतान ने पूछा, कहां से आ रहे हो?
उस आदमी ने कहा, पृथ्वी से आ रहे हैं।
तो स्वर्ग जाओ, क्योंकि नरक तो तुम पृथ्वी पर भोग ही चुके, अब और क्या भोगना है! अब भोगने को बचा क्या है?
तुम जरा अपनी जिंदगी को एक तरफ रख कर देखो जैसे किसी और की जिंदगी हो, अपनी नहीं; साक्षी की तरह देखो, द्रष्टा की तरह देखो; तो क्या पाओगे? कांटे ही कांटे; अंधेरा ही अंधेरा; घाव ही घाव! एक लंबी व्यथा है तुम्हारी कथा-- विषाद की, संताप की, चिंता की। दुखों से मिलना हुआ है, सुख तो केवल आशा में अटके रहे हैं।
आवागौन छुटि जाए, जनम की मिटै कलपना।।
पलटू अटक न कीजिए, चौरासी घर फेर।
चूको मत! क्योंकि मनुष्य होना दुर्लभ। दुर्लभ इसलिए कि मनुष्य के जीवन में ही संभव है पतन और विकास। जानवरों का कोई पतन नहीं होता और कोई

विकास भी नहीं होता। वे जैसे पैदा होते हैं, वैसे ही मर जाते हैं। कोई कुत्ता कुत्ता होने से नीचे नहीं गिर सकता। या कि तुम सोचते हो गिर सकता है? तुम किसी कुत्ते से कह सकते हो कि हद्द हो गई, तू कुत्ते से भी नीचे गिर गया! नहीं, किसी कुत्ते से यह कहना सार्थक नहीं होगा। लेकिन आदमी से तुम कह सकते हो कि हद्द हो गई, तुम आदमी से भी नीचे गिर गए!
आदमी के लिए दोनों संभव है--आदमी से ऊपर उठ जाए, आदमी से नीचे गिर जाए। आदमी एक सीढ़ी है। चाहे तो नर्क और चाहे तो स्वर्ग। वही सीढ़ी नरक ले जाती है एक दिशा में, वही सीढ़ी स्वर्ग ले जाती है दूसरी दिशा में। आदमी अनूठा है इस पृथ्वी पर। गुलाब गुलाब है, चंपा नहीं हो सकता, चमेली नहीं हो सकता। आदमी कुछ सुनिश्चित रूप लेकर पैदा नहीं होता। सिर्फ एक कोरी संभावना, जो कुछ भी बन सकती है। जो रावण बन सकती है या राम बन सकती है। वही मिट्टी, वही श्वास राम बनती है। राम और रावण जब पैदा होते हैं तो एक सी संभावना लेकर पैदा होते हैं और जब मरते हैं, तो कितना भेद होता है! कितना आकाश-पाताल का भेद होता है!
मनुष्य के जीवन में चुनाव की स्वतंत्रता है, जो किसी और जीवन में नहीं है। मनुष्य अकेला स्वतंत्र है। अकेला, एकमात्र स्वतंत्रता का धनी है, मालिक है। चाहो तो सौभाग्य बना लो, चाहो तो दुर्भाग्य बना लो। तुम अपने निर्णायक हो। तुम्हारा हर निर्णय, तुम्हारा हर कदम तुम्हारे जीवन को बना रहा है। तुम्हारा हर कृत्य तुम्हारे जीवन को रूप दे रहा है, आकार दे रहा है। तुम क्या बनोगे, किसी और पर जिम्मेवारी नहीं डाली जा सकती। आदमी चालबाजियां करता है, जिम्मेवारियां दूसरों पर डालना चाहता है, मगर वे सब आत्मवंचनाएं हैं। अच्छा हो उन झंझटों में न पड़ो! क्योंकि उनसे लाभ कुछ भी नहीं। मनुष्य-जीवन चूका, तो फिर पता नहीं कब मिले, कितनी देर लगे?
पलटू अटक न कीजिए चौरासी घर फेर।
बड़ी मुश्किल से आदमी हुए हो--बड़ी मुश्किल से! चौरासी कोटि योनियों के चक्कर काटते-काटते यह असंभव घटा है कि मनुष्य हुए हो। कितने तड़फे होओगे, मनुष्य होने के लिए कितनी-कितनी आकांक्षाएं, अभीप्साएं न की होंगी; कितनी प्रार्थनाएं न की होंगी! और फिर मनुष्य जीवन का उपयोग क्या कर रहे हो? उसे ऐसे गंवा रहे हो जैसे उसका कोई मूल्य ही नहीं। लोग बैठे ताश खेल रहे हैं, शतरंज खेल रहे हैं, लकड़ी के हाथी-घोड़े दौड़ा रहे हैं! पूछो, क्या कर रहे हो? कहते हैं, समय काट रहे हैं। समय! एक पल भी खरीद न सकोगे--सिकंदर भी न खरीद सका।
मरते वक्त सिकंदर ने अपने चिकित्सकों से कहा था, मुझे चौबीस घंटे बचा लो, बस चौबीस घंटे, और ज्यादा नहीं चाहता। कोई बहुत बड़ी आकांक्षा न थी। फिर सिकंदर चौबीस घंटे बचना चाहे, और न बच सके, तो फिर सिकंदर और भिखमंगे में भेद क्या रहा? लेकिन चिकित्सक सिर झुका लिए। उन्होंने कहा, असंभव है। मौत तो आ गई। अब तो पल-दो पल के मेहमान हैं आप। चौबीस घंटे बचाए नहीं जा सकते। सिकंदर क्यों चौबीस घंटे बचना चाहता था! एक छोटा सा वचन दिया था। जब निकला था विश्व-विजय की यात्रा पर, तो सिकंदर की मां ने कहा थाः बेटा, लंबी यात्रा है, कठिन यात्रा है, अच्छा तो यह होता कि इस झंझट में तू न पड़ता, लेकिन तू मानता नहीं; मैं बूढ़ी हो गई हूं, तुझे दुबारा देख पाऊंगी या नहीं? तो सिकंदर ने कहा था, मैं वचन का पक्का हूं, तू जानती है कि मैं वचन का पक्का हूं, जो कहूंगा वह करूंगा, लौट कर आऊंगा--हर हाल लौट कर आऊंगा। और सिकंदर लौट रहा था वापस हिंदुस्तान से। फासला केवल इतना था कि अगर चौबीस घंटे का अवसर और मिल जाता तो वह अपना वचन पूरा कर लेता। बस कुछ ही कोसों की दूरी पर उसकी मृत्यु हुई घर से। वचन अधूरा रह गया।
वचन देने में ही भूल हो गई। वचन देते समय याद न रखा कि मैं वचन का कितना ही पक्का होऊं, लेकिन मौत बीच में आ जाएगी तो मैं क्या करूंगा? महाभारत में प्यारी कथा है। पांडव वनवास कर रहे हैं, अज्ञातवास कर रहे हैं। एक भिखमंगे ने सुबह-सुबह द्वार पर दस्तक दी, अपना भिक्षापात्र फैलाया। युधिष्ठिर द्वार पर ही बैठे हैं--धर्मशास्त्र पढ़ रहे हैं। धर्मराज हैं, सो धर्मशास्त्र पढ़ते होंगे। भिखमंगे से कहाः कल आना। भीम भी पास ही बैठा हुआ मालिश कर रहा है अपने शरीर की--और क्या कर रहा होगा! दंड-

45

बैठक लगा रहा होगा, और क्या कर रहा होगा! कि गदा घुमा रहा होगा! उसने यह सुना, उसने जल्दी से एक घंटा लिया और बजाता हुआ गांव की तरफ भागा। युधिष्ठिर ने पूछाः कहां जाता है? उसने कहा, मैं जरा गांव में खबर कर आऊं कि मेरे भाई ने मृत्यु पर विजय पा ली। क्योंकि उन्होंने एक भिखमंगे को कहाः कल आना, कल तुझे भिक्षा देंगे।
कभी-कभी युधिष्ठिर जैसे धर्म-पंडित को भी जो बात चूक जाए, वह भीम जैसे सीधे-सादे आदमी को समझ में आ जाती है।
बात तो युधिष्ठिर को चोट कर गई, भागे, भीम से कहाः रुक; भिखारी को बुला
कर लाए--कि नहीं, कल का आश्वासन ठीक नहीं। कल का क्या भरोसा है? मैं तो सिर्फ टालने के लिए कि अभी किताब पढ़ रहा हूं, बीच में तुम बाधा डालने आ गए-- कल आ जाना। मगर भीम ठीक कहता है। कल आए, न आए। मैं न रहूं, तुम न रहो, वचन पूरा न हो सके। तुम भीख आज ही ले जाओ।
हम टालते चले जाते हैं। समय को काटते हैं--जिसका इतना मूल्य है कि सिकंदर ने अपने चिकित्सकों को कहा कि मैं अपना आधा राज्य भी देने को तैयार हूं, मुझे बचा लो; मैं अपना पूरा राज्य भी देने को तैयार हूं, मुझे बचा लो; मैं अपने वचन को पूरा करना चाहता हूं; लेकिन चिकित्सकों ने कहा, पूरा राज्य दें, या न दें, अब इससे कुछ भेद नहीं पड़ता, जिंदगी खरीदी नहीं जा सकती, बात खतम हो गई। सिकंदर की आंखों से, कहते हैं, आंसू झलके और सिकंदर ने कहाः काश, मुझे कोई यह बात पहले कह देता कि जिस राज्य को जीतने मैं चला हूं, जिस राज्य को जीतने में सारी जिंदगी गंवा रहा हूं, वह पूरा का पूरा राज्य देकर चौबीस घंटे भी न खरीद सकूंगा, तो मैंने जिंदगी ऐसे न गंवाई होती! मगर मुझे किसी ने कहा नहीं।
ऐसा तो नहीं है कि किसी ने न कहा हो। मुझे पक्का पता है कि एक आदमी ने सिकंदर को कहा था, उसका नाम डायोजनीज था। पलटू जैसा आदमी रहा होगा। मस्त मौला। नंग-धड़ंग रहता था नदी के किनारे। कुछ भी न था उसके पास। एक तरफ सिकंदर, जो सारी दुनिया की मालकियत का दीवाना और एक तरफ था डायोजनीज--नंग-धड़ंग। पहले तो एक भिक्षापात्र भी अपने पास रखता था, लेकिन एक दिन वह भी छोड़ दिया। बुद्ध तो भिक्षापात्र कम से कम रखते थे, डायोजनीज ने वह भी छोड़ दिया था।
एक दिन भिक्षापात्र को लेकर नदी की तरफ जा रहा था, प्यास लगी थी, पानी पीने, तभी एक कुत्ता भी हांफता हुआ पास से गुजरा और उससे पहले पहुंच गया नदी में और जाकर पानी पीने लगा। डायोजनीज ने कहा, हद्द हो गई; मात दे दी मुझे इस कुत्ते ने! बिना भिक्षापात्र के ही...! और अगर कुत्ता बिना भिक्षापात्र के जी सकता है, तो फिर मैं क्यों परेशान होऊं, इसको मैं क्यों ढोता फिरूं? वहीं नदी में बहा दिया। कुत्ते से दोस्ती कर ली। दोस्ती दोनों की जम गई। कुत्ता और डायोजनीज, दोनों साथ ही साथ रहने लगे।
रहता भी क्या था, एक टीन का पोंगरा था--कचराघर का जो पोंगरा होता है टीन का, जिसमें कचरा फेंकते हैं; वह पोंगरा सड़ गया था तो गांव के लोगों ने उसे गांव क बाहर नदी के किनारे डाल दिया था। वह उसी पोंगरी में रहता था। उसी में कुत्ता भी रहने लगा था। सिकंदर से उस डायोजनीज ने निश्चित कहा था कि जो करना हो वह अभी कर लो, कल पर मत टालो।
सिकंदर डायोजनीज से मिलने गया था और डायोजनीज ने पूछा था कि कहां जा रहे हो? उसने कहा थाः विश्व-विजय की यात्रा पर। डायोजनीज ने पूछाः फिर क्या करोगे? उसन कहाः फिर क्या करूंगा? फिर विश्राम करूंगा। तो डायोजनीज ने कहा, यह तो हद्द हो गई! अपने कुत्ते से कहा कि सुन भाई, देखता है हद्द हो गई! हम अभी विश्राम कर रहे हैं दोनों, सिकंदर कहता है सारी दुनिया जीत लूंगा फिर विश्राम करूंगा! सारी दुनिया का जीतना और विश्राम, इसमें कोई तार्किक संबंध है, इसमें कोई गणित है? जब हम बिना दुनिया को जीते मजे से विश्राम कर रहे हैं, तो तुम्हें क्या अड़चन है विश्राम करने में? इतनी झंझट लेकर फिर विश्राम करोगे? छोड़ो झंझट, नदी का किनारा बड़ा है। और यह हमारा जो पोंगरा है, यह भी कोई छोटा नहीं। पहले मैं अकेला रहता था, फिर यह कुत्ता भी रहने गला--तुम भी रहने लगो। वर्षा-धूप में काम दे देता है, वैसे तो नदी के

तट पर गुजर जाता है। और तट बड़ा है, तुम भी विश्राम करो। दुनिया जीतने चले हो!
सिकंदर झेंपा। सिर झुक गया। कहा कि क्षमा करना, बात तो ठीक लगती है; मगर बीच से लौट नहीं सकता। यात्रा तो यह मुझे पूरी करनी होगी। एक कसम ले ली कि दुनिया जीत कर रहूंगा। डायोजनीज ने कहाः कसमें! हमारी कसमें!! हमारे वचन!! इनका मूल्य क्या है? ये सब अहंकार की घोषणाएं हैं। और मैं तुमसे कहता हूं कि यात्रा पूरी करके वापस न लौट सकोगे--कोई कभी यात्रा पूरी करके वापस नहीं लौटता। इस दुनिया की सभी यात्राएं बीच में टूट जाती हैं।
दस साल का बच्चा मर जाए तो हम कहते हैं। असमय मृत्यु। और सत्तर साल का आदमी मरता है तब हम नहीं कहते असमय मृत्यु, लेकिन मैं तुमसे कहता हूंः सभी मृत्युएं असमय होती हैं। क्योंकि सत्तर साल वाला बूढ़ा भी अभी मरने की तैयारी नहीं कर रहा था। अभी वह भी कल के लिए राजी था कि कल होगा। सभी मृत्युएं असमय हैं, क्योंकि तैयार ही कोई नहीं है। असमय का क्या अर्थ होता है? बिना तैयारी के।
सिर्फ उसकी मृत्यु असमय नहीं है, जिसने भजन किया।
भजि लीजौ भगवान, एहि में भल है अपना।
बस, एक ही भला है इस जगत में, एक ही श्रेयस, एक ही मंगल--भजि लीजौ भगवान।
पलटू अटक न कीजिए चौरासी घर फेर।
भजन आतुरी कीजिए और बात में देर।।

हजार गर्दिशे-शामो-सहर से गुजरे हैं
वो काफिले, जो तेरी रहगुजर से गुजरे हैं।

अभी हवस को मयस्सर नहीं दिलों का गुदाज
अभी ये लोग मकामे-नजर से गुजरे हैं।

हर एक नक्श पे था तेरे नक्शे-पा का गुमां कदम-कदम पे तेरी रहगुजर से गुजरे हैं।

न जाने कौन-सी मंजिल पे जाके रुक जाएं
नजर के काफिले दीवारो-दर से गुजरे हैं।

कुछ और फैल गईं दर्द की कठिन रहों
गमे-फिराक के मारे जिधर से गुजरे हैं।

जहां सुरूर मयस्सर था जामो-मय के बगैर
वो मयकदे भी हमारी नजर से गुजरे हैं।
ऐसी जगहें भी हैं जहां बिना पिए नशा आ जाता है। उन्हीं जगहों का, उन्हीं मधुशालाओं का नाम सत्संग है। वहां से गुजर मत जाना।
जहां सुरूर मयस्सर था जामो-मय के बगैर
वो मयकदे भी हमारी नजर से गुजरे हैं।
निश्चित ही ऐसी मधुशालाएं हैं। कभी मिटीं नहीं, पृथ्वी पर कहीं न कहीं मधुशाला बनती ही रहती है। क्योंकि परमात्मा आदमी को बिसार नहीं पाता। उसके लिए कोई न कोई आयोजन जुटाता ही रहता है। ऐसी मधुशालाएं हैं जहां शराब नहीं ढलती और फिर भी मस्ती पीई आती है, पिलाई जाती है। अगर कभी ऐसी मधुशाला के करीब आ जाओ, तो चूक मत जाना; परहेज मत करना; व्रत-नियम तोड़ देना; डुबकी मार लेना। भजन ऐसी ही शराब है जो बेहोश भी करती है और होश से भी भरती है।
नजर में ढलके उभरते हैं दिल के अफसाने
ये और बात है दुनिया नजर न पहचाने।
वो बज्म देखी है मेरी निगाह ने, कि जहां
बगैर-शम्अ भी जलते रहे हैं परवाने।
ये क्या बहार का जोबन, ये क्या निशात का रंग

फसुर्दा मयकदे वाले, उदास मयखाने।
मेरे नदीम! तेरी चश्मे-इलतिफात की खैर
बिगड़-बिगड़ के संवरते गए हैं अफसाने।
ये किस की चश्मे-फुसूं-साज का करिश्मा है
कि टूट कर भी सलामत हैं दिल के बुलखाने।
वह परमात्मा बनाता ही रहता है कोई काबा, कोई काशी; कोई नया काबा, कोई
नई काशी; पुराने काबे और पुरानी काशी तो उजड़ जाते हैं--जल्दी ही पंडितों के हाथ में पड़ जाते हैं, पुरोहितों के हाथ में पड़ जाते हैं। लेकिन वह जल्दी कहीं और नया तीर्थ निर्मित कर लेता है। जिनको पीना है, उनके लिए उसकी तरफ से कोई कमी नहीं है। जिनको पीना है, उनके लिए कुछ न कुछ मार्ग बन ही जाता है।
वो बज्म देखी है मेरी निगाह ने, कि जहां
बगैर-शम्अ भी जलते रहे हैं परवाने।
बिना पीए पीना हो जाता है; बिना जले जलना हो जाता है, ऐसा चमत्कार, ऐसा करिश्मा!
ये किसी की चश्मे-फुसूं-साज का करिश्मा है
यह किसी जादू-भरी आंख का चमत्कार है?
कि टूट कर भी सलामत हैं दिल के बुतखाने।
माना कि आदमी आज बहुत उदास है, हताश है; माना कि आज आदमी की नजरों में अंधेरा ही अंधेरा है और हृदयों में अब फूल खिलते दिखाई नहीं पड़ते, लेकिन मैं तुमसे कहता हूंः कसूर है तो बस तुम्हारा है। जरा सम्हलो! जीवन का जो महान अवसर मिला है, उसका थोड़ा उपयोग करो! काटो मत समय! यह बहुमूल्य समय काटने को नहीं है। यह बहुमूल्य समय जीवन निर्मित करने को है। यह जीवन संवारने को है। जीवन कोशृंगार दो। मगर भजन के बिना कहां जीवन कोशृंगार है। जीवन को सौंदर्य दो। मगर भजन के बिना जीवन में कहां सौंदर्य है। जीवन को सत्य दो। लेकिन भगवान के बिना जीवन को कोई सत्य न मिला है न मिल सकता है। क्या कारण है कि आदमी सुन लेता है ऐसी बातें, फिर भी चलता जाता अपने ही पुराने ढंग, पुराने रवैये से, पुराने ढब से? कारण है।
प्रेमबान जाके लगा, सो जानैगा पीर।।
सो जानैगा पीर, काह मूरख से कहिए।
यह जो परमात्मा से बचते हैं हम, उसका कारण है; क्योंकि परमात्मा से जुड़ने का अर्थ हैः अपने हृदय को उसके प्रेम-बाण के लिए खुला छोड़ देना, असुरक्षित छोड़ देना। हटाओ सारे कवच! हटा लो ढालें! आने दो उसका तीर, चुभ जाने दो प्राणों में! पीर होगी बहुत--तीर लगेगा तो पीर तो होगी--मगर वह पीड़ा बड़ी मधुर है। पर जानोगे तब जब घटेगी। लाख कबीर कहें, लाख नानक कहें, लाख पलटू कहें, लाख मैं कहूं, लेकिन जब तक तीर तुम्हें न लगेगा, जब तक पीर तुम्हारे भीतर न फैल जाएगी, तब तक तुम जान न पाओगे। यह कोई साधारण तीर नहीं है जो मारता है, यह ऐसा तीर है जो जिलाता है। यह तीर कुछ जहरीला नहीं है, अमृत है।
प्रेमबान जाके लगा, सो जानैगा पीर।।
लोग डरते हैं, प्रेम-बाण से डरते हैं; बचते हैं।
सो जानैगा पीर, काह मूरख से कहिए।
और उनसे तो यह बात कही ही नहीं जा सकती जो अहंकार की मूढ़ता से भरे हुए हैं। बस एक ही मूढ़ता है इस जगत में--अहंकार की। उनसे तो यह बात कही ही नहीं जा सकती। और ज्ञान अहंकार को जितना परिपुष्ट करता है और कोई चीज परिपुष्ट नहीं कर सकती। तथाकथित ज्ञान, शास्त्रीय ज्ञान--वेद, कुरान, बाइबिल, पुराण कंठस्थ हैं, अहंकार सजा हुआ बैठा है। लगाए तिलक, पहने जनेऊ जमे हैं पंडित। जरा गौर से देखो, अहंकार ने ज्ञान के आभूषण पहन लिए हैं, ज्ञान की ओट में छिप गया है। पंडित जितने अहंकारी होते हैं, कोई और नहीं होता। बड़ी धार होती है उनके अहंकार में। त्यागी बड़े अहंकारी हो जाते हैं। इन सब को पलटू मूरख कह रहे हैं। इनसे बात ही मत करना। ये कुछ समझेंगे ही नहीं, क्योंकि ये पहले से ही समझे बैठे हैं। ये समझे बैठे हैं कि इन्होंने समझ ही लिया है।

शब्द कंठस्थ कर लिए हैं तोतों की तरह और सोचते हैं, जान लिया जो जानने योग्य है।
प्रेमबान जाके लगा, सो जानैगा पीर।।
इनको तो प्रेम-बाण लगने वाला ही नहीं है। ये तो खोपड़ी में जी रहे हैं,
ये तो हृदय को भूल ही गए हैं। ये तो हृदय का मार्ग ही बिसार दिए हैं। इनके भीतर हृदय है, इसका भी इन्हें पता नहीं रहा है। ये तो खोपड़ी में बंद हैं, कैद हैं।
सो जानैगा पीर, कहा मूरख से कहिए।
इन मूर्खों से तो कुछ कहना ही मत।
ख्याल रखना, जब भी संत मूरख शब्द का प्रयोग करते हैं, तो उनका अर्थ साधारण अर्थ नहीं फोता। उनका अर्थ होता--बेपढ़ा-लिखा, गंवार। नहीं, उनका अर्थ होता हैः पढ़ा-लिखा गंवार।
चमन को आग लगाने की बात करता हूं
समझ सको तो ठिकाने की बात करता हूं।
सहर को शम्अ जलाने की बात करता हूं
ये गाफिलों को जलाने की बात करता हूं।
रविश-रविश पे बिछा दो बबूल के कांटे
चमन से लुत्फ उठाने की बात करता हूं।
वो बागवान, जो पौदों से बैर रखता है
ये आप ही के जमाने की बात करता हूं।
वो सिर्फ अपने लिए जाम कर रहे हैं तलब मैं हर किसी को पिलाने की बात करता हूं।
जहां चराग तले लूट है, अंधेरा है
वहां चराग जलाने की बात करता हूं।
नकाबे-रू-ए-जमाना न उठ सकेगी कि मैं
गुलों से ओस उठाने की बात करता हूं।
घिसे हुओं को नई फिक्र दे रहा हूं शाद
मंझे हुओं को सिखाने की बात करता हूं।
थोड़ा-सा निर्दोष हृदय चाहिए, तो ही तुम्हारे भीतर संभावना है प्रेम
के तीर को झेल लेने की। क्योंकि प्रेम की बातें अटपटी हैं।
सहर को शम्अ जलाने की बात करता हूं
ये गाफिलों को जगाने की बात करता हूं।
प्रेम की बातें अटपटी हैं, क्योंकि प्रेम की बातें अतर्क्य हैं। सुबह कोई शमा जलाना है? दिन को कोई दीया जलाता है?
फिर तुम्हें डायोजनीज की याद दिलाऊं। वह दिन में ही हाथ में एक लालटेन लिए घूमा करता था। जलती लालटेन, भर दुपहरी! लोग पूछते कि डायोजनीज होश में हो? सूरज चमक रहा है, धूप बरस रही है, चारों तरफ रोशनी है, लालटेन किसलिए जलाए हो? तो डायोजनीज कहता कि मैं आदमी की तलाश कर रहा हूं। बड़ा अंधेरा है! काश, सूरज के ऊगने से अंधेरा मिट जाता, तो सारे लोग ज्ञान को उपलब्ध हो जाते! बड़ा अंधेरा है; बड़ी अमावस है; हाथ को हाथ नहीं सूझता है। इसलिए लालटेन जलाए घूम रहा हूं, आदमी की तलाश कर रहा हूं।
और जब डायोजनीज मरा, तब भी वह अपनी लालटेन पास रखे था। लालटेन जल रही थी, दोपहरी थी, भीड़ इकट्ठी हो गई थी। किसी ने पूछा, डायोजनीज, जिंदगी भर तुम कहते रहे कि बड़ा अंधेरा है इसलिए लालटेन जला कर आदमी की तलाश कर रहा हूं। आदमी मिला? डायोजनीज ने कहाः आदमी तो नहीं मिला, लेकिन मेरी लालटेन बच गई यही क्या कम है! क्योंकि कई की नजर लालटेन पर लगी थी। इतना ही धन्यभाग कि मेरी लालटेन कोई चुरा नहीं ले गया। नहीं तो नंगे आदमी के पास लालटेन कौन बचने दे! कोई भी छीन लेता; कोई भी चुरा लेता। डायोजनीज ने कहा कि मैंने लोगों की आंखों में मैं जो रोशनी देना चाहता था उसकी उत्सुकता नहीं देखी, लेकिन मेरी लालटेन की उत्सुकता देखी कि किसी तरह पा जाएं तो छोड़ें नहीं। सहर को शम्अ जलाने की बात करता हूं
ये गाफिलों को जगाने की बात करता हूं।
चमन को आग लगाने की बात करता हूं

समझ सको तो ठिकाने की बात करता हूं।
प्रेम की बातें जरा अटपटी हैं। समझ सको तो सीधी-साफ हैं। लेकिन अगर बहुत अक्लमंदी हो--सब उलटा हो जाता है। प्रेम की वाणी अटपटी। इसलिए कबीर की वाणी को कहाः उलटबांसी। जैसे कोई बांसुरी को उलटी तरफ से बजाए।
हम तर्क से जीते हैं। वहां दो और दो चार होते हैं, सदा दो और दो चार होते हैं; कोई भी जोड़े दो और दो चार होते हैं। प्रेम की दुनिया में दो और दो कभी पांच भी हो जाते हैं, कभी तीन भी हो जाते हैं, कभी दो और दो एक भी हो जाते हैं। कभी दो और दो मिलकर शून्य भी हो जाते हैं। वहां सब संभव है। वहां असंभव संभव है।
सबसे बड़ी असंभव घटना तो यह संभव है कि आदमी की सीमित क्षमता और असीम
का अवतरण हो जाता है। मुट्ठी भर खाक में सारा आकाश उतर आता है। जिसकी कोई औकात न थी, एक बूंद जैसी जिसकी सीमा थी, उसमें सारा समुंदर उतर आता है।
असंभव घटता है, लेकिन तभी, जब कोई प्रेम के इस तीर को झेलने को तैयार हो।
प्रेमबान जाके लगा, सो जानैगा पीर।।
सो जानैगा पीर, काह मूरख से कहिए।
तिलभर लगै न ज्ञान, ताहि से चुप ह्वै रहिए।।
ये तथाकथित ज्ञानियों को तिल भर भी ज्ञान नहीं है। और इनको ज्ञान लग
भी नहीं सकता। इन्होंने तो खूब चिकनाई पोत रखी है शास्त्रों की अपने ऊपर चारों ओर। ये तो चिकने घड़े हैं। वर्षा भी होती रहे तो भी इनको पानी छुएगा नहीं।
पंडित से ज्यादा चिकना घड़ा तुमने देखा? उसमें ऐसी चिकनाई लगी है, पानी
छू ही नहीं सकता।
मैं छोटा था तो मेरे गांव में, मेरे पड़ोस में घी बेचने वाले एक सज्जन रहते थे। उनके कपड़ों में इतना घी लग चुका था... महा कंजूस! शायद उन पर दूसरी जोड़ी कपड़े भी थे, यह भी संदिग्ध है--मैंने नहीं देखे दूसरी जोड़ी कपड़े। वे एक ही जोड़ी कपड़ा पहने रहते थे। और दिन भर घी बेचना और घी खरीदना--घी ही घी हो गया था उनके कपड़ों पर। मैंने उनको स्नान करते देखा--वे कपड़े नहीं उतारते थे। लोटा लेकर पानी ढाल लेते थे, वह कपड़ों पर तो पानी लगता ही नहीं था। फिर मैंने वैसा चमत्कार दुबारा नहीं देखा!
ऐसी ही पंडित की दशा है।
तिलभर लगै न ज्ञान, ताहि से चुप ह्वै रहिए।।
पंडितों से सिर मत फोड़ना। पलटू कह रहे हैं, पंडितों से तो बचना; ये तो महामूरख हैं। इनको न तो प्रेम का तीर लगा है, न प्रेम की पीर लगी है; न इनको ध्यान का तीर लगा है, न ज्ञान का आविर्भाव हुआ है।
लाख कहै समुझाय, बचन मूरख नहीं मानै।
तुम कितना ही समझाओ, पंडित विवाद करेगा, मानेगा ही नहीं। तुम जितना मनाओगे, उतना ही जिद्द पकड़ेगा।
तासे कहा बसाय, ठान जो अपनी ठानै।।
हठी है, अहंकारी है, अपनी ही ठाने रहेगा। शास्त्रार्थ करने को राजी है, सत्य की खोज में जाने को राजी नहीं है।
इस देश को डुबाया तो पंडितों ने डुबाया। इस देश को मिटाया तो पंडितों
ने मिटाया। इस देश में एक बड़ी अजीब स्थिति पैदा कर दी--सबको तोता बना दिया! हरेक आदमी ज्ञानी मालूम होता है। क्योंकि जो देखो वही ब्रह्मज्ञान की चर्चा कर रहा है। और जीवन में, अपना भी पता नहीं, ब्रह्म का तो क्या खाक पता होगा! भजन की एक बूंद कंठ से नहीं उतरी है, भगवान का कोई अनुभव नहीं हुआ है। प्रेम की पीर ही नहीं जानी है। मगर लोगों को शब्द याद हो गए हैं। तुलसीदास की चौपाइयां दोहरा रहे हैं।
जेहिके जगत पियार, ताहि से भक्ति न आवै।
इस बात को पहचान लेना, कि जिन्होंने अभी भी माया से, धन से, पद से प्रतिष्ठा से, यश से, महत्वाकांक्षा से अपना मोह लगा रखा हो, अपना प्यार लगा रखा हो, समझ लेना--ताहि से भक्ति न आवै। इनको भक्ति नहीं आ सकती। इनको भक्ति असंभव है।
सतसंगति से विमुख, और के सन्मुख धावै।।

ये पंडित दूसरों को समझाते फिर रहे हैं और सतसंगति से स्वयं विमुख हैं। पंडित हैं, मौलवी हैं, पादरी हैं, पुरोहित हैं--इनको कुछ भी पता नहीं परमात्मा का।
मैं वर्षों तक जबलपुर में रहा। वहां ईसाइयों को एक बड़ा कालेज है-- लियोनॅर्ड थियोलॉजिकल कालेज। वहां पादरी-पुरोहित तैयार किए जाते हैं। एक तरह की फैक्टरी, जहां ईसाई मिशनरी तैयार किए जाते हैं। उस कालेज के प्रिंसिपल कुछ-कुछ मेरे चक्कर में पड़ गए! तो मुझसे मिलने आने लगे। आदमी भले थे। मुझे कहा एक बार कि आप भी कभी आएं, हमारा कालेज देखें। सात सौ मिशनरी तैयार हो रहे हैं; पांच वर्ष लगते हैं तैयार होने में। मैंने उनसे कहा कि कालेज में कैसे तुम धार्मिक व्यक्ति को तैयार करोगे? धर्म की कोई शिक्षा तो हो नहीं सकती। धर्म तो संक्रामक होता है। सदगुरु के पास बैठ कर लगती है यह बीमारी। इसकी कोई शिक्षा नहीं हो सकती। पर फिर भी मैं आऊंगा। मनोरंजन रहेगा, देखूं क्या शिक्षा होती है!
तो उन्होंने जगह-जगह मुझे घुमाया, जो शिक्षा देखी वह सच में मनोरंजक थी। एक जगह, आखिरी कक्षा में, इस वर्ष के बाद जो पादरी हो जाएंगे, उनको एक पाठ पढ़ाया जा रहा था कि जब तुम बाइबिल समझाओ लोगों को, तो किस तरह खड़े होना, किस शब्द को जोर से बोलना, किस शब्द को बोलते वक्त आंखें आकाश की तरफ उठाना, किस शब्द को बोलते वक्त मुट्ठी बांध लेना, किस शब्द को बोलते वक्त जोर से टेबल पीटना। मैंने उनसे कहा, तुम अभिनेता पैदा कर रहे हो कि तुम धर्म को जानने वाले लोग पैदा कर रहे हो?
लौटते में मैंने उन्हें एक कहानी सुनाई।
मैंने उनसे कहा कि मैंने सुना है, ऐसे ही एक कालेज में अध्यापक समझा रहा है विद्यार्थियों को कि जब तुम समझाओ लोगों को धर्म, बाइबिल समझाओ, जब स्वर्ग का वर्णन करो, तो पूरा मुंह मुस्कुराहट से खुल जाना चाहिए--सारे दांत दिखाई पड़ जाएं--आंखों में एकदम चमक आ जाए, जैसे बिजली कौंध गई; चेहरे पर एकदम ओज छा जाए, मस्ती छा जाए, एकदम मगनता मालूम पड़े। स्वर्ग का वर्णन ऐसे ही मत कर देना, वर्णन का परिणाम तुम्हारे चेहरे पर दिखाई पड़ना चाहिए। एक विद्यार्थी ने खड़े होकर पूछाः और जब नर्क का वर्णन करना पड़े, तब? तो प्रोफेसर ने कहा कि तुम्हारी जो साधारण सूरत है, उससे काम चल जाएगा। नर्क का वर्णन करने के लिए तुम्हें कोई अभ्यास करने की जरूरत नहीं, बस तुम सीधे खड़े हो जाना। तुम्हें देखते ही ये लोग समझ जाएंगे कि नर्क की क्या हालत है।
असलियत तो यह है कि नरक जैसा चेहरा है, नरक जैसा व्यक्तित्व है और स्वर्ग का अभिनय करना सिखा रहे हो। मगर यही चल रहा है।
एक जैन मुनि मुझसे मिलने आए थे। मुझसे कहने लगे, आप भी गजब हैं! रोज बोलते हैं! मेरे पास तो सिर्फ चार व्याख्यान हैं। और अलग-अलग समय के लिए मैंने तैयार कर रखे हैं। जहां कम समय हैं, वहां दस मिनट का एक व्याख्यान तैयार कर रखा है। एक बीस मिनट वाला भी है, एक तीस मिनट वाला, एक चालीस मिनट वाला। चार से मैंने जिंदगी में काम चला लिया, आप भी गजब हैं--बोलते ही चले जाते हैं! कैसे बोलते हैं? कुछ मुझे भी नुस्खा दें। क्योंकि कभी-कभी एक ही गांव में वही-वही व्याख्यान बार-बार देने में मुझे भी बेचैनी होती है। इसलिए तो मैं ज्यादा देर एक गांव में रुकता भी नहीं। और महावीर ने कहा भी है कि मुनि एक गांव में ज्यादा देन न रुके। तो मैंने कहा, अब मेरी समझ में आया कारण। तीन दिन से ज्यादा रुकने को कहा भी नहीं और चार व्याख्यान-- पर्याप्त! भूल-चूक कभी जरूरत पड़ जाए तो एक अतिरिक्त, और क्या चाहिए! तीन दिन तो महावीर ने कहा है, कि बस तीन दिन में खिसक जाना।
तो मैंने कहा कि मैं पढ़ता तो था शास्त्र में कि तीन दिन से ज्यादा मुनि एक गांव में रुके नहीं, लेकिन कारण आपको देख कर समझ में आया। मैंने कहा, चार भी बहुत हैं, एक भी अतिरिक्त है आपके पास। वह भी किसी समय-असमय के लिए।
मैंने उनसे कहा कि मुल्ला नसरुद्दीन बैठा है अपने घर के भीतर--नंग-धड़ंग, गांधी टोपी लगाए। किसी ने दरवाजा खटखटाया तो उसने ऐसा धीरे से दरवाजा खोला, जरा सा दरवाजा खोला, झांक कर देखा। उसने भी झांककर देखा, जो

बाहर आया था--दंपति, पति-पत्नी--उन्होंने भी देखा। वे भी जरा हैरान हुए! मगर अब करें क्या? अब एकदम से वह दरवाजा बंद भी नहीं कर सकता और वे भी एकदम से लौट नहीं सकते। बात जरा भद्दी हो जाएगी। तो उसे भी कहना पड़ाः आइए, आइए, और उनको भी आना पड़ा। तो पति सामने हो गए, पत्नी जरा पीछे हो गई... भारतीय पत्नी, वह जरा पति के पीछे छिप गई, उसने कहा कि यह तो... ! पति तो किसी तरह इस बात को अनदेखा करने की कोशिश किए, कि अपने को क्या मतलब है? कम से कम टोपी तो लगाए है... बाकी जाने दो! टोपी असली चीज है! बाकी तो सब गौण है। इज्जत तो टोपी में है। बाकी देखना ही क्यों? अपनी नजर टोपी पर रखो!
मगर पत्नी से न रहा गया। पूछ ही बैठी कि और सब तो ठीक है, टोपी भी बिल्कुल ठीक है, मगर क्या मैं पूछ सकती हूं कि नंग-धड़ंग क्यों बैठे हैं? तो मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि बात यह है कि इस समय मुझसे कोई मिलने आता ही नहीं! इसलिए नंग-धड़ंग मजे से बैठा हूं, गरमी का वक्त, पसीना-पसीना हुआ जा रहा हूं। और कोई इस समय मुझसे मिलने आता ही नहीं! इसलिए नंग-धड़क बैठा हूं। तो पत्नी ने कहा, ठीक है, नंग-धड़ंग बैठे हैं, कोई मिलने नहीं आता, फिर टोपी क्यों लगाए हुए हैं? तो उसने कहा, यही कि कभी भूल-चूक से कोई आ जाए। अब जैसे आप ही आ गए।
तो मैंने उनसे कहा कि ठीक, तीन दिन रुकना, चार भाषण याद रखना। कभी भूल-चूक, बीमारी इत्यादि कुछ हो जाए और चार दिन रुकना पड़े, तो काम चल जाए। मैंने कहाः शास्त्र में वचन लिखा था, लेकिन उसकी व्याख्या नहीं थी। तुम्हें देख कर व्याख्या समझ में आ गई। अब ये लोगों को अध्यात्म दे रहे हैं, इस तरह के लोग! ये हिज मास्टर्स वॉइस! वह देखा न, कुत्ता बैठा है चोंगे के सामने! ये तुम्हारे मुनि महाराज! ये तुम्हारे पंडित जी! ये तुम्हारे शास्त्री!
सतसंगति से विमुख, और के सन्मुख धावै।।
यहां-वहां शोरगुल मचाए फिरते हैं और सतसंगति से विमुख हैं। बुद्धों
से तो बचते हैं--बचना ही पड़ेगा; क्योंकि उनके सामने खड़े होना दर्पण में अपना चेहरा देखना है। और कौन देखना चाहता है कि मैं मूढ़ हूं? कौन देखना चाहता है कि मैं पापी हूं? कौन देखना चाहता है कि मैं गर्हित हूं? कौन जानना चाहता है कि मैं जीवन गंवा रहा हूं? लोग तो अपने से गए-बीतों की दोस्ती करते हैं। क्योंकि उनके बीच अहंकार को तृप्ति मिलती है।
समझदार अपनों से बड़ों, जो पहुंच गए, उनसे दोस्ती बांधता है, उनकी छाया में बैठता है। वही सत्संग है। क्योंकि वहां पाठ मिलेगा निर-अहंकारिता का।
वहां देखेगा अपने दोष। और दोष दिखाई पड़ जाएं, तो छोड़ने में देर नहीं लगती।
दोष का दिखाई पड़ना ही कठिन है, छोड़ना तो बहुत आसान है। दोष दिखाई पड़ते
ही छूट जाता है, छोड़ना नहीं पड़ता। दिखाई पड़ गया कि गलत है, बात खतम हो गई।
कोई जानकर दीवालों से नहीं निकलता। जाने कि दीवाल है तो निकलता ही नहीं।
मानता है कि दरवाजा है, तो दीवाल से टकरा जाता है। कोई जान कर पत्थर खाता है, हां, धोखा हो जो, मिठाई का, तो बात और! जानना, ठीक-ठीक जानना जीवन का रूपांतरण है। ज्ञान मुक्ति है।
सतसंगति से विमुख, और के सन्मुख धावै।।
और सब जगह तो घूमता फिरता है, लेकिन कहीं अगर जीवन की चेतना जगी हो, कहीं अगर नया मंदिर परमात्मा का बना हो, वहां से बचता है, वहां से भागता है।
सदगुरु की निंदा करेगा पंडित सदा। क्योंकि सदगुरु की छाया भी उसे काटती है, उसे मुश्किल में डालती है।
जिनकर हिया कठोर है, पलटू धसैं न तीर।
प्रेमबान जाके लगा, सो जानैगा पीर।।
ऐसे लोगों के हृदय बड़े कठोर हैं। पथरीले हो गए हैं। तर्क से भर गए हैं। सिद्धांत, शास्त्र ने, सबने मिल कर उन्हें बहुत कठोर कर दिया है।
उनकी निर्दोषता, निर्मलता, उनकी कोमलता खो गई है। उनके भीतर कुछ भी स्त्रैण नहीं बचा। कुछ भी मधुर नहीं बचा। कुछ भी सुकुमार नहीं बचा। उनके भीतर फूल जैसा कुछ भी नहीं है, सब पत्थर है।
जिनकर हिया कठोर है, पलटू धसैं न तीर।

परमात्मा का तीर भी अगर प्रवेश करना चाहे तो उनके हृदय में नहीं प्रवेश कर सकता। बीच में शास्त्रों की दीवाल है। और शास्त्र जिस जोर से प्रेम के तीर को रोकते हैं और कोई चीज नहीं रोकती। शास्त्र तो चीन की दीवाल समझो!
प्रेमबान जाके लगा, सो जानैगा पीर।।
और वही जान सकता है प्रेम के आनंद को और प्रेम की पीड़ा को... पीड़ा और आनंद दोनों साथ-साथ हैं। पीड़ा इसलिए कि नया-नया अनुभव है--अपरिचित--और आनंद, क्योंकि द्वार खुल गए। सदा से जिसकी तलाश थी, उसका नैकट्य, उसका सामीप्य मिल गया।
सबद छुड़ावै राज को, सबदै करै फकीर।।
प्रेम का शब्द सब कुछ छुड़ा देता है--राज्य को भी छुड़ा देता है। जिसको प्रेम उपलब्ध हो गया है, जिसको परमात्मा का तीर चुभ गया है, उसकी वाणी अगर तुम उसके पास पहुंच जाओ तो सब छुड़ा दे--राज्य भी छुड़ा दे। सबदै करै फकीर।
और शब्द ही उसका, प्रेम से जन्मा हुआ शब्द ही न मालूम कितने लोगों को संन्यस्त कर देता है, फकीर कर देता है।
सबदै करै फकीर, सबद फिर राम मिलावै।
यहां तो तुड़वा देता है तुम्हें, व्यर्थ से, और वहां सार्थक से जुड़ा देता है। प्रेम के अनुभव से निकला हुआ शब्द अपूर्व है। उसकी कीमिया, उसका रसायन जादू है। एक तरफ से तोड़ता है और असार से और दूसरी तरफ जोड़ता है सार से।
जिनके लागा सबद, तिन्हैं कछु और न भावै।।
और जिनको यह किसी सदगुरु का प्रेम से भरा हुआ शब्द छू गया, उन्हें फिर कुछ और नहीं भाता। फिर इस संसार में सब फीका-फीका लगता है।
मरैं सबद के घाव, उन्हैं को सकै जियाई।
होइगा उनका काम, परी रोवै दुनियाई।।
और सिर्फ उन्हीं का काम हुआ है इस संसार में, जो सदगुरु के चरणों में
मर गए और जी गए। जिन्हें पुनरुज्जीवन मिला। जो द्विज हुए। बाकी सारा संसार तो रोता ही रोता रहता है। आना और जाना, रोना और रोना। बाकी सब के हाथ में कुछ भी लगता नहीं।
होइगा उनका काम, परी रोवै दुनियाई... सारी दुनिया रोती रहती है, केवल
वे ही महोत्सव को उपलब्ध होते हैं जो अहंकार की दृष्टि से मर जाते हैं और आत्मा के रूप में प्रकट होते हैं।
मगर किसी सदगुरु की तलवार चाहिए। कबीर ने कहा हैः हो तैयारी सिर कटवाने की, तो आ जाओ! कबीर ने कहा हैः जो अपने घर में आग लगा देने की तैयारी हो, तो आओ मेरे साथ!
घायल भा वा फिरै, सबद कै चोट है भारी।
शुरू-शुरू में जब चोट लगती है तो घायल पक्षी की तरह तड़पता है शिष्य। उसकी पीड़ा गहन है--यद्यपि अपूर्व है, मधुर है, प्रीतिकर है। भाग भी नहीं सकता। इस तीर को निकाल भी नहीं सकता। मगर घायल तो होता है। जन्मों-जन्मों की पुरानी आदतें टूटती हैं, तो घाव तो लगता है।
घायल भा वा फिरै, सबद कै चोट है भारी।
जियतै मिरतक होय...
जीते-जी मार डालता है गुरु! ...
जियतै मिरतक होय, झुकै फिर उठै संभारी।।
जीते जी मार डालता है और फिर झुकता है और सम्हाल कर उठा लेता है। गुरु
के सान्निध्य में मृत्यु और पुनर्जन्म दोनों घटते हैं। पुराने शास्त्र कहते हैंः आचार्यो मृत्युः। वह जो गुरु है, मृत्यु है। महामृत्यु। लेकिन महाजीवन भी।
पलटू जिनके सबद का लगा कलेजे तीर।
सबद छुड़ावै राज को, सबदै करै फकीर।।
लग जाने दो यह तीर। यह छीन लेगा जो व्यर्थ है, उसे, और भर देगा झोली सार्थक से। जगत का राज तो चला जाएगा, लेकिन परमात्मा का राज्य मिलेगा।
साहस करो! हिम्मत करो!

तुम्हारी याद के जब जखम भरने लगते हैं किसी बहाने तुम्हें याद करने लगते हैं हदीसे-यार के उनवां निखउने लगते हैं
तो हर हरीम में गेसू संवरने लगते हैं।
हर अजनबी हमें महरम दिखाई देता है
जो अब भी तेरी गली से गुजरने लगते हैं।
सबा से करते हैं गुरबत-नसीब जिक्रे-वतन
तो चश्मे-सुब्ह में आंसू उभरने लगते हैं।
वो जब भी करते हैं इस नृत्को-लब की बखियागरी फिजा में और भी नग्मे बिखरने लगते हैं।
दरे-कफस पे अंधेरे की मोघ लगती है
तो फैज दिल में सितारे उतरने लगते हैं।
याद करनी होगी। याद जगानी होगी।
तुम्हारी याद के जब जखम भरने लगते हैं
किसी बहाने तुम्हें याद करने लगते हैं
सदगुरु बहाने खोजता है तुम्हारे लिए। बहुत बहाने खोजता है। यहां तुम्हारे लिए कितने बहाने खोजे जा रहा हैं, कि किसी तरह याद आ जाए! किसी को चुपचाप बैठे-बैठे याद आए तो चुपचाप बैठो। किसी को वीणा छेड़ कर याद आए तो वीणा छेड़ो। किसी को पैरों में घूंघर बांध कर याद आए तो घूंघर बांधो। कोई सुन कर समझ सके तो सुन कर समझो। कोई चुपचाप मौन में गुन सके तो मौन में गुनो। सब उपाय। लेकिन सब उपायों का अर्थ एक है--
तुम्हारी याद के जब जखम भरने लगते हैं
किसी बहाने तुम्हें याद करने लगते हैं।
हर अजनबी हमें महरम दिखाई देता है
जो अब भी तेरी गली से गुजरने लगते हैं।
और उसके मंदिर में प्रवेश तो दूर, उसकी गली से भी गुजर जाओ, तो फिर कोई अपरिचित नहीं मालूम होता, सब अपने मालूम होते हैं।
हर अजनबी हमें महरम दिखाई देता है
अजनबी भी परिचित मालूम होता है, प्यारा मालूम होता है। क्योंकि हरेक
के भीतर उसी की झलक, उसी की रौनक, उसी का जलवा।
हर अजनबी हमें महरम दिखाई देता है
जो अब भी तेरी गली से गुजरने लगते हैं।

तुम्हारी याद के जब जख्म भरने लगते हैं
किसी बहाने तुम्हें याद करने लगते हैं।
खोजो बहाने। सब विधियां, विधान, बस बहाने हैं। किसी तरह तुम्हारे हृदय को उघाड़ने के लिए तुम्हें राजी करना है। वह तो तीर लिए तैयार है। उसने तो तीर प्रत्यंचा पर कब का चढ़ा रखा है। मगर तुम्हारा हृदय गीता, कुरान, बाइबिल, न मालूम कितनी-कितनी ओटों में छिपा है। हटाओ ये दीवालें! उतर जाने दो उसका तीर! झरने फूट पड़ेंगे आनंद के, उत्सव के!
तुम मालिक हो उन झरनों के। गंवा मत देना! बहुत जन्मों में गंवाया है--
अब और नहीं!
भजन आतुरी कीजिए, और बात में देर
और बात में देर, जगत में जीवन थोरा।
मानुष-तन धन जात, गोड़ धरि करौं निहोरा।।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
चौथा प्रवचन

मनुष्य-जाति के बचने की संभावना किनसे?

भगवान,
इन दिनों यहां रह रहा हूं, बहुत सी बातें भीतर घट रही हैं। पूछना आता नहीं। आप सब जानते हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि भीतर बहुत दबाया है और बाहर बहुत न होने दे रहा हूं। आज सुबह के प्रवचन में आपने उतर तो दे ही दिया है, फिर भी उचित समझें तो कुछ और मार्गदर्शन करने की अनुकंपा करें। पहले भी कई बार प्रश्न पूछने का मन होता था, लेकिन डर, संकोच और कैसे पूछें यह नहीं आता था, इसलिए कभी पूछ नहीं पाया। आपकी अनुकंपा अपार है!
भगवान,
प्रश्न मैं हूं। अपनी सारी कमजोरियों, सारी बीमारियों, सभी सीमाओं सहित। यानी जैसा अब मैं हूं फिलहाल एक प्रश्न हूं। जवाब निस्संदेह आप हैं। फिर यह प्रश्न गिर क्यों नहीं जाता, मिट क्यों नहीं जाता? मर्ज हूं मैं, दवा हैं आप, फिर भी मर्ज ज्यों का त्यों हैं--उलटे बढ़ता जाता है। भगवान,
क्या परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है?
भगवान,
मेरी शादी होने वाली है। इससे मेरी सत्य की खोज कुंठित होगी, या इससे सहयोग मिलेगा? प्रभु, मुझे मार्गदर्शन दें!
भगवान,
जमाना एहले-खिरद तो हो चुका मायूस
कुछ अजब नहीं कोई दीवाना काम कर जाए...

पहला प्रश्नः भगवान, इन दिनों यहां रह रहा हूं, बहुत सी बातें भीतर घट रही हैं। पूछना आता नहीं। आप सब जानते हैं। फिर भी ऐसा लगता है कि भीतर बहुत दबाया है और बाहर बहुत न होने दे रहा हूं। आज सुबह के प्रवचन में आपने उत्तर तो दे ही दिया है, फिर भी उचित समझें तो कुछ और मार्गदर्शन करने की अनुकंपा करें। पहले भी कई बार प्रश्न पूछने का मन होता था, लेकिन डर, संकोच और कैसे पूछें यह नहीं आता था, इसलिए कभी पूछ नहीं पाया। आपकी अनुकंपा अपार है!

सागर चैतन्य! एक शब्द अनुकंपा को जोर से पकड़ लो! शेष सब फिर अपने से हो जाएगा। एक तो रास्ता है संकल्प का, संघर्ष का, एक रास्ता है समर्पण का, अहंकार-विसर्जन का। संघर्ष का रास्ता तो कंटकाकीर्ण है। और संघर्ष के रास्ते पर खतरा है अहंकार के जन्म का। समर्पण का रास्ता अति सुविधा का है, क्योंकि जो बड़े से बड़ा खतरा है, अहंकार के जन्मने का, समर्पण के मार्ग पर उसकी कोई संभावना नहीं। समर्पण करो!
छोटी-छोटी बातें हैं। उन्हें छोड़ना असंभव मालूम होता है। क्योंकि वे सारी छोटी-छोटी बातें अहंकार का हिस्सा हैं। क्रोध है, काम है, लोभ है, इन्हें तुम छोड़ना चाहोगे--और कौन नहीं छोड़ना चाहता! क्योंकि क्रोध से, काम से, लोभ से मिलता क्या है सिवाय पीड़ा के, सिवाय विषाद के! सिवाय नरक के और निर्मित नहीं होता कुछ इनसे। इसलिए जिसमें थोड़ी भी बुद्धि की किरण है, वह छोड़ना ही चाहेगा।
मगर जो छोड़ना चाहता है, वह और भी उलझन में पड़ जाता है। एक नई उलझन। काम-क्रोध-मोह तो अपनी जगह खड़े हैं और एक छोड़ने का नया उपद्रव! और छोड़े छूटते नहीं! जितना छोड़ो उतना जोर से पकड़ते, जकड़ते मालूम पड़ते हैं। छोड़ने वाला और भी अशांत, उद्विग्न मन हो जाता है। क्योंकि मूल भूल हो रही है। काम-लोभ-क्रोध, सब अहंकार की जड़ से पैदा होते हैं। जड़ को काटोगे नहीं, पत्तों को छांटोगे, जिंदगियां ऐसे ही गंवाईं, जिंदगियां और गंवाओगे। पत्ते छांटते रहो, कलमें करते रहो, वृक्ष और घना होता जाएगा। कुठाराघात करना है जड़ पर। एक ही कुल्हाड़ी में काम हल हो जाता है, तो फिर हजार चोटें क्यों करनी? सौ

सुनार की एक लुहार की। लुहार की ही चोट करो। एक ही चोट से काम हो जाए। इसीलिए तुमसे कहता हूंः अनुकंपा शब्द को पकड़ लो। वही तुम्हारा शास्त्र। वही तुम्हारा वेद। कहो कि मेरे किए तो कुछ नहीं होता, अब छोड़ता हूं प्रभु के हाथों में। और फिर जैसा चलाए प्रभु, चलो। फिर निस्संकोच चलो। फिर निर्भय चलो। पूरब तो पूरब, पश्चिम तो पश्चिम। फिर छोड़ ही दो यह करने का भाव, कर्ता का भाव। और तब तुम चकित होकर रह जाओगे, जिसने समर्पण किया, उसके जीवन में धर्म का अपने आप अवतरण होता है।
यामिनी बीती

रात सबकी नींद थी, पर जागरण मेरा
अथिरता में डगमगाया था चरण मेरा
तम विशाल अनीक छोटी किरन ने जीती
यामिनी बीती

उषा ने दे दी गगन के भाल, रोली
विश्व भर की भर गई आलोक से झोली
भरेगी कब हृदय की मेरी कुटी रीती
यामिनी बीती

मैं चलूं तिरना मुझे दुर्लंघ्य सागर है
कहीं सागर पार मेरे राम का घर है
कृपा उनकी हो अगर तो मिले मनचीती
यामिनी बीती

रात बीत जाए अभी, सुबह हो जाए अभी, परमात्मा की अनुकंपा पर सब छोड़ दो। यही भक्ति का सारसूत्र है। नहीं मेरे किए कुछ होगा, उसकी मर्जी! भटकाए तो भटकेंगे। इतनी भी हिम्मत होनी चाहिए संन्यासी की, कि परमात्मा भटकाए तो भटकेंगे, कि परमात्मा अंधेरी गलियों में ले जाए तो जाएंगे। जब सब उस पर छोड़ दिया, तो निर्णय हमारा नहीं। तो फिर हम शुभ और अशुभ का भी भेद न करेंगे। फिर जब उसकी ही छाया बनती है, तो समग्ररूपेण बनेंगे। पहले तो खतरा मालूम होता है कि ऐसे सब छोड़े देंगे, तो हमसे तो फिर भूलें ही भूलें होंगी। क्योंकि हमसे तो भूलें होती हैं, इतनी होशियारी रखते हैं तो भी; इतना सम्हल कर चले हैं, फिर भी गिर-गिर पड़ते हैं; और अगर सम्हलना भी छोड़ दिया, सब उस पर छोड़ दिया, तो फिर तो गिरने के सिवाय हमारी कोई नियति न होगी।
नहीं, जीवन का शास्त्र कुछ और है। तुम गिरते हो, क्योंकि सम्हलने की कोशिश करते हो। तुम सम्हलने की कोशिश में ही गिरते हो। सम्हलने की कोशिश में अहंकार सम्हलता है और वही गिरना है। अगर तुम गिरने को भी राजी हो जाओ-- वह गिराए तो गिरेंगे, हम कौन हैं जो बीच में आएं; वह मिटाए तो मिटेंगे; अगर नर्कों में ही उसे ले जाना है, तो वही हमारे लिए स्वर्ग है--ऐसी जिसके मन में समग्र शरणागति है, वह सम्हल गया। उसके गिरने का उपाय ही न रहा। उसे कोई चीज गिरा नहीं सकती। अब उसके लिए गड्ढे बचे ही नहीं। अब भटकाव हो ही नहीं सकता।
ईसप की प्रसिद्ध कथा है सेंटीपीड, शतपदी के संबंध में। शतपदी के सौ पैर होते हैं, इसलिए नाम शतपदी, सेंटीपीड। एक शतपदी जा रहा है--सुबह सूरज निकला है, अभी-अभी सोकर उठा है, रात भर का ताजा-मस्त, सुबह की ताजी हवा और सूरज की किरणें, नाश्ते की तलाश में निकला है। एक खरगोश उसे देखता है। उसके सौ पैरों को देखता है, बड़े गौर से देखता है, बड़ा किंकर्तव्यविमूढ़ हो जाता है। पूछता है कि हे शतपदी, क्या मेरे एक प्रश्न का उत्तर दोगे? शतपदी ने कहाः क्या पूछना है? उस खरगोश ने कहा, एक विचार जब भी तुम्हें देखता हूं उठता है, कभी पूछा नहीं, क्योंकि क्यों अकारण तुम्हारे जीवन के संबंध में कुछ प्रश्न उठाऊं, शोभा नहीं मालूम होता, शिष्ट नहीं मालूम होता, पर आज रहा नहीं जाता; बहुत हो गया दबाते-दबाते, आज तो पूछूंगा; तुम सौ पैर कैसे सम्हाल पाते हो? कब पहला उठाना, कब दूसरा, कब तीसरा, कब चौथा, कब पचासवां,

कब अस्सीवां, कब निन्यानबेवां, कब सौवां, कैसे हिसाब रखते हो? लड़खड़ा नहीं जाते? उलझ नहीं जाते? पैर में पैर नहीं फंस जाते? चले जाते हो जैसे कि कोई सैनिकों की कतार जा रही हो, धड़धड़ाते! कभी तुम्हें गिरते नहीं देखा। शतपदी ने कहा कि प्रश्न कठिन है, मैंने कभी इस पर सोचा नहीं। जन्म से ही सौ पैर हैं, सो चलता रहा हूं। कभी नीचे झांककर विचार नहीं किया। अब तुम कहते हो तो सोचूंगा, विचारूंगा, उत्तर दूंगा।
और जो होना था वही हुआ।
पहली दफा चेष्टापूर्वक उसने पैर उठाया कि देखूं पहले कौन-सा उठता है? फिर दूसरा, फिर तीसरा--सौ पैरों के चक्कर में बुरी तरह खो गया। वहीं लड़खड़ा कर गिर गया। अभी खरगोश गया भी नहीं था। खरगोश ने उसे गिरते देखा, कहा, शतपदी, कभी तुम्हें गिरते नहीं देखा, यह क्या हो रहा है? शतपदी ने कहा कि नासमझ, यह तेरी ही करतूत है! मैं सदा चलता रहा, कभी मैंने स्वयं चलने की चेष्टा नहीं की; तूने मुझे सचेष्ट कर दिया, मेरा अहंकार बीच में आ गया, सोच-विचार में पड़ गया, उसी में पैर लड़खड़ा गए। मैं खुद ही समझ नहीं पाया कि कौन सा पहले, कौन सा पीछे? अब तक यह सब होता था निसर्ग से, आज बीच में मैं खड़ा हो गया, निसर्ग में बाधा पड़ गई।
मेरी शिक्षा हैः निसर्ग। जीओ। शरीर की एक प्रकृति है, उससे अन्यथा मत जाओ। जाने की जरूरत नहीं। चैतन्य की प्रकृति है--इसी प्रकृति का और उच्चतम शिखर। शरीर अगर बुनियाद है, तो आत्मा उसी मंदिर का स्वर्ण-शिखर। दोनों एक ही प्रकृति के दो पहलू हैं। इसी प्रकृति का नाम परमात्मा है। परमात्मा कहीं और नहीं। प्रकृति को समर्पण करो। लड़ो मत, झगड़ो मत, सजाओ-संवारो मत, अहंकार के आयोजन न करो--नहीं सिद्धपुरुष होना है, न संत, न महात्मा; सरल होना है, सहज होना है, नैसर्गिक होना है, स्वस्फूर्त होना है। यह अगर परमात्मा पर छोड़ सको तो हो जाए।
बस, अनुकंपा शब्द को सम्हालो। वही तुम्हारी साधना। और बीत जाएगी रात। सुबह सुनिश्चित है। सुबह है ही। रात हमने पैदा की ही। अस्तित्व तो सदा सुबह में है। वहां तो प्रकाश ही प्रकाश है। अंधेरा हमारा अहंकार है। एक अहंकार धन कमाता है, एक अहंकार पद, एक अहंकार त्याग करता है, एक अहंकार साधना में लग जाता है--ये सब अहंकार की ही अलग-अलग अभिव्यक्तियां हैं। समर्पण भर अहंकार की अभिव्यक्ति नहीं है। डाल दो सब उसके चरणों में। कहो, जैसी तेरी मर्जी! और फिर एक बार जीकर देखो। एक नया ही रस, एक नया ही अमृत, एक नया ही स्वाद जीवन में उठेगा। वही समाधि का स्वाद है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, प्रश्न मैं हूं। अपनी सारी कमजोरियों, सारी बीमारियों, सभी सीमाओं सहित। यानी जैसा अब मैं हूं, फिलहाल एक प्रश्न हूं। जवाब निस्संदेह आप हैं। फिर यह प्रश्न गिर क्यों नहीं जाता, मिट क्यों नहीं जाता? मर्ज हूं मैं, दवा हैं आप, फिर भी मर्ज ज्यों का त्यों है--उलटे बढ़ता जाता है।

रणवीर! प्रश्न तुम हो, जवाब मैं हूं, तो प्रश्न हल कैसे होगा? प्रश्न तुम हो तो जवाब भी तुम्हें ही होना पड़ेगा। जवाब मैं हूं, तो मेरा प्रश्न हल हो गया। जहां समस्या है, वहीं समाधान चाहिए। समस्या एक जगह, समाधान दूसरी जगह है--दोनों का मिलन ही न होगा।
यही तो अड़चन है सदियों की।
तुम प्रश्न हो, कृष्ण उत्तर हैं। तुम प्रश्न हो, क्राइस्ट उतर हैं। तुम प्रश्न हो, मुहम्मद उत्तर हैं। रहे आएं मुहम्मद, कृष्ण और क्राइस्ट उत्तर, क्या होगा? सवाल है तुम्हारा। जहां प्रश्न है, वहीं खुदाई करो। हर प्रश्न के भीतर उत्तर छिपा है। हर समस्या की तलहटी में खोदोगे, समाधान पाओगे। अगर तुमने मुझे उत्तर माना, तो उलझन शुरू हुई। मेरा उत्तर तुम्हारे लिए ज्यादा से ज्यादा विश्वास होगा, ज्ञान नहीं हो सकता। मेरा उत्तर तुम्हारे भरोसे पर निर्भर होगा, तुम्हारी प्रतीति और साक्षात्कार पर नहीं। तुम मुझ पर श्रद्धा कर सकते हो, मगर श्रद्धा ऊपर-ऊपर ही होगी। तुम्हारे प्राणों में तो कहीं संदेह बना ही रहेगा। इसलिए बीमारी घटेगी

नहीं। और जैसे-जैसे तुम दवा करोगे, मर्ज बढ़ेगा। क्योंकि पहली बीमारी थी, वह तो रहेगी ही, अब मेरे उत्तरों को तुम जो पकड़ोगे उनसे नई बीमारियां पैदा होंगी। पहला प्रश्न तो अपनी जगह है, मेरा उत्तर और नये दस प्रश्न खड़े करेगा, इससे बीमारी बढ़ेगी।
नहीं, यह कोई सुलझने-सुलझाने का रास्ता नहीं है। तुम अपने ही भीतर जाओ, आत्मदर्शन करो, अपना साक्षात्कार करो।
चलो सही कि तुम प्रश्न हो। परमात्मा प्रत्येक को प्रश्न की तरह ही जन्म देता है, और आशा रखता है कि तुम उत्तर की तरह मरोगे। प्रश्न की तरह भेजता है, उत्तर की तरह चाहता है कि तुम वापस लौटो। जगत एक अनुभव, एक पाठशाला, जहां प्रश्न उत्तर बनते हैं। एक कसौटी, जहां कसा जाता है जीवन अनुभव में, जहां पकता है जीवन अनुभव में। लेकिन हम हैं सब कमजोर, कायर। हम उधार उत्तर स्वीकार कर लेते हैं। कौन खोजे? कौन खोज की झंझट में पड़े? खोजना-तलाशना-जिज्ञासा तो लंबी यात्रा है। और खतरों से भरी। और हजार अड़चनों को पार करना होगा। लेकिन किसी और का उत्तर स्वीकार कर लेना तो बड़ा सस्ता है। तुम्हें कुछ करना ही नहीं पड़ता। लेकिन अगर मेरे श्वास लेने से तुम्हें श्वास नहीं मिलती, तो मेरे समाधान होने से तुम्हारा समाधान नहीं होगा। अगर मेरा जीवन तुम्हारा जीवन नहीं बन सकता, अगर तुम लंगड़े हो तो मेरे पैर तुम्हारे पैर नहीं बनते, और अगर तुम अंधे हो तो मेरी आंखों से तुम देख न सकोगे, तुम्हें तुम्हारी आंखों की चिकित्सा करवानी ही होगी।
मैं तुम्हें उतर नहीं दे रहा हूं। ज्ञान देने में मेरी जरा भी उत्सुकता नहीं है। मैं चाहता हूं, या तो तुम ध्यान लो, या भक्ति लो। ध्यान लो या भक्ति, दोनों ही स्थिति में तुम्हें स्वयं ही समाधान बनना होगा। और जिस दिन कोई स्वयं समाधान बनता है, उस दिन कैसे प्रश्न? सारे प्रश्न गिर जाते हैं। जैसे दीया जले और अंधकार समाप्त हो जाए। ऐसी तुम्हारे भीतर की रोशनी जलनी चाहिए।
सारे प्रश्न सुंदर हैं। क्योंकि प्रश्न न होते तो जिज्ञासा न होगी। जिज्ञासा न होती तो तुम खोज पर न निकलते। लेकिन तुम कर लेते हो बेईमानी। प्रश्न तो सच्चे हैं, उत्तर उधार ले लेते हो। इससे पांडित्य पैदा भले हो जाए, मगर जीवन में समाधान नहीं हो सकता। समाधान तो केवल समाधि से होता है। और समाधि का अर्थ हैः स्वयं के भीतर एक ऐसे चैतन्य की दशा, जहां न कोई विचार है, न कोई भाव है, न कोई स्मृति, न कोई कल्पना--जहां चित्त की सारी लहरें शांत हो गईं; जहां चित्त के सारे व्यापार निरोध को उपलब्ध हो गएः चित्त वृत्ति निरोधः बस वह योग की दशा है। जहां झील चित्त की बिल्कुल ही तरंग-शून्य हो गई। उस तरंग-शून्य झील में चांद का प्रतिबिंब बन जाता है। ऐसे ही तुम्हारी चेतना की शांत शून्य अवस्था में परमात्मा का साक्षात्कार हो जाता है। सत्य का साक्षात्कार ज्ञान है।
मेरा ज्ञान तुम्हारे लिए ज्ञान नहीं है। मेरा सत्य तुम्हारे लिए तो झूठ हो जाएगा। उधार सत्य झूठ हो जाते हैं। अगर उधार सत्य सत्य हो सकते होते, तो एक बुद्ध ने पा लिया था, सब बुद्ध हो गए होते। एक कबीर ने पा लिया, सब ज्ञान को उपलब्ध हो जाते। एक नानक ने पा लिया, अब सबको पाने की क्या जरूरत होती?
यही भेद है विज्ञान और धर्म का।
विज्ञान में एक व्यक्ति उत्तर पा लेता है, वही उत्तर सबका उत्तर हो जाता है। क्यों? क्योंकि विज्ञान बाहर की खोज है। जो बाहर है, उसे सब देख सकते हैं। अगर हम एक गुलाब के फूल को रख दें लाकर, तो तुम सबको दिखाई पड़ेगा। पदार्थ है, विषय है। विज्ञान पदार्थगत है। इसलिए न्यूटन कुछ खोज ले, एडीसन कुछ खोज ले, कि अलबर्ट आइंस्टीन कुछ खोज ले, फिर हर आदमी को बार-बार नहीं खोजना पड़ेगा। आइंस्टीन ने खोज लिया सापेक्षता का सिद्धांत, अब सबका हो गया। अब तुम्हें भी उसी खोज से गुजरने की जरूरत न रही।
विज्ञान वस्तुगत है। वस्तुएं बाहर हैं। बाहर का ज्ञान सार्वजनिक हो जाता है। बाहर के ज्ञान की परंपरा बनती है। उसे लिया-दिया जा सकता है; स्कूल-कालेज-विश्वविद्यालय में पढ़ाया जा सकता है; शास्त्र से समझा जा सकता है, शब्द में अभिव्यक्त हो जाता है।

लेकिन धर्म है भीतर की अनुभूति। गुलाब के फूल को तो मैं रख सकता हूं तुम्हारे सामने, सबको दिखाई पड़ेगा, लेकिन गुलाब के फूल में जो सौंदर्य मुझे दिखाई पड़ रहा है, उसे मैं तुम्हें कैसे दिखलाऊं? गुलाब के फूल में जो काव्य मुझे अनुभव हो रहा है, उसे कैसे तुम्हें अनुभव करवाऊं? गुलाब के फूल में जो परमात्मा मेरे लिए प्रकट हो रहा है, कैसे तुमसे उसकी मुलाकात करवाऊं? अगर कहूं कि परमात्मा मौजूद है, देखो! कि यह रंग, कि यह ढंग, कि यह गंध, कि यह सौंदर्य परमात्मा का है, तो तुम कंधे बिचकाओगे। तुम कहोगे, गुलाब के फूल तक तो बात ठीक है, आगे हमें कुछ दिखाई नहीं पड़ता; हम कोई परमात्मा नहीं दिखाई पड़ता।
और ऐसा भी हो सकता है कि जो बहुत ही पदार्थगत है, वह तो पूछे कि सौंदर्य? सौंदर्य कहां है? फूल है, यह समझ में आता है, मगर सौंदर्य कहां है? दिखाओ। परीक्षण हो सके, इस ढंग से दिखाओ। प्रयोग हो सके, इस ढंग से दिखाओ। सौंदर्य भी दिखलाया जा नहीं सकता। और जिस काव्य की मैं बात कर रहा हूं, उस काव्य को तो तुम भी जिस दिन जान सकोगे, अनुभव कर सकोगे, बस उसी दिन जान सकोगे, अनुभव कर सकोगे। हां, मेरी बात चाहो तो मान लो।
और अक्सर यही हुआ।
मुझसे तुम्हें प्रेम है, मुझसे तुम्हें लगाव है, तो मैं जो कहूंगा, प्रेम की छाया में तुम उसे अंगीकार कर लोगे, तुम उसे स्वीकार कर लोगे। लेकिन यह स्वीकृति तुम्हारे जीवन को रूपांतरित नहीं कर सकती है। यह स्वीकृति बाधा बन जाएगी। मुझसे तो प्रेम करो, लेकिन मैं जो कहता हूं उसकी तलाश करनी होगी। मेरा प्रेम तुम्हें, खोजी बना सके, तो ही तुमने मुझे प्रेम किया। मेरा प्रेम तुम्हें विश्वासी बना दे, तो फिर तुम हिंदू, मुसलमान, ईसाई जैसे ही एक और नये ढंग के विश्वासी हो गए! फिर मैं जिस नयी धार्मिकता की बात कर रहा हूं, वह पैदा न हुई। फिर तुम्हें एक नया संप्रदाय और मिल गया। पुराने कारागृह से छूटे, एक नया कारागृह मिल गया। और पुराने से तो तुम छूटना चाहते थे, ऊब गए थे रहते-रहते, नये से शायद तुम छूटना भी न चाहो। शायद नया प्रीतिकर लगे। पुराना तो मां-बाप ने दे दिया था, नया तुमने खुद चुना है। इसलिए पुराने में तुम्हारा अहंकार उतना जुड़ा नहीं था, जितना नये में तुम्हारा अहंकार जुड़ेगा। अपना चुनाव है। स्वभावतः तुम नये से ज्यादा जकड़ जाओगे। पुरानी जंजीरें तो तोड़ी जा सकती हैं, क्षीण हो जाती हैं समय के कारण, लेकिन नई जंजीरें तो मजबूत होती हैं, अभी-अभी ढल के आती हैं कारखाने से, अभी तो बहुत मजबूत होती हैं।
मेरे प्रेम में अगर तुमने मेरी बातें मान लीं, तो वे बातें केवल जंजीरें बनेंगी--और नई जंजीरें पुरानी जंजीरों से भी ज्यादा खतरनाक हैं। मेरा प्रेम तो सिर्फ चांद की तरफ अंगुली का इशारा है। अंगुली मत पकड़ लेना। झेन फकीर रिंझाई कहा करता थाः मेरी अंगुली मत चाटो, मेरी अंगुली मत काटो, चांद की तरफ देखो। डोंट बाइट माय फिंगर, लुक ऐट दि मून। लेकिन लोग अंगुली चूसना ज्यादा पसंद करते हैं। जैसे छोटे बच्चे अंगुली चूसते हैं, ऐसे ही बड़े बच्चे... धर्म के जगत में तो छोटे ही हैं, वहां तो बच्चे ही हैं। धर्म के जगत में तो तुम अभी अपने झूले में ही झूल रहे हो। धर्म के जगत में तो तुम्हारी स्थिति वही है, जो छोटे बच्चे की जिसको लोरी सुनाई जा रही है; जिसे नींद की व्यवस्था की जा रही है कि जो किसी तरह सो जाए। छोटे बच्चे को सुलाने का आयोजन किया जा रहा है।
एक महिला का बच्चा रो रहा था, आधी रात। घर में कोई मेहमान ठहरा था, उसने कहा कि आप लोरी गाकर बच्चे को सुला क्यों नहीं देतीं? उस महिला ने कहा कि लोरी गाने पर मेरे पड़ोस के लोग ऐतराज करते हैं। अतिथि ने कहा, मैं कुछ समझा नहीं। उस महिला ने कहा, पड़ोस के लोग कहते हैं, तुम्हारी लोरी से तो तुम्हारे बच्चे का रोना ही अच्छा लगता है।
लोरियां सुला दें छोटे बच्चों को, लेकिन बड़ों को तो जगाने का कारण बन जाएं, उनको तो नींद तोड़ दे। धर्म के जगत में अभी तुम छोटे बच्चों की तरह हो। तुम लोरी ही चाहते हो। तुम्हारे गीता, तुम्हारे कुरान, तुम्हारे वेद और क्या हैं? तुमने उन्हें लोरियों में बदल लिया है। तुम उनको गाते हो और सो जाते हो। तुम गुनगुनाते हो और सो जाते हो। नींद की शामक दवाएं हो गईं।

और मुफ्त और सस्ती। और अहंकार को भी बड़ा तृप्त करने वाली, क्योंकि धार्मिक भी। परंपरा से आदृत भी।
मैं तुम्हें कोई लोरी नहीं दे रहा हूं। मैं तुम्हें जगाना चाहता हूं। चाहे अप्रीतिकर ही क्यों न लगे। छोटा बच्चा अंगुली चूसने लगता है, वह भी उसके सोने का ढंग है। अंगुली से वह अपने को धोखा देता है, लोरी से उसकी मां उसको धोखा देती है। मां कहती हैः सो जा, बेटा! मुन्ना, राजा, सो जा बेटा! बार-बार दोहराती हैः मुन्ना, राजा, सो जा बेटा! अब तुम बार-बार किसी से भी दोहराओ, बहुत ज्यादा दोहराओः सो जा बेटा, सो जा बेटा, तो बच्चा क्या बेटे का बाप भी सो जाए! उसकी खोपड़ी पर अगर यही बजाते रहो कि सो जा बेटा, सो जा बेटा, तो करे भी क्या! भाग सके नहीं, भाग कर अब जाए कहां, तो नींद ही भागने का एक उपाय है।
बच्चे क्यों सो जाते हैं बार-बार तुम्हारी बकवास सुनकर? और कहां जाएं? मां बैठी है छाती पर हाथ रखे, और दोहराए चली जा रही हैः सो जा बेटा! पहले बेटा थोड़ा कुनमुनाता है, करवट बदलता है, भाग भी सकता नहीं, इस अंधेरी रात में अब जाए तो जाए भी कहां, फिर एक ही भागने का उपाय बचता है कि नींद में भाग जाए। किसी तरह यह बकवास सुनना बंद हो! तो सो जाता है।
इसी तरह तुम दोहरा रहे हो लोरियां। अगर मां दोहराने को न मिले, तो बच्चा अपना अंगूठा चूसता है, अंगुली चूसता है। उससे भ्रम देता है मां के स्तन का। खुद को भी धोखा दे लेता है।
ऐसे ही धर्म के जगत में बड़े बच्चे हैं। वह शास्त्रों की अंगुलियां चूसने लगते हैं, सदगुरुओं की अंगुलियां चूसने लगते हैं। सोचते हैं पोषण मिल रहा है। यह पोषण नहीं है, जहर है। अंगुलियां चूसने के लिए नहीं हैं। मेरी अंगुली चांद की तरफ इशारा कर रही है। रणवीर, मेरी बातों को पकड़ो मत! अन्यथा ज्यों-ज्यों दवा करोगे, त्यों-त्यों मरीज हो जाओगे, त्यों-त्यों बीमारी बढ़ेगी। मेरा इशारा समझो। मैं क्या कह रहा हूं, उसको दोहराओ मत, उसको बौद्धिक संपदा मत बनाओ, मैं क्या कह रहा हूं, उसे जीवन का आचरण बनाओ, उसे अंतस की रूपांतरण की प्रक्रिया बनाओ; उससे गुजरो। मैं रसायन सिखा रहा हूं। यहां कोई दर्शनशास्त्र नहीं पढ़ाया जा रहा है। जीवन को बदलने की रसायन दी जा रही है।
तुम कहते हो, प्रश्न मैं हूं। अपनी सारी कमजोरियों, सारी बीमारियों
और सभी सीमाओं सहित। यानी जैसा अब मैं हूं, फिलहाल एक प्रश्न हूं। जवाब निस्संदेह आप हैं। फिर यह प्रश्न गिर क्यों नहीं जाता, मिट क्यों नहीं जाता? ऐसे नहीं गिरेगा। ऐसे नहीं मिटेगा। उत्तर भी तुम्हें ही बनना पड़ेगा, तो गिरेगा। अंधेरा तुम हो, रोशनी भी तुम्हें ही होना होगा। भटके तुम हो, राह पर भी तुम्हें ही आना होगा। आंखें तुमने बंद की हैं, मेरी आंखें खुली हैं, मगर मेरी खुली आंखें तुम्हारी बंद आंखों से क्या संबंध? तुम मुझे मान भी लो, मुझे आदर भी दो, सम्मान भी दो, तुम कहो कि मेरे गुरु की आंखें खुली हैं--तो गुरु की आंखें खुली हैं; फिर भी तुम्हारी आंखें बंद हैं सो बंद हैं। काम तुम्हारी आंखें पड़ेंगी। अपने दीए खुद बनो। सदगुरु यही सिखाता हैः अपने दीए खुद बनो।
और क्या है रास्ता बनने का?
प्रश्न के उत्तर मत खोजो। क्योंकि उत्तर कहां खोजोगे? उत्तर तो बाहर खोजे जाते हैं--शास्त्र में, सदगुरुओं से, समाज में। नहीं, प्रश्न के उत्तर मत खोजो, प्रश्न के साक्षी बनो। तुम्हारे भीतर प्रश्न ही प्रश्न हैं, कमजोरियां ही कमजोरियां हैं, बिल्कुल स्वाभाविक है। ऐसी ही सबकी दशा है। यह कुछ विशिष्ट बात नहीं। अपने को नाहक निंदित मत करना। ऐसी ही सबकी दशा है। यही स्वाभाविक है। इसे अंगीकार करो और इसके साक्षी बनो। भीतर खड़े होकर देखो अपनी सारी बीमारियां, अपनी सारी सीमाएं, अपने सारे प्रश्न, अपनी सारी समस्याएं--सिर्फ देखो, द्रष्टा बनो; कुछ और करना मत; छेड़छाड़ नहीं, रोक-टोक नहीं, अदल-बदल नहीं, हस्तक्षेप नहीं, दूर खड़े होकर--जितने दूर खड़े होकर देख सको उतना शुभ है। क्योंकि जितने दूर खड़े होकर देख सको उतना परिप्रेक्ष्य स्पष्ट होता है। जैसे कोई पहाड़ पर खड़ा होकर नीचे के मैदानों

को देखे। जैसे विहंगम-दृष्टि होती है, पक्षी की, आकाश में उड़ता है और नीचे देखता है, सब दिखाई पड़ता है, दूर-दूर तक दिखाई पड़ता है।
दूरी पैदा करो। साक्षीभाव सीखो। बस बैठ कर घंटे भर रोज देखो। सिर्फ देखो। दर्शन मात्र। नहीं बदलना कुछ अभी। जल्दी मत करना, कि यह प्रश्न बदला जाए, कि इसका उत्तर चाहिए, कि यह समस्या हटाई जाए, समाधान लाया जाए, कि यह बीमारी तो ठीक नहीं, स्वस्थ होना चाहिए, उपचार कहां है, औषधि कहां है? नहीं इस सबमें मत पड़ना। जो है, बुरा-भला जैसा है, बिना किसी निर्णय के और बिना किसी पक्षपात के, बिना शुभ-अशुभ की धारणा को लाए सिर्फ साक्षी बनकर देखो। और तुम चकित हो जाओगे, चमत्कृत हो जाओगे। जैसे-जैसे तुम्हारी देखने की क्षमता प्रगाढ़ होगी, वैसे ही वैसे दृश्य विलीन होने लगेंगे। इधर द्रष्टा जगेगा, उधर दृश्य क्षीण होने लगेंगे। क्योंकि वही ऊर्जा जो दृश्य बनती है, वही ऊर्जा द्रष्टा बन जाती है। जिस दिन तुम्हारा द्रष्टा पूरा का पूरा खड़ा हो जाएगा, उस दिन तुम पाओगेः न बचे कोई प्रश्न, न कोई समस्याएं, न कोई कमजोरियां, न कोई सीमाएं। अनायास तुम मुक्त हो गए हो। आ गई अपूर्व घड़ी। आ गया वह अदभुत क्षण, जहां व्यक्ति मिट जाता है और परमात्मा शुरू होता है। जहां सीमा का अतिक्रमण होता है, जहां बुद्धत्व का जन्म होता है।
समस्या है तो समाधान भी है। और बीमारी है तो औषधि भी है, लेकिन बाहर नहीं है बीमारी, बाहर औषधि भी नहीं है। बीमारी भीतर है, भीतर ही औषधि है। जिसने बीमारी दी है, उसने औषधि का इंतजाम पहले से ही कर दिया है।
तुमने कहावत सुनी न, जो चोंच देता है, वह चून पहले ही व्यवस्थित कर देता है। भूख देता है, भोजन पहले बना देता है। बच्चा पैदा भी नहीं होता और मां के स्तन में दूध आना शुरू हो जाता है। बच्चा पैदा हुआ कि मां का स्तन दूध से भर गया। तुम क्या सोच रहे हो बच्चा कुछ इंतजाम कर रहा है? इंतजाम हो रहा है! प्रकृति एक अदभुत लयबद्ध व्यवस्था है।
साक्षी बनो। साक्षी बनने में ही सत्य है, समाधि है; सम्यक-तत्व है।

तीसरा प्रश्नः भगवान, क्या परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है?

रामेश्वर! परमात्मा कोई व्यक्ति नहीं; परमात्मा का कोई अस्तित्व नहीं, क्योंकि परमात्मा स्वयं अस्तित्व है। और सब चीजों का अस्तित्व होता है, परमात्मा का अस्तित्व नहीं होता। परमात्मा तो अस्तित्व का ही दूसरा नाम है। परमात्मा कहो या अस्तित्व कहो, एक ही बात। मेरा अस्तित्व है, तुम्हारा अस्तित्व है, वृक्षों का, पहाड़ों का अस्तित्व है, परमात्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। वृक्षों का जो अस्तित्व है, मेरा जो अस्तित्व है, तुम्हारा जो अस्तित्व है, पहाड़ों का जो अस्तित्व है, उस समग्रीभूत अस्तित्व का नाम परमात्मा है।
तो पहली बात, परमात्मा का कोई अस्तित्व नहीं है। इसलिए सिद्ध करने की बात ही नहीं उठती। इतना तय है कि अस्तित्व है। क्या अस्तित्व को भी सिद्ध करना होगा? तुम हो, इतना तो पक्का है। शेष सब होगा स्वप्न, मगर एक बात तो पक्की है कि सपना देखने वाला सत्य है। सपना देखने के लिए भी कम से कम सपना देखने वाला तो चाहिए ही चाहिए। सपना देखने वाले के बिना तो सपना भी नहीं हो सकता। तो तुम तो सत्य हो। और तुम अगर सत्य हो तो परमात्मा सत्य है। तुम्हारे होने का नाम ही परमात्मा है।
इस होने की फिर बहुत ऊंचाइयां हैं। यह होना कीचड़ में पड़ा हो, जैसे कि कोहिनूर कीचड़ में पड़ा हो, तो संसार। यह कोहिनूर कीचड़ से उठ आए, धुल जाए, निखर जाए, पारखी के हाथ लग जाए, जौहरी को मिल जाए; और जौहरी इस पर धार रखे, चमक दे, इस पर पहलू उघाड़े, तो यही कोहिनूर मोक्ष बन जाता है, निर्वाण बन जाता है।
जब कोहिनूर हीरा मिला था तो आज उसका जितना वजन है; इससे तीन गुना ज्यादा वजन था। मगर कीमत कुछ भी न थी। वजन तीन गुना ज्यादा था, मगर कीमत कुछ भी न थी। दो कौड़ी का न था। सदियों में जौहरी उस पर मेहनत पर मेहनत करते रहे, कलाकारों ने उसे निखारा और निखारा और निखारा; इस निखारने में, नये-नये

पहलू उघाड़ने में, कोहिनूर का वजन तो कम हो गया, एक तिहाई बचा, लेकिन आज कीमत उसकी अरबों रुपए है। अकूत है। इधर वजन कम हुआ, उधर कीमत बढ़ी। स्थूलता कम हो गई, सूक्ष्मता बढ़ी।
तुम हो तो परमात्मा है। रामेश्वर, तुम्हारा अस्तित्व प्रमाण है। और क्या प्रमाण चाहते हो?
लेकिन लोग चाहते हैं कि परमात्मा इस तरह सिद्ध किया जो, जिस तरह विज्ञान चीजों को सिद्ध करता है। जैसे दो और दो चार, ऐसे सिद्ध किया जाए। कि सौ डिग्री पर पानी भाप बनता है, ऐसे सिद्ध किया जाए। परमात्मा इस तरह कभी सिद्ध नहीं होगा। इस तरह जो सिद्ध करने चलेंगे, उनसे सिर्फ इतना ही होगा कि परमात्मा असिद्ध हो जाएगा। यह तो ऐसे ही हुआ जैसे कोई कान से फूलों की गंध लेना चाहे, कि आंख से संगीत सुनना चाहे, कि नाक से रोशनी देखना चाहे। कान गंध लेने को नहीं बने हैं। हां, कान से संगीत सुना जा सकता है। अगर तुम कानों से पूछोगे प्रमाण गंध का, तो कान कहेंगेः गंध होती ही नहीं। अगर नाक से पूछोगे अस्तित्व के संबंध में रंगों के, तो नाक कहेगीः रंग? कभी सुना नहीं। बापदादों ने भी नहीं बताया। शास्त्रों में भी नहीं लिखा। रंग होते ही नहीं। आंख से पूछो ध्वनि की बात, आंख क्या होगी? आंख निपट इनकार करेगी।
इसलिए विज्ञान इनकार करता परमात्मा से। कारण? कारण यह नहीं कि परमात्मा नहीं है, कारण यही कि विज्ञान की जो विधि है, स्थूल है। उससे कीचड़ तो पकड़ में आ जाती है, कमल छूट जाता है। बड़ी स्थूल है, बाह्य है। परमात्मा के लिए कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं हो सकता। इससे परमात्मा असिद्ध नहीं होता, इससे केवल विज्ञान की सीमा सिद्ध होती है। परमात्मा तो सिद्ध होता है अंतर अनुभव में।
इसलिए तुम यह मत पूछो कि क्या परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है? ज्यादा अच्छा हो कि पूछो कि मैं अपने अस्तित्व को कैसे जानूं? पूछो कि आत्मा को कैसे जानूं? क्योंकि जिसने आत्मा जानी, उसने परमात्मा जाना। जिसे अपने भीतर आत्मा का अनुभव हुआ, उसे तत्क्षण प्रकट हो गया कि सबके भीतर यही चैतन्य विराजमान है। अलग-अलग रूप, अलग-अलग ढंग, अलग-अलग विधा, मगर एक ही प्रकट हो रहा है। जिसने अपने भीतर पकड़ लिया उसे, उसने सबके भीतर पकड़ लिया। और अपने भीतर ही पहले पकड़ा जा सकता है।
लेकिन लोग अपनी तरफ तो देखते ही नहीं, लोग बाहर खोज रहे हैं, भाग रहे हैं कि परमात्मा कहां है? काशी में या काबा में? कहां परमात्मा है? वेद में कि कुरान में, कि बाइबिल में, कि धम्मपद में, कहां परमात्मा है? कहां जाएं? किस मंदिर में? किस मस्जिद में? भीतर जाओ, वहीं है काबा, वहीं है काशी, वहीं है कैलाश। लेकिन भीतर तुम जाते ही नहीं। वहां गहन उदासी छाई है। वहां बिल्कुल तुम मुर्दा हो गए हो। क्योंकि गए ही कभी नहीं तो गर्द-गुबार जम गई है। सदियों की गर्द-गुबार है।
न पूछो कौन हैं क्यों राह में नाचार बैठे हैं
मुसाफिर हैं, सफर करने की हिम्मत हार बैठे हैं।

उधर पहलू से तुम उट्ठे, इधर दुनिया से हम उट्ठे
चलो, हम भी तुम्हारे साथ ही तैयार बैठे हैं।

किसे फुरसत, कि फर्जे-खिदमते-उलफत बजा लाए
न तुम बेकार बैठे हो, न हम बेकार बैठे हैं।

जो उट्ठे हैं तो गर्मे-जुस्तुजू-ए-दोस्त उट्ठे हैं जो बैठे हैं तो मह्वे-आरजू-ए-यार बैठे हैं।

मकामे-दस्तगीरी है, कि तेरे रहरु-ए-उलफत
हजारों जुस्तुजूएं करके हिम्मत हार बैठे हैं

न पूछो, कौन हैं, क्या मुद्दआ है, कुछ नहीं बाबा!

गदा हैं और जेरे-साया-ए-दीवार बैठे हैं।

ये हो सकता नहीं, आजाद से मयखाना खाली हो
वो देखो! कौन बैठा है, वही सरकार बैठे हैं।
हिम्मत हार दी है। लाचार हो गए हैं। नाचार हो गए हैं। भीतर पैर ही नहीं उठता।
न पूछो, कौन हैं, क्या मुद्दआ है, कुछ नहीं बाबा!
गदा हैं और जेरे-साया-ए-दीवार बैठे हैं।
मत पूछो कि कौन हैं? पता भी नहीं है खुद कि कौन हैं। मत पूछो कि मुद्दआ क्या है? जीवन का लक्ष्य क्या है? कुछ नहीं बाबा! गदा हैं... भिखारी हैं... और जेरे-साया-ए-दीवार बैठे हैं। और बस दीवाल की छाया मिल गई तो उसके किनारे बैठे हैं। पूछो ही मत कि कौन हैं, क्या हैं? यह जिंदगी, ऐसी जिंदगी परमात्मा के अस्तित्व को नहीं पा सकती। लेकिन परमात्मा के अस्तित्व को पाया जा सकता है। जरा, तुम्हें बदलना पड़े। तुम्हें थोड़े अपने जीवन को नया चंग, नया रंग, नई शैली देना पड़े।
जो उट्ठे हैं तो गर्मे-जुस्तुजू-ए-दोस्त उट्ठे हैं
जो बैठे हैं तो मह्वे-आरजू-ए-यार बैठे हैं।
इस तरह उठो कि उसकी तलाश के लिए उठ रहे हो। इस तरह बैठो कि उसी की याद में डूबे बैठे हो।
जो उट्ठे हैं तो गर्मे-जुस्तुजू-ए-दोस्त उट्ठे हैं
दोस्त की खोज के लिए उठो।
जो बैठे हैं तो मह्वे-आरजू-ए-यार बैठे हैं।
तो तल्लीन हैं, उसकी ही याद में, ऐसे बैठो। यही प्रार्थना, यही पूजा, यही अर्चना। तो जरूर मिल जाएगा उसका प्रमाण। लेकिन प्रमाण भीतर मिलेगा।
बौद्धिक नहीं होगा प्रमाण, अस्तित्वगत होगा। और एक बार भीतर दिखाई पड़ जाए, तो सारा संसार उसी का सागर हो जाता है।

नजर में, रूह में, दिल में समाए जाते हैं,
हर एक आलमे-इसकां पे छाए जाते हैं।

जो उठ सके थे न खुद हुस्न के उठाए से
वो पर्दा-हाय-दुई अब उठाए जाते हैं।

छिपा-छिपा के जिन्हें मसलहत ने रक्खा था,
वो जलवे अब सरे-महफिल दिखाए जाते हैं।

ये कस्रे-हुस्न है आतश-कदा मुहब्बत का, बजाए शम्अ, यहां दिल जलाए जाते हैं।

तमाम आलमे-महसूस कांप उठता है,
जब आंख से कहीं आंसू बहाए जाते हैं।

हमारा हाल तो देखा, हमारा जर्फ भी देख,
निगाह उठती नहीं, गम उठाए जाते हैं।

तलाश लाजिमा-ए-आशिकी नहीं सागर
न ढूंढने पे भी वो हम में पाए जाते हैं।
जो अपने भीतर झांककर देखता है, उसे चकित होकर यह सत्य पता चलता हैः तलाश लाजिमा-ए-आशिकी नहीं सागर, सच्चे प्रेमी को उसकी तलाश में कहीं जाने की जरूरत ही नहीं है।
तलाश लाजिमा-ए-आशिकी नहीं सागर
न ढूंढने पे भी वो हम में पाए जाते हैं।

जो अपने भीतर बैठता है, वह चकित होकर देखता हैः न ढूंढने पे भी वो हम में पाए जाते हैं। फिर तुम ढूंढो या न ढूंढो, पाओगे ही, पाओगे ही पाओगे, बच नहीं सकते।
चलो भीतर! रामेश्वर, उसके प्रमाण न पूछो। उसकी राह पूछो। मार्ग पूछो।
और मार्ग बाहर की तरफ नहीं जाता। बाहर की तरफ संसार का विस्तार है। माना कि उसमें भी परमात्मा छिपा है, मगर तुम से पहचान न पाओगे अभी। पहली पहचान भीतर। पहली मुलाकात भीतर। पहले अपने से संबंध जोड़ लो, फिर ऐसी कोई जगह नहीं है जहां वह तुम्हें दिखाई न पड़े। पहले भीतर का दीया जलाओ, तो तुम्हें अंधेरे में भी दिखाई पड़ने लगे।
ये कस्रे-हुस्न है आतश-कदा मुहब्बत का... यह प्रेम मंदिर है, यह अग्नि
का मंदिर है... बजाय शम्अ, यहां दिल जलाए जाते हैं। और दिल को जलाने की कला सीखो। भीतर की मशाल जलाओ। भक्त की जलती, ध्यानी की जलती, प्रेमी की जलती, दीवानों की जलती। बुद्धिमान यही पूछते रहते हैंः क्या परमात्मा का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है?
और बुद्धिमानों से ज्यादा बुद्धू इस संसार में कोई दूसरा नहीं है। वे यही पूछते रहते हैं और यूं ही समय गंवाते रहते हैं। न अस्तित्व सिद्ध होता ह, न वे खोज पर निकलते हैं। उनका तर्क भी ठीक है। वे कहते हैं, जब तक अस्तित्व सिद्ध न हो जाए, तब तक हम खोज पर कैसे निकलें? और जिन्होंने खोजा है, उनका कहना हैः जब तक तुम खोजो न, तब तक अस्तित्व सिद्ध कैसे हो? बड़ी मुश्किल है। इन दो में से कुछ तुम्हें एक तय करना पड़े।
मुल्ला नसरुद्दीन नदी के किनारे गया था तैरना सीखने। जो उस्ताद उसे तैरना सिखाने को थे, वह तो एकदम चौंके, क्योंकि मुल्ला जैसे ही तट पर गया नदी के, पत्थर पर पैर फिसल गया--काई जमी होगी--भड़ाम से गिरा, एक पैर तो पानी में भी पड़ गया, कपड़े भी भींग गए, एकदम उठा और घर की तरफ भागा। उस्ताद ने कहा कि बड़े मियां, कहां जाते हो? मुल्ला ने कहा कि अब जब तक तैरना न सीख लूं, नदी के पास पैर न रखूंगा। यह तो खतरनाक धंधा है! यह तो उसकी दुआ कहो, यह तो उसकी कृपा कहो। अगर जरा और फिसल कर अंदर चला गया होता, तो उस्ताद, तुम तो खड़े थे बाहर, तुम तो देखते ही रहे, हम काम से गए थे! अब तो तैरना सीख लूंगा, तभी पानी के पास फटकूंगा।
अगर अब तैरना कहां सीखोगे? कोई गद्दे-तकिए बिछा कर तैरना सीखा जाता है। और गद्दे-तकिए बिछाकर तुम कितना ही तैरने का अभ्यास कर लो, पानी में काम न आएगा, ख्याल रखना। हाथ-पैर पटकना सीख लोगे गद्दे-तकिए पर, लेकिन पानी में सब बेकाम हो जाएगा।
नहीं, तैरना सीखने के लिए भी पानी के पास जाना ही पड़ता है। परमात्मा
का अस्तित्व कैसे सिद्ध करोगे? तर्क से? विचार से? तो तो तुम उल्टे काम में लग गए। परमात्मा को जाना है लोगों ने निर्विचार से। परमात्मा को जाना है लोगों ने हृदय से। और तुम सिद्ध करने लगे बुद्धि से। नहीं सिद्ध होगा, तो आज नहीं कल तुम कहोगेः है ही नहीं। और एक बार तुम्हारे मन में यह बात गहरी बैठ गई कि है ही नहीं, तो बस अटक गए। तो तुम्हारा विकास अवरुद्ध हुआ। गलत प्रश्न न पूछो! पूछो कि क्या मैं हूं? पूछो कि कैसे मैं जानूं कि मैं कौन हूं? परमात्मा को छोड़ो! परमात्मा से लेना-देना क्या है? पहले पानी की बूंद तो पहचान लो, फिर सागर को पहचान लेना। अभी बूंद से भी पहचान नहीं और सागर के संबंध में प्रश्न उठाए। वे प्रश्न व्यर्थ हैं। उनके उत्तर सिर्फ नासमझ देने वाले मिलेंगे। हां, किताबों में इस तरह के प्रमाण दिए हुए हैं, बड़े-बड़े प्रमाण दिए हुए हैं, बड़े पंडित, शास्त्री प्रमाण देते हैं ईश्वर के होने का। और उनके प्रमाण सब बचकाने, दो कौड़ी के! क्योंकि प्रमाण कोई दिया ही नहीं जा सकता।
क्या प्रमाण हैं उनके?
इस तरह के प्रमाण कि जैसे कुम्हार घड़ा बनाता है। बिना कुम्हार के घड़ा कैसे बनेगा? इसी तरह परमात्मा ने जगत को बनाया, वह कुम्भकार है कुम्हार है।... कर दिया शूद्र उसको भी! ... अब जरा कोई इन बुद्धिमानों से पूछे कि अगर घड़े को बनाने के लिए कुम्हार की जरूरत है, तो कुम्हार को बनाने के लिए भी तो किसी की जरूरत है! वह कहते हैं, हां, परमात्मा ने कुम्हार को बनाया। फिर

तुम्हारी दलील का क्या होगा? परमात्मा ने संसार बनाया, फिर परमात्मा को किसने बनाया?
यही तो बुद्ध ने पूछा, महावीर ने पूछा--और पंडितों की बोलती बंद हो गई। पंडित तो नाराज हो गए। इसको वह अतिप्रश्न कहते हैं। तुम पूछे कि संसार किसने बनाया, तो सम्यक प्रश्न। और कोई पूछे कि भई, जब बिना बनाए कोई चीज बनती ही नहीं, तो परमात्मा को किसने बनाया? तो अतिप्रश्न। तो जबान काट ली जाएगी। यह न्याय हुआ? तुम्हारा ही तर्क जरा आगे खींचा गया।
और फिर इसका अंत कहां होगा? अगर तुम कहो कि हां, परमात्मा को फिर और किसी बड़े परमात्मा ने बनाया, और उसको फिर किसी और बड़े परमात्मा ने बनाया, तो इसका अंत कहां होगा? यह तो अंतहीनशृंखला हो जाएगी, व्यर्थशृंखला हो जाएगी। नहीं, ऐसे प्रमाणों से कुछ सिद्ध नहीं होता। ऐसे प्रमाणों से सिर्फ प्रमाण देने वालों की नासमझी, बुद्धिहीनता, असंवेदनशीलता सिद्ध होती है और कुछ भी सिद्ध नहीं होता। परमात्मा सिद्ध नहीं होता, सिर्फ प्रमाण देने वालों का बुद्धूपन सिद्ध होता है।
बुद्ध परमात्मा का प्रमाण नहीं देते। बुद्ध परमात्मा का प्रमाण बनते हैं।
भेद को समझ लेना। बुद्ध प्रमाण बनते हैं परमात्मा का, बुद्ध प्रमाण होते हैं परमात्मा का। मैं तुमसे कहूंगा, तुम भी प्रमाण बनो। तुम भी प्रमाण बन सकते हो, क्योंकि तुम्हारे भीतर भी बुद्धत्व छिपा पड़ा है। झरने को तोड़ने की जरूरत है। जरा चट्टान हटाओ विचारों की और फूटने दो भाव का झरना! नाचो, गाओ जीवन के उत्सव को अनुभव करो! और तुम्हें पता चल जाएगा कि परमात्मा है। जिस दिन तुम जानोगे कि जीवन एक रास है; एक महोत्सव है, राग से, रंग से भरा; एक इंद्रधनुष है, सतरंगा; एक संगीत है, अदभुत स्वरों से पूर्ण, उस दिन परमात्मा का प्रमाण मिल गया। हालांकि तुम वह प्रमाण किसी और को भी न दे सकोगे। गूंगे का गुड़ हो जाता है वह अनुभव।
मगर धन्य हैं वे, जिन्हें कुछ ऐसा अनुभव मिल जाता है जिसे वह कह नहीं पाते। इस जगत में सर्वाधिक धन्य वे ही हैं, जिन्हें गूंगे का गुड़ मिल जाता है।

चौथा प्रश्नः भगवान, मेरी शादी होने वाली है। इससे मेरी सत्य की खोज कुंठित होगी, या इससे सहयोग मिलेगा? प्रभु, मुझे मार्गदर्शन दें!

सत्यानंद भारती! सब तुम पर निर्भर है। इस जगत की कोई परिस्थिति निर्णायक नहीं होती, निर्णायक होती है तुम्हारी मनःस्थिति। समझदार तो नर्क में भी परमात्मा को खोज लेते, और नासमझ स्वर्ग में भी उसे भूल जाते। सब तुम पर निर्भर है।
सुकरात को किसी ने पूछा था कि मैं क्या करूं, शादी करूं या न करूं? और आपसे पूछने आया हूं और बड़ी दूर से पूछने आया हूं। क्योंकि सुकरात निश्चित ही अनुभवी था। शादी जिस स्त्री से हुई थी, पहुंची हुई स्त्री थी! सुकरात को ऐसा सताया! और कुछ न कुछ कारण तो सुकरात भी था। आखिर दार्शनिक पति के साथ रहना कोई आसान खेल नहीं है। सुकरात तो खोया रहता जीवन के रहस्यों में, पत्नी का उसे होश कहां था! तो पत्नी कुढ़ती होगी, नाराज होती होगी, परेशान होती होगी। पत्नी ईर्ष्या करती होगी इस दर्शनशास्त्र से। दर्शनशास्त्र तो उसे सौतेली पत्नी जैसा ही मालूम होता होगा कि सुकरात दर्शनशास्त्र में ज्यादा उत्सुक है, मुझमें कम। बैठता भी होगा पत्नी के पास तो सोचता तो होगा आकाश की। तो एकदम पत्नी का ही कसूर था, ऐसा कहना भी ठीक नहीं।
लेकिन पत्नी भी पहुंची हुई थी! सुकरात जैसे अदभुत व्यक्ति को भी उसने बहुत सताया। एक बार तो लाकर उबलती हुई केतली चाय की भरी सुकरात के ऊपर उंडेल दी। क्योंकि वह अपने शिष्यों से बात कर रहा था, चाय बन कर तैयार थी और वह तीन बार बुला चुकी थी कि अब आ भी जाओ, चाय पी भी लो, ठंडी हुई जा रही है। जब सुकरात अपने शिष्यों से बातचीत में लगा ही रहा और आया ही नहीं, आया ही नहीं, तो फिर उसने चाय ठंडी नहीं होने दी! फिर गर्म ही चाय लाकर उसके ऊपर उंडेल दी। कि अब ऐसे नहीं पीते, तो ऐसे पीओ। सुकरात का चेहरा सदा के लिए

आधा जल गया सो आधा जला रहा, काला हो गया था। लेकिन सुकरात चुपचाप, कुछ बोला नहीं। पत्नी तो चली गई, क्रोध में, चाय उंडेल कर, सुकरात ने जहां बात टूट गई थी, वहीं से बात शुरू कर दी। एक शिष्य ने पूछा, आप कुछ कहेंगे नहीं, यह पत्नी ने जो दुर्व्यवहार किया? सुकरात ने कहा, उसका कृत्य, वह जाने। वह सोचे। मेरा क्या लेना-देना है? और आधा चेहरा काला हो गया, इससे मेरी खोज में कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। और परमात्मा मुझे कुछ इस कारण इनकार नहीं कर देगा। गौण है, विचारणीय नहीं है।
मगर तुम ख्याल रखना, जो पति इतना ज्यादा निरपेक्ष हो कि पत्नी उस पर चाय भी उंडेल दे और वह कुछ न बोले, तो पत्नी और आगबबूला न हो जाए तो क्या करे? असहाय!
तो उस युवक ने कहा कि आपसे पूछने आया हूं, आप अनुभवी हैं, शादी करूं या नहीं? सुकरात ने कहा, करो तो अच्छा! उस युवक ने कहा, आप कहते हैं करो तो अच्छा! मैं तो इस आशा में आया था कि आप निश्चित कहेंगे कि मत करो। मैं करना नहीं चाहता, सिर्फ आपका प्रमाणपत्र लेने आया था कि अपने मां-बाप को कह सकूं। आप क्या कहते हैं! सुकरात ने कहा, इसलिए, कि अगर पत्नी अच्छी मिली, तो जीवन में सुख जानोगे, संगीत जानोगे, प्रेम जानोगे, रस जानोगे। और रस, प्रेम, संगीत, उत्सव जीवन की गहराइयों में जाने के द्वार हैं। और अगर मेरे जैसी पत्नी मिल गई--मेरी पत्नी अदभुत है--अगर मेरी जैसी पत्नी मिल गई तो वैराग्य का उदय होगा। वैराग्य भी परमात्मा को पाने का एक उपाय है। राग से भी उसी तरफ जाते लोग--राग में डुबकी मार लेते, परमात्मा को पाने का वह भी एक मार्ग है--और वैराग्य से भी लोग जाते हैं। पत्नी बुरी मिली तो भी अच्छा, अच्छी मिली तो भी अच्छा।
सत्यानंद, तुम पर निर्भर है। बिना पत्नी के भी लोग परेशान हैं। पत्नी
के साथ भी लोग परेशान हैं। पत्नी हो, तो भी नहीं चलता, पत्नी न हो, तो भी नहीं चलता। लोगों के चित्त ऐसे हैं कि जो हो, वही व्यर्थ मालूम होता है। इसलिए शादीशुदा सोचता है, धन्य हैं वे जिनकी शादी नहीं हुई। और गैर-शादीशुदा सोचता है, कब सौभाग्य मिलेगा कि शादी हो जाए! यह दुनिया बड़ी अदभुत है! यहां हर आदमी सोच रहा है कि दूसरा मजा कर रहा है।
मुल्ला नसरुद्दीन की बीबी गुलजान ने एक दिन बताया कि हमारे पड़ोसी पंडित मटकानाथ ब्रह्मचारी ने नरकों की भौगोलिक स्थिति, जलवायु, शासन-व्यवस्था और नरकों के प्रकार, कोटियां तथा दंड-विधान इत्यादि विषयों पर एक विवरणात्मक सचित्र किताब लिखी है। नसरुद्दीन ने कहा, सब झूठ है, बकवास है। गुलजान बोली, एकदम से तुम यह कैसे कह सकते हो? हो सकता है सच ही हो। फिर तुमने किताब भी नहीं पढ़ी। मुल्ला बोला, कभी सच नहीं हो सकता! अरे, उस कायर ने शादी तक नहीं की, नर्कों के बारे में वह क्या जाने-समझे!
कायरता के कारण अगर शादी से बचे, तो बच न पाओगे। शादी कहीं पीछे के दरवाजे से आ जाएगी। कायर तो बच ही नहीं सकता। समझ बचा सकती है। लेकिन समझ कहां से लाओगे? मैं तो कह दूं कि न करो शादी, लेकिन वह मेरी समझ हुई। तुम्हारी समझ कैसे बनेगी? और मैं ऐसी भूल न करूंगा कि तुमसे कहूंः न करो शादी; क्योंकि तुम जिंदगी भर फिर मुझे गाली दोगे! कि अहाह, प्रत्येक व्यक्ति मजा लूट रहा है, एक हम मूढ़ ब्रह्मचारी हुए बैठे हैं! किस अशुभ घड़ी में प्रश्न पूछ बैठे!
अगर मैं कहूं, कर लो शादी, तो भी मुश्किल। क्योंकि तब भी तुम जिंदगी भर मुझे गाली दोगे। जब भी पत्नी को देखोगे, तभी मेरी याद आएगी। कि न पूछा होता प्रश्न, न फंसते इस झंझट में।
तुमने मुझे मुश्किल में डाल दिया। शादी का मामला ही ऐसा है। करने वाले तो ठीक, इस संबंध में उत्तर तक देना बड़ी झंझट का काम है!
नसरुद्दीन की पत्नी मरणशय्या पर थी। नसरुद्दीन छाती पीट-पीट कर कह रहा था, ऐ गुलजान, तेरे मरते ही मैं पागल हो जाऊंगा। सच कहता हूं, बिल्कुल पागल हो जाऊंगा। गुलजान ने आंखें खोलीं, वह बोली, मैं तुम्हें अच्छी तरह जानती हूं, मैं आज मरी और कल तुम दूसरी शादी कर लोगे; क्यों झूठ बोलते हो? मुल्ला ने तैश में आकर कहा, क्या बात कहती हो, गुलजान? मैं पागल जरूर हो जाऊंगा, मगर इतना नहीं कि दूसरी शादी कर लूं!

अच्छा हो तुम खुद ही सोचो-विचारो। पत्नियों के लाभ भी हैं, नुकसान भी हैं। पतियों के लाभ भी हैं, नुकसान भी हैं। इस जिंदगी में कोई परिस्थिति ऐसी नहीं है जो एक पहलू वाली हो।
अमरीका के एक करोड़पति एण्ड्रू कारनेगी से किसी ने पूछा कि आप इतने करोड़पति कैसे हो सके? गरीब घर में पैदा हुए और दुनिया के सबसे बड़े धनपति होकर मरे एण्ड्रू कारनेगी। मरे तो दस अरब नगद रुपए छोड़ गए थे बैंक में। किसी ने पूछा कि आप को ऐसी कौन सी बात थी, जिसने पागल की तरह धन की दौड़ में लगा दिया? एण्ड्रू कारनेगी ने कहा कि मैंने किसी को यह बात बताई नहीं, लेकिन अब मरने के करीब मैं बता सकता हूं--अब डर भी क्या? मगर तुम से मेरा एक निवेदन है कि मेरे मरने के बाद ही लोगों को बताना। कम से कम मेरी पत्नी को खबर न हो। वह आदमी बोला, मामला क्या है? वह पास सरक आया, उसने कहा कि मेरे कान में कहें, बिल्कुल सम्हाल कर रखूंगा, जब आप चले जाएंगे तभी प्रकट करूंगा। उसके कान में फुसफुसाकर एण्ड्रू कारनेगी ने कहा कि मैं असल में धन की दौड़ में इसलिए पड़ा कि मैं देखना चाहता था कि क्या ऐसी भी कोई धन की अवस्था हो सकती है, जिससे मेरी पत्नी तृप्त हो जाए? मगर नहीं, इतना धन है मगर मैं पत्नी को तृप्त नहीं कर पाया। यह सिर्फ एक जानकारी के लिए मैं कोशिश में लगा था कि क्या ऐसा कुछ हो सकता है, इतना धन भी हो सकता है क्या कि मेरी पत्नी तृप्त हो जाए? मगर मैं हार गया। पत्नी तृप्त नहीं हुई सो नहीं हुई। मगर एक फायदा रहा कि मैं दुनिया का सबसे बड़ा अरबपति हो गया। फिर पत्नियों पत्नियों में भी भेद है।
सुना है, ढब्बू जी की पत्नी ने उन्हें शादी के एक साल अंदर ही लखपति बना दिया। अच्छा, यह ढब्बू जी कौन है, भाई? बड़े सौभाग्यशाली हैं! क्या उन्हें बहुत ज्यादा दहेज मिला था? नहीं, दहेज तो कुछ नहीं मिला। तो क्या उनकी बीबी के नाम कोई लाटरी फंस गई? नहीं। अच्छा तो फिर मैं समझा, शायद उनकी बीबी का कोई रिश्तेदार मरते समय उनके नाम वसीयत लिख गया होगा! अरे, नहीं भाई, ढब्बू जी की बीबी ने स्वयं ही खून-पसीना एक करके उन्हें एक साल में लखपति बना दिया; एक साल पहले वह करोड़पति थे।
पत्नियों-पत्नियों में भी भेद है।
इसलिए पता नहीं, सत्यानंद, कैसी पत्नी की तुम तलाश कर रहे हो--कैसी पत्नी तुम्हारी तलाश कर रही है? किस जाल में फंसोगे, कुछ साफ नहीं है। मगर इतना मैं तुमसे कहूंगा, कि पूछते हो प्रश्न, इसलिए मन में कहीं-न-कहीं आकांक्षा होगी। नहीं तो पूछते ही नहीं।
मैं रायपुर में था, एक युवक ने आकर मुझसे पूछा--ठीक वही सुकरात वाली कहानी घटी--उसने मुझसे पूछा--थोड़ा सा फर्क था प्रसंग में, संदर्भ में--उसने पूछा कि मैं शादी करूं या नहीं? मैंने कहा, तुम जरूर करो! उसने कहा, मैं तो आपके पास आया था इसलिए कि आप निश्चित कहेंगे कि मत करो। अगर शादी करना ठीक है तो आपने क्यों नहीं की? तो मैंने उससे कहा कि मैं कभी किसी से पूछने नहीं गया--उलटे लोग मुझे समझाने आते थे, कि कर लो!
एक वकील तो मेरे इतने पीछे पड़ गए थे, कि उन्होंने अपनी सारी वकालत की समझदारी ही एक काम में लगा दी, जैसे उनकी जिंदगी में यही एक कर्तव्य था जो उन्हें पूरा करना था। सुबह-सांझ, बस आकर बैठ जाएं, घंटों। मैंने उनसे कहा भी कि यह कोई आपके जीवन का लक्ष्य है, कि मेरी शादी? आखिर मैंने आपका क्या बिगाड़ा? किन जन्मों का फल चुका रहे हो? क्यों इतना समय जाया करते हो? मैं कोई आपका मुवक्कल हूं, क्या हूं, मामला क्या है? सुबह-शाम आपको चैन ही नहीं पड़ती। आप शादी करके कोई मुसीबत में पड़ गए हो--बात क्या है? मुझे भी फंसाना है! क्योंकि अक्सर ऐसा हो जाता है, जिसकी पूंछ कट जाती है, वह दूसरे की कटवाना... मामला क्या है? एकाध दफे कह दिया, चलो समझ में आ जाता है, मगर यह नियमित क्रम बन गया कि सुबह मैं उठा नहीं कि आप मौजूद हैं! शाम मैं कालेज से लौटा नहीं कि आप पहले से ही आकर बैठे हैं! अदालत वगैरह जाते हैं कि नहीं? और भी कोई धंधा करते हैं कि बस यही धंधा है? मगर उनने जिद्द बांध रखी थी। उनके अहंकार... वह बड़ी-बड़ी दलीलें खोजकर लाते थेः क्यों शादी करनी? शादी करने में क्या फायदा? क्या लाभ? क्या-क्या परिणाम?

मैंने उनसे कहा कि देखें; आप वकील हैं, आप समझ सकते हैं। एक मजिस्ट्रेट को और कल बुला लाएं, एक दफा इसका निपटारा हो जाए। तो उन्होंने कहा, मजिस्ट्रेट इसमें क्या करेगा? मैंने कहा, मजिस्ट्रेट इसमें यह करेगा, कि उसे निर्णय देना होगा कि कौन जीता? आप शादी के पक्ष में दलीलें दें, मैं विपक्ष में दलीलें दूंगा। और मजिस्ट्रेट जो निर्णय दे दे! अगर उसने कह दिया कि शादी करनी उचित, तो मैं शादी करूंगा। अगर उसने कह दिया शादी करनी उचित नहीं, तो तुम्हें तलाक देना पड़ेगा। बस उस दिन से वह जो नदारद हुए, तो फिर मैं सुबह-शाम उनके घर जाने लगा! आखिर उनकी पत्नी ने कहा, मैं हाथ जोड़ती हूं, वह आपकी वजह से सुबह-शाम घर नहीं आते! आखिर क्यों मेरे पति के पीछे पड़े हैं? उन्होंने आपका क्या बिगाड़ा है? आपको कोई दूसरा काम नहीं है? वह एकदम सुबह जल्दी से उठ कर घर से निकलने लगते हैं, कि वह आते ही होंगे! और शाम को भी बाहर से आकर देख लेते हैं कि आप बैठे तो नहीं, नहीं तो आगे बढ़ जाते हैं। क्यों हमारा जीवन तहस-नहस किए दे रहे हैं?
तो मैंने उस युवक को कहा कि मैं तो किसी से पूछने कभी गया नहीं। तुम मुझसे पूछने आए हो, पूछना ही बताता है कि अच्छा यही होगा कि तुम अनुभव से गुजरो। अनुभव के अतिरिक्त और कोई उत्तर नहीं है।
सत्यानंद, तुम पूछते होः मेरी शादी होने वाली है। मामला लगता है तय ही
हो गया है। ऐसे भी बहुत देर हो चुकी। इससे मेरी सत्य की खोज कुंठित होगी या इससे सहयोग मिलेगा? तुम पर निर्भर है। सत्य की खोज कुंठित भी हो सकती है, सहयोग भी मिल सकता है। मगर तुम शादी करो। कम से कम मुझे एक संन्यासिनी मिलेगी, और जो होगा हो! तुम अपनी फिक्र करो, मैं अपनी फिकर करता हूं!

पांचवां प्रश्नः भगवान,
जमाना एहले-खिरद तो हो चुका मायूस
कुछ अजब नहीं कोई दीवाना काम कर जाए...

देवेंद्र भारती! दीवानों ने ही सदा काम किया है। बुद्धिमान तो सोचते
ही रहते हैं, विचारते ही रहते हैं। बुद्धि में उलझे लोगों ने कभी कुछ किया नहीं। बुद्धि में उलझे हुए लोग तो बिल्कुल अकर्मण्य सिद्ध हुए हैं। यहां तो जो भी होता है, दीवानों के द्वारा होता है। अच्छा भी, बुरा भी। अच्छा भी दीवाने करते हैं, बुरा भी दीवाने करते हैं। बुद्धिमान न तो अच्छा करते, न बुरा करते। वह तो तय ही नहीं कर पाते कि क्या अच्छा है, क्या बुरा है? वह तो इसी उपद्रव में लगे रहते हैं कि क्या अच्छा, क्या बुरा?
पश्चिम के एक बहुत बड़े विचारक जी. ई. मूर ने किताब लिखी है--प्रिंसपिया इथिका। इस सदी में लिखी गई दस-पांच किताबों में महत्वपूर्ण किताब है। उसमें विचार किया हैः क्या अच्छा, क्या बुरा? क्या शुभ, क्या अशुभ? और दो- ढाई सौ पृष्ठों की कठिन तर्क, उलझी हुई प्रक्रिया के बाद नतीजा निकाला है कि शुभ और अशुभ की व्याख्या नहीं हो सकती। नतीजा यह है कि शुभ और अशुभ की व्याख्या नहीं हो सकती! लेकिन ढाई सौ पृष्ठों के घने तर्कजाल से गुजरने के बाद, नतीजा इस पर आते हैं कि शुभ और अशुभ की कोई व्याख्या नहीं हो सकती। अव्याख्य है।
बुद्धिमान तो किसी की भी व्याख्या नहीं कर पाए। क्योंकि व्याख्या होती है कृत्य से, जीवन से। तुम पूछते हो, जमाना एहले-खिरद तो हो चुका मायूस। निश्चित है यह बात। आज की ही बात नहीं है, पुरानी है, सदा की है।
बुद्धिमानों से तो दुनिया सदा से उदास रही है, हताश रही है। इनसे तो कुछ हुआ ही नहीं। ये तो बस राख बटोरते रहते हैं सिद्धांतों की। ये तो सड़े-गले शास्त्रों को इकट्ठा करते रहते हैं। उन पर शोधकार्य करते रहते हैं।
यह बड़े मजे की बात है। कबीर जिंदा, तो वहां एक पंडित नहीं पहुंचेगा। काशी के सारे पंडित कबीर के खिलाफ थे। कबीर का जीना दूभर कर दिया था। और कबीर के मर जाने के बाद? जितना शोधकार्य कबीर पर होता है, उतना किसी पर नहीं होता--यह बड़ी हैरानी की बात! खास काशी विश्वविद्यालय में भी कबीर पर ग्रंथ पर ग्रंथ लिख जाते हैं। भारत का कोई विश्वविद्यालय नहीं है जहां कबीर पर कोई शोधकार्य न चलता हो। सैकड़ों पीएचड़ी. के शोधग्रंथ कबीर पर लिखे

गए हैं। और इनमें से एक भी कबीर के पास नहीं जाता... अगर कबीर जिंदा होते। गए ही नहीं कोई। यही काशी थी, यही पंडित थे। मगर अब? अब कबीर की किताबों में... किताबों के कीड़े हैं ये! दीमकें हैं ये! ये किताबें खाती हैं, ये किताबों पर जीती हैं। इनकी खोपड़ी में सिवाय कचरे के और कुछ भी नहीं है।
इनसे संसार में कभी कुछ नहीं हुआ। यहां तो पागल ही कुछ कर गुजरें तो कर गुजरें। अच्छा भी करते हैं वही, बुरा भी करते हैं वही।
इसलिए पागलपन भी दो प्रकार का है।
एक पागलपन हैः बुद्धि से नीचे गिर जाना। जैसे एडोल्फ हिटलर, चंगीजखान, तैमूरलंग, जोसेफ स्टैलिन, माओत्से तुंग। और एक पागलपन हैः बुद्धि के पार उठ जाना--गौतम बुद्ध, कृष्ण, क्राइस्ट, जरथुस्त्र, लाओत्सु, कबीर, पलटू। दोनों ही एक अर्थों में पागल हैं। एक बुद्धि से नीचे गिर गया, एक बुद्धि के पार उठ गया। उठो बुद्धि के पार। यहां पागलों की ही जमात मैं इकट्ठी कर रहा हूं। दीवानों की, प्रेमियों की, परवानों की। मरने-मिटने की हिम्मत होनी चाहिए। दांव पर लगाने का जीवन को साहस होना चाहिए। जुआरी ही कुछ पा सकते हैं। शराबी ही कुछ पा सकते हैं, इधर लोग पानी छान-छान कर पी रहे हैं, इनसे क्या कुछ खाक होगा! जीवन के रस को बिन-छाने पी जाओ। जीवन के रस को आंख बंद करके पी जाओ। क्योंकि जीवन के रस में ही छिपे हैं सारे रहस्य। बुद्धिमान तो सोचते ही रहते हैं।
स्वर्ग में एक दिन घटना घटी। एक कैफे में बुद्ध, लाओत्सु और कनफ्यूशियस, तीनों बैठे गपशप कर रहे हैं। अब स्वर्ग में और करो भी क्या! गपशप के सिवाय स्वर्ग में कोई दूसरा काम भी नहीं है। गपशप करो या चरखा कातो! कुछ, बस इसी तरह का कुछ, ताश खेलो, कि शतरंज के मोहर चलाओ! स्वर्ग में करोगे क्या? जैसे गांव देहात में लोग बरसात के दिन में कुछ नहीं पाते, आल्हा-ऊदल पढ़ते हैं। ऐसे स्वर्ग में आल्हा-ऊदल पढ़ो; और क्या करोगे?
बैठे तीनों गपशप कर रहे हैं। समय की तो कोई कमी ही नहीं है। अनंत काल! तभी एक अप्सरा--शायद उर्वशी होगी। क्योंकि इससे छोटी अप्सरा बुद्ध और लाओत्सू और कनफ्यूशियस जैसे लोगों की सेवा के लिए तत्पर नहीं होती-- उर्वशी एक सुराही लेकर आई, जो जीवनरस से भरी है। और उसने बुद्ध को पूछा। बुद्ध ने तत्काल आंखें बंद कर लीं। कहा, हटाओ, हटाओ, दूर हटाओ! मैं त्यागी- व्रती। जीवन सिवाय दुख के और कुछ भी नहीं है। जन्म भी दुख, जरा भी दुख, मरण भी दुख--जीवन दुख ही दुख है। यह रस नहीं है, यह जहर है। हटाओ, हटाओ! कनफ्यूशियस ने आधी आंख खुली रखी, आधी बंद रखी। या समझो कि एक आंख बंद रखी और एक खुली रखी। क्योंकि कनफ्यूशियस मानते हैंः मध्य का नियम। अति नहीं। बुद्ध जरा अति पर चले गए। दोनों आंखें बंद कर लीं! इतना जल्दी निर्णय नहीं लेना चाहिए। पहले जीवनरस चखो तो! तो कनफ्यूशियस ने कहा कि एक घूंट चखूंगा, फिर तय करूंगा। एक घूंट चखा और कहा कि बुद्ध ठीक कहते हैं। कड़वा है, तिक्त है और दुख लाएगा। ऊपर से सुवासित मालूम होता है, सुगंधित मालूम होता है, लेकिन भीतर खतरनाक है। लाओत्सू ने पूरी सुराही ले ली और गटागट पी गया। पूरी सुराही! और जब पूरी सुराही गटागट पी गया, तो बुद्ध भी देखते रहे--आंख खोल कर देखा होगा कि यह क्या मामला हो रहा है, जब गटागट की आवाज सुनी-- कनफ्यूशियस ने भी दोनों आंखें खोल दीं, दोनों को सदमा भी लगा, और जब गटागट पूरी सुराही पी गया लाओत्सु, तो वह खड़ा होकर नाचने लगा। ठुमक-ठुमक! ता थई, ता थई! और उसने कहा कि आंख बंद करने से कोई सार नहीं, और एक घूंट से कुछ पता नहीं चलता, यह तो पूरा जो पीता है उसी को मालूम होता है। समग्रता लाओत्सु का संदेश है।
जीवन को जीओ उसकी समग्रता में। तो ही जान सकोगे। बुद्ध ने सोच-विचार
कर कहा कि जीवन व्यर्थ है; कनफ्यूशियस भी विचारशील है, मध्यमार्गी है, स्वर्ण-नियम मानता है विचार का, कि अतिशय पर न जाओ, बीच में रहो, जैसे तराजू का कांटा बीच में, समतुल; लाओत्सू दीवाना है। लेकिन लाओत्सू ने जिस गहराई से जीवन को जाना है, उस गहराई से किसी ने भी नहीं जाना।
देवेंद्र, तुम ठीक कहते हो--
जमाना एहले-खिरद तो हो चुका मायूस
कुछ अजब नहीं कोई दीवाना काम कर जाए...

इसीलिए तो दीवानों को इकट्ठा कर रहा हूं। एकाध दीवाने से काम नहीं होगा। जमाना बहुत दीवाने चाहता है। दीवानों की बस्तियां चाहता है। दीवानों के समुदाय चाहता है। सारी पृथ्वी को दीवानों से भर देना है। जगह-जगह जीवनरस को समग्रता से पीने वाले लोग, जो सुराही को गटागट पी जाएं, और जो नाच सकें, और जा गा सकें, और जिनका नाच और गाना संक्रामक होता जाए, और सारी पृथ्वी को जो एक महोत्सव से भर दें, ऐसे लोगों से ही संभावना है इस मनुष्य-जाति के बचने की। अन्यथा बुद्धिमान तो काफी सता चुके। और अब भी छाती पर सवार हैं!
तूफानों से टक्कर ली थी यह तो किनारा जाने है
साहिल पर हम डूब रहे हैं, क्या यह धारा जाने हैं?

नाम हमारा जब आता है, चुप रह कर खुश होते हो
कहने को ये राज है, लेकिन पआलम सारा जाने है।

ये दुनिया है दीवानों से, बज्म सजी है परवानों से
शम्अ हो तुम, ये बात न मानो, दिल तो तुम्हारा जाने है।

शहरों शहरों, मुल्कों-मुल्कों, आवारा हम फिरते हैं राहे-वफा का जर्रा-जर्रा नाम हमारा जाने है।

दिल की जीतें, दिल की मातें, जादूगर की सारी बातें शाम का तारा, जाने न जाने, सुब्ह का तारा जाने है।

कच्चे धागे टूट चुके हैं, कितने साथी छूट चुके हैं जाने क्यों दिल अब तक तुमको अपना सहारा जाने है।

मीर हुए थे कल दीवाने, आज हुए हैं हम दीवाने फरजानों की ये दुनिया अंजाम हमारा जाने है।

बाकर कब तक खूं थूकोगे, मरने की तदबीरें सोचो
दिल की खातिर जीते हो, ये दिल ही तुम्हारा जाने है।

मीर हुए थे कल दीवाने, महाकवि मीर की तरफ इशारा है...

मीर हुए थे कल दीवाने, आज हुए हैं हम दीवाने
फरजानों की ये दुनिया अंजाम हमारा जाने है।
बुद्धिमानों की यह दुनिया भलीभांति जानती है कि दीवानों का क्या परिणाम होता है। इसलिए बुद्धिमान तो डरते हैं, झिझकते हैं। दीवानों का क्या परिणाम होता है? दीवानों का पहला परिणाम तो यह होता है कि वह अपने को समर्पित कर देते हैं अस्तित्व की महा अग्नि में। वे अपने को मिटा डालते हैं, पोंछ डालते हैं। वे अपने को बचाते नहीं। वे गल जाते हैं। जैसे बर्फ गल जाए सुबह क धूप में, बर्फ पिघल जाए सुबह की धूप में, ऐसे वे परमात्मा की उष्णता में, उसके प्रेम में पिघल जाते हैं, गल जाते हैं, विसर्जित हो जाते हैं।
दिल की जीतें, दिल की मातें, जादूगर की सारी बातें
शाम का तारा, जाने न जाने, सुबह का तारा जाने है।
दीवाने तो सुबह के तारे हैं, जिन्होंने पूरी रात देख ली है, रात के सब राज देख लिए हैं, जिन्होंने अंधेरा पहचान लिया और जिनकी सुबह से पहचान हो गई है, जो अब सुबह के ऊगते हुए सूरज को भी देख रहे हैं। लेकिन सुबह के तारे को एक खतरा उठाना पड़ता हैः इधर सूरज ऊगा, उधर तारा मिटा। उसे मिटने की तैयारी रखनी होती है।
ये दुनिया है दीवानों से, बज्म सजी है परवानों से
शम्अ हो तुम, ये बात न मानो, दिल तो तुम्हारा जाने है।

परमात्मा शमा है, और यह दुनिया है दीवानों से, बज्म सजी है परवानों से; परमात्मा एक दीए की ज्योति है और जो उसमें परवानों की तरह डूब जाए, मिट जाए, खो जाए, एक हो जाए, तदाकार हो जाए, वही उपलब्ध हो पाता है।
देवेंद्र, तुम ठीक कहते हो। मगर कहते ही न रहो, दीवाने बनो! कहीं ऐसा न
हो कि यह बात भी बस बुद्धिमानी की हो। मनुष्य की बुद्धि बड़ी चालाक है। बुद्धि के खिलाफ भी बातें कर लेती है, इतनी चालाक है।
ये दौरे-मसर्रत, ये तेवर तुम्हारे
उभरने से पहले न डूबें सितारे।

भंवर से लड़ो, तुंद लहरों से उलझो
कहां तक चलोगे किनारे-किनारे।

अजब चीज है ये मुहब्बत की बाजी
जो हारे वो जीते, जो जीते वो हारे।

सियह नागिनें बनके डसती हैं किरनें कहां कोई ये रोजे-रोशन गुजारे।

सफीने वहां डूब कर ही रहे हैं
जहां हौसले नाखु दाओं ने हारे।

कई इन्कलाबात आए जहां में
मगर आज तक दिन न बदले हमारे।

रजा सैले-नौ की खबर दे रहे हैं
उफक को ये दूते हुए तेज धारे।
सोचते ही मत रहो। ऐसा सोचने से कुछ भी न होगा। बुद्धिमान दीवानी की बात भी सोच लेता है, उसका भी सिद्धांत बना लेता है; परवाने की बात भी सोच लेता है, उसका भी सिद्धांत बना लेता है, मगर स्वयं परवाना नहीं बनता। भंवर से लड़ो, तुंदर लहरों से उलझो
कहां तक चलोगे किनारे-किनारे।
होशियार आदमी तो किनारे-किनारे चलता है। देखता है तूफान, आंधी, दूसरा किनारा तो दिखाई भी नहीं पड़ता और नाव छोटी है, हाथ छोटे, पतवार छोटी--कौन उतरे इस खतरे में? और ध्यान रखना, अगर डरते-डरते, भयभीत-भयभीत कोई उतर भी गया, आधे-आधे मन, तो पहुंच नहीं पाता।
सफीने वहां डूब कर ही रहे हैं
जहां हौसले नाखुदाओं ने हारे।
अगर माझी में हौसला ही न हो, अगर माझी नाव को उतारने के पहले ही पस्त-हिम्मत हो--सफीने वहां डूब कर ही रहे हैं--तो फिर नौकाएं डूब जाती हैं। सफीने वहां डूब कर ही रहे हैं
जहां हौसले नाखदाओं ने हारे।
रजा सैले-नौ की खबर दे रहे हैं
नई सुबह होने को है, नई किरण फूटने को है, रात टूटने को है, क्योंकि आदमी जी चुका अंधेरे में बहुत, पांडित्य का जाल सड़ चुका है, यह भवन गिरने को है, जरा धक्का देने की जरूरत है।
रजा सैले-नौ की खबर दे रहे हैं
उफका को ये छूते हुए तेज धारे।
जरा देखो आंख खोल कर, जिंदगी नई होने को उतावली है; जिंदगी पुराने जालों से छूट जाना चाहती है; पुरानी सीमाएं जिंदगी की कब्र न रही हैं; पुराने ढंग, पुराने पक्षपात पैरों में जंजीरें बन गए हैं, कारागृह बन गए हैं। मुक्त करो मनुष्य को! लेकिन मुक्त करो स्वयं को तो ही मनुष्य को मुक्त कर सकोगे।

बात तो तुमने पते की कही है, लेकिन बात ही न रह जाए! जीवन बने। दीवाने बनो! परवाने बनो! किनारे-किनारे बहुत चल चुके, अब नाव छोड़नी है! तूफान हैं जरूर, मगर तूफान सौभाग्य है! क्योंकि जो तूफान से टक्कर लेता है, वही निखर पाता है, वही प्रखर होता है।
तूफान चुनौती है। तूफान के पीछे ही छिपा है दूसरा किनारा। जिन्होंने अनुभव किया है, वे तो कहते हैं, तूफान ही है दूसरा किनारा। मझधार में डूबे तो मिल गया दूसरा किनारा।
मगर डूबने का एक ढंग है।
एक तो डूबता है वह, जिसने हौसला छोड़ दिया। पस्त-हिम्मत। कायर। वह तो किनारे पर ही डूब जाता है। उसके लिए कोई मझधार तक जाने की जरूरत होती है! वह तो किनारे पर ही डूब मरता है। उसके लिए तो चुल्लू भर पानी भी मर जाने के लिए काफी है, डूब जाने के लिए काफी है। कायर तो चुल्लू भर पानी में डूब मरते हैं। लेकिन साहसी उतरते हैं, सब बुद्धिमत्ता को एक तरफ हटा कर प्रेम के एक पागलपन में कूद पड़ते हैं तूफानों में; फिर अगर मझधार में भी डूब जाएं तो उन्हें किनारा मिल जाता है। क्योंकि जीवन का गणित बड़ा अजीब है--
अजब चीज है ये मुहब्बत की बाजी
जो हारे वो जीते, जो जीते वो हारे।

भंवर से लड़ो, तुंद लहरों से उलझो
कहां तक चलोगे किनारे-किनारे।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
पांचवां प्रवचन

मिटे कि पाया

जो साहिब का लाल है, सो पावैगा लाल।।
सो पावैगा लाल जायके गोता मारै।
मरजीवा ह्वै जाय लाल को तुरत निकारै।।
निसिदिन मारै मौज, मिली अब बस्तु अपानी।
ऋद्धि सिद्ध और मुक्ति भरत हैं उन घर पानी।।
वे साहन के साह, उन्हैं है आस न दूजा।
ब्रह्मा बिस्नु महेस करैं सब उनकी पूजा।
पलटू गुरु-भक्ती बिना भेस भया कंगाल।
जो साहिब का लाल है, सो पावैगा लाल।।
खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम।।
नहीं पोत का दाम, जोहरि की गांठ खुलावै।
बातन की बकवाद जौहरी को बिलमावै।
लंबी बोलत बात, करै बातन की लदनी।
कौड़ी गांठ में नहीं, करत है बातें इतनी।।
लिहा जौहरी ताड़, फिर है गाहक खाली।
थैली लई समेटि, दिहा गाहक को टाली।।
लोकलाज छूटै नहीं, पलटू चाहै नाम।
खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम।।

माया की चक्की चलै, पीसि गया संसार।।
पीसि गया संसार बचै ना लाख बचावै।
दोऊ पट की बीच कोऊ न साबित जावै।।
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे।
तिरगुन डारै झोंक पकरिकै सबै निकारे।।
तृस्ना बड़ी छिनारि, जाइ उन सब घर घाला।
काल बड़ा बरियार, किया उन एक निवाला।।
पलटू हरि के भजन बिनु, कोउ न उतरै पार।
माया की चक्की चलै, पीसि गया संसार।।

अहदे-मस्ती है, लोग कहते हैं,
मय परस्ती है, लोग कहते हैं।

गमे-हस्ती खरीदने वालो,
मौत सस्ती है, लोग कहते हैं।

हम जहां जी रहे हैं मर-मर कर,
बज्मे हस्ती है, लोग कहते हैं।

जब्ते-तौबा पे आ रही है हंसी, तंग-दस्ती है, लोग कहते हैं।

शायद इक बार उजड़ के फिर न बसे, दिल की बस्ती है, लोग कहते हैं।

क्या करें महवशों से प्यार अदम बुत-परस्ती है, लोग कहते हैं।

अहूदे-मस्ती है, लोग कहते हैं, मय परस्ती है, लोग कहते हैं।

प्रभु के प्रेम में जो दीवाने हैं, दुनिया तो उन्हें ऐसा ही समझेगी जैसे कि पागल हैं। दुनिया के पास उन्हें तौलने का कोई उपाय नहीं, कोई तराजू नहीं, कोई कसौटी नहीं।
बाउल कथा है कि एक सुनार ने बाउल फकीर से पूछाः किस प्रभु के गीत गाते
हो, कुछ हम भी तो समझें! किस मस्ती में मृदंग बजाते हो, कुछ हम भी तो समझें! हमें न तो कोई प्रभु दिखाई पड़ता, न जीवन में कोई सार, न कोई अर्थ। हमें तो सब व्यर्थ मालूम होता है।
बाउल फकीर नाच रहा था, रुक गया; मृदंग बजा रहा था, रुक गया। और उसने कहा
कि तुमने मुझे याद दिला दी। मैंने सुना है, एक सुनार एक बार फूलों की बगिया में पहुंच गया था। माली मस्त था। वसंत आया था, मधुमास था। फूल ही फूल खिले थे--रंग-रंग के फूल, गंध-गंध के फूल! ... सारी बगिया दुल्हन बनी थी। जैसे आकाश से तारे उतर आए हों, ऐसे वृक्ष सजे थे। लेकिन सुनार कहने लगा, मैं तो जब तक कसूं न फूलों को, सोने की कसौटी पर, तब तक मानूंगा नहीं। और उसने फूलों के कसना शुरू कर दिया सोने की कसौटी पर। अब सोने की कसौटी पर फूल कसे नहीं जाते और कसे जाएं तो फूल सोना नहीं हैं। तोड़ने लगा फूल, कसने लगा फूल, फेंकने लगा फूल; क्योंकि कोई सोना न था। और सुनार को समझ में ही न आए कि सोने के अतिरिक्त भी सोना है।
जीवन एकांगी नहीं है, बहु-आयामी है। यहां जो लोग परमात्मा के प्रेम में दीवाने हैं, संसार तो उन्हें पागल ही समझेगा। उसके पास तो कसौटी की एक ही चीज है--कितना धन है तुम्हारे पास, कितना पद है तुम्हारे पास, कितनी प्रतिष्ठा? संसार तो सिर्फ अहंकार को तौलने की तराजू जानता है; निर-अहंकार को तौलने की उसके पास कोई सुविधा नहीं है। संसार तो पदार्थ को देख सकता है, परमात्मा के प्रति अंधा है। लेकिन कौन अपने को अंधा माने! और फिर अंधों की भीड़ हो तो भीड़ कैसे राजी हो! होंगे बुद्ध अंधे, होंगे कबीर अंधे, होंगे पलटू अंधे। लेकिन इतने करोड़ों-करोड़ों लोग अंधे हो सकते हैं? ये पड़ गए होंगे वहम में, खा गए होंगे कोई धोखा, खो गए होंगे किसी सपने में, बातें करने लगे दीवानगी की, लेकिन इतने करोड़-करोड़ लोग, इन्हीं न तो कोई परमात्मा दिखाई पड़ता, न कोई रोशनी दिखाई पड़ती, न कोई सत्य का अनुभव होता है, ये गलत कैसे हो सकते हैं?
हम तो लोगों के सिर गिनकर तय करते हैं कि सत्य क्या है। जैसे सत्य भी
मत से तय होता है! तब स्वभावतः जिन्होंने जाना है उनसे हम कुछ भी नहीं सीख पाते। जिन्होंने जाना है, सीखना तो दूर, हम से जितना बन सके उतना उनका तिरस्कार करते हैं। हम तो उन्हें अंधा कहते हैं, जिनके पास आंखें हैं। और जिनके पास सच्ची बुद्धिमानी है, वे हमें दीवाने मालूम होते हैं।
यह सोचने की प्रक्रिया बदलनी पड़े।
जरूर संतों ने कोई शराब पी ली है, लेकिन वह शराब अंगूरों से नहीं ढलती
और बाजारों में नहीं बिकती। वह शराब आत्मा में ढलती है; भीतर ही निर्मित होती है। वह शराब बेहोशी नहीं लाती, होश लाती है। वह शराब सुलाती नहीं, जगाती है। जरूर संत पागल हैं, लेकिन उनका पागलपन तुम्हारी बुद्धिमानी से लाख गुना कीमती है। जरूर संतों के पास देखने योग्य संपदा नहीं है, लेकिन उनके पास अदृश्य संपदा है जिसे मौत भी न छीन सकेगी।
पलटू उसी संपदा की आज बात कर रहे हैं। कहते हैंः
जो साहब का लाल है सो पावैगा लाल।।
--जो परमात्मा के चरणों में झुक गया है, जो परमात्मा में समर्पित हो गया है, जो परमात्मा के रंग में रंग गया है, जिसने अपने अहंकार को सब भांति छोड़ दिया है, जो कि बस परमात्मा का सेवक हो गया... म्हाने तो चाकर राखो जी! ... जिसने कहा कि मुझे तो बस नौकरी में रख लो; पैर दबाता रहूं, पड़ा रहूं? जो साहब का लाल है, सेवक है, सो पावैगा लाल, वही पाएगा असली हीरा। कोहिनूरों के ढेर लग जाएंगे उसके जीवन में; हालांकि वे कोहिनूर किसी और को दिखाई नहीं पड़ेंगे। उनको दिखाई पड़ेंगे जिनके जीवन में वैसा अनुभव हुआ है। अनुभवी ही परख पाएंगे।
पलटू को परखना हो तो कोई कबीर चाहिए; कबीर को परखना हो तो कोई नानक चाहिए; नानक को परखना हो तो कोई बुद्ध चाहिए। आंख वाले ही आंख वालों को

पहचान सकते हैं, अंधे कैसे पहचानेंगे? अंधे मान भला लें, पहचान नहीं पाते। और उनकी सारी मान्यता के पीछे संदेह खड़ा रहता है। तुम्हारे विश्वास दो कौड़ी के हैं। तुम ईश्वर को मानो, तुम मंदिर-मस्जिद को मानो, तुम गीता-कुरान को मानो, लेकिन तुम्हारी मान्यताएं दो कौड़ी की हैं, क्योंकि हर मान्यता के पीछे संदेह का कीड़ा लगा है। तुम्हारी मान्यताओं को संदेह का कीड़ा खा जाएगा। और जब मौत द्वार पर दस्तक देगी, ये मान्यताएं काम न आएंगी। ये मान्यताएं ऐसे गिर जाएंगी जैसे ताश के घर गिर जाते हैं। ये मान्यताएं ऐसे डूब जाएंगी और तुम्हें भी सुबा लेंगी, जैसे कागज की नावें डूब जाती हैं। मानने से कुछ भी नहीं होता, जानने से कुछ होता है। क्रांति जानने से घटित होती है। संपदा होनी चाहिए उपलब्ध।
मगर लोग झुकने को राजी नहीं है। लोग परमात्मा के सामने भी झुकने को राजी नहीं! कहीं मन में गहरी आकांक्षा है कि परमात्मा ही झुके। कहो चाहे तुम या न कहो, लेकिन अगर परमात्मा भी रास्ते पर मिल जाए तो तुम्हारा अहंकार यही चाहेगा कि पहले नमस्कार वही करे, तो हम उत्तर दें। तुम नमस्कार करने में भी कंजूसी कर जाओगे। तुमने सदा की है कंजूसी, यह कोई नई बात नहीं है। नमस्कार दूर, तुमने जीसस, मंसूर और सुकरात जैसे लोगों को मारा, हत्या की उनकी। न करते नमस्कार, उपेक्षा करके गुजर तो; वह भी न हो सका। तुम उनके जीवन को भी बर्दाश्त न कर सके।
असल में जब संपदा लेकर कोई इस पृथ्वी पर खड़ा होता है, तो सारे दीन-दरिद्र उसके विरोध में खड़े हो जाते हैं; सारे आत्मिक दृष्टि से हीन लोग बेचैन हो जाते हैं--उसे मिटा देने को आतुर हो जाते हैं। क्योंकि उसकी मौजूदगी उन्हें उनकी हीनता का बोध कराती है। उसकी रोशनी वे अंधे हैं और अंधेरे में हैं इस बात की इतनी गहन प्रतीति बन जाती है कि अब दो ही उपाय हैंः या तो अपने को बदलें, या ऐसे लोगों को हटा दें जीवन से जिनके कारण यह संकट पैदा हो रहा है; जिनके कारण जीवन असत-व्यस्त हुआ जा रहा है; जिनकी मौजूदगी के कारण तुम्हारा जीवन व्यर्थ मालूम होता है। और यही आसान है ऐसे लोगों को हटा देना। जीसस को सूली पर चढ़ा देने से ज्यादा आसान और क्या है? लेकिन स्वयं को रूपांतरित करना कठिन प्रक्रिया है।
जो साहब का लाल है...
उस प्रक्रिया का पहला अंग है--समर्पण। पहला अंग है--अपने अहंकार का विसर्जन। पहला अंग है--झुक जाना, बेशर्त। और झुकते ही संपदा बरस जाती है। सो पावैगा लाल जायके गाता मारै।
वही पा सकता इस संपदा को जो गहरे में गोता मारे। अहंकार तो उथली से उथली चीज है। इसलिए अहंकारी आदमी से ज्यादा उथला आदमी तुम्हें न मिलेगा।
ऊपर ही ऊपर जीता है--वस्त्रों में, आभूषणों में,शृंगार में, रंग-रोगन में, बस ऊपर ही जीता है।
जीसस ने कहा हैः अहंकारी आदमी ऐसा ही है जैसे चूने से पोती गई कब्र। झकझक होती ऊपर तो। चूने से पोती गई नीं-नई कब्र, शुभ्र चमकती है, और भीतर? भीतर सिर्फ सड़ांध है। हड्डी-मांस-मज्जा मिट्टी में मिल रहे हैं। जीसस ने कहा हैः ऐसा ही साधारण आदमी है--बस चूने से पुती हुई कब्र! भीतर सिवाय सड़ांध के और कुछ भी नहीं है, ऊपर से सुगंध छिड़क ली है। घाव हैं, फूलों में छिपा लिए हैं। भीतर पीड़ा ही पीड़ा है, ऊपर झूठी मुस्कुराहटें थोप ली हैं। ऐसे नहीं होगा।... जायके गोता मारै। इस परमात्मा के विराट अस्तित्व में डुबकी मारनी होगी। दर्शक बनने से नहीं चलेगा। राह के किनारे खड़े होने से नहीं चलेगा। तट पर बैठे रहे तो बैठे ही रह जाओगे, कुछ भी न पाओगे। खाली आए, खाली जाओगे। उतरना होगा सागर में। मोती मिलते हैं, लेकिन गोताखोरों को मिले हैं। मोती गहरे में होते हैं। हां, किनारों पर चाहो तो बीन लेना शंख, सीपियां, रंग-बिरंगे पत्थर और उन्हीं से खेलते रहना। और उन्हीं से लोग खेल रहे हैं--रंग-बिरंगे पत्थर, शंख-सीपियां! रेत के घर बना रहे हैं। फिर चाहे तुम उन घरों को महल ही क्यों न कहो। और पत्थर के महल भी आखिर रेत के ही महल हैं, क्योंकि पत्थर रेत ही है। सब पत्थर एक दिन रेत हो जाते हैं और सब रेत एक दिन पत्थर बन जाती है। पत्थर और रेत में कोई भेद नहीं है।
निगाह की बरछियां जो सह सके, सीना उसी का है।

हमारा आपका जीना नहीं, जीना उसी का है
ये बज्मे-मय है, यां कोताह-दस्ती में महरूमी
जो बढ़ कर खुद उठा ले हाथ में मीना उसी का है। मुकद्दर या मुसफ्फा जिसको ये दोनों ही यकसां हों
हकीकत में वही मयख्वार है, पीना उसी का है।
उमीदें जब बढ़ें हद से तिल्स्मि सांप हैं जाहिद
जो तोड़े यह तिलिस्म, ऐ दोस्त! गंजीना उसी का है।
कदूरत से दिल अपना पाक रख ए शाद पीरी में
कि जिसको मुंह दिखाना है, ये आईना उसी का है।
यह सारा अस्तित्व उसी का दर्पण है। जिसे मुंह दिखाना है यह आईना उसी
का है। यहां प्रत्येक व्यक्ति परमात्मा का ही छुपा हुआ रूप है। और यहां प्रत्येक संबंध दर्पण है, जिसमें तुम्हारी झलक मिलती है; मगर तुम आंख खोलो तो! यहां तो सभी नजरें उसी की हैं, मगर उसके लिए नजरों को झेलने की छाती तो चाहिए!
निगह की बरछियां जो सह सके, सीना उसी का है
हमारा आपका जीना नहीं, जीना उसी का है।
जरा सोचो, ये सारी आंखों से परमात्मा झांक रहा है। एक क्षण जरा इस विचार को तुम्हें पकड़ने दो, जैसे झंझावात पकड़ ले। ये सारी आंखें उसकी हैं। घबड़ा जाओगे, बेचैन हो जाओगे। वह तुम्हें प्रति घड़ी देख रहा है। ऐसी कोई जगह नहीं है जहां तुम बच कर जा सको। छिपने का कोई उपाय नहीं है। हां, छिपने का एक ही उपाय है, वह है शुतुरमुर्ग का उपाय कि वह अपने सिर को रेत में गड़ा कर खड़ा हो जाता है; अपनी आंख ही बंद कर लेता है। और यही हम सब ने किया है। हम सब शुतुरमुर्गी न्याय को मानते हैं। अपनी आंख बंद कर के, रेत में सिर को गड़ा कर खड़े हो गए हैं--सोचते हैंः न दिखाई पड़ता है, न होगा। लेकिन तुम आंख बंद कर लो, इससे सूरज नहीं मिटता, सिर्फ तुम अंधेरे में हो जाते हो।
और प्रत्येक व्यक्ति ने परमात्मा के प्रति आंख बंद कर रखी है--और अकारण नहीं; भय के कारण। घबड़ाए हैं लोग--हम उसकी आंख देख सकेंगे? हम उसकी आंख सह सकेंगे? हम उसके आमने-सामने हो सकेंगे? और घबड़ा दिया है तुम्हारे पंडित-पुरोहितों ने तुम्हें। बुरी तरह घबड़ा दिया है! तुम्हारे पंडित-पुरोहितों ने तुम्हें एक ही बात सिखाई है--भय। तुम्हें ईश्वर-भीरु बनाया है। तुम्हारे प्राणों को कंपा दिया है कि नरक में सड़ना पड़ेगा। और तुम्हारी आत्मा को बहुत लोभ से भर दिया है कि ऐसा करो तो स्वर्ग; ऐसा करो तो स्वर्ग के सुख; और ऐसा नहीं किया तो नरक के दुख, नरक की पीड़ाएं। कड़ाहों में जलाए जाओगे। उबलते हुए तेल में उबाले जाओगे। तुम्हें बहुत डराया है। भय और लोभ, दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं--इधर भय, इधर लोभ। धर्म को भय और लोभ की दुकान बना दिया है। और धर्म है अभय। और धर्म है अलोभ।
इसलिए जो भय के कारण धार्मिक हैं वे कभी धार्मिक हो ही नहीं पाते। वे
तो शुतुरमुर्ग हैं। वे तो आंखें बंद किए, सिर रेत में गड़ाए खड़े हैं! फिर चाहे उन्हें हिंदू कहो, चाहे मुसलमान, चाहे ईसाई, इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता। किसी ने मस्जिद में आंखें गड़ा ली हैं, किसी ने मंदिर में आंखें गड़ा ली हैं। कोई गिरजे में छुप गया है। ये तुम्हारे स्थान हैं जहां तुम परमात्मा से छिप रहे हो, कहते तो तुम यह हो कि हम परमात्मा के दर्शन को जा रहे हैं--मंदिर, मस्जिद, गिरजा--लेकिन असली में तुम जा रहे हो परमात्मा से बचने, छिपने। अन्यथा परमात्मा सब तरफ मौजूद है। उसे झेलने की छाती बनाओ। साहस जुटाओ। धर्म कायर का नहीं है, भीरु का नहीं है। धर्म सिर्फ साहसियों का है, हिम्मतवरों का है--जो जोखम उठा सकते हैं, उनका है; जो जीवन के अभियान पर निकलने को तत्पर हैं, उनका है।
लेकिन मामला कुछ बड़ा अजीब हो गया है। हालत ठीक उलटी हो गई है। धर्म के नाम पर लोग शीर्षासन किए हैं, सिर के बल खड़े हैं। मंदिरों और मस्जिदों में जिनकी तुम्हें भीड़ मिलेगी, वे अक्सर भीरु लोग हैं, डरे हुए लोग हैं, घबड़ाए हुए लोग हैं। डर के कारण उन्होंने घुटने टेक दिए हैं। किसी प्रेम में वे नहीं झुके हैं, किसी प्रार्थना में नहीं झुके हैं, भय के कारण उनके घुटने झुक गए हैं। भय के कारण उनके ओंठों से मंत्र बुदबुदाए जा रहे हैं।

कल रात मैं एक कहानी पढ़ रहा था--
ईश्वर ने दुनिया बनाई। अलग-अलग जातियां बनाईं। हिंदुओं से पूछाः तुम क्या चाहते हो? उन्होंने कहाः गायत्री मंत्र। जैनों से पूछाः तुम क्या चाहते हो? उन्होंने कहाः नमोकार मंत्र। मुसलमानों से पूछाः तुम क्या चाहते हो? उन्होंने कहाः कुरान। ईसाइयों से पूछाः तुम क्या चाहते हो? ऐसे वह पूछता गया अलग-अलग लोगों से, अलग-अलग देशों से, अलग-अलग जातियों से। और सबसे आखिरी में बनाया उसने अमरीकन। पूछाः तुम क्या चाहते हो। उसने कहाः डालर! ईश्वर थोड़ा हैरान हुआ। उसने कहाः देखो, तुम्हारे सामने ही किसी ने गायत्री, किसी ने गीता, किसी ने कुरान, किसी ने बाइबिल, किसी ने तालमुद, किसी ने नमोकार, मंत्र, तंत्र, यंत्र, ध्यान, प्रार्थना, पूजा, ये सब चीजें मांगी--और तू मांगता है डालर! अमरीकन ने कहाः फिक्र छोड़ो, सिर्फ डालर मुझे चाहिए और सब मंत्र-तंत्र जानने वाले लोग अपने आप डालर के पीछे चले आएंगे। वैसा ही हुआ भी है। सारी दुनिया अमरीका की तरफ भागी जा रही है। अब काबा में काबा नहीं है और काशी में काशी नहीं है। काशी-काबा के सब पंडित-पुरोहित तुम्हें कैलिफोर्निया में मिलेंगे!
भयभीत आदमी अगर भय के कारण गायत्री भी मांग ले तो उसकी गायत्री खरीदी
जा सकती है। भय के कारण अगर कोई भगवान का नाम लेता हो तो उसका भगवान भी खरीदा जा सकता है। क्योंकि भयभीत मूलतः लोभी होता है। लोभी ही भयभीत होता है।
लोग प्रार्थनाएं क्या कर रहे हैं मांगते क्या हैं प्रार्थना में? यही
कि और धन दे, कि और पद दे, कि और प्रतिष्ठा दे! संसार ही मांगते हैं। जाते परमात्मा के पास हैं, परमात्मा को छोड़ कर और सब मांगते हैं।
निगह की बरछियां जो सह सके, सीना उसी का है
हमारा आपका जीना नहीं, जीना उसी का है।
ये बज्मे-मय है...
यह पीने वालों की महफिल है...
ये बज्मे-मय है, यां कोताह-दस्ती में है महरूमी
यहां हाथ सिकोड़ कर भयभीत न बैठे रह जाना।... यहां कोताह-दस्ती में है महरूमी।
जो बढ़ कर खुद उठा ले हाथ मग, मीना उसी का है।
यहां तो सुराही उसकी है जो हिम्मत करे और बढ़ कर सुराही को उठा ले। यहां सिकुड़े-सिकुड़ाएं भयभीत बैठे रहे तो चूक ही जाओगे। यहां डरे-डरे, घबड़े-घबड़ाए बैठे रहे, तो तुम्हारी प्याली रिक्त ही रह जाएगी। कोई साकी नहीं आएगा उसे भरने। कोई सुराही अपने से सरक कर तुम्हारी प्याली में ढलेगी नहीं।
जो बढ़ कर खुद उठा ले हाथ में, मीना उसी का है।
और पीने वाले की क्या परिभाषा है, किसको हम पियक्कड़ कहें? परमात्मा के जगत में पीने वाला कौन है?
मुकद्दर या मुसफ्फा जिसको ये दोनों ही यकसां हों
सफलता और असफलता, पुण्य और पाप, जिसे दोनों एक से हों; जिसे कुछ भेद ही
न रह जाए; जिसे पृथ्वी और आकाश एक जैसे मालूम होने लगें; जिसके भीतर दुई मिट जाए।
मुकद्दर या मुसफ्फा, जिसको ये दोनों ही यकसां हों
हकीकत में वही मयख्वार है, पीना उसी का है।
बस वही पियक्कड़ है। उसने ही जाना; उसने ही पिया; उसने ही स्वाद लिया। उमीदें जब बढ़ें हल से तिलिस्मी सांप हैं जाहिद
तो तोड़े यह तिलिस्म, ऐ दोस्त! गंजीना उसी का है।
यहां तुम्हारे त्यागी-विरागी भी मांग रहे हैं। और मांगने वालों को परमात्मा की संपदा नहीं मिलती। मालकियत चाहिए! अपने भीतर भिखमंगापन मिटना चाहिए।
जीवन का गणित बहुत अदभुत है। जो मांगता है, उसे नहीं मिलता। जो नहीं मांगता उस पर एकदम वर्षा हो जाती है।

जो तोड़े यह तिलिस्म ऐ दोस्त! ... यह भिखमंगेपन का जो जादू तुम्हें घेर लिया है, यह माया जो तुम्हें घेर ली है, जो तोड़ दे... ऐ दोस्त! गंजीना उसी का है। खजाना उसका ही है। खजाना दूर भी नहीं, खजाना पास ही है। मगर डुबकी लगाने का साहस... । और ऐसा नहीं है कि डुबकी लगाने में तुम्हें कुछ मीलों डुबकी लगानी है--डुबकी लगाते ही मिल जाता है। डुबकी लगाने की ही बात है। एक रात एक यात्री एक पहाड़ पर भटक गया। अंधेरा था, राह अनजानी थी। किसी तरह टटोल-टटोल कर बढ़ रहा था कि पार फिसला और गिरा। पकड़ कर एक जड़ वृक्ष की अटका रहा। रात ठंडी और ठंडी होती गई। हाथ बर्फ जैसे ठंडे हो गए। पकड़ छूटने लगी। मगर सारी ताकत लगा कर अटका रहा, अटका रहा, अटका रहा। सुबह तक किसी तरह--प्राणों का सवाल था, जिंदगी-मरण की बात थी। किसी तरह अपने को सुबह तक बचाया। और जब सुबह सूरज की किरण निकली तो पता है--वे पहाड़ियां उस आदमी की हंसी से गूंज उठीं! वह ऐसा खिलखिला कर हंसा कि सारे पहाड़ उसके साथ हंसने लगे। क्या हो गया, क्यों हंसा? हंसा इसलिए कि जब सुबह सूरज की किरण निकली तब उसने देखा कि वह नाहक रात भर परेशान रहा। सिर्फ छह इंच नीचे जमीन थी। अंधेरे में लटका रहा--भय के कारण कि पता नहीं किस खाई-खड्ड में गिरना पड़े अगर हाथ से जड़ छूट जाए! रोशनी हुई तो पता चला, केवल छह इंच नीचे जमीन थी, कोई डर न था।
हिम्मत हो गोता लगाने की तो दूर नहीं है उसका खजाना। उसके लाल बहुत दूर नहीं हैं। दूरी उतनी ही है जितनी तुम में हिम्मत की कमी है--उसी अनुपात में दूरी है।
सो पावैगा लाल जायके गोता मारै।
मरजीवा ह्वै जाय लाल को तुरत निकारै।।
तुरत शब्द को याद रखना। इसी क्षण घटना घट सकती है--तुरंत। एक क्षण भी प्रतीक्षा करने की जरूरत नहीं है। लेकिन एक शर्त पूरी करनी पड़े--मरजीवा ह्वै जाय... जीते-जी मृतवत हो जाए। अहंकार हट जाए तो यह घटना घट जाती है।
तुम हो भी और नहीं भी हो। अहंकार गया, तो तुम शून्य हो। मरजीवा ह्वे जाय।
अहंकार गया कि तुम गए, परमात्मा है।
मरजीवा ह्वै जाय लाल को तुरत निकारै।।
तुम शून्य हो जाओ तो पूर्ण अपने आप उतर आता है। मगर हम अहंकार की जड़ों
को पकड़कर अटके हैं। और एकाध रात नहीं, जन्मों-जन्मों से अटके हैं। यह रात बड़ी लंबी हो गई। और बहुत कष्ट पा रहे हैं और बहुत पीड़ा झेल रहे हैं, मगर जड़ों को छोड़ नहीं सकते। भय लगता है कि अगर अहंकार न रहा तो फिर मैं कौन हूं? अहंकार परिभाषा देता है, एक तादात्म्य देता है, एक अहसास देता है कि मैं यह हूं, मैं वह हूं; इतना धन मेरे पास, इतना पद, इतना ज्ञान, इतना त्याग। अहंकार कुछ रूप-रेखा देता है। यह सब छूट जाए, तो फिर मैं कौन हूं? एक गहन प्रश्न उठेगा, एक बवंडर की तरह प्रश्न उठेगा कि मैं कौन हूं? और धन्यभागी हैं वे, जिनके भीतर यह प्रश्न एक बवंडर की तरह उठता है कि मैं कौन हूं। क्योंकि फिर देर नहीं है मिलने में।
जिस दिन यह प्रश्न उठता है कि मैं कौन हूं, एक बात साफ हो गई कि तुमने
अब तक अपने को जो-जो मान रखा था, उस सब से नाता तोड़ लिया। अब तुम नहीं कहते कि मैं शरीर हूं; नहीं कहते कि मैं मन हूं; नहीं कहते हिंदू, नहीं मुसलमान; न भारतीय, न चीनी, न पाकिस्तानी। अब तुमने सब ऊपर के थोथे आवरण छोड़ दिए, तुमने सारे वस्त्र गिरा दिए। अब तुम नग्न खड़े हो, अब तुम्हें पता नहीं चलता कि मैं कौन हूं। आधी घटना घट गई, आधी क्रांति हो गई। झूठा मैं टूट गया। अब बस प्रश्न की गहनता--मैं कौन हूं--बढ़े। ऐसी बढ़े कि प्राणों में छिद जाए, भिद जाए!
श्री रमण कहते थे कि कोई सिर्फ अगर एक ही प्रश्न पूछता रहे बैठकर कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, और ऊपर से दिए गए कोई भी उत्तर स्वीकार न करे तो एक दिन भीतर से उत्तर आता है। उत्तर नहीं आता, अनुभव ही आता है। अनुभव ही उत्तर है। एक दिन साक्षात्कार होता है कि मैं कौन हूं। अहं ब्रह्मास्मि! मैं ब्रह्म हूं! शून्य हुए कि पूर्ण उतरा। मिटे कि पाया। यहां खोने वाले ही पा सकते हैं। बड़ा सीना चाहिए!
चरागे-तूर जलाओ! बड़ा अंधेरा है

जरा नकाब उठाओ! बड़ा अंधेरा है।

वो, जिनके होते हैं खुर्शीद आस्तीनों में उन्हें कहीं से बुलाओ! बड़ा अंधेरा है।

मुझे तुम्हारी निगाहों पे एतमाद नहीं मेरे करबी न आओ! बड़ा अंधेरा है।

फराजे-अर्श से टूटा हुआ कोई तारा
कहीं से ढूंढ के लाओ! बड़ा अंधेरा है।

अभी तो सुबह के माथे का रंग काला है
अभी फरेब न खाओ! बड़ा अंधेरा है।

जिसे जबाने-खिरद में शराब कहते हैं
वो रोशनी-सी पिलाओ! बड़ा अंधेरा है।
जरा गौर से तो देखो! कितने अंधेरे में गिरे खड़े हो! इसी को जिंदगी मान रहे हो? इन्हीं कांटों को फूल समझ रहे हो? इसी फांसी को? सूली पर लटके हो। एक नहीं हजार सूलियों पर लटके हो और सोच रहे हो यही जिंदगी है! ऐसे ही सूली पर लटके-लटके टूट जाओगे; श्वास टूट जाएगी, और जान भी न पाओगे कि जिंदगी क्या थी। अंधेरे में ही जिए, अंधेरे में ही मर जाओगे।
चरागे-तूर जलाओ! ...
तूर नाम के पर्वत पर मूसा को परमात्मा की रोशनी दिखाई पड़ी थी। उसको कहते हैं--चरागे-तूर। परमात्मा वहां प्रज्वलित अग्नि की भांति मूसा के सामने प्रकट हुआ था। और ऐसी प्रज्वलित अग्नि कि मूसा एक क्षण को किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए थे! कुछ समझ में न पड़ता था। बड़ी रहस्यमय अग्नि, क्योंकि एक हरी-भरी झाड़ी के बीच से उठ रही थी लपट। आग जल रही थी और झाड़ी हरी की हरी थी। न फूल कुम्हलाए थे, न पत्ते कुम्हलाए थे। आग थी, मगर बहुत ठंडी आग थी।
परमात्मा आग है--बहुत ठंडी आग है! रोशनी है, लेकिन ताप नहीं; बड़ी शीतल
आग है।
चरागे-तूर जलाओ! ...
तुम्हें भी जलानी होगी ऐसी रोशनी अपने भीतर, जिसमें ताप नहीं।
कामवासना आग है, जो जलाती है। प्रार्थना भी आग है, जो जलाती नहीं। आग
के दो गुणधर्म हैं--एक जलाना और एक रोशनी देना। कामवासना जलाती है, क्योंकि उत्तप्त है; बुखार जैसी है; मारती है। इसी को निखारना है, शुद्ध करना है। इसमें से वासना चली जाए, इसमें से ताप चला जाए, तो यही प्रार्थना बन जाए, शीतल हो जाए। ठंडी आग!
ऐसी ठंडी आग को देख कर तो कबीर ने उलटबांसियां कहीं। उलटबांसियों का अर्थ है कि जिंदगी के सत्य तार्किक नहीं हैं, अतर्क्य हैं। कबीर कहते हैंः नदिया लागी आगि। नदी में आग लगी है! नदी में आग लगती नहीं है। लेकिन कबीर यह कह रहे हैं कि मुझे ऐसे सत्य दिखाई पड़ रहे हैं जिन पर तुम भरोसा न कर सकोगे; जैसे कोई कहे आ कर कि मैंने नदी में आग लगी देखी और तुम कहोगे--रहने भी दो! इतना झूठ न बोलो।
दो अफीमची एक झाड़ के नीचे बैठ गपशप कर रहे थे। पीनक में थे। एक अफीमची
ने कहा, मेरे दादा का घर इतना बड़ा था कि एक बार एक बच्चा गिर पड़ा ऊपर की मंजिल से तो नीचे आते-अपते तक जवान हो गया। दूसरे अफीमची ने कहा, यह कुछ भी नहीं, मेरे दादा का मकान इतना बड़ा था कि एक बार एक बंदर गिर पड़ा तो नीचे आते-आते तक आदमी हो गया! पहला अफीमची बोला कि इतनी न हांको! चलो मैं भी थोड़ी बदले लेता हूं। बच्चा नहीं था, बस मूंछ की रेख निकल ही रही थी। गिरा था और जवान हो गया था। अब तुम भी अपनी कहानी में सुधार कर लो।

दूसरे अफीमची ने कहाः अगर तुम इतना करने को राजी हो, तो मैं भी कर सकता हूं। मुहर्रम के दिन थे। वह आदमी असली में बंदर नहीं था, बंदर बना था। नीचे आते-आते तक घबड़ाहट में पसीने में रंग बह गया, सो आदमी हो गया था। अफीमचियों पर हंस लेना आसान है। मगर तुम्हारे पुराण अफीमचियों की पीनक से कुछ और ज्यादा नहीं मालूम होते। और हरेक पुराण, हरेक धर्म अपने दावे बड़े-बड़े करता है। ऐसे दावे जो कि अफीमची करें तो क्षमा किए जा सकें, लेकिन पंडित-पुरोहित करते हैं। तुम दावे जरा गौर से देखो, जरूर अंधेरे में लिखी गई होंगी ये किताबें और अंधों ने लिखी होंगी। अंधेरे की ही स्याही से लिखी होंगी। इनमें रोशनी कहीं दिखाई नहीं पड़ती।
महावीर को मानने वाले कहते हैं कि महावीर मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करते थे। भोजन करोगे, पानी पीओगे और मल-मूत्र का विसर्जन नहीं करोगे? महावीर को पसीना नहीं आता था। एक तो नंग-धड़ंग, बिहार की गरमी, धूप-धाप... और महावीर को पसीना नहीं आता था; तो किसको पसीना आएगा? चमड़ी थी कि प्लास्टिक था? जीवित व्यक्ति की चमड़ी में रोआं-रोआं श्वास लेता है। रोआं-रोआं शरीर को शीतल करने का उपाय करता है, इसीलिए पसीना आता है। पसीने की एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है। उसका अपना रासायनिक अर्थ है। अगर जिस आदमी को पसीना न आता हो वह जिंदा नहीं रह सकता, वह मर ही जाएगा। मर ही चुका! मुर्दे को ही पसीना नहीं आता। पसीना आना जरूरी है क्योंकि पसीना शरीर को एक सुनिश्चित तापमान में रखने की प्रक्रिया है।
तुमने देखा, सर्दी हो कि गर्मी, शरीर के भीतर का तापमान समान रहता है-- वही अट्ठानबे डिग्री के करीब। कितनी ही गरमी पड़ रही हो, तुम्हारे भीतर कोई एक सौ दस डिग्री गरमी नहीं हो जाती। नहीं तो तुम खतम ही हो जाओ। और कितनी ही सर्दी पड़ रही हो, शून्य डिग्री से नीचे उतर गया हो तापमान, तो तुम शून्य डिग्री के नीचे नहीं उतर जाते। नहीं तो गए, फिर लौटने का कोई उपाय नहीं! तुम तो अट्ठानबे डिग्री के करीब ही रहते हो।
शरीर बड़ी अदभुत प्रक्रिया है!
जब बहुत गरमी पड़ती है तो रोएं-रोएं से पसीना बहता है। पसीना क्यों बह रहा है? पसीना इसलिए बह रहा है कि शरीर की गरमी को पसीना पी लेगा और भाप बन कर उड़ जाएगा। शरीर की गरमी पसीने को भाप बना देगी। शरीर की गरमी पसीने को भाप बनाने के काम आ जाएगी और भीतर इकट्ठी नहीं होगी। इसलिए जब तुम सर्दी में ठिठुरने लगते हो तो कंपने लगते हो, दांत कटकटाने लगते हो। क्यों? यह शरीर की तरकीब है कंपन पैदा करने की, गति पैदा करने की--ताकि गति के द्वारा सर्दी तुम्हें बिल्कुल सर्द न कर जाए। गति बनी रहे, हलन-चलन होता रहे तो तुम्हारे भीतर गरमी बनी रहेगी।
महावीर को पसीना नहीं निकलता! महावीर को ही नहीं, किसी तीर्थंकर को नहीं, चौबीस तीर्थंकर जैनों के, पसीना नहीं निकलता! वह खास परिभाषा है। अगर कोई दावा करे कि मैं तीर्थंकर हूं तो पहली बात सिद्ध करनी पड़ेगी कि पसीना निकलता है कि नहीं? पसीना निकलता है तो बात खतम हो गई। उत्तीर्ण नहीं हो सकते फिर तीर्थंकर की परीक्षा में!
ईसाई कहते हैं कि जीसस क्वांरी बेटी से पैदा हुए। अफीमचियों की तरह पीनक में बातें कर रहे हो! कि जीसस पानी पर चलते हैं; कि जीसस मुर्दे को जिला लेते हैं; कि जीसस अंधों को छू देते हैं, उनको आंखें आ जाती हैं। यही जीसस जब सूली पर लटकाए जाते हैं और इन्हें प्यास लगती है तो पानी मांगते हैं। कोई चमत्कार काम नहीं आता। इन्हीं जीसस ने पूरे समुद्र को चमत्कार करके पानी से शराब बना दिया था।
मोहम्मद जहां भी जाते हैं उनके ऊपर एक बदली छाया करती हुई चलती है। खूब छाते की तरकीब निकाली! कहां छाता लिए फिरें मोहम्मद, तो एक बदली अटकी रहती है सिर पर उनके पर, वे जहां चलें।... और रेगिस्तान में भयंकर गरमी, जरूरत भी है छाते की। अगर क्या छाता खोजा! हवा किसी तरफ जा रही हो, मोहम्मद किसी तरफ जा रहे हों, तो भी बदली मोहम्मद के साथ जाती है, हवा के साथ नहीं जाती। अब बदलियां कहीं ऐसे मोहम्मदों का पीछा करती हैं? यह दूसरी बात है कि मोहम्मद की देख-देख कर चलते हों कि बदली कहां को जा रही है। यह दूसरी बात है कि जिस तरफ जाएं, बदली उस तरफ चले।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने गधे पर बैठा हुआ तेजी से चला जा रहा था। बाजार में लोगों ने पूछा, नसरुद्दीन, कहां जा रहे हो बड़ी तेजी से? उसने कहा, मेरे गधे से पूछो। क्योंकि वह मेरी तो सुनता नहीं और कभी-कभी बीच बाजार में फजीहत करवा देता है, कि मुझे ले जाना है बाएं और उसको जाना नहीं। अब गधे तो गधे! और चार आदमी देख कर भीड़-भाड़ में उनकी अकड़ बढ़ जाती है। गधे भी बड़े राजनीतिज्ञ होते हैं! देखे बहुत-से वोटर, अकड़ गए! कि तुमने समझा क्या है मुझको!
मुल्ला ने कहा कि अकेले में तो मैं इसको जहां चाहता हूं वहां चला जाता है; मगर बीच बाजार में अगर मैंने इसको रोका, छेड़ा कि बस लोटने-पोटने लगता है, उपद्रव मचा देता है। चार आदमियों के सामने भद्द हो जाती है। तो मैंने भी एक तरकीब निकाल ली है। गधा है, यह क्या समझता है! आखिर मैं भी होशियार हूं--आदमी हूं! अब मैं बाजार में इसको चलाने की कोशिश ही नहीं करता; जहां जाता है शान से उसी तरफ जाता हूं। गांव के बाहर निकाल कर फिर जहां ले जाना है। ले जाऊंगा, मगर गांव के भीतर, जहां यह जाता है... । इससे इज्जत भी बनी रहती है, गांव के लोग समझते हैं कि क्या प्यारा गधा है!
इसी प्यारे गधे को मुल्ला नसरुद्दीन एक दफे बेचने ले गया। थक गया, परेशान हो गया इस गधे से। खूब नहलाया-धुलाया। लक्स साबुन लगाई। कंघी की। लेकिन चला। एक आदमी ने देखा--एक रईस ने देखा। इतना शानदार, साफ-सुथरा गधा, सुगंधित, कभी देखा नहीं था। और मुल्ला नीचे चल रहा था, उस पर बैठा भी नहीं था। उस अमीर ने कहा कि इतना अच्छा गधा, और इस पर बैठते क्यों नहीं? मुल्ला ने कहा कि नहीं, बड़ा प्यारा गधा है! इस को बैठ कर मैं कष्ट नहीं देना चाहता। तभी तो इसकी यह शान है। गधों में यह पहुंचा हुआ गधा है। सिद्धपुरुष समझो। अमीर का दिल आ गया। उसने कहा कि ठीक है, मैं खरीद लेता हूं। जितने रुपये मुल्ला ने मांगे... जितने ज्यादा से ज्यादा मांगने की कल्पना कर सकता था, मांगे... अमीर ने दे दिए। दूसरे दिन अमीर गधे को लेकर मुल्ला के घर आया और कहा कि यह तो धोखा किया तुमने। यह गधा तो बड़ा अजीब है! बैठो तो बैठने ही नहीं देता। दुलत्ती मारता है। जमीन पर लोट जाता है। खाने में भी इसको श्रेष्ठतम भोजन चाहिए, दूसरी कोई चीज खाता नहीं। यह कहां की झंझट दे दी! मुल्ला ने कहा, इस में और कोई खराबी नहीं है, बस एक बात का ख्याल रखना, कभी इस पर बैठने की कोशिश मत करना। और सब बातों में यह सुंदर है, बस इस पर बैठना भर मत।
गधे पर अगर बैठो न तो प्रयोजन क्या रहा?
ये शास्त्रों में तुम्हारी जो कहानियां हैं, इनको तुम जीवन में तो उतार ही नहीं सकते। न तुम पानी पर चल सकते हो, न आकाश में उड़ सकते हो, न पसीना बहने से रोक सकते हो, न बदलियों को अपने सिर पर चला सकते हो, न मरतों को उठा सकते हो, न अंधों को आंख दे सकते हो--इन सारी कहानियों का कोई अर्थ ही न रहा। ये फिजूल हैं। ये पीनक में कही गई हैं। और यह सिर्फ दूसरे से अपने को बड़ा सिद्ध करने की कोशिश में चेष्टा चल रही है। अगर तुम्हारा तीर्थंकर ऐसा करता है, तो हमारा अवतार इससे बड़ा करके दिखलाएगा! और जब कहानियां ही लिखनी हैं तो फिर अपना दिल, जो चाहे करो! जैसी कहानी बनाना चाहो, बनाओ!
इन कहानियों को तुम धर्म मत समझ लेना। और इन कहानियों के कारण बड़ा अंधेरा है। धर्म तो चरागे-तूर है, कहानी किस्से नहीं है; पुराण-कथाएं नहीं है। धर्म तो चरागे-तूर है। यह तो ठंडी रोशनी है। यह तो रोशनी का एक रूपांतरण है। यह तो अग्नि के भीतर हो गई एक क्रांति है। और जब तुम्हारे भीतर यह चरागे-तूर जलता है... ।
यहूदी खोजते हैं कि तूर नाम का पर्वत कहां है। कोई कहता है, यहां, कोई कहता है वहां। मैं कहना चाहता हूंः यह तूर नाम का पर्वत बाहर नहीं है, यह तूर नाम का पर्वत भीतर है। और जिस झाड़ी में मूसा ने आग लगी देखी थी, वह तुम हो। झाड़ी को कहीं और खोजने मत जाना। वे फूल तुम्हारे हैं, वे पत्ते तुम्हारे।
चरागे-तूर जलाओ! बड़ा अंधेरा है।
जरा नकाब उठाओ! बड़ा अंधेरा है।

थोड़ा घूंघट हटाओ! घूंघट के पट खोल, तोहे पिया मिलेंगे!
मगर साहस ही नहीं रहा हम में। हमारी जिंदगी में साहस एकदम विदा ही हो गया है।
सो पावैगा लाल जायके गोता मारै।
मरजीवा ह्वै जाए लाल को तुरत निकारै।।
निसिदिन मारै मौज, मिली अब बस्तु अपानी।
फिर तो मौज ही मौज है। अप्राप्य मिल गया। जो नहीं मिल सकता है वह मिल
गया। असंभव संभव हुआ।
निसिदिन मारै मौज मिली अब बस्तु अपानी।
ऋद्धि सिद्धि और मुक्ति भरत हैं उन घर पानी।।
जिन्होंने भीतर की इस रोशनी को जान लिया; यह चिराग जिनका जल उठा; जिन्होंने घूंघट हटा दिया; जिन्होंने अपने सब परदे गिरा दिए; जिन्होंने अपने स्वभाव को उसकी समग्र नग्नता में पहचान लिया--अब उन्हें न ऋद्धियों की फिक्र है, न सिद्धियों की फिकर है, न मुक्ति की चिंता है--ये सब उनके घर पानी भरती हैं।
वे साहन के साह, उन्हैं है आस न दूजा।
ब्रह्मा बिस्नु महेस करैं सब उनकी पूजा।।
जिसने भीतर का दीया जला लिया है, जिसके भीतर ध्यान का दीया जला, या भक्ति का दीया जला, प्रेम का दीया जला, अब उसे किसी मंदिर-मस्जिद में नहीं जाना पड़ता। उलटी घटना घटती हैः ब्रह्मा बिस्नु महेस करैं सब उनकी पूजा! वे साहन के साह... वे शहंशाह हैं। और उनकी संपदा और साम्राज्य ऐसा है, जो कोई छीन नहीं सकता।
पलटू गुरु-भक्ती बिना भेस भया कंगाल।
जो साहिब का लाल है, सो पावैगा लाल।।
अब दुनिया में बहुत संन्यासी दिखाई पड़ते हैं--साधु, महात्मा, मुनि, त्यागी, व्रती--मगर पलटू कहते हैं, चूंकि एक चीज चूक रही है, सब कंगाल हैं। पलटू गुरु-भक्ति बिना भेस भया कंगाल। अब ये सिर्फ कंगालियों के अलग-अलग रूप हैं--कोई मुनि, कोई महात्मा, कोई साधु--ये सब भिखमंगी के ही रूप हैं। इन सब में भिखारी ही छिपा हुआ है। जिनसे कुछ करते नहीं बनता, वे साधु हो गए हैं। जो जिंदगी में कहीं सफल न हो सके, वे साधु हो गए हैं। जो सब जगह असहल हो गए, उन्होंने सोचा, चलो, साधु हो जाएं; कम से कम सम्मान तो मिलेगा--मुफ्त सम्मान। उलटे-सीधे कामों के कारण सम्मान मिल रहा है। कोई कांटों पर सोया है, सम्मानित हो रहा है। किसी ने मुंह में भाला भोंक लिया है, वह सम्मानित हो रहा है। कोई उपवास कर रहा है, वह महाव्रती समझा जा रहा है। भूखे मर रहा है सिर्फ। यह सिर्फ कंगाल है।
असली संन्यासी शाहों का शाह होता है, बादशाह होता है। उसके पास लाल होता है। उसके पास परमात्मा का हीरा होता है।
खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम।।
लोग खोजते तो हैं हीरे को, मगर पास में पोत खरीदने के भी दाम नहीं; कांच के गुरिए खरीदने के भी दाम नहीं और हीरे खरीदने चल पड़ते हैं।
लोग पूछते हैंः ईश्वर कहां है? ईश्वर को कैसे पाएं? ईश्वर का प्रमाण क्या? ईश्वर को सिद्ध करें। खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम। और यह कोई भी नहीं पूछता कि मेरी सामर्थ्य क्या है कि ईश्वर को जानूं; मेरा अधिकार क्या है कि ईश्वर को जानूं; मेरी पात्रता क्या है कि ईश्वर को जानूं? सम्यक खोजी ईश्वर के संबंध में नहीं पूछता, पूछता है कि मैं कैसी पात्रता निर्मित करूं कि ईश्वर का अनुभव हो सके! मुझे पाठ दें कि मैं अपनी आंखों को कैसे धोऊं कि सारी धूल झड़ जाए और मैं देख सकूं उसे, जो है! मेरे हृदय को निखारने की कोई कीमिया दें, ताकि मेरे भीतर भी प्रेम प्रार्थना बन सके। सच्चा खोजी परमात्मा की बात नहीं पूछता, अपनी पूछता है। दुर्दशा को अपनी कैसे रूपांतरित करूं, इस संबंध में पूछता है। यह नहीं पूछता कि परमात्मा है या नहीं; यह पूछता है कि यह मेरा अंधेरा कैसे कटे? या यह मेरा अंधापन कैसे मिटे?
खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम।।

नहीं पोत का दाम, जोहरि की गांठ खुलावै।
पैसे नहीं हैं कांच के गुरिए खरीदने को और पहुंच जाते हैं जौहरियों
के पास और चाहते हैं कि जौहरी खोल दें अपनी गांठ, दिखाएं अपने बहुमूल्य हीरे। शायद साधारण दुनिया में तुम जौहरी को धोखा दे भी दो, क्योंकि जौहरी कैसे समझेगा कि तुम्हारे पास दाम हैं या नहीं? तुम अगर जा कर पूछोगे कि भई, हीरों का क्या भाव है, तो जौहरी बेचारा बताने लगे। मगर परमात्मा के जगत के जो जौहरी हैं--तुम किसी गुरु को धोखा न दे पाओगे; तुम किसी बुद्ध को धोखा न दे पाओगे।
बुद्ध के पास जाकर लोग पूछते हैंः ईश्वर है? बुद्ध बात ही टाल जाते हैं। बुद्ध बात ही कुछ और करते हैं। अनेक बार लोगों ने बुद्ध को कहा है कि हम कुछ पूछते हैं, आप कुछ कहते हैं! आप हमारे प्रश्न का सीधा-सीधा उत्तर क्यों नहीं देते?
बुद्ध कहते हैंः तुम्हारा प्रश्न अभी पूछने का क्षण नहीं आया। उसके लिए प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। मैं वह उत्तर दे रहा हूं, जो तुम अभी समझ सकते हो। तुम वह पूछ रहे हो, जो कभी शायद तुम समझ सको। आज उत्तर देने का समय नहीं है। आज तुम पके नहीं हो। आज तुम्हारी कोई पात्रता नहीं, कोई अधिकार नहीं। इसलिए बुद्ध ने ईश्वर है या नहीं, इस संबंध में चुप्पी रखी। लोगों ने मनगढ़ंत सिद्धांत बना लिए, किसी ने मान लिया कि ईश्वर है, लेकिन चूंकि गूंगे का गुड़ है, कहा नहीं जा सकता, इसलिए बुद्ध चुप हैं। तो कम से कम इतना तो कह सकते थे कि गूंगे का गुड़ है! इतना तो कह सकते थे कि कहा नहीं जा सकता है, इसलिए चुप हूं! यह भी नहीं कहा। कुछ मानते हैं, ईश्वर है ही नहीं, इसलिए बुद्ध चुप हैं, कि कौन झूठ ले कहने की कि ईश्वर नहीं है! क्योंकि नाहक लोगों को दुख पहुंचाओ कि ईश्वर नहीं है! इसलिए चुप ही रहे। यह बात भी सच नहीं है।
बुद्ध लोगों को चोट पहुंचाने से नहीं डरते। क्योंकि बिना चोट के कहीं कोई पत्थर मूर्ति बना है! बुद्ध लोगों को झकझोरने से नहीं डरते। क्योंकि बिना झकझोरे तुम्हारी धूल कैसे झरेगी? बुद्ध तुम पर प्रहार करने में जरा भी कृपणता नहीं करते हैं; बेरहमी से प्रहार करते हैं, क्योंकि तुम पर प्रहार की जरूरत है; तुम्हारी गर्दन काटनी है; तुम्हारा अहंकार गिराना है; तुम्हारे घर में आग लगा देनी है--तो ही तुम जागोगे। छोटे-मोटे उपाय से काम होने वाला नहीं है। तुम्हारा आलस्य ऐसा है कि घर में आग लग जाए तो ही शायद तुम दो-चार कदम चलो। लगी आग देख कर शायद तुम दौड़ कर बाहर निकलो। बुद्ध बेरहमी से चोट करते हैं।
इसलिए यह बात ठीक नहीं है कि लोगों को चोट लगेगी इसलिए वे चुप रह गए। उनके चुप रह जाने का कारण कुछ और है। उनके चुप रह जाने का कारण मैं तुमसे कहताः
तुम पात्र नहीं थे पूछने के। तुम ऐसा प्रश्न पूछ रहे थे, जिसके दाम तुम्हारे पास नहीं थे। इसलिए बुद्ध की अब तक जितनी व्याख्याएं की गई हैं, उनसे मैं किसी से राजी नहीं हूं। एक तरफ लोग हैं जो कहते हैंः ईश्वर है, ऐसा बुद्ध जानते हैं, लेकिन चूंकि कहा नहीं जा सकता, अव्याख्य है, अनिर्वचनीय है, इसलिए चुप हैं। कुछ कहते हैं कि बुद्ध जानते हैं कि ईश्वर नहीं है, लोगों को चोट नहीं पहुंचाना चाहते, इसलिए चुप हैं। और कुछ लोग कहते हैं कि बुद्ध को पता ही नहीं है, अपना अज्ञान छिपाने के लिए चुपचाप बैठे हैं। न बोलना ही अच्छा; क्योंकि बोले, फंसे।
ये सारी व्याख्याएं गलत हैं। अगर बुद्ध को पता नहीं है तो किसी को पता नहीं है। अगर बुद्ध को पता नहीं है तो फिर किसी को कभी पता नहीं होगा। क्योंकि कौन इतना गहरा गया है? न बुद्ध इसलिए चुप हैं कि अनिर्वचनीय है। न बुद्ध इसलिए चुप हैं कि चोट नहीं करना चाहते। बुद्ध के चुप रहने का कारण-- खोजत हीरा को फिरै, नहीं पोत का दाम।।
नहीं पोत का दाम, जोहरि की गांठ खुलावै।
तुम बुद्ध की गांठ नहीं खुला सकते। ये बुद्ध कोई साधारण जौहरी नहीं हैं कि ग्राहक धोखा दे जाए। यह तो बुद्ध जब परख लेंगे ठीक से कि हां, अब ग्राहक की लेने की क्षमता है, तो कहेंगे। बुद्ध ने कहा है, सब कहा है; लेकिन

उनसे कहा है जिनकी लेने की क्षमता थी। वह अत्यंत समीपता में, निकटता में, मौन में दिए गए संदेश हैं। उनका कोई उल्लेख शास्त्रों में नहीं है, क्योंकि वे कोई सार्वजनिक वक्तव्य नहीं थे। शास्त्रों में तो सार्वजनिक वक्तव्य लिखे गए हैं। लेकिन जो बुद्ध ने निजता में, एकांत में अपने निकटतम शिष्यों को कहा है, वह तो नहीं लिखा गया। उसे तो शिष्य लिख भी नहीं सकते, क्योंकि फिर वह बात उसी को कही जा सकती है, जिसकी गांठ में दाम हो।
इसलिए धर्म के दो रूप हैं। एक रूप है जो सार्वजनिक है--जो सब से कहा जा सकता है। वह धर्म का अत्यंत साधारण रूप है। और एक धर्म का असली गुह्य रूप है, जो केवल उनसे कहा जा सकता है जो सुनने की पात्रता रखते हैं। वह तो कानों-कान कहा जाता है।
तुम सुनते न कि गुरु कान फूंकता है! अब तो गांव-गांव गुरु कान फूंकते हैं। बात ही... हम हर चीज को बिगाड़ देते हैं। कान फूंकने का मतलब क्या है अब? अब यह है कि उसकी कुछ फीस होती है--तीन रुपया, ढाई रुपया... और कान फूंक देता है गुरु। फूंक कर क्या कहता है? कि यह राह तेरा मंत्र--राम-राम, राम-राम, राम-राम जपना; और किसी को बताना मत। क्योंकि बता दे तो मामला ही खुल जाए, पोल ही खुल जाए। अगर सब को कह दे कि यह गुरु ने कान में कुल इत्ती बात कही--ढ़ाई रुपये ले लिए बेकार; राम-राम जपना, यह तो हमें ही मालूम था। इसमें कौन सी बात बता दी? तो कहना मत किसी को--यह शर्त है। पाप लगेगा अगर इसको बताओगे किसी को। यह कान फूंकना!
कान फूंकने का अर्थ कुछ और था। कान फूंकने का अर्थ था--कुछ बातें हैं
जो कान में ही कही जा सकती हैं; जिनकी गुफ्तगू ही हो सकती है--गुपचुप, चुपचाप, फुसफुसा कर ही कही जा सकती हैं। वे बातें इतनी कीमती हैं कि उन्हें सार्वजनिक नहीं किया जा सकता; उनका गुप्त दान ही होता है। वे तो निकटतम शिष्यों को ही कही जा सकती है। उनको संग्रहीत भी नहीं किया जाता है।
नहीं पोत का दाम, जोहरि की गांठ खुलावै।
बातन की बकवाद जौहरी को बिलमावै।।
लंबी बोलत बात, करै बातन की लदनी।
ग्राहक लंबी-चौड़ी बातें कर रहा है, जौहरी को बिलमा रहा है। ईश्वर है
या नहीं? तत्वमसि का क्या अर्थ? अहं ब्रह्मास्मि की व्याख्या करिए। उपनिषद क्या कहते हैं, वेद क्या-क्या कहते हैं, कुरान-बाइबिल क्या कहती है? --बड़े-बड़े सिद्धांत लोग पूछ रहे हैं। सिर्फ पंडितों को तुम बिलमा सकते हो, बुद्धों को नहीं। उनकी आंख तो तुम्हें फौरन पहचान लेगी कि तुम कहां हो, और तुम जहां हो बस वहीं से उत्तर दिया जाएगा। उतना ही उत्तर दिया जाएगा जितना तुम झेल सकते हो। और यही उचित भी है।
कौड़ी गांठ में नहीं, करत है बातैं इतनी।।
लिहा जौहरी ताड़, फिरा है ग्राहक खाली।
थैली लई समेटि, दिहा गाहक को टाली।।
साधारण जौहरी भी आखिर तो समझ ही जाते हैं! कितनी देर बातचीत करोगे! थोड़ी-बहुत देर में ही समझ में आ जाता है। साधारण जौहरी भी कांच के टुकड़े बता कर देख लेते हैं कि पहचानते हो कि नहीं पहचानते? रंगीन कांच के टुकड़े; लेकिन लग सकता है कि बड़े कीमती हैं!
मैं पहलगांव में था। कुछ मित्र मेरे साथ पहलगांव में रुके थे। महावीर
पर एक अंतरंग सत्संग चल रहा था। एक दिन सुबह ही सुबह एक आदमी आया, उसने अपनी झोली खोली--बड़े प्यारे पत्थर थे! कश्मीर में बड़े प्यारे पत्थर होते हैं। हीरों का धोखा दे जाएं, ऐसे पत्थर होते हैं। दाम उनके कुछ भी नहीं। माणिक बाबू भी मेरे साथ थे। उनको बहुत जंचे। और सस्ते मिल रहे थे! चार रुपये, पांच रुपये, छह रुपये, सात रुपये। सात रुपये में हीरा! माणिक बाबू ने सोचा कि खरीद लें दस-पच्चीस, कम से कम मित्रों को बांट देंगे चल कर पूना में। पर दुकानदार आदमी हैं, तो ठहराए, दाम कम करवाने की कोशिश की। ऐसे तो लग रहा था कि वैसे ही दाम कम हैं, तीन रुपये तो यह खुद ही कह रहा है, अब और क्या काम करना! लेकिन फिर भी हिम्मत करके कहा कि भई, नहीं, डेढ़ से ज्यादा नहीं। वह डेढ़ में ही राजी हो गया! तब थोड़े डरे भी, थोड़े चिंतित भी हुए; मगर

लगा भी कि डेढ़ रुपये में हर्ज ही क्या है--इतनी सुंदर चीज, ऐसी चमक! कहा कि नहीं-नहीं, हम तो बारह आने से ज्यादा नहीं देंगे। वह बारह आने में भी राजी! तब तो खरीदना ही पड़ा। और दूसरे दिन पता चला कि वह लूट कर ले गया। वे तो बाजार में दो-दो आने में मिल रहे हैं। माणिक बाबू ने काफी खरीद लिए थे! पूना में कई लोगों को बांटे होंगे।
जौहरी तो ज्यादा देर न लगेगी, पहचान लेगा। साधारण जौहरी भी पहचान लेगा, कि आप जानते हैं पत्थरों के बाबत कि नहीं। लेकिन जिन असाधारण जौहरियों की बात यहां चल रही है, वह तो एक दफा आपकी तरफ देखा कि बस काफी, आपकी आंख में झांका कि काफी।
लोकलाज छूटै नहीं, पलटू चाहै नाम।
अभी तुम लोकलाज में पड़े हो और परमात्मा को पाना चाहते हो! नाम-- परमात्मा का नाम पाना चाहते हो! परमात्मा का दर्शन पाना चाहते हो! लोकलाज छूटै नहीं... अहंकार छूटता नहीं है, पद-प्रतिष्ठा छूटती नहीं है--और नाम पाना चाहते हो परमात्मा का! खोजत हीरा को फिर, नहीं पोत का दाम।।
ऐसे नहीं होगा। कीमत चुकाने की तैयारी चाहिए। बिना-कीमत चुकाए इस जगत में कुछ भी नहीं है। परमात्मा तो चूंकि सबसे बड़ी संपदा है, इसलिए सबसे बड़ी कीमत चुकानी पड़ेगी। स्वयं को ही समर्पित करना होगा। और फिर बहुत आनंद है! फिर आनंद ही आनंद है! फिर रस की अजस्र धारा बहती है!
जब वो मसरूर नजर आता है,
हर तरफ नूर नजर आता है।
एक बार उसकी झलक मिल जो, फिर तो यह सारा जगत रोशन है।
जब वो मसरूर नजर आता है,
हर तरफ नूर नजर आता है।
मैं तो मयख्वार हूं तू क्यों साकी,
नश्शे में चूर नजर आता है।
और ऐसा ही नहीं कि तुम पीए हुए मालूम पड़ते हो, परमात्मा और भी ज्यादा पिया हुआ मालूम पड़ता है। पीए ही हुए है। मस्त है। इसलिए तो ज्ञानियों ने उसे सच्चिदानंद कहा। आनंद उसकी आखिरी परिभाषा बनी।
मैं तो मयख्वार हूं तू क्यों साकी
नश्शे में चूर नजर आता है।
कुर्ब से हाथ उठाया मैंने,
तू बड़ी दूर नजर आता है।
मैं ही तनहा नहीं दिल के हाथों,
तू भी मजबूर नजर आता है।
खाकसारी को छुपाने के लिए,
वज्द मगरूर नजर आता है।
जब वो मसरूर नजर आता है,
हर तरफ नूर नजर आता है।
आंख खोलो, अपने को देखो! आंख खोलो, अपने को पहचानो! तुम्हारी पहचान ही तुम्हारे लिए द्वार बनेगी परमात्मा का। कोई और सहारा नहीं है, कोई और संबल नहीं है, कोई और आलंबन नहीं है।
कौन हमारा दर्द बटाए कौन हमारा थामे हात,
उनके नगर में जगमग जगमग, अपने देश में रात ही रात।

नीले-नीले अंबर पर वो चांद, वो किरनों की बरसात,
हम दोनों खोए-खोए से, हाय वो मस्त मनोहर रात।

तू गुलशन-गुलशन इठलाए, मैं सहरा-सहरा भटकूं,
दिल का यह सौदा है वरना तेरा और मेरा क्या सात।

सब दुनियादारी की बातें दिल पर और, जबां पर और, तुझसे प्यार बढ़ा कर आखिर जान गए तेरी औकात।

चाहे अब इसको अपनाओ, चाहे नाज से ठुकराओ,
आज से अपना दख्ल नहीं है दिल की डारे तुम्हारे हात।

दुनिया की मंशा है प्यारे, हम घुट-घुट कर मर जाएं,
दिल की धड़कन ये कहती है इक दिन बदलेंगे हालात।

एक अनोखी लय से मैंने सब के दिल पिघलाए हैं,
दुनिया को ये वहूम कि मेरे होंठों पर है अपनी बात।

चाहे अब इसको अपनाओ, चाहे नाज से ठुकराओ,
आज से अपना दख्ल नहीं है दिल की डोर तुम्हारे हात।
जिस दिन कह सकोगे परमात्मा को कि अब सब छोड़ता तुम्हारे हाथ में, यह दिल की डोर तुम्हारे हाथ में सौंपता हूं, अब जैसी तुम्हारी मर्जी, अब जो करना हो करो, बनाना हो बनाओ, मिटाना हो मिटाओ! न मेरी तरफ से कोई इशारा है, न मेरी तरफ से कोई आकांक्षा है, जिस दिन तुम ऐसी सरलता से छोड़ सकोगे, उस दिन कीमत चुकाने को तैयार हुए। फिर जिंदगी बदलनी है--कुछ नया रंग लेती है, नया ढंग लेती है, नई गंध लेती है।
माथे पर टीका संदल का अब दिल के कारन रहता है,
मंदिर में मस्जिद बनती है, मस्जिद में ब्रह्मन रहता है।

जर्रे में सूरज और सूरज में जर्रा रोशन रहता है,
अब मन में साजन रहते हैं और साजन में मन रहता है।

माथे पर टीका संदल का अब दिल के कारन रहता है
एक तो टीका है बाहर से लगाया गया; उसका कोई मूल्य नहीं। और एक है भीतर
की गंध, भीतर की संदल से लगा हुआ टीका; उसका मूल्य है।
मंदिर में मस्जिद बनती है, मस्जिद में ब्रह्मन रहता है।
क्रांति हो जाती है। मंदिर में मस्जिद बन जाता है, मस्जिद में मंदिर
बन जाता है। फिर मंदिर और मस्जिद के भेद मिट जाते हैं। क्योंकि वही एक है वासी सब जगह। वही निवास कर रहा है सब जगह।
रुत बीत चुकी है बरखा की और पीत के मारै बैठे हैं,
रोते हैं, रोने वालों की आंखों में सावन रहता है।

इक आह निशानी जीने की रहती थी, मगर अब वो भी नहीं,
क्यों दुख की माला जपने को ये तिनका सा तन रहता है।
दिल तोड़ के जाने वाले सुन! दो और भी रिश्ते बाकी हैं
इक सांस की डोरी अटकी है, इक प्रेम का बंधन रहता है।
जब सब टूट जाता है तब भी...
दिल तोड़ के जाने वाले सुन! दो और भी रिश्ते बाकी हैं
इक सांस की डोरी अटकी है, इक प्रेम का बंधन रहता है।
जिन्होंने अपने को समर्पित किया, उन्हें दो चीजों का पता चलता है।
एक--अस्तित्व की डोर, सांस की डोर। वह तो कभी टूट नहीं सकती। हम शाश्वत हैं, हम शाश्वत के अंग हैं। हम सदा से हैं और सदा रहेंगे। अहंकार पानी का बबूला है, हम नहीं हैं। अहंकार बनता है, मिटता है, हम नहीं। न हम बनते, न हम मिटते।
और दूसरी--हमारे अस्तित्व से उठती हुई प्रेम की सुगंध है। वह सदा रहती है।
माया की चक्की चलै, पीसि गया संसार।।
पीसि गया संसार, बचै न लाख बचावै।
पलटू कहते हैंः सजग हो जाओ, होशियार हो जाओ। जल्दी दांव पर लगाओ।
जल्दी उस परमात्मा को खोज लो। डुबकी मारो गहरे में, मोती ले आओ। क्योंकि
देर की, पता नहीं समय बचे हाथ में न बचे!
माया की चक्की चले, पीसि गया संसार।।
यह माया की चक्की चल रही है। यह सारे संसार को पीस रही है।
पीसि गया संसार, बचै न लाख बचावै।

इसमें कोई कभी बचा नहीं है, इतना ख्याल रखना। मौत सुनिश्चित है। आश्चर्य की बात है कि जीवन में जीवन सुनिश्चित नहीं है, मौत सुनिश्चित है। जीवन में और कुछ निश्चित नहीं है सिवाय मौत के। लेकिन जो इतना निश्चित है, उसको हम देखते ही नहीं, टाले रहते हैं, टाले चले जाते हैं! रोज लाखों लोग जमीन पर मरते हैं, फिर भी बाकी रहने वाले यही सोचते हैं कि हमें नहीं मरना है। कल ये जो आज मर गए हैं वे भी यही सोचते थे कि हमें नहीं मरना है। किसकी मौत कब आ जाएगी, कुछ कहा नहीं जा सकता।
पीसि गया संसार, बचै न लाख बचावै।
दोऊ पट की बीच कोऊ न साबित जावै।।
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे।
काम का अर्थ हैः यह मिले, वह मिले, मिलता ही रहे। जो नहीं है, उसके पीछे दौड़। क्रोध का अर्थ हैः तुम्हारी दौड़ में जो भी बाधा पैदा करके, उसके प्रति रोष, उसे मिटा डालने की आकांक्षा। मद का अर्थ हैः तुम जो चाहते हो मिल जाए, तो अहंकार, अकड़। और लोभ का अर्थ हैः जो मिल गया है, वह और मिले, और मिले। ये सब काम के ही भिन्न-भिन्न रूप हैं। काम में ही बाधा पड़े तो क्रोध, काम पूरा हो जाए तो मद। और पूरे हो जाने पर भी कुछ पूरा नहीं होता। वासना कोई भरती नहीं।
एक सूफी फकीर के पास एक युवक आया और उस युवक ने कहा कि कैसे परमात्मा
को पा सकता हूं? सूफी फकीर ने कहा कि अभी तो मैं जा रहा हूं कुएं पर पानी भरने, तुम मेरे साथ आओ। हो सका तो वहीं उत्तर भी हो जाएगा। मगर एक शर्त ख्याल रखना। कसम खाओ। यह पहली कसौटी है कि तुम विद्यार्थी होने के योग्य हो भी या नहीं। मैं कुएं पर कुछ भी करूं, तुम प्रश्न मत उठाना; तुम चुपचाप देखते रहना। तुम्हारा काम निरीक्षण का है, तुम्हारा काम साक्षी का। साक्षी की शिक्षा! विद्यार्थी भी बड़ा उत्सुक हुआ, क्योंकि साक्षी ही
तो सार है। सुना है शास्त्रों में, पढ़ा है शास्त्रों में, ज्ञानियों से जाना है--साक्षी ही तो सार है! यह भी अदभुत गुरु है। पहले ही मौके पर बस आखिरी कुंजी देने लगा! चल पड़ा जल्दी उत्सुकता में, आतुर, मस्त--कि कुछ हाथ लगने को है। कुएं पर पहुंच कर लेकिन बड़ी निराशा लगी हाथ, क्योंकि वह फकीर पागल मालूम पड़ा। उसने एक बाल्टी निकाली अपने झोले में से, जिसमें पेंदी थी ही नहीं। जब उस विद्यार्थी ने देखा कि बिना पेंदी की बाल्टी... मारे गए! और जब उसने डोरी बांधी और बिना पेंदी की बाल्टी उसने कुएं में डाली, तो बार-बार उसके सामने सवाल उठने लगा कि पूछूं कि यह आप क्या कर रहे हैं? लेकिन याद था उसे, कसम खा ली थी--कि पूछना मत, सिर्फ साक्षी रहना। यह भी बड़ी झंझट हो गई। जबान पर आ-आ जाए सवाल। घोंट दे गर्दन में सवाल को। और वह फकीर पानी भरने लगा बिना पेंदी की बाल्टी से। खूब खड़खड़ाएं कुएं में। जितना वह खड़खड़ाए, उसकी छाती भी खड़खड़ाए विद्यार्थी की, कि मारा! यह कब पानी भरेगा? जब कुएं में पानी में बाल्टी रहे, तब तो भरी हुई मालूम पड़े, जब डूबी रहे पानी में; और जैसे ही वह खींचे कि खाली। ऊपर आ जाए, देखे कि खाली, तो फिर डाले। एक बार, दो बार, दस बार... आखिर भूल गया विद्यार्थी अपनी कसम। उसने कहा कि रुको जी! होश है? यह तो जिंदगी खराब हो जाएगी तुम्हारी और मेरी भी! मैं भी सिके चक्कर में पड़ गया! इस बाल्टी में कभी पानी नहीं भर सकता।
उस गुरु ने कहाः बात खतम हो गई! अब तुम अपने रास्ते लगो। तुम पहला वचन पूरा न कर पाए। बस एक बार और मैं डालने वाला था, बस एक बार और। तुम बस पहुंचते-पहुंचते चूक गए, मैं क्या करूं? मैंने तय किया थाः ग्यारह बार। दस बर तो हो चुका था। जरा और धीरज रख लेते, बस जरा और! मुझे मालूम है कि बड़ी तकलीफ तुम्हें हो रही थी। पसीना-पसीना तुम हो रहे थे। तुम्हारा सब हाल मुझे मालूम है। बाल्टी खड़खड़ा रही, तुम भी खड़खड़ा रहे थे... सब मुझे मालूम है। बाल्टी से ज्यादा परेशान तुम थे। लेकिन अगर एक बार और धीरज रख लिया होता तो मैं तुम्हें शिष्य स्वीकार कर लेता। अब रास्ता नापो!
उसने बाल्टी रखी अपने झोले में और घर वापस लौट गया। विद्यार्थी ने भी सोचा कि हो तो गई गलती... पता नहीं यह क्या देने वाला था! एक ही बार और... खूब चूके! मगर यह आदमी भरोसे का नहीं है। हो सकता है हम और एक बार रहते, और तब भी यह यही कहताः इस आदमी का क्या पक्का! हम बीस बार भी चुप रहते, यह कहता,

इक्कीसवीं बार... । इसने कुछ पहले से बताया तो था नहीं कि ग्यारह बार चुप रहना। हजार बार भी अगर हमने धीरज रखा होता तो यह कहता, बस एक... । यह आदमी बड़ा चालबाज है। पागल भी है और चालबाज भी है।
लौट तो गया घर, लेकिन बीच-बीच में ख्याल आने लगा कि चालबाज कितना ही हो, पागल कितना ही हो, आंखों में उसकी एक मस्ती तो थी ही, जो कहीं और नहीं देखी! उसके चारों तरफ एक आभा-मंडल तो था, एक शीतलता तो थी! मैं चूक गया। मुझसे भूल हो गई।
रुक न सका, आधी रात वापस पहुंच गया। एकदम पैर पर गिर पड़ा और कहाः मुझे क्षमा कर दो, मुझसे भूल हो गई। उस फकीर ने कहाः अगर तुम समझ गए हो, समझकर क्षमा मांग रहे हो, समझकर कह रहे हो कि तुम से भूल हो गई, तो पाठ पूरा हो गया।
यही तुम्हारी अब तक कि जिंदगी है। वासना बिना पेंदी की बाल्टी है। इसको संसार के कुएं में डालते रहे, डालते रहो, खड़खड़ाते रहो, हर बार भरी हुई मालूम होगी और जब खींच कर लाओगे घाट तक, खाली हो जाएगी। यह कभी भरने वाली नहीं। यह पहला पाठ। जो मैंने बाल्टी के साथ किया और तुम समझ गए, अब वही अपने साथ करो और समझो। जिस दिन यह बात तुम्हारी समझ में आ जाए, फिर आना, फिर दूसरा पाठ दूंगा। अब अपनी वासना की बाल्टी को रोज-रोज देखो--डालते हो कुएं में और खाली की खाली लौट आती है।
काम का अर्थ हैः अंधी वासना। क्रोध का अर्थ हैः तुम्हारी वासना में
जो भी बाधा डाले। मद का अर्थ हैः अगर कभी भूल-चूक से किसी संयोगवशात तुम्हारी बाल्टी भर जाए, तो अहंकार पकड़ता है। और लोभ का अर्थ हैः बाल्टी कितनी ही भर जाए, मन कहता है, और। मन कभी और की आवाज बंद करता ही नहीं। मन तो ऐसा समझो जैसे ग्रामोफोन का रिकार्ड है, जिस पर सुई एक ही जगह अटक गई है और वही, और वही, और वही दोहराए चली जाती है।
मैंने सुना है, एक नया हवाई जहाज बना। वह बिना पायलट के उड़ने वाला था। पूरा आटोमैटिक! न उसमें पायलट, न उसमें होस्टेस, न कोई स्टीवर्ट... कोई भी नहीं। बस यात्री। और मशीन ही सब करेगी। सब आटोमैटिक! एक बटन दबाओ, भोजन आए; दूसरी बटन दबाओ, चाय आए। एक बटन दबाओ, फौरन इंटरकाम पर आवाज आए कि कितनी ऊंचाई पर उड़ रहे हो, मंजिल कितनी दूर है, कितनी देर में पहुंच जाओगे। यात्री बड़े खुश थे। लोगों ने बड़ी मुश्किल-मुश्किल से टिकटें पाई थीं। बड़ी भीड़ मची थी--कौन सबसे पहले उड़ता है बिना पायलट के हवाई जहाज में! हवाई जहाज उड़ा। हजारों फीट ऊपर उठ गया। तब इंटरकाम पर आवाज आई कि निश्चिंत हो जाइए। अपनी-अपनी बेल्ट खोल लीजिए। विश्राम करिए। जरा भी चिंता मत रखिए कि पायलट नहीं है। कोई भूल कभी नहीं हो सकती, कोई भूल कभी नहीं हो सकती, कोई भूल कभी नहीं हो सकती, कोई भूल कभी नहीं हो सकती... !
बस, छाती बैठे गई यात्रियों की कि मारे गए! भूल तो यहीं हो गई। अब आगे क्या होगा, अब कुछ कहा नहीं जा सकता।
ऐसा ही मन है। वह कहता हैः और, और, और... । उसकी और की मांग कभी समाप्त ही नहीं होती। दस हजार हैं, तो कहता है, दस लाख। दस लाख हैं, तो कहता है, दस करोड़। वह मांग बढ़ाए जाता है, फैलाए चला जाता है। इन्हीं में पिस रहा है आदमी। ये हैं पीसनहारे!
काम क्रोध मद लोभ चक्की के पीसनहारे।
तिरगुन डारै झोंक पकरिकै सबै निकारे।।
तृस्ना बड़ी छिनारि, जाइ उन सब घर घाला।
और यह जो तृष्णा है, यह तो वेश्या है। इसका कुछ भरोसा नहीं। यह कहां- कहां भटकाती है, कहां-कहां ले जाती है! कितने जन्मों में, कितनी योनियों में इसने भटकाया है!
काल बड़ा बरियार, किया उन एक निवाला।।
और मौत आती है और एक ही निवाले में, बस एक ही कौर बनाती है तुम्हारा, दो कौर भी नहीं बनाती कि सोचने का मौका मिल जाए।
पलटू हरि के भजन बिनु, कोऊ न उतरै पार।
माया की चक्की चलै, पीसि गया संसार।।

इस माया की चक्की में अगर कोई भी उपाय है उतर जाने का पार, अगर इस भवसागर के पार उतरने के लिए कोई नाव है--तो हरिभजन, तो हरि से प्रीति!
मगर हरि से प्रीति कैसे हो? दाम चुकाने होंगे। पात्रता पैदा करनी होगी। गहरे में गोता लगाना होगा।
यह संन्यास इसी बात का शिक्षण है--साहस का, दुस्साहस का, गहरे में गोते लगाने का। मोती तुम्हारे हैं, मगर गहरे में गोता लगाए बिना नहीं मिलेंगे। किनारे पर बैठे-बैठे तो तुम सिर्फ गंवाओगे जीवन, कमा नहीं पाओगे। डुबकी मारो!
जो साहिब का लाल है, सो पावैगा लाल।।
सो पावैगा लाल जायके गोता मारै।
मरजीवा ह्वै जाय लाल को तुरत निकारै।।
बस एक कला सीख लो--जीते-जी ऐसे हो जाओ जैसे नहीं हो! यही संन्यास है।
यही संन्यास का सार-सूत्र है।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
छठवां प्रवचन

सुबह तक पहुंचना सुनिश्चित है

भगवान,
मैं तो अब तक शास्त्रों में ही उलझा रहा; और आप कहते हैंः शास्त्र व्यर्थ हैं। अब मैं क्या करूं?
भगवान,
उपलब्धि की क्या अनुभूति होती है? कैसे साधक जाने कि वास्तव में कुछ
घट गया है? कैसे वह स्व-निर्मित कल्पना से भिन्न वास्तविकता को जाने? कैसे उपलब्ध व्यक्ति की उपलब्धि का अन्य को पता चले?
भगवान,
जन्मना, रोटी-रोजी कमाना, बच्चे पैदा करना और फिर मर जाना--क्या यही जिंदगी है?
भगवान, क्या आप पतियों को सच ही निपट गधे मानते हैं?
भगवान,
मैं एक टूटा-फूटा आदमी हूं, क्या मेरे लिए भी कोई आशा है? क्या मैं भी कभी प्रकाश, प्रेम और परमात्मा को प्राप्त कर सकूंगा?

पहला प्रश्नः भगवान, मैं तो अब तक शास्त्रों में ही उलझा रहा; और आप कहते हैंः शास्त्र व्यर्थ हैं। अब मैं क्या करूं?
मोतीलाल! शास्त्र व्यर्थ हैं--तुम्हारे लिए, मेरे लिए नहीं। शास्त्र व्यर्थ हैं, क्योंकि अनुभव नहीं है जो शास्त्रों का गवाह बन सके। शास्त्र सार्थक हो जाते हैं, अगर तुम साक्षी दे सको। शास्त्र अपने में तो मुर्दा हैं, कागज पर खींची गई स्याही की लकीरें हैं, शास्त्रों में तो सत्य कैसे होगा, लेकिन अगर तुम्हारे ध्यान में सत्य का अवतरण हो, तुम्हारे भीतर समाधि का कमल खिले, तुम्हारे भीतर सुवास उठे जीवन के आनंद की, तुम गवाह बन सको, तुम कह सको कि हां, ऐसा ही है, तुम सील मोहर मार सको शास्त्र पर, तो शास्त्र सार्थक हो जाते हैं। तुम्हें डालना होगा अर्थ, तुम्हें देनी होगी महिमा उन्हें।
सदा तुमसे उल्टी बात कही गई है। तुमसे कहा गया हैः शास्त्र को पढ़ो, गुनो, कंठस्थ करो और इसी तरह तुम सत्य को जान लोगे। पंडित हो जाओगे, प्रज्ञावान नहीं। और पांडित्य एक सुंदर बंधन है। प्रज्ञा मुक्ति है। स्वयं जाने बिना कोई मार्ग नहीं है। उपनिषद के ऋषियों ने जाना, जरूर जाना, खूब जाना, भरपूर जाना; मगर शास्त्र पढ़कर नहीं जाना, ध्यान की गहराइयों में उतर कर जाना। ज्ञान से नहीं जाना, ध्यान से जाना। जाना तो फिर शास्त्र बहे।
जहां भी ध्यान की गंगोत्री उपलब्ध हो जाती है, वहीं शास्त्रों की गंगा बह उठती है। फिर वे शास्त्र उपनिषद हों, कि वेद, कि गीता, कि कुरान, कि बाइबिल, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता। एक ही जलस्रोत से बहुत धाराएं बह सकती हैं। वह जलस्रोत अनंत है। उससे एक गंगा नहीं, बहुत गंगाएं निकल सकती हैं। वह चुकता नहीं, चुकाया जा सकता नहीं। उससे वेद बहे, उपनिषद बहे, गीता बही, धम्मपद बहा, कुरान-बाइबिल बहे। और बहुत-से शास्त्र बहेंगे, बहते रहेंगे गंगोत्री चुकने वाली नहीं है।
लेकिन गंगोत्री की तलाश तुम्हें करनी होगी।
तुम अगर किताबें पकड़ कर बैठ गए, तो बोझ से दब जाओ। पंडित की छाती पर हिमालय जैसा बोझ हो जाता है--शब्दों का, निर्जीव शब्दों का, निर्वीर्य शब्दों का। वह शब्दों के जंगल में ऐसा भटक जाता है कि राह मिलनी मुश्किल हो जाती है। पापी को भी मिल जाए राह, पंडित को नहीं मिलती। क्योंकि पापी कम से कम विनम्र तो होता है। पापी कम से कम रो तो सकता है। पापी कम से कम झुक तो सकता है। पापी के पास अकड़ने को कुछ भी नहीं है, अहंकार को भरने को कुछ भी नहीं है; उसकी आंखें झुकी हैं, उसका सिर झुका है, वह जानता है कि मैं ना-कुछ हूं, कि मैं पाप की एक गठरी हूं, अकडूं तो क्या अकडूं! मगर पंडित के पास

अकड़ने को बहुत कुछ है। गठरी में शास्त्र हैं। उसकी याददाश्त में सुभाषित हैं। पर दूसरों के शब्द तुम्हारे लिए न सत्य हुए हैं, न हो सकते हैं। इसलिए तुमसे अब तक तो कहा गया था, शास्त्र को जाने तो ज्ञान मिलेगा, मैं तुमसे कहता हूं, ज्ञान मिले तो तुम शास्त्र को जान सकोगे। फिर ज्ञान कहां से मिलेगा? ज्ञान ध्यान से मिलता है। ज्ञान की ही परिपक्वता है। ठीक हुआ कि तुम्हें यह बात दिखाई पड़ने लगी कि अब तक शास्त्रों में उलझा रहा। निश्चित ही दुविधा पैदा हुई होगी, द्वंद्व जगा होगा, बड़ी बेचैनी आई होगी, क्योंकि मैं कहता हूं शास्त्र व्यर्थ हैं। निश्चित कहता हूं व्यर्थ हैं। अर्थ डालना होगा तुम्हें, तो सार्थक हो जाएंगे!
शास्त्र तो बोतलों जैसे हैं। शराब उंडेलो तो भर जाएंगे। मगर शराब पहले तुम्हारे ऊपर निर्मित होनी चाहिए, तो उंडेल सकोगे। तुम्हारे भीतर आनंद पके तो शास्त्र भी भर जाएंगे तुम्हारे आनंद से। शास्त्र ही क्या, तुम्हारी भावभंगिमा में सत्य होगा, तुम देखोगे तो तुम्हारी आंखों से सत्य चमकेगा, तुम चलोगे, उठोगे, बैठोगे तो सत्य का प्रसाद वायुमंडल में बिखरेगा; तुम फिर जो भी करोगे, वही सत्य होगा। तुम मिट्टी छुओगे, सोना हो जाएगी। अभी तो तुम सोना भी छुओ तो मिट्टी ही होने वाली है। अभी सोने को देखने वाली आंखें कहां? अभी सोने को परखने वाला हृदय कहां? अभी तुम पारस पत्थर नहीं हो। समाधिस्थ व्यक्ति पारस पत्थर हो जाता है। लोहे को छू दे, सोना हो जाता है। गालियों को छू दे, गीत बन जाएं। कांटों को छू दे, फूल बन जाएं। अंधेरे को स्पर्श कर दे तो अंधेरा रोशन हो जाए।
जानने वाले के हाथ में शास्त्र ही नहीं, जीवन की छोटी-छोटी घटनाएं भी बड़े गहन, बड़े गंभीर अर्थ ले लेती हैं।
गुदे शब्द
पर अर्थ-खाइयां खोद रहे,
गोद रहे श्रीमान
गुदने गोद रहे!

माल पुए
लिख दिए पेट पर
माथे लिखा मकान
धोती-कुताः
लिख देही पर
हंसते हैं शैतान!

लिखी पीठ पर
पर्वत माला
छाती पर शमशान
आंसू को
मोती लिख करके
पढ़ते हैं भूदान!

कानों पर गुड़बतियां लिख दीं
हाथों पर अहसान
गालों पर लिख गंगा-जमुना
करते रहे नहान
हाथ पर एहसान लिख दोगे, एहसान हो जाएगा? माथे पर ध्यान लिख दोगे, ध्यान
हो जाएगा?
गालों पर लिख गंगा-जमना
करते रहे नहान

गुदे शब्द
पर अर्थ-खाइयां खोद रहे,
गोद रहे श्रीमान

गुदने गोद रहे!
पंडित गुदने गोदता रहता है। पंडित का जगत बड़ा झूठा जगत है। कहता संसार को माया है, लेकिन जैसी माया में पंडित रहता है वैसी माया में संसारी भी नहीं रहता। संसारी के जगत में कुछ वास्तविकता है, पंडित का जगत तो केवल कोरे शब्दों का है।
माल-पुए
लिख दिए पेट पर
पर पेट भरेगा? ...
माथे लिखा मकान
धोती-कुर्ता
लिख देही पर
हंसते हैं शैतान!
तुम्हारे शास्त्र-ज्ञान पर शैतान प्रसन्न होते हैं। क्योंकि तुम्हारा शास्त्र-ज्ञान परमात्मा तक जाने में जितनी बड़ी बाधा है, कोई और चीज उतनी बड़ी बाधा नहीं हो सकती है। जिसे यह भ्रम हो गया कि मैंने सिद्धांत, शास्त्र समझ लिए, जान लिया, अब और जानने को क्या बचा, पड़ा गर्त में भयंकर! उबारना उसका मुश्किल हो जाएगा। पापी को जगाया जा सकता है, पापी जगना चाहता है--क्योंकि पाप पीड़ा देता है--लेकिन पंडित को कैसे जगाओगे? उसका तो सारा न्यस्त स्वार्थ उसके पांडित्य में है। वही तो उसके अहंकार की सजावट है,शृंगार है।
कागज पर छपे सूर्य से
दिन नहीं उगे,
ऐसे कुछ वक्त ने ठगे!

मुर्गों की कलगियां लगा
शाख-शाख कउए तैनात

बांगते रहे दोपहरी,
बेचारे काल के सगे!

चौराहे धूप सूंघ कर
गर्वाए
देव-द्वार-से
जयकारे चांदी के नाम,
बिस्तर क नाम रतजगे!

वातायन द्वार हो गए
अंबर तक छल की मीनार
गलियों में रो रहे कबीर,
कीकर पर आम क्या लगे!

कागज पर छपे सूर्य से
दिन नहीं उगे
कितना ही सुंदर छपा हो सूरज कागज पर, दिन नहीं होगा!
और कउए? --
मुर्गों की कलगियां लगा
शाख-शाख कउए तैनात
बांगते रहे दोपहरी,
कागज पर तो छपा सूर्य था, कउवों ने कलगियां लगा ली थीं मुर्गों की, बांगते रहे। न तो कागज पर छपे सूर्य से सुबह होगी, न कउवों के बांग देने से सुबह होगी, सूरज निकलेगा।
ऐसे हम खूब ठगे जाते रहे हैं। हमारी सारी जिंदगी ठगे जाने का एक लंबा क्रम हो गई है। मोतीलाल, अब जगो! पूछते हो, अब क्या करूं? अब शास्त्रों से

मुक्त होओ, स्वयं में चलो, वहीं है शास्त्रों का शास्त्र। अब शब्दों को छोड़ो, शून्य को गहो। क्योंकि शून्य से ही उठेगा वह महिमा का अनुभव, जो सारे शब्दों को सुगंध दे जाए; जो सोने में सुगंध दे जाए। लेकिन बहुत हुआ! कब तक बाहर-बाहर खोजते रहोगे? अब भीतर! अब अंतर्यात्रा पर चलो।
और अंतर्यात्रा की प्रक्रिया क्या है? छोड़ो विचार, छोड़ो शब्द, छोड़ो शास्त्र, छोड़ो ज्ञान। ये ही अटकाए रखते हैं। जाग-जाग कर देखते रहो, कोई शब्द पकड़े न, तुम किसी शब्द को न पकड़ो। न हिंदू हो, न मुसलमान, न ईसाई, न जैन, न बौद्ध। ये सब शब्दों के ही जाल हैं। अब तो तुम अपनी तलाश करो, पूछो कि मैं कौन हूं? विचार तुम्हारी सतह है और निर्विचार तुम्हारा केंद्र है। अब निर्विचार में उतरो। एक डुबकी लग जाए निर्विचार में, चकित हो जाओगे, अवाक रह जाओगे, भरोसा न आएगा एकदम से। क्योंकि जैसे ही स्वयं में डुबकी लगती है, वैसे ही सारे बुद्ध, सारे कृष्ण, सारे क्राइस्ट सही सिद्ध हो जाते हैं। एक साथ! ऐसा नहीं कि बुद्ध सही सिद्ध होते और महावीर गलत हो जाते; ऐसा नहीं कि क्राइस्ट सही सिद्ध होते और कृष्ण गलत हो जाते। जब तक ऐसा होता रहे, तब तक जानना अभी शब्दों के जाल के बाहर नहीं हुए। यह कसौटी है। जब एक साथ सारे बुद्धपुरुष, सारे जगत के--कितनी ही भिन्न हो उनकी भाषा और कितनी ही भिन्न हो उनकी अभिव्यक्ति; कितनी ही उनके रंग-ढंग अलग-अलग हों; रूप, आकृतियां अलग-अलग हों--जब सारे सदपुरुष एक साथ सही हो जाएं, तो जानना कि तुमने जाना। जब तक चुनाव कायम रहे, कि लगे कि कृष्ण ठीक जानते हैं, क्राइस्ट ठीक नहीं जानते, तब तक समझना अभी तुम शब्दों के जंगल में अटके हो, अभी जंगल पर नहीं हुआ, अभी घर नहीं मिला है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, उपलब्धि की क्या अनुभूति होती है? कैसे साधक जाने कि वास्तव में कुछ घट गया है? कैसे वह स्व-निर्मित कल्पना से भिन्न वास्तविकता को जाने? कैसे उपलब्ध व्यक्ति की उपलब्धि का अन्य को पता चले?

योगेश! उपलब्ध व्यक्ति की उपलब्धि का पता अन्य को नहीं चल सकता। अनुमान ही हो सकता है। अंधे को कैसे पता चलेगा कि आंख वाले को प्रकाश दिखाई पड़ता है? अनुमान कर सकता है। क्योंकि टटोल कर देख सकता है कि आंख वाला आदमी बिना टटोले चलता है। टटोल कर देख सकता है कि आंख वाले आदमी के हाथ में लकड़ी नहीं है। अंधा है, लेकिन इतना अनुमान कर सकता है कि आंख वाला उठता है तो किसी से पूछता नहीं कि दरवाजा कहां है, चुपचाप निकल जाता है। बिना पूछे निकल जाता है। जरूर दिखाई पड़ता होगा। क्योंकि मुझे तो पूछ कर निकलना पड़ता है। मुझे तो लकड़ी से खट-खट खोजना पड़ता है। मुझे तो एक-एक कदम राह पर चलता हूं तो सम्हलना पड़ता है। मैं दौड़ नहीं सकता और मैं दूसरों को दौड़ते देखता हूं। बच्चे उसके पास किलकारी मारते हैं और दौड़ते हैं, बाहर और भीतर घर के होते हैं, इतनी सुगमता से, तो जरूर उनके पास कुछ है जो मेरे पास नहीं है। पर यह अनुमान ही होगा, प्रमाण नहीं।
ऐसे ही तुम भी उपलब्ध व्यक्ति के संबंध में कुछ अनुमान कर सकते हो। जिन स्थितियों में तुम विषाद ग्रस्त हो जाते हो, उसे विषाद नहीं छूता। जिन स्थितियों में असफलताएं तुम्हारे प्राणों को बर्छी की तरह छेद देती हैं, उसे कांटा भी नहीं लगता। कांटा लगना तो दूर, जैसे असफलता में भी उस पर फूल ही बरसते रहते हैं। सफल हो कि असफल, उसके सम्यक्त्व में बाधा नहीं पड़ती। उसकी समता बनी रहती है। ऐसे अनुमान तुम लगा सकते हो! वह उठता है, बैठता है, जीता है, लेकिन कुछ-कुछ यहां नहीं होता, कहीं और होता है। यहां होकर भी यहां पूरा नहीं होता, किसी और लोक में होता है। जल में कमलवत। ऐसे अनुमान तुम लगा सकते हो। प्रमाण नहीं, अनुमान ही रहेंगे। क्योंकि तुम्हारा स्वयं का तो कोई अनुभव नहीं है। कौन जाने ऊपर से ही साध रखा हो, अभिनय करता हो-- संदेह तो बने ही रहेंगे। इसलिए कहता हूं, अनुमान। संदेह मिट नहीं जाएंगे-- संदेह तो सिवाय अनुभव के मिटते नहीं। अनुभव के बिना श्रद्धा कभी पूर्ण नहीं होती, संदेह बचा ही रहता है। कोने-कातरों में कहीं मन के दब जाए भला, अंधेरे में छुप जाए भला, लेकिन मौजूद रहता है। कहीं न कहीं सिर उठाएगा। प्रश्न बनेगा। छोटी-छोटी बातों में फिर-फिर खड़ा हो जाएगा।

लेकिन, अगर अनुमान भी करने में तुम समर्थ हो जाओ, तो भी तुम्हारे लिए संभावना का एक द्वार खुलता है। फिर प्रत्येक बुद्धपुरुष का व्यवहार अलग-अलग है, क्योंकि प्रत्येक बुद्धपुरुष एक अनूठी, अद्वितीय घटना है। इसलिए अगर तुमने पहले से ही कुछ सिद्धांत तय कर रखे हों, कि ऐसा होना चाहिए बुद्धपुरुष, अनुभूत व्यक्ति ऐसा होना चाहिए, तो तुम अनुमान भी न कर पाओगे। तो तुम बड़ी अड़चन में पड़ोगे। महावीर नग्न हैं, और बुद्ध नग्न नहीं है! हालैंड में कृष्णमूर्ति का एक शिविर था। एक महिला भारत से हालैंड गई शिविर में सम्मिलित होने। लौट कर आई तो उसने मुझे कहा कि मेरी भ्रांति टूट गई! मैं तो फिर शिविर में उपस्थित हो ही नहीं सकी। बात ही कुछ ऐसी हो गई! जल्दी आ गई थी तो मैंने पूछा भी कि अभी तो शिविर समाप्त ही नहीं हुआ, तू वापिस भी आ गई? उसने कहा, सब व्यर्थ है। क्योंकि मामला ऐसा हुआ कि शिविर के एक दिन पहले मैं बाजार गई, कुछ सामान खरीदने, मैंने एक दुकान पर कृष्णमूर्ति को टाई खरीदते देखा। बुद्धपुरुष और टाई खरीदें! महावीर स्वामी और टाई खरीदें। एक तो नंग-धड़ंग और फिर टाई बांधें, तो खूब मजाक हो जाएगी। जैन महिला है। तो कहीं-न-कहीं छिपी तो महावीर की धारणा बैठी रही होगी। कृष्णमूर्ति से भी अपेक्षा तो वही होगी। चाहे प्रकट न हो, चेतन में न हो, अचेतन में होगी। यही तो उपद्रव है। तो कृष्णमूर्ति और टाई खरीदें! और बाजार पाई खरीदने आएं! और न केवल इतना, वह खड़ी हो गई दुकान में भीतर जाकर, ठीक से निरीक्षण करने को, न केवल कृष्णमूर्ति टाई खरीद रहे थे, बल्कि उन्होंने कम-से-कम दो सौ टाइयां फैला रखी थीं। यह भी नहीं जंच रही; वह भी नहीं जंच रही; इसका रंग नहीं मेल खा रहा, इस का ढंग नहीं मेल खा रहा। उसने कहा, वह जो मैंने देखा, अपनी आंखों से जो देखा, मैंने कहा, यह आदमी क्या ज्ञान को उपलब्ध होगा! इस आदमी को कैसा बुद्धत्व! अभी जो टाइयों में उलझा है!
फिर शिविर में सम्मिलित होने का कोई कारण ही न रहा।
लेकिन अगर कोई कृष्ण का भक्त होता, तो शायद अड़चन न होती। क्योंकि कृष्ण कुछ कम वस्त्रों की चिंता नहीं करते मालूम होते हैं। पीतांबर, मोरमुकुट--टाई तो उन दिनों नहीं होती थी नहीं तो जरूर बांधते, छोड़ सकते नहीं थे; जब मोरमुकुट तक बांधने में न झेंपे, तो टाई बांधने में कुछ अड़चन होती!
लेकिन जैनों ने तो कृष्ण को नर्क में डाल दिया है--उसी मोरमुकुट के कारण। और थोड़े-बहुत दिन के लिए नहीं डाला है, जब तक यह सृष्टि है तब तक नर्क में रहेंगे। यह सृष्टि नष्ट होगी, फिर दूसरी सृष्टि बनेगी, तब मुक्त हो पाएंगे। छोटे-मोटे पापी तो कई दफा आ जाएंगे, चले जाएंगे, आवागमन हो जाएगा बहुत, लेकिन कृष्ण तो सातवें नर्क में पड़े हैं सो पड़े ही रहेंगे। मोरमुकुट को क्षमा न कर पाए!
अगर तुमने कोई एक धारणा बांध ली है मजबूती से, तुमने कोई पक्षपात बना लिया है, तो फिर अड़चन होगी। फिर तो तुम अनुमान भी करने में समर्थ न रह जाओगे। अनुमान भी वही कर सकता है जो पक्षपातरहित हो। थोड़ा मुक्त हो। कोई धारणा पहले से ही निर्णीत न हो। और कोई धारणा काम नहीं आएगी। क्योंकि महावीर महावीर हैं, कृष्ण कृष्ण, बुद्ध बुद्ध, मुहम्मद मुहम्मद। सब उस एक को उपलब्ध हुए हैं, लेकिन फिर भी सबने गीत तो अपनी ही आवाज में गाए। सबने अभिव्यक्ति तो अपने ही ढंग से दी। इन छोटी-छोटी बातों से निर्णय नहीं होगा। हां, अगर इन सारी बातों की तलहटी में उतरोगे, तो कुछ बातें जरूर पाओगे--जैसे एक समता पाओगे, सुख में, दुख में; सफलता में, असफलता में, दरिद्रता में, समृद्धि में; एक समतुलता पाओगे, तराजू हिलेगा ही नहीं, दोनों पलड़े हमेशा बराबर ही रहेंगे। कपड़े पहनें कि न पहनें, नग्न हों कि मोरमुकुट बांधे, इससे भेद नहीं पड़ेगा। वह जो सम्यक्तत्व है, उससे कपड़ों से क्या लेना-देना? एक दिन भोजन करें, एक दिन उपवास करें; दिन में दो बार भोजन करें, कि तीन बार भोजन करें, कुछ फर्क नहीं पड़ेगा। फर्क तो पड़ेगा अंतरतम में। वहां एक ज्योति सदा प्रज्वलित रहेगी। लेकिन उस ज्योति की प्रतीति केवल उन्हीं को हो सकती है जो निष्कर्ष रहित हैं।

इसलिए सदगुरु के पास जब जाओ, तो निष्कर्ष लेकर मत जाना। नहीं तो तुम्हारे निष्कर्ष तुम्हारी आंख पर परदे हो जाएंगे। और कोई दो सदगुरु एक से नहीं होते, इसलिए तुम्हारे सब निष्कर्ष व्यर्थ हैं, घातक हैं, अनुमान करने तक में तुम्हारे लिए बाधा बन जाएंगे। तो पहली बात, तुम पूछते होः कैसे उपलब्ध व्यक्ति की उपलब्धि का अन्य को पता चले? उसकी शांति, उसका आनंद, उसकी सौम्यता, उसका प्रसाद, उसकी सुगंध; उसके पास बैठने का रस; उसकी सन्निधि में अचानक घट जाने वाली तुम्हारे भीतर भी शांति की हिलोर; उसकी मौजूदगी में अचानक तुम्हारे मन का कभी-कभी मिट जाना, खो जाना; उसके चरणों में सिर रखकर अनुभव में आना कि मैं नहीं हूं, अहंकार का तिरोहित हो जाना; उसके पास उठते-बैठते, उसके रंग में रंगते-रंगते तुम्हारे भीतर एक अपूर्व नृत्य का जन्म हो जाना; तुम्हारे भीतर भी कोई गीत गुनगुनाने को मचलने लगे, तुम्हारे पैर में भी पुलक और थिरक आ जाए नृत्य की, तुम्हारे भीतर भी कोई बीज फूटने लगे, अंकुरित होने लगे, उसकी मौजूदगी में तुम्हें अनुभव होने लगे थोड़ा-थोड़ा कि यह जगत जितना दिखाई पड़ता है इतना ही नहीं है, इससे ज्यादा है, जहां रहस्य की थोड़ी-सी गंध मिले। लेकिन यह सब अनुमान होंगे। मैं नहीं कह रहा हूं कि प्रमाण।
इसलिए जोर से मुट्ठी पकड़कर इनको मत कसना, अन्यथा ये मर जाएंगे। ये बहुत सुकोमल फूल हैं। इनको मुट्ठी कसकर नहीं पकड़ा जाता। यह पारे की तरह तरल है। इन्हें जोर से पकड़ोगे, छितर-बितर हो जाएंगे। और पारा बिखर जाए तो इकट्ठा करना मुश्किल हो जाता है। यह कोई सीधे-सीधे गणित की भाषा में, तर्क की भाषा में पकड़े जाने वाले सत्य नहीं हैं। हां, प्रेम के जाल में जरूर ये मछलियां फंसती हैं। अगर प्रेमपूर्ण ढंग से तुम किसी परमात्मा को उपलब्ध व्यक्ति के पास बैठोगे, तो जरूर तुम्हारा जाल खाली नहीं आएगा, उसके सागर से बहुत हीरे-मोती, बहुत अनुभव तुम लेकर लौटोगे। पर फिर दोहरा दूं, यह सिर्फ अनुमान ही रहेगा, जब तक कि स्वयं का अनुभव न हो जाए।
तुमने यह भी पूछा, योगेश, उपलब्धि की क्या अनुभूति होती है? तुमने सुना नहीं, सारे ज्ञानी कहते हैंः गूंगे का गुड़? कबीर ने कहा, गूंगे केरी सरकरा। ऐसे ही नहीं कहा, खूब सोचकर कहा है। कहने की खूब कोशिश की और नहीं कह पाए, तब कहा है।
क्यों नहीं कही जा सकती वह अनुभूति? बहुत कारण हैं। महत्वपूर्ण कारण तुम्हें याद दिलाऊं।
पहला, हमारे सब शब्द लोक-व्यवहार के लिए हैं। और वह अनुभव है, लोकातीत। उस अनुभव के लिए हमारे शब्द बने नहीं हैं। बाजार में ठीक हैं, दुकान में ठीक हैं, दफ्तर में ठीक हैं, कामचलाऊ हैं, संसार के संबंध में बातचीत करनी हो तो सार्थक हैं, लेकिन जैसे ही तुम लोकातीत अनुभव की तरफ उठते हो, वैसे ही तुम पाते हो--ये सारे शब्द व्यर्थ हैं। इनमें से किसी भी शब्द का उपयोग करो तो अड़चन होती है।
उदाहरण के लिए, अगर कहो कि वह अनुभव प्रकाश का है--जैसा बहुत संतों ने कहा। मजबूरी में कहा। तुम पीछे पड़ते हो, तुम मानते ही नहीं, तुम हाथ जोड़े खड़े रहते हो कि कुछ-न-कुछ तो कहें, तो संतों को मजबूरी में कहना पड़ा कि वह अनुभव प्रकाश का अनुभव है। परम प्रकाश। लेकिन, संतों को पता है कि ऐसा कह कर वे अन्याय कर रहे हैं। क्योंकि वह परमात्मा जिस तरह परम प्रकाश है, उसी तरह परम अंधकार भी है। वह दोनों एक साथ है। मगर इसे कैसे कहो?
उपनिषद कहते हैं, वह दूर से भी दूर और पास से भी पास है। अब अगर सोचो,
तो दो में से एक ही बात सच हो सकती है। दूर से भी दूर और पास से भी पास, फिर तो पहेली हो गई! या तो कहो दूर, या कहो पास। मगर उपनिषद ठीक कह रहे हैं। वह दूर से भी दूर है और पास से भी पास है। दोनों बातें एक साथ सच हैं। हमारे सारे शब्द द्वंद्वात्मक हैं। अंधेरा-प्रकाश, जीवन-मृत्यु, सर्दी-गर्मी, सुख-दुख, सौंदर्य-कुरूपता, हमारे सारे शब्द द्वंद्वात्मक हैं। और वह द्वंद्वातीत है। तो उसे कैसे कहें? वह फूल भी है और कांटा भी है, वह राम भी है और दिन भी है, वह जन्म भी है और मृत्यु भी है--अगर जन्म कहें तो अधूरा कहा और मृत्यु कहें तो अधूरा कहा। उसे जिस शब्द से भी कहने जाएं, वही शब्द आधा हो जाता है।

और ध्यान रहे, आधे सत्य असत्यों से भी खतरनाक होते हैं। क्योंकि आधे सत्यों में वह जो आधा सत्य होता है, वह लोगों को भरमा सकता है, भटका सकता है। तो पहली तो अड़चन, शब्द हैं द्वंद्वात्मक और अनुभव है द्वंद्वातीत। शब्द हैं कामचलाऊ, लोक-व्यवहार के लिए और वह अनुभव है लोक-व्यवहार के बाहर, समय-क्षेत्र के बाहर। वह कोई कामचलाऊ अनुभव नहीं है।
दूसरी बात, हमारे सारे शब्दों की सीमा है और वह अनुभव है असीम। न उसका कोई प्रारंभ, न कोई अंत। हमारे शब्द हैं छोटे-छोटे आंगन और वह है विराट आकाश। कैसे समाएं उसे इस आंगन में? नहीं समाता। अगर उसको ध्यान में रखें तो चुप ही रहना पड़े। लेकिन तुम्हें ध्यान में रखते हैं संत, तो कुछ बोलते हैं। वह बोलते हैं इसलिए नहीं कि परमात्मा को बोला जा सकता है, बोलते हैं इसलिए कि तुम पर करुणा। बोलते हैं इसलिए कि तुम बोलने के अतिरिक्त और कुछ तो समझोगे न।
तुम संत की अड़चन समझो! परमात्मा बोला नहीं जा सकता, तुम बिना बोले कुछ समझ नहीं सकते। तुम्हें देखते हैं तो बोलना पड़ता है, उसे देखते हैं तो चुप रहने की इच्छा होती है।
बुद्ध को जब ज्ञान हुआ, तो वह सात दिन तक चुप बैठे रहे। कहानी है कि देवता स्वर्ग में बड़े बेचैन हो गए। क्योंकि कभी-कभी सदियां बीत जातीं हैं तब कोई व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। और देवता भी तरसते हैं बुद्धत्व की वाणी को सुनने को। बुद्धत्व का उदघोष सुनने को। वह सिंहनाद सुनने को पत्थरों से लेकर पौधों, पशुओं, पक्षियों, मनुष्यों, देवताओं तक सभी के प्राण तड़फते हैं। क्योंकि देवता भी तो बंधन में हैं। उतने ही बंधन में जितने तुम। उनके बंधन जरा प्यारे हैं, सोने के हैं, तुम्हारे लोहे के हैं; उनके बंध हीरे-मणि-माणिक्य जड़े हैं, तुम्हारे बंधन साधारण हैं, दो कौड़ी के हैं; उनके कारागृह सोने-चांदियों के होंगे, तुम्हारे कारागृह साधारण मिट्टी-पत्थर के बने हैं, बस इतना ही फर्क है अन्यथा कुछ भेद नहीं है।
इंद्र भी उतनी ही ईर्ष्या से जलता है, जितनी से तुम जलते हो। हां, उसकी ईर्ष्या और ढंग की। तुम्हारे धन से ईर्ष्या नहीं करता--तुम कितने ही धनी हो जाओ, इंद्र को चिंता नहीं होती। उस पर अनंत, उसके पास अनंत धन है, तुमसे क्या चिंता लेनी! तुम्हारे पास कितना ही हो, गिनती के भीतर रहेगा, गिनती के बाहर नहीं हो सकता। तुम बड़े पद पर पहुंच जाओ, इंद्र को चिंता नहीं होती। क्योंकि उससे ऊपर और सिंहासन किसका है? लेकिन इंद्र चिंतित हो जाता है तपस्वियों से, ध्यानियों से। कहते हैं, उसका सिंहासन डोलने लगता है। घबड़ा जाता है! जब भी कोई तपस्वी गहराइयों में उतरने लगता है, इंद्र को घबड़ाहट होती है कि कहीं यह तपस्वी इतनी तपश्चर्या न कर ले कि इंद्र होने की क्षमता जुटा ले--अन्यथा मेरा पद गया। ईर्ष्या से जल उठता है, भभक उठता है। और जो भी कर सकता है तपस्वी को भ्रष्ट करने के लिए, वे सारे उपाय करता है। भेजता है उर्वशी को, अप्सराओं को, सब तरह के प्रलोभन खड़े करता है--किसी तरह तपस्वी डोल जाए अपनी तपश्चर्या से।
यह तो वही खेल हुआ, जो संसार में चलता है। इस खेल में और उस खेल में कुछ भेद न हुआ। देवता भी तरसते हैं कि कोई बुद्धत्व को उपलब्ध व्यक्ति कहे कुछ, तो माना कि हम सुख के सपने देख रहे हैं, मगर हैं तो सपने ही, हम भी जागना चाहते हैं।
देवता बेचैन हो गए। बुद्ध चुप हैं, कहीं ऐसा तो न होगा कि वे चुप ही रह जाएंगे। तो इंद्र अपने सारे दरबार को लेकर बुद्ध के चरणों में उपस्थित हुआ और उसने प्रार्थना की कि आप बोलें। सदियों बाद यह सौभाग्य घटता है, कोई बुद्ध होता है, आप क्या बोलेंगे नहीं--हम सात दिन से प्रतीक्षा करते हैं कि आपकी अमृतवाणी घोलें। लोग प्रतीक्षातुर हैं, अंधेरे में भटक रहे हैं, अंधे हैं, इनको आंखें दें, इनको मार्ग दें, दिशा दें। कहते हैं, बुद्ध ने कहा, व्यर्थ है बोलना, क्योंकि जो मैंने जाना, पहली तो बात कहा नहीं जा सकता। कहूंगा तो सत्य के साथ अन्याय होगा। दूसरी बात, मैं लाख कहूं, कौन समझेगा? और जो मेरे शब्दों को समझ सकता है, वह मेरे बिना शब्दों के भी पहुंच जाएगा। उसकी चिंता करने की कोई जरूरत नहीं है। मेरे शब्दों को वही

समझ सकता है जो समझने के करीब ही आ गया, बिल्कुल किनारे पर खड़ा है--एक कदम और! वह उठा ही लेगा एक कदम, कुछ मेरे बोलने से उठाएगा, ऐसा नहीं। मेरा बोलना कारण नहीं बनेगा, हो सकता है निमित्त हो जाए। शायद थोड़े जल्दी उठा ले कदम। मगर देर-अबेर से क्या फर्क पड़ता है इस अनंत काल में? आज कि कल कि परसों, जिसको पहुंचना है वह पहुंच ही जाएगा। और जिसको नहीं पहुंचना है, वह मेरे शब्दों को भी गलत समझेगा। आखिर शब्द लोगों को पता तो हैं ही। शास्त्र मौजूद हैं। शास्त्रों को लोग नहीं समझे, उनसे भी उन्होंने जंजीर ढाल लीं, मेरे शब्दों से भी ढाल लेंगे। तो पहले तो जो कहूं, वह कहने में आता नहीं; दूसरा अगर मेहनत भी करूं कहने की, तो वह समझने में नहीं आएगा। मुझे क्यों परेशान करते हो? मुझे चुप ही रह जाने दो।
लेकिन इतनी आसानी से देवता छोड़ भी न सकते थे। उन्होंने मंत्रणा की आपस में, सोच-विचार किया, कि बुद्ध को किसी-न-किसी तरह बुलवाना तो होगा ही। यह वाणी, यह अमृतवाणी बिखरनी ही चाहिए। फूल खिले और सुगंध हवाओं तक न पहुंचे, दीया जले और रोशनी अंधेरे में भटकते लोगों तक न पहुंचे, यह तो नहीं हो सकता, कुछ करना ही होगा। उन्होंने खूब सोच-विचार करके फिर बुद्ध से कहा और एक ऐसा तर्क दिया कि बुद्ध को राजी हो जाना पड़ा।
उन्होंने कहा कि आप ठीक कहते हैं, जो नहीं कहा जा सकता उसे कहना मुश्किल है। असंभव है। हम स्वीकार करते हैं। लेकिन इशारे तो किए जा सकते हैं। गूंगा न बता सके कि गुड़ का स्वाद कैसा है, गुड़ तो बता सकता है कि यह रहा! उंगली से इशारा तो कर सकता है। गूंगा भी पानी पीने के लिए हाथ बांधकर इशारा कर देता है कि मुझे प्यास लगी है, तो लोग समझ जाते हैं, उसकी अंजुली को पानी से भर देते हैं। गूंगा भी बोल लेता है। नहीं शब्दों से बोल पाता, तो भावभंगिमा से बोल लेता है। आपकी आंखें, आपका उठना, बैठना, आपकी मुद्राएं! नहीं कह सकेंगे आप शब्दों से, कोई चिंता नहीं, लेकिन शब्दों के कारण लोग आपके पास आ जाएंगे, आपका सान्निध्य कह सकेगा। शब्द समझने लोग आएंगे और आपको समझकर लौट जाएंगे।
और हम भी स्वीकार करते हैं कि सौ में से कोई एक समझेगा। लेकिन एक भी समझ ले तो क्या कम है! जहां अनंत-अनंत लोग अंधेरों में भटक रहे हों, वहां अगर सौ में से एक भी समझ ले, तो क्या कम है! फिर एक और किसी एक को समझा सकेगा। ऐसेशृंखला बनती है बुद्धों की। दीए से दीए जलते चले जाते हैं। ज्योति से ज्योति जले।
और आप ठीक कहते हैं कि कुछ हैं, जो पहुंच ही गए हैं, आप न भी बोलेंगे तो पहुंच जाएंगे। यह सच है। और कुछ हैं कि आप लाख सिर पटकें, तो भी नहीं पहुंचेंगे--यह भी सच है। मगर दोनों के बीच में भी कुछ लोग हैं, आप उसे इनकार नहीं कर सकेंगे। दोनों के बीच में भी कुछ लोग हैं, जो आप बोलेंगे तो पहुंच जाएंगे और आप नहीं बोलेंगे तो चूक जाएंगे।
बुद्ध को स्वीकार करना पड़ा कि इशारे करूंगा। जरूर बीच में कुछ लोग हैं, उनके लिए बोलूंगा।
तुम पूछते हो, उपलब्धि की क्या अनुभूति होती है? आज तक किसी ने कही नहीं। इशारे किए हैं। इशारे मैं भी कर रहा हूं। कुछ इशारे ख्याल में रखना। उस अनुभव में मैं नहीं होता, अनुभव करने वाला नहीं होता, मात्र अनुभव होता है। बस उलझन शुरू हो गई! तर्क कहेगा, यह कैसे हो सकता है? बिना अनुभोक्ता के अनुभव कैसे? मगर जैसा है वैसा ही कह रहा हूं। अनुभोक्ता नहीं होता, बस अनुभूति होती है।
कुछ इशारे समझो।
कभी-कभी, अगर तुम्हें नृत्य में रस आता हो तो ऐसे क्षण तुमने जाने होंगे, जब नर्तक मिट जाता है और नृत्य ही होता है।
पश्चिम का बहुत बड़ा नर्तक निजिंस्की कभी-कभी ऐसे क्षणों में पहुंच जाता था। तब वह ऐसी छलांग लगाता था, जो लग नहीं सकती--पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के कारण लग नहीं सकती। वैज्ञानिक चकित थे! वैसी छलांग... ऐसा लगता था जैसे पंख लग गए हों उसको और पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण, कशिश काम न कर रही हो। और फिर जब वह छलांग लगाता था इतनी ऊंची कि भरोसा न आए, उससे भी बड़ा चमत्कार यह था कि जब वह वापस लौटता था, तो ऐसे ही नहीं लौटता था

जैसे पत्थर धड़ाम से गिरता है, जैसे तुम उछलोगे तो धड़ाम से गिरोगे वापिस, ऐसे नहीं, ऐसे उतरता था जैसे किसी पक्षी का पंख, डोलता, हवा में मस्त, धीरे- धीरे, आहिस्ता आहिस्ता शनैः-शनैः! उसका उतरना भी अदभुत था। जैसे उसमें कोई वजन न हो। जैसे वह भारविहीन हो गया हो। भारशून्य हो गया हो।
और जब भी निजिंस्की से पूछा जाता कि तू यह करता कैसे है, तो निजिंस्की कहता, मैंने करने की जब भी यह कोशिश की है, यह नहीं होता। बहुत बार मैंने करने की कोशिश की है, असफल रहा हूं। यह तो होता है कभी-कभी, जब मैं नहीं होता; जब नृत्य ऐसे गति पकड़ लेता है, ऐसी त्वरा और तीव्रता और ऐसी समग्रता, जब नृत्य ही नृत्य रह जाता है और निजिंस्की बचता ही नहीं, बस तब जैसे तुम चकित होकर देखते हो कि क्या हुआ, ऐसे ही मैं भी चकित, विस्मयविमुग्ध रह जाता हूं! --क्या हुआ? कैसे हुआ? किसने किया? मैं तो नहीं हूं करने वाला, इतना निश्चित है। मैं तो होता ही नहीं उस क्षण में। बस एक आश्चर्य रह जाता है। एक आश्चर्य की लकीर छूट जाती है। एक स्मृति रह जाती है। मगर यह घटना घटती है तभी जब मैं नहीं होता।
अगर तुम गीत गाना जानते हो, तो कभी तुमने जाना होगा कि गायक मिट जाता
है और गीत ही रह जाता है। अगर तुम कवि हो, तो तुमने जाना होगा कि कभी कवि नहीं होता, तभी कविता उतरती है। मगर यह अनुभव तो सभी के नहीं होंगे। सभी नर्तक नहीं हैं।... होना तो चाहिए सभी को नर्तक। अभी भी आदिवासी तो सभी नाचते हैं। यह सिर्फ सभ्य आदमी का दुर्भाग्य है कि वह नाच भूल गया। और नाच के भूलने के साथ कुछ आध्यात्मिक विधा खो गई। कोई आयाम खो गया। मोर नाचते हैं। ऐसे ही सारे मनुष्य आदिम अवस्था में नाचते रहे। अब भी नाचते हैं जंगल के आदिवासी। और उस नृत्य से उनके जीवन में कुछ घटित होता है जिससे तुम वंचित हो।... गीत गाते भी सभी लोग नहीं, बांसुरी भी सभी नहीं बजाते, सितार के तार भी सभी नहीं छेड़ते--हमने तो अपने जीवन को बड़ा संकीर्ण कर लिया है और क्षुद्र कर लिया है; बस रुपये गिनते रहो, रुपये खनखनाते रहो, तिजोड़ी भरते रहो! और यही तिजोड़ी तुम्हारी छाती पर वजन होकर ले डूबेगी--इसलिए हमारे जीवन में वे सारे क्षण तिरोहित हो गए हैं, जहां से तुम्हें इशारा दिया जा सके।
कभी किसी को प्रेम किया है? तो प्रेम में जरूर ऐसी घटना घटती है जब प्रेमी मिट जाते हैं। प्रेम होता है, प्रेमी मिट जाते हैं। दुई मिट जाती है। एक तरंग रह जाती है, अपूर्व, अतिशय। अघटनीय घटता है। मगर प्रेम भी दुनिया से खो गया है। प्रेम की जगह हमने नकली व्यवस्था विवाह की खड़ी कर ली है। हम प्रेम होने ही नहीं देते।
डर के कारण हम बाल-विवाह कर देते थे।
छोटे-छोटे बच्चों का विवाह कर देते थे। क्योंकि बड़े होंगे, कहीं प्रेम इत्यादि में फंस जाएं इसके पहले ही झंझट खतम कर दो! न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी। छोटे-छोटे बच्चे, जिनको कंधों पर ले कर बारात जा रही है; जिनको अभी उठने-बैठने की तमीज नहीं है, इन छोटे-छोटे बच्चों को विवाह करके हम प्रेम से बचने का आयोजन कर रहे थे। एक नैसर्गिक अनुभव, एक रोमांचक अनुभव, उससे वंचित कर रहे थे।
न प्रेम, न नृत्य, न संगीत, न गीत, सब छीन लो--सब छीन ही लिया है--फिर आदमी पूछता है, उपलब्धि की क्या अनुभूति होती है? अब किस ढंग से कहो!
झेन फकीर रिंझाई को जापान के सम्राट ने बुलाया था कि कुछ उपदेश दें, बुद्ध-धर्म का कुछ उपदेश दें। और रिंझाई ने क्या किया, मालूम? गया, खड़ा हुआ मंच पर, झोली में बांसुरी निकाली, बस एक स्वर बांसुरी में फूंका, एक बांसुरी की टेर दी, झोली में बांसुरी वापस रखी, उतर कर दरवाजे के बाहर हो गया। सम्राट तो समझ ही नहीं पाया कि इतनी जल्दी यह क्या हुआ? और उपदेश कहां? बुद्ध धर्म का उपदेश कहां? वजीर से पूछा कि यह आदमी पागल तो नहीं है? कितने दिन से प्रतीक्षा की थी उपदेश की, और यह क्या मामला हुआ? या तो यह पागल है, या मजाक कर रहा है। यह बांसुरी पर एक स्वर फूंकना--और सिर्फ एक स्वर--और बांसुरी रखी झोले में और वापस दरवाजे के बाहर ही हो गया! आदमी जाते वक्त नमस्कार भी करता है, कहता है कि अब जाता हूं--मगर कुछ भी नहीं! यह कैसा व्यवहार! ब.ूढे वजीर ने कहा, आप समझे नहीं, उसने बुद्ध धर्म का उपदेश

दे दिया। संक्षिप्त, सूत्रबद्ध। बांसुरी बजा दी, और इतना कह दिया कि जैसे बांसुरी बजाने में मैं खो गया हूं इस क्षण--काश आप उसकी तरफ देखते, तो आप पाते कि भीतर शून्य है, शून्य बांसुरी बजा रहा है, बजाने वाला नहीं है, तो आप बुद्ध धर्म का अर्थ समझ जाते।
इशारे ही हो सकते हैं। अनुभूति तो तुम्हें करनी ही होगी। स्वयं करनी होगी।
तुम पूछते हो, कैसे साधक जाने कि वास्तव में कुछ घट गया है? जब सिरदर्द होता है तो कैसे जानते हो कि सिरदर्द हो रहा है?
मैं स्कूल में पढ़ता था। एक मुसलमान शिक्षक थे। शायद अब भी जीवित हैं, रहमुद्दीन उनका नाम था, प्यारे आदमी थे। मगर एक बात में बहुत सख्त थे। किसी तरह उनसे कोई बहाने से छुट्टी लेना मुश्किल था। छुट्टी असंभव ही थी, वह बिल्कुल दुश्मन ही थे छुट्टी के। न खुद कभी छुट्टी लेते थे, न किसी विद्यार्थी को छुट्टी लेने देते थे। और मुझे आए दिन छुट्टी की जरूरत रहती। तो मैं कभी कहूं कि पेट में दर्द, कभी कहूं कि सिर में दर्द-- उन्होंने कहा कि सुनो! मैं बुखार को मानता हूं, मैं सिरदर्द और पेट दर्द को मानता ही नहीं। क्योंकि बुखार हो तो मैं कम से कम तुम्हारा हाथ हाथ में लेकर देख तो सकूं कि है बुखार, अब वह पेट दर्द और सिरदर्द मैं कैसे समझूं कि हो रहा है असली में कि नहीं हो रहा है? मैंने उनसे कहा कि आप जब पूछते ही हैं, तो मैं आपसे पूछता हूंः कभी आपको सिरदर्द हुआ है या नहीं? पेट दर्द कभी हुआ है कि नहीं? उन्होंने कहा कि हुआ है। तो मैंने कहा कि आप क्या प्रमाण दे सकते हैं उसके होने का? आप मानें या न मानें, मुझे सिरदर्द हो रहा है और छुट्टी चाहिए। और प्रमाण क्या हो सकता है सिरदर्द का? कोई हो आपके पास जांच की व्यवस्था तो कर लें।
उन्होंने पीछे मुझे बुलाया और कहा कि सुनो, तुम्हें छुट्टी लेनी हो,
तो मुझे पहले बता दिया कर। यह सिरदर्द और पेट दर्द की बीमारी अगर फैल गई, तो मैं झंझट में पडूंगा! तुम बात तो ठीक कह रहे हो--हालांकि मैं पक्का जानता हूं कि तुम्हें सिर दर्द नहीं है, मगर यह भी सिद्ध नहीं किया जा सकता--तुम्हें छुट्टी चाहिए, यह मैं जानता हूं। मगर यह बीमारी फैलनी नहीं चाहिए। तुम मुझसे चुपचाप पहले ही कह दिया करो, और तुम्हें जब छुट्टी लेनी हो ले लिया करो, मगर यह सिरदर्द और पेट दर्द, यह बात तुम चालबाजी की कर रहे हो! क्योंकि इसमें न कोई प्रमाण हो सकता, न कोई उपाय हो सकता। डाक्टर भी कुछ नहीं कर सकता। डाक्टर के भी पास जाकर कहो कि सिरदर्द हो रहा है, तो वह क्या करे? जांचने का कोई उपाय नहीं।
तुम्हें लेकिन जब सिरदर्द होता है तो पता चलता है या नहीं? तब तुम्हें स्पष्ट पता चलता है कि हो रहा है। दुनिया माने कि न माने, प्रमाण हो कि न हो। ठीक यह अनुभव भी ऐसा ही स्वतः प्रमाण है।
तुम यह पूछते हो, साधक कैसे जाने कि वास्तव में कुछ घट गया है? योगेश,
जब घटता है तो कोई उपाय ही नहीं होता नहीं जानने का। जब अंधे को आंख खुलती है और रोशनी दिखाई पड़ती है, तो क्या तुम सोचते हो अंधा पूछेगा कि अंधा कैसे जाने कि अब आंख खुल गई और रोशनी दिखाई पड़ने लगी? जब दिखाई ही पड़ने लगी, तो यह प्रश्न नहीं उठता। यह प्रश्न इसीलिए उठ रहा है कि तुम अनुभव में तो उतरने की फिकर में कम हो, पहले से ही सब निश्चय कर लेना चाहते हो--कैसे?
यह काल्पनिक प्रश्न है, दार्शनिक प्रश्न है। ऐसे प्रश्नों का कोई मूल्य नहीं होता। तुम यह पूछ रहे हो कि मेरा जब किसी से प्रेम हो जाएगा तो मैं कैसे जानूंगा कि प्रेम हो गया? जानोगे, बिल्कुल बेफिकर रहो! रोआं-रोआं जानेगा कि प्रेम हो गया। हृदय की धड़कन-धड़कन जानेगी कि प्रेम हो गया। और सारी दुनिया कहेगी कि पागल हो गए हो, कुछ नहीं हुआ, कल्पना कर रहे हो, तो भी तुम मानोगे नहीं। क्योंकि कौन अपने प्रत्यक्ष प्रमाण के सामने दूसरों का प्रमाण मानने जाता है।
दुनिया माने या न माने, जब घटना घटती है तो जानी ही जाती है।
और यह घटना तो इतनी महान है, इतनी विराट है, इतनी अभिभूत कर लेने वाली है--बाढ़ की तरह आती है, सब दिशाओं से आती है, रोशनी की बाढ़, और ऐसे भर जाती है तुम्हारे कोने-कोने में प्राणों के, सब अंधेरे को निकाल बाहर कर देती

है। सब पीड़ा गई, सब दुख गए, सब चिंता गई; अहंकार गया, अहंकार से बंधे हुए सारे संताप, सारे विषाद गए--कैसे बच सकोगे जानने से? इतनी बड़ी घटना घटेगी और तुम्हें पता न चलेगा?
लेकिन अगर सिर्फ दार्शनिक ढंग से पूछो, पहले से ही पूछो, तो अड़चन है। अभी तुम काल्पनिक रूप से कुछ रहे हो, कैसे साधक जाने कि वास्तव में कुछ घट गया है? जब तक ऐसा प्रश्न उठे, तब तक जानना--अभी नहीं घटा है। जब घटता है तो कोई प्रश्न नहीं उठते। घटना इतनी बड़ी है और इतनी स्वतः सिद्ध है, स्वतः प्रमाण है कि जब घटती है तो कोई शेष नहीं रह जाता। श्रद्धा, पूर्ण श्रद्धा का जन्म होता है।
और यह भी तुम पूछते हो कि कैसे वह स्वनिर्मित कल्पना से भिन्न वास्तविकता को जाने? वहां तो कोई स्व बचता नहीं, न कोई कल्पना बचती है-- विचार ही नहीं बचते, तो कल्पना कैसे बचेगी; नींद ही टूट गई, तो सपने कैसे बचेंगे--स्वयं ही नहीं बचा, एक शून्य रह जाता है। एक गहन सन्नाटा, एक निबिड़ सन्नाटा। और उस सन्नाटे में आनंद का उत्सव है। आनंद का रास। आनंद की लीला। जब होगा, तब तुम निश्चय ही जान लोगे। इसलिए बजाय इस चिंता में पड़ने के पहले से कि हम कैसे निर्णय करेंगे, खोज में लगो। हो जाए, इसके लिए तैयार होओ। पात्र को निर्मित करो, परमात्मा तो बरसने को प्रतिपल राजी है।

तीसरा प्रश्नः भगवान, जन्मना, रोटी-रोजी कमाना, बच्चे पैदा करना और फिर मर जाना--क्या सही जिंदगी है?

नारायण दास! भीड़ तो इसी को जिंदगी मानती है। मगर भीड़ तो भेड़ों की है। भीड़ में आदमी कहां? यह जिंदगी आदमी की जिंदगी नहीं है, भेड़ की जिंदगी है। आदमी की जिंदगी और इतनी ओछी, इतनी छोटी, इतनी क्षुद्र, इतनी तुच्छ, तो फिर आदमियत और पशुता में भेद कहां रहा? पशु भी जन्मते हैं और पशु भी रोटी-रोजी कमा लेते हैं--और तुमसे कहीं ज्यादा अच्छी तरह कमा लेते हैं! आदमियों में तो तुम्हें बेकार भी मिल जाएंगे, पशु-पक्षियों में बेकार भी नहीं मिलते। आदमियों को तो रोजगार-दफ्तर के सामने क्यू में खड़े हुए पाओगे, पशु- पक्षियों का कहीं क्यू भी नहीं लगा दिखाई पड़ता। आदमियों को तो बड़े चिंतित पाओगे कि कल की रोटी भी आज इकट्ठी कर लग, पशुओं को कल की चिंता भी नहीं है। अजगर करै न चाकरी, पंछी करै न काम; दास मलूका कह गए, सबके दाता राम। पशु- पक्षी-पौधे भी अपना भोजन जुटा रहे हैं--मजे से जुटा रहे हैं। बिना काम किए। राम दे रहा है। यह तो बिल्कुल पशु से भी नीचे गिर जाना है--रोटी-रोजी, जन्मना, फिर बच्चे पैदा करना... बच्चे पैदा करना भी कोई कला है?
कुछ लोग यही सोचते हैं कि बच्चे पैदा करना बड़ी कला है। जिनको बच्चे पैदा नहीं होते, वे बड़े उदास। जैसे उनकी जिंदगी बेकार हो गई। बड़े दुखी, कि जैसे जीवन में कोई सार्थकता न रही। जो कतार लगा देते हैं बच्चों की, वह बड़े अकड़ कर चलते हैं। कि उन्होंने एक महान कार्य किया। यह तो पशु-पक्षी भी कर रहे हैं और तुमसे ज्यादा अच्छी तरह कर रहे हैं। यह तो कीड़े-मकोड़े भी कर रहे हैं और एक-एक साथ हजार-हजार अंडे रखने वाले कीड़े-मकोड़े हैं। तुम्हारी बिसात क्या! साल-डेढ़ साल में एकाध बच्चा तैयार कर पाते हो। यह भी कोई रिकार्ड है? कीड़े-मकोड़े काफी कर रहे हैं। मच्छर तुम्हें हरा दें। एक-एक मच्छर इतने मच्छर पैदा करता है कि आदमी मार-मार कर मरा जाता है, मगर मच्छर मरते नहीं।
नहीं, यह तो जिंदगी नहीं है। यह तो जिंदगी का धोखा है। यह तो जिंदगी नहीं, यह तो बोझ है। जिंदगी तो एक नृत्य है। जिंदगी तो एक आनंद है। जिंदगी तो एक अपूर्व गीत है--अमृत का, रस का।
जिंदगी
जी नहीं
बर्दाश्त की
ऊसर में काश्त की!
कितनी है बदतमीज
बिन बोए उग आईं और-और चीज

बो करके हाय रक्त-बीज,
कैसी शुरुआत की!

छत्त-छत्त मेघ-रास
बरस रही खेतों के आस-पास प्यास होठों तक बजता अहसास,
हद है उत्पात की!

जैसे खुद हों सलीम
ताक रहे मेढ़ों से आक, ढाक, नीम जीभों से लेप दी अफमी,
जब भी दरख्वास्त की!

आंखों में आसमान
कहां गए इस बारी दीवारी कान सांस-सांस हो गई लगान,
क्या सोचें बाद की!

जिंदगी
जी नहीं
बर्दाश्त की
ऊसर में काश्त की!
यह तो जिंदगी नहीं है। यह तो ऊपर में काश्त करना है। जहां कुछ पैदा न हो, वहां कुछ पैदा करने की चेष्टा है। यह तो रेत से तेल निचोड़ने की कोशिश है। जिसे तुम जिंदगी समझते हो, वह जिंदगी का धोखा है। बस, किसी तरह बर्दाश्त कर रहे हो, यह और बात है। नृत्य कहां? उत्सव कहां? आनंद कहां? ढो रहे हो एक बोझ, मौत की प्रतीक्षा है, कि आएगी और मुक्त कर देगी।
सिग्मंड फ्रायड ने मनुष्य के मन के विश्लेषण में जैसे-जैसे गहराई तक खोज की, वैसे-वैसे पाया कि मनुष्य के जीवन में दो आकांक्षाएं हैं। एक, जीवेषणा। एक जीने की आकांक्षा। उसको उसने लिबिडो कहा। और एक, मृत्वेषणा। मरने की आकांक्षा। उसे उसने थानाटोस कहा।
मृत्यु की आकांक्षा!
जब पहली-पहली बार उसने इस बात की घोषणा की कि मनुष्य के भीतर मरने की
भी बड़ी तीव्र आकांक्षा छिपी पड़ी है, तो किसी को भरोसा न आया। आमतौर से कौन मरना चाहता है? किसी से भी पूछो कि भई, मरना चाहते हो? वह झगड़ने को खड़ा हो जाएगा, कि आप बात कैसी पूछते हो? यह तो पूछा ही नहीं जा सकता, किसी से भी, कितने ही प्रेम से पूछो, कितने ही सम्मान से, कि आप मरना चाहते हो? वह एकदम झगड़ा करने को खड़ा हो जाएगा। लेकिन फिर भी सिग्मंड फ्रायड ठीक कहता है। मनोवैज्ञानिक कहते हैं, ऐसा आदमी खोजना कठिन है जिसने कभी न कभी आत्महत्या का विचार न किया हो। खोजना ही कठिन है ऐसा आदमी, जो कभी न कभी सोचता न हो कि अब बहुत हो गया, थक गए, अब तो मौत उठा ले! अब तो किसी तरह छुटकारा हो जाए इस बंधन से!
यह तो जिंदगी नहीं है, जिससे छूटने की आकांक्षा इतनी प्रगाढ़ता से पैदा होती है।
भारत के तो सारे धर्म आवागमन से छुटकारा पाने के लिए ही चेष्टारत हैं। कि हे प्रभु, उठा लो! फिर दुबारा न भेजना। बहुत हो गया, अब क्षमा करो! दंड काफी दे दिया! जीवन दंड है। जरूर कहीं चूक हो रही है। कहीं भूल हो रही है। कहीं भयंकर भूल हो रही है। हम जन्म को ही जीवन समझ लेते हैं, इसलिए भूल हो रही है। जीवन निर्मित करना होता है, सृजन करना होता है।
जीवन सिर्फ उन्हें उपलब्ध होता है, जो जीवन को सृजित करते हैं, जो अपने भीतर जीवन को निखारते हैं। जन्म के साथ तो केवल अवसर मिलता है जीवन का, जीवन नहीं। अनगढ़ पत्थर है जन्म, मूर्ति नहीं। फिर छेनी उठा कर मूर्तिकार बनना होता है। फिर तुम्हारे ऊपर निर्भर है कि तुम कैसी मूर्ति

बनाओगे? कितनी सुंदर मूर्ति बनेगी? राम की बनेगी, कि कृष्ण की, कि बुद्ध की; और कितनी सुंदर होगी, सब तुम पर निर्भर है। अनगढ़ पत्थर की तरह तो तुम पैदा होते हो, मगर अधिक लोग अनगढ़ पत्थर की तरह ही मर जाते हैं, क्योंकि जन्म को ही जीवन समझ लेते हैं--वहीं चूक हो जाती है।
हृदय आकाश होता है
जिसमें--
सूरज, चांद और सितारे
चमकते रहते हैं
जिनकी रोशनी से हम
वस्तुओं और रास्तों को देखते हैं

लेकिन सूरज!
हर हृदय में नहीं होता
उसे उगाना पड़ता है
जब हमें
मालूम हो जाता है
कि चंद्रमा और सितारों की ठंडी रोशनी से

नहीं तपेगी
हमारे जिस्म की जमीन
जिसकी नर्म तहों में
हमारा दृष्टि-बीज
गुमसुम पड़ा है।
एक तो जीवन मिलता है जन्म के साथ, वह केवल कोरा अवसर है, जैसे कोरी किताब। फिर तुम उसमें गालियां लिखोगे कि गीत लिखोगे? तुम्हारी कोरी किताब भगवदगीता बन सकती है। या हो सकता है, खाता-बही बन कर खतम हो जाए। कोरी किताब तो कोरी किताब है। तुम उसमें सुंदर चित्र उभार सकते हो, या केवल स्याही के धब्बे। या यही भी हो सकता है कि खाली का खाली छोड़ दो। ऐसे ही जीओ, ऐसे ही मर जाओ। न जीए ठीक से, न मरे ठीक से। न तुम्हारे जीवन में कोई दम, न तुम्हारे मरने में कोई दम। लेकिन अधिक लोग तो किताब को गंदा करके मरते हैं। उसमें हिसाब-किताब लिख जाते हैं।
मैं कलकत्ते में मेहमान होता था, एक बहुत अदभुत व्यक्ति थे, उनके घर पर। उनमें खूबियां कई थीं। एक खूबी तो उनकी यह थी कि वह हिंदुस्तान के सबसे बड़े सटोरिये थे।... जुआरियों से मेरी दोस्ती जल्दी बन जाती है।... वह जुआरी थे। उनकी खूबी यह थी कि वह खाता-बही नहीं रखते थे। जब उनके घर मैं पहली बार मेहमान हुआ, तब मुझे पता चला कि खाते-बही क्यों नहीं रखते? वह अपने बाथरूम की दीवालों पर सब लिखे हुए थे। सटोरिए थे, खाता-बही रख भी नहीं सकते थे! क्योंकि सब जुए का मामला। सब छिपा कर चलाना पड़ता। दान भी बहुत करते थे। जितना जुआ खेलते थे, उतना ही दान भी करते थे। मगर टैक्स उन्होंने कभी नहीं भरा। खाते ही बही नहीं, टैक्स काहे पर लगाओगे! हालांकि दान उन्होंने सबको दिया। गांधी को भी, नेहरू को भी, सबको।
जब नेहरू प्रधानमंत्री हुए और उन्होंने कहा कि अब कुछ टैक्स वगैरह भी देने का इंतजाम करो--उन सज्जन का नाम थाः सोहनलाल कोठारी--उन्होंने कहा, टैक्स जितना आप मांगो उतना भर दूं, मगर खाते-बही नहीं हैं मेरे पास। और न मैं खाते-बही रखूंगा कभी। कौन झंझट में पड़े!
मगर उनके बाथरूम में जब मैं नहाया, तब मैंने देखा सारा बाथरूम गुदा पड़ा है। जगह-जगह लिखे हुए हैं।
खाते-बही में न लिखोगे तो कहीं और लिखोगे।
लेकिन तुम जो करोगे, वह लिख ही जाएगा। वही तुम्हारी विधि बनती, वही तुम्हारा भाग्य; वही तुम्हारी नियति।
तुम कोरी किताब की तरह पैदा होते हो। धन-पद-प्रतिष्ठा, इसी को इकट्ठा करते रहे, तो फिर जिंदगी बस ऐसी ही है जैसी तुम पाते हो--भीड़ की जिंदगी!

लेकिन चाहो तो यह अनगढ़ पत्थर गढ़ा जा सकता है। यह कोरी किताब गीता बन सकती, कुरान बन सकती है। आखिर मोहम्मद ने इसी कोरी किताब को कुरान बनाया। आखिर कृष्ण ने इसी कोरी किताब को गीता बनाया। तुम क्यों गीता और कुरान पढ़ते हो? तुम्हारी क्षमता भी उतनी ही है। तुम क्यों नहीं गीता और कुरान बनते? तुम क्यों नहीं अपने भीतर उमगाते कुछ गुलाब के फूल; क्यों नहीं चेतना की झील में कमल को तैराते? यह हो सकता है। थोड़ा ध्यान जगे, थोड़ा प्रेम जगे, बस क्रांति घटनी शुरू हो जाती है। फिर तुम भेड़ न रह जाओगे।
नारायण दास, अभी तो जिंदगी तुम जैसी कहते हो ऐसी है। यह नाममात्र की जिंदगी है। थोथी। दो कौड़ी की। लेकिन संपदा मिल सकती है। हकदार तुम हो। परमात्मा का साम्राज्य तुम्हारा है। मगर कुछ कुशलता जुटाओ। कुछ अपनी बुद्धिमत्ता पर धार रखो। परमात्मा बुद्धुओं क लिए नहीं है। बुद्धिमत्ता पर धार चाहिए। प्रतिभा चाहिए। और सब प्रतिभा लेकर पैदा होते हैं। लेकिन तुम कभी प्रतिभा पर धार नहीं रखते। जंग खा जाती है प्रतिभा, धूल जम जाती है तुम्हारे दर्पण पर, तुम ऐसे ही मर जाते हो, व्यर्थ की आपाधापी में।
बाहर जो कुछ भी मिल सकता है, सब व्यर्थ है। सार्थक भीतर है। बच्चे जन्माते हो, उतने से काम नहीं होगा। अपने को जन्माओ। स्वयं को जन्म दो। मैं इस स्वयं को जन्माने की प्रक्रिया को ही संन्यास कहता हूं। यह निर्णय है--अपने को द्विज बनाने का। यह निर्णय है--शूद्र से ब्राह्मण होने का।
जन्मते सभी शूद्र की भांति हैं, मरते थोड़े से लोग ब्राह्मण की भांति हैं।
कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई कबीर, कोई नानक, कोई पलटू, बस थोड़े से लोग ब्राह्मण होकर मरते हैं। बाकी सब लोग शूद्र की तरह पैदा होते, शूद्र की तरह मरते हैं।
जन्म से कोई ब्राह्मण नहीं होता। जन्म से कोई ब्राह्मण हो नहीं सकता। ब्राह्मण तो वह, जो ब्रह्म को जाने। और जिसने अपने को ही नहीं जाना, क्या खाक ब्रह्म को जानेगा।
अभी भी समय है। अभी भी देर नहीं हो गई है। जागो, अपने को जगाओ, धूल-धमास पोंछो, कूड़ा-करकट हटाओ, चित्त को शून्य करो, चित्त को मौन करो--मौन कीमिया है। मौन है कला--और तुम निश्चित ही मूर्ति बन जाओगे। और तुम मूर्ति बनो तो जीवन मंदिर है।

चौथा प्रश्नः भगवान, क्या आप पतियों को सच ही निपट गधे मानते हैं?

सूरजमल! मैं तो ऐसा कैसे मान सकता हूं! मेरे आधे संन्यासी पति हैं। इतने संन्यासियों को नाराज नहीं कर सकता।
नहीं फिर सभी पति गधे भी नहीं होते। और न सभी गधे पति होते हैं। लेकिन पत्नियां ऐसा ही समझती हैं।
मैं तो जो उस दिन कह रहा था, वह पत्नियों की दृष्टि तुम्हें समझा रहा था। अपनी तरफ से कुछ नहीं कह रहा था। पत्नियां ऐसा ही समझती हैं कि सब पति गधे होते हैं। कहतीं नहीं! या कभी-कभी प्रकरांतर से कहती भी है।
पति पत्नी से कह रहा है, अब समझाओ अपने लाड़ले को! जिद्द कर रहा है कि गधे की पीठ पर बैठ कर सवारी करेगा। पत्नी ने कहा, तो बिठा कर अपनी पीठ पर घुमा क्यों नहीं देते?
सीधे नहीं कहतीं। परोक्ष। सीधे तो कहती हैः पति परमात्मा। कि मैं आपके चरणों की दासी। मगर भीतर भलीभांति जानती हैं कि चरणों के दास। पत्नियां होशियार हैं। कहती हैं चरणों की दासी और बनाए रखती हैं चरणों का दास।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी चिट्ठी लिख रही थी। चिट्ठी पूरी हुई तो उसके बेटे ने कहा कि लाओ, मम्मी, मैं जाकर पोस्ट आफिस डाल आऊं। उसने कहा कि नहीं बेटा, देखते नहीं, बाहर मूसलाधार वर्षा हो रही है। ऐसे में तो गधे भी छिप जाते हैं। सड़क पर गधा तक भी दिखाई नहीं दे रहा है, कुत्ते तक दिखाई नहीं दे रहे हैं। ऐसे धुआंधार पानी में और तू चिट्ठी डालने जाएगा? नहीं, ठहर! तेरे पापा को आने दे, वह डाल आएंगे।

चंदूलाल की पत्नी कविता करती है। कवि-सम्मेलन है और चंदूलाल की पत्नी कविता पढ़ रही है, और बड़ी हूट की जा रही है। लोग शोरगुल मचा रहे हैं, जूते पटक रहे हैं, हू-हल्ला कर रहे हैं। चंदूलाल भी पीछे से खड़े बहुत बेचैन हो रहे हैं। वह बार-बार पीछे से कहते हैं, अपनी पत्नी से कि मुन्नू की मां, अरे, वह कविता क्यों नहीं पढ़तीं--गधे के सिर पर कितने सींग? हास्य-रस की कविता है। चंदूलाल सोच रहे हैं कि वह कविता पढ़े यह, तो अभी प्रभाव बढ़ जाए, अभी लोग मस्त हो जाएं; यह हू-हल्ला, शोर-शराबा, हूटिंग बंद हो जाए। मगर पत्नी परेशान है हूटिंग से और साथ में परेशान है चंदूलाल की इस आवाज से-- बार-बार वह कह रहे हैं पीछे सेः मुन्नू की मां, अरे, वह कविता क्यों नहीं पढ़तीं? गधे के सिर पे कितने सींग? आखिर बर्दाश्त क बाहर हो गया मुन्नू की मां के और मुन्नू की मां ने कहा कि मुन्नू के पापा, जरा खड़े हो जाओ, यहां से मुझे दिखाई नहीं पड़ता। सिर ही दिखाई नहीं पड़ता तो गिनती कैसे करूं कि गधे के सिर पर कितने सींग?
ऐसे परोक्ष। प्रत्यक्ष नहीं।
मैं तो पत्नियों का दृष्टिकोण समझा रहा था। लगता है सूरजमल को दुख हुआ। पति होंगे। और सोचा होगा, यह क्या बात हुई है? पति और गधे! पति को तो शास्त्र परमात्मा कहते हैं। पतियों ने ही लिखे होंगे शास्त्र! जरा पत्नियों से पूछ कर लिखे होते।
सच तो यह है कि पति और पत्नी, ऐसा नाता बनाना ही एक तरह की मूढ़ता है। प्रेम ठीक, पर्याप्त, नैसर्गिक। बाकी नाते-रिश्ते जो हम बनाते हैं, वह व्यावहारिक, सामाजिक, कृत्रिम। संस्थाएं हैं वे, उनका कोई बहुत मूल्य नहीं है।
और उनकी हानि तो स्पष्ट है।
जैसे ही तुमने किसी स्त्री को अपनी पत्नी समझा कि तुम उसकी तरफ देखना बंद कर देते हो। तुम मान ही लेते हो कि वह तुम्हारी चीज-वस्तु। कहते हैंः स्त्री-धन। इससे ज्यादा और अपमानजनक शब्द क्या होगा? स्त्री को और धन! और जैसे ही कोई किसी को पति मान लेता, बस बात स्वीकृत हो गई। जैसे एक पक्का बंधा हुआ सेवक मिल गया। अब इस पर निर्भर रहा जा सकता है।
प्रेम तो महिमा देता है एक-दूसरे को। और यह पति-पत्नी का नाता सारी महिमा छीन लेता है। पति-पत्नी निरंतर कलह करते रहते हैं। झगड़ते ही रहते हैं। एक-दूसरे के गले के पीछे पड़े रहते हैं। यह किस तरह का प्रेम है, जिसमें से कलह ही उपजती है! और जो जीवन में केवल विषाद ही विषाद लाता है! दिखावा जरूर हम और करते हैं।
पति-पत्नी लड़ रहे हों और कोई पड़ोसी आ जाए, एकदम झगड़ा शांत हो जाता है, पत्नी मुस्कुराने लगती है, पति प्रेम से बातें करने लगते हैं--अभी एक क्षण पहले मारपीट की नौबत थी!
पड़ोसियों को हम एक चेहरा दिखाते हैं। एक धोखा बांधे रखते हैं। इस धोखे के कारण दुनिया में बड़ी भ्रांति है। प्रत्येक परिवार यही सोचता है कि दूसरे परिवार बड़े शांति और प्रेम से रह रहे हैं। दुख में तो हमीं हैं। भूल में तो हमीं हैं। मगर जिस तरह तुम दूसरों को धोखा दे रहे हो, वह भी तुम्हें धोखा दे रहे हैं।
इस जगत में लोगों के चेहरे दो हैं। एक उनका असली चेहरा है, जो वे कभी नहीं दिखाते। और एक उनका नकली चेहरा है, वह दिखाते हैं। इस नकली चेहरे के कारण प्रत्येक व्यक्ति राजनैतिक हो गया है।
मैंने सुना है, होली के दिन थे और गांव के लोगों ने नेताजी को पकड़ लिया--गांव के नेताजी। दिल में तो बहुत दिन से लगी थी कि नेताजी को ठिकाने लगाना है--नेताजी को कौन ठिकाने नहीं लगाना चाहता! नेताजी की अकड़ बरदाश्त के बाहर हो रही थी गांव को। तो दिल खोल कर लोगों ने नेताजी के मुंह पर रंग नहीं, डामल पोता। दिल खोल कर डामल पोता! और नेताजी भी एक पहुंचे हुए नेताजी! कि वे खीसें निपोर कर हंसते ही रहे! लागों ने भी कहाः है पहुंचा हुआ, है सिद्धपुरुष, है योगी! कि हम डामल पोत रहे हैं, नालियों का कीचड़ पोत रहे हैं इसके चेहरे पर, मगर इसका मुंह है कि हंस ही रहा है!

सांझ को जरा वह देखने गए लोग पास-पड़ोस के कि क्या हालत हुई? क्योंकि डामल ऐसा पोता था उन्होंने कि महीना भर तो छूट ही नहीं सकता था। लेकिन देखा तो नेताजी बैठे हैं, चेहरा बिल्कुल साफ-सुथरा, न कहीं डामल का कोई चिह्न है, न कुछ। तो वे चकित हुए, उन्होंने कहा कि नेताजी, इतने जल्दी आपने डामल कैसे धो डाला? नेताजी ने कोने में पड़ा हुआ मुखौटा दिखलाया, कि वह देखो, जिस पर तुम डामल पोत रहे थे, वह मेरा असली चेहरा नहीं है। वह तो मैं बाहर पहन कर जाता हूं।
प्रत्येक व्यक्ति के मुखौटे हैं। पति-पत्नी मुखौटे पहन कर बाहर निकलते हैं, मुखौटे पहन कर बच्चों के सामने प्रकट होते हैं, जब कोई नहीं होता तब सब मुखौटे उतार देते हैं, तब उनके असली चेहरे दिखाई पड़ते हैं। तब तुम बड़े हैरान होओगे कि प्रेम तो कहीं दूर कि ध्वनि भी नहीं मालूम होती। मनुष्य-जाति बड़ी अप्रेम की अवस्था में जी रही है। और अप्रेम की अवस्था मनुष्य में मूढ़ता पैदा करती है। प्रेम प्रतिभा लाता है, प्रखार लाता है, चैतन्य को जगाता है। प्रेम तो परमात्मा का प्रसाद है। लेकिन प्रेम में जो लोग जीते हैं, उनके भीतर धूल जम जाती है, जंग खा जाती है, जीवन बोझ हो जाता है।
इस तरह की अब तक की परंपरा रही है।
और अब तक आदमी ने पृथ्वी को खूब नरक जैसा बना डाला है। भविष्य में हमें किसी और ढंग की व्यवस्था खोजनी होगी। न तो किसी को पत्नी होने की जरूरत है, न पति होने की। प्रेमी होना काफी है। और अगर प्रेम पर्याप्त नहीं है तो कोई और चीज उसको पर्याप्त कर सकती--कानून का सहारा कमी को पूरा नहीं कर सकता।
लोग साथ रह रहे हैं कई कारणों से। पत्नियां इसलिए पतियों के साथ हैं क्योंकि उनको हमने आर्थिक रूप से बिल्कुल ही पंगु कर दिया है। न शिक्षित होने दिया सदियों से, न इतनी हिम्मत दी और साहस दिया कि वह समाज में खड़ी हो सकें। पति ने डर के कारण कि कहीं पत्नी किसी और के प्रेम में न पड़ जाए, उसे घर में छिपा कर रखा है। उसे परदों की ओट में छिपा कर रखा है। उसे समाज से विदा ही कर दिया है। उसको घर के आंगन में बंद कर दिया है, कारागृह दे दिया है--घर क्या है, कारागृह है! हां, कभी-कभी उसको लेकर पति निकलता है। वह केवल सजावटी निकलना है। कहीं किसी के यहां शादी हो रही है तो चला जाता है, पत्नी भी गहने इत्यादि पहन कर प्रदर्शनी बन कर पहुंच जाती है। प्रदर्शनी भी पति की ही है वह। क्योंकि वे जो गहने इत्यादि हैं, उससे पता चलता है कि पति कितना धन कमा रहा है, कितना धनी है। पत्नी तो केवल एक माध्यम है पति के धन की प्रदर्शनी का। हां, कभी-कभी सिनेमागृह में और कभी-कभी मंदिर में--मगर ये सब प्रदर्शनी-स्थल हैं। जहां पत्नी को अपनी साड़ियां दिखलानी हैं और अपने गहने दिखलाने हैं और पति को अपनी पत्नी दिखलानी है, और पत्नी पर चढ़े हुए गहने दिखलाने हैं। मगर अन्यथा समाज से स्त्रियों को हमने बिल्कुल तोड़ दिया। इतना तोड़ दिया कि उनको मजबूरी में पतियों पर निर्भर होकर रहना पड़ता है। वह कल्पना भी नहीं कर सकतीं पति से अलग होने की।
यह जबरदस्ती है। इस जबरदस्ती का नाम प्रेम नहीं है। प्रेम तो तब जब कोई स्वेच्छा के साथ रहे। साथ रहने के आनंद के लिए साथ रहे। हमने हजार कानून बांध दिए हैं। विवाह करते समय हम कोई कानून नहीं अटकाते... दो आदमियों को विवाह करना है, हम एकदम तैयार, बैंडबाजा बजाने लगते हैं। सब बड़े उत्सुक; फूलमालाएं चढ़ाने लगते हैं। अजीब बात है! और अगर किसी को तलाक देना है, तो पुलिस और अदालत और कानून और वकील और इतना लंबा सिलसिला है कि आदमी तीन-चार साल उपद्रव, अदालतों के धक्के खाने के बजाय यह सोचता है कि अब पत्नी ही के धक्के खाते रहना बेहतर है, कि पति के ही धक्के खाते रहना बेहतर है। सार क्या है इतने उपद्रव में पड़ने से? और तलाक के बाद पूरे समाज में प्रतिष्ठा गिरती है, सो अलग। कि समझा जाता है कि तुम मनुष्यता से नीचे गिर गए। तलाक! इतना अपमान कौन सहे? झेल लो, जिंदगी कोई बहुत लंबी थोड़े ही है, पचास साल तो गुजर ही गए, बीस-पच्चीस साल और जीना है तो किसी तरह गुजार लेंगे--जब पचास गुजार दिए तो पच्चीस भी गुजार देंगे।

मैंने सुना है, एक आदमी अपनी पच्चीसवीं सालगिरह मना रहा था विवाह की। पच्चीस साल हो गए थे विवाह हुए। सारे मित्र इकट्ठे, सभी लोग हैरान हुए कि वह आदमी कहां गया? तो उसका एक बहुत निकट का मित्र बाहर आया खोजने, बगीचे में उसे बैठे देखा--बड़ा उदास बैठा था! मित्र ने कहा, उदास और तुम और आज के दिन? शुभ घड़ी, पच्चीस वर्ष विवाह के पूरे हुए, हम सब तो तुम्हारे स्वागत में उत्सुक हुए हैं भेंटें लेकर और तुम यहां बैठे हो? उसने कहा कि आज मैं जितना दुखी हूं, उतना संसार में कोई आदमी दुखी नहीं। मित्र ने कहा, मैं समझा नहीं। तो उसने कहा कि सुनो, तुम्हीं कारण हो मेरे दुख के। मित्र और हैरान हुआ! उसने कहा, हद कर रहे हो, मैंने क्या बुराई की तुम्हारी? तो उस पति ने कहा कि आज से पच्चीस साल पहले जब मेरा विवाह हुआ था, विवाह के पंद्रह दिन बाद ही मैं तुम्हारे पास गया था, तुम वकील हो, तुमसे मैंने पूछा थाः अगर मैं अपनी पत्नी को मार डालूं तो मेरा क्या होगा? क्योंकि पंद्रह दिन में ही उसने मुझे इस तरह सताया था कि मैं उसे मारने को उतारू हो गया था। तो तुमने मुझे इतना डरवाया, तुमने कहा कि अगर मारोगे तुम उसे, तो पच्चीस साल कम से कम सजा होगी। आज मैं उदास हूं, कि काश, मैंने तुम्हारी बात न मानी होती, तो आज में जेल से मुक्त हो गया होता! आज स्वतंत्रता की सांस लेता! आज यह चांद, यह खुली रात, यह तारे--आज मुझसे ज्यादा प्रसन्न आदमी पृथ्वी पर दूसरा नहीं होता। मगर तुम, तुमने मेरी जिंदगी बरबाद की! लोग जेल से डर रहे हैं, अदालत से डर रहे हैं, कानून से डर रहे हैं, पुलिस वाले से डर रहे हैं, समाज से डर रहे हैं। फिर बच्चे पैदा हो जाते हैं। फिर बच्चों की फिक्र। फिर बच्चों का मोह। फिर इनका क्या होगा? इस तरह लोग भय के कारण बंधे हैं। सौ मैं निन्यानबे पति-पत्नी भय के कारण बंधे हैं। और जहां भय है वहां आनंद कहां? और जहां भय है वहां प्रतिभा का जन्म कैसे होगा?
भय प्रेम से विपरीत अवस्था है। और जिससे हम भयभीत होते हैं, उससे हम घृणा करते हैं। और जिससे हम भयभीत होते हैं, उसको हम दिखाते कुछ और हैं, उसके संबंध में सोचते कुछ और हैं।
अब तक आदमी ने जो जीवन व्यवस्था बनाई है, वह मौलिक रूप से गलत है। भय
पर खड़ी है। हमारा धर्म भी भय पर खड़ा है, हमारा भगवान भी भय पर खड़ा है, हमारे मंदिर-मस्जिद भी भय पर खड़े हैं, हमारे राष्ट्र, हमारे राज्य भी भय पर खड़े हैं, हमारे परिवार, पति-पत्नी, हमारे नाते-रिश्ते भी भय पर खड़े हैं--हमने भय का एक संसार बसाया है। और अगर हम इस भय में नर्क की तरह सड़ रहे हैं, तो कुछ आश्चर्य नहीं है।
दुनिया बदलनी है। एक प्रेम का संसार बनाना है। जिस पर कोई भय आरोपित न किया जाए। प्रेम से ही सच्चा परमात्मा मिलता है। प्रेम से ही दो व्यक्तियों के बीच वह अपूर्व घटना घटती है कि प्रेम धीरे-धीरे प्रार्थना बन जाता है और परमात्मा का द्वार बन जाता है। प्रेम हो तो दुनिया में न हिंदू-मुसलमान-न ईसाई के झगड़े, न उनकी जरूरत। न मंदिर-मस्जिद-गिरजे के झगड़े, न उनकी जरूरत। प्रेम हो तो, न भारत, न पाकिस्तान, न चीन, न जापान देशों की कोई जरूरत। यह सारी पृथ्वी एक हो। और प्रेम हो, लोग लोग जरूर साथ रहेंगे। जरूर लोग जोड़ों में रहेंगे। पुरुष स्त्रियों को प्रेम करेंगे, स्त्रियां पुरुषों को प्रेम करेंगी, लेकिन प्रेम के कारण साथ रहेंगे। और तब गुणवत्ता और होगी। तब अहोभाव होगा और परमात्मा के प्रति एक कृतज्ञता होगी!

आखिरी प्रश्नः भगवान, मैं एक टूटा-फूटा आदमी हूं, क्या मेरे लिए भी कोई आशा है? क्या मैं भी कभी प्रकाश, प्रेम और परमात्मा को प्राप्त कर सकूंगा?

विजयानंद! ऐसा स्मरण आ जाए कि मैं एक टूटा-फूटा आदमी हूं, तो यात्रा शुरू हो गई। अज्ञान का बोध हो, तो ज्ञान का पहला चरण उठ गया। दुख की प्रतीति होने लगे, तो दुख को छोड़ना आसान--कठिन नहीं।
इस नदी की धार में ठंडी हवा आती तो है,

नाव जर्जर ही सही, लहरों से टकराती तो है।

एक चिनगारी कहीं से ढूंढ लाओ दोस्तो,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है।

एक खंडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी, आदमी की पीर गूंगी ही सही, गाती तो है।

एक चादर सांझ ने सारे नगर पर डाल दी,
यह अंधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है।

निर्वसन मैदान में लेटी हुई है जो नदी,
पत्थरों से, ओट में, जाके बतियाती तो है।

दुख नहीं कोई कि अब उपलब्धिं के नाम पर,
और कुछ हो या न हो, आकाश-सी छाती तो है।
घबड़ाओ मत। अगर यह स्मरण आना शुरू हो गया कि मैं एक टूटा-फूटा आदमी हूं,
एक जीर्ण-जर्जर नाव हूं, तो घबड़ाओ मत, जीर्ण-जर्जर नाव भी उस पर जा सकती है, सिर्फ इस किनारे को छोड़ने की हिम्मत चाहिए, छाती चाहिए। पूछते हो, क्या मेरे लिए कोई आशा है? विजयानंद, पूरी आशा है।
एक चिनगारी कहीं से ढूंढ लाओ दोस्ता,
इस दिए में तेल से भीगी हुई बाती तो है।
सब कुछ है। जरा-सी चिनगारी चाहिए। वह चिनगारी मैं देने को राजी हूं।
उस चिनगारी के कारण ही तो यह अग्निवेश संन्यासी के लिए चुना है। उस चिनगारी की प्रतीक की तरह ही। यहां एक आग जल रही है--प्रेम की अग्नि--इस अग्नि के पास अपने दीए को ले आओ, तुम भी जल उठोगे।
एक खंडहर के हृदय-सी, एक जंगली फूल-सी,
आदमी की पीर गूंगी ही सही, गाती तो है।

एक चादर सांझ ने सारे नगर पर डाल दी
यह अंधेरे की सड़क उस भोर तक जाती तो है।
घबड़ाओ न, उदास नहीं, हताश नहीं होओ, कितनी ही अंधेरी रात हो, सुबह तक रास्ता जाता है। अंधेरी रात का रास्ता सुबह तक जाता ही है। और रात जितनी अंधेरी हो जाती है, सुबह उतना करीब है। रात सुबह की दुश्मन नहीं है। रात के गर्भ में ही सुबह का बालक पलता है, पोषित होता है।
आशा रखो। आशा को प्रज्वलित रखो। आश्वासन रखो। ऐसा कोई भी मनुष्य नहीं
है पृथ्वी पर जो परमात्मा को न पा सके। ऐसा कोई पाप नहीं है, जो तुम्हें परमात्मा से सदा के लिए रोक ले। ऐसी कोई दुर्बलता, निर्बलता नहीं है, जो परमात्मा के और तुम्हारे मार्ग में सदा के लिए बाधा बन जाए। तुम्हारे भीतर परमात्मा छिपा है, अपनी प्रगाढ़ ऊर्जा के लिए। खोजोगे, मिलन सुनिश्चित है। बस खोज चाहिए।
मान कर मत बैठो। खोज पर निकलो। विश्वास मत करो, अन्वेषण करो। सत्य के शोधक बनो। जरूर सुबह तक पहुंच जाओगे। सुबह तक पहुंचना सुनिश्चित है।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
सातवां प्रवचन

जीवित सदगुरु की तरंग में डूबो

बनियां बानि न छोड़ै, पसंघा मारै जाय।।
पसंधा मारै जाय, पूर को मरम न जानी।
निसिदिन तौलै घाटि खोय यह परी पुरानी।।
केतिक कहा पुकारि, कहा नहिं करै अनारी।
लालच से भा पतित, सहै नाना दुख भारी।।
यह मन भा निरलज्ज, लाज नहिं करै अपानी।
जिन हरि पैदा किया ताहि का मरम न जानी।।
चौरासी फिरि आयकै पलटू जूती खाय।
बनियां बानि न छोड़ै, पसंघा मारै जाए।।

सातपुरी हम देखिया, देखे चारो धाम।।
देखे चारो धाम, सबन मां पाथर पानी।
करमन के बसि पड़े, मुक्ति की राह झुलानी।।
चलत चलत पग थके छीन भई अपनी काया।
काम क्रोध नहिं मिटे, बैठकर बहुत नहाया।।
ऊपर डाला धोय, मैल दिल बीच समाना।
पाथर में गयो भूल, संत का मरम न जाना।।
पलटू नाहक पचि मुए, संतन में है नाम।
सातपुरी हम देखिया, देखे चारो धाम।।

निंदक जीवै जुगन-जुग, काम हमारा होय।।
काम हमारा होय, बिना कौड़ी को चाकर।
कमर बांधिके फिरै, करै तिहुं लोक उजागर।।
उसे हमारी सोच, पलकभर नाहिं बिसारी।
लगी रहै दिनरात, प्रेम से देता गारी।।
संत कहैं दृढ़ करै जगत का भरम छुड़ावै।
निंदक गुरु हमार, नाम से वही मिलावै।।
सुनिके निंदक मरि गया, पलटू दिया है रोय।
निंदक जीवै जुगन-जुग, काम हमारा होय।।

उसकी हसरत है, जिसे दिल से मिटा भी न सकूं ढूंढने उसको चला हूं, जिसे पा भी न सकूं।

उनके गुस्से के मिटाने की हैं सौ तदबीरें लाग की आग नहीं है कि बुझा भी न सकूं।

चुटकियां लेने से दिल में वो करें क्यों इनकार दाग कुछ दर्द नहीं है कि दिखा भी न सकूं।

मैं अगर घर से निकलता हूं तो घर क्यों है उदास क्या दमे-बाजे-पसीं है कि फिर आ भी न सकूं।

कोई पूछे तो मुहब्बत से, ये क्या है इन्साफ वो मुझे दिल से भुला दे, मैं भुला भी न सकूं।

नक्शे-हस्ती मैं अभी मह्व किए देता हूं खते-तकदीर नहीं है कि मिटा भी न सकूं।

उसकी हसरत है, जिसे दिल से मिटा भी न सकूं

ढूंढने उसको चला हूं, जिसे पा भी न सकूं।
परमात्मा की खोज अनूठी खोज है। परमात्मा जब तक नहीं मिला, तब तक खोजी है, खोज है। परमात्मा मिला कि खोजी भी मिटा, खोज भी मिटी। वस्तुतः खोजी मिटे, खोज मिटे, तो परमात्मा मिले। जब तक मैं का भाव शेष है, तब तक उससे कोई संबंध नहीं हो पाता।
इसलिए खोज अनूठी है, बेबूझ है, अतर्क्य है।
अपने को मिटाए बिना मिलना नहीं हो सकता। बुद्धि स्वभावतः पूछेगी कि
जब हम ही न रहे, तो मिलने से भी क्या होगा? जब हम ही न रहे, तो मिलेगा कौन? जब हम ही न रहे, तो साक्षात्कार कौन करेगा? दर्पण ही टूट गया, तो प्रतिछबि, किसकी बनेगी? इसीलिए बात अतर्क्य है, तर्क भी सीमा के पार है।
तर्क तो यही कहेगा, मिलन तभी हो सकता है जब दो हों। दो तो चाहिए ही चाहिए मिलने को। दुई के बिना मिलन कैसे? और जिन्होंने जाना है, वे कहते हैं, मिलन तो तभी होता है जब एक ही बचता है। क्योंकि एक में ही मिलन है। जब दो खो जाते हैं और एक ही रह जाता है तब मिलन का स्वाद है। स्वाद लेने वाला नहीं बचता, स्वाद ही बचता है।
उसकी हसरत है, जिसे दिल से मिटा भी न सकूं।
ढूंढने उसको चला हूं, जिसे पा भी न सकूं।
परमात्मा को पाया नहीं जा सकता। पाने की भाषा ही अहंकार भी भाषा है।
पाने का अर्थ है, मैं रहूं और मेरा परिग्रह बढ़े। धन भी हो मेरे पास, पद भी हो मेरे पास, समाधि भी मेरे पास, स्वर्ग भी मेरे पास, परमात्मा भी मेरे पास। मेरी तिजोड़ी में सब बंद हो जाए। मेरी मुट्ठी में सब हो। परमात्मा भी छूट न जाए। वह भी मेरी मुट्ठी में होना चाहिए। वह भी मैं विजय करूंगा। अहंकार विजय की यात्रा पर निकलता है। लेकिन परमात्मा को पाने का ढंग अपने को मिटाना है। अपने को बिल्कुल नेस्तनाबूद कर देना है। शून्यवत हो जाना है।
इसलिए परमात्मा को पाने की बात ही संभव नहीं है। हम मिटें तो परमात्मा फलित होता है। परमात्मा हमें पा लेता है--ऐसा कहना उचित है। हम कैसे परमात्मा को पाएंगे? हम तो बाधा न दें, इतना ही काफी है। हम तो बीच में न आएं, इतना ही बहुत है। हम दीवार न बनें तो धन्यभागी हैं। परमात्मा हमें पा ले और हम रुकावट न डालें। परमात्मा का हाथ हमें पाने आए तो हम भागें न, बचें न, छिपें न। बस इतना ही साधक को करना है--छिपे न, बचे न; खोल दे अपने को, उघाड़ दे अपने को; हो जाए नग्न, निर्वस्त्र। कोई छिपाव नहीं, कोई दुराब नहीं। खोल दे अपने हृदय को पूरा-पूरा। कहीं कोई रत्ती-भर भी बचाव रह गया तो मिलन में बाधा रह जाएगी।
उसकी हसरत है, जिसे दिल से मिटा भी न सकूं।
ढूंढने उसको चला हूं, जिसे पा भी न सकूं।
परमात्मा को पाया नहीं जा सकता। पाने की भाषा ही अहंकार की भाषा है।
पाने का अर्थ है, मैं रहूं और मेरा परिग्रह बढ़े। धन भी हो मेरे पास, पद भी हो मेरे पास, समाधि भी मेरे पास, स्वर्ग भी मेरे पास, परमात्मा भी मेरे पास। मेरी तिजोड़ी में सब बंद हो जाए। मेरी मुट्ठी में सब हो। परमात्मा भी छूट न जाए। वह भी मेरी मुट्ठी में होना चाहिए। वह भी मैं विजय करूंगा। अहंकार विजय की यात्रा पर निकलता है। लेकिन परमात्मा को पाने का ढंग अपने को मिटाना है। अपने को बिल्कुल नेस्तनाबूद कर देना है। शून्यवत हो जाना है।
इसलिए परमात्मा को पाने की बात ही संभव नहीं है। हम मिटें तो परमात्मा फलित होता है। परमात्मा हमें पा लेता है--ऐसा कहना उचित है। हम कैसे परमात्मा को पाएंगे? हम तो बाधा न दें, इतना ही काफी है। हम तो बीच में न आएं, इतना ही बहुत है। हम दीवार न बनें तो धन्यभागी हैं। परमात्मा हमें पा ले और हम रुकावट न डालें। परमात्मा का हाथ हमें पाने आए तो हम भागें न, बचें न, छिपें न। बस इतना ही साधक को करना है--छिपे न, बचे न; खोल दे अपने को, उघाड़ दे अपने को; हो जाए नग्न, निर्वस्त्र। कोई छिपाव नहीं, कोई दुराब नहीं। खोल दे अपने हृदय को पूरा-पूरा। कहीं कोई रत्ती-भर भी बचाव रह गया तो मिलन में बाधा रह जाएगी।

उसकी हसरत है, जिसे दिल से मिटा भी न सकूं
ढूंढने उसको चला हूं, जिसे पा भी न सकूं।
नक्शे-हस्ती मैं अभी मह्व किए देता हूं...
तैयार हूं मिटाने को अपने को। ये अस्तित्व के सारे चिह्न पोंछ डालने
को तैयार हूं।
नक्शे-हस्ती मैं अभी मह्व किए देता हूं
खते-तकदीर नहीं है कि मिटा भी न सकूं।
यह कोई भाग्य की रेखा नहीं है कि जिसे मिटा न सकूं। यह मेरा अहंकार तो मेरी ही बनावट है, यह तो मेरे ही हाथ का खिलौना है, जब चाहूं तब तोड़ दूं। यह मेरा होना कोई वास्तविक होना नहीं है; एक झूठ है, सरासर झूठ है; एक भ्रम है; एक मान्यता है। इसे तोड़ देने में जरा भी अड़चन नहीं है। अगर नहीं तोड़ पाते हम। अड़चन जरा भी नहीं है, और अड़चन बड़ी है। टूट तो सकता है अभी, मगर टूटता नहीं जन्मों-जन्मों। क्या होगा कारण?
पलटू कारण कहते हैंः
बनिया बानि न छोड़ै, पसंघा मारै जाय।।
पसंघा मारै जाय, पूर को मरम न जानी।
पुरानी आदत। सदियों-सदियों, जन्मों-जन्मों की आदत। इसके अतिरिक्त और कोई बाधा नहीं है। हम इस झूठ को इतने दिन तक जिए हैं कि झूठ सच हो गया है। सच को बहुत दिनों तक न जीया जाए तो झूठ हो जाता है। हम से उसके संबंध टूट जाते हैं। हमारे प्राणों में उनकी जड़ें नहीं रह जातीं। और झूठ बहुत दिन तक जीया जाए तो सच-जैसा मालूम होने लगता है। सच तो नहीं हो सकता, लेकिन सच-जैसा मालूम होना ही हमारे लिए सच होना हो जाता है।
एडोल्फ हिटलर ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि राजनीति-शास्त्र का मूल आधार है--झूठों को दोहराते रहो, दोहराते रहो, दोहराते रहो, धीरे-धीरे लोग मान लेते हैं। इतनी बार दोहराओ कि लोग भूल ही जाएं कि यह झूठ है। यही तो विज्ञापन-शास्त्र का भी मूल आधार है--दोहराए जाओ। पहले लोग ध्यान नहीं देते, फिर धीरे-धीरे ध्यान देते हैं, फिर बिना ध्यान दिए भी ध्यान उनका लगा जाता है। दोहराए जाओ सब तरफ से, चारों तरफ से; हर तरफ से गुंजार उठाए जाओ। लोग धीरे-धीरे सम्मोहित हो जाते हैं।
झूठ की पुनरुक्ति सम्मोहित कर देती है।
और जैसे ही व्यक्ति सम्मोहित हुआ कि फिर झूठ उसके लिए तो सच ही जैसा है। और उसके लिए तो झूठ भी सच ही जैसा काम करेगा। वह तो उसके जीवन का यथार्थ हो गया। वह उसके लिए जीएगा और मरेगा।
आदत अहंकार को बल दे रही है। बचपन से ही हमें अहंकार सिखाया जाता है। हमारी सारी शिक्षा अहंकार के इर्द-गिर्द घूमती है। हमारा नीतिशास्त्र अहंकार को परिपुष्ट करता है। और यह एक जन्म की बात नहीं, जन्मों-जन्मों की बात है, हर जन्म में यही किया गया है। इसलिए अहंकार जो कि नहीं है, सब कुछ होकर बैठ गया है। जो कि नौकर भी नहीं है, वह मालिक होकर बैठ गया है। और आत्मा जो कि मालिक है, उसकी हमें कोई खबर ही न रही।
उदाहरण के लिए पलटू कहते हैं, जैसे बनिए को आदत हो जाए दांड़ी मारने की। बनिया बानि न छोड़ै, पसंघा मारै जाय।। अब वह कोई सोच-विचार कर दांड़ी नहीं मारता, सोच-विचार कर कम नहीं तौलना, कम तौलना उसकी आदत हो गई।
मैंने सुनी है एक कहानी।
संत एकनाथ तीर्थयात्रा को जाते थे। कोई सौ-डेढ़ सौ आदमियों की मंडली
भी संत के साथ तीर्थयात्रा को जाती थी। सारा गांव ही तीर्थयात्रा को जा रहा था। एक तो एकनाथ का संग-साथ और फिर तीर्थ। सोने में सुगंध। सत्संग भी होगा, तीर्थयात्रा भी हो जाएगी। गांव का एक चोर भी एकनाथ के पीछे पड़ा कि मुझे भी ले चलो। चोर जाहिर चोर था। एकनाथ ने कहा कि भाई मेरे, मुझे तो कोई अड़चन नहीं, लेकिन तू झंझट करेगा। चोरी तेरी आदत है, चोरी तेरी जीवन की शैली है, तेरी पद्धति है; तू तीर्थयात्री-दल में चुराएगा और रोज झंझट खड़ी होगी। मना तुझे मैं करना नहीं चाहता; क्योंकि मैं कौन हूं मना करूं तुझे तीर्थयात्रा जाने से! और तेरे मन में यह सदभाव उठा, अच्छा! सौभाग्य की बात है यह किरण तेरे मन में उतरी। शायद यही तेरा रूपांतरण बन जाए। लेकिन एक

वचन, एक आश्वासन देना होगा। कि तीर्थयात्रा जब तक चलेगी, शुरू से लेकर आखिर तक, जब तक हम गांव वापस न आ जाएं, तब तक यह आदत स्थगित रखना। यह चोरी भूल ही जाना। चोर ने पैर पकड़ लिए और कहा कि कसम खाता हूं कि चोरी नहीं करूंगा।
लेकिन चोर आखिर चोर! रात हो तो उसे बड़ी बेचैनी हो। उसके हाथ तड़फने लगें। रात उसे नींद न आए। करवटें बदले। आखिर उसने तरकीब निकाल ली। एक यात्री के बिस्तर में से चीजें निकालकर दूसरे यात्री के बिस्तर में रख दे। चोरी भी नहीं हुई... खुद तो लिया नहीं इसलिए चोरी तो कोई कह नहीं सकता... लेकिन उससे पुरानी आदत को राहत मिले। जैसे खाज को खुजलाने से सुख मिलता लगता है। मिलता तो नहीं, मिलता तो दुख ही है। मगर दस-पांच लोगों का सामान गड्डमड्ड कर दे, तो फिर वह चैन से सोए! यात्री बड़े हैरान, किसी का लोटा नदारद, किसी की बाल्टी खो गई, किसी की रस्सी ही खो गई। मिल तो जाएं--लेकिन कभी किसी के बिस्तर में, कभी किसी के बंडल में, कभी कहीं छिपी... । यहां तक कि एकनाथ के बिस्तर तक में लोगों की चीजें निकलने लगीं। अब यह तो कोई भरोसा ही न करे कि एकनाथ और चुराएंगे! बड़ी बेचैनी रही--और रोज यह हो! यह कोई एक दिन की बात नहीं, रोज सुबह उठकर लोगों को अपनी चीजें खोजनी पड़ें। यह कौन कर रहा है?
आखिर एकनाथ ने विचार किया। एक रात जग कर बैठे रहे कि देखें कौन करता है। वही चोर... उठा, उसने इसका सामान उसके बिस्तर में किया; इसका कंबल उसके बिस्तर में डाल दिया; उसका तकिया खींच कर इसके बिस्तर में कर दिया; एकनाथ ने उसे रंगे-हाथों पकड़ लिया और कहा कि देख, तूने आश्वासन दिया था! उसने कहा, महाराज, चोरी नहीं करूंगा, इसका आश्वासन दिया था, लेकिन अभ्यास नहीं करूंगा, इसका आश्वासन नहीं दिया था। आपने भी कहा है कि तीर्थयात्रा के बाद क्या करूंगा? मारा जाऊंगा, भूखा मारा जाऊंगा। यही तो मेरी कला है। चोरी मैं नहीं कर रहा हूं, एक पैसे की किसी की चीज मैंने नहीं ली है, अपने नियम पर आबद्ध हूं, जो व्रत ले लिया ले लिया; जो संकल्प कर लिया कर लिया; मगर अभ्यास नहीं करूंगा, ऐसा न मैंने आपसे कहा था, न आप अपेक्षा रखना। थोड़ी- बहुत तकलीफ लोगों को होती है--वह मुझे भी मालूम है--मगर यह मेरी जीवनचर्या है! आखिर उनकी तकलीफ देखूं कि अपनी तकलीफ देखूं? रात भर सो नहीं पाऊं--दिन भर यात्रा करनी है और रात नींद नहीं और दिन भर चलना, मैं मर ही जाऊंगा, घर लौट ही न पाऊंगा! हत्या तुम्हारे सिर लगेगी! एकनाथ को भी बात ता जंची। बात तो ठीक थी।
चोर आखिर चोर है। आदत आसानी से नहीं छूट सकती। आदतें नए-नए रास्ते निकाल लेती हैं, अपनी अभिव्यक्ति के नए-नए मार्ग खोज लेती हैं।
बनिया बानि न छोड़ै, पसंघा मारै जाय।।
पसंघा मारै जाय, पूर को मरम न जानी।
बड़ा प्यारा वचन है। सीधे-सादे वचन पलटू के, पर बड़े अमृत भरे हैं, बड़े
रस भरे हैं। सत्य की उनमें बड़ी झलक है। कहते हैं कि आधा-पूरा तौल रहा है, इसे पूरे का मजा आया ही नहीं। बड़ी सांकेतिक बात कह दी--पूर को मरम न जानी। इसे सच्चे होने का राज ही पता नहीं है। इसे स्वच्छ होने का, सीधा, साफ-सुथरा होने का सौंदर्य ही पता नहीं है। और यह जो कमी किए जा रहा है, जो कम तौले जा रहा है, यह सिर्फ तौलने की ही बात नहीं है--ध्यान रहे--यह आदत अगर गहरी हो गई तो यह पूरे को, परमात्मा को कभी पा ही न सकेगा। यह कम की ही आदत बनी रही, तो पूरे को कैसे पाएगा? अपूर्ण से ग्रस्त हो जाएगा, तो पूर्ण को न पा सकेगा।
उपनिषद कहते हैंः उस पूर्ण से पूर्ण को भी निकाल लें तो भी पीछे पूर्ण
ही शेष रह जाता है। उस पूर्ण में हम पूर्ण को जोड़ दें, तो भी पूर्ण पूर्ण ही रहता है। उस पूरे को कब जानोगे? आदत तुमने बांधी है अपूर्ण की।
यह वचन तो सीधा-साफ है, लेकिन इसका दर्शन गहरा है। इसमें थोड़ी डुबकी मारो।
हम सब ने अधूरे की आदत बांध ली है। कोई कहता है, मैं शरीर हूं; कोई कहता है, मैं बुद्धि हूं; कोई कहता है, मैं मेरा धन हूं, मैं मेरा पद हूं, मैं मेरा मकान हूं... किसी का दीवाला निकल जाता है तो वह आत्महत्या कर लेता है,

क्योंकि वह कहता है, अब बचा ही क्या? अब जी कर क्या करेंगे! जैसे धन ही जीवन था। किसी की पत्नी मर गई, किसी का पति मर गया, आत्महत्या! जैसे धन ही जीवन थी, जैसे पति ही जीवन था। जैसे जीवन सीमाओं में समाप्त हो जाता है। इतने छोटे बटखरों से जीवन को तौलोगे? और ये बटखरे भी पूरे नहीं; बनिए के बटखरे हैं। ये बटखरे भी सच्चे नहीं। यह जो अपूर्ण की आदत बनी है, अपूर्ण के साथ तादात्म्य कर लेने की, क्षुद्र के साथ अपने को जोड़ लेने की, क्षुद्र में आबद्ध हो जाने की, क्षुद्र से आच्छन्न हो जाने की, आच्छादित हो जाने की, इसके कारण ही हम पूर्ण को नहीं जान पाते। पूर्ण हमारा अधिकार है। हम पूर्ण हैं। तत्वमसि। तुम भी वही हो। जो बुद्ध हैं, जो महावीर हैं, जो कृष्ण हैं। तत्वमसि। तुम भी वही हो, जो क्राइस्ट हैं, जो जरथुस्त्र हैं, जो मुहम्मद हैं। तुम भी वही हो, जो इस सारे विराट में छाया है, जो फूलों में खिला है, चांद-तारों में मुस्कुराया है।
तुम वही हो। मगर उस तरफ आंख कैसे उठे? तुमने तो बहुत छोटा सा आंगन बना लिया है। आकाश को भूल गए, आंगन पर ही आंख टिका दी। आंगन में ही रह गए हो अटक कर। इतने छोटे आंगन में दुख न होगा तो क्या होगा, नर्क न होगा तो क्या होगा? इस छोटे आंगन में सांसें घुट रही हैं, प्राण फैल नहीं पाते, पंख खुल नहीं पाते। पिंजड़े बड़े छोटे हैं। पिंजड़ों के बाहर होने की कला ही धर्म है। लेकिन आदतें पिंजड़ों की हैं। बंद रहने की आदत हो गई है। छोटे होने में हमारा अभ्यास इतना गहन हो गया है कि विराट होने में हम डरते हैं। अगर कोई तुमसे कहे कि तुम परमात्मा हो, तो तुम मानने को राजी नहीं होते। यही कहते रहे जाग्रतपुरुष कि तुम परमात्मा हो, मगर तुम मानने को राजी नहीं होते। तुम यह तो मानते ही नहीं कि तुम परमात्मा हो, तुम यह भी मानने को राजी नहीं होते कि बुद्ध परमात्मा हैं, कि कृष्ण परमात्मा हैं। तुम इतना बचना चाहते हो विराट से कि तुम बुद्धों को भी परमात्मा स्वीकार नहीं कर सकते। क्योंकि उनको स्वीकार करो तो फिर आज नहीं कल तुम्हें यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि तुम भी वही हो। क्योंकि ऐसे ही हड्डी-मांस-मज्जा से तो वे भी बने हैं। ऐसे ही तो जैसे तुम--बीमार भी होते हैं, बूढ़े भी होते हैं, मरते भी हैं। तुम में और उनमें शरीर की तरह से कोई भेद नहीं है। अगर भेद है तो सिर्फ बोध का है। उन्हें पता है कि वे कौन हैं और तुम्हें पता नहीं कि तुम कौन हो। वे जागे हैं और तुम सोए हो। और सोना सिर्फ तुम्हारी आदत हो गई है। सोने के भी थोड़े सुख हैं। चिंता नहीं, फिकर नहीं। लेकिन सोने के दुख
भी बहुत बड़े हैं। क्योंकि सोने के साथ ही जुड़े हैं सारे दुखस्वप्न। और सोने का सबसे बड़ा दुख यह है कि जागने का जो आनंद-उत्सव है, उससे तुम वंचित रह जाओगे। वे जो कमल खिलते हैं जागृति में, वह जो चैतन्य का नृत्य होता है जागृति में, उसकी बूंद भी तुम्हारे कंठ न उतरेगी। तुम सोए ही पड़े रह जाओगे, जीवन नाचता हुआ पास से गुजर जाएगा। जीवन गीत गाता हुआ पास से गुजर जाएगा और तुम सोए ही पड़े रह जाओगे। तुम्हें पता ही न चलेगा कि कैसा अपूर्व अवसर था और गंवा दिया। बाधा एक है--आदत। आदत मनुष्य को यंत्रवत बना देती है। विलियम जेम्स ने उल्लेख किया है कि वह एक हॉटल में बैठा एक मित्र के साथ गपशप कर रहा था। रास्ते से गुजरता था एक मिलिटरी का रिटायर्ड कप्तान। सिर पर रख ली थी उस कप्तान ने एक टोकरी, जिसमें अंडे भरे थे। विलियम जेम्स बड़ा मनोवैज्ञानिक था अमरीका का, अपने मित्र से बात कर रहा था, संयोगवशात आदत के संबंध की बात चल रही थी। उसने कहा कि देखो, मैं तुम्हें उदाहरण देता हूं। बाहर की तरफ देखा और जोर से आवाज दी--अटेंशन! वह जो आदमी, कोई बीस साल पहले रिटायर हो चुका था, उसने एकदम टोकरी छोड़ दी और अटेंशन खड़ा हो गया! सारे अंडे फूट गए और रास्ते पर बिखर गए। बड़ा नाराज हुआ! मरने-मारने को उतारू हो गया! विलियम जेम्स से कहा, यह भी कोई मजाक है! मुझ गरीब आदमी के साथ! किसी तरह अपना पालन-पोषण कर रहा हूं। विलियम जेम्स ने कहाः लेकिन मैंने तुमसे कुछ कहा नहीं, अटेंशन शब्द का उपयोग करने का तो मुझे हक है। तुम न सुनते, तुम न मानते। उस आदमी ने कहा, यह मेरे बस का है क्या? जब अटेंशन कहा जाता है तो अटेंशन यानी अटेंशन। यह मैंने कोई जानकर किया? जान कर मैं करता! यह तो अब अचेतन आदत का हिस्सा हो गया है।

सैनिक को तैयार किया जाता है यंत्र की भांति। इसलिए सैनिक मनुष्यता
का सर्वाधिक पतन है। और दुनिया में जब तक सैनिक रहेंगे, तब तक आदमी बहुत ऊंचाइयां नहीं ले सकता। सैनिक को हम खूब सम्मान देते हैं, क्योंकि उसकी आत्मा हम खरीद रहे हैं। सैनिक को हम अच्छी से अच्छी तनख्वाह देते हैं, क्योंकि उसका बड़ा बहुमूल्य जीवन हम नष्ट कर रहे हैं। सैनिक को हम खूब तगमे देते हैं--महावीर चक्र इत्यादि... । उसको बड़ी प्रतिष्ठाएं मिलती हैं। क्यों? क्या कारण है?
कारण है कि वह अपने जीवन की सबसे बहुमूल्य निधि बेच रहा है--सस्ते में,
दो टुकड़ों में। सैनिक का शिक्षण क्या है? सारे शिक्षण का एक ही सार है कि मनुष्य को नष्ट कर दो और आदतें ही आदतें रह जाएं--राइट टर्न, लेफ्ट टर्न, अटेंशन... । अब रोज किसी आदमी को तीन-चार घंटे राइट टर्न, लेफ्ट टर्न; राइट टर्न, लेफ्ट करना पड़े, कब तक सोच-सोच कर करेगा? थक जाएगा सोचना। फिर तो एकदम राइट टर्न सुना कि राइट टर्न हुआ। सुनने में और होने में बीच में विचार नहीं आएगा।
एक महिला ने एक मनोवैज्ञानिक को कहा कि मैं अपने पति से बहुत परेशान हूं। ज्यादा तो नहीं, क्योंकि वे मिलिट्री में हैं और कभी-कभी आते हैं। मगर जब आते हैं, तो जब भी वे बाएं करवट होते हैं, ऐसे घुर्राते हैं कि मेरी तो नींद लगती नहीं, बच्चे नहीं सो सकते, पड़ोसी तक शिकायत करते हैं। उनका घुर्राना क्या है जैसे सिंह की दहाड़! मगर एक बात है कि जब वे बाएं करवट होते हैं तभी घुर्राते हैं। तो कोई तरकीब?
मनोवैज्ञानिक ने कहा, तरकीब आसान है। जब वे बाएं करवट होते हैं तभी घुर्राते हैं न! तो तू कल जब वे रात सोएं और घुर्राने लगें बाएं होकर, तो कान में उनसे कहना--राइट टर्न! पत्नी ने कहा, इससे क्या होगा नींद में? मनोवैज्ञानिक ने कहा कि कहां नींद, कहां होश--सैनिक तो नींद में ही होता है। जागता कहां है? उसको जागने देते नहीं हम। उसको तो अफीम पिलाते हैं। उसको सुलाए रखते हैं। ये सोए हुए आदमी हमें चाहिए। क्योंकि लोगों की हत्याएं करवानी हैं, गोलियां चलवानी है, बम गिरवाने हैं। ये कोई जागे हुए आदमी कर सकेंगे ऐसे काम! इनके लिए तो बिल्कुल मुर्दा चाहिए--मुर्दा और मजबूत! तू कोशिश तो कर!
पत्नी को कुछ जंची तो नहीं बात, मगर कोशिश करने में हर्ज भी क्या था? कोशिश की और चौंकी। कि जैसे ही उसने कहा, राइट टर्न, पति एकदम करवट बदल कर, राइट टर्न हो गए। घुर्राना बंद हो गया।
नींद में भी हमारी आदतें, हमारी अचेतन आदतें काम करती हैं। नींद में
भी हम उनके वशीभूत होते हैं। वे इतनी गहरी चली गई होती हैं कि जागना जरूरी नहीं होता। सैनिक को वर्षों तक हम इसी तरह अचेतन करते हैं। जब वह बिल्कुल अचेतन हो जाता है... इसी को शिक्षण कहते हैं--सैनिक का शिक्षण! परेड, कवायद। करवाते रहते हैं उलटी-सीधी परेड, कवायद, जिसका कोई मूल्य नहीं है। क्या सार है आदमी को--बाएं घूमो, दाएं घूमो... !
एक दार्शनिक एक बार भर्ती हो गया युद्ध में। जैसे ही उसको कहा, बाएं घूमो, सब तो घूम गए, वह खड़ा ही रहा। पूछा उसके कप्तान ने--जाहिर, प्रसिद्ध दार्शनिक था, एकदम कप्तान फौजी भाषा में बोल भी नहीं सकता था; फौजी भाषा तो गाली-गलौज की होती है; अगर कोई और होता तो कप्तान ने जो भी गंदी-से-गंदी गालियां हो सकती थीं, दी होतीं; मगर इससे तो थोड़ा सम्मान से व्यवहार करना पड़ेगा, प्रसिद्ध आदमी है, लोकविख्यात है--कहा, महानुभाव... कहना तो चाहता था, हे उल्लू के पट्ठे! ... लेकिन कहा, महानुभाव, जब मैंने कहा, बाएं घूम, तो आप खड़े क्यों हैं? दार्शनिक ने पूछा, लेकिन बाएं घूमूं क्यों? बाएं घूमने में प्रयोजन? बाएं घूमने से क्या मिलेगा? जो बाएं घूम गए हैं, उनको क्या मिला? और मैंने यह देखा कि जिसको तुमने बाएं घुमाया, फिर उनको दाएं घुमा दियाः वे फिर वैसे ही के वैसे खड़े हैं--जहां मैं खड़ा ही हूं पहले से। मैं वैसे ही का वैसा... इतने उपद्रव में मैं क्यों पडूं? तो पहले सिद्ध करो कि सार क्या है, प्रयोजन क्या है? और फिर यह भी पक्का करो कि फिर दाएं घूम तो नहीं कहोगे। नहीं तो क्या सार, इतना चक्कर मार कर फिर वहीं आ गए! तो पहले ही से वहीं खड़े रहें न!

कप्तान ने कहा कि यह तो आदमी काम का नहीं है। ऐसे सोच-विचार करोगे तो सैनिक होने की क्षमता खो देते हो। विचार का सैनिक होने से कोई नाता नहीं है।
संन्यासी को विचार के ऊपर उठना पड़ता है, सैनिक को विचार से नीचे गिरना पड़ता है। एक संबंध में संन्यासी और सैनिक में समानता होती है--दोनों निर्विचार। संन्यासी निर्विचार होता है विचार का अतिक्रमण करके, विचार का साक्षी बन कर और सैनिक निर्विचार होता है विचार इत्यादि की झंझट छोड़ कर; जड़वत हो जाता है। भेद बड़ा है, लेकिन समानता भी है।
कप्तान ने सोचा कि यह काम इससे नहीं होने का, तो कहा, भई, तुमसे यह काम नहीं होगा। तुम कोई दूसरा काम करो। अब भर्ती हो ही गए हो, तो तुम को हम चौके में लगा देते हैं। वहां कोई दाएं नहीं घूमना, बाएं नहीं घूमना। छोटे-मोटे काम, वह तुम करो। छोटा से छोटा काम दिया--मटर के दाने--कि बड़े दाने एक तरफ करो, छोटे दाने एक तरफ करो। जब दो घंटे बाद कप्तान आया, तो देखा कि दार्शनिक ठुड्डी से हाथ लगाए वैसा ही का वैसा बैठा है जैसा छोड़ गया था। और दाने वैसे ही के वैसे। एक दाना यहां से वहां नहीं हटाया है। उसने, कप्तान ने पूछा कि कोई अड़चन इसमें भी है आपको? उसने कहा, अड़चन है। अब सवाल यह है कि बड़े कर दो एक तरफ, छोटे कर दो एक तरफ, मंझोल भी हैं कुछ, उनको कहां करो? और जब तक सब चीजें बिल्कुल साफ न हो जाएं... मैं बिना विचार के कदम उठाता ही नहीं। तो कप्तान ने कहा, हम आपके हाथ जोड़ते हैं, आप कृपा करके घर जाएं और घर ही विचार करें। यह स्थान आपके लिए नहीं है।
सैनिक को हम आदत में ढालते हैं। धीरे-धीरे वह यंत्रवत हो जाता है। तभी
तो यह संभव होता कि हिरोशिमा पर एटम बम गिर देता है। नहीं तो सोचेगा नहीं आदमीः एक लाख आदमी मेरे बम गिराने से मर जाएंगे! इससे तो बेहतर है कि मैं कह दूं कि मुझे गाली मार दो। ये एक लाख आदमियों में छोटे-छोटे बच्चे होंगे, गर्भिणी स्त्रियां होंगी, अभी-अभी विवाहित युवक होंगे, अभी-अभी विवाहित युवतियां होंगी, अभी हनीमून पर जाने के लिए तैयार जोड़े होंगे, वृद्ध होंगे, वृद्धाएं होंगी, बीमार होंगे, रुग्ण होंगे--यह हीर-भरी बस्ती, एक लाख लोग, ये मिट्टी में मिल जाएंगे, एक पांच सेकेंड लगेंगे और राख हो जाएंगे! मैं इन्हें राख करूं?
लेकिन सवाल ही नहीं उठता उसे यह। वह सिर्फ अपनी आज्ञा का पालन करता है। उसे कहा गया है जो, वही करता है। वह उत्तरदायित्व के संबंध में सोचता ही नहीं। उत्तरदायित्व शब्द उसके भीतर होता ही नहीं कि मेरा कोई मानवीय दायित्व भी है; कि मेरे भीतर भी कोई नैतिक अंतस्चेतन होना चाहिए; कि मेरा भी कोई अंतःकरण है। अंतःकरण को तो हम मिटा डालते हैं।
वह एटम बम गिरा कर सैनिक रात मजे से सोया। सुबह जब पत्रकारों ने उससे पूछा कि रात सो सके--क्योंकि कौन ऐसा आदमी होगा जो एक लाख आदमियों को मारकर और रात सो सके! --उसने कहा, मैं बड़ी निश्चिंतता से सोया। क्योंकि जो काम दिया गया था, वह पूरा कर दिया। फिर नींद के अतिरिक्त और क्या है? नींद मुझे गहरी आई। एक लाख आदमी जल-भुन गए और यह आदमी रात भर गहरी नींद सोया रहा! आदमी हमने मिटा दिया इसके भीतर से।
दुनिया में जब तक राष्ट्र हैं, सेनाएं रहेंगी। और जब तक सेनाएं हैं,
तब तक करोड़ों लोग बिना आत्मा के जीएंगे। उनका काम ही यही है कि वे मशीन की तरह व्यवहार करें।
भारतीय सरकार ने ठीक ही किया है। यहां मेरे पास जगह-जगह से पत्र आ रहे हैं सैनिकों के, जिनमें कुछ संन्यासी हैं, जो बहुत मुझमें उत्सुक हैं उनके पत्र आ रहे हैं कि सरकार की सूचनाएं मिली हैं कि न तो मेरी कोई किताब पढ़ी जाए, न टेप सुने जाएं, न मुझसे किसी तरह का संबंध रखा जाए। मुझसे किसी तरह का भी संबंध रखना सेना से बगावत समझी जाएगी। बात सच है। बात ठीक ही है। क्योंकि मैं जो कह रहा हूं, वह कोई एक ही सेना से बगावत की बात नहीं है, मैं तो चाहता हूं इस दुनिया में सेना रह ही न जाए। इसलिए सरकार ठीक ही बात कह रही है। क्योंकि मेरी बात सैनिकों तक नहीं पहुंचनी चाहिए। अगर यह उन तक पहुंचेगी और उनको यह बोध होना शुरू हो जाए कि उनका जीवन किस तरह नष्ट किया जा रहा है, किस तरह उनकी आत्मा को धूमिल किया जा रहा है, किस तरह उनकी चेतना

को आदतों में दबाया जा रहा है, किस तरह उनको मशीनों में बदला जा रहा है, तो शायद उनके भीतर भी अपनी आत्मा को इस तरह नष्ट न होने देने के लिए विचार उठे। मेरी बात खतरनाक हो सकती है।
मेरी बात का मौलिक आधार यही है कि मनुष्य के भीतर सबसे बड़ी कीमती, मूल्यवान चीज है उसकी चेतना। और जिन कारणों से भी चेतना नष्ट हो जाती है, वे सभी कारण घातक हैं। आदत सबसे बड़ी घातक चीज है।
तुमने कहा गया है बार-बार कि अच्छी आदतें होती हैं, बुरी आदतें होती हैं; मैं तुमसे कहता हूं कि सब आदतें बुरी होती हैं। आदत मात्र बुरी होती है। आदत ही बुरी होती है। एक आदमी को आदत है कि वह सिगरेट पीता है, इसको हम कहते हैं, बुरी आदत। क्या बुरा है इसमें? यह आदमी धुआं भीतर ले जाता है, बाहर ले जाता है। स्वास्थ्य के खिलाफ है जरूर, शायद सत्तर साल जीता तो अब दो साल कम जीएगा, शायद यह आदमी जानता नहीं कि स्वच्छ और ताजी हवाओं को भीतर ले जाने में ज्यादा सार है--ज्यादा आयुवर्द्धक, ज्यादा स्वास्थ्यवर्द्धक--यह नाहक हवाओं को गंदा करके भीतर ले जा रहा है, नासमझ, मगर कोई पाप नहीं कर रहा है। और इसको जब समय पर सिगरेट नहीं मिलती है तो तलफ लगती है। मैं इसके धुएं के बाहर-भीतर ले जाने को या थोड़ी सी निकोटिन इसके भीतर पहुंच जाने को कोई पाप नहीं मानता। लेकिन बिना सिगरेट के यह नहीं जी सकता, इस बात में असली भूल है। यह आदत का गुलाम हो गया। इसको सिगरेट न मिले तो यह मुश्किल में पड़ जाएगा।
जब पहली दफा उत्तरी ध्रुव पर यात्री गए, तो उनकी नाव फंस गई। सोचा था
कि लौट आएंगे समय पर, लेकिन नहीं लौट सके, तीन सप्ताह देर से लौट पाए। उन तीन सप्ताह में उन यात्रियों की डायरी में जो उल्लेख है... भोजन चुक गया, उसकी लोगों को फिक्र नहीं, मछलियां मार कर किसी तरह भोजन कर लेते, सबसे बड़ी दिक्कत खड़ी हो गई कि सिगरेट चुक गई। तीन सप्ताह के लिए सिगरेट नहीं थी। और कैप्टन इतना घबड़ा गया कि लोग जहाज की रस्सियां काट-काट कर पीने लगे। अब अगर सब रस्सियां कट जाएं तो फिर यात्रा हो ही नहीं सकती। उसे लोगों को पहरे पर रखना पड़ता कि कोई रस्सियां न काटे। मगर जिनको पहरे पर रखता, वे ही रस्सियां काट कर पी जाते। अब तुम सोच नहीं सकते कि कोई जहाज की सड़ी-गली रस्सियों को काट कर और पीएगा। लेकिन आदत आदत है। आदमी किसी भी मजबूरी के लिए राजी हो सकता है। मजबूरी में किसी चीज के लिए राजी हो सकता है।

मैं सिगरेट पीने को पाप नहीं कहता। लेकिन वह जो आदत है... । अगर कोई सिगरेट पीने का मालिक हो, कि जब चाहे पी ले और जब चाहे छोड़ दे; आज पी ले और फिर छह महीने नाम न ले, फिर पी ले एक दिन और फिर ऐसे रख दे जैसे कभी न पी थी, तो मैं कुछ एतराज नहीं करूंगा, मैं कहूंगा--यह मालिक है अपना। इसकी मौज! कभी अगर एकाध दहा धुआं उड़ाने का मजा इसे लेना होता है तो ले लेता है। मगर यह कोई आदत नहीं है; तो पाप नहीं है। पाप निकोटिन में नहीं है, पाप सिगरेट में नहीं है, तमाखू में नहीं है, पाप अगर कहीं है तो आदत में है। तो फिर बात बदल जाएगी। फिर हमें पूरा का पूरा दृष्टिकोण बदलना पड़ेगा।
एक आदमी है कि जिसको आदत है कि रोज सुबह माला जपे। अगर एक दिन माला न जपे, तो तलफ लगती है--उसको भी मैं तलफ ही कहता हूं, है वह तलफ ही। हालांकि वह आदमी कहता है कि बिना माला जपे मुझे अच्छा नहीं लगता; मुझे राम से ऐसा लगाव है; प्रभु की मुझे ऐसी याद आती है; वह धार्मिक शब्दों का उपयोग करता है, सच बात यह है कि तकलीफ, वह जब तक माला... अब माला जपने में कौन सी खूबी हो सकती है? गुरिए सरका रहा है और राम-राम, राम-राम, राम-राम और गुरिए सरका रहा है और राम-राम, राम-राम कर रहा है, जब तक वह अपनी संख्या पूरी न कर ले, अगर एक हजार आठ बार करना है माला का जप तो एक हजार आठ बार न कर ले--अगर एक हजार सात बार भी किया तो दिन भर उसे खटक लगी रहेगी कि कुछ कमी रह गई, कुछ कमी रह गई-- यह आध्यात्मिक ढंग का निकोटिन है। इसमें कुछ बहुत फर्क नहीं है। यह आदत धार्मिक है मगर उतनी ही घातक है जितनी पहली आदत। शायद थोड़ी ज्यादा घातक है। क्योंकि पहली तो बुरी है, ऐसा लोगों को पता है; दूसरी आदत बड़ी अच्छी है, ऐसा लोगों को पता है।

मैं एक यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर था। घूमने जाता था रोज सुबह। यूनिवर्सिटी के एक प्रोफेसर भी मेरे साथ घूमने जाते थे। उनको आदती थी कि कोई भी मंदिर देखें तो हाथ जोड़ कर नमस्कार करना है। मैं जरा परेशान हुआ। क्योंकि जहां से हम गुजरते थे, कहीं मढ़िया हनुमान जी की आ जाए, कहीं शिव जी का शिवलिंग आ जाए, कहीं रामचंद्र जी का मंदिर आ जाए, वे जल्दी से खड़े हो जाएं--उनके साथ मुझे भी खड़ा होना पड़े। अब उनके साथ, घूमने उनको ले गया हूं, तो इतना तो शिष्टाचार रखना ही पड़े। मैंने उनसे कहा, यह मामला क्या है? उन्होंने कहा, यह बचपन से मेरी संस्कारशीलता... सुसंस्कार! मेरे माता-पिता बड़े धार्मिक थे। उन्होंने मुझे यह सिखाया। मैंने कहा, यह कोई सुसंस्कार नहीं है, यह सिर्फ एक जड़ आदत है। उन्हें बहुत समझाया, उनके बात कुछ सिर में घुसी।
मैंने कहा कि अगर यह सुसंस्कार है, तो कल तुम मेरे साथ चलो और तय कर लो
कि चाहे हनुमान जी मिलें और चाहे शिव जी मिलें, चाहे राम जी मिलें--कोई भी मिले--नमस्कार नहीं करना। बस पहली हनुमान जी की मढ़िया जैसे-जैसे करीब आने लगी, उनकी हालत देखने जैसी! सुबह की ठंडी हवा और उनके माथे पर पसीना। और वे हाथों को अकड़ाए हुए, क्योंकि डरे। कि वे हाथ न जोड़ लें, नहीं तो मेरे साथ... मैंने कहा कि बस यह आखिरी दिन है, आज तय हो जाएगा, या तो मेरा साथ, या हनुमान जी का साथ। अब तुम तय ही कर लो। तुम अपनी पार्टी निश्चित कर लो! वे मेरा साथ छोड़ना भी नहीं चाहते थे--और हनुमान जी का कैसे छोड़ें। और हनुमान जी बैठे हैं, और देख रहे। और बस जैसे-जैसे उनकी मढ़िया करीब आने लगी, वे मुझसे बोले कि माफ करें, मेरी हिम्मत मढ़िया के सामने से बिना नमस्कार किए निकलने की नहीं है--मैं गिर पडूंगा। मेरे पैर लड़खड़ा रहे हैं! और मैंने कहा, तुम इसको संस्कार कहते थे? सुसंस्कार? तुम इसको धार्मिकता समझते थे? और कहां के हनुमान हैं यहां! एक पत्थर पर लोगों ने लाल रंग पोत दिया है।
मैंने उनको कहा कि जब अंग्रेजों ने पहली दफा भारत में रास्ते बनाए और रास्ते के किनारे मील के पत्थर लगाए, तो उनको कुछ पता नहीं था, उन्होंने मील के पत्थर लाल रंग से रंगे, क्योंकि लाल रंग दूर से दिखाई पड़ता है। और हरियाली हो चारों तरफ, वृक्ष-पौधे हों, तो लाल रंग ही दिखाई पड़ेगा, दूसरा रंग छिप जाएगा। मगर वे बड़ी मुश्किल में पड़े, क्योंकि मील के पत्थर जहां- जहां उन्होंने लगाए, लोग उनकी पूजा करने लगे। क्योंकि इस मुल्क में तो लोग हनुमान जी को इसी तरह तो बनाते रहे हैं। कहीं भी पत्थर खड़ा कर दो, लाल रंग पोत दो, दो फूल चढ़ा दो, फिर तुम्हारे पीछे जो आएगा वह झुक कर नमस्कार करने वाला है। न हो तो तुम करके देखो। एक पत्थर रख कर अपने घर के समाने लाल रंग पोत दो, सेंदुर पोत कर दो फूल वहां रख दो, बस तुम देखोगे कि चले लोग! और फूल चढ़ने लगे, पैसे भी चढ़ने लगे, नमस्कार भी होने लगे।
और लोगों की मनोकांक्षाएं भी पूरी होने लगेंगी यह भी ख्याल रखना। क्योंकि पचास मूरख आएंगे तो दस-पांच की तो हो ही जाएंगी पूरी। वैसे भी हो जातीं, वे न आते तो भी। गांव के लोगों को समझाना पड़ा अंग्रेजों को, बहुत मुश्किल से समझाना पड़ा कि भाई, ये हनुमान जी नहीं हैं, यह मील का पत्थर है। मैंने उसने कहा, कहां के हनुमान जी! बोले कि बात तो आपकी समझ में आती है, मगर मेरा दिल क्यों धड़कता है? बस ठीक हनुमान जी की मढ़िया सामने आई कि उन्होंने तो हाथ जोड़ लिए। उन्होंने मुझसे कहा, आप चाहे साथ रखो, चाहे न रखो, मगर हनुमान जी को छोड़ कर मुझे चैन न रहेगी। मेरा दिन भर मुश्किल में पड़ जाएगा।
अब इसको क्या कहोगे? शराब की लत, अफीम की लत, कि सिगरेट पीने की लत और
इस लत में कुछ भेद है?
फिर शराब में तो कुछ केमिकल भी हैं जो नशा लाते हैं। अफीम में तो कुछ
है बात, जिससे नशा चढ़ता है। अफीम चाहे हिंदू को पिलाओ, चाहे मुसलमान को, चाहे ईसाई को, तीनों को नशा लगेगा। लेकिन अनुमान जी की मूर्ति के सामने सिर्फ हनुमान के भक्त को ही नशा लगता है--और किसी को नहीं लगता। इसलिए मामला शुद्ध मनोवैज्ञानिक है। बाहर कुछ भी नहीं है। मस्जिद के सामने से हिंदू बिल्कुल ऐसे निकल जाता है कि उसे पता ही नहीं चलता है कि मस्जिद थी। उसी मस्जिद के सामने मुसलमान का भाव देखो! कैसा भाव-विभोर हो जाता है! वह

अल्लाह का घर है। जैन मंदिर के सामने कभी हिंदू को कोई चिंता होती है? शास्त्रों में तो लिखा है कि पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाना, मगर अगर जैन मंदिर में शरण मिलती हो तो मत लेना। और जैन शास्त्रों में भी यही लिखा है। क्योंकि शास्त्रों में कुछ भेद नहीं है। ये एक ही तरह के लोग लिखते हैं। इनके नाम, विशेषण भिन्न हों, मगर इनकी बौद्धिकता में कोई भिन्नता नहीं होती। इनकी मूढ़ता में, जड़ता में कोई भेद नहीं होता। जैन शास्त्रों में भी ठीक यही लिखा है कि अगर कोई जैन पाए कि पागल हाथी उसके पीछे पड़ा है और लगता हो कि पास में ही हिंदू मंदिर है, प्रवेश कर जाए तो बच सकता है, मगर प्रवेश मत करना। पागल हाथी के पैर के नीचे दब कर मर जाने से स्वर्ग मिलेगा, मगर हिंदू मंदिर में प्रवेश किया तो नर्क निश्चित है।
यह तो बिल्कुल मनोवैज्ञानिक जाल है। इस जाल में तो कुछ भी अर्थ नहीं है। यह तो सिर्फ तुम्हारा बनाया हुआ भ्रम है।
जिनको तुम अच्छी आदतें कहते हो, अगर वे आदतें हैं, तो अच्छी नहीं। मुक्ति, स्वातंष्य अच्छी बात है।
अब अगर एक आदमी मजबूर है तीन बजे उठ कर घूमने जाने को--चाहे बीमार भी हो, चाहे धुआंधार वर्षा हो रही हो, चाहे बर्फ पड़ रही हो, मगर उसको जाना ही पड़ेगा--तो यह मनोवैज्ञानिक रोग है। यह कोई ब्रह्ममुहूर्त में घूमना नहीं है।
एक महिला मेरे पास आई और उसने कहा कि मेरे पति आपके पास आते हैं, हम थक गए, आप ही कुछ करें। क्योंकि शायद आपकी मानें वे, और किसी की तो वे मानते नहीं। मैंने पूछा, क्या अड़चन है? तो उसने कहा कि वे आधी रात उठ आते हैं... सरदार जी थे। बड़े ओहदे पर थे, मिलिटरी में थे। मेरे पड़ोस में ही रहते थे। कभी-कभी आते थे... पत्नी ने कहा, आधी रात उठ आते हैं और इतने जोर से जपु जी का पाठ करते हैं--एक तो सरदार, फिर मिलिटरी में, मजबूत और फिर जपु जी का पाठ--घर में सोना हराम हो गया! न बच्चे सो सकते, न मैं सो सकती। पास-पड़ोस के लोग भी एतराज करते हैं। और उनसे कुछ कहो तो वे कहते हैं, तुम सब नास्तिक हो; धार्मिक कार्यों में बाधा डालते हो! अरे तुम भी उठो और तुम भी जपु जी का पाठ करो! मैं तो करता ही इसलिए इतने जोर से हूं कि जिससे तुमको भी कुछ बोध आए। सोए-सोए भी तुम्हारे कान में ये शब्द पड़ गए तो अमृत हैं। वे तो सुनने वाले नहीं। दो बजे रात उठ आते!
मैंने उनसे पूछा, मैंने कहाः चरन सिंह, तुम्हारी पत्नी कहती है कि तुम आधी रात उठ कर जपुजी का पाठ करते हो। अरे--कहा--आधी रात, नहीं, ब्रह्म मुहूर्त! दो बजे सुबह! अंग्रेजी हिसाब से दो बजे सुबह होता है, बिल्कुल ठीक। क्योंकि बारह बजे एक दिन खतम हो गया। फिर तो एक बजे, दो बजे... यह तो फिर दूसरे दिन में गिनती है इनकी। अंग्रेजी हिसाब से दो बजे सुबह। कौन कहता है आधी रात? मेरी पत्नी की बातों में मत पड़ना, वह तो उलटी-सीधी खबरें उड़ाती है मेरे बाबत। वह तो कहती है, मैं चिल्ला-चिल्ला कर जपु जी का पाठ करता हूं। अरे, यह मेरा सहज स्वर है! इसमें कोई चिल्लाना नहीं है। और क्या आप जैसा धार्मिक व्यक्ति भी इसके विरोध में है? मैंने कहा कि नहीं, तुम करते तो अच्छा ही हो, सिर्फ इन बेचारे अधार्मिकों पर थोड़ी दया करो, और अगर दो से तुम चार बजे कर दो तो अच्छा होगा। उन्होंने कहा, बहुत मुश्किल बात है। तो दो घंटे मैं क्या करूंगा? मैं पगला जाऊंगा। दो बजे के बाद मुझे नींद आती नहीं, आ सकती नहीं, जिंदगी भर का अभ्यास है। वह तो यह समझो कि जपु जी में उलझा रहता हूं, नहीं तो कुछ और उपद्रव कर बैठूंगा। मैंने कहा, यह बात जरूर सोचने-विचारने जैसी है! पत्नी को इसका कुछ अंदाज नहीं है।
मैंने पत्नी को कहा कि वे यह कहते हैं कि दो बजे से चार बजे फिर मैं क्या करूंगा? कुछ और उपद्रव कर बैठूंगा। पत्नी ने कहा, अगर कुछ और उपद्रव करना हो तो भइया, जपु जी का पाठ ही करो!
अच्छी आदतें भी आदतें हैं। और जिन चीजों से भी मालकियत खो जाती हो, उनमें आत्मा नष्ट होती है।
पलटू कहते हैं--
बनिया बानि न छोड़ै, पसंघा मारै जाय।।
पसंघा मारै जाय, पूर को मरम न जानी।

निसिदिन तौलै घाटि खोय यह परी पुरानी।।
यह पुरानी जो आदत पड़ गई है, छोड़ता नहीं है। रोज वही किए जाता है--वही खोट।
ऐसे दिये वक्त ने झांसे
हारे राजा नकल के पांसे।
बदल गया सब दाना पानी
तार-तार हो गई जवानी
जैसे कोई ब.ूढा खांसे।

हुए बसंत, हलंत हमारे
टुकड़े-टुकड़े हुए सितारे

सपने टूटे यहां-वहां से।
जीवन आखिर-आखिर में बस ऐसा ही पाया जाता है कि गंवाया। एक सपना यहां टूट गया, एक सपना वहां टूट गया, सारे यात्रापथ पर टूटे हुए सपनों के ढेर लगते जाते हैं और हाथ सत्य कभी लगता नहीं। क्योंकि सत्य तुम्हारे आंतरिक स्वातंष्य में है। उस स्वतंत्रता को हमने मोक्ष कहा है। वह तुम्हारी परम धन्यता की अवस्था है। लेकिन उस स्वतंत्रता को पाना हो, तो आदतों से मुक्त होना पड़ेगा। फिर वे बुरी हों कि अच्छी, इससे सवाल नहीं है। बंधन बुरा है, मुक्ति अच्छी है।
केतिक कहा पुकारि, कहा नहिं करै अनारी।
और कितना पुकारो, कितना पुकार-पुकार कर कहा है संतों ने, जागे पुरुषों ने--उठो अपनी आदतों से, स्वतंत्रता से जीओ!
केतिक कहा पुकारि, कहा नहिं करै अनारी।
लालच से भा पतित, सहै नाना दुख भारी।।
मगर नहीं, तुम अपने लालच में ही पड़े हो। तुम अपने लोभ में ही पड़े हो। लोभ भी एक आदत है। लोभ का अर्थ हैः और; और की आदत। तुम्हारे पास दस हजार रुपये हैं; जब नहीं थे तो तुम सोचते थे, दस हजार हो जाएं तो बस पर्याप्त; जब दस हजार हो जाते हैं तो तुम कहते हो, लाख हो जाएं तो पर्याप्त। वह दस का अनुपात बना ही रहता है। जितने हैं, उससे दस गुने। और यह तुम कभी सोचते भी नहीं कि दस हजार भी हो गए, फिर कुछ न हुआ; लाख भी हो गए, फिर कुछ न हुआ; दस लाख भी हो गए, फिर कुछ न हुआ। दस करोड़ भी हो जाएंगे, तो कैसे कुछ हो जाएगा? आखिर यह मात्रा का बढ़ता जाना ही जीवन में कोई क्रांति तो नहीं ला सकता। गुणात्मक परिवर्तन होना चाहिए, परिमाणात्मक परिवर्तन से कोई भी क्रांति नहीं होती।
एक मकान से दो मकान हो गए, दो से चार मकान हो गए--इससे क्या होगा? तुम
तो वही के वही हो। एक मकान में रहो कि चार मकानों में रहो, तुम तो वही के वही हो। तुम्हारी तिजोड़ी में कितने नोट हैं, इससे तुम्हारी आत्मा में कोई समृद्धि न बढ़ती है, न घटती है। तुम तो वही के वही--दीन, भिखारी। तुम्हारा भिक्षापात्र कभी भरेगा नहीं।
लालच से भा पतित, सहै नाना दुख भारी।।
और कितने दुख झेलते हो! मगर फिर भी जागते नहीं। जिन दुखों को झेलते हो, उन्हीं दुखों को रोज-रोज पैदा करने की चेष्टा भी करते हो। जिस चीज से कल दुख पाया था, फिर आज उसी के पीछे दौड़ रहे हो।
मुल्ला नसरुद्दीन सुबह ही सुबह नाश्ते की टेबल पर बैठा चुपचाप अखबार
पढ़ रहा था। पत्नी अंट-शंट बके जा रही थी, मगर वह अपना अखबार ही पढ़े जा रहा था। पत्नी ने कहा, कुछ खाओगे-पीओगे नहीं? मुल्ला ने कहा, अखबार में छपी गालियां खा रहा हूं। तू चुप रह! इतनी गालियां काफी हैं, तू और सिर खा रही है। पत्नी ने अपना सिर ठोंक लिया--जो उसकी आदत थी--उसने कहा कि किसके पल्ले पड़ गई! जिंदगी खराब हो गई! कम से कम सुबह तो ढंग से बोला करो। सुबह तो ठीक से शुरू हो। सुबह ही से सब खराब कर देते हो, ऐसी वाणी बोलते हो। और इस तरह व्यवहार करते हो... मैं कोई तुम्हारे पीछे पड़ी थी! तुम्हीं मेरे पीछे पड़े थे। प्रेम-पत्र किसने पहले लिखा था? और कौन छुट-छुप कर मेरी गली में आता

था? और रात चोरी से कौन मेरे दरवाजे खटकाता था? मैं तुम्हारे घर गई थी? मैंने चिट्ठी लिखी थी. मैं तुम्हारी गली में गई थी? मुल्ला नसरुद्दीन ने कहा कि नहीं, मैं ही गया। क्योंकि हमेशा चूहा ही चूहादानी की तरफ जाता है, चूहादानी नहीं जाती। चूहादानी तो अपनी जगह बैठी रहती है। मैं मूरख!
फिर दूसरी कहानी है कि पत्नी बीमार पड़ी--कुछ संघातक बीमारी हो गई, मरने के करीब है। मुल्ला से उसने कहा कि बस, जीवन में तुमने दुख ही दुख दिए, मरते वक्त एक सुख दे दो--एक आश्वासन। मुझे पक्का मालूम है, इधर मैं मरी कि उधर तुमने शादी की। मुल्ला ने कहा, कभी नहीं, कभी नहीं, एक अनुभव बहुत है! इस जनम में क्या, दस जन्मों तक अब शादी करने वाला नहीं हूं। तूने जो पाठ दिए हैं, कभी भूलूंगा नहीं। यह बात ही मत उठा। लेकिन पत्नी ने कहा कि तुम छोड़ो यह बकवास, मैं तुम्हीं जानती हूं, भलीभांति जानती हूं--मुझ से बेहतर तुम्हें कौन जानता है--इधर मैं मरी कि उधर तुमने शादी की। एक वचन मुझे दे दो कि मेरे कपड़े, मेरे गहने तुम्हारी नई पत्नी को नहीं पहनने दोगे। मेरी आत्मा को बहुत दुख होगा। मुल्ला ने कहा, अब तूने बात ही उठा दी, तो साफ बता दूं, रजिया को तेरे कपड़े बनेंगे भी नहीं।
अभी मरी भी नहीं है पत्नी और दूसरी चूहादानी की उन्होंने तैयारी कर ली!
एक आदत से आदमी छूटता भी नहीं है कि दूसरी के लिए तैयार कर लेता है। पहले ही तैयारी कर लेता है कि कहीं ऐसा न हो खाली रह जाऊं। लोग आदतें बदलते रहते हैं। सिगरेट पीने वाला पान खाने लगता है। वह कहता है, सिगरेट छोड़ दी, पान खाते हैं। पा खाने वाला पान खाना छोड़ देता है, तमाखू मलने लगता है। वह कहता है, हम तमाखू खाते हैं। मेरे एक परिचित हैं, उन्होंने तमाखू भी छोड़ दी। अब वे नसनी, नस सूंघा करते हैं। वह और भद्दी लगती है, उनकी नाक लाल... और बीच-बीच में निकाल कर डिबिया वह नसनी... ! मैंने उनसे कहा, भइया, तुम तमाखू ही खाते थे तो कम से कम किसी को दिखाई तो नहीं पड़ती थी। सिगरेट पीते थे तो कम से कम थोड़ी देखने-दिखाने में ढंग की मालूम पड़ती थी। यह और नससुंघनी तुमने कहां से सीख ली! मगर वह कुछ न कुछ तो चाहिए। एक छोड़ते हैं, दूसरी को पकड़ते हैं।
तुम जरा अपने जीवन को गौर से देखना, यही तुम्हारी गति है। यह मन का ही ढंग है। यह मन का जाल है।
यह मन भा निर्लज्ज, लाज नहिं करै अपानी।
यह मन बहुत निर्लज्ज है। इसको लाज भी नहीं आती, वही-वही मूढ़ताएं रोज-रोज करता है, फिर भी लाज नहीं आती। यह बहुत निर्लज्ज है।
जिन हरि पैदा किया ताहि का मरम न जानी।।
और सब तो कर रहे हो, न मालूम क्या-क्या कर रहे हो--कैसे-कैसे उलटे कामों में लगे हैं लोग! एक-से-एक उपद्रव, जिनमें कोई मूल्य नहीं है। कोई कुछ नहीं मिलता तो पोस्ट आफिस के स्टैम्प ही इकट्ठे कर रहा है। उलझाएं हैं अपने को किसी तरह। कैसी-कैसी आदतें हैं लोगों की, जरा देखो। कोई शतरंज ही खेल रहा है। कोई ताश के पत्तों में ही उलझा हुआ है। और ऐसे उलझे हैं कि जैसे जीवन-मृत्यु का सवाल हो। ताश के खिलाड़ियों को देखो! सब भूल-भाल कर लगे हैं।
और इस जिंदगी में और भी सब खेल इसी तरह के हैं। राजनीति के खिलाड़ी हैं,
सब भूल-भाल कर लगे हैं। धन के खिलाड़ी हैं। जैसे जिंदगी में बस एक काम है कि मरते वक्त धन का ढेर छोड़ कर मरना। है। एक कौड़ी भी साथ न ले जा सकेंगे। और मौलिक बात चूकी जा रही है--जिन हरि पैदा किया ताहि का मरम न जानी।
जिस स्रोत से आए हो, उसको कब खोजोगे? उस अंतरतम को कब खोजोगे, जो तुम्हारा वास्तविक जीवन है, जो तुम्हारा अस्तित्व है, जो तुम्हारा सार है! उसका मरम नहीं जाना!
चौरासी फिरि आय कै पलटू जूती खाय।
इतना लंबा चक्कर लगा कर आदमी हो पाए हो और इधर भी जूते खा रहे हो! और बीमारी छोटी है। बीमारी कुछ बड़ी नहीं है। पलटू यह कह रहे हैं, बीमारी सिर्फ एक बार है कि तुम्हारी चेतना अभी स्वतंत्र नहीं है, परतंत्र है, बस। और आदतों के जाल से घिर गई है। बीमारियां बड़ी नहीं हैं, बीमारियां छोटी हैं, सीधी-साफ हैं। शायद इसीलिए तुम्हें दिखाई नहीं पड़तीं।

मैंने सुना है, मुल्ला नसरुद्दीन जा रहा था रास्ते से बिल्कुल घसिटता, गालियां देता हुआ। डाक्टर मिल गया। उसने कहा कि क्योंकि इतनी गालियां दे रहे हो, बात क्या है? उसने कहाः मेरे पैर में बड़ी तकलीफ है। डाक्टर ने कहा, तुम मेरे साथ आओ, गालियां देने से क्या होगा! डाक्टर ने कहा कि तुम्हारे अपेंडिक्स को निकालना पड़ेगा। डाक्टर ने बहुत जांच की। जब डाक्टर बहुत जांच करे और कुछ न मिले, तो अपेंडिक्स निकालता है। पक्का समझ लेना, जब भी डाक्टर कहे--अपेंडिक्स, समझ लेना कि उसको कुछ मिल नहीं रहा है। अपेंडिक्स बिल्कुल निर्दोष चीज है। उसको निकाल बाहर कर दिया। मगर दर्द था सो जारी ही रहा।
दूसरे डाक्टर के पास नसरुद्दीन गया कि भई, होगा क्या मामला? अपेंडिक्स भी निकल गई! उसने कहा कि तुम्हारे टांसिल निकाल पड़ेंगे। जब अपेंडिक्स निकल जाए, तो टांसिल। टांसिल भी निकल गया, मगर दर्द जारी रहा। तीसरे के पास गया, उसने कहा कि तुम्हारे दांत बदलने पड़ेंगे। दांत भी निकल गए, मगर दर्द था सो जारी-का-जारी रहा। हालत भी खराब हो गई--दांत निकल गए, अपेंडिक्स निकल गई, टांसिल निकल गए... अब कुछ निकलने को बचा भी नहीं--बस ये तीन ही चीजें निकाल सकते हो--हालत बिल्कुल उसकी खस्ता हो गई, बिल्कुल मुर्दा जैसी हालत हो गई। बिल्कुल झुक कर चलने लगा, लकड़ी टेक-टेक कर चलने लगा। और फिर एक दिन लोगों ने देखा, उसने लकड़ी फेंक दी है, सीधा खड़ा हो गया है और मुस्कुराता हुआ, फिल्मी धुन गुनगुनाता हुआ चला जा रहा है। लोगों ने पूछा, अरे भाई, कोई चिकित्सक मिल गया जिसने बीमारी ठीक कर दी? उसने कहा, ऐसी की तैसी चिकित्सकों की! मेरे जूते में खीली थी, वह गड़ती थी, उसकी वजह से परेशानी हो रही थी। नालायकों की समझ में आया नहीं। बड़ी-बड़ी जांच-पड़ता की... कॉर्डियोग्राम इत्यादि... । अब कॉर्डियोग्राम में कहीं जूते में लगी खीली आए!
तुम्हारी जिंदगी में भी कोई सवाल बड़े नहीं हैं। और पंडित बड़े-बड़े समाधान लिए बैठे हैं। तुम्हारी जिंदगी के सवाल भी बहुत छोटे हैं। समझ हो तो जूते की खीली निकालने जैसे हैं।
आदतों से मुक्त होओ!
इसलिए मैं अपने संन्यासी को कोई अनुशासन नहीं देता, क्योंकि अनुशासन आदत बन जाते हैं। मुझसे लोग पूछते हैं, कि संन्यासी को कितने बजे उठना चाहिए? मैंने कहा, जितने बजे नींद खुले। क्या खाना चाहिए? कब खाना चाहिए? कितनी बार खाना चाहिए? अगर ये बातें तुम मुझसे पूछोगे तो आदतें बन जाएंगी। यह तुम्हारी चेतना को ही निर्णय लेना चाहिए। अगर इतना होश भी नहीं है कि कब उठना, कब खाना, कब पीना, तो तुम आशा छोड़ो कि तुम जीवन के मूल को, कि जीवन के सत्य को कभी जान सकोगे! अगर ये बातें भी तुम दूसरों से पूछते फिरोगे-- जिंदगी अपनी अगर तुम्हें जीना नहीं आता, अगर जिंदगी को थोड़ा संवार कर, सुंदर करके जीना नहीं आता तो तुम और क्या करोगे?
वह खाना चाहिए, जो परेशानी में न डाले। तब सो जाना चाहिए, जो स्वास्थ्यप्रद हो। तब उठ आना चाहिए, जब जिंदगी ताजी से ताजी हो। जब तुम गीत गा सको और नाच सको। जब सूरज जगे, जब पक्षी बोलें, जब वृक्ष उठ आएं, तब तुम्हारा पड़े रहना ठीक नहीं। और भोजन उतना कि शरीर पर बोझ न हो। और भोजन वह कि किसी को दुख न हो। सीधी-सीधी बातें, इतनी सीधी बातें भी तुम तय न कर सकोगे, यह भी कोई अनुशासन देगा? तो फिर अड़चनें होती हैं। फिर अनुशासन में तरकीबें निकलती हैं।
अगर मैं कहूं कि पांच बजे सुबह उठ आओ, तो तुम पूछोगे--अगर बुखार चढ़ा हो, फिर? तो कोई अपवाद बनाना पड़ेगा। अगर तबियत बीमार हो, फिर? अगर मैं कहूं कि दो बार भोजन करो और तुम कहो कि मुझे तो बीमारी है और डाक्टर कहते हैं कि थोड़ा-थोड़ा भोजन चार-छह बार करो, तो? फिर सवाल उठने शुरू होते हैं।
तुम जानकर हैरान होओगे कि बौद्ध ग्रंथों में बौद्ध भिक्षु के लिए तैंतीस हजार नियम हैं। याद भी कौन रखेगा! जो भिक्षु याद ही कर लेगा तैंतीस हजार नियम, वह पालन कब करेगा? याद ही करने में मर जाएगा। तैंतीस हजार नियम! मगर बनाने पड़े होंगे।

इसी तरह तो कानून बनते हैं दुनिया में। इसी तरह तो विधान बनते हैं। सरकार एक नियम बनाती है, फिर लोग उसमें से तरकीब निकाल लेते हैं, फिर उस तरकीब को मिटाने के लिए और नियम बनाती है, वे उसमें से तरकीब निकाल लेते हैं--फिर नियमों में से नियम बनते चले जाते हैं, फिर इतने नियम हो जाते हैं कि तय ही करना मुश्किल हो जाता है कि यह मामला क्या है? नियम कौन से लागू होते हैं? फिर नियम विपरीत भी हो जाते हैं। क्योंकि हर परिस्थिति को सम्हालने के लिए एक नियम बनाते जाते हैं, फिर नियमों का जाल फैल जाता है, फिर विशेषज्ञ चाहिए जो नियमों का निर्णय करे कि इसमें से रास्ता क्या है। फिर वकील चाहिए। फिर अदालत चाहिए।
संन्यासी को स्व-निर्भर होना है। उसे स्व-चेतना से जीना है। उसे आदतों का गुलाम नहीं होना है। आदतें होनी ही नहीं चाहिए जीवन में। जीवन स्व-स्फूर्त होना चाहिए।
इसका यह मतलब नहीं है कि तुम रोज अलग समय पर जगो, क्योंकि आदत नहीं होनी चाहिए; कि रोज अलग समय पर सोओ, क्योंकि आदत नहीं होनी चाहिए। नहीं, जो तुम्हारे लिए सुखद और प्रीतिकर लगे, वह करो, लेकिन उस करने को आदत मत बना लेना। उससे अन्यथा कभी करना पड़े, तो एकदम परेशान नहीं हो जाना चाहिए। उससे अन्यथा करने की संभावना भी खुली रखनी चाहिए। क्योंकि परिस्थितियां बदलती हैं; और अन्यथा भी कभी करना होता है। हम नियमों के गुलाम नहीं हैं, नियम हमारे सेवक हैं।
चौरसी फिरि आयकै पलटू जूती खाय।
बनिया बानि न छोड़ै, पसंघा मारै जाय।।
इतना चक्कर काट कर आए हो, फिर भी जागते नहीं! अभी भी जूते-पर-जूते खाए जाते हो! कोई और नहीं मार रहा है, खुद ही को मार रहे हो। अगर दूसरे भी मार रहे हैं, तो तुम निमंत्रण देते हो तब मार रहे हैं।
सातपुरी हम देखिया, देखे चारो धाम।।
देखे चारो धाम, सबन मां पाथर पानी।
पलटू कहते हैं, सब देख आए, सब तीर्थ-पुरियां देख लीं, चारों धाम कर डाले, कुछ नहीं पाया--पत्थर और पानी, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं पाया। वहां जीवंत धर्म नहीं है। वहां मरी हुई लाशें हैं धर्म की। और लाशों के पास बैठे हुए गिद्ध--पंडित कहो, पुरोहित कहो, पुजारी कहो, वे लाशों के पास बैठे गिद्ध हैं।
करमन के बसि पड़े, मुक्ति की राह झुलानी।।
चलत चलत पग थके, छीन भई अपनी काया।
खूब यात्रा कर-करके थक गए हैं, काया क्षीण हो गई है, पैर टूटने लगे हैं, राह खो गई है, कर्मों का जाल फैल गया है और तीर्थों में कुछ भी नहीं पाया।
देखे चारो धाम, सबन मां पाथर पानी।
अब क्या करें? अब कहां जाएं?
काम क्रोध नहिं मिटे, बैठ कर बहुत नहाया।।
खूब घिस-घिस कर नहाए, खूब डुबकी मारी जाकर, कुछ मिटा नहीं।
लेकिन यह देश हमारा अदभुत मूढ़ता से भरा है! यह देश ही क्यों, सारी दुनिया, सारी मनुष्य-जाति! छोटे-छोटे लोगों को तो छोड़ दो, जिनको तुम बुद्धिमान कहते हो, उनकी बातें सुन कर भी बड़ा आश्चर्य होता है।
अभी कुछ दिन पहले अखबारों में मैंने पढ़ा कि जयप्रकाश नारायण जब पटना वापस लौटे, तीन महीने इलाज करवाने के बाद, तो धन्यवाद उन्होंने जसलोक अस्पताल के चिकित्सकों को नहीं दिया, गंगा मइया को दिया! महाराज, अगर गंगा मइया को ही बचाना था, तो कहो को बंबई के लोगों को परेशान करते हो? काहे जसलोक अस्पताल को तुमने जसलोक सभा बना रखा है? कि वहां धारा-सभा में तो कोई नहीं दिखाई पड़ता, सब जसलोक सभा में मौजूद। फिर काहे के लिए डायलिसिसि... गंगा का पानी पीओ, मजा करो! और खुद ही डायलिसिस पर नहीं हैं, संपूर्ण क्रांति करवा कर पूरे मुल्क को डायलिसिस पर रखवा दिया है। और लौट कर पटना में कहा कि गंगा मइया की कृपा से बच कर आ गया।
छोटों को छोड़ दो, जिनको तुम बुद्धिमान कहते हो, नेता कहते हो, लोकनायक कहते हो, उनमें और तुम में कुछ बहुत भेद नहीं मालूम होता। वही गंगा मइया!

तो गंगा मइया तो पटना में ही उपलब्ध थी, उनके घर के पीछे ही बहती होगी, कहो को तकलीफ में पड़ते हो और दूसरों को तकलीफ में डालते हो? इंग्लैंड से चिकित्सक बुलाए गए, उनको धन्यवाद नहीं; जसलोक अस्पताल के चिकित्सक जी-जान तोड़ कर पीछे लगे रहे, उनको धन्यवाद नहीं; धन्यवाद गंगा मइया का!
यह भारत की बुद्धिहीनता कभी टूटेगी या नहीं! इस देश का बुद्धुओं से छुटकारा भी होगा या नहीं! और बड़े-बड़े बुद्धू!!
लेकिन लोगों को ये बातें जंचती हैं। इसलिए राजनीतिज्ञ कुशल हैं, होशियार हैं। लोग गंगा मइया को मानते हैं, इसलिए राजनेता भी कहता हैः गंगा मइया की कृपा से! और यह गंगा मइया की कृपा से बिहार में हर साल अकाल पड़ता है! और गंगा मइया की कृपा से बिहार से ज्यादा गरीब और कौन है? और गंगा मइया की कृपा से बिहार में जितना उपद्रव होता है, गोली चलती है, दंगे-फसाद होते हैं, हड़ताल-घिराव होते हैं, उतने और कहां होते हैं! यह सब गंगा मइया की कृपा!
अभी कुछ ही दिन पहले मोरारजी देसाई गंगासागर में स्नान करके लौटे थे... गंगा मइया की कृपा, देखो! गंगा मइया भी खूब कृपा करती है! चौरासी फिरि आयकै पलटू जूती खाय! गंगासागर होकर लौट आए, और दिल्ली में आ कर गति बिगड़ी! सोचा भी नहीं होगा कि एकदम से रामनाम सत्त है हो जाएगा! मगर हो गया।
कल किसी ने पूछा था कि अब आप मोरारजी भाई के संबंध में कुछ कहेंगे या नहीं? अब कहने को क्या बचा! परमात्मा उनकी आत्मा का शांति दे!!
काम क्रोध, नहिं मिटे, बैठ कर बहुत नहाया।।
ऊपर डाला धोय, मैल दिल बीच समाना।
मैल तो भीतर है। अंधकार तो भीतर है। अचेतना तो भीतर है। तुम बाहर धो रहे हो। ध्यान से मिटेगी, स्नान से नहीं। प्रेम से धुलेगी, पानी से नहीं।
पाथर में गयो भूल, संत का मरम न जाना।।
और तुम पत्थर की मूर्तियों में--ये रहे हनुमान जी, ये रहे शिव जी, ये राम जी--पत्थरों की मूर्ति में भटके हो! जीवित सदगुरु को खोजो!
पाथर में गयो भूल, संत का मरम न जाना।।
अगर कहीं कोई जीवित संत हो, तो उसकी तरंग में डूबो! वहीं गंगा है, वहीं तीर्थ है।
तेरे जलवों के आगे हिम्मते-शर्हे-बयां रख दी,
जबाने-बे-निगह रख दी, निगाहे-बे-जबां रख दी।
मिटी जाती थी बुलबुल, जलवा-ए-गुल हाय रंगीं पर,
छुपा कर किसने इन पर्दों में बर्के-आशियां रख दी
नियाजे-इश्क को समझा है क्या, ऐ वाइजे-नादां,
हजारों बन गए काबे, जबीं मैंने कहा रख दी।
सिर रखने की कला आती हो, सिर झुकाने की कला आती हो, तो काबा बन जाता है-- हजारों काबे बन जाते हैं।
नियाजे-इश्क को समझा है क्या, ऐ वाइजे-नादां,
ऐ नासमझ उपदेशक, हे मूढ़ पंडित, तूने प्रेम की शक्ति को समझा क्या है! तूने प्रेम-भक्ति को समझा क्या है!
नियाजे-इश्क को समझा है क्या, ऐ वाइजे-नादां,
हजारों बन गए काबे, जबीं मैंने जहां रख दी।
जहां मैंने सिर झुकाया--अंतःकरणपूर्वक, होशपूर्वक, जाग्रति से--जहां मैंने अहंकार गिराया, वहां काबा बना, वहां काशी बनी, वहां कैलाश बने।
कफस की याद में ये इजिज्तराबे-दिल, मआजल्लाह
कि मैंने तोड़ कर इक-एक शाखे-आशियां रख दी।
करिश्मे हुस्न के पिनहां थे शायद रक्से-बिसमिल में,
बहुत कुछ सोच कर जालिम ने तेगे-खूंफिशां रख दी।
इलाही क्या किया तूने कि आलम में तलातुम है,
गजब की एक मुश्ते-खाक जेरे-आसमां रख दी।
हे परमात्मा, तूने क्या चमत्कार किया कि संसार में ऐसा तूफान उठा दिया! एक मुट्ठी भर खाक है आदमी, मगर उसके भीतर कैसी आग रख दी!
इलाही क्या किया तूने कि आलम में तलातुम है,

... कि संसार में तूफान है...
गजब की एक मुश्ते-खाक जेरे-आसमां रख दी।
आसमान के नीचे इस मुट्ठी भर खाक में तूने क्या जादू छिपा दिया है! और तुम कहां खोजते फिर रहे हो--बाहर? भीतर खोजो। और भीतर खोजने का बोध तुम्हें वहां मिलेगा, जिसने भीतर खोजा हो। किसी सदगुरु को खोजो!
पलटू नाहक पचि मुए, संतन में है नाम।
व्यर्थ मूढ़ता में न पड़ो, नाहक अपने को परेशान न करो, संतों में छिपा है वह; संतों में प्रकट है वह।... संतन में है नाम।
सातपुरी हम देखिया, देखे चारो धाम।।
वहां नहीं है। वहां तो सिर्फ--
देखे चारो धाम, सबन मां पाथर पानी।
निंदक जीवै जुगन-जुग, काम हमारा होय।।
पलटू कहते हैं, जब से जाना है, जब से पहचाना है, जब से उससे आंखें चार हुईं, तब से बड़ी निंदा होने लगी है; तब से चारों तरफ निंदक पैदा हो गए हैं। यह सदा से होता रहा है। आदमी ऐसा अजीब है! जिनसे तुम्हें जीवन की कुंजियां मिल सकें, उनको तुम गालियां देते हो। और जो तुम्हारी जिंदगी में सिवाय कांटे बोने के कुछ भी नहीं करते, उनका तुम सम्मान करते हो! तुम्हारी मूढ़ता की कोई सीमा नहीं है। तुम्हारी खोपड़ी उलटी है! राजनेता पूजा जाता है, संत सूली पर लटकाए जाते हैं।
निंदक जीवै जुगन-जुग...
लेकिन पलटू कहते हैं, करो निंदा, हमें तो इससे भी लाभ है।
निंदक जीवै जुगन-जुग, काम हमारा होय।।
पलटू कहते हैं, यह तो हमारा ही काम हो रहा है, निंदक तो सदा जीते रहें, जुग-जुग जीएं।
पलटू से मैं बिल्कुल राजी होऊं। क्योंकि यहां जितने लोग आते हैं, वे निंदकों के कारण आ पाते हैं। जितनी मुझे लोग गालियां देते हैं, उतने ही लोग उत्सुक होते हैं कि मामला क्या है? किसी एक आदमी को इतनी गालियां देने वाले लोग अगर हों, तो कुछ बात होगी! कोई चिनगारी होगी! उसे खोजने चले आते हैं। नहीं तो आओ कैसे?
निंदक जीवै जुगन-जुग, काम हमारा होय।।
पलटू कहते हैं, काम हमारा होता है!
काम हमारा होय, बिना कौड़ी को चाकर।
कुछ पैसा भी नहीं लेना-देना होता और वह हमारा प्रचार भी करता है।
कमर बांधिके फिरै, करै तिहुं लोक उजागर।
और वह कमर बांध कर घूमता है--उसको काम ही एक है--और वह चारों तरफ उजागर
कर देता है, खबर पहुंचा देता है।
आखिर सारी दुनिया से जो लोग आ रहे हैं, तुम जानते हो, कौन उनको ला रहा है? वह जो निंदा चल रही है। और निंदा भी कैसी गजब की! मुझसे लोग पूछते हैं कि आप इन निंदकों के खिलाफ कुछ करते क्यों नहीं? मैंने कहा, मैं उनके खिलाफ कुछ करूं क्यों? वे बिचारे मेरी सेवा में रत हैं, मैं उनके खिलाफ कुछ करूं?
अभी पंजाब से एक मित्र आए, साथ में पंजाबी की एक पत्रिका लाए। गुरुमुखी में लेख छपा हैं। लेखक ने लिखा है कि वह आश्रम में रह कर, अनुभव करके यह लेख लिख रहा है। अब जो भी उसका लेख पढ़ कर आ जाएगा, वह सदा के लिए मेरा हो जाएगा। लेख में ऐसी बातें कही हैं कि चौंक ही जाओगे जब यहां आओगे! लेख में लिखा है कि आश्रम पंद्रह मील के क्षेत्र में फैला हुआ है। पंद्रह मील! छः एकड़ की जमीन को पंद्रह मील! तो जब हमारे पास चार वर्गमील का आश्रम होगा, तो समझो हजारों मील में फैलेगा। आश्रम के दरवाजे पर ही, अंदर जैसे ही प्रवेश करते हो--लेख में लिखा है--एक आदमकद नग्न स्त्री की प्रतिमा। अब वह मित्र जो लेकर आए थे पत्रिका, पत्रिका पढ़ें और देखें कि वह प्रतिमा कहां है? मुझ से पूछते थे कि प्रतिमा कहां है? मैंने कहा, भाई, यह तुम उसी से पूछो, जिसने अनुभव कर के लिखा है! वह रह कर गया है आश्रम में-- ऊपर लिखता है कि मैं आश्रम में रह कर आया हूं। और आश्रम में पांच-पांच हजार

लोग जमीन के भीतर, अंडरग्राउंड बैठ सकें, ऐसे कक्ष। पांच-पांच हजार लोग! तुम जमीन के भीतर बैठे हो। इस भ्रांति में मत रहना कि जमीन के ऊपर बैठे हो! और वहां जो हाल होता है, उसका वर्णन तो ऐसा है कि स्वर्ग में भी जो देवता होंगे, वे भी ललचाते होंगे। शराब, गांजा, अफीम, भांग... और कई नई चीजें जो देवताओं को उपलब्ध नहीं हैं--एल.एसड़ी., मारिजुआना... और पांच हजार स्त्री- पुरुष नग्न होकर फिर जैसी रासलीला में संलग्न होते... !
जब कोई ऐसे लेख पढ़ कर आएगा, तो स्वभावतः कुछ परिणाम लेगा, कुछ निश्चय लेगा, कुछ निर्णय लेगा--कि झूठ की भी एक सीमा होती है। और जो लोग इस तरह के झूठ बोल रहे हैं, जरूर उनका निहित स्वार्थ होगा।
अब मुझे अड़चन नहीं है, इन पर चाहूं तो मुकदमा चला सकता हूं। ये तो क्या प्रमाण कर सकेंगे! इतना ही काफी हो जाएगा बताना कि पंद्रह मील आश्रम कहां है? वह मूर्ति कहां है? लेकिन इन पर मुकदमा क्या करना! पलटू ठीक कहते हैं-- निंदक जीवै जुगन-जुग, काम हमारा होय।।
काम हमारा होय, बिना कौड़ी को चाकर।
कमर बांधिके फिरै, करै तिहुं लोक उजागर।।
उसे हमारी सोच, पलक भर नाहिं बिसारी।
वह सोचता ही रहता है हमारी बात। पलक भर को नहीं बिसारता।
लगी रहै दिन-रात, प्रेम से देता गारी।।
उसको लगी ही रहती है धुन। प्रेमवश गाली देता रहता है।
संत कहैं दृढ़ करै जगत का भरम छुड़ावै।
और पलटू कहते हैं कि अगर हम में कुछ भूल हो, तो वह जगत का भ्रम छुड़ा देता है--अच्छा ही है! अगर हम में भूल न हो, तो भी जगत का भ्रम छुड़ा देता है।
क्योंकि झूठी भूल को फैलाता है, लोग आकर देख लेते हैं। हर हालत में बेहतर है। किसी भी दृष्टि से बुरा नहीं।
निंदक गुरू हमार...
पलटू तो कहते हैं, यहां तक कि हम तो उसको गुरु मानते हैं। गुरु क्या, गुरु-घंटाल!
निंदक गुरु हमार, नाम से वही मिलावै।।
वह हमारी निंदा करता है और हम परमात्मा का धन्यवाद करते हैं कि वाह-वाह, खूब खेल करवा रहे हो! मुफ्त के चाकर लगा दिए!
सुनिके निंदक मरि गया, पलटू दिया है रोय।
और जब निंदक मर गया तो पलटू कहते हैं, मैं रोने लगा। आंख से आंसू गिरने लगे, कि बेचारा! इतनी मेहनत करता था, प्रेम में गाली बकता था! ... यह भी एक लगाव है, प्रेम है, रिश्ता है।... दिन-रात मेरी चिंता करता था। न-मालूम कितने लोगों को मेरे पास भेजा। चारों दिशाओं में खबर पहुंचाई।
सुनिके निंदक मरि गया, पलटू दिया है रोय।
निंदक जीवै जुगन-जुग, काम हमारा होय।।
जो जानते हैं, जिन्होंने सत्य का थोड़ा साक्षात्कार किया है, वे तो अपने संबंध में बोले गए झूठ को भी सत्य की सेवा में ही संलग्न कर लेते हैं।
जो जानते हैं, वे तो अंधेरे को भी प्रकाश तक पहुंचने की सीढ़ी बना लेते हैं।
जो जानते हैं, वे मृत्यु को भी अमृत का द्वार बना लेते हैं।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
आठवां प्रवचन

बहार आई तो क्या करेंगे!

भगवान,
हुआ लुप्त पावन दर्शन यह अनुपम
हे भगवान
पुनः स्वार्थ से भरे कीच में रमूं न मैं अनजान।
भगवान,
गुरु गोविंद दोऊ खड़े
काके लागूं पांय?
भगवान,
न होशे हस्ती न ताबे मस्ती
कि तेरा शुक्रिया अदा करेंगे।
खिजां में है अब से अपना आलम
बहार आई तो क्या करेंगे!
भगवान,
शिक्षा के क्षेत्र में गुलामी अपार है। पूना के वाडिया कालेज में दर्शनशास्त्र के अध्यापक के रूप में इंटरव्यू में चुने जाने पर भी नियुक्ति इसलिए नहीं दी गई, क्योंकि गेरुआ वस्त्र और माला न पहनने की शर्त को मैंने स्वीकार नहीं किया। अब परसों फिर पूना कालेज में इंटरव्यू में चुने जाने पर भी नियुक्ति के पहले वे मुझसे वचन चाहते हैं कि मैं गेरुआ वस्त्र न पहनूं और माला ज्यादा से ज्यादा वस्त्रों के भीतर रखूं। शिक्षक को इतनी स्वतंत्रता नहीं कि वह अपने ढंग से रह सके! और ऐसा गुलाम शिक्षक भविष्य की पीढ़ी का निर्माण करने का भार वहन करता है!

पहला प्रश्नः भगवान,
हुआ लुप्त पावन दर्शन यह अनुपम
हे भगवान
पुनः स्वार्थ सये भरे कीच में रमूं न
मैं अनजान।

चित्तरंजन! जो क्षणभंगुर है, उसका कोई भी मूल्य नहीं। जो अभी है और अभी नहीं हो जाए, वह पानी का बबूला है। कितना ही चमके सूरज की रोशनी में, हीरा वह नहीं है। यहां जो घटित हो रहा है तुम्हारे और मेरे बीच, उसके लुप्त होने की कोई संभावना नहीं। वह सच ही घटित हो रहा है। तुम्हारे मन की कल्पना नहीं है। न ही तुम्हारा आत्म-सम्मोहन है। न तुम्हारी मान्यता है। तुम्हारे ऊपर आनंद की एक वर्षा हो रही है। तुम्हारा हृदय-पात्र भर रहा है। तुममें पूजा और प्रार्थना के स्वर पैदा हो रहे हैं। इनके मिटने का कोई उपाय नहीं है। तुम चाहो भी तो इन्हें मिटा न सकोगे। तुम आंख चुराना भी चाहो तो जो सत्य तुम्हें एक बार दिखाई पड़ गए, उन सत्यों से बचने का कोई उपाय नहीं है। जो जान लिया गया, जान लिया गया। उसे अब झुठलाया नहीं जा सकता।
दूर जा सकते हो मुझसे, दूरी स्थान की होगी, लेकिन एक और तल है जहां दूरी असंभव है। प्रेम के जगत में न स्थान की कोई दूरी अर्थ रखती है, न समय की। प्रेम ऐसे जोड़ देता है कि टूटने की असंभावना हो जाती है। इसलिए चिंता न करो! चिंता लगती है, स्वाभाविक; क्योंकि इस जीवन में जो भी हम जानते हैं वह सब खो जाता है। इस जीवन का प्रेम आज फूल, कल राख हो जाता है। इस जीवन का यश, मान-सम्मान, सब धूल-धूसरित हो जाता है। यह जीवन ही आज नहीं कल कब्र में पड़ा होगा। यह देह मिट्टी हो जाएगी। यहां सब कुछ खो जाता है। इसलिए स्वभावतः जब अनंत की झलकें मिलनी शुरू होती हैं, तो मन में हजार शंकाएं उठती हैं--कहीं यह भी तो खो न जाएंगी?

शंकाएं स्वाभाविक हैं, लेकिन असत्य हैं, भ्रामक हैं। शंकाएं स्वाभाविक हैं, क्योंकि अतीत का सारा अनुभव यही है कि यहां कुछ भी टिकता नहीं।
तो जब पहली दफा हृदय में उमंग उठती है ध्यान की, तो डर लगता है--छूट तो
न जाएंगी, छिटक तो न जाएंगी? । कहीं ऐसा तो न होगा कि फिर पड़ जाऊं उसी गैर-ध्यान की अवस्था में, जिसमें कल तक था? जब पहली दफा किरण उतरती है तो भरोसा ही नहीं आता। क्योंकि अंधेरे में हम इतने जीए हैं, अंधेरा स्वाभाविक हो गया है, प्रकाश झूठ हो गया है। प्रकाश पर तो लोग सिर्फ कामचलाऊ भरोसा करते हैं। हिंदू हैं, मुसलमान हैं, ईसाई हैं, मंदिर भी जाते, मस्जिद भी जाते, गिरजे भी जाते, फूल भी चढ़ाते, अर्चना भी करते, मगर सब झूठी, ऊपर-ऊपर। भीतर जो जानते हैं, यह सब औपचारिकता है, एक सामाजिक व्यवहार है।
लेकिन चित्तरंजन, जो यहां घटित हो रहा है, वह न तो औपचारिकता है, न सामाजिक व्यवहार है। औपचारिकता के कारण तो कोई मेरे पास आएगा नहीं। मेरे पास आना तो महंगा सौदा है। औपचारिकता मात्र के लिए कौन मेरे पास आकर झंझट लेगा! मेरे साथ जुड़ना तो बदनाम होना है। मेरे साथ खड़े होना तो सारे समाज से बगावत है, स्थापित स्वार्थों से विद्रोह है। मेरे नाम के साथ जुड़ने के लिए भी साहस चाहिए। अदम्य साहस चाहिए।
मंदिर-मस्जिद जा सकता है कोई औपचारिकता से, क्योंकि जाने में प्रतिष्ठा मिलती है। हानि क्या है? लाभ ही लाभ है। अगर होगा कोई परलोक तो परलोक भी सम्हलता; और यह लोक भी सम्हलता है। मंदिर जाने वाला आदमी, मस्जिद जाने वाला आदमी धार्मिक समझा जाता है, प्रतिष्ठित समझा जाता है, सम्मानित होता है। अहंकार को पूजा मिलती है। अहंकार को नया-नयाशृंगार मिलता है। मेरे पास आओगे तो समाज कांटों के हार पहनाएगा। समाज गालियां देगा, अपमान करेगा। हजार तरह की कठिनाइयां जीवन में खड़ी करेगा। मेरे पास कोई औपचारिकता से तो नहीं आ सकता।
और मेरे पास किसी सामाजिक व्यवहार से आने का कोई कारण नहीं है। सामाजिक व्यवहार तो वहां होता है जहां पुरानी परंपरा होती है। हजारों साल की परंपरा से सामाजिक व्यवहार का जन्म होता है।
यहां तो सूरज की नई किरण पैदा हो रही है, जिसकी कोई परंपरा नहीं। यहां
तो कुछ नये का अवतरण हो रहा है, जिसका कोई अतीत नहीं। यहां तो कोरी किताब पर कुछ लिखावट की जा रही है; वेद नहीं, कुरान नहीं, बाइबिल नहीं। यहां तो केवल वे थोड़े-से लोग ही आ सकेंगे, जिनमें इतना दीवानापन है कि सामान्य स्वार्थों को, सुविधाओं को, सुरक्षाओं को एक तरफ रख दें। यहां तो बस परवाने आ सकेंगे। यहां तो शमा जली है। और परवाने का शमा के पास आना अपनी मृत्यु के पास आना है। मैं तुम्हें क्या दे सकता हूं? छीनूंगा। सब छीन लूंगा। तुम्हारा ज्ञान, जो तुम्हारी बड़ी संपदा है; तुम्हारे पक्षपात, तुम्हारे, शास्त्र, तुम्हारे संप्रदाय, तुम्हारे मंदिर-मस्जिद, तुम्हारे पूजागृह, तुम्हारी मूर्तियां, तुम्हारी प्रार्थनाएं, सब छीन लूंगा। चेष्टा तो यही है कि तुम ऐसे जलो, ऐसे भभको कि तुम्हारा अहंकार राख हो जाए। तब जो शेष रह जाएगा अग्नि के पार, वही तुम हो, वही तुम्हारा शाश्वत स्वरूप है। तभी तुम जानोगे तत्वमसि का अर्थ। वह तुम ही हो। तभी तुम जानोगे अहं ब्रह्मास्मि का अर्थ; कि मैं ब्रह्म हूं। तभी तुम्हारे सामने मंसूर का अनलहक, कि मैं सत्य हूं, इसकी जीवंत व्याख्या होगी। अनुभव से व्याख्या होगी।
इतने बड़े सत्य के करीब, इतने बड़े अनुभव के करीब मन बहुत बार डरेगा। यह अपने वश में है? यह अपनी औकात? यह अपनी पात्रता? कहीं ऐसा तो नहीं हैः एक झलक आई है स्वप्न में और खो जाएगी?
तुम कहते हो--
हुआ लुप्त पावन दर्शन यह अनुपम
हे भगवान
यह लुप्त होने वाली बात नहीं। यह दर्शन शुरू तो होता है, समाप्त नहीं।
यह प्रेम बसंत तो जानता है, पतझड़ नहीं।

पुरानी कहानियां कहती हैं सारी दुनिया की कि एक ऐसा समय था पृथ्वी पर
जब सिर्फ एक ही ऋतु होती थी--वसंत। फिर जैसे-जैसे आदमी पतित हुआ अपनी निर्दोषता से, वैसे-वैसे और-और ऋतुएं आनी शुरू हुईं। अब तो वसंत खो गया है। आता भी है तो पता नहीं चलता। बड़े-बड़े नगरों में कहां पता चलता है--कब पतझड़, कब वसंत? सीमेंट के रास्ते, सीमेंट के बड़े-बड़े मकान; न पत्ते झरते हैं, न फूल खिलते हैं, न कोयल कूकती है, न पपीहा पुकारता है; ट्रकों, बसों और कारों के हार्न सदा बजते रहते हैं। न पतझड़ की फिकर है, न वसंत की फिकर है। वही आपाधापी रोज चलती है। आकाश में बदलती होंगी ऋतुएं, लेकिन कौन आकाश को देखता है? किसके पास समय है, सुविधा है? कौन चांद-तारों को देखता है? रास्ते के किनारे लगे पोस्टर ही पढ़ने से फुर्सत नहीं मिलती, चांद-तारों को देखे तो कौन देखे? और आंखें तुम्हारी ऐसी धुंधली हो गई हैं क्षुद्र और व्यर्थ को देखते-देखते कि चांद-तारे भी देखोगे तो पक्का भरोसा नहीं आएगा कि हैं। सोचोगे कुछ भ्रम है।
चित्तरंजन, आंख खुलनी शुरू हुई है। दर्शन का यही अर्थ है। दर्शन का वही अर्थ नहीं है जो लोग आमतौर से समझते हैं। दर्शन कोई विचारधारा नहीं है। मैं तुम्हें कोई विचार नहीं दे रहा हूं। एक दृष्टि, एक आंख; ताकि तुम्हें वह दिखाई पड़ सके जो दिखाई पड़ना बंद हो गया है। और जब आंख मिलती है तो फिर एक ही ऋतु रह जाती है--वसंत। फिर पतझड़ आता ही नहीं। या कि पतझड़ भी वसंत हो जाता है। पत्तों का गिरना भी फूलों के खिलने से कम सुंदर नहीं होता फिर। दृष्टि बदली कि सृष्टि बदली।
तुम कहते हो--
पुनः स्वार्थ से भरे कीच में रमूं न
मैं अनजान।
कुछ बातें समझ लेनी जरूरी हैं। पहली बात। सारे तथाकथित धर्मों ने तुम्हें समझाया है, स्वार्थ छोड़ो; स्वार्थ पाप है; परार्थी बनो। और लोग चेष्टा भी करते हैं कि स्वार्थ छोड़ें, परार्थी बनें। लेकिन कोई उनसे पूछे कि परार्थी क्यों बनना चाहते हो? तो वह कहते हैं, स्वर्ग जाना है। कि पुण्य कमाना है। कि मोक्ष पाना है। मगर यह सब तो स्वार्थ की बात हुई। यह तो तुमने परार्थ को भी स्वार्थ की सेवा में संलग्न कर लिया। यह परार्थ कहां हुआ?
मेरे देखे, इस तरह परार्थ हो ही नहीं सकता। इसकी मूल प्रेरणा ही स्वार्थ है। स्वर्ग मिले; फिर कभी आवागमन के चक्कर में न पड़ना पड़ें; फिर कभी इस देह का बंधन न हो; फिर कभी गर्भ और मृत्यु, ये सब उपद्रव न हों; फिर यह संसार का जाल पुनः न पकड़े--यह सब स्वार्थ है। स्वयं के अर्थ है। स्वयं के हित में है। इसलिए परार्थ करो, सेवा करो, बीमारों के हाथ-पैर दबाओ, यह सब करो, लेकिन इस सबके पीछे जो हेतु है, वह स्वार्थ ही है। इसलिए दुनिया में परार्थ की शिक्षा दी जाती रही और स्वार्थ पलता रहा। और स्वार्थ छिप-छिपकर सूक्ष्म रूप लेता रहा। स्थूल अर्थों में परार्थी हो गए लोग, लेकिन सूक्ष्म अर्थों में और भी स्वार्थी हो गए। इस लोक का ही स्वार्थ नहीं, परलोक का स्वार्थ भी उन्हें ग्रसित कर लिया।
मैं तुम्हें कुछ और सिखाता हूं। मैं नहीं कहता स्वार्थ छोड़ो, मैं तो कहता हूंः स्व छोड़ो। स्वार्थ नहीं छूट सकता, जब तक स्व न जाए। स्वार्थ तो स्व की छाया है। इसलिए तुम स्वार्थ छोड़ोगे, स्व और घना हो जाएगा। तुम्हारे तथाकथित साधु-संन्यासी, मुनि-त्यागी-व्रती जितने अहंकारी होते हैं उतना कोई अहंकारी नहीं होता। स्वार्थ छोड़ दिया तो वह जो ऊर्जा स्वार्थ में संलग्न थी, वह सारी की सारी ऊर्जा स्व को और मजबूत करने लगी। वह जो स्वार्थ में लगा था श्रम, वही श्रम अब अहंकार को और भी मजबूत करने में लग गया। स्वार्थ क्या छोड़ते हैं, स्व और सघन होता है।
मैं तुमसे दूसरी ही बात कहता हूं। मैं कहता हूं, स्वार्थ की फिक्र ही
न करो, स्व जाने दो। स्वार्थ स्व की छाया है। और जहां स्व गया, स्वार्थ कैसे बचेगा? छायाओं से मत लड़ो, मूल को काट दो। पत्ते मत काटते रहो, जड़ ही काट दो।

और स्व को काटने के दो ही उपाय हैं। या तो प्रेम में ऐसे लीन हो जाओ परमात्मा के--और जब भी मैं कहता हूं परमात्मा तो ख्याल रखना, मेरा अर्थ ब्रह्मा-विष्णु-महेश से नहीं है, मेरा अर्थ मंदिर-गिरजों में पूजी जाने वाली प्रतिमाओं से नहीं है, जब भी मैं कहता हूं परमात्मा, तो मेरा अर्थ हैः यह विराट प्रकृति में छिपा हुआ रहस्य; इस विराट प्रकृति के भीतर छिपा हुआ संगीत। यह जो काव्य वृक्षों में है, पक्षियों की चहचहाट में है, चांद-तारों की रोशनी में है; यह जो रहस्य, यह जो अनूठा--जिसका न कोई और है न छोर-- अस्तित्व है, इसी का दूसरा नाम परमात्मा है। प्रेम में इसी को परमात्मा कहा गया है। तुम चाहो तो प्रकृति कहो, तुम चाहो तो अस्तित्व कहो।
लेकिन परमात्मा शब्द बड़ा प्यारा है, उसमें प्रकृति भी आ जाती, अस्तित्व भी आ जाता और कुछ ज्यादा भी, जो शब्दों में नहीं समाता, वह भी आ जाता है। अस्तित्व में तो वही आता है जो शब्दों में समाता है। प्रकृति में वही आता है जिसकी विज्ञान परख कर लेता है। जांच लेता है, माप कर लेता है। लेकिन परमात्मा में कुछ ज्यादा।
अस्तित्व और प्रकृति छोटे शब्द हैं। परमात्मा का बहुत कुछ उनमें आ जाता है लेकिन बहुत कुछ शेष रह जाता है। गद्य हिस्सा तो आ जाता है, पद्य हिस्सा छूट जाता है। वीणा तो आ जाती है लेकिन वीणा से उठने वाला संगीत छूट जाता है। ऊपर-ऊपर जो दिखाई पड़ता है, वह तो सम्मिलित हो जाता है, लेकिन भीतर-भीतर जो छिपा है, अंतर्धारा जो है--चैतन्य की--जो न प्रत्यक्ष है, न प्रत्यक्ष हो सकती है; जिसका होना ही परोक्ष है; वह छूट जाता है।
इसलिए परमात्मा शब्द का प्रयोग करता हूं।
परमात्मा का अर्थ हैः चैतन्य अस्तित्व। अस्तित्व धन चैतन्य। बाह्य-बाह्य तो प्रकृति है, भीतर-भीतर जो छिपा है गहन में, वह परमात्मा।
एक रास्ता है कि परमात्मा में अपने को डूबा दो तो स्व मिट जाए। न रहेगा बांस न बजेगी बांसुरी। फिर छाया न पड़ेगी। कहानियां कहती हैं कि स्वर्ग में देवता चलते हैं तो उनकी छाया नहीं बनती। ये कहानियां बड़ी प्रीतिकर हैं। जैसे मैंने तुमसे कहा कि पुरानी कहानियां कहती हैं एक ऐसा समय था, जब पृथ्वी पर केवल वसंत ही होता था--एक ही ऋतु। वह कहानी ही है। ऐसा कोई समय नहीं था पृथ्वी पर जब एक ही ऋतु होती थी। लेकिन इस पृथ्वी पर ऐसे लोग जरूर हुए हैं जिनके लिए एक ही ऋतु होती है--बुद्ध, कृष्ण, महावीर, कबीर, नानक, पलटू। ऐसे लोग इस पृथ्वी पर होते रहे हैं जिनको एक ही ऋतु का पता है। जिन्होंने ऋत को जान लिया, उनके लिए एक ही ऋतु रह जाती है। जिन्होंने इस जीवन के शाश्वत रहस्य को समझ लिया, उनके लिए बस वसंत ही वसंत है। पतझड़ भी उनके लिए वसंत की ही तैयारी है। उनके लिए मृत्यु भी जीवन का द्वार है, जीवन का दूसरा पहलू है। उनके लिए अंधेरा भी बस प्रकाश के प्रकट होने के लिए एक अवसर है। उन्हें अंधेरे से अंधेरी रात में भी सुबह के दर्शन होते हैं। अमावस की रात के गर्भ में भी सूरज ही छिपा है।
ऐसे लोग हुए, ऐसे लोग अब भी हैं, जिनके लिए एक ही ऋतु होती है। मैं तुमसे कहता हूं कि मेरे लिए एक ही ऋतु है--वसंत। यह जो गैरिक वस्त्र मैंने तुम्हारे लिए चुने हैं, यह वसंत का रंग है। यह वासंती रंग है। यह उस एक ऋतु की याद दिलाने को है कि जल्दी तुम्हें भी उस जगह आ जाना है जहां एक ही ऋतु रह जाए।
स्व जाना चाहिए, स्वार्थ की चिंता ही न करो। स्व गया तो स्वार्थ तो अपने से जाएगा। तुम ही चले गए तो तुम्हारी छाया भी चली जाएगी। इसलिए मैं नहीं सिखाता परार्थ। बहुत लोगों को हैरानी होती है। मेरे पास कितने पत्र आते हैं--सैकड़ों पत्र--कि आप अपने संन्यासियों को सेवा की शिक्षा क्यों नहीं देते? कि वह कुछ सेवा करें! थोड़ा उनको परार्थ सिखाएं। कहीं ऐसा न हो कि वे स्वार्थी रह जाएं। मैं स्वार्थ छोड़ने को भी नहीं कह सकता, मैं परार्थ सिखा भी नहीं सकता। मेरे देखे हिसाब ही और है। स्व जाता है तो स्वार्थ चला जाता है। और जब स्वार्थ चला जाता है, जो शेष रह जाता है उसका नाम परार्थ है। उसको परार्थ भी नहीं कह सकते, इसलिए उस शब्द का मैं उपयोग नहीं करता।

जब स्व ही न रहा तो पर कौन? एक ही बचा। वही बचा। जब स्व ही न रहा तो सेवा कौन करे और किसकी करे? कबीर ने कहा हैः अब तो उठता हूं, बैठता हूं--यही पूजा। खाता हूं, पीता हूं--यही सेवा। चलता हूं, फिरता हूं--यही परिक्रमा। फिर तो श्वास लेना ही मंत्र-पाठ है। गायत्री है। ओमकार है। नमोकार है। फिर तो होना मात्र सेवा है। लेकिन सेवा जैसे छोटे शब्द का प्रयोग नहीं किया जा सकता अब। होना इतने प्रेम से भरपूर है, लबालब, कि तुम्हारे होने के छींटे दूसरों पर उड़ने लगते हैं; कि तुम्हारा होना बहने लगता है, ऊपर से बहने लगता है--तुम्हारा पात्र इतना भर जाता है; कि दूसरों तक तुम्हारे आनंद की झलक पहुंचने लगती है; तुम्हारी गंध उड़ने लगती है हवाओं में, दूसरों के नासापुटों में भरने लगती है। मगर इसको परार्थ नहीं कहा जा सकता। स्व ही नहीं रहा हो तो परार्थ कौन? एक ही बचा। वही तुम हो, वही और भी है।
इसलिए इस डर में तो पड़ो ही मत, चित्तरंजन, कि कहीं फिर तुम स्वार्थ में
तो न गिर जाओगे! हां, अगर तुमने पुरानी शिक्षाओं को ही याद रखा, तो स्वार्थ से छूटे ही नहीं हो, गिरने का सवाल क्या उठता है? अगर मेरी शिक्षा को समझा, तो स्व से छूटने लगोगे। एक रास्ता प्रेम, परमात्मा में डुबकी मारो; एक रास्ता ध्यान, अपने में डुबकी मारो। डुबकी लगनी चाहिए, बस। डुबकी लगी कि स्व गया। परमात्मा में लग जाए तो चला जाता है, अपने में लग जाए तो चला जाता है। स्व रहता है किनारे पर चलने वालों के पास। जो कहीं भी डूब जाते हैं, उनका स्व खो जाता है। और डूबने के दो उपाय हैं। जो सुगम मालूम पड़े।
और चित्तरंजन, तुम्हें प्रेम ही सुगम मालूम पड़ेगा। तुम्हारी प्रकृति
के वही अनुकूल आएगा। डूबो रहस्य में यह जो चारों तरफ सघन होकर खड़ा है, अनंत-अनंत रूपों में प्रकट हो रहा है! आंदोलित होओ इसके साथ, नाचो, गाओ, डूबो!
जिनसे यह न हो सके, वे स्वयं में डूबें। आंख बंद करें, भीतर जाएं। जितने भीतर जाओगे, उतना ही अपने को कम पाओगे।
यह बड़ा विरोधाभास है।
लोग सोचते हैं, भीतर जाएंगे तो स्वयं को पाएंगे। जो ऐसा सोचते हैं, उन्होंने शास्त्र पढ़े हैं, अनुभव नहीं किया। उन्होंने ध्यान के संबंध में सुना होगा, स्वाद नहीं लिया। भीतर जितने जाओगे, उतना ही पाओगे कि तुम नहीं हो। जिस दिन अपनी अंतिम गहराई छू लोगे, उस दिन पाओगे--मैं जैसी कोई चीज ही नहीं। एक झूठ था, एक असत्य था, जो अपने से अपरिचित होने के कारण निर्मित हो गया था। जब आत्म-परिचय होगा, स्व गया। और स्व के साथ स्वार्थ गया। फिर बजती है धुन, बजता है इकतारा!
नहीं, तुम अब डूब न सकोगे स्वार्थ में, क्योंकि मैं स्व को तोड़ रहा हूं।
तुम कहते हो--
पुनः स्वार्थ से भरे कीच में रमूं न
मैं अनजान।
तुम्हारी प्रार्थना तो उचित है; तुम्हारा भय तो उचित है; तुम्हारे भय
को मैं समझता--ड़र लगता है; इतने दिन तक स्वार्थ में जीए हैं; यहां मेरी छाया में, यहां मेरी सन्निधि में, यहां इतने दीवानों के साथ भूल जाता है सब संसार, भूल जाता है सब स्वार्थ; कहीं घर जाकर वापिस तो न लौट आएगा? घर में बैठ कर प्रतीक्षा तो न कर रहा होगा कि आओ घर चित्तरंजन, फिर देखेंगे!! कि घर तो आओ एक बार! ... मेरी बात समझोगे तो कोई उपाय स्वार्थ के लौटने का नहीं। और मत कहो उसे कीचड़!
यहां भी मेरा भेद है।
अब तक जो कहा गया हैः संसार कीचड़, वह निंदा के लिए कहा गया है। संसार
की निंदा करने के लिए कीचड़ शब्द का प्रयोग किया गया है। मैं भी कहता हूं संसार कीचड़, लेकिन निंदा के लिए नहीं। मैं कहता हूं संसार कीचड़, क्योंकि यहां कमल पैदा होते हैं। कमल बिना कीचड़ के पैदा नहीं होते। मैं कीचड़ को भी सम्मान देता हूं। क्योंकि मेरे लिए कीचड़ कमल का ही छिपा हुआ रूप है-- अनभिव्यक्त कमल है। मत कहो कीचड़, पुरानी भाषा का उपयोग मत करना, पुराने अर्थों में मत करना। क्योंकि कीचड़ शब्द कहते ही से हमारे मन में एक निंदा

का भाव पैदा होता है कि अरे, कीचड़! कीचड़ शब्द कहते ही से मन होता है, सम्हाल लो अपने कपड़े और बच कर निकल जाओ।
तुम अगर कीचड़ से बचे तो कमलों से बच जाओगे। और कमलों से बच गए तो जीवन अकारथ गया। कीचड़ कमल बनती है, तो कीचड़ भी सम्मानित है। कीचड़ कमल बनती है, तो कीचड़ भी परमात्मा है।
इसलिए कहीं संसार से न भागना है, न त्यागना है। कीचड़ जैसे शब्दों को
भी बहुत सावधानी से प्रयोग करो, क्योंकि उनमें पुराने अर्थ इतने गहरे घुस गए हैं कि तुम्हें पता भी न चलेगा, जब भी तुम कीचड़ शब्द कहोगे, अचेतन में पुराने ही स्वर गूंजेंगे। हालांकि मैं नये अर्थ दे रहा हूं। लेकिन पुराने अर्थ इतने पुराने हैं, सदियों पुराने हैं, उनकी खूब गहरी छाप हो गई है, आदत हो गई है। वह जो पलटू कहते हैं न कि बनिया है, कि डंडी मारता ही जाता है! आदतवश! तय भी कर लेता है कि अब ऐसा नहीं करूंगा तो भी किए चला जाता है। ऐसे ही हमारे शब्दों के साथ संयोग बनते हैं, अर्थ बनते हैं।
स्वार्थ छोड़ना नहीं है, स्व को विदा करना है। और स्व को विदा करना है
तो स्वयं की ज्योति जगे। ध्यान की हो या भजन की हो, मगर ज्योति जगे--स्व चला जाएगा। और जहां स्व गया, वहां सेवा ही सेवा है। और वह सेवा कर्तव्य नहीं है, वह सेवा परार्थ नहीं है, वह सेवा आनंद है। और जहां स्व गया, वहां कीचड़ में कमल खिलने लेंगे। वहां मिट्टी में अमृत की झलक आने लगेगी। वहां मृण्मय चिन्मय होने लगता है।
मिट्टी का दीया बनाते हैं न दीपावली को और उसमें ज्योति जलाते हैं।
वह प्रतीक है। वह प्रतीक है इस बात का कि मिट्टी के दीये में अमृत ज्योति सम्हाली जा सकती है। मिट्टी के दीये में अमृत ज्योति जल सकती है।
भारत में दीवाली मनाए जाने के दो कारण हैं। एक तो हिंदुओं का कारण है
और एक जैनों का कारण है। हिंदुओं का कारण तो बहुत बहुमूल्य नहीं है, लेकिन जैनों का का कारण जरूर बहुमूल्य है। हिंदू तो मनाते हैं दीपावली--लक्ष्मी की पूजा का त्यौहार; धन की पूजा का त्यौहार। इससे ज्यादा और भौतिकवाद क्या होगा? लोग सिक्के, चांदी के सिक्के रख कर उनकी पूजा करते हैं! और ये ही भले लोग दुनिया भर में घोषणा करते हैं कि भारत जैसा धार्मिक देश नहीं है। दुनिया के किसी कोने में धन की पूजा नहीं होती, सिवाय भारत को छोड़ कर, लक्ष्मी की पूजा कहीं नहीं होती। अमरीकन भी, जो डालर का दीवाना है, वह भी डालर को रख कर पूजा नहीं करता। वह भी इस बात को मूढ़तापूर्ण समझेगा। लक्ष्मी की पूजा इस पुण्यभूमि में ही होती है, इस धर्मभूमि में ही होती है! इससे बड़ा और भौतिकवाद क्या होगा? इस देश का सबसे बड़ा त्यौहार है दीपावली। और सबसे बड़ा त्यौहार समर्पित है चांदी के सिक्कों के लिए! धन की पूजा! और त्याग की बातें।
जैनों का कारण ज्यादा सार्थक है। जैन इसलिए दीपावली मनाते हैं कि उस रात, अमावस की रात महावीर निर्वाण को उपलब्ध हुए। उस रात मिट्टी के दीये में, मृण्मय दीये में चिन्मय ज्योति जगी। इसलिए दीये जलाते हैं। उनकी बात तो कुछ सार्थक मालूम पड़ती है। मगर वह भी बात है! जैन भी करते तो हैं पूजा चांदी के ही सिक्कों की। जैन-घरों में भी लक्ष्मी की ही पूजा होती है। औपचारिक रूप से दीपावली के बाद दूसरे दिन सुबह निर्वाण लाडू चढ़ा देते हैं भगवान पर कि लो, तुम्हारा भी निपटा देते हैं! रात तो पूजा करते हैं चांदी के सिक्कों की, सुबह भगवान पर निर्वाण के लाडू चढ़ा देते हैं। तुम से भी छुटकारा ले लिया! चलो तुम भी ले लो!
मौलिक अर्थ में तो बात महत्वपूर्ण थी।
इसलिए भी महत्वपूर्ण थी... बुद्ध को तो ज्ञान हुआ पूर्णिमा की रात। समझ में आता है कि पूर्णिमा की रात्रि कोई पूर्णता को उपलब्ध हो जाए। पूरा चांद आकाश में हो और भीतर भी पूरा चांद आ जाए। महावीर का निर्वाण हुआ... अमावस की रात। यह ज्यादा महत्वपूर्ण है! इसमें ज्यादा काव्य है! और ज्यादा अर्थवत्ता! अमावस की रात पूर्णिमा ऊगे भीतर, तो जीवन का जो विरोधाभास है वह साफ हो जाता है। कितना ही अंधेरा हो, घबड़ाना मत, अमावस की रात भी निर्वाण घटा है! और कितनी ही गंदी कीचड़ हो, घबड़ाना मत, कमल खिले हैं! और मिट्टी का दीया हो तो चिंता मत करना कि मिट्टी के दीये में क्या होगा?

ज्योति जल सकती है। मिट्टी पृथ्वी का हिस्सा है, ज्योति आकाश का।... इसलिए ज्योति हमेशा ऊपर की तरफ भागती रहती है। ज्योति हमेशा ऊर्ध्वगामी है। तुम चित्तरंजन, न तो चिंता करो स्वार्थ की--क्योंकि मैं स्व को काट रहा हूं--न चिंता करो कीचड़ की--क्योंकि कीचड़ कहां है, कमल ही कमल हैं! कुछ प्रकट हो गए हैं, कुछ प्रकट होने को हैं। कुछ बीज में हैं, कुछ फूल बन गए हैं। कीचड़ है कहां? यह सारा अस्तित्व--कीचड़ सहित--परमात्मा से परिपूर्ण है। वही है। वह एक ही है। और उसकी ही झलकें तुम्हें मिलनी शुरू हुई हैं। अभी झलकें हैं, इसलिए डर लगता है। जल्दी ही झलकें स्थिर हो जाएंगी और डर विदा हो जाएगा।
जुनूने-इश्क की रस्मे-अजीब, क्या कहना,
मैं उनसे दूर वो मुझसे करीब, क्या कहना।

जो तुम हो बर्के-नशेमन, तो मैं नशेमने-बर्क,
उलझ पड़े हैं हमारे नसीब, क्या कहना।

हुजूमे-रंग फरावां सही, मगर फिर भी,
बहार, नौहा-ए-सद-अंदलीब, क्या कहना।

हजार काफिला-ए-जिंदगी की तीरा-शबी।
ये रोशनी-सी उफक के करीब, क्या कहना।

लरज गई तेरी लौ मेरे डगमगाने से,
चरागे-गोशा-ए-कू-ए-हसीब, क्या कहना।
उस प्यारे की गली की क्या बातें कहें!
लरज गई तेरी लौ मेरे डगमगाने से,
अगर तुम डगमगाओ तो परमात्मा की लौ भी डगमगाती है तुम्हारे साथ। वह तुम्हारे साथ है। वही तुम्हारा जीवन-स्रोत है!
लरज गई तेरी लौ मेरे डगमगाने से,
चरागे-गोशा-ए-कू-ए-हबीब, क्या कहना।
प्यारे की गली के इस दीपक की भी बात कैसे कहें, किससे कहें? कि जब मैं डगमगाया, तो दीये की लौ भी डगमगा गई! मैंने साथ-साथ परमात्मा को नाचते देखा है।
तुम जब नाचो, वह भी नाचता है। तुम जब गाओ, वह भी गाता है।
हजार काफिला-ए-जिंदगी की तीरा-शबी
रात्रि का कितना ही अंधकार हो, घबड़ाना मत! काफिला कितने ही अंधेरे से गुजरता हो, घबड़ाना मत!
हजार काफिला-ए-जिंदगी की तीरा-शबी
ये रोशनी-सी उफक के करीब, क्या कहना।
लेकिन जरा पूरब की तरफ देखो, क्षितिज की तरफ देखो, सूरज ऊगने को है। यह रोशनी उठने लगी है। यह बदलियों में रंग आने लगा। ये सुबह की पहली किरणें फूटने लगी हैं।
हजार काफिला-ए-जिंदगी की तीरा-शबी
ये रोशनी-सी उफक के करीब, क्या कहना।

लरज गई तेरी लौ मेरे डगमगाने से,
चरागे-गोशा-ए-कू-ए-हबीब, क्या कहना।
जो तुम हो बर्के-नशेमन... अगर तुम नशेमन की बिजली हो, तो मैं नशेमने- बर्क... तो मैं बिजली का नशेमन हूं।
जो तुम हो बर्के-नशेमन, तो मैं नशेमने-बर्क,
उलझ पड़े हैं हमारे नसीब, क्या कहना।
हमारा भाग्य परमात्मा से उलझा है। हमारे तार-तार उससे उलझे हैं।
सुलझने का कोई उपाय नहीं है। वह हमारे भीतर समाया है, हम उसके भीतर समाए हैं।

जो तुम हो बर्के-नशेमन तो मैं नशेमने-बर्क उलझ पड़े हैं हमारे नसीब, क्या कहना।

हजार काफिला-ए-जिंदगी की तीरा-शबी
ये रोशनी-सी उहक के करीब, क्या कहना।

लरज गई तेरी लौ मेरे डगमगाने से,
चरागे-गोशा-ए-कू-ए-हबीब, क्या कहना।

जुनूने इश्क की रस्मे-अजीब, क्या कहना,
यह प्रेम का ढंग बड़ा अजीब है। यह प्रेम की दुनिया बड़ी अजीब है। यह प्रेम की शैली बड़ी अजीब है; इसके रिवाज बड़े अजीब हैं।
जुनूने इश्क की रस्मे-अजीब, क्या कहना,
प्रेम तो पागल है और पागलपन के तो रास्ते अजीब होंगे ही।
जुनूने-इश्क की रस्मे-अजीब, क्या कहना,
मैं उनसे दूर वो मुझसे करीब, क्या कहना।
तुम उनसे कितने ही दूर रहो, वे तुम्हारे करीब ही हैं। तुम कहीं भी जाओ,
वे तुम्हारे करीब ही हैं।
चित्तरंजन, तुम्हारा भाग्य भी मुझसे उलझ गया।
जुनूने-इश्क की रस्मे-अजीब, क्या कहना,
मैं उनसे दूर वो मुझसे करीब, क्या कहना।

जो तुम हो बर्के-नशेमन, तो मैं नशेमने-बर्क,
उलझ पड़े हैं हमारे नसीब, क्या कहना।

हुजूमे-रंग फरावां सही, मगर फिर भी,
बहार, नौहा-ए-सद-अंदलीब, क्या कहना।

हजार काफिला-ए-जिंदगी की तीरा-शबी
ये रोशनी-सी उफक के करीब, क्या कहना।

लरज गई तेरी लौ मेरे डगमगाने से,
चरागे-गोशा-ए-कू-ए-हबीब, क्या कहना।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
गुरु गोविंद दोऊ खड़े
काके लागूं पांय?

आनंद बोधिधर्म! कबीर ने किसी और अर्थ में कहा है, तुम किसी और अर्थ में समझे। कबीर ने तो प्रतीक अर्थ में कहा है। कबीर ने कहा हैः
गुरु गोविंद दोई खड़े, काके लागूं पांय?
अगर ऐसा हो सकता हो कि गुरु और गोविंद दोनों सामने आ जाएं, तो मैं किसके पैर पहले लगूं? गुरु के पहले लगूं तो कहीं गोविंद का अपमान न हो जाए! और गोविंद के पहले लगूं तो कहीं गुरु का अपमान न हो जाए! क्योंकि गोविंद को आखिर दिखाया तो गुरु ने ही। पहचान तो गुरु ने करवाई। तो धन्यवाद पहले तो गुरु का होना चाहिए। लेकिन जब गोविंद सामने खड़े हों, तो पहले गुरु को धन्यवाद देना, कहीं शिष्टाचार में कोई कमी न हो जाए! कबीर ने तो बड़े प्रतीक अर्थ में कहा हैः
गुरु गोविंद दोई खड़े काके लागूं पांय।
बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय।
इस दूसरे हिस्से के दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ, जो सामान्यतः किया जाता है, वह तो यह है कि गुरु आपकी बलिहारी कि आपने इशारा कर दिया कि गोविंद के पैर लगो! क्या सोच-विचार में पड़े हो? यह कोई सोचने-विचारने की

बात है? जब गोविंद ही सामने खड़े हों, तो मुझे भूलो! गोविंद के पैर लगो। यह सामान्य अर्थ है जो किया जाता रहा है सदियों से। परंपरागत अर्थ यही है।
कबीरपंथी इसका ऐसा ही अर्थ करेंगे।
मैं इसका ऐसा अर्थ नहीं करता। मेरे देखे कबीरपंथी चूक गए। अक्सर पंथी चूक जाते हैं, कबीर-पंथियों का ही क्या कसूर है।
कबीरपंथ के जो सबसे प्रधान मठाधीश हैं, उनका पत्र मुझे मिला कि आप कबीर के ऐसे-ऐसे अर्थ कर रहे हैं जो हमारी परंपरा के खिलाफ हैं। मैंने उनको लिखवा दिया--तो होंगे खिलाफ, लेकिन मैं तो वही अर्थ करूंगा जो मुझे दिखाई पड़ता है। तुम्हें ठीक लगते हों तो अपनी परंपरा में सुधार कर लेना; और तुम्हें ठीक न लगते हों तो यह तुम्हारी समस्या है--यह मेरी समस्या नहीं--तो तुम परेशान हो लेना। मैं तो जो अर्थ कर रहा हूं वही करूंगा। क्योंकि यह अर्थ की ही बात नहीं है, यह दृष्टि की बात है।
मेरा अर्थ कुछ और है। जब कबीर कहते हैंः बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय, तो मेरा यह अर्थ है कि गुरु ने तत्क्षण दुविधा में देख कर शिष्य को... गुरु की तरफ शिष्य ने देखा होगा कि अब मैं क्या करूं? उसकी आंखों में यह भाव रहा होगा। उसके पूरे व्यक्तित्व में एक झिझक रही होगी--इधर या उधर? डांवाडोल रहा होगा। गुरु ने यह देख कर, तत्क्षण गुरु का हाथ गोविंद की तरफ उठ गया। लेकिन शिष्य ने गुरु के ही पैर पड़े हैं, गोविंद के नहीं। क्योंकि वह बलिहारी शब्द इस बात की खबर दे रहा है।
गुरु ने तो गोविंद की तरफ ही इशारा किया--करेगा ही। गुरु का सारा अर्थ यही है। गुरु है ही क्या सिवाय गोविंद की तरफ एक इशारा। और क्या है गुरु? एक इशारा गोविंद की तरफ, एक तीर गोविंद की तरफ। तो शिष्य को उलझन में देख कर इशारा किया है। लेकिन शिष्य क्या करे? वह बलिहारी शब्द में बात आ गई। कबीर कहते हैंः बलिहारी गुरु आपकी... । इसका मतलब यह है कि कबीर ने तत्क्षण गुरु के पैर छू लिए हैं। वह बलिहारी में ही पैर छू लिए। छूने ही पड़ेंगे। ऐसे गुरु के पैर न छुओगे तो क्या करोगे? और इससे कुछ गोविंद नाराज नहीं होने वाले। इससे गोविंद आनंदित ही होंगे।
जो सम्यक था, वही हुआ। गुरु ने इशारा किया गोविंद की तरफ--यह गुरु की खूबी, यह गुरु की महिमा। शिष्य ने गुरु के पैर छुए--फिर भी--यह शिष्य की महिमा। और गोविंद आनंदित हुए--यह गोविंद की महिमा।
तुम पूछते होः
गुरु गोविंद दोई खड़े काके लागूं पांय?
तो मैं तो इशारा करूंगा गोविंद की तरफ। मैं तो इशारा हूं गोविंद की तरफ। तुम मुझे भूलो। तुम मेरी चिंता ही न लो। यह दुविधा ही नहीं उठनी चाहिए।
झेन फकीर कहते हैं कि अगर रास्ते में बुद्ध मिल जाएं तो उठा कर तलवार गर्दन काट देना उनकी। झेन फकीर--बुद्ध के भक्त! सुबह से सांझ तक बुद्धं शरणं गच्छामि के वातावरण में जीते हैं, सारा जीवन बुद्ध को समर्पित है और ऐसी बात कहते हैं कि अगर बुद्ध रास्ते में मिल जाएं--उठा कर तलवार गर्दन काट देना। यह बुद्ध ने ही कहा है। ये बुद्ध के ही शब्द वे दोहरा रहे हैं। बड़े सार्थक शब्द हैं। बुद्ध ने कहा है कि मुझे भी बीच में आड़े मत आने देना। जब परम सत्य के साक्षात्कार का क्षण आए तो मुझे छोड़ आगे बढ़ जाना। अगर मैं बीच में खड़ा होऊं तो धक्का मार देना। कि उठा कर तलवार दो टुकड़े कर देना। यह गुरु की पराकाष्ठा।
सिर्फ मिथ्या गुरु कहेगा कि मुझे पकड़े रहो। सदगुरु तो कहेगा कि मुझे तभी तक पकड़े रहो जब तक परमात्मा पकड़ने को न मिल जाए। जैसे ही परमात्मा का हाथ तुम्हारे हाथ में आ जाए, तब फिर झिझकना मत। किसी आदत, किसी संस्कार, किसी अभ्यास के कारण मेरे हाथ को ही मत पकड़े रहना। क्योंकि मेरी कोई अगर प्रयोजनवत्ता है तो इतनी ही कि तुम्हें परमात्मा तक पहुंचा दूं।
तो मैं तो तुमसे कहता हूं कि गुरु गोविंद दोई खड़े, अगर ऐसी घड़ी आ जाए,
तो गुरु को तो बिल्कुल भूल ही जाना। जैसे है ही नहीं।
मगर सच में क्या भक्त को ऐसी घड़ी आती है? क्या शिष्य को ऐसी घड़ी आती है? इसलिए मैंने कहा कि कबीर ने जो कहा है वह तो केवल प्रतीक मात्र है। वह

तो इशारा है उनके लिए जो अभी उस ऊंचाई पर नहीं पहुंचे। उस ऊंचाई पर कहां दो!
... अब तुमसे तो मैं नहीं कह सकता, कबीर मिल जाएं तो उनसे कहूं कि नाहक
इस तरह की बातें लिखीं! उस ऊंचाई पर कहां दो! कबीर मिल जाएं तो मेरी झंझट होनी निश्चित है! क्योंकि मैं उनसे कहूंगा ही। कहीं-न-कहीं कभी-न-कभी मिलना होगा। तो उनसे मैं निश्चित ही कहूंगा कि जब वह परम घड़ी आती है जहां गोविंद के दर्शन होने का क्षण आ गया, वहां दो बचेंगे? वहां गुरु गोविंद है, वहां गोविंद गुरु है। वहां कैसे दो?
और वहां दुविधा बचेगी? गोविंद सामने खड़े हों और दुविधा बचे? यह तो हद्द हो गई कि सूरज निकल आया और अंधेरा बचे! सूरज निकल आया और अंधेरा सोच रहा है कि पैर पडूं किसके? सूरज निकल आया, अंधेरा गया। पैर पड़ने थोड़े ही पड़ते हैं, झुकना हो जाता है, अनायास, चेष्टा से नहीं। यह तो बड़ी चेष्टा हो गई; सोचा, विचारा--सोचा-विचारा ही नहीं, प्रतीक्षा की कि गुरु इशारा करे; गुरु ने इशारा किया--इतनी चिंता बचेगी वहां? इतनी दुई बचेगी वहां? दुई ही नहीं बल्कि त्रय थे। गुरु भी खड़े, गोविंद भी खड़े, शिष्य भी खड़ा--तीन खड़े! उस परम घड़ी में तीन? वहां एक ही होता है।
रामकृष्ण के पास कोई ले आया था रामकृष्ण की ही एक तसवीर। वे उसी का चरण छूने लगे। जब उन्होंने अपनी तसवीर के चरण छुए, बड़े भावविभोर होकर, उनकी आंखों से आंसू बहने लगे, तो विवेकानंद से न रहा गया। पास ही बैठे थे, विचारशील आदमी थे... रामकृष्ण और विवेकानंद एक ही ढंग के आदमी नहीं हैं। हो भी नहीं सकते। परिपूरक हैं। इसलिए जो काम रामकृष्ण नहीं कर सके। रामकृष्ण ने जाना, विवेकानंद ने दुंदुभी पीटी सारी दुनिया में। वह रामकृष्ण नहीं कर सके। वह उनके व्यक्तित्व का हिस्सा नहीं था। जान तो लिया लेकिन जना न सके। विवेकानंद ने स्वयं तो जाना नहीं, लेकिन जनवाया। इसलिए बड़ी झंझट हो गई कि जिसको पता था, वह बोला नहीं। कह नहीं सका। कहने में समर्थ नहीं था। और जिसको पता नहीं था, उसने कहा, लोगों को जाकर समझाया। तो गड़बड़ तो हो ही जाएगी।
एक ने देखा, जिसके पास आंख थी, लेकिन वह चुप रह गया। और जिसके पास आंख नहीं थी, उसने आंख वाले से प्रकाश की बातें सुनीं और सारी दुनिया में खबर पहुंचाई।
रामकृष्ण मिशन वस्तुतः रामकृष्ण मिशन नहीं, विवेकानंद मिशन है। इसमें रामकृष्ण का कुछ भी नहीं है। जो कुछ है विवेकानंद का है। विवेकानंद ने जो व्याख्याएं रामकृष्ण पर आरोपित कर दीं।
लेकिन अक्सर ऐसा हुआ है। एक ही व्यक्ति में दोनों बातें बड़ी मुश्किल
से होती हैं। जब किसी में होती हैं तो उसको हम बुद्ध कहते हैं, तीर्थंकर कहते हैं। बहुत से जानने वाले लोग पैदा हुए हैं, लेकिन कह नहीं पाए। और बहुत-से कहने वाले लोग पैदा हुए हैं, लेकिन बिना जाने कहा है। कभी-कभी ऐसा होता है कि कोई व्यक्ति गौतम बुद्ध या तीर्थंकर महावीर के ढंग का होता है, जिसमें दोनों बातें होती हैं। जो न केवल जान लेता है बल्कि जनाता भी है। उसको ही सदगुरु कहते हैं।
कबीर मिल जाएं तो मैं उनसे कहूंगा कि यह क्या बात हुई? शिष्य के सामने तीन खड़े होंगे? अगर शिष्य अभी इतनी उलझन में पड़ा है, इतनी दुविधा में, तो गोविंद प्रकट नहीं हो सकते। और अगर गोविंद प्रकट हो गए हैं, तो शिष्य दुविधा में हो नहीं सकता।
रामकृष्ण ने अपनी ही तस्वीर के पैर पर सिर रख दिया, विवेकानंद से बरदाश्त न हुआ, विवेकानंद ने कहा, परमहंस देव, आप यह क्या करते हैं? लोग हंसेंगे कि अपनी ही तस्वीर की पूजा! रामकृष्ण ने कहाः अरे, ठीक समय पर याद दिलाया। मैं तो भूल ही गया था। मैंने तो यह देखा ही नहीं कि यह मेरी तसवीर है। मुझे तो उसकी ही तस्वीर दिखाई पड़ी। मुझे तो समाधि की तस्वीर दिखाई पड़ी।... वह रामकृष्ण की समाधिस्थ अवस्था में ली गई तस्वीर थी। वे अलमस्त खड़े हैं। दोनों हाथ आकाश की तरफ उठे हैं। आनंदमग्न! ... उन्हें दिखाई ही न पड़ा कि यह मेरी ही तस्वीर है। कहां मेरी, कहां तेरी? उन्होंने तो देखा कि समाधि की तस्वीर है। समाधि के लिए सिर झुक गया।

जब अपनी तस्वीर के लिए रामकृष्ण सिर झुका लिए... और गोविंद सामने खड़े होंगे और शिष्य पूछेगा--गुरु गोविंद दोई खड़े काके लागूं पांय! नहीं, कबीर प्रतीक की बात कर रहे हैं! वे तुम्हें समझाने के लिए कह रहे हैं। यह कोई सत्य नहीं है, यह सिर्फ समझाने की एक विधि है। वे यह कह रहे हैं कि अगर ऐसी घड़ी आ जाए कि गुरु, गोविंद, दोनों सामने खड़े हों और तुम्हारे मन में दुविधा उठे, तो गुरु की तरफ देख लेना। वह इशारा कर देगा, कि गोविंद के पैर छू लो। लेकिन ध्यान रहे, धन्यवाद तो गुरु का ही है। क्योंकि उसने आखिरी क्षण में भी तुम्हारे लिए इशारा किया।
बुद्ध ने कहा हैः मुझे हटा देना रास्ते से। इसका क्या यह अर्थ है कि बुद्ध के भक्तों ने बुद्ध को रास्ते से हटा दिया है? जितने मंदिर बुद्ध के बने और जितनी प्रतिमाएं बुद्ध की बनीं, किसी की भी नहीं बनीं। क्यों? क्योंकि जिसने ऐसी अदभुत बात कही कि मुझे रास्ते से हटा देना, अप्प दीपो भव, अपने दीए खुद बनना, उसकी मूर्ति न बनाएं तो हम करें क्या? करें तो करें क्या? उसकी मूर्ति बनानी ही होगी। ऐसे सदगुरु के चरणों में सिर न झुकाएं तो करें क्या? ऐसे सदगुरु के प्रति अपूर्व कृतज्ञता का भाव पैदा होगा ही! कबीर ने प्रतीक बात कही।
लेकिन आनंद बोधिधर्म, तुम सोच रहे हो शाब्दिक अर्थ। वहां तुम्हारी चूक है। जाओ प्रेम में या जाओ ध्यान में, जिस दिन गहराई पर पहुंचोगे, वहां न कोई गुरु है, न कोई शिष्य है, न कोई गोविंद है। रह जाता है एक। उसको एक भी नहीं कह सकते, क्योंकि एक कहते से दो का ख्याल पैदा होता है। इसलिए जानने वालों ने उसे अद्वैत कहा है। एक भी नहीं कहा, इतना ही कहा कि वहां दो नहीं होते। अद्वैत का अर्थ होता है--दो नहीं। नहीं तो पागल नहीं थे, जानने वाले इतना ही कह देते कि वहां एक है। यह उल्टा चक्कर, इतने उल्टे हाथ को घुमा कर कान पकड़ना, कहना कि अद्वैत! सीधा क्यों नहीं कहते कि एक है! लेकिन कारण है। एक कहने में खतरा है। एक कहने से दो का भाव तत्क्षण पैदा होता है।
एक की परिभाषा क्या करोगे? बिना दो के एक हो कैसे सकता है? एक की सीमा कैसे खींचोगे? जिससे सीमा खींचोगे, वह दूसरा हो जाएगा। तुमने अपने घर के आस-पास जो बागुड़ लगा ली है, वह बागुड़ इसीलिए लगा ली है कि पड़ोसी रहता है। अगर तुम्हारे पड़ोस में कोई रहता ही न हो, तो बागुड़ का क्या प्रयोजन? बागुड़ कहां लगाओगे? सीमा कहां खींचोगे? दूसरा चाहिए तो सीमा बन सकती है। दूसरे से सीमा बनती है।
अगर तुम अकेले ही रह जाओ... समझ लो कि तीसरा महायुद्ध हो गया और संयोगवशात तुम अकेले बच गए--सब मर गए, एक अकेले तुम बच गए--तुम्हारा क्या नाम होगा? तुम्हारी क्या जाति होगी? क्या धर्म होगा? तुम काले होओगे कि गोरे? तुम भारतीय होओगे कि पाकिस्तानी? तुम लंबे होओगे कि ठिगने? ये सारी बातें खो जाएंगी। तुम तो होओगे, मगर न लंबे न ठिगने। क्योंकि यह तो तुलना थी दूसरों से। न गोरे न काले, क्योंकि यह भी तुलना थी दूसरों से। अगर तुम बिल्कुल अकेले रह गए, तो तुम अचानक पाओगे तुम्हारी सारी परिभाषा खो गई। तुम हो तो जरूर, लेकिन अब परिभाषा नहीं है।
लेकिन तीसरा महायुद्ध तुम्हें कितना ही अकेला कर दे, बिल्कुल अकेला नहीं करेगा। झाड़ बच जाएंगे, कोई पशु-पक्षी बच जाएंगे।...
कहानी है कि तीसरा महायुद्ध हो गया। एक बंदर उदास झाड़ पर बैठा है। और पास की गुफा से एक बंदरिया बाहर आई और बंदर से बोलीः भूख तो नहीं लगी है? बंदर ने बड़ी उदासी से बंदरिया की तरफ देखा, उसके हाथ की तरफ देखा--वह एक सेव लिए हुए है। और बंदरिया ने कहा कि यह सेव खा लो। बंदर ने सिर पीट लिया; उसने कहा, तो फिर से वही कहानी शुरू होगी!
ईसाइयों की कहानी है न कि ईव ने अदम को सेव खिलाया। वह सेव था ज्ञान के वृक्ष का फल। उसको खा कर पतन हुआ संसार का। उसको खाने से फिर बच्चे पैदा हुए, संसार चला। बंदर ने सिर ठोंक लिया, उसने कहा, फिर से शुरू करें क्या! उसको याद आ गई होगी पुरानी कहानी। अब फिर वही झंझट!! किसी तरह तो शांति हुई दुनिया में; यह फिर बंदरिया सेव लिए खड़ी है!
तो बंदर-बंदरिया, कोई-न-कोई बच जाएंगे। झाड़ बचेंगे, पशु-पक्षी थोड़े- बहुत बच जाएंगे, एकदम अकेले तुम नहीं हो पाओगे। लेकिन जो व्यक्ति ध्यान

में जाएगा, वहां बिल्कुल अकेले हो जाते हैं, एकदम अकेले हो जाते हैं। वहां कोई भी नहीं होता। वहां कोई सीमा-रेखा ही नहीं खींची जा सकती। वहां तुम असीम सागर होते हो, जिसका कोई कूल-किनारा नहीं। आकाश होते हो। वहां कहां की बातें--गुरु गोविंद दोई खड़े काके लागूं पांय!
तुमने कबीर से यह वचन ले लिया और तुम सोचने लगे कि अब मैं क्या करूं? अभी तुम उस अवस्था में पहुंचे नहीं। पहुंचे होते तो यह प्रश्न न पूछते। वहां कोई नहीं बचता। न गोविंद, न गुरु, न पांव छूने वाला, न छुलाने वाला। वहां एक पूर्ण शून्य है। उस शून्य का ही दूसरा नाम सच्चिदानंद है। सत है वहां, चित है वहां, आनंद है वहां। लेकिन वहां कोई दूसरा नहीं है। वहां कोई द्वैत नहीं है, दुई नहीं है।

तीसरा प्रश्नः भगवान,
न होशे हस्ती न ताबे मस्ती
कि तेरा शुक्रिया अदा करेंगे।
खिजां में है जब ये अपना आलम
बहार आई तो क्या करेंगे!

आनंद कपिल! अगर पतझड़ में ऐसी मस्ती है, तो वसंत में होगी करोड़-करोड़ गुना। भेद परिणाम का ही नहीं होगा, गुण का भी होगा। जब अंधेरी रात इतनी रोशन है, तो सुबह की रोशनी का क्या कहना! जब अंधेरी रात भी रोशन है, तो सुबह रोशन होगी, बहुत रोशन होगी। गुणात्मक रूप से भिन्न होगा वह प्रकाश। लेकिन तुम उसका अनुमान अभी से न लगा सकोगे। अनुभव ही करना होगा, अनुमान से काम न चलेगा।
लेकिन इतना ही काफी है आस्था के लिए कि अंधेरे में भी इतनी रोशनी हो
गई है; कि पतझड़ में भी इतना आनंद है। काफी है इशारा। समझो तो इशारा काफी है। देह में बंधे हुए भी इतना आनंद है, तो देहमुक्त होकर कितना होगा! संसार में रहते हुए इतना आनंद है--बाजार, दुकान; हजार उपद्रव, आपाधापी, फिर भी इतना आनंद है, तो इस सब जाल से पार उठ जाओगे तो कितना नहीं होगा! तुम्हारा प्रश्न मैं समझा। कल्पना करनी मुश्किल हो जाती है! हिसाब लगाना मुश्किल हो जाता है! बात है भी हिसाब के बाहर।
न होशे हस्ती न ताबे मस्ती
कि तेरा शुक्रिया अदा करेंगे।
अदा करने की कोई जरूरत ही नहीं। सबसे बड़ा धन्यवाद शिष्य का यही है कि धन्यवाद देने वाला न बचे। हो गया शुक्रिया अदा! सबसे बड़ा शुक्रिया यही है कि तुम मिट जाओ। तुम ऐसे मिटो कि तुम्हारी खोज-खबर भी न लगे। तुम ऐसे मिटो, ऐसे लापता हो जाओ कि तुम्हारा कोई पता भी न चले। यही धन्यवाद है! क्योंकि शिक्षा पूरी कर दी तुमने। गुरु का उपदेश पूरा हुआ। तुमने सुना, गुना, जीए। खिजां में है जब ये अपना आलम
बाहर आई तो क्या करेंगे!
कठिनाई है। रात में जब इतनी मस्ती है, तो सुबह क्या होगा? बस सुबह आने
के करीब है। मस्ती आ गई तो सुबह आने के करीब है। मस्ती सुबह की हवाओं के ही कारण तो है। सुबह करीब आ रही है, इसीलिए तो मस्ती घनी हो रही है। सूरज ऊगने के करीब है, इसीलिए तो भीतर आनंद उमग रहा है। चिंता न करो, जल्दी घटना घट जाएगी। घटना घट जाएगी, तभी जान सकोगे। मैं उस संबंध में तुमसे कुछ भी न कह सकूंगा।
राजे-सर-बस्ता मुहब्बत के जबां तक पहुंचे
बात बढ़ कर ये खुदा जाने कहां तक पहुंचे।

तेरी मंजिल पे पहुंचना कोई आसान न था
सरहदे-अक्ल से गुजरे तो यहां तक पहुंचे।

इब्तिदा में जिन्हें हम नंगे-वफा समझे थे होते होते वो गिले, हुस्ने-बयां तक पहुंचे।

आह, वो हर्फे-तमन्ना कि न लब तक आए
हाय, वो बात कि इक-इक की जबां तक पहुंचे।

न पता संगे-निशां का न खबर रहबर की
जुस्तुजू में तेरे दीवाने यहां तक पहुंचे।

साफ तौहीन है ये दर्दे-मुहब्बत की हफीज
हुस्न का राज हो और मेरी जबां तक पहुंचे।

नहीं, मैं तुमसे नहीं कह सकूंगा। कोई नहीं कह सका है।
साफ तौहीन है ये दर्दे-मुहब्बत की हफीज
यह तो तौहीन हो जाएगी। यह तो प्रेम के उस अनुभव का अपमान हो जाएगा।
साफ तौहीन है ये दर्दे-मुहब्बत की हफीज
हुस्न का राज हो और मेरी जबां तक पहुंचे।
नहीं, शब्दों में उसे नहीं कहा जा सकता। शब्द बहुत छोटे हैं, बहुत ओछे हैं, बहुत संकीर्ण हैं। अनुभव बहुत विराट है, बहुत असीम है, बहुत अनंत है। न पता संगे-निशां का न खबर रहबर की
जुस्तुजू में तेरे दीवाने यहां तक पहुंचे।
आएगी वह मंजिल भी, जहां मील के पत्थर भी नहीं बचते। सब नक्शे व्यर्थ
हो जाते हैं। सब कही-सुनी बातें व्यर्थ हो जाती हैं। बुद्धों ने जो कहा है, जाग्रत-पुरुषों ने जो कहा है, वह भी छूट जाता है। क्योंकि जो नहीं कहा जा सकता, वैसी मंजिल के पांव करीब आने लगते हैं।
न पता संगे-निशां का न खबर रहबर की
वहां मील के पत्थर नहीं, नक्शे नहीं, हिसाब-किताब नहीं, रास्ते नहीं-- इतना ही नहीं, जो अब तक साथ ले आया था, रहबर, उसका भी अब पता नहीं चलता। गुरु का भी पता नहीं चलता।
न पता संगे-निशां का न खबर रहबर की
जुस्तुजू में तेरे दीवाने यहां तक पहुंचे।
जो खोजता ही चलता है, जिसकी खोज ऐसी दीवानी है कि पाकर ही रहूंगा, जो परवाना है, जो मरने और मिटने को भी तैयार है, वह जरूर एक ऐसी मंजिल तक भी पहुंचता है जहां सब पीछे छूट जाते हैं--शास्त्र, सिद्धांत, शब्द, संगी- साथी, रहबर भी। व्यक्ति बिल्कुल अकेला रह जाता है। चैतन्य मात्र रह जाता है।
तेरी मंजिल पे पहुंचना कोई आसान न था
सरहदे-अक्ल से गुजरे तो यहां तक पहुंचे।
ऐसी मंजिल तक पहुंचने में एक ही कठिनाई है, वह है तुम्हारी अक्ल, तुम्हारी बुद्धि, तुम्हारा सोच-विचार, तुम्हारा कल्प-विकल्पों से भरा हुआ चित्त, तुम्हारे चित्त की तरंगें।
तेरी मंजिल पे पहुंचना कोई आसान न था
सरहदे-अक्ल से गुजरे तो यहां तक पहुंचे।
वही पहुंच पाता है उस मंजिल तक, जो बुद्धि की सीमा के पार चला जाता है।
अब मैं जो भी कहूंगा, अगर वह उसे सार्थक बनाना है, तो वह बुद्धि की सीमा में होगा। तुम जो भी समझोगे, वह बुद्धि की सीमा में होगा। कहा और सुना बुद्धि की सीमा में है और पहुंचना बुद्धि की सीमा के पार है।
तुम्हारा प्रश्न तो ठीक है, आनंद कपिल, कि अभी ऐसी मस्ती है, अभी ऐसी बेहोशी है, अभी ऐसा रस बह रहा है, जब कि अभी पतझड़ है, तो वसंत में क्या होगा? जब मधुमास आ जाएगा तो क्या होगा? आने दो, तो जान सकोगे। आने दो, तो ही जान सकोगे। मैं उस संबंध में कुछ भी नहीं कह सकता हूं।
साफ तौहीन है ये दर्दे-मुहब्बत की हफीज
हुस्न का राज हो और मेरी जबां तक पहुंचे।
यह राज राज ही रहने दो। यह रात राज ही रहेगा। यह रहस्य टूटता नहीं, यह तिलिस्म टूटता नहीं, यह जादू है। इसे जादू ही रहने दो। इसे खोल कर समझाया

नहीं जा सकता। हां, तुम्हें ले चल सकता हूं उस सीमा तक, जिसके पास यह सारा राज अनुभव में आता है। तुम्हें धक्का दे दूंगा उस सीमा के पार।
तेरी मंजिल पे पहुंचना कोई आसान न था
सरहदे-अक्ल से गुजरे तो यहां तक पहुंचे।
इसीलिए तो कह रहा हूं कि डूबो संन्यास में। क्योंकि यह अक्ल की सरहद
के पार की बात है। और जो संन्यासी है, उसको ही मैं धक्का दे सकता हूं। क्योंकि जो इतने दूर साथ आया, जो इतना दीवाना है, वह यह आखिरी धक्का भी सह लेगा और नाराज न होगा। उसे ही मैं अक्ल की सरहद के पार धक्का दे सकता हूं। वह धक्का कठिन है। जब दिया जाता है तो बहुत पीड़ा होती है। क्योंकि हम समझ को बहुत जोर से पकड़ते हैं। जो बात समझ में न आए, उस तरफ तो हम देखना ही नहीं चाहते, उसमें हमें बेचैनी होती है। और परमात्मा ऐसा ही है जो समझ में नहीं आ सकता। इसीलिए तो लोगों ने परमात्मा से पीठ मोड़ ली है, मुंह मोड़ लिया है। उसकी तरफ देखते ही नहीं। उसको इनकार ही करते हैं कि है ही नहीं। क्योंकि अगर है तो फिर कभी देखना पड़े, कभी आमना-सामना हो जाए। और आमना-सामना हो जाए तो बेचैनी होती है।
न पता संगे-निशां का न खबर रहबर की
जुस्तुजू में तेरे दीवाने यहां तक पहुंचे।
चले चलो! बुद्ध ने कहा हैः चरैवेति, चरैवेति। चले चलो, चले चलो, चलते
ही चलो! कहीं रुकना नहीं है। किसी पड़ाव पर ठहरना नहीं है। चले जाना है बुद्धि की सीमा के पार। पतझड़ समाप्त हो जाएंगे। जानोगे जरूर ऐसा वसंत जिसका फिर अंत नहीं होता। एक दिन एक ही ऋतु रह जाएगी--वसंत की। वही सिद्धावस्था है। वही वृद्धावस्था है। वही निर्वाण है, मोक्ष है, कैवल्य है।

चौथा प्रश्नः भगवान, शिक्षा के क्षेत्र में गुलामी अपार है। पूना के वाडिया कालेज में दर्शनशास्त्र के अध्यापक के रूप में इंटरव्यू में चुने जाने पर भी नियुक्ति इसलिए नहीं दी गई, क्योंकि गेरुवा वस्त्र और माला न पहनने की शर्त को मैंने स्वीकार नहीं किया। अब परसों फिर पूना कालेज में इंटरव्यू में चुने जाने पर भी नियुक्ति के पहले वे मुझसे वचन चाहते हैं कि मैं गेरुवा वस्त्र न पहनूं और माला ज्यादा से ज्यादा वस्त्रों के भीतर रखूं। शिक्षक को इतनी स्वतंत्रता नहीं कि वह अपने ढंग से रह सके! और ऐसा गुलाम शिक्षक भविष्य की पीढ़ी का निर्माण करने का भार वहन करता है!

आनंद सत्य! शिक्षा तुम्हें स्वतंत्र करने को है भी नहीं। शिक्षा का सारा प्रयोजन तुम्हें गुलाम बनाए रखना है। शिक्षा अतीत की सेवा में संलग्न है। उसे भविष्य से कोई प्रयोजन नहीं है। शिक्षा तो न्यस्त स्वार्थों की सेविका है। जो भी शक्ति में हैं, उनका गुणगान करती है।
इस देश में अंग्रेजों का राज्य था तो शिक्षा अंग्रेजों का गुणगान करती थी। यूनियन जैक स्कूलों और कालेजों पर फहराता था। लांग लिव द किंग के गीत गाए जाते थे। जय हो सम्राट की! फिर आजादी आई। यूनियन जैक की जगह तिरंगा झंडा लहराने लगा। वे ही लोग जो यूनियन जैक के लिए नमस्कार करवाते थे विद्यार्थियों से, वे ही उन्हें पढ़ाने लगे पाठ--झंडा ऊंचा रहे हमारा! सारे जहां से अच्छा हिंदोस्तां हमारा! वे ही लोग जो कल गोरे साहबों की नकल करते थे, अचानक खादीधारी हो गए। गांधी टोपियां लगा लीं। एकदम से देश-भक्त हो गए। वे ही इतिहास लिखने वाले अध्यापक, जो शिवाजी को पहाड़ी चूहा कहते थे, वे ही कहने लगे कि शिवाजी महान राष्ट्र-भक्त थे। जो अट्ठारह सौ सत्तावन में हुए विद्रोह को सिर्फ एक साधारण सी बगावत कहते थे, वे उसे महाक्रांति कहने लगे। ये शिक्षाशास्त्री कहां थे उन्नीस सौ बयालीस में? अब वे ही स्वतंत्रता पर उपदेश देते हैं। पंद्रह अगस्त पर झंडा फहराते हैं। कल अगर कम्यूनिज्म आ जाएगा, तो ये ही लाल झंडा है हंसिया-हथौड़ा वाला फहराने लगेंगे।

ये तो गुलाम हैं। इनका तो धंधा इतना है कि जिसकी सत्ता हो, उसके गुणगान करें। ये तो स्तुति करने वाले लोग हैं। इनकी कोई अपनी आत्मा नहीं। और ऐसा इस देश में नहीं है, सारी दुनिया में ऐसा है।
शिक्षा न तो तुम्हें स्वतंत्रता देती है, न तुम्हें बगावत के स्वर देती है, न विद्रोह की आत्मा देती है, न तुम्हें सोच-विचार की क्षमता देती है, न तुम्हें व्यक्तित्व देती है। शिक्षा का तो काम है... शिक्षा तो एक कारखाना है, जिसमें तुम्हारी आदमियत को नष्ट किया जाता है और मशीनें ढाली जाती हैं! क्लर्क बनाए जाते हैं, डिप्टी कलेक्टर बनाए जाते हैं, स्टेशन मास्टर बनाए जाते हैं; पटवारी और तहसीलदार, पुलिसवाले--इनको ढालने का कारखाना है शिक्षा। अभी यहां आदमी नहीं पैदा होते। और अभी यहां आत्मा की तो बात ही मत उठाओ। संन्यासी को कैसे बरदाश्त करेंगे? क्योंकि संन्यासी तो उदघोषणा है बगावत की, विद्रोह की। संन्यासी का लक्ष्य अतीत नहीं है, भविष्य है। और संन्यासी तो चाहता है व्यक्ति की तरह जीए, भेड़ की तरह नहीं। और शिक्षाशास्त्र भेड़ें बनाता है। इसका प्रयोजन ही यही है।
इसलिए तो सरकार इतना खर्च करती है स्कूलों पर, कालेजों पर। तुम सोचते
हो तुम्हें शिक्षित करने को? तो तुम गलती में हो। तुम्हें मशीनों में ढालने को इतना खर्च किया जाता है; कि तुम जब विश्वविद्यालय से निकलो तो एक कुशल यंत्र की तरह उपयोगी हो जाओ। तुमसे यह अपेक्षा नहीं की जाती कि तुम खुद अपने ढंग से सोचने-विचारने लगो। राजनेता यह न चाहेंगे कि लोग सोचें। लोग सोचेंगे तो इन बुद्धू राजनेताओं को कौन राजनेता बनाएगा?
काश, तुम सोच सको तो तुम्हें देख कर हैरानी होगी कि दिल्ली में जो खेल चलते हैं, वे इतने बचकाने हैं, इतने मूढ़तापूर्ण हैं... और ये भाग्य निर्माता हैं देश के! और इनकी सारी आकांक्षा बस किसी तरह पद पर होने की है। न सिद्धांत का कोई सवाल है, न राष्ट्र का कोई सवाल है, न लोकहित का कोई सवाल है--हां, बातें करते हैं लोकहित की। क्योंकि लोकहित की बातें न करें तो वोट नहीं मिलता। सबको चिंता अपनी-अपनी है। मैं कैसे पद पर रहूं, इसके लिए जो भी करना पड़े वह सब करने को राजी हैं। सब तरह के समझौते करने को राजी हैं, मगर पद चाहिए।
अपने-अपने अहंकार की प्रतिष्ठा में लगे हुए ये लोग, तुम इनका सम्मान करते हो, सत्कार करते हो? जरूर तुम्हारे पास सोचने-विचारने की कोई क्षमता नहीं है। नहीं तो इतनी साधारण जड़बुद्धि के लोगों के हाथ में देश नहीं जा सकता।
इसलिए राजनेता नहीं चाहता कि विश्वविद्यालय से सोच-विचारशील लोग निकलें। वह चाहता है कि विश्वविद्यालय की प्रक्रिया में तुम्हारा सोच-विचार खतम हो जाए। सम्मान विश्वविद्यालय में मिलता भी नहीं सोच-विचार करने वाले को।
मुझे एक कालेज से निकाल दिया गया था! विद्यार्थी था तभी। मेरा कसूर? कसूर मेरा इतना था कि मैं ऐसे प्रश्न पूछता जो शिक्षक उत्तर नहीं दे पाते थे। अब इसमें मेरा क्या कसूर? शिक्षक को उत्तर देने में क्षमता ग्रहण करनी चाहिए। और अगर न दे सके तो कम से कम इतनी विनम्रता होनी चाहिए कि कहे कि क्षमा करें, मुझे इसका उत्तर मालूम नहीं है। न उतनी विनम्रता, न उतनी पात्रता। तो बेचैनी खड़ी हो गई।
दर्शनशास्त्र का मैं विद्यार्थी था, हालात ऐसे हो गए कि अगर दर्शनशास्त्र के प्रोफेसर मुझे देख लें कि मैं कक्षा में हूं, तो बाहर के बाहर लौट जाएं। तो मुझे भी तरकीब करनी पड़ती थी। मैं पहले से कक्षा में न आऊं। जब वे कक्षा में प्रवेश कर जाएं, तब भीतर से मैं प्रवेश करूं। क्योंकि फिर उनका भागना मुश्किल। वे मुझे देखते से ही पसीना-पसीना हो जाएं। और उनसे मैं कोई ऐसे सवाल नहीं पूछ रहा था जो नहीं पूछने चाहिए। दर्शनशास्त्र तो सवालों का ही शास्त्र है! उसमें तो जीवन की परम पहेलियों का ही सवाल है। मैं जानता था कि वे हनुमान जी के भक्त हैं। तो मैं हर सवा पूछने के बाद उनसे कहता कि छाती पर रख कर हाथ अनुमान जी की कसम खाकर कहो-- तुम्हें ईश्वर का अनुभव हुआ है? वे हनुमान जी की कसम खा नहीं सकते थे, क्योंकि उनके प्राण निकलते थे! तो अब वे कैसे कहें कि मुझे ईश्वर का अनुभव

हुआ है? और अगर ईश्वर का अनुभव नहीं हुआ है, तो मैं पूछताः आप जवाब कैसे दे रहे हैं?
वह हनुमान चालीसा अपने खीसे में रखते थे। मैं कहता कि निकालो हनुमान चालीसा, रखो हाथ में! फिर मुझसे मत कहना कुछ-न-कुछ हो जाए तो! मगर उत्तर मैं वह मानूंगा, जिसका तुम्हें अनुभव हुआ हो।
आखिर उन्होंने इस्तीफा लिख कर दे दिया और कहा कि या तो मैं शिक्षक रहूंगा या यह विद्यार्थी रहेगा। हम दोनों एक साथ नहीं रह सकते। प्रिंसिपल ने मुझसे बुलाया और कहा कि मैं जानता हूं, तुम्हारा कोई कसूर नहीं है। लेकिन मैं यह भी जानता हूं कि उनकी जगह अगर मैं भी होता, तो यही मुझे भी करना पड़ता। क्योंकि उनकी सारी कथा मैंने सुनी है। विद्यार्थियों से भी पता लगाया, उनसे भी पूछा, तो तुम उनको अड़चन दे रहे हो। और मैं यह भी नहीं कह सकता कि तुम गलत कर रहे हो। दर्शनशास्त्र का प्रयोजन वस्तुतः लिखा तो यही है किताबों में कि प्रश्नों की छानबीन की जाए, खोजबीन की जाए, जिज्ञासा की जाए। मगर हमें इन बातों से मतलब नहीं है। हमारा प्रयोजन है कि विद्यार्थी किसी तरह पास हों। नौ महीने खराब हो गए, तुम उनको एक इंच आगे नहीं बढ़ने देते, हर चीज में हनुमान, हनुमान चालीसा! और वे भी एक हैं कि वे हनुमान चालीसा को हाथ में ले सकते नहीं। तुम उन्हें जवाब देने नहीं देते। तो ये सारे विद्यार्थी... इनका क्या होगा? और वे हमारे पुराने शिक्षक हैं, अच्छे शिक्षक हैं; उनके कई विद्यार्थियों ने गोल्ड मेडल पाए हैं, हमारे कालेज की प्रतिष्ठा हैं, हम उनको छोड़ भी नहीं सकते। तो हमारी तुम से प्रार्थना है कि तुम्हीं छोड़ दो कालेज। उन्होंने मुझ से हाथ जोड़ कर कहा कि मेरी प्रार्थना है। क्योंकि हम तुम्हें निकाल भी नहीं सकते, क्योंकि तुमने कोई कसूर किया भी नहीं है।
मैंने वह कालेज छोड़ा। दूसरा कोई कालेज मुझे लेने को राजी नहीं, क्योंकि खबर पहुंच गई। खबर तो पहुंच ही रही थी नौ महीने से कि एक मुश्किल खड़ी हो गई है। जिस कालेज में जाऊं, वे कहें कि नहीं भाई, जगह ही नहीं है! एक प्रिंसिपल ने कहा कि जगह तो है--जगह सब कालेज में है, जहां-जहां तुम गए हो-- लेकिन एक शर्त पर हम तुम्हें रख सकते हैं कि तुम प्रश्न नहीं पूछोगे। इस शर्त पर मुझे कालेज में भर्ती किया। परीक्षा करीब आ रही थी, तो मुझे कहीं न कहीं भर्ती होना था। तो मैंने कहा कि ठीक है, मैं इस शर्त पर भर्ती होता हूं, लेकिन मेरी भी एक शर्त है कि मैं क्लास में मौजूद नहीं होऊंगा। क्योंकि वह जरा अड़चन बात है। कि मेरे सामने शिक्षक खड़ा हो, अंट-शंट बातें कर रहा हो, तो मैं प्रश्न न पूछूं... मैं भूल ही जाऊंगा यह शर्त! तो आप कृपा करके इतना और कर दें कि मेरी अनुपस्थिति में भी मुझे हाजिरी मिलनी चाहिए। वे इसके लिए भी राजी हो गए। तो मैं कालेज गया ही नहीं। और मुझे हाजिरी मिलती रही। इस तरह रास्ता बनाना पड़ा। उन्होंने कहा, यह ठीक है, इतना हम कर लेंगे। हाजिरी तुम्हें दे देंगे। मगर तुम जाना ही मत। क्योंकि अगर तुम्हें यह अड़चन है कि तुम रुक ही नहीं सकते बिना पूछे... !
तुम्हारे तथाकथित कालेज, विश्वविद्यालय लोगों की चेतना को मारने का काम करते हैं, जिलाने का नहीं। उनकी चेतना पर धार नहीं रखते हैं, बोथला करते हैं। उनके दर्पण को साफ नहीं करते--और धूल जमा देते हैं। यह बहुत मुश्किल मामला है विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धि को बचा कर निकल आना। कठिन मामला है। बहुत थोड़े लोग बच कर निकल पाते हैं। आश्चर्यजनक है जब कभी कोई विश्वविद्यालय से अपनी बुद्धि बचा कर निकल आता है।
विश्वविद्यालय के कुछ शिक्षक मुझे प्रेम करते थे। उनको लगता था कि मेरे साथ ज्यादती की जा रही है। लेकिन उनके भी मुंह बंद थे। क्योंकि उनकी भी नौकरी का सवाल था। वे यह भी नहीं कह सकते कि मेरे साथ ज्यादती की जा रही है। क्योंकि जो मेरे साथ खड़ा होगा, शायद उसको भी मजबूरी खड़ी हो, उसको भी छोड़ना पड़े।
मेरी आखिरी प्रतीक्षा थी। सारे पेपर हो गए थे, मुखाग्र परीक्षा थी, एम.ए.की। मेरे जो प्रधान थे, उनका मुझ पर बड़ा स्नेह था। उन्होंने मुझे घर बुला कर कहा कि देखो, अलीगढ़ विश्वविद्यालय के अध्यक्ष मुखाग्र परीक्षा के लिए आ रहे हैं। उनको तुम जैसे विद्यार्थी का कोई अनुभव नहीं होगा! हम तो

धीरे-धीरे तुमसे राजी हो गए हैं! तुम उनसे कुछ ऐसी बात कर देना, बिगाड़ मत कर लेना खड़ा। वे कुछ भी पूछें, तुम्हें उलटा प्रश्न नहीं पूछना है--जो तुम्हारी आदत है। तुम उनकी परीक्षा नहीं ले रहे हो, यह ख्याल रखना। और मैं बिल्कुल मौजूद रहूंगा, मैं भी मौजूद रहूंगा, और अगर तुमने जरा भी गड़बड़ की तो मैं पैर में पैर मारूं तो तुम समझ जाना। क्योंकि तुम्हें मैं जानता हूं, तुम्हारा कुछ पक्का नहीं है। तुम अभी हां कह दो और वहां भूल जाओ। तो मैं पैर में पैर मारूं तो सम्हल जाना कि तुम गड़बड़ कर रहे हो!
और जो किताब में लिखा है बस वही तुम्हें उत्तर देना है। उससे इंच भर इधर-उधर नहीं जाना है। किताब गलत या सही, इसकी तुम चिंता ही न करो। तुम्हें परीक्षा पास करनी है कि तुम्हीं किताब के गलत या सही होने की फिक्र करनी है? मैंने भी सोचा कि अब सब निपट ही गया है, यह आखिरी उपद्रव है, बस इसके बाद खतम हो जाएगा मामला, मैंने उनसे कहा, ठीक!
मगर मैं भूल गया। उन सज्जन का चेहरा ही देख कर मुझे ऐसा लगा कि इन महानुभाव को ऐसे छोड़ देना ठीक नहीं है। उनकी अकड़ ऐसी थी जैसे कि वे जानते हों। उन्होंने मुझसे पूछा कि भारतीय दर्शन और पाश्चात्य दर्शन में क्या भेद है? मैंने उनसे पूछा, दर्शन भी दो होते हैं? भारतीय आंख में और पाश्चात्य आंख में क्या भेद है? आंख आंख है। यह क्या बकवास लगा रखी है! मेरे शिक्षक एकदम जोर से पैर में पैर मारने लगे; मैंने उनसे कहा, तुम अपनी टांग अपनी जगह रखो! आप बीच में मत पड़ो। मैं इनसे निपट लूंगा अकेला, आप बिल्कुल बीच में न पड़ो! दर्शन तो एक है--क्या भारतीय? क्या अभारतीय? कोई दर्शन राजनीति है? अभारतीय दर्शन का क्या मतलब होता है? दर्शन का अर्थ है, सत्य का अनुभव, सत्य का साक्षात्कार! इसमें क्या भारतीय, क्या अभारतीय? जीसस को सत्य का साक्षात्कार हुआ--अभारतीय हो गया! और महावीर को हुआ तो भारतीय हो गया! सत्य तो सत्य है। आंख आंख है। रोशनी रोशनी है। न रोशनी पूरब की होती है, न पश्चिम की होती है। न आंख पूरब की होती है, न पश्चिम की होती है।
वे तो ऐसे सकते में आ गए कि वे भूल ही गए कि परीक्षा लेने आए हैं। और मेरी तो तुम आदत जानते हो, फिर मैं बोलता ही रहा! जब पूरा डेढ़ घंटा बोल चुका, तब मैंने उन्हें छोड़ा!
मेरे शिक्षक बाहर आकर मुझसे कहने लगे, सब तुमने कचरा कर दिया! अब पता नहीं वह आदमी क्या सोचेगा, क्या नहीं सोचेगा, क्या करेगा, क्या नहीं करेगा। मगर वे आदमी भले थे। उन्होंने मुझे सौ में से निन्यानबे अंक दिए। और मुझे अलग से बुला कर कहा कि क्षमा करना कि मैं सौ ही नहीं दे रहा हूं; क्योंकि उसमें कहीं ज्यादती न मालूम पड़े कि मैंने पक्षपात किया है, इसलिए सिर्फ निन्यानबे दे रहा हूं। देना मुझे सौ ही थे, क्योंकि तुम पहले विद्यार्थी हो जिसने विद्यार्थी की तरह व्यवहार किया है। नहीं तो मुर्दा, किताबों को दोहराते हैं! हालांकि तुमने मुझे नाराज बहुत किया, कई बार मुझे गुस्सा आने लगा था, मगर बात तुम्हारी सच थी। बात तुम ठीक ही कह रहे थे। तो हालांकि मेरे अहंकार को चोट लग रही थी लेकिन मेरी आत्मा गवाही दे रही थी कि तुम बात ठीक कह रहे हो।
यह शिक्षा की व्यवस्था, आनंद सत्य, तुम्हें अड़चन देगी। तुम्हें अगर शिक्षक होना हो तो तुम्हें कुछ समझौते करने होंगे। अगर तुम्हें समझौते न करने हों--और मैं तो कहूंगा कि मत करो समझौते; क्योंकि क्या मिलेगा समझौता करने से? रोटी-रोजी मिल जाएगी। रोटी-रोजी और तरह से भी पाई जा सकती है। रोटी-रोजी के लिए आत्मा नहीं बेचनी होती। लेकिन ये अड़चनें तुम्हें आएंगी। दोनों हाथों लड्डू नहीं हो सकते। या तो तुम आत्मवान हो सकते हो और या फिर तुम्हें थोड़े-बहुत समझौते करने पड़ेंगे।
मैं नहीं कहता क्या करो। मैं तो सिर्फ साफ कर देता हूं बात। इतनी साफ
है कि अगर तुम चाहते हो कि किसी विद्यालय में, किसी महाविद्यालय में प्रोफेसर होना है, तो तुम्हें समझौते करने पड़ेंगे। माला भीतर कर लो! अभी धीरे-धीरे सफेद कपड़े पहनने लगो, फिर उनको आहिस्ता-आहिस्ता रंगने लगना, थोड़ा-थोड़ा। एक दहा नौकरी में प्रवेश कर जाओ, फिर साल-छह महीने में ठीक-ठीक रंग पर पहुंच जाना। फिर एक दिन माला बाहर निकाल लेना! फिर भी झंझट तो होगी।

अगर तुम्हें अपना जीवन अपने ढंग से जीना है, तो झंझटें स्वीकार करनी होंगी।
मैं तो विश्वविद्यालय लुंगी पहन कर पढ़ाने जाता था। मेरे प्रिंसिपल थोड़े डरते थे। क्योंकि कई घटनाएं घट चुकी थीं जिनमें लोग मुझसे झंझट में पड़ चुके थे और अड़चन खड़ी होती थी। वे नये-नये आए थे। और डाक्टर राधाकृष्ण का उसी वर्ष जन्म-दिन शिक्षक-दिवस की तरह घोषित किया गया था। और उन्होंने व्याख्यान दिया। उन्होंने कहा कि यह परम सौभाग्य है कि एक शिक्षक राष्ट्रपति हो गया। मुझसे न रहा गया। मैं खड़ा हो गया। मैंने कहा, थोड़ा रुकिए। इसमें कौन सी खूबी की बात हो गई कि एक शिक्षक राष्ट्रपति हो गया! और ऐसे अगर शिक्षक दिवस मनाओगे, तब तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। कल जगजीवनराम राष्ट्रपति हो जाएं तो चमार दिवस मनाओ! एक चमार... ! अब चौधरी चरण सिंह कुछ हो जाएं, तो किसान दिव मनाओ। फिर तो बड़ी मुश्किल हो जाएगी। कोई नाई हो गया, कोई धोबी हो गया... तीन सौ पैंसठ दिन तो यूं चले जाएंगे।
वैसे ही साल में छह महीने छुट्टी रहती है।
और मैंने कहा, मेरी समझ में नहीं आता कि शिक्षक राष्ट्रपति हो जो, इसमें शिक्षक का सम्मान क्या है? सम्मान तो शिक्षक का तब हो जब कोई राष्ट्रपति शिक्षक हो जाए। छोड़ दे राष्ट्रपति के पद को और शिक्षक हो जाए और कहे कि दो कौड़ी का है राष्ट्रपति का पद, शिक्षक के आगे क्या! तो शिक्षक-दिवस मनाना। तो मुझे पता है राधाकृष्णन कितनी खुशामद कर-कर के राष्ट्रपति हुए हैं। यह शिक्षक का कोई सम्मान नहीं है। कितने समझौते करके, कितनी खुशामद करके, राजनीतिज्ञों की कितनी मालिश कर-कर के राष्ट्रपति हो पाए हैं, वह मुझे पता है। यह कोई शिक्षक का सम्मान नहीं है।
तो वे उसी दिन से मुझसे डरे हुए थे। और जब मैं लुंगी पहन कर कालेज पढ़ाने जाने लगा और एक चादर ओढ़ कर तो उन्होंने... बड़ा मुश्किल हुआ, जगह-जगह से लोगों ने, प्रोफेसरों ने कहा कि यह रोकना चाहिए। अगर इस तरह चला तो बड़ा मुश्किल हो जाएगा मामला। न बांधो टाई, चलेगा; न पहनो कोट-पतलून, चलो वह भी ठीक है; मगर लुंगी, और चादर! और मैं खड़ाऊं भी पहनता था। तो मेरा प्रवेश होता तो पूरे विद्यालय में पता चल जाता--खट, खट, खट, खट। किसी को भी चैन से रहने का मौका नहीं था।
आखिर उन्होंने मुझे बुलाया और कहा कि क्षमा करना, मजबूरी है, कई लोग आकर कहते हैं, तो मैंने उनको कहा कि यह मेरा इस्तीफा... खीसे में से निकाल कर मैंने उनको दिया। वे भी बड़े हैरान हुए। उन्होंने कहा, इस्तीफा क्या लिखा ही रखे हुए हैं! मैंने कहा वह लिखा ही हुआ रखता हूं। क्योंकि कौन लिखने की झंझट करे! वह हमेशा मैं खीसे में ही रखता हूं। जिस दिन कोई बात हो, उसी वक्त, एक क्षण की भी देरी नहीं, यह इस्तीफा। बात खतम हो गई! मेरे रहने- सहने के ढंग को दूसरा कोई निर्णय नहीं कर सकता। मैं तुम्हारे पाजामे पर कोई एतराज नहीं उठा रहा हूं, तुम कौन हो मेरी लुंगी पर एतराज उठाने वाले? तुम समझ रहे हो कि तुम अपने चूड़ीदार पाजामे में बहुत सुंदर मालूम पड़ रहे हो? बुत मालूम पड़ते हो!
मगर फिर तुम्हें अड़चन होगी। अड़चन का भी अपना मजा है। मैं तो कहूंगा, अड़चनों से डरो मत। मेरी सलाह मानो तो अड़चनें झेलो, ठीक है। नहीं मिलेगी विश्वविद्यालय में, कालेज में नौकरी तो नहीं मिलेगी। कोई और छोटा-मोटा काम कर लेना। मगर इज्जत से, सम्मान से। अपमान से, झुक कर, गुलाम होना उचित नहीं है। महंगा सौदा है। रोटी ही सब कुछ नहीं है।
लेकिन मेरी बात मान कर कुछ मत करना। खुद सोचना, विचारना। नहीं तो तुम मुझे दोषी ठहराओगे। मैं कुछ भी नहीं कह रहा हूं। मैंने तो सिर्फ स्थिति स्पष्ट कर दी। अगर चाहते हो कालेज में प्रोफेसर होना, तो कुछ समझौते करने पड़ेंगे। मैं कालेज में प्रोफेसर रहा हूं, जानता हूं। समझौते नहीं करने का परिणाम मैं जानता हूं! हजार झंझटें होंगी। समझौता कर लो, तो सुविधा में रहोगे।
समझौता कर लोगे, बाहर सुविधा होगी, भीतर आत्मा मरने लगेगी और सड़ने लगेगी। समझौता नहीं किया, बाहर असुविधा होगी, असुरक्षा होगी, लेकिन भीतर आत्मा में बड़े फूल खिलने लगेंगे। अब तुम्हें जो चुनना हो।

[illegible]

सपना यह संसार
नौवां प्रवचन

हम चल पड़े हैं राह को दुश्वार देख कर

पीवता नाम सो जुगन जुग जीवता,
नाहिं वो मरै जो नाम पीवै।
काल ब्यापै नहीं अमर वह होयगा,
आदि और अंत वह सदा जीवै।।
संतजन अमर हैं उसी हरिनाम से,
उसी हरिनाम पर चित्त देवै।
दास पलटू कहै सुधारस छोड़िकै,
भया अज्ञान तू छाछ लेवै।।

धन्य हैं संत निज धाम सुख छाड़िकै,
आन के काज को देह धारा।
ज्ञान-समसेर लै पैठि संसार में,
सकल संसार का मोह टारा।।
प्रीति सब से करैं मित्र और दुष्ट से,
भली और बुरी दोऊ सीस धारा।
दास पलटू कहै राम नहिं जानहूं,
जानहूं संत, जिन जक्त तारा।।

कफन को बांधिकै करै तब आसिकी,
आसिक जब होय तब नाहिं सोवै।
चिता बिनु आगि के जैर दिनराति जब,
जीवत ही जान से सती होवै।।
भूख-पीयास, जग-आस को छोड़करि,
आपनी आपु से आपु खोवै।
दास पलटू कहै इसक-मैदान पर,
देइ जब सीस तब नाहिं रोवै।।

दास कहाइकै आस न कीजिए,
आस जो करै सो दास नाहीं।
प्रेम तो एक जो लगा संसार मेंख
भक्ति गई दूरि अब जक्त माहीं।।
चाहिए भक्ति को जक्त से तोरिए,
जोड़िए जक्त से, भक्ति जाही।
दास पलटू कहै एक को छोड़ि दे,
तरवार दुई म्मान इक नाहिं चाही।।

हम दघ के इस वीराने में जो कुछ भी नजारा करते हैं
अश्कों की जबां में कहते हैं, आहों में इशारा करते हैं।
क्या तुझको पता, क्या तुझको खबर, दिन-रात ख्यालों में अपने
ऐ काकुले-गेती! हम तुझको जिस तरह संवारा करते हैं।
ऐ मौजे-बला! इनको भी जरा दो-चार थपेड़े हल्के से
कुछ लोग अभी तक साहिल से तूफां का नजारा करते हैं।
क्या जानिए कब ये पाप कटे, क्या जानिए वो दिन कब आए
जिस दिन के लिए हम ऐ जज्बी क्या कुछ न गवारा करते हैं।
इस जीवन में परम धन्यता का एक ही दिन है, जिस दिन हमें पता चलता है कि
यह असली जीवन नहीं। असली जीवन और है; इसके पार है। यह तो असली जीवन की केवल छाया, केवल प्रतिबिंब। पहाड़ों में गूंजती हुई एक प्रतिध्वनि, यह असली गीत नहीं। वही दिन जीवन का सबसे धन्यभाग का दिन है, जिस दिन आंख खुलती है और हम पदार्थ से जगते हैं और परमात्मा का होश आता है।

परमात्मा यानी महाजीवन।
इसी जीवन में कहीं छिपा है। पर हम तो परिधि पर ही भटकते रहते हैं और केंद्र तक पहुंच ही नहीं पाते। हम तो व्यर्थ में उलझ जाते हैं, हम तो कौड़ियां ही बटोरते रह जाते हैं--और हीरे-जवाहरात थे यहां! और शाश्वत खजाना था यहां। सनातन साम्राज्य था हमारा और हम भिखमंगे ही बने रह जाते हैं। संसारी यानी भिखमंगा।
जिसके हाथ में भिक्षापात्र है। और ऐसा भिक्षापात्र जो कभी भरता नहीं।
कितना ही भरो, नहीं भरता। कितना ही भरो, खाली का खाली। जितना भरो उतना ज्यादा खाली। एक ऐसा भिक्षापात्र जो बड़ा ही होता चला जाता है। यह सारा संसार भी मिल जाए तो भी तुम्हारा भिक्षापात्र भरेगा नहीं।
इच्छा दुष्पूर है।
बुद्ध ने कहाः तृष्णा दुष्पूर है। ऐसा नहीं है कि तुम कमजोर हो, इसलिए नहीं भरती; ऐसा नहीं है कि तुम्हारी सीमाएं हैं, इसलिए नहीं भरती; तृष्णा का स्वभाव है न भरना। क्योंकि एक तृष्णा भर भी नहीं पाती कि दस को पैदा कर जाती है। तृष्णा ऐसे है जैसे दूर जमीन को छूता हुआ आकाश। कहीं छूता नहीं, लेकिन लगता हैः यही कोई दस-पांच कोस के फासले पर छू रहा है। जरा चलूं तो पहुंच जाऊंगा क्षितिज पर। लाख चलो, सारी पृथ्वी का चक्कर काट आओ, कहीं भी क्षितिज मिलेगा नहीं--और चारों तरफ दिखाई पड़ता है। बस दिखाई पड़ता है! आभास है! कहीं पृथ्वी आकाश छूती नहीं। तुम जितने आगे बढ़ते हो, उतना ही क्षितिज और आगे सरक जाता है। तुम्हारे और क्षितिज के बीच फासला हमेशा उतना का उतना--इंच भर कम नहीं, इंच भर ज्यादा नहीं। ऐसी ही इच्छा है, ऐसी ही तृष्णा है।
तृष्णा एक क्षितिज है जिस तक हम कभी पहुंच नहीं पाते। दौड़ते बहुत हैं, जितना कर सकते हैं करते हैं, अपनी सारी सामर्थ्य लगाते हैं--एक जन्म की नहीं, अनंत-अनंत जन्मों की शक्ति हमने समर्पित की है एक ऐसे व्यर्थ खेल में जो कभी पूरा नहीं होगा।
मैंने सुना है, क्रिसमस के दिन थे और एक अमरीकी जोड़ा अपने बच्चे के लिए खिलौना खरीदने गया था। पति बड़ा गणितज्ञ था। पत्नी भी विश्वविद्यालय में अध्यापक थी। दोनों सुसंस्कृत, सुशिक्षित। भांति-भांति के नये-नये खिलौने दुकान में आए थे। सब खिलौने देखे। फिर दोनों एक खिलौने में उत्सुक हो गए। एक जिग्सा पजल। खंड-खंड टुकड़ों में, जिसे जमाना होता है। उसे दोनों ने बहुत जमाने की कोशिश की। जमे ही न! आखिरी पत्नी ने कहा कि अगर मेरे पति से नहीं जमती, जो कि पृथ्वी के थोड़े से इने-गिने गणितज्ञों में एक हैं; अगर यह पहेली मेरा पति नहीं जमा सकता, तो मेरे बच्चे क्या जमाएंगे? पहेली तो प्यारी लगती है, मगर बच्चे इसे कैसे जमाएंगे? दुकानदार हंसने लगा, उसने कहा, क्षमा करें, यह जमने के लिए बनाई ही नहीं गई। यह जम ही नहीं सकती, बच्चे या बाप का सवाल नहीं है।
तो दोनों हैरान हुए, उन्होंने कहा कि फिर यह कैसी पहेली जो जम ही नहीं सकती! तो उस दुकानदार ने कहा, जिसने इसे बनाया है, उसने इसे इस ख्याल से बनाया है ताकि जो भी इसे जमाए उसे दुनिया का कुछ ख्याल आए कि दुनिया भी ऐसी पहेली है जो जमती नहीं। लाख जमाओ, जमती नहीं। जमने को बनी ही नहीं है। जम जाए तो बुद्धों की जरूरत नहीं। जम जाए तो फिर जीसस, कृष्ण और जरथुस्त्र व्यर्थ। जिन्होंने जाना कि यह संसार की पहेली न जमने वाली पहेली है, जिन्हें यह बात इतनी प्रगाढ़ हो गई कि उनका सारा रस इससे छूट गया, इस खिलौने से उनकी नजर हट गई, उन्होंने उसे देखा जो सदा जमा हुआ है।
एक है दुनिया, जो जमाए नहीं जमती और एक है परमात्मा, जो जमा ही हुआ है। जिसे जमाने की कोई जरूरत नहीं है। दुनिया में जो उलझा, भटका, तड़पा, परेशान हुआ। परमात्मा की तरफ जिसकी आंख उठी, पहुंच गया, तत्क्षण पहुंच गया। फिर परम तोष है, संतोष है। फिर जीवन एक आह्लाद है। फिर जीवन न जन्म है न मृत्यु। न इसका आदि है न अंत। फिर यह एक शाश्वत आनंद-यात्रा है।
क्या जानिए कब ये पाप कटे, क्या जानिए वो दिन कब आए
जिस दिन के लिए हम ऐ जज्बी क्या कुछ न गवारा करते हैं।

कितना सहते हैं हम। आदमी कुछ कम नहीं सहता। छोटी जान है और पहाड़ ढोता है। बूंद जैसी सामर्थ्य है और आकाश घसीटता है। आदमी कम नहीं सहता। और इसलिए अगर यह प्रार्थना उठती है कि कब आएगा वह दिन... अपने से नहीं आएगा, इतना याद रखना। अपने आप आता होता तो अब तक आ गया होता। तुम कुछ नये नहीं हो। सब पुराने यात्री हो। न मालूम कितनी योनियां और न मालूम कितनी देहें और न मालूम कितने रूपों से चलते हो, चलते रहे हो। न मालूम कितने मार्गों पर भटके हो, पहुंचे नहीं। तुम कुछ नये नहीं हो। तुमने काफी बोझ ढोया है। ढोते- ढोते ढोने की आदत पड़ गई है। ऐसी आदत पड़ गई है कि ढोए ही चले जाते हो। अब तो भूल ही गए हो कि क्यों ढो रहे हो? इतने समय से ढो रहे हो कि याद भी कौन रखे? एक पति-पत्नी में झगड़ा हो रहा था। जैसे पति-पत्नी के झगड़े होते हैं, शुरू हो गया होगा, अकारण; कारण की कोई जरूरत भी नहीं होती। पड़ोसी सुनते- सुनते परेशान हो गए। आखिर पड़ोसी इकट्ठे हो गए और उन्होंने कहा कि तीन घंटे हो गए, न खुद सोते हो न हमें सोने देते हो, आखिर बात क्या है? तो पति ने कहा कि इसी से पूछ लो, पत्नी से पूछ लो कि बात क्या है। पत्नी ने कहा, मुझे भी क्या अब याद है; तीन घंटे पहले शुरू हुई थी!
दो छोटे बच्चे आपस में बात कर रहे थे। एक बच्चा कह रहा था कि मेरी मां गजब की है। तुम एक शब्द बोले, बस; फिर वह घंटों बकवास करती है। मेरे पिताजी उसके डर के मारने बोलते ही नहीं! बोले कि फंसे। दूसरे बच्चे ने कहा, यह कुछ भी नहीं है। मेरी मां ऐसी है कि तुम बोलो कि न बोलो... बोलना जरूरी ही नहीं है। अब कल ही की बात है, पिताजी चुप बैठे थे तो मेरी मां कहने लगीः तुम चुप क्यों बैठे हो? शर्म नहीं आती! चुप बैठे हो इसका मतलब क्या; इसका प्रयोजन क्या? और झगड़ा शुरू!
इस संसार से तुम इतने लंबे समय से झगड़ रहे हो कि अब तुम्हें याद भी न रहा होगा कि कब और कैसे यह कहानी शुरू हुई थी। बहुत पीछे छूट गए सूत्र। अब तो झगड़े की आदत हो गई है। अब तो झगड़ना जीवन हो गया है। अब तो तुम कहते हो, संघर्ष ही जीवन है। जो भी कहता है संघर्ष ही जीवन है, उसे जीवन का कुछ भी पता नहीं, कि जीवन संघर्ष जरा भी नहीं है। जीवन तो समर्पण है। लेकिन समर्पण तो केवल संत जानते हैं। समर्पित जो है, वही संत है।
मरने की दुआएं क्यों मांगूं, जीने की तमन्ना कौन करे
ये दुनिया हो, या वो दुनिया, अब ख्वाहिशे-दुनिया कौन करे।

जब कश्ती साबित-सालिम थी, साहिल की तमन्ना किसको थी
अब ऐसी शिकस्ता कश्ती पर साहिल की तमन्ना कौन करे।

जो आग लगाई थी तुमने, उसको तो बुझाया अश्कों ने
जो अश्कों ने भड़काई है, उस आग को ठंडा कौन करे।

दुनिया ने हमें छोड़ा जज्बी हम छोड़ न दें क्यों दुनिया को
दुनिया को समझ कर बैठे हैं, अब दुनिया दुनिया कौन करे।

मरने की दुआएं क्यों मांगूं, जीने की तमन्ना कौन करे
ये दुनिया हो, या वो दुनिया, अब ख्चाहिशे-दुनिया कौन करे।
जो समझेगा, जो जरा जागेगा, जो जरा होशपूर्वक अपने चारों तरफ देखेगा, बाहर और भीतर जरा झांकेगा, वह इस दुनिया से ही मुक्त नहीं हो जाता, वह उस दुनिया से भी मुक्त हो जाता है। यहां ही आकांक्षाएं नहीं गिर जातीं, वह स्वर्ग की आकांक्षा भी नहीं करता। क्योंकि आकांक्षा ही तो संसार है। तुम चाहे धन की आकांक्षा करो और चाहे स्वर्ग की, इससे कुछ भेद नहीं पड़ता, आकांक्षा संसार है। आकांक्षा की कि संसार शुरू रहा। आकांक्षा न करना अतिक्रमण है। आकांक्षा की व्यर्थता देख लेना, देख लेना कि यह पात्र भरेगा ही नहीं, यह पहेली जमेगी ही नहीं और तत्क्षण एक क्रांति घटित हो जाती है, तत्क्षण तुम मुक्त हो जाते हो। मुक्ति कोई प्रक्रिया नहीं है, एक क्षण में घट गई क्रांति है। जैसे तपती आग में बूंद एक छन्न के साथ हवा हो जाती है, वाष्पीभूत हो जाती है, ऐसे ही होश की आग में एक क्षण में रूपांतरण हो जाता

है। क्रांति विकास नहीं है। अध्यात्म क्रांति है। उत्क्रांति नहीं, विकास की प्रक्रिया नहीं, एक छलांग है।
और वह दिन सबसे ज्यादा सौभाग्य का दिन है जब यह दिखाई पड़ जाता है कि हम जिस दौड़ में दौड़ रहे हैं, वह वर्तुलाकार है। जैसे कोल्हू का बैल चलता है, वैसे हम चल रहे हैं। लगता तो कोल्हू के बैल को है कि खूब चल रहा है तो कहीं पहुंचेगा, जरूर पहुंचेगा, जब इतना चल रहा है तो पहुंचेगा; गणित, तर्क, सब यही कहता है, लेकिन कोल्हू का बैल कहीं पहुंचता नहीं, वर्तुल में घूमता रहता है। हम भी वर्तुल में घूम रहे हैं।
संसार शब्द का अर्थ होता हैः चक्कर। एक वर्तुल। जैसे गाड़ी का चाक घूमता है, ऐसे ही हम इस संसार के चाक में बंधे घूमते रहते हैं। और पिसते हैं बुरी तरह; क्योंकि चाक में जो बंधा है वह पिसेगा ही। एक क्षण विराम नहीं, एक क्षण विश्राम नहीं, यह गाड़ी चलती ही रहती है। और इस गाड़ी के चाक से बंधे हुए तुम पिसते ही रहते हो।
पश्चिम का बहुत बड़ा जादूगर हूदनी अपने को रेलगाड़ी के चके में बांध लेता था और घंटों तक रेलगाड़ी चलती रहती और वह चके में बंधा घूमता रहता। यह उसके बड़े चमत्कारों में से एक था। हूदनी को किसी ने कहा नहीं कि यह कोई बड़ा चमत्कार नहीं, यह सभी लोग कर रहे हैं। हालांकि तुम्हारी रेलगाड़ी लोहे की है और दिखाई पड़ती है और तुमने कला सीख ली है कि कैसे चके में बंधे हुए अपने को बचाए रहो, लेकिन सारी दुनिया चके से बंधी है। चका अदृश्य है। अदृश्य है, इसलिए और भी दिखाई नहीं पड़ता। और ऐसी व्यवस्था हमने जमा ली है--हमने खुद-- कि नींद टूटे ही न, कि होश आए ही न। हम पीए चले जाते हैं बेहोशी पर नई बेहोशियां, अफीम पर अफीम। कभी धन की अफीम, कभी पद की अफीम--बस पीए जाते हैं। कहां हैः पद-मद, धन-मद। मदिरा कहा है इनको।
शराब पर तो पाबंदी लगा देते हो--शराब में कुछ खाक नशा है! सांझ पीओगे, सुबह उतर जाएगा! और शराब पर जो पाबंदी लगाते हैं उनको ख्याल ही नहीं है कि वे ऐसी शराब पीए हैं जो उतरती ही नहीं--पद-मद! पी है अधिकार की, सत्ता की शराब, जिसका उतना बहुत मुश्किल। लाख धक्के खाओ तो भी नहीं उतरती। लाख चोटें खाओ तो और चढ़ती चली जाती है। उतरना जानती ही नहीं। छोटी-मोटी शराब की तो तुम निंदा करते हो, बड़ी शराबों की प्रशंसा करते हो।
इस दुनिया में सभी शराबी हैं। अलग-अलग शराबें पी हैं उन्होंने और अपने को सुला रखा है। और किसी और ने पिलाई होती तो भी एक बात थी, हम खुद ही पी रहे हैं। हम खुद ही तैयार करते हैं ये विषाक्त औषधियां। हम खुद ही श्रम करते हैं।
एक दार्शनिक एक तेली की दुकान पर तेल लेने गया था। दार्शनिक था, सो उसके मन में एक प्रश्न उठा। तेली तेल तौलने लगा और दार्शनिक ने कहा, ठहरना भाई! ... नवद्वीप की कहानी है, बंगाल की। नवद्वीप कभी तार्किकों का सबसे बड़ा केंद्र था। नव्य-न्याय वहां पैदा हुआ। वहां भारत के बड़े-से-बड़े तर्कशास्त्री पैदा हुए। नवद्वीप ने कभी भारत की दार्शनिक प्रतिभा को खूब चमकाया था। यह कहानी नवद्वीप की ही है।... दार्शनिक ने कहा, ठहरना भाई, तेली से कहा! पहले एक सवाल का जवाब दे दो, मुझे बेचैनी रहेगी। तेली ने पूछा, क्या सवाल है? दार्शनिक ने कहा कि तुम तेल तौल रहे हो, तुम्हारी पीठ की तरफ पीछे कोल्हू का बैल चल रहा है, उसको कोई चला नहीं रहा, ऐसा धार्मिक बैल तुम कहां से पा गए? जिसको कोई चलाए न, पीछे फटकारे न, चोट न करे, डंडा लिए न खड़ा रहे और जो चलता रहे! इस जमाने में ऐसा धार्मिक, श्रद्धालु बैल तुम कहां पा गए? तेली हंसने लगा और उसने कहा, न श्रद्धा का सवाल है, न धर्म का। मैंने ऐसा आयोजन किया है। देखते नहीं कि बैल के गले में घंटी बंधी है? घंटी बज रही है, सुनते नहीं? दार्शनिक ने कहा, घंटी बंधी है, देखता भी हूं; घंटी बजती है, सुनता भी हूं; मगर इससे क्या? तेली ने कहा, बात सीधी-साफ है। घंटी जब तक बजती रहती है, मैं समझता हूं बैल चल रहा है। देखने की जरूरत नहीं, घंटी बज रही है, मुझे सुनाई पड़ती रहती है, मैं समझता हूं बैल चल रहा है। जैसे ही घंटी रुकी कि मैं तत्क्षण उठ कर और बैल को हांक देता हूं। बैल को यह कभी पता नहीं चल पाता कि मैं मौजूद नहीं था। देरी नहीं होने देता। इधर घंटी रुकी, इधर मैंने हांका। सो बैल को यही भरोसा है कि मैं पीछे हूं। और

देखते नहीं बैल की आंखों पर पट्टियां बांधी हुई है। सौ बैल देख भी नहीं सकता कि कोई पीछे है या नहीं--मुड़ कर देख भी नहीं सकता। मुड़ भी नहीं सकता। बैल सिर्फ आगे ही देख सकता है।
दार्शनिक ने कहा, यह तो मेरी समझ में आया कि आंख पर पट्टी है सो बैल देख नहीं सकता कि तुम क्या कर रहे हो; घंटी बंधी है, सो जैसे ही घंटी रुकती है तुम उसे हांक देते हो, उसे पता नहीं चल पाता कि हांकने वाला पीछे मौजूद था कि नहीं; लेकिन एक सवाल मैं पूछूं? कभी बैल खड़ा होकर सिर हिला कर घंटी नहीं बजाता? उस तेली ने कहा, महाराज, आगे से तेल आप किसी और दुकान से ले लेना। कहीं बैल यह सुन ले तो हमारा यह सारा धंधा मारा गया! मैं अकेला आदमी हूं, मुझे ही तेल बेचना, मुझे ही कोल्हू चलाना, बड़ी गृहस्थी है, महाराज, किसी और जगह से तेल ले लिया करें, आपका आना-जाना यहां ठीक नहीं। सत्संग संक्रामक होता है!
आदमी भी ऐसा ही बंधा है--आंख पर पट्टियां, गले में घंटियां! कोई चला नहीं रहा तुम्हें और तुम चले जा रहे हो। तुम्हें पीछे से कोई नहीं हांक रहा है, तुम्हें आगे से हांका जा रहा है। आगे लटका दिए गए हैं सुंदर-सुंदर सपने... सपना यह संसार! आगे लटके हैं सुंदर-सुंदर सपने, अब मिले, अब मिले; वह रहा क्षितिज, अब पहुंचे, अब पहुंचे! कितने दिन से चल रहे हो, कब सोचोगे कि नहीं पहुंच सकते हो? अब तक नहीं पहुंचे, आगे कैसे पहुंचोगे? अब तक कोई नहीं पहुंचा, अकेले तुम पहुंचोगे? तुम अपवाद हो? धन पाने वाले पा-पा कर मर गए, भीतर की दीनता नहीं मिटी सो नहीं मिटी! पद पाने वाले पा-पा कर मर गए, भीतर की हीनता नहीं मिटी सो नहीं मिटी! सिकंदर और नेपोलियन, चंगेज और नादिरशाह इस जमीन पर हमने बहुत तरह के पागलों को देखा है--छोटे पागल, बड़े पागल, पागलों की बड़ी कोटियां हैं, सब तरह के पागल मौजूद हैं, यह पृथ्वी बड़ा पागलखाना है, लेकिन कोई नहीं पहुंच रहा है। तुम जरा ठिठको! तुम जरा एक क्षण को रुक जाओ! कभी घड़ी भर को रोज बैठ कर सोचने लगो जीवन पर; एक विमर्श करो, पुनर्विचार करो--यह मैं क्या कर रहा हूं? मैंने अपनी आंखों पर पट्टियां बांध रखी हैं? तुम कहोगे कि नहीं। तो फिर हिंदू धर्म क्या है? फिर इस्लाम क्या है? फिर ईसाइयत क्या है? फिर जैन धर्म क्या है? तुम जानते तो नहीं। तुमने उधार यह ज्ञान अपनी आंखों पर बांध लिया है। यही तो पट्टियां हैं। इन पट्टियों के कारण तुम्हें भ्रांति है कि तुम जानते हो।
इस दुनिया में सबसे बड़ी भ्रांति जानने की भ्रांति है। क्योंकि जिसे
यह भ्रांति है कि मैं जानता हूं, वह सत्य की तलाश नहीं करता। जब मालूम ही है तो तलाश क्यों करें? वह चुपचाप ऐसे ही जिए जाता है, जैसे जीता रहा है। क्यों बदले अपने को? उसके शास्त्रों में तो सब लिखा है। महावीर कह गए, बुद्ध सब कह गए, नानक सब कह गए, मोहम्मद सब कह गए, अब मुझे क्या करना है! मेरा काम इतना है कि सिर पर ढोऊं कुरान को, बाइबिल को, वेद को।
वैसे ही बोझ कम नहीं है, इन शास्त्रों का बोझ और भारी कर देता है। चलना
और मुश्किल हो जाता है। वैसे ही घसिटते थे, वैसे ही थके-मांदे थे, छाती पर और पत्थर रख लिए। मगर इससे तुम्हारी आंखें नहीं खुलेंगी। इसके कारण तुम्हारी आंखें बंद हैं।
हिंदू अंधा है, मुसलमान अंधा है, जैन अंधा है। जो भी बिना जाने मानता है, वह अंधा है। जिसने स्वयं अनुभव के बिना कोई बात मान ली है, वह आदमी धोखा दे रहा है, अपने को दे रहा है, सबको दे रहा है। और सबको दो तो ठीक, कम से कम अपने को तो धोखा मत दो!
तुम्हारे गले में घंटियां बंधी हैं जो बजती रहती हैं और ऐसी भ्रांति बनाए रखती हैं कि कोई तुम्हें चला रहा है। आशा की घंटियां!
उमर खय्याम ने कहा है कि मैं गया पंडितों के बैठकखानों में, मैंने आचार्यों का सत्संग किया, मैंने तथाकथित मौलवियों के घरों के द्वार खटखटाए, लेकिन जिस दरवाजे से भीतर गया, उसी दरवाजे से वापस लौटा; जैसे खाली भीतर गया, वैसा ही खाली वापस लौटा। मैंने बातें तो वहां सत्य की बहुत सुनीं, लेकिन बस बात ही बात थी। वे सब ईश्वर के संबंध में चर्चा कर रहे थे, लेकिन ईश्वर का किसी को पता नहीं था। वे मेरे छोटे-छोटे प्रश्नों के भी उतर न दे सके। मेरा एक छोटा सा प्रश्न जो मैं पूछता रहा हूं सभी से, वह यह

कि आदमी इतना दुख झेलता है, इतना विषाद, इतना संताप, इतनी पीड़ा, जीवन उसका एक सिवाय दुर्धर्ष रोग के और कुछ भी नहीं है, फिर भी आदमी जिए क्यों चला जाता है? जीवेषणा इतनी प्रबल क्यों है? वे कोई उत्तर न दे पाए। तब मैंने एक दिन आकाश से पूछा कि हे आकाश, तूने तो न मालूम कितने लोगों को इस पृथ्वी पर चलते देखा है अंधों की भांति, तुझे तो राज पता होगा! हे चांद-तारो, तुम्हें तो पता होगा! आदमी किस आशा में चलता जाता है? यह कौन सी बात है जो इसे चलाए जाती है? तो आकाश ने मुझे कहा कि तेरे प्रश्न में ही उत्तर छिपा है। तू पूछता हैः किस आशा में आदमी चला जाता है? उत्तर है कि आशा में आदमी चला जाता है। आशा! आज नहीं मिला, कल मिलेगा। आज तो चूक गया, कोई फिकर नहीं, थोड़ी और मेहनत, कल मिल जाएगा।
कल कभी आता नहीं। आता भी है तो आज की तरह आता है। और फिर आशा कल पर सरक जाती है। यह घंटी है गले में बंधी, जो बजती रहती है, जो तुम्हें चलाए जाती है।
दो रास्ते हैं चलाने के।
एक सूफी फकीर सुबह-सुबह उठ कर नदी-स्नान को जा रहा था। उसने एक आदमी को देखा--कमजोर, दुबला-पतला आदमी था, बूढ़ा आदमी था, वह अपनी गाय को खींचने की कोशिश कर रहा था। गाय मजबूत, जवान; बूढ़े से खिंच नहीं रही थी। गाय पीछे को खींचती थी, बूढ़ा आगे को खींचता था। उस फकीर ने बूढ़े को कहा, इसे तुम खींच न सकोगे। तुम्हें खींचने की और कोई तरकीब नहीं आती? रस्सी बांध कर ही खींच सकते हो? तो यह तुमसे घर जाने वाली नहीं है। अब तुम बूढ़े हो गए, अब तुम में बल नहीं। उस बूढ़े ने पूछा, क्या और भी कोई तरकीब है? जिंदगी भर हो गई मुझे गायों को पालते और तो मैंने तरकीब देखी नहीं! उस फकीर ने कहा, मैं तुम्हें तरकीब बताता हूं। वह पास से ही, गया, रास्ते के किनारे से थोड़ी सी घास उखाड़ लाया और गाय के सामने घास किया और चल पड़ा। बस गाय ने घास देखा कि हो ली पीछे! रस्सी बांधनी ही न पड़ी। फकीर घास को आगे किये चलने लगा और गाय फकीर के पीछे चलने लगी। उसने उस बूढ़े को कहा, तुमने गाय तो जिंदगी भर पाली, मगर एक छोटी सी बात तुम्हारी समझ में न आई। आशा को लटका दो आगे!
वह बूढ़ा पूछने लगा कि तुम्हें तो मैंने कभी गायों को पालते नहीं देखा, तुमको यह तरकीब कैसे समझ में आई? उसने कहा, आदमियों को देख कर। हर आदमी ऐसे ही चल रहा है, गले में कोई जंजीर बांधने की जरूरत नहीं है, ज्यादा सूक्ष्म जंजीरें हैं जो न तो दिखाई पड़ती हैं, न जिनका बोझ पड़ता, न बांधनी पड़तीं, न ढालनी पड़तीं। घास का गट्ठर आगे कर दो और आदमी चलता चला जाता है। हजार रुपये हैं, दस हजार हो जाएंगे--बस घाव का गट्ठर आगे! डिप्टी मिनिस्टर हैं, मिनिस्टर हो जाएंगे--घास का गट्ठर आगे! बस आदमी को चलाते रहो, घास आगे से आगे हटती जाए और आदमी पीछे-पीछे सरकता चला जाता है।
और एक दिन मौत आती, आशा कभी पूरी नहीं होती। इस जगत में कभी कोई आशा न पूरी हुई है, न हो सकती है। जगत का यह स्वभाव नहीं।
पलटू कहते हैंः
पीवता नाम सो जुगन जुग जीवता,
नाहिं वो मरै जो नाम पीवै।
तुम तो मरोगे। बहुत बार मरे हो और बहुत बार मरोगे। रोज मरते हो--मरते
ही हो, जीते कहां हो? जन्म के बाद बस मरना और मरना। धीरे-धीरे मरते-मरते एक दिन पूरा मर जाते हो। सत्तर साल-अस्सी साल लगते हैं मरने में... क्रमशः मरते हो। शनैः-शनैः मरते हो। लेकिन पलटू कहते हैं एक ऐसा राज तुम से कहता हूं कि अगर यह अमृत तुम पी लो तो फिर तुम नहीं मरोगे। और जो नहीं मरेगा, वही जीवन को जान पाएगा। जो मरता है, वह कैसे जीवन को जान पाएगा? मृत्यु को जान पाएगा, जीवन को कैसे जान पाएगा? जीवन की कोई मृत्यु नहीं होती, मृत्यु का कोई जीवन नहीं होता।
पीवता नाम सो जुगन जुग जीवता,
जो उस प्रभु के नाम को पी लेता है, वह फिर सदा जीता है।
नाहिं वो मरै जो नाम पीवै।
जिसने उसके नाम को पीया, उसके स्मरण को पीया, फिर वह नहीं मरता है। फिर उसकी कोई मृत्यु नहीं है। अमृत से जुड़ जाने का नाम ही भक्ति है। और अमृत

तुम्हारे चारों तरफ मौजूद है। बाहर भी, भीतर भी। मगर तुम आशा के जाल में भटके चले जा रहे हो। तुम्हें अपनी संपदा का तो होश ही नहीं है। तुम्हारी नजर दूसरों की संपदा पर लगी है--पड़ोसी के पास कितना है, उससे ज्यादा मेरे पास होना चाहिए। पड़ोसी ने मकान बड़ा कर लिया, अब मुझे भी मकान बड़ा करना होगा। तुम अपनी संपदा कब देखोगे जो तुम्हें जन्म के साथ ही मिली है? जो तुम्हारा स्वरूप है।
काल ब्यापै नहीं अमर वह होयगा,
आदि और अंत वह सदा जीवै।।
जिसने एक बार अपने भीतर अनुभव कर लिया परमात्मा की उपस्थिति को--और परमात्मा उपस्थित है सिर्फ अनुभव करना है! जरा टटोलो! मगर यह टटोलना तभी हो सकता है जब बाहर से आशा टूटे।
बुद्ध न कहा है, बहुत हैरान करने वाला वचन, कि धन्य हैं वे जो निराश हैं। तुम तो सुनोगे तो कहोगे, यह क्या बात हुई! निराश और धन्य! धन्य हैं वे जो हताश हैं। यह क्या बात हुई? यह कैसी धन्यता हुई? लेकिन बुद्ध ठीक कह रहे हैं। क्योंकि जो हताश हो गया, जो निराश हो गया, जिसकी अब कोई आशा न रही, कोई पाने की संभावना जिसकी न रही, जिसने सारी तरह से देख लिया कि बाहर भ्रम ही भ्रम है, मृग-मरीचिका ही मृग-मरीचिका है, उसे अनिवार्यरूपेण भीतर मुड़ना होता है। मुड़ना होता है कहना ठीक नहीं, मुड़ जाता है। अनिवार्यरूपेण। चेतना जब बाहर नहीं जाती तो कहां जाएगी? अपने में ही बैठ जाती है। जैसे ही बहिर्यात्रा बंद हुई कि तुम अपने में ठहरे, थिर हुए। उसी स्थिरता में स्वाद है अमृत का।
संतजन अमर हैं उसी हरिनाम से,
उसी हरिनाम पर चित्त देवै।
उसी परमात्मा को अनुभव करके संत अमर हो गए हैं। वे कभी मरते नहीं। तुम
भी नहीं मरते हो, तुम्हारा भी मरना सिर्फ भ्रांति है। तुम गलत से जुड़े हो, इसलिए तुम्हें मरने का झूठा कष्ट झेलना पड़ता है। और बहिर्यात्रा सिर्फ अहंकार दे सकती है और कुछ भी नहीं।
आत्मा को जानते ही मृत्यु विदा हो जाती है, जैसे दीये के जलते ही अंधकार विलीन हो जाए। जैसे सुबह के होते ही रात समाप्त हो जाए।
संतजन अमर हैं उसी हरिनाम से,
उसी हरिनाम पर चित्त देवै।
इसलिए और चीजों से चित्त को हटाओ! व्यर्थ में अपने को मत भरमाओ! अब थोड़ा उसे देखो जो तुम हो, जो तुम्हारी निजता है। जो तुम्हारे भीतर झरना चैतन्य का बह रहा है, थोड़ी उससे पहचान करो! थोड़ा उसके साथ डूबो, एक होओ, एकरस बनो!
दास पलटू कहै सुधारस छोड़िकै,
भया अज्ञान तू छाछ लेवै।।
कि कैसे तुम पागल हो कि अमृत भीतर मौजूद है, उसको तो पीते नहीं और दूसरों के दरवाजों पर छाछ मांगने के लिए खड़े हो भिक्षापात्र लिए! और इस जगत में मांगे-मांगे भी छाछ भी कहां मिलती है? तुम जिन से मांग रहे हो, वे भी भिखमंगे हैं। तुम जिन से मांग रहे हो, वे तुम से मांग रहे हैं। भिखमंगे भिखमंगों के सामने हाथ फैलाए हैं, झोली फैलाए हैं। यहां सभी तो इच्छाओं के वशीभूत हैं। यहां सभी तो तृष्णा से भरे हैं। यहां सभी तो मांग रहे हैं--और, और। जो मांग रहा है, वही मंगना है। और मजा कैसा है कि तुम्हारे भीतर अमृत की धार बह रही है! मगर तुम पीठ किए हो। उसकी तरफ तुम विमुख हो।
संसार की तरफ आंख और अपनी तरफ पीठ--यह गृहस्थ का लक्षण। और अपनी तरफ आंख, संसार की तरफ पीठ, यह संन्यस्त का लक्षण। न कहीं जाना है, न कहीं भागना है, यह क्रांति तुम्हारे भीतर घटनी है। यह आंख की बदलाहट है। दुकान फिर भी करना, बच्चों को फिर भी पालना, पत्नी की चिंता फिर भी लेना, मगर एक आंख में फर्क हो गया है, एक दृष्टि बदल गई। अब तुम्हारी नजर भीतर रहेगी, रस तुम भीतर का पीओगे, बाहर का जो काम है दिया परमात्मा ने, उसे पूरा करते रहोगे, लेकिन अब वह तुम्हारी दौड़ नहीं है, उसमें तुम्हारी आशा का लगाव नहीं है, उसमें तुम्हारी अभीप्सा नहीं है। हो तो हो, न हो तो न। अब तुम उस संबंध में

बिल्कुल सम्यकत्व को उपलब्ध रहोगे। हार हो तो ठीक, जीत हो तो ठीक, सब बराबर। खेल है शतरंज का।
मगर हम तो ऐसे मूढ़ हैं कि शतरंज के खेल में भी तलवारें खिंच जाती हैं। जिंदगी के खेल को शतरंज का खेल समझना तो दूर, शतरंज का खेल जिसमें हाथी- घोड़े सब लकड़ी के--या समझो कि अगर बड़े अमीर हुए तो हाथी-दांत के--सब हाथी- घोड़े, झूठे, राजा-वजीर झूठे...
एक अदालत में मुकदमा था दो आदमियों पर। एक-दूसरे का सिर खोल दिया था। पुलिस पकड़ कर ले गई। मजिस्ट्रेट ने कहा कि भई, मैं भी इसी गांव में रहता हूं, तुम्हें भलीभांति जानता हूं, तुम दोनों दोस्त हो; हो क्या गया? ऐसी कौन सी बात हो गई कि तुम्हारी जिंदगी भर की दोस्ती टूट गई और तुमने एक-दूसरे का सिर खोल दिया? दोनों सिर झुका कर खड़े हो गए। एक ने दूसरे से कहाः तू ही कह दे। उसने कहा कि नहीं, तू ही कह दे। मजिस्ट्रेट ने कहा, कोई भी कहो मगर कहो तो! उन्होंने कहा, अब क्या कहें, कहने योग्य बात नहीं। मजिस्ट्रेट ने कहा, कहना तो होगा ही।
तो मजबूरी में उन्हें कहना पड़ा।
उन्होंने कहा, मामला यह है--अब आप किसी से मत कहना--हम दोनों नदी के किनारे बैठे गपशप कर रहे थे। रेत में बैठे थे। इसने कहा--इसी ने शुरुआत की--इसने कहा कि मैं एक भैंस खरीद रहा हूं। मैंने कहा, देख भाई, भैंस मत खरीद! अपनी पुरानी दोस्ती है, अगर कभी मेरे खेत में घुस गई तो मुझसे बुरा कोई नहीं। अब भैंस के पीछे क्या जिंदगी भर की दोस्ती गंवानी है? और भैंस का क्या भरोसा! और मैं बरदाश्त न कर सकूंगा! मेरे खेत में घुस गई तो मार ही डालूंगा भैंस को! सो तू इस झंझट में पड़ ही मत। भैंस मत खरीद! और यह एकदम जोश में आ गया, तैश में आ गया, इसने कहा कि तूने समझा क्या है? तेरा खेत है तो कोई भैंस ही न खरीदे! भैंस खरीदूंगा। और भैंस भैंस है, अगर कभी खेत में भी घुस गई तो अपनी पुरानी दोस्ती है, इतनी-सी बात में खतम हो जाएगी? और अगर खतम होनी है, तो खतम हो गई। ऐसी दोस्ती का क्या मूल्य कि जरा मेरी भैंस तेरे खेत में घुस गई और दोस्ती खतम! तो आज ही खतम! और भैंस तो भैंस है, अब मैं कोई चौबीस घंटे उसके पीछे नहीं घूमता रहूंगा, कभी घुस भी सकती है। और याद रख, मेरी भैंस को अगर हाथ भी लगाया तो मुझसे बुरा कोई नहीं!
बात बढ़ गई।
तो मैंने वहीं कहा कि ठीक, तो फिर हो जाए! मैंने वहीं रेत पर अपना खेत खींच कर बना दिया कि यह रहा मेरा खेत, हो तेरी हिम्मत तो घुसा दे भैंस! और इसने अपनी अंगुली से एक लकीर खींच कर कहा कि यह घुस गई भैंस, कर ले क्या करता है! अब फिर आगे का सब हाल पूरे गांव को मालूम है! इसलिए हम संकोच करते हैं, कहना भी क्या, न तो... अभी कुछ था ही नहीं, मगर बात बिगड़नी थी सो बिगड़ गई। सिर खुल गए। अब हम पछताते हैं, मगर अब जो हो गया सो हो गया।
तुम्हारी जिंदगी क्या है? परमात्मा के सामने खड़े होओगे तो ऐसे ही झुक
कर कहोगे पत्नी से कि अब तू ही कह दे! पत्नी कहेगी कि आप पति परमात्मा हैं, आप ही कहिए। आपके सामने मैं कैसे बोलूं, आप ही बोलिए। तुम्हारे लड़ाई और झगड़े, तुम्हारी मित्रताएं और शत्रुताएं, सब ताश के खेल हैं। और ताशों पर बने हुए राजा और रानी बस मान्यताएं हैं। मगर हम बड़े उपद्रवों में पड़े हुए हैं।
दास पलटू कहै सुधारस छोड़िकै,
भया अज्ञान तू छाछ लेवै।।
यह कैसा अज्ञान तुझे घेर लिया है! यह कैसी मूढ़ता, यह कैसी मूर्च्छा!! जिनके पास सहारे
उनके पांव हवा छूती है
किस्मत चांदी की जूती है।

जिसने नियम कर दिए झीने
उसको छेड़ा नहीं किसी ने
उन पांवों में बड़ी बिवाई जिनमें मजबूती है।

दहले पर बैठे जो नहले
हंसलें और सुबह से पहले
जब तक किरण नहीं आती
अंधियारे की तूती है।
यह जिस जिंदगी को तुम जिंदगी समझ रहे हो--जब तक किरण नहीं आती, अंधियारे की तूती है--इसमें जिंदगी जैसा कुछ भी नहीं है। बस, जब तक किरण नहीं आती, अंधियारे की तूती है।
और किरण कहां से आनी है? किन्हीं दूर सात समंदर पारों से नहीं। किरण तुम्हारे भीतर सोई पड़ी है, उसे जगाना है, उसे झकझोरना है, उसकी नींद तोड़नी है। और एक किरण तुम्हारे भीतर पैदा हो जाए--जरा सी किरण रोशनी की, अंधेरा जरा सा टूटने लगे कि तुम चकित होओगेः कैसे तुम जिए, कैसे व्यर्थ तुम जिए! जहां वसंत हो सकता था, वहां केवल पतझड़ ही रहा! जहां फूल खिल सकते थे केवल कांटे लगे!
एक समय था--
जब मुझे लगता था
कि मैं
किसी पहाड़ पर
खड़ा हूं
मन से, तन से तगड़ा हूं।

लेकिन अब!
लगता है
मैं किसी पहाड़ के
बोझ से मर रहा हूं
हर रोज पीले पत्ते-सा
झर रहा हूं।
यह अकड़ बस दो दिन की है। यह जिंदगी ही चार दिन की है। इस जिंदगी की लंबाई कितनी है? दो आरजू में कट गए दो इंतजार में... बस चार दिन... उम्रे- दराज मांग कर लाए थे चार दिन। दो मांगने में, आरजू में; और दो इंतजार में, प्रतीक्षा में कि अब आया, अब आया; अब मिला, अब मिला। और एक दिन मौत आती है, मिट्टी मिट्टी में गिर जाती है। और मृत्यु के क्षण में बहुत पछतावा होता है कि इस जिंदगी को सोना बना सकते थे, यह मिट्टी ही रह गई! इस सोने में सुगंध भी ला सकते थे और यह मिट्टी ही रह गई! इस कीचड़ में कमल खिल सकते थे और यह कीचड़ और भी कीचड़ होकर समाप्त हो गई! नहीं ऐसा विषाद तुम्हें पकड़ेगा अगर हरिनाम से अपनी नाव को जोड़ लो।
धन्य हैं संत निज धाम सुख छाड़िकै
आन के काज को देह धारा।
पलटू कहते हैं कि चकित होता हूं मैं--चकित होने की बात है, यह इस जगत का सबसे बड़ा चमत्कार है--कि बुद्धपुरुष अपने अंतर्लोक को छोड़ कर तुम्हें समझाने की चेष्टा में संलग्न होते हैं, अपने भीतर के आनंद को छोड़ कर तुम्हारे साथ सिर मारते हैं, और तुम से पाते क्या हैं--सिवाय गालियों के, सिवाय अपमान के। तुम्हारे पास और देने को कुछ है भी नहीं। तुम्हारे पास गीता तो हैं ही नहीं, गालियां ही हैं। तुम्हारे भीतर फूल तो खिले ही नहीं, कांटे ही हैं। और जो तुम्हारे पास है, वही तुम दे सकते हो। आखिर बुद्धों को तुमने दिया क्या है? जीसस को तुमने क्या दिया--कांटों का ताज! मंसूर को तुमने क्या दिया? हाथ-पैर काट लिए, जबान काट ली, गर्दन काट ली। सुकरात को तुमने क्या दिया? जहर! तुम खुद जहर पीते हो और अगर तुम्हें कोई जगाने आ जाए, तो तुम बर्दाश्त नहीं करते। इस जगत में बड़े से बड़े चमत्कारों में यह चमत्कार है।
धन्य हैं संत निज धाम सुख छाड़िकै,
आन के काज को देह धारा।

कोशिश करते हैं सोए हुए लोगों को जगाने की। उनका काम पूरा हो गया है, चाहें तो इसी क्षण देह से उड़ जाएं--उनका पिंजड़ा खुल गया है, दरवाजा खुला है--मगर रुके हैं। जितनी देर तक बनता है, रुकते हैं। जितनी देर संभव होता है, रुकते हैं, कि शायद दो-चार पंछी उनके साथ उड़ने को राजी हो जाएं। उन्हें तो मानसरोवर का मार्ग मिल गया है लेकिन शायद दो-चार और मानसरोवर के यात्री हो जाएं।
ज्ञान-समसेर लै पैठि संसार में,
सकल संसार का मोह टारा।।
लेकिन तलवार लेकर कूद पड़ते हैं संसार में कि लोगों का मोह काट दें।
जीसस से किसी ने कहा हैः आप शांति के अवतार हैं; आप जगत में शांति लेकर अवतरित हुए हैं। जीसस ने कहा कि नहीं, मैं तलवार लेकर आया हूं। ईसाइयों को बड़ी कठिनाई होती है इस वक्तव्य का अर्थ करने में। क्योंकि जीसस और कहें कि नहीं, मैं तलवार लेकर आया हूं! इसकी क्या व्याख्या करें? क्योंकि जीसस तो परम शांति के संदेशवाहक और कहें कि मैं तलवार लेकर आया हूं!
पलटू के वचन में अर्थ है। यह साधारण तलवार की बात नहीं हो रही है। जीसस उस तलवार की बात कर रहे हैं जो तुम्हारे मोह को काट देगी, जो तुम्हारे अंधकार को काट देगी, जो तुम्हारी मूर्च्छा को काट देगी।
ज्ञान-समसेर लै पैठि संसार में,
सकल संसार का मोह टारा।।
प्रीति सब से करैं मित्र और दुष्ट से,
भली औ बुरी दोउ सीस धारा।
संतों के जीवन में भीतर तो अमृत की रसधार बहती, लेकिन बाहर कुछ थोड़े-
से लोग जिनमें बोध है, जिनमें होश है, वे तो उनके चरणों में सिर भी रखते हैं, लेकिन अधिक लोग, भीड़-भाड़, वह तो गालियों की बौछार करती है। पागलों की एक जमात है यह पृथ्वी! इसमें अजीब-अजीब पागल हैं! जहां अहंकार है वहां पागलपन है। और जहां अहंकार है वहां सिर्फ भूलें ही हो सकती हैं। वहां सत्य खो जाता है--सत्य तो दूर, वहां साधारण सज्जनता भी खो जाती है।
मुल्ला नसरुद्दीन स्टेशन जाने की जल्दी में था और कोई टैक्सी नहीं मिल रही थी। अंततः उसने सोचा कि किसी कार से ही लिफ्ट मांगी जाए वरना गाड़ी पकड़ना मुश्किल है। सो पहली ही जो कार निकली, वह देश के एक महान नेता की थी; मुल्ला को कुछ पता नहीं, वह तो स्टेशन जाने की जल्दी में था, घंटाघर की घड़ी घंटे बजा रही थी, बस मिनटों में अगर नहीं पहुंचा तो चूक जाएगा और जाना जरूरी है, पहुंचना जरूरी है, सो उसने हाथ दिया, कार रुकी, बिना कुछ पूछे ही मुल्ला झट से पीछे का दरवाजा खोल कर भीतर घुस गया। महान नेता को महान क्रोध आया। महान नेताओं को महान ही चीजें होती हैं। वे गुस्से में बोलेः उल्लू के पट्ठे! नीचे उतरो! क्या अपने बाप की गाड़ी समझ रखी है? जानते नहीं मैं कौन हूं? हाथ देकर गाड़ी क्यों रोकी? तुम कौन हो गाड़ी रोकने वाले? मुल्ला नसरुद्दीन ने हाथ जोड़े और कहाः अरे-अरे, क्षमा करें नेता जी! आपकी गाड़ी है, मुझे क्या पता! मैं तो स्टेशन जाने की जल्दी में था, मैं तो समझा कि किसी सज्जन पुरुष की कार होगी।
जहां अहंकार है, वहां सज्जनता खो जाती है। और जहां अहंकार है, वहां विक्षिप्तता का वास हो जाता है। अहंकार एक तरह का पागलपन है।
सरकारी कार्यालय में इंटरव्यू था। चंदूलाल भी उसमें उम्मीदवार थे। प्रश्नकर्ता ने पूछा, चंदूलाल, टाइपिंग किस स्पीड से कर लेते हो? जरा प्रश्नकर्ता और इंटरव्यू लेने वाला शंकित था, चंदूलाल के ढंग कुछ झक्की- से मालूम होते थे। टोपी उलटी लगा रखी थी, कोट की बटनें भी ऊपर-नीचे लगी थीं। चंदूलाल ने कहा, सौ शब्द प्रति मिनट की दर से। अधिकारी को विश्वास तो न आया। यह ढंग और सौ शब्द प्रति मिनट की दर से टाइप करने की क्षमता! बात कुछ जंची तो नहीं, लेकिन उसने कहा, कोई बात नहीं, आओ करके बताओ! चंदूलाल बेधड़क आगे बढ़े। टाइप करने बैठ गए। करीब आधा घंटा बाद अधिकारी आया, देखा कि अभी तक चंदूलाल ने केवल तीन-चार शब्द ही टाइप किए हैं। जवाब में चंदूलाल ने कहा कि माफ करिए, मुझे हिंदी टाइपिंग नहीं, अंग्रेजी टाइपिंग का ज्ञान है। अधिकारी ने उसे अंग्रेजी टाइपिंग की मशीन दी। फिर आधे घंटे बाद आया तो

देखा चंदूलाल ने एक शब्द भी टाइप नहीं किया है। क्यों जी, तुम तो कहते थे अंग्रेजी टाइपिंग बहुत तेजी से कर लेते हो अभी तक खाली क्यों बैठे हो? जी हां, चंदूलाल बोले, हिंदी टाइपिंग यद्यपि मैं तेजी से नहीं कर पाता, लेकिन हिंदी पढ़ते बन जाती है। अंग्रेजी में हालत बिल्कुल उलटी है। टाइपिंग तो अपोलो यान की गति से करता हूं, मगर अंग्रेजी पढ़ते नहीं बनती।
अहंकार में उलझे हुए आदमी की बड़ी दुविधा है, द्वंद्व है। सब अधूरा- अधूरा है, कुछ पूरा नहीं। सब खंड-खंड है, कुछ अखंड नहीं। ज्ञान बासा है, उधार है, अपना नहीं। अज्ञान अपना है और ज्ञान बासा है, उधार है। और ज्ञान पर भरोसा है। और अपने अज्ञान को तो देखता भी नहीं। देखे तो तोड़ने की चेष्टा हो सकती है। सोचना, जो भी तुम जानते हो जानते हो? और चकित हो जाओगेः जो भी मूल्यवान है, कुछ नहीं जानते। ईश्वर, आत्मा, स्वर्ग-नरक, पाप-पुण्य, कर्म-अकर्म--यह सब तुम बकवास की तरह करते हो, इसमें से किसी भी चीज का तुम्हें कोई स्वानुभव नहीं है। मगर लोग ब्रह्मचर्चा कर रहे हैं!
इस देश में तो यह दुर्भाग्य और भी घना हो गया है। इस देश में तो सभी ज्ञानी हैं। यहां अज्ञानी तो कोई है ही नहीं। यह तो पुण्यभूमि है, धर्मभूमि है। जिसने गीता पढ़ ली, जिसने रामायण कंठस्थ कर ली, वह ज्ञानी हो गया। जो उपनिषद के चार वचन दोहरा लेता है, वह सोचता है कि सब आ गया, अब क्या करना है?
इतना सस्ता नहीं है ज्ञान। ऐसे नहीं मिलता ज्ञान। ज्ञान के लिए ध्यान चाहिए।
इसलिए पलटू कहते हैंः
संतजन अमर हैं उसी हरिनाम से,
उसी हरिनाम पर चित्त देवै।
उसी हरिनाम पर चित्त को लगाने का नाम ध्यान है। अपने भीतर उसकी तलाश, खोज, अपने भीतर उसे खोदना है। जैसे मिट्टी को खोदते जाओ तो जलस्रोत मिल जाएंगे, मिल ही जाएंगे देर-अबेर, वैसे ही स्वयं के भीतर खोदते चले जाओ तो हरिनाम मिल जाएगा, हरि की किरण मिल जाएगी। और तब तुम्हारे जीवन में एक क्रांति होती है। तब तुम्हारे पास देने को कुछ होता है। और इतना होता है कि तुम दिए चले जाओ, चुकता नहीं। और ध्यान रखना, तुम दोगे लोगों को अमृत और गालियां पड़ेंगी और पत्थर गिरेंगे तुम्हारे ऊपर और फांसी लगाई जा सकती है। यह लोग करेंगे। जो लोग कर सकते हैं, वह लोग करेंगे। लेकिन इससे संतों को कुछ भेद नहीं पड़ता।
भली और बुरी दोउ सीध धारा।
प्रीति सब से करैं मित्र औ दुष्ट से,
दास पलटू कहै राम नाहिं जानहूं,
यह शब्द बड़ा अदभुत है!
दास पलटू कहै राम नहिं जानहूं,
जानहूं संत, जिन जक्त तारा।।
कहते हैं कि राम को तो मैं सीधा-सीधा नहीं जानता था। कैसे जानता? जाना पहले उन्हें जिन्होंने राम को जान लिया था। संतों को जाना।
इस पृथ्वी पर परमात्मा का और कोई प्रमाण नहीं है। कोई तर्क उसे सिद्ध नहीं कर सकता। तर्क से तो परमात्मा असिद्ध ही होता है। तर्क तो नास्तिक के पक्ष में है, आस्तिक के पक्ष में नहीं है। आस्तिकता तर्क से संबंध भी नहीं रखती। तर्क तो निषेध का व्यापार है और आस्तिकता विधेय है। नहीं कहना हो तो तर्क की जरूरत होती है, हां कहना हो तो तर्क की कोई जरूरत नहीं होती। तर्क परमात्मा को सिद्ध नहीं करता, कोई प्रमाण नहीं देता। जो तर्क से ही जीते हैं वे अधार्मिक ही रह जाते हैं। जो तर्क से ही जीते हैं, उनके जीवन में न कोई गंध होती है, न कोई गीत होता, न कोई संगीत होता। जो तर्क से ही जीते हैं, वे मिट्टी की तरह ही जीते हैं और मिट्टी की तरह ही नष्ट हो जाते हैं। उनके जीवन में वह परम सौभाग्य की घड़ी आ ही नहीं पाती जब महोत्सव फले, जब दीपावली हो, जब हम शाश्वत के साथ होली खेल सकें।
दास पलटू कहै राम नहिं जानहूं,

कहते हैं कि राम को तो मैं जानता भी नहीं, जान भी नहीं सकता था। लेकिन मेरा सौभाग्य यह था कि--
जानहूं संत, जिन जक्त तारा।।
उन संतों को जानने का अवसर मिल गया, जो तलवार लेकर टूट पड़े थे जगत में
कि हो जिसकी भी हिम्मत उसका मोह काट दें, उसका भ्रम तोड़ दें; हो जिसमें भी साहस, उसका अहंकार, उसकी गर्दन काट दें। लेकिन जिसने संत को जान लिया, उसके लिए परमात्मा के प्रमाण मिलने शुरू हो जाते हैं। संत के सान्निध्य में प्रमाण है। संत की तरंगों में प्रमाण हैं। संत के आस-पास बरसते प्रसाद में प्रमाण हैं। लेकिन इस प्रसाद को, इस तरंग को, इन फूलों की वर्षा को वही झेल पाएगा जो हृदय खोल कर बैठे। अगर तर्क में अकड़े, अहंकार में जकड़े, ज्ञान से भरे, पक्षपात की आंखों पर पट्टियां बांधे, कानों में घंटे लटकाए कि कुछ और सुनाई न पड़े, अगर इस तरह आकर संत के पास भी बैठे तो नदी के पास भी आए और प्यासे ही लौट जाओगे।
संत के पास तो बैठने की कला हैः मिट कर बैठना; खाली होकर बैठना; शून्य होकर बैठना। संत को सुनने का एक और ही ढंग है। स्कूल में, विद्यालय में, विश्वविद्यालय में सुनने का एक ढंग है। संत के पास सुनने का दूसरा ही ढंग है। विश्वविद्यालय में सुनते हो बुद्धि से, संत को सुनना होता है हृदय से। विश्वविद्यालय में सुनते हो विचार से, संत को सुनना होता है प्रेम से। जो अपनी प्रीति की झोली फैला कर संत के पास बैठ जाता है, उसकी झोली भर जाती है।
दास पलटू कहै राम नहिं जानहूं,
जानहूं संत, जिन जक्त तारा।।

उम्रे-अबद से खिज्र को बेजार देख कर
खुश हूं फुसूने-नरगिसे-बीमार देख कर।

अब जुस्तजू-ए-दोस्त की मंजिल कहीं भी हो
हम चल पड़े हैं राह को दुशवार देख कर।

अब इससे क्या गरज कि हरम है कि दैर है
बैठे हैं हम तो साया-ए-दीवार देख कर।

राजे फरोगे-आखिरे-शब कुछ न खुल सका
क्यों खुश है शम्अ सुब्ह के आसार देख कर।

साजे गजल उठा ही लिया हमने ऐ रविश
उस चश्मे-नीम-बाज का इसरार देख कर।
संतों के पास बैठोगे तो गीत उठने ही लगेंगे। क्योंकि संत के भीतर वह परम प्यारा प्रकट हो रहा है--या कहो, वह परम प्रेयसी प्रकट हो रही है। जो मर्जी हो! सूफी कहते हैं उसेः परम प्रेयसी। पलटू कहेंगे उसेः परम प्यारा। दोनों ठीक हैं। क्योंकि वहां न तो स्त्री बचती है, न पुरुष। परमात्मा न तो स्त्री है, न पुरुष। पर हम तो बोलेंगे तो कोई न कोई शब्द उपयोग करना पड़ेगा। यह सूफियों का वचन हैः
साजे-गजल उठा ही लिया हमने ऐ रविश
उठाना ही पड़ा। आज उठाना पड़ा। वीणा बजानी पड़ी, कि बांसुरी बजानी पड़ी,
कि मृदंग पर थाप देनी पड़ी, कि गजल गानी पड़ी।
साजे-गजल उठा ही लिया हमने ऐ रविश
उस चश्मे-नीम-बाज का इसरार देखकर।
उसका इशारा देखा। उस प्रियतमा का इशारा देखा। उस प्रियतमा की आधी आंखें खुलीं, आधी बंद, उन अधखुली आंखों का इशारा समझ में आ गया।
तुमने बुद्ध की प्रतिमा देखी? बुद्ध की प्रतिमा, आधी आंख खुली होती है, आधी बंद। नीम-बाज, अधखुली आंख होती है। क्यों? सदियों से यह सवाल बौद्ध जिज्ञासु पूछते रहे हैंः क्यों? जवाब दिया है जापान के एक झेन फकीर रिंझाई

ने। उसने कहा, बुद्ध मध्यमार्गी हैं। इसलिए वे कहते हैं, बाहर भी देखो आधा, आधा भीतर भी देखो। क्योंकि वही बाहर है, वही भीतर है। इसलिए आधी खुली आंख। महावीर की आंख पूरी बंद है ध्यान में। वे भीतर डुबकी मार रहे हैं, पूरी-पूरी डुबकी मार रहे हैं। तुम्हारी आंख पूरी खुली है। तुम बाहर भटक रहे हो। रिंझाई की बात में सचाई है। बुद्ध ने आधी आंख बंद की, आधी खुली रखी। क्योंकि बाहर भी वही, भीतर भी वही। बुद्ध का सारसूत्र हैः मध्य। ठीक बीच में रुक जाना। जैसे तराजू को तौलते वक्त जब कांटा ठीक बीच में रुक जाता है, तो समतुलता आ जाती है, समता आ जाती है, सम्यकत्व आ जाता है। न तो बहुत भीतर झुक जाना है--नहीं तो अंतर्मुखता घेर लेगी; न बहुत बाहर झुक जाना--नहीं तो बहिर्मुखता घेर लेगी। दोनों स्थितियों में आदमी आधा रह जाता है। और परमात्मा को जानना है उसकी समग्रता में।
साजे-गजल उठा ही लिया हमने ए रविश
उस पश्मे-नीम-बाज का इसरार देख कर।
और जब उसका इशारा हो गया हो, तो हम करते भी क्या! फिर हमने गीत छेड़ ही दिया।
अब जुस्तजू-ए-दोस्त की मंजिल कहीं भी हो
अब उस प्यारे की मंजिल कहीं भी हो, कोई फिकर नहीं, एक बार सदगुरु से मिलना हो गया तो इतना भरोसा आ जाता है कि मंजिल है। और इसके अतिरिक्त भरोसा आता नहीं। सदगुरु की आंखों में झांक कर ही भरोसा आता है। उसके हृदय के साथ जब तुम्हारा हृदय भी धड़कता है--साथ-साथ, लयबद्ध होकर, तब भरोसा आता है। तब श्रद्धा उमगती है।
अब जुस्तजू-ए-दोस्त की मंजिल कहीं भी हो
अब उस प्यारे की मंजिल कहीं भी हो, कोई फिकर नहीं।
हम चल पड़े हैं राह को दुशवार देख कर।
और यह भी हमें मालूम है कि रास्ता कठिन है, और यह भी हमें मालूम है कि चढ़ाई है और पहाड़ की यात्रा है, मगर कोई फिकर नहीं, एक बार जिसने सदगुरु की आंख में झांक लिया, उसे यह बात पक्की हो जाती है--
अब जुस्तजू-ए-दोस्त की मंजिल कहीं भी हो
हम चल पड़े हैं राह को दुशवार देखकर।

अब इससे क्या गरज कि हरम है कि दैर है
बैठे हैं हम तो साया-ए-दीवार देख कर।
और सच्चा प्रेमी परमात्मा का यह फिक्र नहीं करता कि मस्जिद है कि मंदिर है, कि गुरुद्वारा है कि गिरजा है। इसकी भी फिकर नहीं करता कि सदगुरु हिंदू है कि मुसलमान है, कि ईसाई।
अब इससे क्या गरज कि हरम है कि दैर है
बैठे हैं हम तो साया-ए-दीवार देख कर।
अब मंदिर की दीवाल हो कि मस्जिद की, क्या फर्क पड़ता है? हमें तो छाया मिल रही है। हम तो छाया देख कर बैठ गए हैं। मस्जिद की दीवाल भी छाया दे देती है, मंदिर की दीवाल भी छाया दे देती है। और धूप से जो तड़प रहा है, उसे छाया चाहिए। वह यह फिक्र नहीं करता कि मंदिर, मस्जिद... । राजे-फरोगे-आखिरे-शब कुछ न खुल सका
क्यों खुश है शम्अ सुबह के आसार देखकर।
बड़ा प्यारा वचन है! कि इस बात का राज पहले नहीं खुल सका था कि सुबह होती देख कर शमा खुश क्यों है! शमा को खुश नहीं होना चाहिए। क्योंकि सुबह होते ही शाम बुझा दी जाएगी। शमा को तो खुश होना चाहिए रात देख कर क्योंकि रात में शमा जलेगी, दिया जलेगा। सुबह हुई कि दीया बुझा। सुबह को देख कर शमा इतनी खुश क्यों है? यह राज तो खुलता है जब तुम किसी संत के साथ जुड़ोगे। तब तुम जानोगे कि अहंकार की शमा बुझ जाए तो आत्मा की शमा प्रज्वलित होती है। तब तुम जानोगे कि संत क्यों अपने को मिटा देने को उत्सुक है? क्योंकि उसे एक रहस्य पता चल गया है कि मिटने में ही असली होना है। खोने में ही असली पाना है। जीसस का वचन हैः जो बचाएंगे अपने को, खो जाएंगे। और जो अपने को खो देंगे, वे बचा लिए गए।

कफन को बांधिकै करै तब आसिकी,
पलटू कहते हैं, कफन बांध लेना सिर में, तब चलना इस प्रेम के रास्ते पर। कफन को बांधिकै करै तब आसिकी,
आसिक जब होय तब नाहिं सोवै।
ध्यान रहे, रास्ता दुश्वार है, कठिन है। लेकिन अगर कभी किसी सदगुरु का जरा सा स्वाद लग गया तो चुनौती मिल जाती है। तब असंभव संभव मालूम होने लगता है। तब रात कितनी ही अंधेरी हो, सुबह होकर रहेगी, इसकी ऐसी आस्था उमगती है कि चल पड़ता है आदमी; कितने ही पहाड़ लांघने हों, कितने ही समंदर लांघने हों, सब की तैयारी दिखा देता है। पाना ही होगा। एक बार बूंद भी मिल जाए स्वाद की, जरा-सा बूंद का स्वाद कि फिर रुका नहीं जा सकता। फिर अपरिहार्य है यात्रा।
कफन को बांधिकै करै तब आसिकी,
आसिक जब होय तब नाहिं सोवै।
और प्रेम की शर्त यही है कि फिर दुबारा न सोए। फिर दुबारा संसार में मूर्च्छित न हो।
नश्या-ए-मय के सिवा कितने नशे और भी हैं,
कुछ बहाने मेरे जीने के लिए और भी हैं।

ठंडी-ठंडी-सी मगर गम से है भरपूर हवा,
कई बादल मेरी आंखों से परे और भी हैं।

इश्के-रुसवा, तेरे हर दागे-फरोजां की कसम, मेरे सीने में कई जख्म हरे और भी हैं।

हिज्र तो हिज्र था, अब देखिए क्या होता है,
उसकी कुर्बत में कई दर्द नये और भी हैं।

रात तो खैर किसी तरह से कट जाएगी,
रात के बाद कई कोस कड़े और भी हैं।

वादी-ए-गम में मुझे देर तक आवाज न दे
वादी-ए-गम के सिवा मेरे पते और भी हैं।
यात्रा तो कठिन है। यात्रा तो लंबी है। यात्रा तो करीब-करीब असंभव है। लेकिन असंभव की चुनौती न लोगे तो तुम्हारे भीतर आत्मा भी पैदा न होगी। असंभव की चुनौती के स्वीकार में ही आत्मा का जन्म है। जितनी बड़ी यात्रा पर तुम निकलते हो, उतने ही बड़े तुम हो जाते हो। जितने विराट की तुम तलाश करते हो, उतने ही विराट तुम हो जाते हो। क्षुद्र से दोस्ती न बांधना, नहीं तो क्षुद्र हो जाओगे।
दास पलटू कहै राम नहिं जानहूं,
जानहूं संत, जिन जक्त तारा।।
कुछ मैत्री बनाओ किसी सदगुरु से। उसके हाथ की तलवार देख कर भाग मत खड़े होना। काटेगा तुम्हें, जरूर काटेगा, मारेगा तुम्हें, क्योंकि तुम जैसे हो अभी झूठे हो। तुम्हें मिटाएगा, क्योंकि तभी तुम्हारा वास्तविक जन्म हो सकता है, तुम द्विज हो सकते हो। और तुम्हारा दूसरा जन्म होना चाहिए--देह का नहीं, आत्मा का।
हिज्र तो हिज्र था, अब देखिए क्या होता है,
उसकी कुर्बत में कई दर्द नये और भी हैं।
संसार के दुख हैं, लेकिन जब तुम परमात्मा के समीप आने लगोगे तो तुम्हें नई पीड़ाओं का अनुभव होगा--पीड़ाएं जो बड़ी मीठी हैं; पीड़ाएं जो बड़ी मधुर हैं; पीड़ाएं जो आरपार भेद जाती हैं, छेद जाती हैं।
हिज्र तो हिज्र था, अब देखिए क्या होता है,
उसकी कुर्बत में कई दर्द नये और भी हैं।

रात तो खैर किसी तरह से कट जाएगी,
रात के बाद कई कोस कड़े और भी हैं।
धर्म कायरों के लिए नहीं है, साहसियों के लिए है, दुस्साहसियों के लिए है। कायरों ने तो अपने मतलब के धर्म बना लिए हैं। यज्ञ कर लिया, हवन कर लिया, घंटी बजा ली पत्थर की मूर्ति के सामने और सोचा कि धर्म हो गया। कि चर्च हो आए हर रविवार को कि सोचा कि धर्म हो गया। कि जाकर दो फूल चढ़ा दिए और सोचा कि धर्म हो गया। अपने को कब चढ़ाओगे? जब तक अपने को न चढ़ाओगे तब तक धर्म नहीं होगा।
कबीर कहते हैंः जो घर बारै आपना, चलै हमारे साथ। सब जला कर राख करने की तैयारी हो, वह हमारे साथ आए।
मंदिरों और मस्जिदों में तम कायरों को झुका देखोगे। सदगुरुओं के पास दुस्साहसी इकट्ठे होते हैं। क्योंकि वहां चुनौती है। और ऐसी चुनौती, जिसे स्वीकार करना बस थोड़े से लोगों की सामर्थ्य में है। मगर यही थोड़े से लोग इस जमीन के नमक हैं। इनके कारण ही इस जमीन में थोड़ा सा रस है, स्वाद है। इन्हीं के कारण इस जमीन में थोड़े से दीये जलते हैं, थोड़ी रोशनी होती है। इन्हीं के कारण मनुष्य मनुष्य है। ये थोड़े से आदमी खो जाएं कि फिर आदमी और पशु में कोई भेद नहीं रह जाता। ये थोड़े से बुद्ध, कृष्ण क्राइस्ट; ये थोड़े से मोहम्मद, महावीर, मूसा, बस इन थोड़े से लोगों के कारण तुम आदमी हो। तुम्हारे कारण नहीं। तुम्हारे कारण तो तुम पशु ही हो। इन थोड़े से लोगों ने खींचा है, खूब खींचा है; तुम्हें जितनी ऊंचाइयों तक ले जा सकते थे, ले गए हैं। तुम गिर-गिर जाओ, यह तुम्हारा कसूर; तुम उठो ही न, यह तुम्हारा कसूर; मगर जगाने वालों को तुम दोष न दे सकोगे। उन्होंने पहाड़ों की चोटियों पर खड़े होकर आवाज दी है। उन्होंने आवाज देने के लिए हर कीमत चुकाई है। उन्होंने तुम्हारी गालियां, कांटे, पत्थर फांसियां, जहर, सब सहे हैं।
कफन को बांधिकै करै तब आसिकी,
आसिक जब होय तब नाहिं सोवै।
चिता बिनु आगि के जरै दिनराति जब,
और फिर एक ऐसी आग लगती है भीतर कि चिता कहीं दिखाई नहीं पड़ती, आग कहीं दिखाई नहीं पड़ती और फिर भी भक्त जलता है। मगर यह जलना सौभाग्य है। क्योंकि इसमें केवल कचरा जलता है, सोना तो निखर आता है।
जीवत ही जान से सती होवै।।
मृत्यु तो नहीं होती, मगर जीते-जी भक्त सती हो जाता है। क्योंकि परमात्मा से उसका जो प्रेम है, अब उसके सिवाय उसका कोई और प्रेम नहीं।
उसका सारा प्रेम संग्रहीभूत होकर परमात्मा की तरफ प्रवाहित होता है। वह बहुत धाराओं में नहीं बहता, वह बहुत दिशाओं में नहीं बहता। उसका प्रेम एकाग्र हो जाता है।
जीवत ही जान से सती होवै।।
और भीतर धू-धू कर कुछ जलता है। आग तो नहीं है--आग से भी बड़ी आगः धुआं भी नहीं उठता, चिता भी नहीं और फिर भी भक्त जल जाता है और राख हो जाता है। मगर जो जल जाता है वह झूठ था, मिथ्या था। फिर जो बच रहता है, वही सोना है--निखरा हुआ, कुंदन!
भूख-पीयास, जग-आस को छोड़करि,
आपनी आपु से आपु खोवै।
सब फिकर भूल जाती है उसे। भूख याद नहीं रहती, प्यास याद नहीं रहती, जग
की आस याद नहीं रहती। उसे तो बस एक ही धुन, श्वास-श्वास में एक ही धुन, एक ही मस्ती, एक ही नशा। बात करता है तो वही, चुप रहता है तो वही। कबीर ने कहा हैः बोलता हूं, तो हरिनाम; खाता हूं, तो हरिनाम; सोता हूं, तो हरिनाम; ओढ़ता हूं, तो हरिनाम। उसका उठना, बैठना, जागना, सोना, सब हरि में डूब जाते हैं।
आपनी आपु से आपु खोवै।
वह अपने ही भीतर डूबता, उतरता, गहराइयों में विलीन होता जाता है। जैसे नमक की डली को कोई सागर में डाल दे। जैसे-जैसे गहरे जाने लगे, वैसे-वैसे खोने लगे। और एक घड़ी आएगी, नमक की डली खो जाएगी, सागर के साथ एक हो जाएगी।
दास पलटू कहै इसक-मैदान पर,

देइ जब सीस तब नाहिं रोवै।।
और तुम तब तक रोते ही रहोगे, जब तक तुमने एक हिम्मत न जुटाई... दास पलटू कहै इसक-मैदान पर... प्रेम की कसौटी पर जब तक तुम अपनी गर्दन न चढ़ा दोगे, तुम्हारी जिंदगी रुदन है, आंसू ही आंसू है; तुम्हारी जिंदगी में आनंद नहीं हो सकता। आनंद सिर्फ उनके लिए है--
देइ जब सीस तब नाहिं रोवै।।
फिर कोई दुख नहीं। फिर सच्चिदानंद है।
युवावस्था में, यौवन के प्रेम में कभी-कभी तुमने ऐसी आग को थोड़ा सा जाना है--जो आग नहीं, फिर भी जलाती है। भक्त उसी आग को बड़े विराट रूप में पाता है। जैसे जंगल का जंगल आग लग जाए। प्रेम में, साधारण सांसारिक प्रेम में जो आग है, वह तो यूं समझो कि छोटी सी चिनगारी--बुझी-बुझी, राख दबी--मगर थोड़ा अनुभव समझने में सुविधा होती है। जिन्होंने प्रेम का कोई अनुभव ही नहीं किया, उन्हें भक्ति को समझना बहुत कठिन हो जाता है।
यौवन सुरा जगी है
मेरे भरे भरे मन में यह कैसी आग लगी है
अंतर की रस तरल तरंगिन क्या आंधी पानी बन आई
या आंधी पानी के स्वर में नये प्रणय ने बीन बजाई
दो तूफानों में विवेक मति ठिठकी ठगी ठगी है

शाख पात को मत्त प्रभंजन ज्यों झकझोर रहा है मन के बीच मदन शर बैठा कसक मरोर रहा है
लहरों चढ़ी चेतना चंचल फिरती भगी भगी है

यह उन्मद मौजों का मेला मन क्यों बांध सकेगा इस अस्थिरता में क्यों अपनी तरनी साध सकेगा
रूप चाहती हुई भावना रस में पगी पगी है

मेरे भरे भरे मन में यह कैसी आग लगी है
दो तूफानों में विवेक मति ठिठकी ठगी ठगी है
लहरों चढ़ी चेतना चंचल फिरती भगी भगी है
रूप चाहती हुई भावना रस में पगी पगी है
यह तो साधारण प्रेम का वर्णन है। मगर इसको ही अनंत गुना कर लो, अनंत अनंत गुना कर लो... महावीर ने कहा हैः अनंतानंत; अनंत को भी अनंत से गुणित कर दो... तब तुम जान पाओगे जो आग ध्यानी को या भक्त को लगती है। एक क्षण में सारा संसार भस्मीभूत हो जाता है। फिर जो शेष रह जाता है, वही हरि, वही राम। फिर उसे तुम जो नाम देना चाहो--निर्वाण, मोक्ष, कैवल्य, आत्मा, परमात्मा; सब नाम का भेद है।
दास कहाइकै आस न कीजिए,
आस जो करै सो दास नाहीं।
और जब एक बार किसी गुरु के चरणों में दास हो जाओ, एक बार जब किसी गुरु
के चरणों में कह दो--बुद्धं शरणं गच्छामि; संघं शरणं गच्छामि; धम्मं शरणं गच्छामि; तो फिर एक बात याद रखनाः फिर अपनी कोई आस मत रखना।
दास कहाइकै आस न कीजिए,
आस जो करै सो दास नाहीं।
छोटे-छोटे शब्दों में गहरे सत्य भर दिए पलटू ने। सीधे-सादे आदमी हैं, लेकिन पते की बात कह दी। समझें, उनके लिए इशारे काफी हैं।
आस जो करै सो दास नाहीं।
अगर गुरु के पास बैठ कर भी आशा जारी रखी कि यह मिल जाए, वह मिल जाए; सिद्धि मिल जो, ऋद्धि मिल जाए, तो भटकते रहोगे। तो गुरु के पास भी बैठे और बैठे भी नहीं। तुम्हारे और गुरु के बीच हजारों कोस का फासला रहा। जितनी आस उतना फासला। अगर आस बिल्कुल नहीं तो फासला बिल्कुल नहीं। तब गुरु धड़केगा तुम्हारे हृदय में और गुरु बोलेगा तुम्हारी वाणी में। और तुम्हारी श्वासें उसकी श्वासें होंगी। और तुम उसकी आंखों से देख सकोगे। और यही

अनुभव सत्संग हैः जब गुरु की आंखों से देख सको, उसके हाथों से छू सको, उसके हृदय से अनुभव कर सको। जब सब फासले गिर जाएं।
प्रेम तो एक जो लगा संसार में,
भक्ति गई दूरि अब जक्त माहीं।।
एक तो प्रेम है जो संसार में लगा हुआ है, बाहर, भटक रहा है। जब प्रेम संसार में लगा होता है--धन में, पद में, प्रतिष्ठा में, तब भक्ति बहुत दूर
चली जाती है। तब तुम्हें भक्ति का कुछ पता नहीं रह जाता।
प्रेम तो एक लगा संसार में,
भक्ति गइ दूरि अब जक्त माहीं।।
चाहिए भक्ति को जक्त से तोरिए,
जोड़िए जक्त से, भक्ति जाही।
ध्यान रखो, प्रेम को वस्तुओं से जोड़ दो तो संसार बन जाता है और प्रेम
को स्वयं से जोड़ लो तो संसार विलीन हो जाता है। प्रेम को संसार से जोड़ने का अर्थः वस्तुओं से आशा रखो सुख की, पर से आशा रखो सुख की; तो तुम भगवान से टूट जाते हो। और जिस दिन तुम भगवान से जुड़े, उस दिन तुम वस्तुओं से टूट जाते हो। ये दोनों बातें साथ-साथ नहीं हो सकती हैं।
दास पलटू कहै एक को छोड़िदे,
तरवार दुई म्यान इक नाहिं चाही।।
एक म्यान में दो तलवारें नहीं चाहिए। दो में से एक छोड़ देना होगा। वस्तुओं की महत्वाकांक्षा--और मिले धन, और मिले पद, और मिले प्रतिष्ठा, अगर इसमें तुम खोए हो तो तुम परमात्मा को न जान सकोगे। और अगर तुम परमात्मा को जानना चाहते हो तो इन क्षुद्रताओं से अपना मोह भंग करना होगा। जिसको सपने देखने हैं, वह जाग नहीं सकता। और जिसको जागना है, उसे सपनों से मोह छोड़ना होगा।
लेकिन हमारे मोह हैं। बड़े अजीब मोह हैं। मरते-मरते तक नहीं छूटते।
एक नेता जी अपने जीवन की आखिरी सांसें गिन रहे थे। यह पहला ही अवसर नहीं था, वे महापुरुष पहले भी कई बार मर चुके थे, मगर बार-बार जिंदा हो गए थे। आखिर नेता लोग इतनी आसानी से मर भी तो नहीं जाते। इस बार जब वे मरने लगे तो बोले, मेरे मरने के बाद इस बात का ख्याल रखा जाए कि अमुक संगीतकार का आर्केस्ट्रा ही शोक-धुन बजाए।... मर रहे हैं! मरने के बाद भी कौन सा आर्केस्ट्रा शोक-धुन बजाएगा, इसका इंतजाम किए जा रहे हैं! नेता जी के वकील ने तुरंत इस बात को एक कागज पर नोट करते हुए पूछा, कृपया यह भी बताने की कृपा करें कि अमुक संगीतकार की कौन सी धुन आप सुनना पसंद करेंगे?
मर कर भी लोग संसार को छोड़ते नहीं। इसीलिए तो दुबारा आना पड़ता है। जीते-जी भी पकड़े रहते हैं। मरकर भी पकड़े रहते हैं। मौत भी आ जाती है तो भी तुम्हारी मुट्ठी नहीं खुलती। मौत भी आती रहती है फिर भी तुम जागते नहीं। इतनी चोट पर चोट खोते हो, मगर होश नहीं आता। संसार से अगर इतना प्रेम लगा रखा है, तो फिर भक्ति बहुत दूर।
इस सारे प्रेम को इकट्ठा करो। इस सारे प्रेम को इकट्ठी एक धारा बनाओ।
और इस सारे प्रेम को परमात्मा की तरफ बहाओ। उसके ही सागर की तरफ बहने दो यह गंगा, इसको हजार-हजार नहरों में मत तोड़ो! अन्यथा सागर तक यह न पहुंच पाएगी।
और सागर तक पहुंचे बिना न शांति है, न सुख है।
मिल जाए मय तो सजदा-ए-शुक्राना चाहिए
पीते ही एक लग्जिशे-मस्ताना चाहिए।

हां, एहतरामे-मसजिद-को-बुतखाना चाहिए
मजहब की पूछिए, तो जुदागाना चाहिए।

र्रिदाने-मय-परस्त, सियह-मस्त ही सही
ए शेख! गुफ्तगू तो शरीफाना चाहिए।

दीवानगी है, अक्ल नहीं है कि खाम हो दीवाना हर लिहाज से दीवाना चाहिए।

इस जिंदगी को चाहिए सामाने जिंदगी
कुछ भी न हो तो शीशा-ओ-पैमाना चाहिए।

दीवानगी है, अक्ल नहीं है कि खाम हो...
यह जो भक्ति है, दीवानगी है, यह कोई अक्ल नहीं है कि कच्ची चीज हो। अक्ल तो हमेशा कच्ची होती है। अक्ल कभी पक्की होती ही नहीं। अक्ल तो हमेशा बचकानी होती है। कितना ही बड़ा पंडित हो, अक्ल तो बचकानी ही होती है। अक्ल प्रौढ़ता जानती नहीं। प्रौढ़ता तो प्रेम की होती है। परिपक्वता तो प्रेम की होती है। प्रेम जिन्होंने नहीं जाना, वे कच्चे ही रह जाते हैं। और प्रेम एक मस्ती है, एक दीवानापन है।
दीवानगी है, अक्ल नहीं है कि खाम हो
दीवाना हर लिहाज से दीवाना चाहिए।
और जो प्रेम के इस रास्ते पर चला है, उसको शर्तें नहीं लगानी होंगी। बेशर्त दीवाना होना होगा। परमात्मा को पीने चले हो तो बेशर्त पीओ। घूंट-घूंट क्या पीना, पूरा सागर पीओ। लेकिन सागर पीना हो तो भीतर शून्य चाहिए। जो भीतर शून्य हैं, उनमें ही सागर समा सकता है। जो शून्य हैं, उनमें ही पूर्ण समा सकता है। शून्य होना पात्रता है। शून्य होना निमंत्रण है पूर्ण का। इसलिए तलवार सदगुरु की चाहिए कि काट दे तुम्हारी गर्दन, मिटा दे तुम्हें!
दीवानगी है, अक्ल नहीं है कि खाम हो
दीवाना हर लिहाज से दीवाना चाहिए

मिल जाए मय तो सजदा-ए-शुक्राना चाहिए...
और अगर कभी किसी सदगुरु के पास ऐसी शराब मिल जाए, ऐसी दीवानगी मिल जाए,
तो फिर धन्यवाद में झुक जाना... सजदा-ए-शुक्राना चाहिए... तो फिर भगवान के प्रति धन्यवाद में झुक जाना।
मिल जाए मय तो सजदा-ए-शुक्राना चाहिए
पीते ही एक लग्जिशे-मस्ताना चाहिए।
और जैसे ही सदगुरु को पीओ कि फिर तुम्हारे पैर डोलने लगने चाहिए। फिर कहीं रखो पैर, कहीं पड़ें पैर!
दीवानगी है अक्ल नहीं है कि खाम हो
दीवाना हर लिहाज से दीवाना चाहिए।
ये पाठ परम दीवानगी के हैं। ये पाठ परम मस्ती के हैं। कायरों के लिए नहीं, साहसियों के लिए, दुस्साहसियों के लिए। जुटाओ साहस! क्योंकि जो साहस जुटाता है, वही उस परम धन्यता को उपलब्ध होता है। उस परम धन्यता को, जिसके बिना जीवन सिर्फ राख है! उस परम धन्यता को, जिसको पाकर सब पा लिया जाता है। जीसस ने कहा हैः पहले खोज लो परमात्मा को, शेष सब अपने से आ जाएगा। जिसे परमात्मा मिल गया, उसे सब मिल गया। तुम सब पा लो और अगर परमात्मा को न पाया, तो याद रखना, बार-बार कहता हूं याद रखना, मरते वक्त बहुत पछताओगे! लेकिन फिर पछताए होत का, जब चिड़ियां चुग गईं खेत!

आज इतना ही।

सपना यह संसार
दसवां प्रवचन

साक्षी में जीना बुद्धत्व में जीना है

भगवान,
इच्छा केवल रजकण में मिल
तव मंदिर के निकट पडूं
आते-जाते कभी तुम्हारे
श्री चरणों से लिपट पडूं
भगवान,
धर्म और आदमी के बीच कौन सी दीवारें हैं, इस पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

पहला प्रश्नः भगवान,
इच्छा केवल रजकण में मिल
तब मंदिर के निकट पडूं
आते-जाते कभी तुम्हारे
श्री चरणों से लिपट पडूं

वीणा! जो मांगा है वह हो ही गया है। अक्सर ऐसा होता है कि जो हो जाता है उसकी भी हमें खबर नहीं हो पाती। अनुभूति तो घटती है हृदय में, मस्तिष्क तक खबर पहुंचते-पहुंचते समय लगता है। कभी तो वर्षों लग जाते हैं। और कभी जन्म भी। जन्मों का भी फासला हो सकता है। क्योंकि हृदय की अनुभूति मस्तिष्क के शब्दजाल में प्रकट हो सके, यह आसान मामला नहीं है। हृदय की अनुभूति मौन है। एक गुनगान अनुभव होगा। एक गीत अनसुना, शब्द-शून्य; भाषा से मुक्त भाव की एक धारा। मस्तिष्क समझे तो कैसे समझे? मस्तिष्क समझता है शब्दों को, तर्कों को, विचार को; भाव में उसकी कोई गति नहीं है। भाव मस्तिष्क के लिए है ही नहीं; उसका कोई अस्तित्व नहीं है। और धर्म की जो परम अनुभूति है, वह तो भाव की है, भावना की है। इसलिए मस्तिष्क तो छूंछा का छूंछा रह जाता है। थोड़ी सी प्रतिध्वनि पहुंच जाए, बस इतना बहुत। थोड़ी सी छाया पड़ जाए, इतना बहुत। और इतना भी होने में समय लगता है, क्योंकि मस्तिष्क बड़ी धूल से भरा है; उस दर्पण पर बहुत धूली की पर्तें हैं। हृदय की छाया बन सकती है, जो गूंज हृदय में होती है उसकी अनुगूंज मस्तिष्क तक पहुंच सकती है, लेकिन खूब सफाई करनी पड़े, खूब बुहारी देनी पड़े मस्तिष्क को।
तूने जो पूछा है वीणा, वह तो हो ही गया है। तुझे देर-अबेर लगेगी शायद, लेकिन मुझे दिखाई पड़ रहा है कि हो गया है। तेरा हृदय तो भाव-विभोर है। और जिसका हृदय भाव-विभोर है, वह प्रभु-मंदिर के पास आ ही गया। और तो उसके मंदिर के पास आने की कोई विधि नहीं है। न तो काबा में, न काशी में, न कैलाश में वह है; वह तो वहीं है जहां हृदय आनंदमग्न है, जहां हृदय मस्त है, जहां हृदय दीवाना है, जहां हृदय परवाना है।
सभी भंवरे
एक से होते नहीं हैं

कुछ हैं,
जो रस पी करके
उड़ जाते हैं

कुछ हैं,
जो स्वेच्छा से
कमल-कोष में
बंध जाते हैं

कुछ हैं,

जो कांटों से
बिंधते, या कि
विवश बींधे जाते हैं

इसीलिए
कहता हूं
भंवरे-भंवरे में
अंतर होता है

और परवाने
सभी जलते नहीं हैं

कुछ हैं,
जो मंडराते हैं
रूप शिखा पर

कुछ हैं,
जो पंख जला कर
पछतो हैं

बिरले ही हैं
जो ज्योति-शिखा पर
प्राणों का अर्ध्य
चढ़ा पाते हैं

इसीलिए कहता हूं
परवाने-परवाने में
अंतर होता है
और वीणा, तू धन्यभागी है उन कुछ थोड़े से परवानों में जो दीपशिखा पर अपने जीवन का अर्घ्य चढ़ा पाते हैं।
बिरले ही हैं
जो ज्योति-शिखा पर
प्राणों का अर्घ्य
चढ़ा पाते हैं
घटना घटनी शुरू हो गई। आज नहीं कल मस्तिष्क तक खबर पहुंच जाएगी। उसकी चिंता भी लेने की कोई जरूरत नहीं है। मस्तिष्क न समझे तो भी चल जाएगा। क्योंकि मस्तिष्क यहीं पड़ा रह जाएगा। मौत शरीर को भी यहीं छोड़ जाती है, मस्तिष्क को भी यहीं छोड़ जाती है। मस्तिष्क शरीर का ही हिस्सा है। लेकिन तुम्हारे भीतर एक और आकाश है जो शरीर का अंग नहीं; शरीर में है और शरीर का ही नहीं है। पार से आया है। शरीर पड़ा रह जाएगा पींजड़े की भांति, वह हंस हृदय का उड़ जाएगा। वह अदृश्य हंस है। उस हंस को मार्ग मिल गया है। उस हंस को मानसरोवर की खबर मिल गई है। लेकिन मस्तिष्क को अभी थोड़ी बेचैनी है। बेचैनी स्वाभाविक है। मस्तिष्क का काम ही यही है कि प्रत्येक चीज को स्पष्ट कर ले; जो हो रहा है, उसे साफ-साफ समझ ले; गणित में बिठा ले, तर्क से प्रमाण जुटा ले; जो हो रहा है वह बेबूझ न रह जाए।
मस्तिष्क का काम है रहस्य को रहस्य न रहने दे, उसे सुस्पष्ट परिभाषा में बांध ले। मगर कुछ चीजें हैं जो परिभाषा में बंधती नहीं। प्रेम परिभाषा में बंधता नहीं। लाख करो उपाय, परिभाषा छोटी पड़ जाती है। व्याख्या में समाता नहीं। बड़े-बड़े हार गए, सदियां बीत गईं, प्रेम के संबंध में कितनी बातें कही गईं--और प्रेम के संबंध में एक भी बात कही नहीं जा सकी है। जो कहा गया, सब ओछा पड़ा। जो कहा गया, सब थोथा सिद्ध हुआ। प्रेम इतना बड़ा है, इतना विराट है कि यह आकाश भी छोटा है। प्रेम के आकाश से यह आकाश छोटा है। ऐसे कितने ही आकाश उसमें समा जाएं। महावीर ने इस आकाश को अनंत कहा है,

और आत्मा के आकाश को अनंतानंत। अगर अनंत को अनंत से गुणा कर दें। असंभव बात। क्योंकि अनंत का अर्थ ही हो गया कि उसकी कोई सीमा नहीं, अब उसका गुणा कैसे करोगे? कोई आंकड़ा नहीं। लेकिन महावीर ने कहा, अगर यह हो सके कि अनंत को हम अनंत से गुणा कर सकें, तो अनंतानंत, तो हमारे भीतर के आकाश की थोड़ी सी रूप-रेखा स्पष्ट होगी।
लेकिन मन हर चीज को समझ कर, जान कर स्पष्ट कर लेना चाहता है। क्यों? मस्तिष्क की यह आकांक्षा क्यों है? यह इसलिए कि जो स्पष्ट हो जाता है, मस्तिष्क उसका मालिक हो जाता है। जो राज राज नहीं रह जाते, मस्तिष्क उनका उपयोग करने लगता है साधन की तरह। लेकिन कुछ राज हैं जो राज ही हैं और राज ही रहेंगे। मस्तिष्क उन पर कभी मालकियत नहीं कर सकता और उनका कभी साधन की तरह उपयोग नहीं हो सकता। वे परम साध्य हैं। सभी साधन उनके लिए हैं। प्रेम जिस तरफ इशारा करता है, वह इशारा परमात्मा की तरफ है। प्रेम का तीर जिस तरफ चलता है, वह परमात्मा है। प्रेम का लक्ष्य सदा परमात्मा है। इसलिए तुम जिससे भी प्रेम करो उसमें तुम्हें परमात्मा की झलक अनुभूत होने लगेगी। इसीलिए तो प्रेमियों को लोग पागल कहते हैं। मजनू को लोग पागल कहते हैं; क्योंकि उसे लैला परमात्मा मालूम होती है। शीरीं को लोग पागल कहते हैं, क्योंकि फरहाद उसे परमात्मा मालूम होता है। पागल न कहें तो क्या कहें? ? एक साधारण-सी स्त्री, एक साधारण सा पुरुष परमात्मा कैसे? लेकिन उन्हें प्रेम के रहस्य का कुछ अनुभव नहीं है। प्रेम की जहां भी छाया पड़ती है, वहीं परमात्मा का आविष्कार हो जाता है। प्रेम भरी आंख से फूल को देखोगे तो फूल परमात्मा है। और प्रेम-भरी आंख से कांटे को देखोगे तो कांटा भी परमात्मा है। प्रेम की आंख जहां पड़ी, वहीं परमात्मा उघड़ आता है।
वीणा, तूने मुझे प्रेम से देखा तो परमात्मा दिखाई पड़ने लगा। मैं तुम
सब में परमात्मा को देख रहा हूं। ऐसा कोई है ही नहीं जो परमात्मा न हो। जिस दिन प्रेम की आंख इतनी गहन हो जाती है कि सबमें परमात्मा दिखाई पड़ने लगे, उस दिन कहनाः भक्ति, प्रेम की पराकाष्ठा। पलटू उसी भक्ति की बात कर रहे हैं। वह प्रेम का परम रूप; खिला कमल, उड़ी गंध। प्रेम तो थोड़ा-थोड़ा दिखाई भी पड़ता है, छुओ तो थोड़ा-थोड़ा स्पर्श में भी आता है--पकड़ नहीं बैठती, छिटक-छिटक जाता है जैसे पारा छिटक-छिटक जाए--लेकिन भक्ति तो बिल्कुल पकड़ में नहीं आती। प्रेम तो फूल जैसा है, भक्ति गंध है, सुवास है। उड़ गई आकाश में, लग गए पंख, छूट गया सब स्थूल, हो गई सूक्ष्मातिसूक्ष्म। और तेरा प्रेम भक्ति बन रहा है। इसलिए मस्तिष्क की चिंता में मत पड़! छोड़-छाड़ यह ऊहापोह। परमात्मा ने तुझे चुन लिया।
एक पुरानी फकीरों की कहावत है कि हम परमात्मा को तभी चुन पाते हैं जब परमात्मा हमें चुन लेता है। पहले वह चुनता है। हम उसकी याद तभी कर पाते हैं जब वह हमारी याद इतनी गहनता से करता है कि हमारी निद्रा में भी तूफान उठ आते हैं, हमारी मूर्च्छा में भी, हमारी मूर्च्छा की गहराइयों में भी उसकी किरण प्रविष्ट हो जाती है। उसने याद किया। इससे तू उसे याद कर पाई। उसने याद किया, इसलिए तेरा हृदय मेरे हृदय के साथ धड़कना शुरू हुआ। उसने याद किया, इसलिए तेरी श्वास मेरी श्वास से बंधी।
बाहर चाहे जितनी भी भय बाधा हो
मेरे मन के कृष्ण-कन्हाई की
तुम प्यारी राधा हो
बाहर चाहे जितनी भी भय बाधा हो

राधा कैसे रुके सदन में
मुरली ने आराधा हो
और हृदय में मुरलीधर-प्रति पावन प्रेम अगाधा हो
बाहर चाहे जितनी भी भय बाधा हो

मन मुरलीधर मौन मुरलिया
अनहदनाद अगाधा हो

सुन सकता है वही कि जिसने
प्रेमयोग को साधा हो
बाहर चाहे जितनी भी भय बाधा हो
मेरे मन के कृष्ण-कन्हाई की
तुम प्यारी राधा हो
बाहर चाहे जितनी भी भय बाधा हो
मस्तिष्क समझ पाए न समझ पाए, बाहर कितनी ही अड़चनें हों, बाधाएं हों, व्यवधान हों, चिंता न लेना, भीतर ज्योति जलनी शुरू हो गई है। भीतर का भरोसा करो। मस्तिष्क उठाएगा संदेह, प्रश्न; मस्तिष्क कहेगा कि हृदय अंधा है; मस्तिष्क होगा कि प्रेम अंधा है--सदा मस्तिष्क ने यह कहा है--हंसना मस्तिष्क पर, क्योंकि प्रेम के ही पास आंख है। अंधा अगर कोई है तो मस्तिष्क अंधा है। और प्रेम ही है अकेला जो स्वस्थ है। क्योंकि प्रेम में ही स्वयं में स्थिति मिलती है। इसलिए स्वस्थ है प्रेम। स्वास्थ्य है प्रेम। अगर कोई विक्षिप्त है तो मस्तिष्क है। मगर मस्तिष्क उठाता प्रश्न बड़े ऐसे है कि सार्थक लगते हैं। पूछने का ढंग उसका बहुत सुसंबद्ध है। उसके पूछने के ढंग से सावधान रहना!
पूछते हो, प्यार क्या है?
प्रश्न ऐसा है तुम्हारा,
पूर्ति जिसकी है न संभव
प्यार को वाणी कहे,
यह तो असंभव है असंभव

प्यार रहता है हृदय के
कोश में संचित, सुरक्षित, और उसके मर्म से जब
स्वयं प्रेमी भी अपरिचित
तब भला अनुमान से ही
कह सके सारी हकीकत,
अन्य की सामर्थ्य क्या है! पूछते हो, प्यार क्या है?

यह अनाहत नाद-सा बजता हृदय में, यह मधुर आल्हाद-सा सजता हृदय में यह कसक बनकर कसकता है सदा,
दैव का वरदान है या आपदा!

प्यार को अभिशाप भी
कहते सुना है प्रेमियों को प्यार को वरदान भी
कहते सुना है प्रेमियों को
पूछना चाहो तो पूछो--
इन अढ़ाई-अक्षरों में
इतना विरोधाभास क्या है?
पूछते हो, प्यार क्या है?
मन पूछता रहेगा, मन प्रश्न उठाता रहेगा, उत्तर न मन के पास है, न उत्तर
मन को दिया जा सकता। हर नये उत्तर में मन नये प्रश्न उठा लेगा। जैसे वृक्षों में पत्ते लगते हैं, ऐसे मन में प्रश्न लगते हैं। इसलिए वीणा, छोड़ मस्तिष्क के प्रश्नों को, गई वह घड़ी, अब हृदय में डूब! मन कहे भी कि अंधा है, तो कहनाः ठीक। और मन कहे भी कि पागलपन है, तो कहनाः ठीक, अब पागलपन ही चुनना है, अब अंधापन ही चुनना है। मस्तिष्क की आंखों से बहुत देख लिया, पदार्थ के अतिरिक्त कुछ दिखाई न पड़ा, अब हृदय के अंधेपन से देख लें। जहां मस्तिष्क हार गया, कौन जाने हृदय जीत जाए? मस्तिष्क की बुद्धिमानी बहुत कर ली, अब थोड़ी हृदय की बुद्धिहीनता कर लें। मन की चालबाजी बहुत देख ली, अब थोड़े

हृदय की निर्दोषता को पहचान लें; थोड़े हृदय के भोलेपन में उतरें और डुबकी मारें।
एक ही उपाय हैः बढ़ाए चलो प्रेम को!

जिसे प्यार करते हो
किए जाओ,
प्यार की बात
न होंठों पर लाओ

बादल की तरह
छाए रहो,
उमड़ो-घुमड़ो,
यह न हो कि तुम
यूं ही बरस जाओ
जिसे प्यार करते हो
किए जाओ,
प्यार की बात
न होंठों पर लाओ

प्यार को
वाणी की दरकार नहीं,
प्यार को शब्दों से
सरोकार नहीं,

मौन ही
प्यार की वाणी, भाषा
फिर भला
व्यर्थ क्यों बके जाओ
जिसे प्यार करते हो
किए जाओ,
प्यार की बात
न होंठों पर लाओ

प्यार--
दो साजों की
जुगलबंदी है,
जिसमें हर तार
मिल के बजता है,
बेसुरे तारों की खूंटियां खींचो
जो बेमेल हों, मिलाते जाओ

जिसे प्यार करते हो
किए जाओ,
प्यार की बात
न होंठों पर लाओ
गुरु और शिष्य के बीच यही जुगलबंदी घटती है। प्यार--
दो साजों की
जुगलबंदी है,
जिसमें हर तार
मिल के बजता है,
बेसुरे तारों की खूंटियां खींचो जो बेमेल हों, मिलाते जाओ

जिसे प्यार करते हो
किए जाओ,
प्यार की बात
न होंठों पर लाओ
मन बहुत बाधाएं खड़ी करेगा। क्योंकि मन प्यार से बहुत डरता है। उसका
भय स्वाभाविक है। क्योंकि प्रेम का जन्म मन की मृत्यु है। प्रेम का जीवन और मस्तिष्क हुआ गुलाम! प्रेम आया कि आत्मा आई, भक्ति आई कि भगवान आया--फिर कौन पूछेगा मस्तिष्क को! मस्तिष्क तो अंधों की बस्ती में काना राजा है। आंख वालों की बस्ती में कौन पूछेगा काने को! मस्तिष्क तो तभी तक हमारे ऊपर छाया रहता है जब तक हमारे पास मस्तिष्क से बड़ी रोशनी नहीं है। तो हम टिमटिमाती, पीली सी रोशनी में मस्तिष्क की जीते हैं--मोमबत्ती जैसी। लेकिन घर में बिजली आ गई हो कि सुबह सूरज निकल आया हो, फिर कौन मोमबत्ती की फिकर करता है--लोग तत्क्षण बुझा देते हैं! बस ऐसी ही घटना घटती है; जब हृदय प्रकाशित होता है प्रेम से और जब भक्ति से आंदोलित होता है तो मस्तिष्क की मोमबत्ती ऐसे ही बुझा दी जाती है जैसे सुबह लोग मोमबत्ती को बुझा देते हैं।
मोमबत्ती तो चाहेगी कि रात बनी ही रहे, बनी ही रहे, बनी ही रहे; कि रात साधारण रात भी न हो, अमावस की रात हो। मस्तिष्क का सारा न्यस्त स्वार्थ यही है कि तुम्हारा अज्ञान न टूटे। और अज्ञान टूटता है प्रेम से। अज्ञान ज्ञान से नहीं टूटता। इसलिए मस्तिष्क ज्ञान से बिल्कुल नहीं डरता। शास्त्र पढ़ो, सिद्धांत समझो; हिंदू हो जाओ, मुसलमान हो जाओ, ईसाई हो जाओ; बड़ी-बड़ी बातों को कंठस्थ कर लो; गायत्री गुनगुनाओ, नमोकार पढ़ो, इन सबसे मस्तिष्क राजी है। क्योंकि इन सब से मस्तिष्क का कुछ बिगड़ने वाला नहीं, उलटे मस्तिष्क और इनसे मजबूत होता है। पांडित्य मस्तिष्क को मजबूत करता है। तो जितने शास्त्रों का बोझ बढ़े, मस्तिष्क कहता है बढ़ाए चलो। लेकिन प्रेम मृत्यु है मस्तिष्क की। सुनिश्चित मृत्यु है। वहां उसकी गति नहीं। वहां एकदम हारा-ठगा-ठिठका रह जाता है। इसलिए मस्तिष्क प्रेम को बहुत गालियां देता है, ख्याल रखना। और गालियां इस ढंग से देता है कि तुम्हें शायद जंचे भी।
एक मित्र ने पूछा है, कि आप पाखंड का विरोध करते हैं लेकिन यहां लोग आपकी कुर्सी के सामने सिर झुका रहे हैं! सरासर पाखंड हो रहा है! तो फिर इस पाखंड में और मंदिर की प्रतिमा के सामने झुकने में क्या भेद है? मस्तिष्क का प्रश्न है। अगर कोई मंदिर की प्रतिमा में भी इतने ही भाव
से झुक रहा है जितने भाव से यहां, तो वहां भी पाखंड नहीं है। पाखंड प्रतिमा के सामने झुकने में नहीं है, पाखंड तो तब है जब कि सिर्फ मस्तिष्क झुक रहा है और हृदय में कोई अनुभव नहीं हो रहा है। पत्थर की भी पूजा प्रेमपूर्ण हो तो पत्थर परमात्मा है। और परमात्मा की भी पूजा पत्थर की तरह हो तो सब पाखंड है।
लेकिन जिसने पूछा है, सोचा है कि बहुत बुद्धिमानी का प्रश्न पूछ रहा है। जिसने पूछा है, उसको ख्याल है कि उसने ऐसा सवाल पूछा है जिसका जवाब नहीं हो सकता। मैं निश्चित पाखंड का विरोधी हूं। पाखंड का अर्थ तुम समझते हो? पाखंड का अर्थ होता है, जहां हृदय न हो, जहां हृदय का तालमेल न हो, जहां हृदय की जुगलबंदी न बंधी हो, वहां झुकना। क्योंकि मां ने कहा, पिता ने कहा, परिवार ने कहा, तो झुक गए मंदिर में, मस्जिद में। तुमने जाना? अगर तुम अपने जानने से झुके होओ, अगर तुम्हारा प्रेम ही तुम्हें झुकाया है, तो कौन कहता है यह पाखंड है? जरा भी पाखंड नहीं।
झेन फकीर इक्कू एक मंदिर में ठहरा। रात है सर्द। इतनी सर्द, इतनी ठंड
पड़ रही है कि बाहर बर्फ गिर रही है। गरीब फकीर के पास एक ही कंबल है, वह उसकी सर्दी को नहीं मिटा पा रहा है। वह उठा कि मंदिर में कुछ लकड़ी तलाश लाए। और लकड़ी तो न मिली लेकिन बुद्ध की प्रतिमाएं थीं, वे लकड़ी की थीं। कई प्रतिमाएं थीं, तो वह एक प्रतिमा उठा लाया, आग जला ली। मंदिर में जली आग, लकड़ी की चट-चटाक, अचानक रोशनी का होना, पुजारी जग गया। भागा हुआ अया। आगबबूला हो गया। आंखों पर भरोसा न आया कि एक फकीर, जिसको लोग सिद्धपुरुष

समझते हैं, वह भगवान की प्रतिमा जला रहा है! इससे बड़ी और नास्तिकता और बड़ा कुफ्र क्या होगा? उसने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो? होश में हो कि पागल हो? भगवान की प्रतिमा जला रहे हो! इक्कू हंसा, उसने पास में ही पड़े अपने संडे को उठाया, प्रतिमा तो जल गई थी, बस अब राख ही रह गई थी, उस राख में डंडे को डाल कर टटोला। पुजारी पूछने लगा--अब क्या खोज रहे हो? सब राख हो चुका। इक्कू ने कहा, भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं। पुजारी ने सिर से हाथ मार लिया। उसने कहा, तुम निश्चित पागल हो। अरे, लकड़ी की मूर्ति में कहां की अस्थियां! इक्कू ने कहा, यही तो मैं कहूं। रात अभी बहुत बाकी, बर्फ जोर से पड़ रही है और मंदिर में तुम्हारे मूर्तियां बहुत हैं, एक-दो और उठा लो! और मैं ही क्यों तापूं, तुम भी ठिठुर रहे हो, तुम भी तापो। जब अस्थियां नहीं हैं, तो कैसा भगवान!
ऐसे आदमी को मंदिर में टिकने देना खतरनाक था। क्योंकि पुजारी आखिर सोएगा। यह और मूर्तियां जला दे! बहुमूल्य चंदन की मूर्तियां हैं। इक्कू को धक्के मार कर उसने बाहर निकाल दिया। इक्कू ने बहुत कहा कि बर्फ पड़ रही है, और भगवान को बाहर निकाल रहे हो! लकड़ी की मूर्तियां बचा रहे हो और मुझे जीवित बुद्ध को बाहर निकाल रहे हो! लेकिन उसने बिल्कुल नहीं सुना, उसने कहा तुम पागल हो। तुम और बुद्ध! धक्के देकर दरवाजा बंद कर लिया।
सुबह जब उसने दरवाजा खोला मंदिर का तो देखा कि इक्कू बाहर बैठा है और
जो मील का पत्थर है उस पर फूल चढ़ा कर आराधना में झुका है और उसकी आंखों से आनंद के आंसू बह रहे हैं। पुजारी ने जाकर हिलाया और कहा कि तुम मुझे और परेशान न करो; तुम मुझे और उलझाओ मत, ऊहापोह में मत डालो! रात मंदिर में भगवान की मूर्ति जलाई, अब सुबह राह के किनारे लगे मील के पत्थर पर फूल चढ़ा कर आराधना कर रहे हो! इक्कू ने कहा, जहां आराधना है, वहां आराध्य है। पत्थर को भी प्रेम से देखो तो परमात्मा है और परमात्मा को भी सिर्फ बुद्धि से देखते रहो, तो परमात्मा नहीं। रात जो मैंने मूर्ति जलाई, अपनी सर्दी मिटाने को न जलाई थी, तुम्हारा पाखंड जलाने को जलाई थी। तुम्हें याद दिलाना चाहता था कि तुम यह पूजा व्यर्थ ही कर रहे हो, क्योंकि तुमने खुद ही कहा कि अरे पागल, लकड़ी में अस्थियां कहां? अगर तुमने यह आराधना सच में की होती तो ऐसा वचन तुमने न निकल सकता था। भीतर तो तुम जानते हो कि लकड़ी ही है, ऊपर मानते हो कि भगवान है।
पाखंड का अर्थ होता हैः भीतर कुछ, बाहर कुछ। जिन मित्र ने पूछा है, उन्हें पाखंड शब्द का भी अर्थ नहीं मालूम। पाखंड का अर्थ होता हैः भीतर एक, बाहर दूसरी बात, ठीक उलटी बात। लेकिन अगर बाहर-भीतर एकरस हो, जुगलबंदी बंधी हो, फिर कैसा पाखंड!
तो अगर कोई प्रीति से पत्थर के सामने झुके--प्रीति कसौटी है--तो पत्थर भगवान है। क्योंकि जहां झुक जाओ तुम, वहां भगवान है। तुम्हारा समर्पण भगवान है। लेकिन कोई ऐसे ही औपचारिकता से, सामाजिक व्यवहार से, और लोग झुकते हैं इसलिए झुकना चाहिए, औरों को झुकते देख कर झुकता हो, संस्कारवश झुकता हो, तो पाखंड है। पाखंड का निर्णय झुकने से नहीं होगा, पाखंड का निर्णय भीतर हृदय के अंतरतम में होगा।
उन मित्र ने पूछा है कि कल मैंने कुछ संन्यासियों को गाते सुनाः जय रजनीश हरे; यह तो महा भयंकर पाखंड हो रहा है!!
तुम कैसे निर्णय करोगे! अगर यह उनके हृदय की पुकार है तो पाखंड नहीं।
और अगर वे केवल एक औपचारिकता अदा कर रहे हैं तो जरूर पाखंड है। मगर तुम कैसे तय करोगे? तुम कौन हो निर्णायक? तुम अपने ही हृदय का निर्णय ले लो तो बहुत। तुम दूसरे के हृदयों का निर्णय न लो! तुम्हें अभी अपने हृदय का पता नहीं, औरों का तो क्या पता होगा? और यहां जो बात चल रही है, जो सत्संग चल रहा है, वह अनिर्वचनीय का है। नहीं कहा जा सके जो, उसको कहने की चेष्टा चल रही है। तुम जैसा व्यक्ति, जो अभी बुद्धि के क्षुद्र जाल में उलझा हो, उसका यहां काम नहीं है। तुम यहां आए भी, व्यर्थ आए! जिन मित्र ने पूछा है, वे संन्यासी भी हैं। तुम्हारा संन्यास भी व्यर्थ। तुम्हारा संन्यास पाखंड! अब तुम समझो पाखंड का अर्थ।

तुम्हारा संन्यास पाखंड। क्योंकि अगर तुम्हारे भीतर पूजा का भाव नहीं, अगर तुम्हारे भीतर आराधना नहीं जगी, तो तुमने बस कपड़े रंग लिए, माल पहन ली, यह पाखंड। भीतर रंग जाए और बाहर रंगे, जुगलबंदी हो, फिर पाखंड नहीं। तुमने तो सोचा होगा कि मैं करूंगा खंडन उन सबका जो इस तरह का पाखंड कर रहे हैं। तुमने कभी सोचा भी न होगा कि मैं तुमसे यह कहूंगा कि तुम पाखंडी हो। मुझसे प्रश्न पूछते समय थोड़े सोच-समझ कर पूछा करो। तुम निपट पाखंडी हो! तुम्हारा संन्यास झूठ, मिथ्या! तुम झुके ही नहीं हो। तुम्हारा कोई समर्पण नहीं है। तुम मैं जो कह रहा हूं समझ ही न पाओगे, क्योंकि शब्द पकड़ोगे तुम। शब्द की तुमने पकड़े हैं। पूछा है कि आप पाखंड का इतना विरोध करते हैं और यहां आपके संन्यासी पाखंड कर रहे हैं; इसको आप रोकते क्यों नहीं? मैं पाखंड का विरोध करता हूं। तुमसे कहूंगा कि संन्यास छोड़ दो। मैं पाखंड का विरोधी हूं। तुम्हारे हृदय में अभी लहर नहीं आई, तरंग नहीं आई, अभी तुमने मेरे मौन को नहीं सुना, अभी मेरे शून्य से तुम नहीं जुड़े; अभी तुम्हारे भीतर अनाहत का नाद नहीं हुआ।
बांध रहा हूं शब्दों में अनुभूति को

जो निर्बंध रही है अब तक,
जो स्वच्छंद बही है अब तक
बांध रहा हूं शब्दों में उस
स्रोतस्विनी, पुनीत को
बांध रहा हूं शब्दों में अनुभूति को

च्रुश्रवा बन सुना, श्रवण-- द्रष्टा बन कर देखा है जिसको,
शब्द दे रहा हूं मैं उसही तर्कातीत प्रतीति को
बांध रहा हूं शब्दों में अनुभूति को

जिसको मन ही मन में गोया,
दीर्घकाल तक जिसे संजोया,
व्यक्त कर रहा हूं अब उसही
मन की विमल विभूति को
बांध रहा हूं शब्दों में अनुभूति को
यह जो मैं तुमसे कह रहा हूं, नहीं कहा जा सके ऐसा है; निर्वचन न हो सके, ऐसा है; अव्याख्य है, ऐसा है। इसे तुम समझोगे तो हृदय से ही समझ पाओगे, बुद्धि से नहीं। बुद्धि पाखंडी है। बुद्धि पाखंड के ऊपर उठ भी नहीं सकती है। बुद्धि चालबाज है। बुद्धि बेईमान है। बुद्धि बहुत चालाक है।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र के साथ सिनेमा देखने गया हुआ था। सिनेमा में सभी बोर हो रहे थे। पिक्चर जो थी, वह उनकी समझ के बाहर थी। मुल्ला नसरुद्दीन से कुछ ही आगे एक गंजा व्यक्ति बैठा हुआ था। मुल्ला के मित्र ने मुल्ला से कहा, मुल्ला, पिक्चर तो बोर कर रही है; कुछ करो कि मनोरंजन हो। यदि तुम उस गंजे व्यक्ति के सिर पर एक चपत रसीद कर दो तो मैं तुम्हें दस रुपए दूंगा। लेकिन एक शर्त है कि वह व्यक्ति नाराज न हो, क्रोधित न हो। मुल्ला बोला, अरे, यह कौन सी बात है, अभी लो! फिल्म का इंटरवल हुआ, मुल्ला उठा और पीछे से जाकर उसने गंजे आदमी की चांद पर एक चपत रसीद की और बोलाः अरे चंदूलाल, तुम यहां बैठे हो! हम तुम्हें देखने तुम्हारे घर गए थे। वह व्यक्ति बोलाः माफ कीजिए, भाई साहब, मैं चंदूलाल नहीं। आपको शायद गलतफहमी हुई है, मेरा नाम नटवरलाल है। मुल्ला ने कहा, ओह, क्षमा करिए, भाई साहब, मुझे धोखा हो गया। और उसके बाद मुल्ला गर्व से छाती फुलाए मित्र के पास आया और बोला कि चलो, निकालो दस रुपए!
मित्र ने दस रुपये दिए और बोला, मुल्ला, अब की बार बीस रुपये दूंगा यदि तुम इस गंजे आदमी की चांद पर एक चपत और लगा दो। मुल्ला बोला, अभी लो, यह कौन सा बड़ा काम है! मुल्ला गया और जाकर फिर उसकी चांद पर एक चपत रसीद की और

बोलाः अबे साले, चंदूलाल, मुझे ही बेवकूफ बना रहे हो! मैं तुम्हें अच्छी तरह से जानता हूं। तेरी यह नाटक करने की आदत जाएगी या नहीं? वह व्यक्ति फिर बोला, भाई साहब, माफ करिए, मैं चंदूलाल नहीं, नटवरलाल हूं। मैं किसी चंदूलाल को जानता भी नहीं! मुल्ला ने पुनः उससे क्षमा मांगी और वापस आकर मित्र से बीस रुपए वसूल किए।
मित्र ने बीस रुपए देते हुए कहा, मुल्ला, यदि एक चपत तुम और लगा सको उस गंजे को तो ये पचास रुपए तुम्हारे! मगर शर्त वही है कि वह न नाराज हो और न क्रोधित ही हो। मुल्ला ने कहा, चिंता मत करो, होने दो पिक्चर समाप्त, चलो बाहर, अभी लगाए देता हूं एक चपत और।
पिक्चर समाप्त हुई, सब बाहर आए, मुल्ला ने जाकर और भी जोर से उस व्यक्ति की गंजी खोपड़ी पर एक चपत रसीद की और बोला, अबे साले चंदूलाल के बच्चे, तुम साले यहां हो और तुम्हारे धोखे में भीतर हाल में मैंने बेचारे नटवरलाल को दो चपतें रसीद कर दीं! उस व्यक्ति ने रुआंसे स्वर में, बिल्कुल मरी हुई आवाज में उत्तर दिया, भाई साहब, आप क्यों मेरे पीछे पड़े हुए हैं; मैं चंदूलाल नहीं, नटवरलाल हूं।
बुद्धि बहुत चालाक है। रास्ते खोज सकती है। ऐसे रास्ते, जिनकी तुम कल्पना भी न कर सको। और बुद्धि ने बहुत रास्ते खोजे हैं। बुद्धि ने आदमी को बहुत भटकाया है। बुद्धि हर जगह से रास्ता निकाल लेती है, तरकीब निकाल लेती है। मैं पाखंड-विरोधी हूं, तुम्हारी बुद्धि ने उसमें से रास्ता निकाल लिया, मुझसे ही बचने का। तुम्हारी बुद्धि ने उसमें से रास्ता निकाल लिया अपने अहंकार को बचाने का, तुम्हारी बुद्धि ने उसमें से रास्ता निकाल लिया दूसरों की निंदा करने का। मैंने जो कहा, वह तो तुम समझे ही नहीं, तुमने जो समझना था वह समझ लिया। और शायद तुम सोचते होओगे कि तुम मेरे असली संन्यासी! क्योंकि मेरी बात का कैसा अनुसरण कर रहे हो! जरा भी पाखंड नहीं! और पाखंड शब्द का भी अर्थ तुमने बदल लिया।
पाखंड का अर्थ होता हैः द्वंद्व, भीतर द्वैत। बाहर कुछ, भीतर कुछ। लेकिन बाहर-भीतर अगर जुगलबंदी है, फिर कैसा पाखंड! फिर तो कोई कारण नहीं पाखंड का।
जरा सावधान रहना अपनी बुद्धिमानी से। इस दुनिया में सबसे ज्यादा सावधान होने की जरूरत है अपनी बुद्धिमानी से। क्योंकि सबसे बड़े धोखे वहीं पैदा होते हैं। सबसे बड़ी चालबाजियां वहीं पैदा होती हैं।
एक एकांत-प्रिय साधु अपनी पत्नी के साथ जंगल में एक छोटा सा झोपड़ा बना
कर सुख से रहा करते थे। लेकिन अक्सर ऐसा होता था कि जंगल में आने-जाने वाले लोग कभी रास्ता भटक जाते या लौटते में उन्हें शाम हो जाती तो वे साधु की झोपड़ी देख कर वहां शरण मांगते। साधु इससे बहुत परेशान था। एक दिन शाम का समय था, साधु अपनी पत्नी के साथ शाम का मजा ले रहा था, तभी उसने देखा कि मुल्ला नसरुद्दीन चला आ रहा है। वह पुराना परिचित है, यदि शरण मांगेगा तो मना किया भी नहीं जा सकता था। अतः साधु की पत्नी ने एक उपाय सुझाया कि हम दोनों कमरे में बंद हो जाएं और ऐसा अभिनय करें कि जैसे बहुत झगड़ा चल रहा है। संभवतः मुल्ला यह देख कर कि ये लोग झगड़ रहे हैं, अब इनसे क्या शरण मांगना, ऐसा सोच कर स्वयं ही चला जाएगा।
उन लोगों ने ऐसा ही किया। कमरे के दरवाजे बंद कर साधु ने गाली बकना शुरू कर दिया और एक डंडे से तकिया पीटना शुरू कर दिया। वे अभिनय में तो कुशल थे ही--बड़े पुराने साधु थे! पत्नी ने जोर-जोर से रोना और बचाओ, बचाओ, मत मारो, ऐसा चिल्लाना शुरू कर दिया। ऐसा वे लोग करीब आधा घंटा तक करते रहे। जब नसरुद्दीन के चले जाने का उन्हें भरोसा हो गया, तब वे निकल कर बाहर आए और आंगन में पड़ी खाट पर बैठ गए, साधु ने हंसते हुए कहा, साला, भाग गा! देखा मैंने कैसा मारा? पत्नी ने भी मुस्करा कर कहा, और देखा, मैं भी कैसी रोई! तभी खाट के नीचे से सिर निकल कर मुल्ला नसरुद्दीन बोला, और देखा, मैं भी कैसा भागा!
तुम जरा सावधान रहना। तुम जरा होशियार रहना। इस दुनिया में और कोई बड़ा लुटेरा नहीं है जो तुम्हें लूट ले, इस दुनिया में और कोई बड़ा जालसाज नहीं है जो तुम्हें धोखा दे दे, तुम्हारी बुद्धि सबसे बड़ी जालसाज है। और

इस कुशलता से देती है धोखे और ऐसी सादगी से देती है धोखे कि स्मरण भी नहीं आता कि धोखा हो रहा है।
प्रेम कभी पाखंड नहीं है। तर्क सदा पाखंड है। प्रेम कभी भी अंधा नहीं है। तर्क सदा अंधा है। प्रेम कभी भी पागल नहीं है। तर्क विक्षिप्तता की ही एक प्रक्रिया है।
वीणा, तेरे भीतर प्रेम का अंधापन पैदा हुआ अर्थात आंखें पैदा हुईं।
और तेरे भीतर प्रेम का पागलपन जगा अर्थात पहली बार तू स्वस्थ होनी शुरू हुई है। छोड़ फिकिर! जो तू मांग रही है, वह हो चुका है। पूछा है तूने-- इच्छा केवल रजकण में मिल
तब मंदिर के निकट पडूं...
तू मंदिर के भीतर आ गई है! तू मंदिर में है। यह सारा अस्तित्व उसका मंदिर है। बस भीतर प्रेम जगा कि सारा अस्तित्व मंदिर हुआ।
आते-जाते कभी तुम्हारे
श्री चरणों से लिपट पडूं
उसके चरणों में ही हम हैं। उससे अन्यथा होने का उपाय नहीं है। जहां भी हो, उसके ही चरण हैं।
नानक की कहानी तुम्हें याद दिलाऊं। गए काबा। रात सोए। पुजारी बहुत नाराज हो गए, क्योंकि काबा के पवित्र मंदिर की तरफ उनके पैर थे। पुजारियों ने आकर कहा कि हम तो समझे थे कि तुम साधु मालूम पड़ते हो, देखने से फकीर मालूम पड़ते हो, बातें बड़ी ज्ञान की करते हो और इतनी भी तुम्हें तमीज नहीं, इतना शिष्टाचार भी नहीं, पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके सो रहे हो! नानक ने कहा, मैं भी बड़ी मुश्किल में था, रात होने लगी, नींद आने लगी, मेरी भी बड़ी चिंता थी कि पैर करूं तो कहां करूं! तुम मेरे पैर वहां कर दो जहां परमात्मा न हो।
ऐतिहासिक तथ्य तो इतना ही मालूम होता है--इससे ज्यादा की जरूरत भी नहीं है, बात नानक ने कह ही दी--लेकिन कहानी थोड़े और आगे जाती है। कहानी थोड़ी कविता बनती है। इतिहास जहां काम नहीं कर पाता, वहां काव्य की जरूरत होती है। इतिहास जो नहीं कह सकता, वह काव्य कहता है। यहां तक तो इतिहास है, इसके आगे बड़ा प्यारा काव्य है!
पुजारी तो क्रोध में थे, भन्नाए थे, उन्होंने पकड़े दोनों पैर नानक के
और घुमा दिए दूसरी तरफ; और चकित हुए जानकरः काबा उसी तरफ घूम गया। सब दिशाओं में पैर घुमा कर देखे। जहां पैर घुमाए, काबा वहीं घूम गया। तब चरणों पर गिर पड़े नानक के कि हमें क्षमा कर दो! इतनी बात तो कविता की है। काबा घूमेगा नहीं। काबा घूमने वाला नहीं। यह तुम पक्का समझो। काबा घूम सकता नहीं है। लेकिन यह काव्य भी इशारा कर रहा है एक गहन सत्य की तरफ। यह यही कह रहा है कि परमात्मा सब तरफ है। उसके ही चरण हैं।
एकनाथ के संबंध में भी मैंने कहानी सुनी है। गांव में एक आदमी था जो बड़ा नास्तिक। आस्तिकों को झकझोर डाला था उसने। आखिर आस्तिक परेशान हो गए, उन्होंने कहा, अगर तुम्हें कोई आदमी समझा सकता है तो बस एकनाथ। और कोई तुम्हें नहीं समझा सकता। उसने कहा, कहां हैं एकनाथ? तो उन्होंने कहा, वे दूसरे गांव में नदी के किनारे एक मंदिर में रहते हैं। तुम चले जाओ वहीं। वह आदमी सुबह ही सुबह... ब्रह्ममुहूर्त में पहुंच गया, सोच कर कि साधु से मिल लेना ब्रह्ममुहूर्त में ही ठीक होगा! फिर निकल पड़ें भिक्षा मांगने या और कहीं चले जाएं! तो पांच बजे ही पहुंच गया। पांच बजे से बैठा है मंदिर के दरवाजे पर। दरवाजा खुला है और एकनाथ सोए हैं। जरा उजाला हुआ तो वह बहुत हैरान हुआ; जो देखा उस पर आंखों को भरोसा न आया; आंखें पोंछीं, धोईं पानी से, फिर-फिर देखा, जो देखा उस पर भरोसा नहीं आता था, नास्तिक होकर भी नहीं आता था। सोचने लगा कि यह तो महा नास्तिक मालूम होता है। वह शंकरजी की पिंडी पर पैर टेके सो रहे थे। कम से कम नानक तो पैर किए थे सिर्फ, कोई काबा पर पैर टेक नहीं दिए थे, सिर्फ उस दिशा में पैर किए थे, एकनाथ और एक कदम आगे बढ़ गए! ... नानक की कहानी सुनी होगी, सोचा वही क्या करना, जरा और आगे! शंकरजी की पिंडी पर पैर टेके हैं और मस्त पड़े है; पैरों को तकिया दिया हुआ है शंकरजी की पिंडी का!

वह नास्तिक की छाती दहल गई। उसने कहा, मैं नास्तिक हूं, मैं ईश्वर को मानता भी नहीं, लेकिन अगर मुझसे कोई कहे कि शंकरजी की पिंडी को पैर लगाओ, तो मैं भी लगाऊंगा नहीं; हो न हो, कौन जाने; फिर पीछे झंझट हो मरने के बाद, कहे कि क्यों, अब बोलो! हालांकि मैं मानता हूं कि ईश्वर नहीं है। मगर यह मान्यता मान्यता ही है। अनुमान अनुमान है, तर्क तर्क है, पता नहीं हो ही! कौन देख आया! मर कर लौट कर किसी ने कहा तो नहीं कि नहीं है! न किसीने कहा है, न किसी ने कहा, नहीं है, दोनों संभावनाएं खुली हैं, विकल्प खुले हैं। कौन जाने? पचास-पचास प्रतिशत का मामला! फिफ्टी-फिफ्टी! हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। मगर यह आदमी तो हद है! यह सौ प्रतिशत माने बैठा है कि नहीं है। यह तो तकिया लगाए हुए है। इससे क्या हल होगा?
मन में तो हुआ कि लौट जाऊं, इससे क्या हल पूछना है, यह और मुझे बिगाड़ेगा। मगर अब इतनी दूर आ गया था तो सोचा कि जरा बात तो कर लूं, आदमी वैसे जानदार मालूम पड़ता है! और जिस मस्ती से सो रहा है! छह बज गए, सात बज गए, आठ बज गए... कहा, हद हो गई, यह कैसा साधु! साधु को तो ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। यह तो साधुओं और तामसियों का ढंग है कि पड़े हैं, सो रहे हैं आठ-आठ, नौ-नौ बजे तक। यह आदमी बिल्कुल नास्तिक है।
नौ बजे एकनाथ उठे। उस आदमी ने कहा, महाराज, पूछने तो बहुत कुछ आया था, लेकिन अब कुछ और ही पूछने के लिए सवाल उठ गए हैं मन में। पहले तो यह कि साधु को ब्रह्ममुहूर्त में उठना चाहिए। तो एकनाथ ने कहा, तुम क्या समझ रहे हो मैं ब्रह्ममुहूर्त में नहीं उठा? अरे, साधु जब उठे तब ब्रह्ममुहूर्त। और कौन तय करेगा ब्रह्ममुहूर्त? कोई ठेका लिया है किसी ने? कोई सील-मुहर लगी है? ब्रह्ममुहूर्त का क्या अर्थ है? ब्रह्म को जानने वाला जब उठे। ब्रह्म को जानने वाला ब्राह्मण, ब्रह्म को जानने वाला जब उठे तब ब्रह्ममुहूर्त। अज्ञानियों के जगने से ब्रह्ममुहूर्त हो सकता है! सारी दुनिया के अज्ञानी उठ आएं पांच बजे तो भी कुछ नहीं होता। एकनाथ ने कहा, जब मैं उठूं, तब समझना ब्रह्ममुहूर्त। वह आदमी बोला कि बात तो जंचती है? मगर दूसरी बात!
चलो यह भी ठीक कि जब साधु उठे तब ब्रह्ममुहूर्त; शंकरजी की पिंडी पर पैर क्यों टेके पड़े हो? शर्म नहीं आती, संकोच नहीं लगता? आस्तिक हो या नास्तिक? एकनाथ ने कहा कि यह सवाल जरा झंझट का है! मैं खुद ही पूछ रहा हूं भगवान से आज कई साल हो गए कि बता, कहां पैर रखूं? तू बता, कहां पैर रखूं? जहां पैर रखूं वहीं तू है। आखिर कहीं तो पैर रखूं! कोई अपने सिर पर तो पैर रख न लूं। तेरे ही सिर पर पड़ेंगे। तो उसने ही मुझसे कहा कि तू झंझट न कर, पिंडी पर पैर रख ले--यहां मैं कम से कम हूं। पंडित-पुरोहितों के कारण यहां मैं रह ही नहीं पाता। तब से मैं पिंडी पर ही पैर रखने लगा, मैं भी क्या करूं? जब वही कहे तो आज्ञा माननी पड़ेगी।
एकनाथ जिस अपूर्व प्रेम से भरकर यह बात कह रहे हैं, तो शंकर की पिंडी
पर भी पैर रखने का अधिकार है। लेकिन इसका कारण देख रहे हो। महा आस्तिकता इसका कारण है। झुके आस्तिक, तो भक्ति, प्रतिमा को जला डाले, तो आराधना।
सवाल भीतर का है। सवाल बाहर का नहीं है। अपने हृदय को ही टटोलते रहो, वही है दिशासूचक यंत्र।
वीणा, मन की फिकर छोड़। तू उसके ही चरणों में है, उसके ही मंदिर में है।
उसके अतिरिक्त और कहीं होने का कोई उपाय नहीं है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, धर्म और आदमी के बीच कौन-सी दीवारें हैं, इस पर प्रकाश डालने की कृपा करें।

रामनारायण चौहान, दीवारें नहीं हैं, बस दीवार है। एक ही दीवार हैः मनुष्य के अहंकार की, मनुष्य के अकड़ की। मैं कुछ हूं। मैं श्रेष्ठ हूं; दूसरे निकृष्ट हैं। मैं ऊपर हूं; दूसरे नीचे हैं। बस इस अहंकार की दीवाल है। जिस दिन यह अहंकार गया, उस दिन कोई दीवार नहीं। और चूंकि यह एक दीवार तुम नहीं जाने देते, बहुत लोग इकट्ठे हो गए हैं जो इस तुम्हारी दीवाल में नई-नई ईंटें चुनते हैं। और जो भी तुम्हारी इस दीवाल में ईंटें चुनते हैं, वे ही तुम्हें प्यारे लगते हैं। पंडित हैं, पुरोहित हैं, उनका काम इतना ही

हैः तुम्हारे अहंकार को सजाएं; तुम्हारे अहंकार को नये-नये रूप-रंग दें; तुम्हारे अहंकार को नये-नये ढंग दें; तुम्हारे अहंकार को ऐसा सजाएं कि वह अहंकार मालूम ही न पड़े। तुम्हारे अहंकार को विनम्रता तक का वेश पहना देते हैं। तुम्हारे अहंकार को त्याग के आभूषण पहना देते हैं। तुम्हारे अहंकार को ज्ञान की बकवास सिखा देते हैं।
दीवार तो एक है, अहंकार, हां, दीवार को सजाने वाले बहुत हैं। चारों तरफ
से तुम्हारी दीवार को सजाया जा रहा है। मां-बाप तुमसे कहते हैं कि ख्याल रखना, किस कुल में पैदा हुए हो। जैसे कि हम सब अलग-अलग कुलों में पैदा हुए हैं। एक ब्रह्म-कुल, और तो कोई कुल नहीं है। नहीं लेकिन मां-बाप कहते हैं, याद रखना, परिवार की प्रतिष्ठा, सम्मान, कुल-गौरव। अहंकार! छोटे से बच्चे को अहंकार दे रहे हैं। फिर स्कूल है, कालेज है, विश्वविद्यालय है, बस सब अहंकार की पूजा सिखा रहे हैं। प्रथम आना, नंबर दो नहीं। दो होना बरदाश्त ही मत करना। प्रथम ही होना चाहिए।
जॉर्ज बर्नार्ड शॉ से किसी ने पूछा मरने के पहले कि तुम नरक जाना पसंद करोगे, कि स्वर्ग? उसने कहाः नरक और स्वर्ग से कोई फर्क नहीं पड़ता। असली सवाल यह है कि जहां भी मैं प्रथम हो सकूं, वहां मैं जाना पसंद करूंगा। अगर मुझे प्रथम होने का मौका नरक में मिलता हो तो नरक के लिए मैं राजी हूं। स्वर्ग को लात मार दूंगा। स्वर्ग में भी अगर मुझे नंबर दो खड़ा होना पड़े तो मुझे जाने की कोई इच्छा नहीं है।
एक बार जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने एक व्याख्यान में कह दिया कि गैलीलियो
ने बात बिल्कुल गलत कही है कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है, मैं कहता हूं कि सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है। अब तो यह बात वैज्ञानिक रूप से प्रामाणिक हो चुकी है कि पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगाती है, गैलीलियो ने जब कहा था तब तो बड़ी अड़चन थी। गैलीलियो को बहुत सताया गया था, ईसाई पादरियों ने बहुत कष्ट दिए थे, दंड दिए थे। गैलीलियो को अदालत में बुला कर क्षमा मंगवाई थी। बूढ़ा गैलीलियो, बड़ा व्यंग्य किया था, बड़ा मजाक किया था! बड़ा समझदार आदमी रहा होगा। जब उसे अदालत में बुलाया पोप ने और कहा कि घुटन टेक कर माफी मांगों और घोषणा करो, क्योंकि बाइबिल तो कहती है कि सूरज चक्कर लगाता है पृथ्वी का... सारे दुनिया के शास्त्र यही कहते हैं। इसीलिए तो सारी दुनिया की भाषाओं में ऐसे शब्द हैंः सूर्योदय, सूर्यास्त; सुबह उदय होता है सूरज का, सांझ अस्त हो जाता है। सूरज चक्कर लगाता है।... और तुम कहते हो पृथ्वी चक्कर लगाती है सूरज का! यह बात गलत है। यह बाइबिल के खिलाफ है, यह शास्त्र के विपरीत है, तुम क्षमा मांग लो! अन्यथा महंगा पड़ जाएगा सौदा! या तो मरने को तैयार हो जाओ।
गैलीलियो ने घुटने टेक दिए।
मैं गैलीलियो को बहुत मस्त आदमी मानता हूं। अनेकों ने गैलीलियो की निंदा की है। अनेकों ने यह कहा कि गैलीलियो डर गया। उसने क्षमा मांग ली। क्षमा नहीं मांगनी थी, शहीद हो जाना था। मैं नहीं मानता ऐसा। मैं मानता हूं गैलीलियो बहुत बुद्धिमान आदमी था। ऐसी टुच्ची बातों के लिए मरने में क्या सार है! और फर्क ही क्या पड़ता है कि कौन चक्कर लगाता है! मैं तो मानता हूं कि गैलीलियो में आत्मघाती वृत्ति नहीं थी, नहीं तो वह शहीद हो जाता। शहीदों में आमतौर से आत्मघाती वृत्ति होती है। सौ में से निन्यानबे शहीद मरने को उत्सुक होते हैं, लेकिन खुद मरने का जुम्मा अपने ऊपर नहीं लेना चाहते, दूसरे पर देना चाहते हैं। सौ में से निन्यानबे शहीद आत्मघाती होते हैं। उनकी मरने की आतुरता होती है। मगर इतनी भी हिम्मत नहीं होती कि खुद की छाती में छुरी मार लें। वे दूसरे को उकसाते हैं कि तुम हमें मारो। गैलीलियो स्वस्थ आदमी रहा होगा। इसलिए मैं सारे दुनिया के वक्तव्यों के विपरीत यह वक्तव्य दे रहा हूं कि मैं मानता हूं गैलीलियो बहुत स्वस्थ आदमी था और उसने जो बात कही, वह केवल बड़ा समझदार आदमी कह सकता है। उसने कहा, हे प्रभु, मैं माफी मांगता हूं। मैं कहता हूं, घोषणा करता हूं कि पृथ्वी सूरज का चक्कर नहीं लगाती। वह जो मैंने कहा था, गलत था, सूरज ही पृथ्वी का चक्कर लगाता है।

पोप पादरियों की जमात बड़ी प्रसन्न हुई, लोगों ने तालियां बजाईं और तब गैलीलियो ने कहाः लेकिन एक बात और मैं कह दूं कि मेरे कहने से कुछ नहीं होता चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है। मुझ गरीब आदमी के कहने से क्या फर्क पड़ता है!
इसको तो मैं बहुत बुद्धिमान आदमी कहता हूं। इसने करारा तमाचा दिया। मरने से भी ज्यादा गहरी चोट पहुंचाई। इसने कहाः मैं क्या कर सकता हूं? जैसा है वैसा है। तुम झंझट खड़ी करते हो, मैं माफी मांगे लेता हूं। एक दफे क्या तीन दफे मांगे लेता हूं। मगर मैं बताए देता हूं कि भूल में मत रहना, चक्कर तो पृथ्वी ही लगाती है।
गैलीलियो के वर्षों बाद, तीन सौ वर्ष बाद बर्नार्ड शॉ ने अपने एक व्याख्यान में कहा कि मैं कहता हूं, गैलीलियो गलत था। पृथ्वी का चक्कर सूरज लगाता है, सूरज का चक्कर पृथ्वी नहीं लगाती। एक व्यक्ति ने खड़े होकर पूछा कि आप तो हद कर रहे हैं। आपके पास प्रमाण? उसने कहा, प्रमाण यह है कि जिस पृथ्वी पर बर्नार्ड शॉ रहता है, वह पृथ्वी किसी का चक्कर नहीं लगा सकती। सूरज को ही चक्कर लगाना पड़ेगा!
बर्नार्ड शॉ हमारे अहंकार का व्यंग्य कर रहा है, मजाक कर रहा है! वह यह
कह रहा है कि आदमी की अकड़। उसी अकड़ के कारण शास्त्र कहते थे कि सूरज चक्कर लगाता है। उसी अकड़ के कारण शास्त्र कहते हैंः पृथ्वी केंद्र है सारे जगत का। क्यों? क्योंकि आदमी पृथ्वी पर रहता है और आदमी केंद्र है सारे प्राणियों का और आदमी सर्वोपरि है। शास्त्र तुम्हारे अहंकार भरते हैं, शिक्षा तुम्हारे अहंकार को प्रोत्साहन देती है, महत्वाकांक्षा जगाती है। तुम्हारे पंडित-पुरोहित तुम्हारे अहंकार को भरने के ऐसे-ऐसे उपाय बताते हैं--और अहंकार को भरना हो तो उलटे-सीधे उपाय करने होते हैं। क्योंकि अहंकार अप्राकृतिक है, अस्वाभाविक है।
अगर तुम सिर के बल खड़े हो जाओ, बाजार में भीड़ लग जाएगी। पैर के बल घंटों खड़े रहो, कोई नहीं आता। बड़े अजीब लोग हैं! पैर के बल घंटों खड़े रहे, कोई नहीं आया, सिर के बल खड़े हो गए, फौरन भीड़ लग गई, लोग पूछने लगेंगे कि कोई योगी महाराज आ गए, कोई महात्मा आ गए? महात्मा होना हो तो सिर के बल खड़े होना पड़ता है। महात्मा होना हो तो कोई न कोई मूढ़ता करनी पड़ेगी। आधे बाल ही कटा लो और शहर में निकल जाओ और सारा गांव जानने लगेगा कि है कोई पहुंचा हुआ पुरुष। न जंचती हो बात, करके देखो। आधी दाढ़ी, आधे बाल साफ कर लो, तीन दिन से ज्यादा नहीं लगेंगे, सब अखबारों में फोटो छप जाएंगे, जगह-जगह लोग पूछने लगेंगे कि भाई, इसका राज क्या है? और अगर जरा होशियार आदमी हो तो राज बताने लगना। और कुछ हैरानी न होगी कि कुछ और लोग कटा लें। मूढ़ों को भी और बड़े मूढ़ मिल जाते हैं, जो उनके शिष्य हो जाते हैं।
चार कौए उर्फ चार हौए

बहुत नहीं थे सिर्फ चार कौए थे काले
उन्होंने यह तय किया कि सारे उड़ने वाले
उनके ढंग से उड़ें, रुकें, खाएं और गाएं
वे जिसको त्योहार कहें सब उसे मनाएं।

कभी-कभी जादू हो जाता है दुनिया में दुनिया-भर के गुण दिखते हैं औगुनिया में

ये औगुनिए चार बड़े सरताज हो गए
इनके नौकर चील, गुरुड़ और बाज हो गए।

हंस मोर चातक गौरैए किस गिनती में
हाथ बांधकर खड़े हो गए सब विनती में हुक्म हुआ, चातक पंछी रट नहीं लगाएं पिऊ-पिऊ को छोड़ें कांव-कांव गाएं

बीस तरह के काम दे दिए गौरैयों के खाना-पीना मौज उड़ाना छुटभैयों को

कौओं की ऐसी बन आई पांचों घी में बड़े-बड़े मनसूबे आए उनके जी में
उड़ने तक के नियम बदल कर ऐसे ढाले
उड़ने वाले सिर्फ रह गए बैठे ठाले।

आगे क्या कुछ हुआ सुनाना बहुत कठिन है
यह दिन कवि का नहीं चार कौओं का दिन है
उत्सुकता जग जाए तो मेरे घर आ जाना
लंबा किस्सा थोड़े में किस तरह सुनाना!
कौए चाहते हैं कि सब कांव-कांव करें। उनका नियम सब का नियम हो जाए। वे नियंता बन जाएं। कौओं की कुल कुशलता इतनी है कि खूब कांव-कांव करना जानते हैंः शोरगुल बहुत मचा लेते हैं; बकवासी हैं; बक्कड़ हैं। पंडित-पुरोहितों ने खूब कांव-कांव मचा रखी है। और उन्होंने नियम बनाए हैं कि आदमी कैसे उठे, कैसे चले, कैसे बैठे, क्या कहे, क्या न कहे; उन्होंने सारी नीति-मर्यादा निर्धारित की है। उन्होंने आदमी को इस तरह से अकृत्रिम जगत से खींचकर कृत्रिम कर दिया है।
कौओं की ऐसी बन आई पांचों घी में
बड़े-बड़े मनसूबे आए उनके जी में
उड़ने तक के नियम बदल कर ऐसे ढाले
उड़ने वाले सिर्फ रह गए बैठे ठाले।
तुम जो परमात्मा को जान सकते हो, तुम गीता पढ़ रहे हो, कुरान पढ़ रहे हो! तुम जो परमात्मा को जान सकते हो, बैठे राम-राम जप रहे हो, तोतारटंत! तुम जो परमात्मा का अनुभव कर सकते हो, जो तुम्हारे भीतर बैठा है, उससे कांव-कांव करवा रहे हो! मंत्र, गायत्री, नमोकार जपवा रहे हो! किससे? उससे जिसकी तुम तलाश कर रहे हो। वह तुम्हारे भीतर बैठा है। लेकिन तुम्हारे अहंकार को मजा इसी में आएगा कि कुछ उलटा-सीधा हो। कांटों पर लेटो तो अहंकार को प्रतिष्ठा मिलती है; उपवास करो तो अहंकार को प्रतिष्ठा मिलती है।
झेन फकीर बोकोजू के पास एक आदमी ने आकर कहा कि तुम अपने गुरु की बड़ी तारीफ करते हो, तुम्हारे गुरु में खूबी क्या है? मेरा गुरु चमत्कारी है! अब अपनी आंखों देखा चमत्कार तुम्हें बताता हूं। एक दिन गुरु ने मुझसे कहा कि पूर आई नदी में तू उस तरफ चला जा! नाव में बैठ कर मैं उस तरफ गया। मुझे एक कोरा कागज दे दिया और कहा कि उस तरफ तू कोरा कागज ऊंचा करके खड़ा हो जाना, और मैं इस किनारे से लिखूंगा अपनी कलम से और तेरे कागज पर अक्षर उभरेंगे। और उभरे! गुरु उस तरफ, कोई आधा मील फासले पर, मैं इस तरफ, गुरु ने लिखा वहां से अपनी कलम से और अक्षर उभरे मेरे कागज पर। ऐसा चमत्कार गुरु ने मुझे दिखाया। तुम्हारे गुरु ने क्या किया, तुम्हारे गुरु का चमत्कार क्या है? बोकोजू ने जो वचन कहा, सोने के अक्षरों में लिख लेने जैसा है, हृदय में खोद लेने जैसा है। बोकोजू ने कहा कि मेरे गुरु का चमत्कार यह है कि वे चमत्कार कर सकते हैं और नहीं करते।
चमत्कार कर सकते हैं और नहीं करते! इतनी उनकी सामर्थ्य है! कठिन सामर्थ्य है। चमत्कार तुम कर सको और न करो! जरा सी कला आ जाएगी, दिखाने का मोह आता है, प्रदर्शन का भाव जगता है, क्योंकि अहंकार की पूजा तो तभी होगी जब प्रदर्शन होगा। हाथ से राख निकाल सको, फिर तुमसे न रुका जाएगा। फिर तुम चलोगे तलाश में कि मिलें कोई बुद्धू जो राख देखने को उत्सुक हों, हाथ से राख गिरे और वे चमत्कार मानें। तुम कुछ छोटा कुछ खेल कर पाओ, कुछ मदारीगिरी कर पाओ, तो बस करना शुरू कर दोगे। लोग ऐसे मूढ़ हैं कि व्यर्थ में लेकिन अप्राकृतिक में उनकी उत्सुकता है, सहज स्वाभाविक में नहीं। बोकोजू ने यह भी कहा कि मेरे गुरु से मैंने पूछा था कि आपके जीवन का सबसे बड़ा चमत्कार क्या है? तो मेरे गुरु ने कहा कि जब मुझे भूख लगती तब मैं भोजन करता और जब मुझे प्यास लगती तब मैं पानी पीता और जब मुझे नींद आ जाती

तो मैं सो जाता। इतना ही उत्तर उन्होंने मुझे दिया था और अब मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि इससे बड़ा और कोई चमत्कार नहीं है।
मैं भी अपने अनुभव से तुमसे कहता हूं कि सहज और स्वाभाविक होने से बड़ा चमत्कार और कोई नहीं है। मगर वह दुनिया में दिखाई नहीं पड़ता सहज और स्वाभाविक होना। अस्वाभाविक दिखाई पड़ता है, असहज दिखाई पड़ता है। इसलिए जो चीजें जितनी अस्वाभाविक हैं उतनी मूल्यवान हो गईं। उपवास मूल्यवान हो गया, क्योंकि भूख सहज है, स्वाभाविक है। बिना भूख के आदमी जी ही नहीं सकता। बिना भोजन के आदमी जी नहीं सकता। भूख स्वाभाविक है, भोजन अनिवार्य है। जीवन की प्राथमिक आवश्यकता है। इसीलिए सारी दुनिया में उपवास का महत्व हो गया। क्योंकि उपवास उलटा है। जो आदमी उपवास करे, उसके प्रति तुम्हारे मन में सम्मान पैदा होता है। क्यों? क्योंकि वह प्रकृति के प्रतिकूल जा रहा है। सिर के बल खड़ा हो रहा है। इसलिए उपवासी जगह-जगह पूजे जाते हैं। कौन कितना बड़ा उपवासी है उतना बड़ा महात्मा है। कर रहा है केवल शरीर के साथ अत्याचार; कर रहा है केवल आत्महिंसा; सता रहा है अपने को, मार रहा है अपने को, आत्मघाती है, लेकिन पंडित-पुरोहितों ने तुम्हें तरकीबें दी हैं। ये ईंटें हैं जिनसे अहंकार की दीवाल मजबूत होती चली जाती है, बड़ी होती चली जाती है।
एक तो भूख, दूसरी कामवासना सहज स्वाभाविक है। क्योंकि उससे ही तो मनुष्य पैदा हुआ है। उसको भी पकड़ लिया पंडित-पुरोहितों ने। दबाओ कामवासना को! तो ब्रह्मचर्य का बड़ा मूल्य हो गया। अपनी कामवासना को बिल्कुल दबा डालो तो तुम महान पुरुष हो गए। दबी रहेगी भीतर, आग की तरह सुलगेगी भीतर, लेकिन दबा दो गहरे में, अपने अचेतन में। सड़ाएगी तुम्हें वहां से, तुम्हारी आत्मा को गंदा करेगी--जितनी दबी हुई कामवासना आत्मा को गंदा करती है और परमात्मा से दूर करती है व्यक्ति को, उतनी कोई और चीज नहीं। क्योंकि जिसने कामवासना को दबाया है, वह चौबीस घंटे कामवासना ही कामवासना से भरा रहता है। जिसने उपवास किया है, वह चौबीस घंटे भोजन-ही-भोजन की सोचता है, रात सपने भी भोजन के देखता है।
तुम्हारे साधु-संन्यासी दो ही तरह के सपने देखते हैं--भोजन के और कामवासना के। या तो सुंदर स्त्रियां उन्हें सताती हैं सपने में... अब किस सुंदर स्त्री को पड़ी है? और यह कोई नई बात नहीं है कि आजकल के कलियुग के साधुओं के संबंध में सच हो, सतयुग के साधुओं के साथ भी यही सच था--और भी ज्यादा सच था। अप्सराएं सताती थीं उनको आकाश से उतर-उतर कर। किस अप्सरा को पड़ी है! ये रूखे-सूखे कंकाल ऋषि-मुनि, वर्षों से नहाए नहीं, धोए नहीं, लक्स टायलेट साबुन का नाम नहीं सुना, इनके पास आओ तो बदबू आए, ये पसीने, धूल-धवांस से भरे और इतने से इनकी तृप्ती नहीं होती और राख लपेटे, भभूत रमाए; इनके बालों में जितनी जूं हों उतनी किसी के बालों में नहीं... जब पशु-पक्षी तक घोंसला बना लेते हैं इनके बालों में तो जूंए इत्यादि की तो गिनती क्या करनी, पिस्सू इत्यादि का तो हिसाब ही क्या लगाना! जब पक्षी में घोंसला बना लेते हों और ये टस से मस नहीं होते, फिर कहना ही क्या! इन पर स्वर्ग की अप्सराएं मोहित हो जाती हैं। इनमें क्या देख कर मोहित होती होंगी? उर्वशी चली, नाचती, सोलह शृंगार करके, ये मुनि महाराज को सताने!
न तो कहीं कोई अप्सराएं हैं, न कहीं कोई अप्सराएं किसी को सताने आती हैं। ये इनके ही अचेतन में दबाए गए भाव हैं। इतने दबा लिए हैं कि अब ये खुली आंख सपना देख सकते हैं। कम दबाओ तो बंद आंख सपना देख सकते हो, ज्यादा दबाओ तो खुली आंख सपना देख सकते हो। ये एक तरह के विभ्रम में पड़ गए हैं। ये संसार की माया तो छोड़ आए हैं, कहते हैं, लेकिन अब इन्होंने अपना माया जाल खड़ा कर लिया है। ये सपना देख रहे हैं इंद्र के सिंहासन पर होने का। और इसलिए ये इस तरह की परिकल्पना कर रहे हैं कि शायद इंद्र ने अपने सिंहासन को डांवाडोल होते देख कर अप्सराओं को भेजा है भ्रष्ट करने।
इन्हीं ऋषि-मुनियों ने लिखा हैः स्त्री नरक का द्वार है। अनुभव से लिखा होगा। क्योंकि ऋषि-मुनि तो अनुभव की बात कहते हैं। गए होंगे नर्क में स्त्री के द्वार से। कैसे इन्होंने जाना कि स्त्री नरक का द्वार है? ऋषि- मुनि स्वर्ग जाते हैं, इनको नर्क का अनुभव कैसे हुआ? इन्होंने इसी जिंदगी

में नरक देख लिया है। स्त्री को दबाया है तो उसने नरक खड़ा कर दिया है। स्त्री पुरुष को दबाए तो पुरुष नरक का द्वार हो जाएगा।
मैंने सुना है... आगे की कहानी है... हेमामालिनी मरी। वैतरणी नदी पर पहुंची। चित्रगुप्त महाराज खड़े हैं प्रतीक्षा में। कहाः बिटिया, तख्ती लगी है, ठीक से पढ़ लो! बड़ी तख्ती लगी थी, जिस पर दो हड्डियों का क्रास बना और ऊपर एक आदमी की खोपड़ी और अंग्रेजी में लिखाः डेंजर और हिंदी में लिखाः खतरा। सावधान! जैसा स्प्रिट की बोतलों पर लिखा रहता है। या जहां बिजली का बहुत वोल्टेज होता है वहां लिखा रहता है। नीचे बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा है कि वैतरणी पार करते समय एक बात ध्यान रहेः उनके लिए जिनके मन में कामवासना न उठे, वैतरणी छिछली है। घुटनों से ज्यादा पानी नहीं। लेकिन जैसे ही कामवासना उठी कि वैतरणी गहरी हो जाती है। एकदम डुबकी खा जाता आदमी! और डुबकी खाई कि गए नरक! तो कहाः बिटिया, ठीक से पढ़ ले! अनेक डूब गए हैं। हेमामालिनी ने कहाः आप फिक्र न करो। हेमामालिनी चली वैतरणी पार करने। आधी वैतरणी पार हो गई, तब अचानक धड़ाम की आवाज आई; पीछे लौट कर देखा, चित्रगुप्त महाराज डुबकी खा रहे हैं! उसने पूछाः अरे बापू, क्या हुआ? चित्रगुप्त महाराज ने कहाः ठीक रहा है शास्त्रों में कि स्त्री नरक का द्वार है। मार गए डुबकी, चले गए नरक!
जितना दबाओगे उतना उभरने की संभावना है। आज नहीं कल, कल नहीं परसों।
और दमन अहंकार को परिपुष्ट करने की सबसे बड़ी प्रक्रिया है। सहज होओ, स्वाभाविक होओ, स्वस्फूर्त जीवन जीओ। प्रकृति के अनुकूल, सब अर्थों में। अपने की जबरदस्ती सता कर स्वर्ग न ले जा सकोगे। परमात्मा आत्म-हिंसकों को सम्मान नहीं दे सकता। कम से कम परमात्मा ने तुम्हें जो जीवन दिया है उसका सम्मान करो। उस जीवन में ही तो परमात्मा छिपा है।
रामनारायण चौहान, तुम पूछते होः धर्म और आदमी के बीच कौन सी दीवारें हैं? दीवारें नहीं हैं, बस एक दीवार है। अहंकार की। हालांकि उस दीवार में बहुत सी ईंटें हैं और वे सब ईंटों को जमाने का एक ही ढंग है। प्रकृति के विपरीत जो भी है, वही अहंकार के लिए ईंट बन जाता है। मैं सिखाता हूं प्राकृतिक जीवन। मेरी देशना सीधी-सादी है। सरलता से जीओ। न भागना कहीं, न बचना है किसी बात से। परमात्मा ने जो दिया है, सब शुभ है। उसे धन्यवाद दो। और अगर उसने कीचड़ भी दी है तो इसी आशा में दी है कि कीचड़ से कमल पैदा होते हैं। और उसने अगर लोहा दिया है तो इसी आशा में दिया है कि तुम्हारे भीतर पारस पत्थर भी है, उसे खोज लो, उसके छूते ही लोहा भी सोना हो जाएगा। सोना ही नहीं होता, सोने में सुगंध भी आ जाती है। और पंडित-पुरोहितों भर से मत पूछना। उनसे बचना। न उन्हें पता है, न उन्हें अनुभव है। लेकिन इस दुनिया में इतने सरलचित्त लोग बहुत कम हैं जो यह कह सकें कि हमें पता नहीं है। तुमसे भी कोई कुछ पूछता है, तुम्हें चाहे पता न भी हो तो भी तुम उतर देते हो। क्योंकि कोई मानने को राजी नहीं होता कि मैं अज्ञानी हूं।
मेरे एक प्रोफेसर थे विश्वविद्यालय में, कुछ भी कहो, वे कहें कि हां, मैंने यह किताब पढ़ी है। उनके ढंग-ढौल से, उनकी बातों से ऐसा मुझे कभी लगा नहीं कि वे कोई बड़े अध्येता हैं, या उन्होंने कुछ बहुत पढ़ा-लिखा है। ढंग-ढौल उनका ऐसा था जैसे कि काशी के चौबों का होता है--बड़ा पेट! खाने-पीने के लिए बड़े प्रसिद्ध थे विश्वविद्यालय में वे। बातचीत भी उनकी अति साधारण कोटि की। तमाखू फांकते रहें। मुंह से उनके पान की लार टपकती रहे, कपड़ों पर। उन्हें देखकर ही नहीं लगता था कि उनको कोई... उनके घर भी मैं कई दफा गया, कभी उन्हें मैंने नहीं देखा सिवाय अखबार--अखबार जरूर वे पढ़ते थे। कभी मैंने उन्हें विश्वविद्यालय के पुस्तकालय में नहीं देखा। मैंने जाकर पुस्तकालय में जांच-पड़ताल भी की कि उन्होंने कभी कोई किताब पुस्तकालय से ली है। तो पता चला दस सालों में तो नहीं ली है। और दस साल के पहले के रिकार्ड उन्होंने कहा हम रखते नहीं हैं। दस साल तक का रिकार्ड है, इसमें तो उन्होंने कभी कोई किताब नहीं ली। लेकिन किसी भी किताब का नाम लो और वे कहेंगे कि हां, मैंने पढ़ी है।
एक दिन मैंने दो झूठे लेखक और उनकी दो झूठी किताबें--न तो कभी लेखक हुए हैं वे और न कभी वे किताबें लिखी गई हैं--कक्षा में आकर उनका नाम लिया और

मैंने कहा, इनके संबंध में आपका का ख्याल है? उन्होंने कहाः मैंने पढ़ी हैं। सुंदर किताबें हैं! अच्छे लेखक हैं! सार की बात लिखते हैं। पढ़ने योग्य हैं। जो भी बातें कहीं उसमें कुछ ऐसा नहीं था कि जिससे कोई ऐसा लगे कि उन्होंने नहीं पढ़ी हैं। मगर जो भी कहा, किसी भी किताब के संबंध में कहा जा सकता है उतना ही कहा। जैसे ज्योतिषी कहते हैं। ज्योतिषी को हाथ दिखाओ, वह कहता है, धन आता है लेकिन टिकता नहीं। किसके टिकता है? हाथ देख-दाख कर थोड़ा कहता है कि अपने वालों से बड़ा दुख मिलता है। और किससे मिलता है? पराए दुख देने की झंझट करेंगे भी क्यों? क्या उनके अपने नहीं हैं जिनको दें? हाथ देखकर ज्योतिषी कहता है, सफलता मिलेगी जरूर लेकिन अभी दूर है। किसी से भी कहो, सही है। सफलता सदा ही दूर रहती है। किसको मिलती है? ज्योतिषी हाथ देख कर कहता है, तुम तो नेकी करते हो लेकिन लोग बदी करते हैं। क्या पारी और क्या गजब की बातें कही जा रही हैं! बड़े सत्य उदघाटित किए जा रहे हैं और जंचते हैं कि हां, बात तो बिल्कुल ठीक है! यही तो सबका अनुभव है, कि हम तो नेकी करते हैं, दूसरे बदी करते हैं।
ऐसे ही उन्होंने कहा दिया कि बड़ी सुंदर किताबें हैं, बड़े अच्छे लेखक हैं, पढ़ने योग्य हैं, काम की बातें लिखी हैं। मैंने उनसे कहाः आप मेरे साथ पुस्तकालय चलें। ये किताबें मुझे निकाल कर आप दिखला दें। वे थोड़े डरे; थोड़े झिझके। कहने लगेः क्यों, क्या बात है? मैंने कहा, आज निर्णय होना है कि आपने ये किताबें पढ़ी हैं कि नहीं? उन्होंने कहा, पढ़ी तो जरूर हैं लेकिन बहुत साल पहले पढ़ी थीं तो ठीक-ठीक मुझे ब्यौरा नहीं है, लेकिन ये लेखक तो जाने-माने हैं और ये किताबें तो प्रसिद्ध हैं। मैंने कहा इसीलिए तो मैं कहता हूं कि आप चलें। उनको मैं ले गया और सारी क्लास को भी साथ ले गया। उनका पसीना छूट गया, लार और ज्यादा बहने लगी। हांफने लगे। उनकी तोंद ऊपर-नीचे गिरने लगी। किताबें तो थीं ही नहीं। मैंने कहा, आज तो चाहे कुछ भी हो जाए, ये किताबें देखकर ही जाना है!
सारी लाइब्रेरी में घुमा दिया; इस विषय से उस विषय में ले गए कि शायद
उस विषय में हों, शायद उस विषय में हों! अकेले में मुझे देख कर हाथ जोड़े और कहा, मुझे माफ करो, अब सबके सामने भद्द करवाने से क्या फायदा, अब मैं तुम से नहीं छिपाता, ये किताबें मैंने कभी पढ़ीं नहीं और मुझे पता भी नहीं कि ये किताबें हैं भी या नहीं। तो मैंने कहा कि अब यह आदत आप छोड़ दो। यह हर बात, मैं जानता हूं, यह आदत छोड़ दो!
मगर यह आदत सबकी है। कोई हिम्मत नहीं कर पाता कहने की कि मुझे पता नहीं। कोई तुमसे पूछता है कि ईश्वर है? तुम फौरन जवाब देने को तैयार हो। हां या न, दोनों ही जवाब हैं। मगर इतने हिम्मतवर आदमी कम होता है जो कहेः मुझे मालूम नहीं। तुम पंडितों से पूछने जाओगे, वे जरूर जवाब देंगे। तुम किसी से भी पूछो, वह जवाब देगा, वह मौका छोड़ेगा ही नहीं। सलाह देने का मौका इस दुनिया में कोई छोड़ता ही नहीं। दुनिया में सबसे ज्यादा जो चीज दी जाती है, वह सलाह है। और सबसे कम जो चीज ली जाती है, वह भी सलाह है। देने वाले देते रहते हैं, लेने वाले लेते नहीं हैं। सलाह भटकती रहती है!
कौन-सा पथ है?
मार्ग में आकुल-अधीरातुर बटोही यों पुकारा
कौन-सा पथ है?

महाजन जिस ओर जाएं--शास्त्र हुंकारा
अंतरात्मा ले चले जिस ओर--बोला न्याय-पंडित
साथ आओ सर्वसाधारण-जनों के--क्रांति-वाणी।

पर महाजन-मार्ग-गमनोचित न साधन हैं, न रथ है अंतरात्मा अनिश्चय-संशय-ग्रसित क्रांति-गति-अनुसरण-योग्या है न पद-सामर्थ्य।

कौन-सा पथ है?
मार्ग में आकुल-अधीरातुर बटोही यों पुकाराः

कौन-सा पथ है?
और प्रत्येक पूछ रहा हैः क्या है मार्ग, क्या है मंजिल, कैसे जाऊं? और बताने वालों ने दुकानें लगा रखी हैं। वे कहते हैं, आओ, हम तुम्हें बताएंगे।
एक सूफी कहानी मैं कल पढ़ रहा था। दो सूफी तथाकथित गुरु मिले। औपचारिक शिष्टाचार की बातें होने के बाद एक ने कहा कि भाई, एक शिष्य के कारण मैं बहुत झंझट में पड़ा हूं। मैं लोगों को समझाता हूं कि समाधि पाओ। बात इतनी कठिन है और बात मैं इतनी कठिन बना देता हूं और ऐसे-ऐसे शब्दों का जाल फैलाता हूं कि किसी की कुछ समझ में आता ही नहीं। जब लोगों की कुछ समझ में नहीं आता तो लोग समझते हैं, बड़ी ऊंची बातें हो रही हैं, बड़ी गहरी बातें हो रही हैं। और फिर समाधि के लिए कोई आकर पूछता भी नहीं कि मुझे पाना है। क्योंकि मैं इतनी कठिन बातें बताता हूं कि समाधि पाने के लिए क्या-क्या करना होगा--कितने उपवास, ब्रह्मचर्य की साधना, तपश्चर्या, देह का गलाना, यह कोई छोटा काम नहीं है, जन्मों-जन्मों में पूरा होता है! तो लोग सुन तो लेते हैं, कहते हैंः महाराज, ठीक कहते हैं; और मेरा काम भी ठीक चलता है, मगर एक दुष्ट मेरे पीछे पड़ गया है; वह कहता है कि मैं सब करने को राजी हूं, मगर समाधि लेकर रहूंगा। उसको मैंने उपवास बतलाए तो उपवास कर गया। उसको मैंने कहा कि सिर के बल खड़े रहो घंटों, तो वह सिर के बल मैं कहता हूं घंटे भर खड़े रहो तो वह दो घंटे खड़ा रहता है। मेरे ही सामने खड़ा रहता है। मेरी छाती पर दाल दलता है। अब मुझे भी घबड़ाहट होने लगी कि करूं क्या? जो भी कहता हूं, करने को राजी। कहा कि सिर घुटा ले, नंगा हो जा, सिर घुटा कर वह नंगा घूम रहा है। अब वह मेरे चारों तरफ ही घूमता रहता है, वहीं खड़ा रहता है। और बार-बार पूछता है, अब और क्या करना है? समाधि कब तक मिलेगी? उसकी बातें सुन कर दूसरे लोग तक भी आने बंद हो गए हैं कि महाराज, पहले अपने शिष्य को, खास पट्ट शिष्य को तो समाधि दिलवाओ! मेरी सब दुकान उजाड़े दे रहा है।
दूसरे ने कहा, घबड़ाओ मत। मेरे पास भी ऐसा एक शिष्य आ गया था, मैंने उसे एकदम रास्ते पर लगा दिया। मैंने कहा कि तू एक कुप्पी भर पेट्रोल पी ले, समाधि लग जाएगी। मूढ़ तो था ही, पी गया कुप्पी भर पेट्रोल, पा गया समाधि! दूसरे ने कहा कि यह भी खूब रही! यह मैंने कभी सोचा ही नहीं। आज ही जाता हूं।
जाकर शिष्य को कहा कि देख, बस, अब एक आखिर उपाय, रामबाण, पी जा कुप्पी
भर पेट्रोल! शिष्य तो शिष्य ही था, गया ले आया कुप्पी भर पेट्रोल और पी गया। और पीते ही मर गया। गुरु तो बहुत घबड़ाया कि यह और एक मुसीबत हुई। अभी तक कम से कम जिंदा था, अब लोग कहेंगे कि तुम्हारा पट्ट शिष्य तुमने मार डाला। भागा हुआ दूसरे गुरु के पास गया कि भई, यह तुमने क्या किया? तुमने जो रास्ता बताया, मैंने अपने शिष्य को बताया, वह पी गया कुप्पी भर पेट्रोल, वह मर गया! उसने कहा, यही तो मेरे शिष्य की हालत हुई। वह भी मर गया। इसी को तो मैं समाधि कहता हूं। उसकी समाधि बनवा दी--वह देखो बाहर चबूतरा, वह मेरे शिष्य की समाधि। तुम भी समाधि बनवा दो, कहना, समाधि लग गई!
तुम पूछते रहोगे, पंडित बताते रहेंगे। न तो उस तक जाने का कोई मार्ग है--क्योंकि वह दूर ही नहीं है कि मार्ग हो। वह तो तुम्हारे प्राणों के प्राण में बैठा है। उस तक जाने की कोई विधि नहीं है; क्योंकि विधि तो उसे पाने की होती है जो पराया हो। वह तो हमारी आत्मा है। उसे पाने की क्या विधि? न कोई मंत्र है, न कोई विज्ञान है। शांत और मौन और सहज और नैसर्गिक हो जाओ, तुम उसे पाए ही हुए हो। शांत, मौन निसर्ग में तुम अचानक चकित हो जाओगे, हम जिसे खोजते थे, वह खोजने वाले में छिपा है। वह तुम्हारे भीतर छिपा हुआ द्रष्टा है। वह तुम्हारे भीतर बैठा हुआ साक्षी, चैतन्य है।
कोई दीवार नहीं है। दीवार हमारी बनाई हुई है। और पंडित-पुजारी उस दीवार को बढ़ाने में सहयोगी होते हैं। क्योंकि जितनी दीवाल बड़ी हो, जितना तुम अपने से टूट जाओ, उतना ही तुम उनके शिकंजे में फंस जाओगे। उतने ही तुम उनके कब्जे में हो जाओगे। सदगुरु वह है जो दीवाल गिरा दे, जो तुमसे छीन ले ज्ञान, विधि-विधान; जो तुमसे छीन ले सब और तुम्हारे अहंकार के लिए कोई जगह न बचने दे; त्याग, तपश्चर्या, उपवास, ब्रह्मचर्य, जो छीन ले तुमसे सब और

तुम्हें छोड़ दे; निपट तुम्हारे निसर्ग के अनुसार, फिर गुलाब गुलाब हो जाता है, चंपा चंपा हो जाती है, चमेली चमेली हो जाती है। अभी बड़ी हालत खराब है। चमेली चंपा होना चाह रही है, गुलाब कमल होना चाह रहा है--और नहीं हो पा रहा है तो बड़ी पीड़ा है, बड़ा विषाद है। तुम तुम हो और तुम केवल तुम ही हो सकते हो और तुम तुम ही हो जाओ तो परमात्मा उपलब्ध हुआ।
धर्म का अर्थ हैः स्वभाव। तुम अपने स्वभाव में तल्लीन हो जाओ कि धर्म उपलब्ध हो गया। धर्म को खोजने न कहीं जाना है, न धर्म को पाने के लिए कुछ करना है। सब खोजना, सब करना छोड़ दो तो धर्म अभी मिला--अभी मिला हुआ है, तत्क्षण!
लेकिन हम उठाए जाते हैं प्रश्न, उत्तर देने वाले उत्तर दिए जाते हैं। हमारी मजबूरी है कि हम बिना प्रश्न पूछे नहीं रह सकते, उनकी मजबूरी है कि बिना उत्तर दिए नहीं रह सकते, जाल जारी है, उपद्रव चलता रहता है।
दुनिया में धर्मों की कोई जरूरत नहीं है--न हिंदू की, न मुसलमान की, न जैन की--दुनिया में एक धार्मिकता की जरूर जरूरत है, धर्मों की कोई जरूरत नहीं है। और धार्मिक व्यक्ति मैं उसको कहता हूं जो नैसर्गिक है, जो अपनी निजता में जी रहा है, जो अपनी निजता पर कोई पाखंड नहीं रोपता, जो अपनी निजता पर जबर्दस्ती कोई आचरण नहीं थोपता, जो अपने अंतःकरण से जीता है, जो अपने भीतर साक्षी के दीए के अनुसार जीता है। साक्षी के अनुसार जीने में मोक्ष है, धर्म है, निर्वाण है। साक्षी में जो जीया, वही बुद्ध है।
अप्प दीपो भव। अपने दीए स्वयं बनो। और कोई दीया नहीं है। और किसी दीये
की आशा रखना नहीं। उस आशा ने ही भरमाया है, भटकाया है।

आज इतना ही।

किस्मत है कितनी क्रूर-क्रूर जिससे मैं मिलने को व्याकुल वह मुझसे कितना दूर-दूर। मुझके पथ पर अथ से इति तक पल-भर भी कहीं विराम नहीं मैं राही बन कर आया हूं
रुकने का मेरा काम नहीं
मेरे अंतर में अन्वेषण
मस्तक पर छाई धूर-धूर
मैं जिससे मिलने को व्याकुल वह मुझसे कितना दूर-दूर। कितनी ऊषा, कितनी संध्या कितने कुसुमों के मधुरीते यों ही पथ पर चलते-चलते
कितने ही संवत्सर बीते
पग शिथिल, किंतु गति मंद नहीं
यद्यपि है तन-मन चूर-चूर
जिससे मैं मिलने को व्याकुल
मुझसे वह कितना दूर-दूर।
सत्य की खोज में जो भी निकले हैं, उन सब को ऐसा ही प्रतीत होता है कि सत्य बहुत दूर है। प्रतीति का कारण है, क्योंकि मिलता नहीं। इतना चलते हैं और मिलता नहीं। तो निश्चित ही दूर होगा। यह तार्किक निष्पत्ति है कि बहुत चल कर भी जिसे न पाया जा सके, स्वभावतः मानना होगा बहुत दूर है। हमारे छोटे-छोटे पग, हमारी छोटी-छोटी आंखें, हमारे छोटे-छोटे हाथ उस तक नहीं पहुंच पाते। शायद अनंत दूरी है हमारे और उसके बीच।
लेकिन तर्क की यह निष्पत्ति तार्किक भला दिखाई पड़े, सत्य नहीं है। परमात्मा दूर नहीं है। परमात्मा निकट से भी निकट है। उसे चल कर पाने
की जो चेष्टा करेगा, उसके लिए दूर हो जाता है। उसे बैठ कर जो पाना चाहेगा, तत्क्षण पा लेता है। चले कि भटके। रुके कि पहुंचे। इस सूत्र को, इस स्वर्ण-सूत्र को हृदय में सम्हाल कर रख लो। चले कि दूर चले, परमात्मा से दूर चले, रुके कि पास आए। बिल्कुल रुक जाओ तो पहुंच ही गए। क्योंकि परमात्मा तुम्हारे अंतरतम में विराजमान ही है। तुम भागते हो, चलते हो, दौड़ते हो, आपाधापी करते हो, इसलिए स्वयं को नहीं देख पाते, स्वयं से परिचित नहीं हो पाते। बैठो तो परिचय हो। थोड़ा रुको, थोड़ा थमो तो परिचय हो। फुर्सत कहां, आंखें दूर अटकी रहती हैं, पास को देखो तो कैसे देखो?
परमात्मा इसलिए नहीं नहीं मिलता कि दूर है बल्कि इसलिए नहीं मिलता है
कि इतने पास है, इतने पास है कि आंख खोली कि दूर हो गया। आंख बंद रखी तो सामने है। हाथ फैलाया कि दूर हो गया। क्योंकि हाथ के भीतर ही वह मौजूद है। पग बढ़ाया कि चूके, क्योंकि पग जिसने बढ़ाया, वही वह है। क्रिया से परमात्मा नहीं पाया जाता है, पाया जाता है अक्रिया से। उस अक्रिया में ठहरने को बुद्ध ने ध्यान कहा है, पलटू ने ज्ञान कहा है। अक्रिया में ठहरने को। दौड़ना नहीं, भागना नहीं, तलाशना नहीं, रुक जाना, ठहर जाना।
और अक्रिया केवल देह की नहीं, मन की। देह से तो कोई भी बैठ सकता है।
बहुत लोग आसन लगाए बैठे हैं गुफाओं में, वृक्षों के नीचे। आसन तो लगा है, लेकिन मन का आसन नहीं लगा है। तन तो ठहर गया, मन और-और भागा हो गया है। तन को जितना बिठाते हो, मन उतना भागा-भागा हो जाता है। तन तो यहां है, मन कहीं और।
तन का आसन तो केवल मन के आसन की पूर्व-भूमिका है।
शरीर को ठहरा लेना है ताकि ठहरी हुई उस भूमिका में मन भी ठहर जाए। शरीर ठहरे और मन दौड़ता रहे तो कुछ सार नहीं। तो सब थोथा है। ऐसे ही योगी भटक गए हैं।
भोगी भटक गए हैं तन को दौड़ा-दौड़ा कर; मन तो दौड़ ही रहा है। योगी भटक गए हैं, तन को तो ठहरा लिया है लेकिन तन में लगी हुई जो ऊर्जा थी, तन के दौड़ने में जो शक्ति लगी थी, वह भी अब मन को मिल गई, मन और भागा-भागा हो गया। भोगी

का मन तो संसार में ही भटकता है, योगी का मन स्वर्ग-नरक, मोक्ष-कैवल्य और न मालूम कहां-कहां भटकने लगता है। उसके पास भटकने के लिए ज्यादा शक्ति उपलब्ध हो जाती है। शरीर में जो उलझी थी ऊर्जा, वह भी मन को मिल गई। भोगी भी भटका है, योगी भी भटका है। सिर्फ ध्यानी पहुंचता है।
ध्यानी का अर्थ हैः मन भी ठहरे, तन भी ठहरे। बस ठहराव आ जाए। यह झील चेतना की बिल्कुल निस्तरंग हो जाए। उस निस्तरंग चित्त में परमात्मा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं जाना जाता है। परमात्मा वस्तु की तरह नहीं जाना जाता, ज्ञेय की तरह नहीं जाना जाता, परमात्मा तो ज्ञाता की तरह जाना जाता है, जानने वाले की तरह जाना जाता है। परमात्मा दृश्य नहीं बनता कभी, वह तो द्रष्टा है। वह तुम्हारे भीतर भी द्रष्टा होकर विराजमान है और तुम दृश्य की तरह उसकी खोज कर रहे हो, इसलिए बहुत दूर-दूर... ।
तुम्हारे कारण दूर है। तुम थोड़ा समझो, तुम थोड़ा गुनो तो उससे ज्यादा पास और कोई भी नहीं है।
भेख भगवंत के चरन को ध्याइकै।
पलटू कहते हैं, भगवान के चरण में ध्यान। कहां हैं भगवान के चरण? काशी में, काबा में, कैलाश में? कहां हैं भगवान के चरण? तुम्हारे हृदय में विराजमान है। किसी और मंदिर में नहीं जाना। हृदय में ही उतरेंगे, हृदय की सीढ़ियों में ही उतरोगे तो पा लोगे मंदिर।
भेख भगवंत के चरन को ध्याइकै।
और भगवान अगर समझ के बाहर हो, बूझ के बाहर हो--जो कि स्वाभाविक है। न उसे देखा, न पहचाना, न कभी उसका स्वाद लिया; न रंग का पता, न रूप का; उसका ठिकाना भी मालूम नहीं, उसकी आकृति भी मालूम नहीं, तुम कैसे उसके चरणों में ध्यान लगाओगे? उसकी देह ही नहीं है तो उसके चरण क्या होंगे?
तो चरण में ध्यान लगाने का और भी गहरा अर्थ ख्याल में ले लो। कुछ ऐसा नहीं है कि आंख बंद करके तुम परमात्मा के चरणों की कल्पना करो कि ये रहे चरण कमल! वह तो कल्पना ही होगी। तुम दो चरणों को देख लोगे, स्वर्ण के बने हुए, तो भी कल्पना ही होगी। और कल्पना को खूब दोहराते रहोगे तो प्रगाढ़ होती जाएगी। जब भी आंख बंद करोगे, दो चरण दिखाई पड़ेंगे। मगर तुमने एक झूठ में अपने मन को रमा लिया। चरण में ध्यान लगाने का केवल इतना ही अर्थ होता है--जो कि प्रकट नहीं होता वक्तव्य में, छिपा रह जाता है--चरण में ध्यान लगाना परोक्ष रूप से कुछ और कहा जा रहा है; कहा जा रहा हैः झुको। चरण में ध्यान लगाने का मतलब होता हैः समर्पण। झुकने की कला। चरण तो केवल प्रतीक हैं, क्योंकि चरण का अर्थ होता हैः छुओगे तो झुकोगे। ध्यान लगाओगे चरणों में तो झुकना ही पड़ेगा--आंख को झुकना पड़ेगा, दृष्टि को झुकना पड़ेगा, दर्शन को झुकना पड़ेगा। यह तो प्रतीक है कहने के लिए। इस प्रतीक में मत उलझ जाना। नहीं तो लोगों ने चरण बना लिए हैं--पत्थर के, सोने के, चांदी के। उन्हीं पर फूल चढ़ा रहे हैं। चूक गए! प्रतीक को जोर से पकड़ लिया।
झेन फकीर र्रिझाई अपने शिष्यों से कहा करता था, मेरी अंगुली को मत पकड़ो, मेरे इशारे को देखो। मेरी अंगुली को मत चूसने लगो, चांद को देखो जिस तरफ अंगुली उठी है।
मगर दुनिया में सारे लोगों ने अंगुलियां पकड़ ली हैं, अंगुलियां चूस रहे हैं। अंगुलियां कितनी ही चूसो, उससे पोषण नहीं मिलता। छोटे बच्चे ही धोखे नहीं खा रहे हैं, बड़े बच्चे भी धोखे खा रहे हैं। बड़ी उम्र वाले भी अंगुलियां चूस रहे हैं। प्रतीक को पकड़ना, प्रतीक को खूब जोर से पकड़ लेना कि चूक गए तुम अर्थ से। प्रतीक पकड़ा नहीं जाता। प्रतीक समझा जाता है।
चरण में ध्यान का अर्थ होता हैः झुको; अपने ही भीतर झुक जाओ। यह अकड़ न
रह जाए अहंकार की। अहंकार अकड़ कर खड़ा होता है। चरण में ध्यान लगाया, झुकना पड़ा। झुक गया जो, पा लिया उसने। अगर पूरे झुक जाओ तो क्षण भर का विलंब नहीं होगा।
भेख भगवंत के चरन को ध्याइकै,
लेकिन कठिन है। भगवान को प्रतीक भी मानो, उसके चरण को प्रतीक भी मानो,
तो भी कुछ आलंबन नहीं दिखाई पड़ता--कहां झुकें? किस दिशा में झुकें? कैसे झुकें? झुकने को कुछ सहारा चाहिए। इसलिए पलटू कहते हैंः भेख। भेख का अर्थ

होता हैः अगर भगवान न मिले तो भगवान का वेषधारी कोई मिल जाए, देहधारी कोई मिल जाए। भगवान तो अदेह है, निर्गुण है, निराकार है। उसे समझने के लिए तो उतनी ही निराकार आंखें चाहिए, उतना ही निर्गुण चित्त चाहिए। कठिन है आज एकदम से वैसा निराकार हो जाना। लेकिन जिसने भगवान को देखा हो, जिसने भगवान से आंखें चार की हों, ऐसे किसी देहधारी की आंख में झांकता, उसकी आंखों में तुम्हें सीढ़ियां मिलेंगी। उसकी आंखों में तुम्हें परमात्मा का प्रतिबिंब मिलेगा। अगर चांद को सीधा न देख सको तो किसी झील में झांकना। माना कि झील का चांद तो केवल प्रतिबिंब है, मगर है तो असली चांद का ही प्रतिबिंब। असली की कुछ छाप तो है। असली की कुछ धुन तो है। और जो प्रतिबिंब को देखने में समर्थ हो गया, जो प्रतिबिंब को समझने में समर्थ हो गया, ज्यादा देर न लगेगी असली की तरफ आंख उठाने में।
भेख भगवंत के चरन को ध्याइकै
भगवान के चरणों में ध्यान लगे, शुभ, न लग सके तो सदगुरु के चरणों में।
जो अभी देह में है, देह यानी भेख। देह यानी अभी जो वेष में है। जब बुद्ध पृथ्वी पर चल रहे हैं, तो अभी परमात्मा रूप लिए है। इसे हम अवतार कहें, बुद्धत्व कहें, जिनत्व कहें, जो भी नाम देना हो दें। बुद्ध पृथ्वी पर हैं, तो भगवान अभी देह में समाया हुआ। अभी आकाश आंगन में उतरा हुआ है। शायद आंगन को तुम देख पाओ, आकाश विराट है। मगर जिसने आंगन को समझ लिया, उसने आकाश की तरफ यात्रा के लिए सबसे महत्वपूर्ण कदम उठा लिया। बुद्ध की आंखों में झांकोगे तो सीमा में बंधे हुए असीम को पाओगे। बुद्ध के चरणों में झुकोगे, कह सकोगेः बुद्धं शरणं गच्छामि। समग्र चित्त से बुद्ध के चरणों में सिर रखोगे, बुद्ध के चरण तो तिरोहित हो जाएंगे, पाओगे तो तुम भगवान के ही चरण। सदगुरु वही है जिसके चरणों में सिर रखकर उसके चरण तो विलीन हो जाएं और भगवान के अदृश्य चरण प्रकट होने लगें।
भेख भगवंत के चरन को ध्याइकै,
ज्ञान की बात से नाहिं टरना।
और एक बार अगर कभी ऐसा शुभ क्षण आ जाए, ऐसी शुभ घड़ी, ऐसा शुभ मुहूर्त कि कोई ऐसे चरण मिल जाएं जिनमें निराकार की थोड़ी प्रतीति हो जाए; कोई ऐसा आकार मिल जाए जिसमें निराकार की छवि बनती हो, प्रतिफलन होता हो; कोई ऐसी वाणी सुनाई पड़ जाए जिसमें शून्य का नाद हो, जिसमें अनाहत हो, जिसमें ओंकार की ध्वनि हो; कोई ऐसी प्रतिध्वनि मिल जाए, तो फिर टरना मत! फिर हटना मत! फिर सब दांव पर लगा देना! फिर बचना मत! क्योंकि जो बचा, उसने फिर खोया, बुरी तरह खोया।
और बहुत बार तुम बच गए हो। पलटू ठीक कहते हैं, चेताते हैं। न मालूम कितनी बार कितने बुद्धों के करीब तुम पहुंच गए होओगे! लंबी तुम्हारी यात्रा है। जन्मों-जन्मों से तुम चल रहे हो। यह असंभव है कि तुम में से कुछ लोग बुद्ध के करीब न पहुंचे हों। यह असंभव है कि तुम में से कुछ लोग महावीर के दर्शन न किए हों। यह असंभव है कि तुम में से कुछ लोगों ने जीसस की वाणी न सुनी हो। यह असंभव है कि तुम में से कुछ कानों में मोहम्मद की कुरान न गूंजी हो। यह असंभव है! यहां नहीं तो वहां, वहां नहीं तो यहां, कहीं न कहीं किसी न किसी मार्ग पर, किसी मोड़ पर किसी बुद्धपुरुष का दर्शन जरूर तुम्हें हुआ होगा! इतनी लंबी यात्रा में, जन्मों-जन्मों की यात्रा में यह असंभव है कि तुम एक बार भी किसी बुद्ध के करीब न आए होओ। संभावना यही है कि बहुत बार आए होओगे। कभी कोई कबीर मिल गया होगा, कभी कोई नानक, कभी कोई पलटू, कभी कोई रैदास, कभी कोई फरीद। इतने ज्योतिर्मय पुरुष हुए! इतने दीए जले! मिट्टी में इतनी बार चिन्मय का अवतरण हुआ! देह में इतनी बार परमात्मा प्रकट हुआ! नहीं, तुम पहुंच तो गए होओगे कई बार करीब, लेकिन डर गए; चूक गए।
शायद कहा होगाः फिर कभी। अभी और बहुत काम हैं। आऊंगा कभी, जरूर आऊंगा, लेकिन अभी तो मैं जवान हूं। हो जाऊंगा वृद्ध, जीवन का काम-धाम, व्यवसाय पूरा हो जाएगा, तो जरूर आऊंगा। ये चरण तो हैं जहां झुकना है, ये चरण तो हैं जहां बैठना है!
या तो तुमने ऐसे तर्क खोज कर कल पर टाल दिया होगा। जिसने कल पर टाला, सदा को टाला। या फिर तुमने कुछ भूल-चूकें निकाल ली होंगी। तुमने देखा

होगा, बुद्ध! अरे, ये तो वस्त्र पहने हुए हैं! जिनत्व को उपलब्ध व्यक्ति तो निर्वस्त्र होता है। तो वस्त्रधारी बुद्ध, कहीं चूक हो रही है! ये असली बुद्ध नहीं हो सकते।
और तुम महावीर के पास भी चूक गए होओगे, क्योंकि तुमने सोचा होगाः बांसुरी कहां है? मोर-मुकुट कहां है? कृष्ण ने तो बांसुरी बजाई, मोर-मुकुट बांधा, अपूर्व सौंदर्य में प्रकट हुए। यह भी कोई ढंग हैः नंग-धड़ंग खड़े हैं! तुमने चूक निकाल ली होगी।
और ऐसा नहीं है कि तुमने कृष्ण के पास चूक न निकाल ली होगी--चूक निकालने वाला मन सब जगह चूक निकाल लेता है। उसने कृष्ण के पास भी चूक निकाल ली होगी कि ये कैसे भगवान! युद्ध में उतरते हैं। उतरते ही नहीं, संन्यासी होते अर्जुन को खींच-खांच कर युद्ध में लगा देते हैं। समझा-बुझा कर युद्ध में उतार देते हैं। महाविनाश, हिंसा करवाते हैं। ये कैसे भगवान! वीतराग नहीं मालूम होते। सोलह हजार इतनी पत्नियां हैं। एक पत्नी नरक
ले जाने को काफी, ये सोलह हजार पत्नियों को लेकर किस नरक में पहुंचेंगे? फिर ये सारी पत्नियां इनकी पत्नियां नहीं, इनमें कई दूसरों की पत्नियां हैं जो भगाई हुई हैं। और यह बांसुरी बजा कर यह जो रासलीला चल रही है पूर्णिमा की रात, वृदांवन में, किसी वंशीवट में, यह तो राग का खेल हुआ, वीतरागता कहां है? नहीं-नहीं, यहां भगवान नहीं हो सकते।
मोहम्मद के हाथ में तलवार देख कर, तुम लौट पड़े होओगे देख कर तलवार कि भगवान के हाथ में और तलवार! भगवान और युद्ध के लिए तत्पर! और जीसस को सूली चढ़ा देख कर तुमने कहा होगा, अरे, अपने को बचा न सके--और जगत के तारनहार! अपने को बचा न सके! और कहानियां सब मनगढ़ंत होंगी कि जल पर चले और मुर्दों को जिंदा किया। दिखाना था चमत्कार तो आज दिखा देते!
कोई एक लाख आदमी इकट्ठे थे जब जीसस को सूली लगी। जीसस के चरणों में सिर झुकाने को नहीं, देखने आए थे कि आज देखें, अब करे यह सिद्ध कि परमात्मा का असली बेटा यही है! अब करे सिद्ध, अब पुकारे अपने परमात्मा को, अब दिखलाए चमत्कार! और निश्चिंत घर लौटे थे कि सब धोखाधड़ी थी।
जीसस के साथ दो चारों को भी सूली लगी थी, वे भी मर गए। वैसे ही मर गए जैसे जीसस मर गए। लौट आए घर लोग निश्चिंत हो कर कि चलो अच्छा हुआ, धोखे से बचे! और जिन्होंने जीसस का अनुगमन किया होगा, उनको भी कहा होगा--देख लिया परिणाम? वे सब झूठी कहानियां जो तुम गढ़ते थे, अफवाहें, और यह आदमी दो कौड़ी का साबित हुआ! अपने को भी बचा न सका, किसी और को क्या बचाएगा? खुद भी डूब गया, तुम को भी डुबा रहा था।
या तो तुमने कोई तर्क निकाल लिया होगा और बच गए होओगे। और तर्क निकालने में तुम काफी कुशल हो। और तर्कों की कोई कमी नहीं है। तुम निकाल ही लोगे।
महावीर पेचिश की बीमारी से मरे। महावीर और पेचिश की बीमारी! जीवन भर उपवास करते रहे और पेट की बीमारी से मरे! मेरे हिसाब से तो बिल्कुल ठीक है। क्योंकि उपवास इतने दिन करोगे तो पेट खराब होने वाला है। महावीर पेचिश की बीमारी से ही मरने चाहिए। और किसी बीमारी से मरते तो मुझे दिक्कत होती। महीने-महीने भर उपवास करोगे और फिर एक दिन भोजन करोगे, तो पेचिश नहीं होगी तो और क्या होगा? पेट ने पचाने की क्षमता छोड़ दी होगी। मेरे हिसाब से तो बिल्कुल तर्कयुक्त है। मेरे हिसाब से तो यह बात गढ़ी हुई नहीं हो सकती। जैन तो गढ़ते कैसे? लेकिन अनेक लौट गए होंगे यह देख कर कि महावीर और पेचिश की बीमारी!
जैनों ने तो कहानी गढ़ी कि पेचिश की बीमारी असली नहीं थी। वह तो गोशालक नाम के दुष्ट व्यक्ति ने काली विद्या उनके ऊपर फेंक दी थी, उस काली विद्या के कारण उनको पेचिश की बीमारी थी। महावीर को नहीं थी बीमारी, गोशालक की दुष्टता के कारण थी। जरूर लोग संदेह उठाने लगे होंगे कि महावीर को पेचिश की बीमारी! भक्तों को कहानी गढ़नी पड़ी होगी महावीर को बचाने के लिए। भक्तों में और दुश्मनों में बहुत फर्क नहीं है। दोनों का गणित एक। देखते हो तुम, गणित दोनों का एक है। भक्त भी कहता है, नहीं, महावीर को कैसे पेचिश की बीमारी हो सकती है! गोशालक की तरकीब है यह। उसी दुष्ट ने जादू

किया, मंतर किया। लेकिन तुम तार्किक को इससे तृप्त नहीं कर सकते। वह कहेगा, जब गोशालक का मंत्र और जादू महावीर पर चल गया, जब महावीर अपनी रक्षा नहीं कर पाए गोशालक की काली विद्या से, तो इनको तुम तीर्थंकर कहते हो? ये संसार के अंधकार से, अमावस से तुम्हारी रक्षा कर पाएंगे? ये अपने को नहीं बचा पाए साधारण गोशालक से, ये किसको बचा पाएंगे
तुम जरा सोचना। बचने की तरकीबें आदमी का मन निकाल लेता है। ऐसे ही तुम बचते चले आए हो। इसलिए पलटू ठीक कहते हैं--
भेख भगवंत के चरन को ध्याइकै,
ज्ञान की बात से नाहिं टरना।
एक बार तुम्हें कहीं अगर थोड़ी सी झलक मिले, पुलक मिले, रोमांच हो जाए;
एक बार अगर किन्हीं आंखों में झांक कर तुम्हें शून्य की थोड़ी ध्वनि सुनाई पड़ जाए; किसी के पास बैठ कर तुम्हारा हृदय आंदोलित हो उठे, तुम्हारी हृदय-तंत्री बज जाए, तो बचना मत, भागना मत, टालना मत, समझाना मत, अपने लिए तर्क मत खोजना, स्थगित मत करना। उस क्षण छलांग लगा जाना। क्योंकि भगवान में सीधी छलांग कठिन है, निराकार से सीधा संबंध जोड़ना कठिन है, अगर कहीं आकार में परमात्मा उपलब्ध हो, तो अवसर गंवाना मत।
और ध्यान रहे, आकार में जब भी परमात्मा उपलब्ध होगा तो तुम आकार के कारण कुछ न कुछ भूल-चूक खोज सकते हो। निराकार आकाश में कोई भूल-चूक नहीं खोज सकते। वहां खोजने को कुछ है ही नहीं। निराकार आकाश है। लेकिन आंगन? तिरछा। कि आंगन की दीवाल? सुंदर नहीं। कि आंगन की दीवाल? मिट्टी की, सोने की नहीं। कि आंगन की दीवाल गिरी-गिरी हो रही है। कि आंगन की दीवाल पर घास-पात ऊग आया है। घास-पात तो आंगन की दीवाल पर ऊगा है, आंगन तो वैसा ही शुद्ध है जैसा आकाश। लेकिन आंगन की भूमि में हो सकता है कंकड़ हों, पत्थर हों, कांटे हों। आंगन तो वही है जैसा आकाश, लेकिन आंगन की भूमि भी है, दीवाल भी है। और दीवाल और भूमि में तुम भूल-चूक खोज सकते हो। और वहीं आदमी भूल-चूक खोज कर अटक जाता है, रुक जाता है। फिर आंगन तिरछा तो नाचें कैसे?
अब आंगन के तिरछे से क्या लेना-देना! जिसे नाचना आता है, जिसे नाचना है, वह तिरछे-से-तिरछे आंगन में नाच लेगा। और जिसे नहीं नाचना है, कितने ही गणित के हिसाब से बनाया गया आंगन हो, वह नहीं नाच पाएगा।
मैंने सुना है, गणित के एक प्रोफेसर आजादी के युद्ध में सम्मिलित हुए
और उनको छह महीने की सजा हो गई। जब वे लौटे तो उनके विद्यार्थियों ने पूछा, कैसी रही जेलयात्रा? सब ठीक तो था? उन्होंने कहा, और सब तो ठीक था, लेकिन मेरी कोठरी की दीवाल के जो कोने थे वे ठीक नब्बे अंश के नहीं थे।
इस आदमी को वही बात अखरी। ज्यामिति के प्रोफेसर थे, ज्योमेट्री के, इनको जो सबसे ज्यादा अखरी... छह महीने उस कमरे में रहना, जरूर इनको बहुत मुश्किल हो गई होगी! बार-बार देखना वही कि दीवाल जो है, वह ठीक नब्बे अंश की नहीं है। इरछी-तिरछी है। किस नालायक ने बनाई है! जेल में कोई और तकलीफ उन्हें याद ही न आई, उनको बात अखरी तो अखरी एक।
तुम्हें जब कोई बात अखरे तो ख्याल करना, तुम्हारे मन के कारण अखरती है, तुम्हारी दृष्टि के कारण अखरती है, तुम्हारे पूर्व पक्षपातों के कारण अखरती है।
और इन छोटी-छोटी बातों के कारण इस आदमी के छह महीने खराब हो गए होंगे। चौबीस घंटे उसी कोठरी में रहना। आंख बंद करे तो भी उसको दिखाई पड़ता होगा कि वह दीवाल! रात सोए तो भी सपने आते होंगे कि दीवाल तिरछी। किस नालायक ने बनाई है! गणित का इसे कोई बोध नहीं था! तुम सोच भी नहीं सकते कि तुमने यह तकलीफ झेली होती इस कालकोठरी में। और हजार तकलीफें थीं, मगर और सब तकलीफें गौण हो गईं।
तुम अगर महावीर के पास जाकर चूक जाओ, तो ध्यान रखना, अपने कारण चूक रहे हो। अगर तुम्हें महावीर की नग्नता में कुछ अड़चन आए, तो समझना कि यह तुम्हारी भीतरी अड़चन है। तुम शायद नग्न होने से डरते हो। तुम शायद नग्न होने में भयभीत हो। तुम्हें शायद भय है कि नग्न होओगे तो उघड़ जाओगे, तुम्हारे सब पाप उघड़ जाएंगे। तुम्हें डर है कि नग्न होते ही तुम्हारी

सारी कामवासना अभिव्यक्त हो जाएगी। तुमने कपड़ों में सिर्फ देह नहीं ढांकी है, अपनी कामवासना भी ढांकी है।
तुम्हें महावीर की नग्नता से अगर अड़चन हो तो कहीं, गौर से भीतर तलाशना, तुम्हें अपनी नग्नता से ही अड़चन है। तुम्हें अगर बुद्ध के पास बैठ कर कोई कठिनाई होने लगे, तो सोचना कि कठिनाई मुझे हो रही है, जरूर कारण मेरे भीतर होना चाहिए। तुम्हें अगर ऐसा लगे कि बुद्ध वस्त्र पहने हुए हैं और वस्त्र तो नहीं पहनने चाहिए, सब त्याग दिया तो अब वस्त्र भी क्या, तो जरा गौर से देखना, कहीं तुम्हारे भीतर वस्त्रों के प्रति मोह होगा। तुम्हें वस्त्रों में रस होगा। तो तुम यह नहीं मान सकते कि मुझे वस्त्रों में रस है, इसलिए यह कैसे हो सकता है कि बुद्ध को वस्त्रों में रस न हो। अगर कृष्ण के पास नाचती हुई गोपियों को देख कर तुम्हारे मन में ऐसे उठा कि यह कैसा वीतराग-भाव? तो तुम इतना ही जानना कि स्त्रियों में तुम्हारा रस है और कुछ भी नहीं। तुम जब भी कृष्ण, बुद्ध, महावीर, कबीर, नानक के संबंध में कुछ सोचो, तो ध्यान रखना, तुम्हारा वक्तव्य तुम्हारे संबंध में कुछ बताता है, उनके संबंध में कुछ भी नहीं। तभी तुम टिक सकोगे। तभी तुम्हारे जीवन में क्रांति हो सकेगी।
मिलै लुटाइये तुरत कछु खाइए,
बड़ा प्यारा वचन, सीधा-साफ। जैसे दो और दो चार। तीर की तरह सीधा जाता है। मिलै लुटाइये... अगर मिल जाए कभी कोई ऐसा सदगुरु और मिल जाए उसकी संपदा का पता, झलक दिख जाए... मिलै लुटाइए... तो खुद तो पीना ही, पचाना ही; खुद तो आपूर भर ही लेना अपने को, आकंठ, लुटाना भी! इतने पर ही मत रुक जाना कि ठीक, अपने को मिल गया, अब क्या करना! मिलै लुटाइए।
जीसस ने कहा है, चढ़ जाना मकानों की मुंडेरों पर और चिल्लान, क्योंकि लोग बहरे हैं। खबर देना। कोई मानेगा नहीं तुम्हारी, कोई सुनेगा नहीं तुम्हारी, फिक्र मत करना। सौ से कहोगे, एक तो सुनेगा। एक ने भी सुन लिया तो बहुत।
और एक राज की बात है कि जितना लुटाओगे उतना पाओगे। जैसे कुएं से कोई पानी भरता जाए तो नये-नये झरने कुएं में नया-नया जल ले आते हैं। किसी कुएं में पानी भरा जाए, कंजूस कुएं को बंद कर दे, ताला लगा दे--सोचे कि ऐसे रोज-रोज लोगों को पानी निकालने दिया तो किसी दिन जरूरत पड़ी, अकाल पड़ा, पानी न हुआ, तो हम प्यासे मरेंगे--बंद कुआं सड़ जाएगा। बंद कुएं के झरने मर जाएंगे। बंद कुएं के झरने बंद हो जाएंगे। कुएं का पानी जहर हो जाएगा। जिस दिन जरूरत होगी, उस दिन पीने योग्य नहीं होगा। मारेगा, जिलाएगा नहीं। कुएं से तो पानी उलीचते ही रहो। जितना उलीचोगे, कुआं उतना ताजा रहेगा। उतना जीवंत। और ऐसी ही अवस्था भीतर के आनंद की है। कहीं मिल जाए आनंद, तो--मिलै लुटाइए।
तुरत कछु खाइए,
बड़ी प्यारी बात है, कि सुनना ही मत, पचा लेना। तुरत खाइए! पी जाना तुम्हारी मांस-मज्जा बन जाए। सदगुरु मिले, तो उसे पीओ, खाओ, पचाओ। उसे तुम्हारे रोएं-रोएं में बस जाने दो। उसे तुम्हारी श्वास-श्वास में समा जाने दो। वह तुम्हारे खून में बहे। वह तुम्हारी हड्डियों में प्रविष्ट हो जाए। वह तुम्हारा जीवन बन जाए।
मिलै लुटाइए तुरत कछु खाइए, जहां दिखाई पड़े, क्षण भर भी न चूकना!
ज्ञान की बात से नाहिं टरना।
फिर करोगे क्या? सदगुरु के चरणों में झुक कर करोगे क्या? पचाओ उसे, पीओ उसे! उससे परमात्मा बह रहा है।
उपनिषद कहते हैंः अन्नं ब्रह्म। अन्न ब्रह्म है। मैं तुमसे कहता हूंः ब्रह्म भी अन्न है। जैसे भोजन शरीर के लिए, स्वस्थ रखता, परिपुष्ट रखता, ऐसा ही आत्मा का भोजन भी है। वही सत्संग में मिलता है। वही पोषण, जो तुम्हारी आत्मा को बलवान करता है, आत्मवान करता है।
मिलै लुटाइए तुरत कछु खाइए,
कहते हैंः तुरत। क्षण भर की भी देरी न हो, मन बड़ा बेईमान है।
सब पात पीले पड़ गए

कुछ बच रहे, कुछ झड़ गए
फिर वर्ष बीता एक यह, बीती वसंत-बहार भी, लो आ गया पतझार भी।
कुछ वृष्टि के, हेमंत के
कुछ ग्रीष्म और वसंत के
दिन बीतते ये जा रहे, बन-मिट रहा संसार भी, लो आ गया पतझार भी।
था कल वसंत यहां हंसा
अलि, कुसुम-कलियों में फंसा
जड़ और चेतन में हुई क्षण एक आंखें चार भी, लो आ गया पतझार भी।
अब वह न सौरभ वात में
अब वह न लाली पात में
अवशेष यदि कुछ तो निशा के आंसुओं का हार ही, लो आ गया पतझार भी।
इस आह का क्या अर्थ है?
दुख-सुख सुनाना व्यर्थ है?
लौटा नहीं प्रिय को सकी, पिक की अशांत पुकार भी, लो आ गया पतझार भी।
जिसमें विलीन वसंत है,
उस शून्य का क्या अंत है?
क्या शून्य में ही लय कभी होगा हमारा प्यार भी,
लो आ गया पतझार भी।
सब पात पीले पड़ गए
कुछ बच रहे, कुछ झड़ गए
फिर वर्ष बीता एक यह, बीती वसंत-बहार भी,
लो आ गया पतझार भी।
देर न करना! वसंत के जाते देर नहीं लगती! अभी बुद्ध हैं, अभी बुद्ध नहीं हैं। बुद्ध तो एक वसंत हैं चैतन्य के। और प्रकृति का वसंत तो हर वर्ष आ जाता है, लेकिन बुद्धों के वसंत आने में तो सदियां लग जाती हैं। सदियों- सदियों में कभी कोई बुद्धत्व को उपलब्ध होता है। टालना मत! कहना मत कि कल! क्योंकि क्या पता, कब वसंत बीत जाए! कब हाथ में झरे पत्ते रह जाएं? उन्हीं झरे पत्तों को लोग शास्त्र कहते हैं। पहले तो पत्तों से ही शास्त्र बनते भी थे। पत्तों पर ही लिखे भी जाते थे। अब अगर पत्तों पर नहीं भी लिखे जाते तो भी फर्क नहीं है कुछ, ये पतझड़ के ही पत्ते हैं! जब वसंत था और पत्ते हरे थे और फूलों से लदे थे और वृक्ष ताजा था, जीवंत था, हरा था, बदलियों से बात करता था, चांद-तारों के साथ संबंध था, नाचता था, गाता था, गुनगुनाता था, तब तुम कहां थे? तुम आते ही हो तब जब वृक्ष जा चुका, सूखे पत्ते पड़े रह गए! उनको तुम संजो लेते हो। उनसे तुम शास्त्र निर्मित कर लेते हो। फिर सदियों- सदियों तक पंडित उन्हीं पत्तों की पूजा करता रहता है। सड़े-गले पत्ते, सूखे-साखे पत्ते। माना कि कभी उन पर वसंत था, पर अब नहीं है। और माना कि कभी उनमें फूल खिले थे, मगर अब नहीं हैं। और माना कि कभी भौंरे उनके आस-पास गुनगुनाए थे, मगर वह बात गई, गई हो चुकी।
वसंत जब हो चैतन्य का कहीं, तो झुक जाना। तो टिक जाना। तो सब दांव पर लगा देना। फिर तर्कजाल खड़े मत करना। फिर व्यर्थ की बातों में मत उलझना। फिर व्यर्थ के बहाने न खोजना बचने के।
इसलिए कहते हैं--
मिलै लुटाइए तुरत कछु खाइए,
क्षण न बीते; तत्क्षण।
माया औ मोह की ठौर मरना।।
जिसमें तुम पड़े हो अभी, माया और मोह के रास्ते पर, वहां तो मृत्यु के सिवाय और कुछ नहीं है। जिसने अमृत पा लिया हो, उससे साथ जोड़ लो। देर न करो, उससे साथ जोड़ लो। ऐसे भी बहुत देर हो चुकी है। बहुत देर हो चुकी है!

दुक्ख और सुक्ख फिरि दृष्ट और मित्र को,
एकसम दृष्टि इकभाव भरना।
और सदगुरु से सत्संग हो जाए तो कुछ पृष्ठभूमि निर्मित करनी होगी, ताकि सत्संग गहराए। ताकि सत्संग रोज-रोज घना हो, सघन हो, तीव्र हो। प्रज्वलित हो उठे अग्नि सत्संग की। तो कौन सी भूमिका उपयोगी होगी? दुख और सुख, दोनों को एक समझना शुरू करो। जब सदगुरु मिल जाए तो आनंद मिलना शुरू हुआ, अब दुख और सुख की फिकर छोड़ो। अब दोनों को समान समझो। अब कुछ ऊपर की बात होने लगी। अब कुछ आकाश उतरने लगा। अब पृथ्वी से आंखें हटाओ। दुख और सुख समान समझो। दुष्ट और मित्र को भी समान समझो। क्योंकि दुष्ट और मित्र, शत्रु और मित्र, ये सब यहीं माया-मोह के झगड़े हैं। जो साथ दे वह साथी है, जो विरोध करे वह दुश्मन है। लेकिन जिसके मन में इस जगत में कुछ पाने और पकड़ने की ही आकांक्षा न रही गई हो, अब कौन दोस्त, कौन दुश्मन?
एकसम दृष्टि इकभाव भरना।
अब तो एक समदृष्टि को जगाओ। मित्र हो तो, शत्रु हो तो--समभाव, एक दृष्टि। इससे भूमिका बनेगी। सदगुरु को ज्यादा आसानी से पी सकोगे। आकाश सुगमता से उतर सकेगा।
चाहा, न जीवन पा सका
चाहा, न मृत्यु बुला सका
कैसी तुम्हारी रीति है, यह भी नहीं, वह भी नहीं
कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।
क्यों लिपटने सुख से लगा
क्यों भागने दुख से लगा
जब जानता हूं सत्य तो, सुख भी नहीं, दुख भी नहीं कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।
इस साधना से क्या हुआ
आराधना से क्या हुआ
यदि कर सका प्रिय का इधर, मुख भी नहीं, रुख भी नहीं कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।
इस जिंदगी को जरा गौर से तो देखो।
क्यों लिपटने सुख से लगा
क्यों भागने दुख से लगा
जब जानता हूं सत्य तो, सुख भी नहीं, दुख से भी नहीं
कुछ भी नहीं, कुछ भी नहीं।
कितनी देर और लगाओगे इस सीधे से सत्य को जानने में? कितनी बार तो सुख आया और कितनी बार तो दुख आया--सब आया और गया। पानी पर खींची लकीरें हैं। बन भी नहीं पातीं और मिट जाती हैं। क्या बचा तुम्हारे हाथ में? सुख भी स्मृति रह गई--बस पानी पर खींची लकीरें। दुख भी स्मृति रह गई--बस पानी पर खींची लकीरें। कितनी बार तो लगा कि बस, इस सुख को छाती से लगा लूं और कभी न छोडूं। मगर क्या टिका? और भी आश्चर्य की बात है, अगर सुख टिक भी जाए तो जल्दी ही दुख हो जाता है।
कल मैं एक गीत पढ़ रहा थाः
दुनिया जिसे कहते हैं,
जादू का खिलौना है।
मिल जाए तो मिट्टी है,
खो जाए तो सोना है।
मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है। जो मिल जाता है, वही मिट्टी
हो जाता है। जिस स्त्री के पीछे दीवाने थे, मिल गई और मिट्टी हो गई। जिस पुरुष के पीछे पागल थे, मिल गया और मिट्टी हो गया। मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है। न मिले... मजनू सौभाग्यशाली था, लैला नहीं मिली, सोना बनी ही रही। इतने सौभाग्यशाली सभी मजनू नहीं होते। मजनुओं को लैला मिल जाती है। और तब गले में फांसी लग जाती है। मजनू कभी जाग ही न सका अपने स्वप्न से, क्योंकि लैला मिली ही नहीं। मिल जाती तब बच्चू को पता चलता नोन-तेल-लकड़ी! तब फिर लैला-लैला न करता।

मुल्ला नसरुद्दीन एक शराबखाने में बैठा था। एक मित्र के साथ गपशप चल रही थी, पी रहे थे। मुल्ला नसरुद्दीन ने उस मित्र से पूछा कि बड़ी देर हो गई, आज घर नहीं जाना है? मित्र ने कहा, घर जाकर क्या करूं? घर है कौन? गैर-शादी- शुदा हूं। घर खाली और सूना है। मुल्ला नसरुद्दीन ने हाथ सिर से मार लिया; उसने कहा, हद्द हो गई! तुम इसलिए यहां बैठे हो? हम इसलिए बैठे हैं कि घर पत्नी है। घर जाएं तो कैसे जाएं! जितनी देर कट जाए उतना अच्छा है। मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।
कितनी बार तो सुख मिले! या तो खो गए और नहीं खो गए तो तुम्हारे हाथ में मिट्टी हो गए। और कितनी बार तो दुख मिले! या तो खो गए या धीरे-धीरे तुम उनके आदी हो गए, वे तुम्हारी आदत बन गए। सुख और दुख के पार भी कुछ है, इसीलिए जीवन में अर्थ है, गरिमा है, महिमा है, परमात्मा है। सुख-दुख के पार उठना है।
सदगुरु को पीना हो तो सुख-दुख के पार उठना पड़े।
कुछ बात दिल की कह सकूं
उपहास जग का सह सकूं
सुख-दुख में सम रह सकूं, इतना मुझे अधिकार दो,
मुझको न सुख-संसार दो।
मैं नित नई पालूं व्यथा
मेरी निराली हो कथा
जिसका न आदि न अंत हो, वह प्रेम-पारावार दो मुझको न सुख-संसार दो।
साहस हृदय में दो अमर
चूमूं तरंगों के अधर
नौका भंवर में डालकर, चाहे न फिर पतवार दो,
मुझको न सुख-संसार दो।
कुछ बात दिल की कह सकूं
उपहास जग का सह सकूं
सुख-दुख में सम रह सकूं, इतना मुझे अधिकार दो,
मुझको न सुख-संसार दो।
मांगना हो परमात्मा से प्रार्थना में कुछ तो इतना ही मांगना कि सुख-दुख में सम रहने की क्षमता दो। क्यों? क्योंकि जिसमें यह क्षमता आ गई, वह परमात्मा को पाने का पात्र हो जाता है। मांगना हो तो इतना ही मांगना कि शत्रु और मित्र को समान रूप से देख सकूं; कांटे और फूल को समदृष्टि से देख सकूं, क्योंकि जिसमें समता की दृष्टि आ गई, सम्यकत्व आ गया, उसकी समाधि दूर नहीं। सम्यकत्व समाधि की ही पहली किरण है, पगध्वनि है। और जहां समाधि की पगध्वनि सुनी जाती है, वहां समाधान है, वहां परमात्मा है।
दास पलटू कहै राम कहु बालके,
राम कहु राम कहु सहज तरना।।
पलटू वही कह रहे हैं जो शंकराचार्य ने कहा हैः भज गोविंदम मूढ़मते। मूढ़मति को बालके कह रहे हैं कि हे बालक!
दास पलटू कहै राम कहु बालके,
राम कहु राम कहु सहज तरना।।
एक ही धुन तुम्हारे भीतर गूंजने लगे निराकार की, निर्गुण की; सत्संग
ही तुम्हारा प्राण बन जाए; उठो तो राम में, बैठो तो राम में, सोओ तो राम में; खाओ तो राम, पीओ तो राम, बोलो तो राम, सुनो तो राम--राम से ही घिर जाओ; राम के सागर में डुबकी लग जाए। उस दिन ही जानना कि मूढ़ता मिटी। फिर तुम बालक न रहे, प्रौढ़ हुए। फिर तुम्हारे भीतर बुद्धि का आविर्भाव हुआ, प्रतिभा जगी। धार्मिक व्यक्ति के अतिरिक्त और कोई प्रतिभाशाली नहीं है। धार्मिक व्यक्ति के अतिरिक्त मेधा की कोई परम अभिव्यक्ति नहीं है।
देखि निंदक कहैं करौं परनाम मैं,
और बड़ी निंदा होगी। अगर ऐसे झुके किसी सत्संग में, अगर झुके किन्हीं चरणों में, अगर गहे कोई चरण, अगर लगाया ध्यान निराकार में, अगर परमात्मा की

तलाश गहन हुई, प्राण उसके रस में पगने लगे, तो बड़ी निंदा होगी। भीड़-भाड़ अंधों की है, आंखवालों को पसंद नहीं करती।
देखि निंदक कहैं करौं परनाम मैं,
निंदकों से भर जाएगा जगत तुम्हारे लिए। जो अपने थे, पराए हो जाएंगे। इधर जैसे-जैसे तुम्हारे भीतर सम्यक्त्व का भाव बढ़ेगा, वैसे-वैसे तुम पाओगे कि शत्रु बढ़ने लगे। बड़ी उलटी दुनिया है! तुम्हारे भीतर से शत्रु-भाव छूटने लगा और उधर बाहर शत्रु बढ़ने लगे। अब तुम किसी का बुरा नहीं सोचते और हजारों लोग जो तुम्हारे संबंध में कभी नहीं सोचते थे, वे तुम्हारा बुरा सोचने लगेंगे। वे एकदम पागल हो उठेंगे। तुम्हें हानि पहुंचाने को न मालूम कितने लोग तत्पर हो उठेंगे। हजार काम छोड़ कर तुम्हें हानि पहुंचाने को आने लगेंगे। पलटू कहते हैं, लेकिन तुम एक ख्याल रखना, तुम तो प्रणाम करना! देखि निंदक कहैं करौं परनाम मैं,
नमस्कार करना।
धननय महाराज, तुम भक्त धोया।
धन्यवाद देना कि महाराज, तुम क्या आ जाते हो, धो जाते हो। तुम्हारी बातें, तुम्हारी गालियां, तुम्हारे पत्थर, सभी मेरी धूल झड़ा देते हैं।
मेरी भूल-चूक बता जाते हो।
कबीर ने कहा हैः निंदक नियरे राखिए आंगन कुटी छवाय। अगर निंदक हों, तो पास में ही बसा लेना और आंगन कुटी छवा देना; ढंग से उनकी सेवा-सत्कार करना। उनकी बातें सुनना गौर से। क्योंकि निंदक की बातें या तो सच होंगी या झूठ होंगी--और तीसरी तो कोई होने की संभावना नहीं है। सच हों, तो लाभ होगा। सच हों तो तुम्हें अपनी भूल-चूक पता चलेगी, उसे सुधारना, भूल-चूकें बहुत हैं। और अगर झूठ हों, तो भी लाभ होगा। लाभ यह होगा कि अब झूठ से तुम परेशान मत होना। झूठ से क्या परेशान होना! सच हों तो ग्रहण कर लेना, झूठ हों तो भीतर-भीतर हंस लेना। मगर निंदक तुम्हारी सेवा कर रहा है।
किहा निस्तार तुम आइ संसार में...
पलटू भी खूब कहते हैं। कहते हैंः
धन्य महाराज, तुम भक्त धोया।
किहा निस्तार तुम आइ संसार में,
भक्त कै मैल बिन दाम खोया।।
तुम्हारी बड़ी कृपा है जो तुम संसार में आ जाते हो, आते रहते हो। अवतारी-पुरुष समझो तुम्हें कि आ-आ कर भक्तों को धोते रहते हो, नहलाते रहते हो। गंगा-जल हो तुम। और बिना दाम! कभी-कभी चकित होकर सोचना पड़ता है कि कुछ लोगों को जैसे कोई और काम ही नहीं है! वे दूसरों की निंदा में ही समय लगाए रखते हैं--चौबीस घंटे! उनका श्रम महान है! उनकी साधना महान है!
धन्य महराज, तुम भक्त धोया।
भक्त कै मैल बिन दाम खोया।।
भयो परसिद्ध परताप से आपके,
सकल संसार तुम सुजस बोया।
और तुम्हारी ही कृपा है कि जिससे प्रसिद्ध हुआ भक्त! नहीं तो भक्तों
को जाने कौन? भक्तों को पहचाने कौन?
भयो परसिद्ध परताप से आपके...
क्योंकि भक्त तो चुपचाप शायद बैठे-बैठे, मस्ती-मस्ती में डूबे-डूबे
एक दिन विदा हो जाता है। मगर निंदक उसकी खबर दुनिया के कोने-कोने तक पहुंचा देते हैं।
सकल संसार तुम सुजस बोया।
निंदक तो बोता है कांटे, लेकिन भक्त को तो कांटे लगते ही नहीं, उसके पास तो कांटे आते ही फूल हो जाते हैं। निंदक तो फेंकता है अंगार, लेकिन भक्त को छूते ही फूल हो जाते हैं। पलटू कहते हैं, तुम सुजस बोया। निंदक और सुयश बोए? निंदक तो जितना गढ़ सकता है उतनी निंदा गढ़ता है। लेकिन पलटू कहते हैं, तुम्हारी निंदा से कुछ होता नहीं; सुयश ही फैलाता है। तुम्हारे कारण बहुत लोग भक्त को खोजते चले आते हैं। तुम्हारे कारण बहुत लोग भक्त के हो जाते हैं।

दास पलटू कहै, निंदक के मुये से,
भया अकाज मैं बहुत रोया।।
पलटू कहते हैं कि जब मेरा प्रधान निंदक मर गया... दास पलटू कहै, निंदक
के मुए से, भया अकाज... बहुत अकाज हो गया। बड़ी बुरी बात हो गई। मैं बहुत रोया कि उस बेचारे ने कितनी सेवा की। अथक, बिना किसी पारिश्रमिक के। धन्य महराज, तुम भक्त धोया।
स्मरण रखना, जैसे ही तुम्हारी धर्म में गति होगी, वैसे ही निंदा बढ़ने लगेगी। यह बहुत हैरानी की बात है, मगर अपरिहार्य है। बुद्ध बिना गाली खाए इस पृथ्वी से नहीं जा सकते। बुद्धों के रास्ते पर लोग कांटे बोते ही हैं। उनकी भी मजबूरी है। कांटे बोने वाले भी क्या करें, एक अनिवार्यता है! अंधे लोग आंख वाले को पसंद नहीं करते। क्योंकि उसकी मौजूदगी में उन्हें अपना अंधापन अखरता है। बुद्धू बुद्धों को पसंद नहीं कर सकते। कहते हैं, ऊंट पहाड़ के पास जाना पसंद नहीं करता। क्योंकि वहां जाकर उसे पता चलता है कि अरे, मैं भी कुछ नहीं! ऊंट शायद इसीलिए रेगिस्तान चुनते हैं रहने के लिए। बड़े होशियार हैं! रेगिस्तान में वे ही पहाड़ हैं। पहाड़ों के पास ऊंट जाने से डरता है। पहाड़ को देख कर ऊंट को लगेगा, मैं तो ना-कुछ, मैं तो कुछ भी नहीं। बुद्धों की मौजूदगी तो गौरीशंकर जैसी है--उत्तुंग, आकाश छूती। उनके पास जाकर तुम अचानक कीड़े-मकोड़े जैसे मालूम होने लगते हो। उनकी रोशनी में तुम एकदम अंधकार मालूम होने लगते हो। उनका प्रज्वलित प्रकाश और तुम्हें अपने भीतर की सारी ग्लानि और सारे पाप दिखाई पड़ने लगते हैं। उनकी खींची हुई बड़ी रेखा के सामने तुम एकदम छोटे और क्षुद्र हो जाते हो। कोई नहीं चाहता कि क्षुद्र हो। हालांकि वे तुम्हें क्षुद्र नहीं कर रहे हैं। मगर यह अनिवार्यरूपेण घट जाता है।
तुमने कहानी सुनी। अकबर ने एक दिन लकीर खींच दी दरबार में आकार। पहेली की एक किताब में उसने पढ़ी थी। हल नहीं कर पाया था खुद तो दरबार में लकीर खींच दी और लोगों से कहा कि बिना इसे छुए जो छोटा कर देगा, उसे लाख स्वर्णमुद्राएं मिलेंगी। बिना छुए! उसी प्रश्न में अटक गए बुद्धिमानः बिना छुए? छोटा करना है तो छूना तो पड़ेगा ही। छोटा करना है तो बिना छुए कैसे होगा? और तब उठा बीरबल और उसने एक बड़ी लकीर उसके नीचे खींच दी। छुआ नहीं उसे और छोटा कर दिया। लकीर उतनी की उतनी ही है--छोटी हुई नहीं, न बड़ी हुई, मगर छोटी दिखाई पड़ने लगी।

ऊंट तो ऊंट है, चाहे पहाड़ के किनारे खड़ा हो और चाहे रेगिस्तान में। मगर पहाड़ के किनारे छोटा दिखाई पड़ता है। तुम तो तुम हो, चाहे पापियों के बीच बैठो, चाहे पुण्यात्माओं के। लेकिन पापियों के बीच तुम्हारे अहंकार को तृप्ति मिलेगी। तुम श्रेष्ठ मालूम पड़ोगे। पुण्यात्माओं के बीच बैठोगे, तुम निकृष्ट मालूम पड़ोगे; तुम्हारे अहंकार को चोट लगेगी। और अहंकार को चोट लगे तो अहंकार सांप की तरह फुफकारता है। वही निंदा बन जाती है। अहंकार को चोट लगे, तो जहर उगलता है। उगलेगा ही। इसलिए यह अपरिहार्य है कि बुद्धों के रास्ते पर कांटे बोए जाएंगे, अंगारे फेंके जाएंगे, सूलियां दी जाएंगी, जहर पिलाया जाएगा। जो व्यक्ति परमात्मा का अमृत पीता है, उसे संसार का जहर पीना पड़ता है। वह कीमत चुकानी पड़ती है--मगर वह कीमत चुकाने जैसी है।
परमात्मा का अमृत जो पी रहा है, उसे फिक्र भी क्या संसार के जहर की? संसार का जहर उसका बिगाड़ भी क्या लेगा? ज्यादा-से-ज्यादा इतना ही होगा कि वह नीलकंठ हो जाएगा। और देखते हो, पक्षी तो बहुत हैं मगर नीलकंठ जैसा प्यारा कोई पक्षी है? नीलकंठ शिव का प्रतीक हो गया, क्योंकि शिव जहर पी गए। और जहर के कारण कंठ नीला हो गया। इसलिए वर्ष में एक दिन लोग नीलकंठ की तलाश में जाते हैं, उसका दर्शन करने जाते हैं। नीलकंठ है भी प्यारा!
मगर यह कोई शिव की ही बात नहीं। जो भी शिवत्व को उपलब्ध हुए हैं, उन सब
के कंठ नीले हो गए हैं। वे सभी नीलकंठ हैं। उन सब को जहर पीना पड़ेगा। हर चीज की कीमत चुकानी होती है। अमृत मुफ्त नहीं है। मगर क्या कीमत है यह! दो कौड़ी की कीमत है यह! अमृत जिसको मिल रहो हो! जहर मार तो न सका शिव को! सूली

मार तो न सकी जीसस को! तुम्हारे पत्थर क्या बिगाड़ सके बुद्ध का? और तुम्हारी गालियां क्या बिगाड़ सकीं मोहम्मद का? नहीं, उलटा ही परिणाम हुआ।
भयो परसिद्ध परताप से आपके,
सकल संसार तुम सुजस बोया।
देखि निंदक कहैं करौं परनाम मैं,
धन्य महराज, तुम भक्त धोया।
पलटू चेताते हैं कि जैसे ही तुम रस पीना शुरू करोगे परमात्मा का, जगत में बहुत विरोध होगा। इससे बचा नहीं जा सकता। बचने की फिकर भी मत करना। बचने की फिकर की तो अमृत पीने से वंचित रह जाओगे। यहां जो भी मेरे पास आ कर बैठे हैं, वे जानते हैं कि कितनी निंदा उन्हें सहनी पड़ रही है। उन्हें कितना जहर पीना पड़ रहा है। धन्यवाद देकर पीना! प्रणाम करते रहना उनको जो तुम्हारे लिए जहर पिलाएं। जो तुम्हें गालियां दें उनको नमस्कार करते रहना। उनका अनुग्रह मानना!
पराई चिंता की आगि महैं,
दिनराति जरै संसार है, जी।।
यह बड़ा अदभुत संसार है। इसे अपनी चिंता नहीं। यह पराई चिंता में जलता है। इसे अपनी फिकर नहीं। जितनी देर दूसरों की निंदा करता है, उतनी देर ध्यान नहीं करेगा। ध्यान की कहो तो लोग कहते हैं--समय कहां? और जरा किसी की निंदा की बात करो तो कहते हैंः कुछ और बताइए! कुछ और आगे! फिर क्या हुआ? लोगों से अगर परमात्मा की बात कहो तो लोग कहते हैं कि छोड़ो भी, कहां की बात उठा दी? परमात्मा की बात शिष्टाचार से कोई सुन ले तो सुन ले, कोई सुनना नहीं चाहता। असल में परमात्मा की बात छेड़ने वालों को लोग समझते हैं कि उबाने वाले लोग, बोर करने वाले लोग। इनसे लोग बचते हैं।
तुम मेरी बात न समझो तो जाकर देखो। चले जाओ रोटरी क्लब और जाकर वहां एकदम परमात्मा की बात छेड़ दो। सब बड़े चौंकेंगे कि यह क्या बत कर रहा है आदमी! चले जाओ लायंस क्लब, ध्यान इत्यादि की बात छेड़ो। लोग एक-दूसरे की तरफ देखेंगे कि ये अजनबी सज्जन कहां से आ गए? वहां तो कुछ और ही बातें चलती हैं। कौन किसकी स्त्री को ले भागा? कौन किसी पत्ती दिल्ली से काट रहा है? किसने किसको चारों खाने चित कर दिया? बड़ी ऊंची बातें चलती हैं वहां! वे सभी स्वीकृत हैं। उनमें लोग रस लेते हैं। खोद-खोद कर पूछते हैं।
जिस फिल्म में हत्या न हो, आत्महत्या न हो, व्यभिचार न हो, बलात्कार न हो, उस फिल्म को देखने कोई जाता ही नहीं। तुम जरा कोई ऐसी फिल्म तो बना कर देखो, जिसमें ये चीजें भर न हों। शुभ ही शुभ हो--कि भक्त बैठे हैं, भगवान का भजन ही भजन चल रहा है--पिटाई हो जाएगी सिनेमा के मैनेजर की। आग लगा देंगे लोग फिल्म में! कि यह क्या मामला है? यह कोई बात हुई? लोग यह देखने नहीं आते हैं, लोग इसके लिए पैसा खर्च नहीं करते हैं। लोग तो कुछ गंदा हो तो उनका रस है। लोग गंदगी के कीड़े हैं।
पराई चिंता की आगि महैं,
दिनराति जरै संसार है, जी।
बड़ा अदभुत संसार है, पलटू कहते हैं, दूसरों की चिंता में जला जाता है! रात-रात लोग सोते नहीं। अपनी चिंता करने वाले लोग तो कम ही हैं। जो अपनी चिंता कर लेते हैं, वे तो परम ज्ञान को उपलब्ध हो जाते हैं।
चौरासी चारिऊ खान, चराचर,
कोऊ न पावै पार है, जी।।
चौरासी योनियों में भटकते रहे; अंडज, पिंडज, स्वेदज, उदभिज--सब तरह की योनियों में भटकते रहे, कोऊ न पावै पार है, जी, और अब तक पार न हुए? कब से डुबकियां लगा रहे हो! कब से डूबते जा रहे हो! कितने दिनों से डूब रहे, उबर रहे! सागर ही सागर है, अथाह सागर है, कहीं कोई किनारा नहीं दिखाई पड़ता। कोई बड़ी मौलिक भूल हो रही है। तुम पराई चिंता में पड़े हो। दुबले हुए जा रहे हो। एक अपने को छोड़ कर तुम्हें संसार भी की फिकर है। जिसने अपनी चिंता कर ली, वह पार हो जाता है। और जो पार हो जाता है, वह संसार को भी पार होने का रास्ता बता सकता है।
जोगी जती तपी संन्यासी,

सबको उन डारा जारिहै, जी।
सब जल रहे हैं--जोगी, जती, तपी, संन्यासी। हजार तरह के लोगों ने उपाय कर लिए हैं, मगर बुनियादी भूल अगर नहीं मिटती तो क्या फर्क पड़ेगा? जैन मुनि है, वह हिंदू संन्यासी के विरोध में लगा है। हिंदू संन्यासी है, वह मुसलमान फकीर का विरोध कर रहा है। सनातनी आर्यसमाजी के खिलाफ, आर्यसमाजी सनातनी के खिलाफ लगा हुआ है। संन्यासी हो गए, साधु हो गए, महात्मा हो गए-- मगर सारा काम वही! वही निंदा चल रही है! वही निंदा-रस!
पता नहीं नौ रसों में निंदा-रस क्यों नहीं गिना गया? क्योंकि नौ रसों में और किसी रस में तो किसी को कोई रस नहीं है, निंदा-रस सार्वलौकिक है, सार्वभौम है।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसकी पत्नी एक बगीचे में बैठे हैं। पास की ही झाड़ी में--रात का अंधेरा है--एक युवक-युवती प्रेमालाप कर रहे हैं। और युवक बहुत आतुरता से प्रार्थना कर रहा है कि मुझे वरो! तुम्हारे बिना मैं न जी सकूंगा, मर जाऊंगा। मुल्ला की पत्नी बेचैन होने लगी। उसने मुल्ला को हुद्दा दिया और कहा कि खांसो, खंखारो! नहीं तो यह लड़का फंस जाएगा जाल में। बच जाए तो अच्छा झंझट से। मुल्ला लेकिन जैसा बैठा था, बैठा रहा। फिर पत्नी ने हुदिआया। मुल्ला ने कहा, हुदिआना बंद कर! जब मैं इसी तरह की बेवकूफी कर रहा था, तो कौन खांसा-खंखारा था? मैं क्यों खांसूं-खंखारूं? फंसने दे! सारी दुनिया फंस! जब मैं फंसा तो क्यों कोई और बचे!
तुम दूसरों की निंदा में रस इसलिए लेते हो कि उससे तुम्हारे मन को एक सुख मिलता है कि मैं अकेला ही नहीं फंसा हूं, और सब भी फंसे हैं। मुझसे भी ज्यादा फंसे हैं, मुझसे भी बुरी तरह फंसे हैं। मैं तो कुछ नहीं। अपनी तो किन पापियों में गिनती है! बड़े-बड़े पापी पड़े हैं, महा पापी पड़े हैं! इसलिए तुम दूसरे की निंदा को जब देखते हो तो खूब बढ़ा-चढ़ा कर देखते हो। चिंदी का सांप बना कर देखते हो। राई का पहाड़ बनाकर देखते हो। खुद की आंख में पहाड़ भी पड़ा हो तो राई जैसा और दूसरे की आंख में राई भी पड़ी हो तो पहाड़ जैसी। इसके पीछे गणित है। अहंकार का सीधा गणित है।
और ऐसा ही नहीं कि सांसारिक भोगी इसमें उलझा है, जिसको कहो जोगी, जती, तपी, संन्यासी; जिनको तुम तथाकथित धार्मिक महात्मा कहते हो, वे भी इसी में उलझे हुए हैं। उनको भी बड़ी बेचैनी है! किसी महात्मा का यश फैलने लगे तो दूसरे महात्माओं को बेचैनी। वे सब उसके पीछे पड़ जाएंगे। सब उसके दुश्मन हो जाएंगे। सब उसकी निंदा में संलग्न हो जाएंगे। उनके अहंकार को चोट पड़ने लगती है।
क्या तुम सोचते हो जीसस को जिन लोगों ने सूली दी वे बुरे लोग थे? तो तुम गलती सोचते हो। बुरे लोग नहीं थे वे; चोर, बदमाश, लुच्चे-लफंगे नहीं थे वे; अपराधी-पापी नहीं थे वे; जिन्होंने सूली दी, सज्जन--तथाकथित सज्जन-- समादृत, प्रतिष्ठित, धर्मगुरु, पंडित, पुरोहित, इतनी जमात थी जिन्होंने जीसस को सूली दी। अगर किसी चोर ने, बदमाश ने, हत्यारे ने जीसस को मार डाला होता तो मनुष्यता के ऊपर इतना कलंक न लगता। लेकिन जिन्होंने मारा, वे भले लोग थे, जिनको हम भला कहते हैं। जिन्होंने मारा, वे बुरे लोग नहीं थे। सुकरात को जिन्होंने जहर पिलाया, वे भी समाज के समादृत लोग थे। श्रेष्ठतम। जो समाज के ऊपर हक किए बैठे हैं। समाज के मुखिया, सरपंच, उन्होंने सुकरात को जहर दिया। क्या कारण है, इनको क्या अड़चन हो गई थी? गरीब सुकरात इनका क्या बिगाड़ता था? जरूर कुछ बिगाड़ रहा था। सुकरात के पास असली सिक्के थे सत्य के और इनके पास नकली सिक्के थे। और नकली सिक्के असली सिक्कों को बरदाश्त नहीं करते। नकली सिक्के, अर्थशास्त्र का नियम है, असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं। वही सिद्धांत जीवन के और-और तलों पर भी लागू होता है।
तुमने देखा है, तुम्हारे जेब में अगर दो सिक्के पड़े हों, एक दस रुपये
का असली नोट और दूसरा नकली--उल्हासनगर सिंधी एसोसिएशन में बना हुआ--तो तुम पहले किसको चलाओगे? पहले तुम नकली को चलाओगे, असली को बचाओगे। क्योंकि नकली जितनी जल्दी चल जाए उतना अच्छा। और जिसके हाथ में नकली पड़ेगा और जैसे

ही उसकी समझ में आएगा नकली है, वह भी जल्दी चलाएगा। उसको जितनी जल्दी चल जाए उतना अच्छा।
मुल्ला नसरुद्दीन घर लौटा, बड़ा प्रसन्न था। अपनी पत्नी से बोला, आज मैंने तीन आदमियों का उपकार किया। पत्नी ने कहा, तुमने और उपकार! यह बात नई, कभी सुनी नहीं। न कभी आंखों देखी, न कभी कानों सुनी है। तुमने और उपकार! मुल्ला ने कहा, सच मान, तीन आदमियों का उपकार किया। पत्नी ने कहा, जरा विस्तार से कहो तो मैं समझूं। तो मुल्ला ने कहा, वह जो नकली दस रुपये का नोट था न, एक मिठाईवाले के यहां चला दिया! पांच रुपये की मिठाई खरीद ली। सुबह से बैठा था बेचारा! कोई बिक्री नहीं हुई थी--बोहनी ही नहीं हुई थी। एकदम गदगद हो गया! सो उसका उपकार किया।
पास में ही एक भिखमंगा खड़ा था। सो आधी मिठाई उसे दे दी। वह भी चमत्कृत
हो गया! एकदम पैर छू लिए और कहा, हे दाता, बहुत दाता देखे, मगर तुम जैसा दाता नहीं देखा! पत्नी ने कहा, चलो ठीक है, यह तो दो का उपकार हुआ; तीसरा? और तीसरा, मुल्ला ने कहा, मैं। वह दस का जो नकली नोट निकल गया, छाती से पत्थर टल गया। तीन आदमियों का उपकार करके लौटे हैं।
नकली सिक्के असली सिक्कों को चलन के बाहर कर देते हैं।
जीव के जगत में भी यही लागू है। सुकरात को जिन लोगों ने जहर दिया, वे नकली सिक्के थे। सुकरात की मौजूदगी चुभने लगी, बहुत चुभने लगी, तीर की तरह चुभने लगी। सो न सकें, चिंता बहुत पकड़ने लगी। सुकरात की मौजूदगी उनको इतना दीन-हीन करने लगी, उनके भीतर ऐसी हीनता का भाव उठाने लगी, उनके अहंकार को ऐसा जीर्ण-जर्जर करने लगी कि उन्हें कुछ करना ही पड़ा। सुकरात को जहर दे कर मार डालना पड़ा।
तो ध्यान रखना--
जोगी जती तपी संन्यासी,
सबको उन डारा जारिहै, जी।
यह जो दूसरे की चिंता, और कहीं दूसरा आगे न पहुंच जाए, इसकी फिक्र; कहीं दूसरा मुझसे ऊपर न उठ जाए; कहीं दूसरा किसी भी तरह की प्रतियोगिता में पहले न हो जाए, आगे न हो जाए, इस चिंता में लोग मरे जा रहे हैं।
पलटू मैं भी हूं जरत रहा,
सतगुरु लीन्हा निकारि है, जी।।
पलटू कहते हैं, ऐसे ही मैं भी जल रहा था; ऐसी ही मूढ़ता में मैं भी डूबा था; ऐसी ही व्यर्थता में मैं भी उलझा था; लेकिन वह सदगुरु की कृपा हुई-- सतगुरु लीन्हा निकारि है, जी--सतगुरु ने खींच कर बाहर निकाल लिया। सतगुरु ने कहा, पागल, अपनी सोच, अपना ध्यान कर! दूसरों की दूसरे जानें! उनका जीवन है! जैसा उन्हें जीना है, जीएं। उनकी स्वतंत्रता है। तू क्यों उनकी चिंता में पड़ा है? उनके पापों के लिए तुझे दंड नहीं मिलेगा। और न उनके पुण्यों के लिए तुझे पुरस्कार मिलेगा। तू अपनी फिकर कर--अपनी खोज-खबर ले!
और तब जिंदगी में एक नया आविर्भाव होता है।
इस प्रणय-सिंधु अथाह में
कुश-कंटकों की राह में
प्रियतम-मिलन की चाह में
मुझको मिली जो यातना
उपहार है, उपहार है।
कुछ शांति पाने के लिए
मन को मनाने के लिए
जग को सुनाने के लिए
मुझको मिली जो भावना
उपहार है, उपहार है।
तूफान में, मंझधार में
सुख-दुख भरे संसार में
प्रिय-प्रीति के प्रतिकार में मुझको मिली जो वेदना
उपहार है, उपहार है।

फिर तो सभी उपहार मालूम होने लगता है। लोग गाली दें, तो उपहार; लोग निंदा करें, तो उपहार। वही है बुद्धिमान इस जगत में, जो हर चीज की सीढ़ी बना ले; जो हर मार्ग के पत्थर को सीढ़ी में बदल दें; जो जहर को भी औषधि बना ले। वही है बुद्धिमान इस जगत में।
इस प्रणय-सिंधु अथाह में
कुश-कंटकों की राह में
प्रियतम-मिलन की चाह में
मुझको मिली जो यातना
उपहार है, उपहार है।
तूफान में, मंझधार में
सुख-दुख भरे संसार में
प्रिय-प्रीति के प्रतिकार में
मुझको मिली जो वेदना
उपहार है, उपहार है।
तुम बुद्धों को चोट पहुंचा नहीं सकते। घाव कर सकते हो, चोट नहीं पहुंचा सकते। मार सकते हो, पीड़ा नहीं दे सकते। मिटा सकते हो, लेकिन उनके आनंद को खंडित नहीं कर सकते। उनकी आनंद की धारा अखंड है, अविच्छिन्न है। जिसके लिए पागल सभी
योगी कभी, भोगी कभी
पूरी न जो होगी कभी
वह आश भी मेरे लिए
वरदान है, वरदान है।
जो जन्म से स्वार्थिन नहीं जो पूर्ण परमार्थिन रही
सुनसान में साथिन रही
उच्छवास भी मेरे लिए
वरदान है, वरदान है।
जो आह बन तपती कभी
जो ज्वाला बन जगती कभी
जो बुझ नहीं सकती कभी
वह प्यास भी मेरे लिए
वरदान है, वरदान है।
आंख खुलें तो इस जगत में कुछ भी बुरा नहीं है। शत्रु भी नहीं। वह भी तुम्हारा मार्ग साफ कर रहा है। निंदक भी नहीं। वह भी तुम्हें धो रहा है, निखार रहा है। जो तुम्हारी छाती में छुरा भोंक दे, वह भी नहीं। क्योंकि वह भी तुम्हारी अंतिम परीक्षा ले रहा है।
अट्ठारह सौ सत्तावन के गदर में एक सिद्ध संन्यासी को, जो तीस वर्षों
से मौन था और जिसने प्रतिज्ञा ले रखी थी कि बस आखिरी समय एक वचन बोलूंगा... नग्न रहता था; मस्ती में मस्त था; चांदनी रात थी, मौज में निकल पड़ा। भूल से, जाना तो नहीं चाहता था वहां, अंग्रेजों की छावनी में पहुंच गया। पकड़ लिया गया। एक तो नंग-धड़ंग, फिर बोले न! समझे वे कि कोई जासूस है। सिद्ध योगी होने का ढोंग कर रहा है। एक अंग्रेज ने उठा कर भाला उसकी छाती में भोंक दिया। खून का फव्वारा छूट उठा। और वह हंसा और उसने अपना आखिरी वचन बोलाः तत्वमसि। तू भी वही है।
तीस साल पहले प्रतिज्ञा ली थी कि बस आखिरी वचन बोलूंगा, मरते समय। जो वचन बोला, अदभुत है। उपनिषदों का सार है। सारे धर्मों का सार है! सारे बुद्धों का सार है! तत्वमसि। वह तू ही है। मरते क्षण उसने इशारा किया--उस आदमी की तरफ जिसने भाला भोंक दिया है और कहा कि तू भी वही है। तू भी परमात्मा है। यह आखिरी परीक्षा हो गई। शत्रु में भी उसको ही देख पाया, मृत्यु में भी उसको ही देख पाया--अब और कोई परीक्षा न रही।
इक नाम अमोलक मिलि गया,
परगट भये मेरे भाग हैं, जी।

और गुरु ने कैसे निकाला? सदगुरु ने कैसे खींच लिया बाहर? इक नाम अमोलक मिलि गया। एक परमात्मा की याद दिला दी। एक साई हुई स्मृति जगा दी। सुरति को झकझोर दिया।
इक नाम अमोलक मिलि गया,
परगट भए मेरे भाग हैं, जी।
और अब पहली दफा भाग्य का उदय हुआ; भाग्योदय हुआ, सूर्योदय हुआ। पहली दफा सुबह हुई। सदियों-सदियों की अमावस कटी।
इस जगत में एक ही चीज है जो खरीदी नहीं जा सकती, वह अमोलक है, वह ध्यान है। उसका कोई मूल्य नहीं है। यद्यपि सर्वाधिक मूल्यवान वही है। उसकी कोई कीमत नहीं है। न खरीद सकते, न बेच सकते। मगर अगर कोई लेने को राजी हो और हृदय को खोले, निर्दोष भाव से, निष्कपट भाव से, सहज भाव से, पीने को राजी हो, तो ध्यान पिलाया जा सकता है। खरीदा नहीं जा सकता, बेचा नहीं जा सकता, लेकिन सदगुरु अपने ध्यान को शिष्य के ध्यान में उंडेल सकता है। जैसे सदगुरु सुराही है शराब की। और शिष्य अगर पात्र हो, अगर शिष्य प्याली बनने को राजी हो, तो यह अमोलक घटना घटती है।
इक नाम अमोलक मिलि गया,
परगट भए मेरे भाग हैं, जी।
आज रवि-शशि-रश्मियों ने नव-प्रभा जग में जगाई
आज अलि उनको बधाई।
आज कुंकुम रोचना से थाल ऊषा ने सजाया
आज नव-रवि समुद अपने साथ हीरक-हार लाया
आज प्रकृति वधु सजीली सज उठी बन-ठन निराली आज माणिक मोतियां बिखरा रहीं मानस-मराली
आज शुभ-अभिषेक का सब साज ऊषा साज लाई
आज अलि उनको बधाई।
आज प्राणों ने प्रणय का एक सुंदर गीत गाया
आज युग-युग से प्रतीक्षित विकल हिय का मीत आया आज भावों ने जगत में मानवी कुछ केलि कर ली शून्य एकाकी हृदय की कल्पना से गोद भर दी प्रणय की पुलकित प्रतीक्षा झूमती साकार आई आज अलि उनको बधाई।
आज कण-कण में हुई फिर व्याप्त आशा की निशानी आज पल में उमंग आईं सुप्त-सी साधें पुरानी आज गदगद हो हृदय ने प्रेम के दो बूंद ढाले आज पंख हिला उठे अरमान के पंछी निराले हूक-सी उठने लगी जब हृदय-डाली डगमगाई
आज अलि उनको बधाई।
आज कोयल कह उठी मैं नेह-रस-वश कूक दूंगी
आज जग की वाटिका में एक जीवन फूंक दूंगी
आज मैं ऋतुराज का स्वागत करूंगी खोलकर उर
आज तन-मन-धन लुटा दूंगी उन्हें मैं मोल भर-भर आज प्रियतम आ रहे हैं, साधना भी साथ आई
आज अलि उनको बधाई।
आज रह-रह लुट रहे हैं चाहते-से चाव मेरे
आज मसृण मृदु ढुलकते हैं हृदय के भाव मेरे
आज कुछ सुस्निग्ध स्पंदन हो रहा सूने हृदय में आज मिलना चाहते हैं स्वर हमारे अमर लय में
आज उस संगीत की स्वर-साधना फिर जाग आई
आज अलि उनको बधाई।
आज धन होती सजनि, तो नेह जल से सींच देती चित्रकार न हो सकी वह चित्र उनका खींच लेती आप अपनी लेखनी की ओर ही मैं ताकती हूं
एक अस्फुट रेख प्रिय के प्रेम की मैं आंकती हूं

शब्द टूटे ही सही, अब प्रिय-मिलन की धुन समाई आज अलि उनको बधाई।
आज सुनती हूं सजनि, हृदयेश का अभिषेक होगा
आज सुनती हूं हमारा हृदय उनसे एक होगा
आज सुनती हूं बनेंगे सत्य वे नायक हमारे
हम बनेंगी गीत उनके और वे गायक हमारे
आज चिर-आराधना परिपूर्ण-सी पड़ती दिखाई,
आज अलि उनको बधाई।
जिस क्षण सदगुरु की सुराही से शिष्य का पात्र भर जाता है, उस क्षण आ गया जीवन का परम महोत्सव। उस क्षण आ गया वसंत। उस क्षण धन्यवाद दिया जा सकता है। उस क्षण आभार प्रकट किया जा सकता है। उसके पहले तो हमारे पास आभार प्रकट करने को है भी क्या? कृतज्ञता भी व्यक्त करें तो किस बात की करें? पतझड़ ही पतझड़ जाना; अमावस ही अमावस पहचानी; न कभी पूर्णिमा देखी, न कभी वसंत आया; कोयल कूकी ही नहीं, पपीहा पुकारा ही नहीं; हम रिक्त हैं। हम अर्थहीन हैं। अर्थ का उदय होता है, जब प्रभु का स्मरण आता है। बस उसकी स्मरण की जो घटना है, वही खींच लेती है संसार के सागर से व्यक्ति को।
इक नाम अमोलक मिलि गया,
परगट भये मेरे भाग हैं, जी।
गगन की डारि पपिहा बोलै...
आज आकाश की डगाल पर बैठ कर, आज दूर आकाश से पपीहा बोला है...
गगन की डारि पपिहा बोलै,
सोवत उठी मैं जागि हौं, जी।।
झकझोर कर गुरु ने जगा दिया है। नींद टूट गई है। सपने उखड़ गए हैं।
चिराग बरै बिनु तेल बाती,
और आज अपने भीतर क्या देख रहा हूं कि एक ऐसा दिया जल रहा है, जिसमें न तेल है न बाती है।
चिराग बरै बिनु तेल बाती,
नाहिं दीया नहिं आगि है, जी।
न तो वहां कोई दीया है, न कोई आग है, बस रोशनी है, शुद्ध रोशनी है।
पूर्ण प्रकाश है। स्रोत नहीं कहीं कोई आकाश का, कारण नहीं कोई प्रकाश का, इंधन नहीं प्रकाश का, बस प्रकाश ही प्रकाश है--आदि, अनंत।
पलटू देखिके मगन भया,
सब छुट गया तिर्गुना-दाग है, जी।।
पलटू कहते हैं, मैं मगन हो गया, मैं मस्त हो गया, मैं नाच उठा।
सब छुट गया तिर्गुना-दाग है, जी।।
और एक क्षण में वे सारे बंधन, तीन गुणों के बंधन--सत, रज, तम के बंधन--वे सारी रस्सियां कहां विलीन हो गईं, पता नहीं चलता। यह मस्ती में जो अंगड़ाई ली है, उसमें सब बंधन टूट गए।
ख्याल रहे, लोग बंधन तोड़ना चाहते हैं पहले--फिर परमात्मा मिलेगा, ऐसा उनका ख्याल है। ऐसा नहीं होता। पहले परमात्मा मिलता है, तब बंधन टूटते हैं। लोग सोचते हैं, अंधेरा हटेगा पहले, फिर प्रकाश होगा। ऐसा नहीं होगा। पहले प्रकाश होता है, फिर अंधेरा... फिर अंधेरा कहां?
हमको जग से भय ही क्या है, जब तक साकी हैं, प्याले हैं।

जब जब पीड़ा ने जिल ठानी
तब-तब हमने गहरी छानी
बेसमझे बूझे दुनिया ने
कह डाला उसको नादानी,
जग क्या जाने, हमने उर में पीड़ा के पंछी पाले हैं,
हम बड़े विकट मतवाले हैं।

हमको अपना कुछ ध्यान नहीं
कुछ मान नहीं, अपमान नहीं

हम दीवानों की दुनिया में
कुछ भले-बुरे का ज्ञान नहीं
हम भेद-भावमय जगती के सब भेद मिटाने वाले हैं, हम बड़े विकट मतवाले हैं।

जब मधु पी हम झूमा करते,
मदिरालय में घूमा करते
अपने सुख-दुख के प्यालों को
जब बार-बार चूमा करते
तब जग विस्मित कह उठता है इनके तो ठाठ निराले हैं हम बड़े विकट मतवाले हैं।

सुख में मैंने रोदन ठाना
दुख में मैंने गाया गाना
जब अपने को ही खो डाला
तब ही अपनों को पहचाना
कोई क्या जाने, प्राणों ने कितने विप्लव कर डाले हैं, हम बड़े विकट मतवाले हैं।

यह खोया और कमाया क्या?
यह मुक्ति और यह माया क्या?
जब मिटकर मिल जाना ही है
तब अपना और पराया क्या?
हम अपने और पराए को मल एक बनाने वाले हैं,
हम बड़े निकट मतवाले हैं।

इस जीवन का विश्वास किसे?
इस पीड़ा का अभास किसे?
वह मिलने की ही उत्कंठा
जग कह देता है प्यास जिसे
हम प्यास-तृप्ती, मृगतृष्णा की उलझन सुलझाने वाले हैं, हम बड़े विकट मतवाले हैं।

लो मेरे मधुघट छलक उठे,
प्यासे-मतवाले ललक उठे
लख लाल सुरा की लाल धार
बालक-बूढ़े सब किलक उठे,
मधु ढाल-ढाल, सबके हिय-जिय हम आज लुभाने वाले हैं, हम बड़े विकट मतवाले हैं।

हम करते हैं व्यापार नया
हम पा जाते हैं प्यार नया
बस कर में प्याला लेते ही
हम दिखलाते संसार नया
दिखला साकी की मधु झांकी हम चित्त चुराने वाले हैं, हम बड़े विकट मतवाले हैं।

दिन हो या आधी रात रहे
पतझर हो या मधुवात बहे
पीने वालों का मौसम क्या
ग्रीषम हो या बरसता रहे
हम तो कुछ अपने ही ढंग का संसार बसाने वाले हैं, हम बड़े विकट मतवाले हैं।

जिन्होंने उसकी सुरा पी ली, जिन्होंने एक घूंट भी परमात्मा का स्वाद
ले लिया, जिन्होंने सदगुरु को मौका दिया कि ढाल दे अपने को तुम्हारे प्राणों में, वे एक दूसरे ही लोक के वासी हो गए। फिर इस संसार में होकर भी इस संसार को नहीं हैं। फिर उनकी मस्ती की क्या सीमा! वे आनंद विभोर जीते हैं। उनका न फिर कोई जन्म है, न कोई मृत्यु है। फिर तो शाश्वतता उनकी अपनी है। फिर कैसा भय, फिर कैसी चिंता? फिर कौन अपना, फिर कौन पराया? फिर कौन छोटा, कौन बड़ा? उन्हें तो फिर एक ही दिखाई पड़ता है उस मस्ती में। उस मस्ती की बस्ती में उन्हें तो बस फिर एक ही दिखाई पड़ता है। वही है वृक्षों में, पहाड़ों में, पर्वतों में, पशुओं में, पक्षियों में। और जिसको एक ही परमात्मा का दर्शन होने लगे, वह मुक्त हुआ, उसको मोक्ष हुआ। उसने निर्वाण पाया। उसकी मंजिल आ गई।
मंजिल की शुरुआत--
भेख भगवंत के चरन को ध्याइकै,
ज्ञान की बात से नाहिं टरना।
मिलै लुटाइए तुरत कछु खाइए,
माया और मोह की ठौर मरना।।
दुक्ख औ सुक्ख फिरि दुष्ट और मित्र को,
एकसास दृष्टि इकभाव भरना।
दास पलटू कहै राम कहु बालके,
राम कहु राम कहु सहज तरना।।
राम का बोध हो जाए, मिल गई नाव। राम का बोध हो जाए, तर गए। उस बोध में ही
तर गए।
लेकिन कहीं झुकना सीखना पड़े! छोड़ो तर्कजाल। छोड़ो अहंकार की चालाकी भरी बातें। कहीं सरल-चित्त होकर झुक जाओ। बस उस झुकने में ही राज है। वहां से यात्रा शुरू होती है। तुम झुके कि परमात्मा के मिलने में देरी नहीं है।
जो मिटता है, वह उसे निश्चित पाता है।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
बारहवां प्रवचन

होश और बेहोशी के पार है समाधि

भगवान,
मुझे हिंदी तो बहुत आती नहीं, और कभी कुछ लिखा भी नहीं है, लेकिन जब से
आप आए हैं जिंदगी में, आप साथ कविता भी ले आए हैं। कल आपने कहा कि होश से रहना, चूक मत जाना। तो आप ही बताएं, अब क्या होगा! जब इतनी पिला दी, तो होश में आने को कहते हो!

बैठे हैं राहगुजर पे तेरी, सांस थाम के
मदहोश गिर गए हम तेरे जाम से
लड़खड़ाऊं उठ न सकूंगा, जो उठूं कभी
पहुंचेंगे जाने कैसे हबी तेरे धाम पे
रातो सहर की होश नहीं आए जाए कब
कुर्बान हुए जब हम तेरे नाम पे।
जब से खुला मैखाना तेरे इश्क का हसीं पीने चले दीवाने सभी, जिगर को थाम के। कैसे रंगीन दीवाने तेरा रंग है कुछ नया कि चल ही बसे दुनिया के काम से
महबूत तू बता तेरी क्या है अब रजा
दिल ही तो था गंवा के चले तेरे गांव से।
अब तू बता कि होश में आएं तो किसलिए
पाया खुदा भी पीता हुआ तेरे जाम से।

भगवान,
मैं तो अब वृद्ध हो गया हूं। क्या अभी भी संभव है कि समाधि को पा सकूं?

भगवान,
हमें तो परमात्मा की कोई अनुभूति नहीं। हमारे लिए तो आप ही भगवान हैं। और प्रश्न पूछने के बहाने जब भी हम अपने भाव आपके चरणों में निवेदित करते हैं--जैसे कि परसों मा वीणा ने पूछा था--तो आप जिस कुशलता से बाजू हट जाते हो और परमात्मा की ओर इशारा कर देते हो कि पूछने वाला भी चौंक जाता है! हम सोचते हैं कि हमारा सीधा निवेदन आपके चरणों में था और आप अंगुली उधर उठा देते हो। ऐसे वक्त ही हम इस पंक्ति का अर्थ और घना होकर समझ पाते हैं-- बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय।

पहला प्रश्नः भगवान, मुझे हिंदी तो बहुत आती नहीं, और कभी कुछ लिखा भी नहीं है, लेकिन जब से आप आए हैं जिंदगी में, आप साथ कविता भी ले आए हैं। कल आपने कहा कि होश से रहना, चूक मत जाना। तो आप ही बताएं, अब क्या होगा! जब इतनी पिला दी, तो होश में आने को कहते हो!

बैठे हैं राहगुजर पे तेरी, सांस थाम के
मदहोश गिर गए हम तेरे जाम से
लड़खड़ाऊं उठ न सकूंगा, जो उठूं कभी
पहुंचेंगे जाने कैसे हबी तेरे धाम पे
रातो सहर की होश नहीं आए जाए कब
कुर्बान हुए जब हम तेरे नाम पे।
जब से खुला मैखाना तेरे इश्क का हसीं पीने चले दीवाने सभी, जिगर को थाम के। कैसे रंगीन दीवाने तेरा रंग है कुछ नया कि चल ही बसे दुनिया के काम से
महबूत तू बता तेरी क्या है अब रजा

दिल ही तो था गंवा के चले तेरे गांव से।
अब तू बता कि होश में आएं तो किसलिए
पाया खुदा भी पीता हुआ तेरे जाम से।

अमृता! धर्म का पहला अवतरण हृदय में, काव्य की भांति ही होता है। एक गुनगुनाहट; एक नाद। इसीलिए उपनिषद, वेद, कुरान एक अपरिसीम काव्य से अभिभूत हैं। ऋषि का मौलिक अर्थ तो कवि ही होता था। ऋषि यानी वह, जिसने कविता केवल लिखी नहीं बल्कि देखी भी। काव्य का द्रष्टा। जिसने सौंदर्य को अनुमान ही नहीं किया, अनुभव भी किया।
धर्म की अनुभूति होती ही नहीं किसी और ढंग से।
धर्म बुद्धि नहीं है, हृदय है। बुद्धि तो भाषा समझती है तर्क की, हृदय तर्क की भाषा नहीं समझता। वहां तर्क की कोई गति नहीं है। वहां तर्क का तीर न कभी पहुंचा है न कभी पहुंचेगा। हृदय तो समझता है प्रेम को, प्रीति को।
प्रीति की तरंगें वहां तक पहुंच जाती हैं। तर्क तो पत्थरों की तरह बोझिल है, भारी है। उठ ही नहीं पाता। प्रेम में पंख हैं, प्रेम उड़ान भर लेता है। और काव्य हृदय में उठी प्रेम की पुलक के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। तर्क गद्य है, प्रेम पद्य है। तर्क बोलता है गणित की सुस्पष्ट भाषा, प्रेम बोलता है काव्य की रहस्य से भरपूर, शून्य में डूबी हुई, प्रेम में पगी हुई गुनगुनाहट, नाद। काव्य में भाषा दिखाई पड़ती है ऊपर-ऊपर, भीतर शून्य है। गद्य में केवल भाषा ही भाषा है, भीतर कुछ भी नहीं है। गद्य केवल वस्त्र ही वस्त्र--उघाड़ते जाओ, भीतर कुछ भी न पाओगे। गद्य तो ऐसा है जैसे खेत में खड़ा हुआ धोखे का आदमी। दूर से लगता आदमी जैसा; पास जाकर अगर अचकन उतारी और चूड़ीदार पाजामा खींचा तो कुछ भी न पाओगे। गांधी टोपी के नीचे सिर्फ काली हंडी। वह भी जो बेकार हो चुकी है, किसान के काम की नहीं रही। वैसा ही गद्य है। कामचलाऊ है। लोक-व्यवहार का है। बाजार में उपयोगी है। मनुष्य और मनुष्य के बीच संवाद के लिए जरूरी है। संवाद लेकिन होता कहां? विवाद ही होता है।
पद्य वस्त्रों के भीतर छिपी हुई निर्वस्त्र आत्मा है। वस्त्र उतारोगे भाषा के, तो काव्य से पहचान होगी। और वह पहचान द्वार है परमात्मा का।
ठीक हुआ अमृता, कि मेरे आने के साथ तेरे जीवन में काव्य भी आया। अगर मैं आऊं और काव्य न आए, तो मैं आया ही नहीं। काव्य आ जाए और मैं न जाऊं तो भी मैं आ गया। असली चीज काव्य है। असली चीज नृत्य है। असली चीज उत्सव है। रसो वै सः। मैं तो संन्यासी की परिभाषा ही यही करता हूंः रसपूर्ण होगा वह। जब परमात्मा रस है तो उसको प्रेम करने वाला भी रस होगा। परमात्मा समझो कि सागर है, तो संन्यासी बूंद सही, मगर है तो उसी सागर की बूंद। और एक बूंद में सारा का सारा राज छिपा होता है, इसे याद रखना। अगर एक बूंद को हमने समझ लिया तो सब सागरों को समझ लिया। एक बूंद की पूरी कथा समझ में आ गई तो सागर की सारी कथा समझ में आ गई। बूंद संक्षिप्त सागर है।
बूंद में समाया है सागर, जैसे सागर में बूंद समायी है। वे दोनों अलग-अलग नहीं हैं। कबीर ने कहाः
हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराय।
बूंद समानी समुंद में सो कत हेरी जाय।।
हेरत हेरत हे सखी रह्या कबीर हेराय।
समुंद समाना बूंद में सोकत हेरी जाय।।
पहले कहाः बूंद सागर में समा गई, अब उसे कैसे निकालें? और फिर कहाः और
भी बड़ा चमत्कार हुआ है, इससे भी बड़ा चमत्कार हुआ है, सागर बूंद में समा गया; अब तो बूंद को कहां से खोजा जाए? जिस दिन परमात्मा में उसका खोजी, उसका प्रेमी समाता है, उसी क्षण, तत्क्षण परमात्मा भी प्रेमी में समा जाता है। और जब परमात्मा तुम पर बरसेगा, तो गाओगे नहीं, नाचोगे नहीं, उत्सव न मनाओगे? रसो वै सः की ध्वनि तुम्हारे भीतर न उठेगी? मस्त न हो जाओगे मस्ती में? उस मस्ती की अभिव्यक्ति ही काव्य है।

सभी कवि कवि नहीं हैं। जब तक कोई ऋषि न हो, तब तक कविता तो बस कला है।
जब कोई ऋषि हो जाए तो कविता जीवन है। तुम्हारी श्वास, तुम्हारी धड़कन।
मेरा संन्यासी ऋषि होने के मार्ग पर है। बीच में कविता का पड़ाव आएगा। वहां रुकना भी नहीं। क्योंकि बहुत कविता पर रुक जाते हैं। कविता प्रीतिकर है, सुंदर है, लुभावनी है, सपने जैसी है, मधुर है, पर और आगे जाना है। कविता पड़ाव है। जब तक ऋषि होना न घट जाए, जब तक सौंदर्य ओत-प्रोत न कर ले... फूल सुंदर दिखाई पड़ें तो कविता, जब कांटे भी सुंदर दिखाई पड़ने लगें तो ऋषि का जन्म हुआ। जीवन सुंदर दिखाई पड़े, कविता, जब मृत्यु भी अपूर्व सौंदर्य में प्रकट होने लगे तो ऋषि का जन्म हुआ। कविता पड़ाव है।
कवि का पड़ाव बीच में आएगा। प्रीतिकर है पड़ाव, ठहरना दो क्षण वहां, रात विश्राम करना, लेकिन याद रखनाः सुबह हुई और चल पड़ना है, वहां रुक नहीं जाना है। जब तक द्रष्टा न हो जाओ, जब तक तुम सौंदर्य को ही न देख लो--देखना भी कहना ठीक नहीं, पी ही न लो--पीना भी कहना ठीक नहीं, जब तक तुम सौंदर्य ही न हो जाओ--तब तक रुकना नहीं है, चलते जाना है। चरैवेति, चरैवेति। बुद्ध ने कहा है अपने भिक्षुओं सेः चलते ही चलो, चलते ही चलो; तब तक चलते रहो जब तक चलने वाला बचे। जब तक थोड़ा-सा भी मैं-भाव बचे, चलते रहो, चलते रहो। धीरे- धीरे जल जाएगा मैंः जिस दिन मैं न रहेगा, उस दिन परमात्मा है; उस दिन परम काव्य का अनुभव होगा।
ठीक हुआ अमृता, कि मेरा आना तेरी जिंदगी में काव्य का आगमन भी बन गया है। और बहुत कुछ होगा। आंखें तो सूखी थीं, गीली हो जाएंगी।... अभी कल ही तो तुझे विदा देते समय तेरी आंखों को गौर से देखा... अमृता ऐसे तो भारतीय है लेकिन रहती अमरीका में है। जाना है वापस उसे।... तेरी आंखों में टपकते हुए आंसू देखे, तेरी आर्द्र आंखें देखीं, वे आंसू आनंद के थे; विरह के भी और मिलन के भी। पीड़ा भी उनमें थी, प्यास भी उनमें थी, धन्यवाद, अनुग्रह का भाव भी उनमें था। अब तू केवल शरीर की तरह ही दूर जाएगी, अब आत्मा की तरफ से दूर जाने का कोई उपाय नहीं। और शरीर की दूरी कोई दूरी नहीं। दूरी तो बस आत्मा की होती है। लोगों के शरीर पास बैठे होते हैं और आत्माएं कोसों दूर।
शरीर कितने ही दूर हों, आत्माएं पास हों, सत्संग चलता रहेगा, रुकेगा नहीं, तू जहां रहेगी वहीं चलता रहेगा। कभी कोयल की पुकार में तुझे मेरी आवाज सुनाई पड़ने लगेगी; और कभी वृक्षों से गुजरती हुई हवा की ध्वनि और तू मुझे सुन पाएगी; और झरनों का कलकल नाद और आकाश में घिर गए मेघ और सुबह डूबा चांद और ऊगा सूरज--न मालूम कितने रूपों में यह घटने लगेगा! काव्य का जन्म हो जाए, आंख खुलने लगती। पदार्थ तिरोहित होने लगता है। पदार्थ में छिपे हुए अर्थ प्रकट होने लगते हैं। स्थूल विदा होने लगता है, सूक्ष्म उभरने लगता है। यह होगा। यह होना निश्चित है। यह तेरी आंखों में झांककर मैं तुझ से कहता हूं। यह आश्वासन है।
तूने पूछा, कल आपने कहा होश से रहना, चूक मत जाना। तो आप ही बताएं कि अब क्या होगा! जब इतनी पिला दी तो होश में आने को क्यों कहते हो? एक होश है जो सम्हल-सम्हल कर, बांध-बांध कर रखना पड़ता है। वह बहुत मूल्यवान नहीं है। उसकी बड़ी कीमत नहीं है। वह बौद्धिक ही है। एक और भी होश है जो नाचता है, शराबी की तरह डगमगाता है। एक और भी होश है जो बेहोशी के विपरीत नहीं है। जो इतना बड़ा है कि बेहोशी को भी पी जाता है और आत्मसात कर लेता है। मैं वही होश सिखाना चाहता हूं। अगर होश हो और उसमें बेहोशी की रसधार न बहे, मस्ती गुनगुनाती न हो, गीत न गाती हो, तो होश तुम्हें मरुस्थल बना देगा।
इस तरह की दुर्घटना घटी। जैन, बौद्ध साधकों के जीवन में ऐसी दुर्घटना
घट गई है। इतिहास उससे भलीभांति परिचित है। वह भूल दुबारा नहीं दोहरानी है। होश साधने की चेष्टा में उन्होंने इतने नियम, इतनी व्यवस्थाएं, इतनी मर्यादाएं निर्धारित कर लीं कि होश तो सधा लेकिन साथ ही वे मरुस्थल हो गए। सब हरियाली विदा हो गई। वसंत का आगमन बंद हो गया। सब पत्ते सूख गए और गिर गए। इसलिए तो जैनों और बौद्धों के पास उपनिषद जैसा काव्य नहीं है; कुरान जैसी आयतें नहीं हैं। कारण है। सूखा-सूखा सब। हिसाब-किताब। दो और दो चार जैसी साफ बात है। उलझाव नहीं है। सीधी और साफ बात है, दो टूक बात है। लेकिन सूखी लकड़ी जैसी। जिसमें पत्ते नहीं ऊगते और फूल भी नहीं लगते, मधु-

मक्खियां जिसके पास गुनगुन नहीं करतीं और तितलियां कभी पर नहीं फड़कातीं।
चांद ऊगे तो, सूरज ऊगे तो, सूखी लकड़ी सूखी ही रही आती है। न कभी चांद ऊगता है, न कभी चांदनी होती है, न कभी सूरज ऊगता, न दिन, न रात--सब ठहर गया। मरघट जैसा एक सन्नाटा हो गया।
जैन और बौद्ध परंपरा में यह दुर्घटना घटी।
शायद घटनी अनिवार्य थी। प्राथमिक अन्वेषक थे वे लोग। और उन्होंने देखा कि बेहोशी और होश साथ कैसे चलेंगे? भक्त की मस्ती और ध्यानी का होश एक-दूसरे के विपरीत खड़े हो गए। ध्यानी के होश ने भक्त की मस्ती की निंदा की। कहा कि यह भी राग है। कहा, यह भी मोह है, ममता है, प्रेम है। और प्रेम तो तोड़ना है, पूरी तरह तोड़ना है, तभी तो संसार से मुक्ति होगी। प्रेम से मुक्ति उनके लिए संसार से मुक्ति की पर्यायवाची हो गई। और उन्होंने तोड़ा। बड़ी मेहनत की। सारे संबंध तोड़ डाले। सारी जड़ें उखाड़ लीं अस्तित्व से। लेकिन सूख गए फिर; फिर वसंत न आया।
और भक्तों ने भी कोशिश की है। मस्ती तो रही, बेहोशी भी रही, उनकी आंखों में खुमार भी रहा, गीत भी उठे, लेकिन होश का दीया नहीं जला, होश की रोशनी नहीं हुई। तो भक्त, जैसे सूफी फकीर शराब की बात करते-करते धीरे-धीरे शराब ही पीने लगे! शराब की बात तो ठीक थी, शराब का प्रतीक भी ठीक था... शराब ठीक-ठीक इशारा है परमात्मा की तरफ मस्त होने का, मग्न होने का, मधुशाला ही मंदिर है भक्त के लिए, लेकिन यह प्रतीक जल्दी ही प्रतीक न रहा--हम प्रतीकों को पकड़ लेते हैं--फिर शराब ही पीने लगे लोग!
मेरे एक परिचित थे। ऐसी भूल में न पड़ते तो अभी भी जीवित होते और शायद भारत के श्रेष्ठतम कवियों में एक होते। केशव पाठक उनका नाम था। हिंदी में बहुत लोगों ने उमर खय्याम की रुबाइयों के अनुवाद किए हैं; बड़े-बड़े कवियों ने भी प्रयोग किए हैं--पंत ने, बच्चन ने--छोटे-छोटे कवियों ने भी प्रयत्न किए हैं--मैं समझता हूं कम से कम दो सौ अनुवाद उपलब्ध हैं--लेकिन केशव पाठक ने जैसा अनुवाद किया वैसा किसी ने भी नहीं किया। पंत और बच्चन को भी पीछे छोड़ दिया। केशव पाठक का अनुवाद उमर खय्याम की ठीक आत्मा को छू लेता है। अंग्रेजी में भी फिटजराल्ड का जो अनुवाद है, वह केशव पाठक से थोड़े पीछे रह जाता है। लेकिन केशव पाठक के साथ वही हुआ जो ध्यान-हीन आदमी के साथ हो सकता है। उमर खय्याम की रुबाइयों का अनुवाद करते-करते वे शराबी हो गए। वे इतना पीने लगे कि पीने के कारण ही मरे।
उमर खय्याम आशीर्वाद हो सकता था, अभिशाप हो गया।
और यह जानकर तुम चकित होओगे, उमर खय्याम ने कभी शराब पी ही नहीं। यद्यपि अब तो उमर खय्याम के नाम से शराबघरों के नाम हैं। उमर खय्याम समझा जाता है कि शराबियों का सरताज है। उसने कभी शराब छुई नहीं! वह किसी और ही शराब की बात कर रहा है। वह परमात्मा को पीने की बात कर रहा है। वह जब साकी की बात करता है तो वह परमात्मा की बात कर रहा है। और जब वह शराब की बात करता है तो परमात्मा से बहते हुए आनंद की बात करता है। रसो वै सः। वह उस रस की बात कर रहा है। रस का नाम ही शराब।
तो वहां भूल हुई। कुछ लोग सूख गए। और यहां भूल हुई कि कुछ लोगों ने समझा कि बस शराब पी ली तो पहुंच गए। शराब पीकर लड़खड़ाए तो क्या खाक लड़खड़ाए! कोई भी लड़खड़ाएगा पीएगा तो! बिना पिए लड़खड़ाए तो लड़खड़ाए। बिन पिए मस्त हुए-- तो पिए! तो तुमने कुछ अपूर्व अनुभव किया।
अमृता, मैं उसी पीने की तरफ इशारा कर रहा हूं। अंगूर की शराब नहीं, आत्मा में ढलती है जो, भीतर ही खिंचती है जो।
इसलिए मेरे संन्यासी को ध्यान का बोध चाहिए और भक्त की मस्ती चाहिए।
एक अभिनव प्रयोग हम कर रहे हैं, जो कभी नहीं किया गया। ध्यानी हुए, भक्त हुए। ध्यान सूख गए और उनके सूखने का परिणाम हुआ कि जहां-जहां उनकी छाया पड़ी वहां-वहां भी सब सूख गया। यह देश उनके कारण सूख गया। और भक्त हुए, जिनने आंसू बहाए, जिन्होंने पैरों में घूंघर बांधे, जिन्होंने शराब पी और नाचे। जहां-जहां वे नाचे वहां-वहां हरियाली तो रही, बस लेकिन हरियाली ही रही, उसमें आत्मा नहीं, उसमें आत्मबोध नहीं। मैं प्रयोग कर रहा हूं यहां

कि किसी तरह महावीर और मीरा का मिलन हो जाए। कि किसी तरह महावीर नाच सकें और किसी तरह मीरा ध्यान कर सके।
इसलिए अड़चन तो होगी।
मीरा के मानने वाले भी मुझसे नाराज होंगे, महावीर के मानने वाले भी मुझसे नाराज होंगे। उमर खय्याम को व बुद्ध को मिलाने की कोशिश खतरनाक कोशिश है। बुद्ध को मानने वाले कहेंगे कि यह नाजायज प्रयास है; उमर खय्याम खय्याम को कहां बुद्ध में लाते हो? ... मैं बुद्ध पर बोल रहा था तो मैंने बहुत सी शराब के सम्मान में लिखी गई कविताओं का उद्धरण दिया है, तो योग चिन्मय ने पूछा था प्रश्न, कि आप बुद्ध के साथ और शराब की इन कविताओं को क्यों उदधृत कर रहे हैं? बुद्ध से इनका क्या लेना-देना? और चिन्मय का प्रश्न ठीक है, सम्यक है। नहीं रहा लेना-देना, अतीत में नहीं रहा, भविष्य में लेना-देना करना है, सेतु बनाना है। इसलिए भक्तों पर बोलता हूं और ध्यान को समझाता हूं, ध्यानियों पर बोलता हूं और प्रेम को समझाता हूं। हिसाब-किताब से जीने वालों को लगता है मैं सब गड्ड-बड्ड किए दे रहा हूं। नहीं, यह समन्वय का एक प्रयोग हो रहा है। क्योंकि दोनों प्रयोग अधूरे थे और दोनों प्रयोग हार गए। और दोनों प्रयोग पृथ्वी को स्वर्ग नहीं बना पाए। अमृता, इसलिए मैं जिस होश की बात कर रहा हूं, वह बेहोशी के विपरीत नहीं है। मैं जिस बेहोशी की बात कर रहा हूं, वह होश के विपरीत नहीं है। भाषा में तो विपरीत मालूम होते हैं--मैं क्या करूं? भाषा मैं बनाता नहीं। भाषा तैयार है। भाषा सदियां बना गई हैं। भाषा पर अतीत की छाप है। अब दो ही उपाय हैं। या तो मैं उसी भाषा का उपयोग करूं जिसे तुम समझते हो, तो भी कहां समझ पाते हो? और या फिर नई भाषा गढूं, जो कि तुम बिल्कुल ही नहीं समझ पाओगे। अभी कम से कम समझने का भ्रम होता है। पुराने परिचित शब्द सुनते हो तो कम-से-कम भ्रांति तो होती है कि समझे। लेकिन अगर मैं नई भाषा ही गढूं, तो कौन समझेगा?
ऐसे प्रयोग हुए हैं।
सूफी फकीर हुआ, जब्बार। अंग्रेजी में शब्द हैः जिबरिस, वह शब्द जब्बार से बना। जब्बार पहुंचा हुआ संत, सिद्धपुरुष; उसने सोचा कि पुरानी भाषा का उपयोग करो, लोग गलती समझ लेते हैं; हम कुछ कहते हैं, वे कुछ समझ लेते हैं। जैसे कि बेहोशी की बात करो तो वे समझते हैं--होश के विपरीत। होश की बात करो, वे समझते हैं--बेहोशी के विपरीत। तो जब्बार ने कहा कि हम नई भाषा ही गढ़ेंगे। तो उसने नई भाषा गढ़ ली। उसकी भाषा कौन समझे? उसकी भाषा को लोग पागलपन समझे। उसकी भाषा को वही समझता था। खुद के भीतर गढ़ी... तुम भी गढ़ सकते हो, कोई भी गढ़ सकता है; छोटे-छोटे बच्चे भी कभी-कभी प्रयोग करते हैं। चूंकि उसकी भाषा को कोई नहीं समझता था, इसलिए अंग्रेजी में बकवास को जिबरिस कहते हैं। जिसको कोई समझ न सके। जैसे छोटे बच्चे अल्ल-बल्ल बकते हैं। या सन्निपात में लोग बकते हैं। अदभुत सिद्धपुरुष जब्बार--और उसकी भाषा का यह परिणाम हुआ!
तो मुझे बोलनी तो वही भाषा पड़ेगी जो तुम समझते हो। लेकिन तब एक ही उपाय है कि तुम्हारी ही भाषा का उपयोग करूं और इस ढंग से करूं कि उसमें नये अर्थ लगा दूं, नई अर्थ की कलमें लगा दूं।
दो आदमी आपस में लड़ रहे थे। दोनों गाली-गलौज करने लगे। पहला बोला, साले, मैं एक मुक्के में तेरे बत्तीस दांत बाहर न कर दूंगा। दूसरा गुस्से से बोला, मैं तेरे चौंसठ दांत बाहर कर दूंगा। मुझे क्या समझता है? तीसरा आदमी जो इन दोनों का झगड़ा देख रहा था, बोला, दांत तो बत्तीस ही होते हैं, तुम चौंसठ दांत कैसे बाहर निकालोगे? दूसरा आदमी बोला कि मुझे पता था कि तुम बीच में जरूर बोलोगे, इसलिए बत्तीस दांत इस आदमी के और बत्तीस दांत तुम्हारे।
लोगों के अपने समझने के ढंग हैं। लोगों की अपनी व्यवस्थाएं हैं।
एक कहानी और कल मैंने देखी--
मुक्केबाजी की प्रतियोगिता चल रही थी, बड़ा मुकाबला था; दोनों मुक्केबाज एक-दूसरे पर वार किए जा रहे थे, दर्शक स्तब्ध होकर यह जंगी मुकाबला देख रहे थे। सभी शांत थे। मगर मुल्ला नसरुद्दीन रह-रह कर बीच-बीच

में आवाज लगा रहा थाः मार एक मुक्का मुंह में! निकाल दे पूरे बत्तीस दांत बाहर! मार एक मुक्का मुंह में, झाड़ दे पूरी बत्तीसी! वह शांत ही न हो रहा था। आखिर एक व्यक्ति से न रहा गया, उसने कहा, भाई साहब, क्या आप भी कोई बड़े पहलवान हैं, जो इस प्रकार की जोश की बातें कर रहे हैं कि मार एक मुक्का मुंह में, कर दे पूरे बत्तीस दांत बाहर! मुल्ला बोला, जी नहीं, मैं कोई पहलवान-वहलवान नहीं, मैं तो दांतों का डाक्टर हूं और यह मेरे धंधे का सवाल है।
लोग अपने ढंग से ही समझेंगे। अपने ही न्यस्त स्वार्थ हैं, अपने पक्षपात हैं। अपनी पुरानी धारणाएं हैं, अपने धंधे हैं।
लेकिन मैं अर्थों को नये शब्द दे रहा हूं; शब्दों को नये अर्थ दे रहा हूं। तुम्हें मेरे साथ बहुत सोच-समझ कर चलना होगा। तुम जल्दी निष्कर्ष न लेना। जल्दी निष्कर्ष में भूल-चूक होने का डर है।
अमृता! जब मैं कहता हूंः होश, तो उस होश में बेहोशी की रसधार बहनी है। होश क्या जिसमें बेहोश होने की क्षमता न हो! होश क्या जो नाच न सके! होश क्या जो मदमस्त न हो सके! होश क्या जो होली में गुलाल न उड़ा सके, दिवाली में दीए न जला सके, पैरों में घूंघर न बोध सके, बांसुरी न बजा सके! होश क्या जिसमें खुमारी न हो! होश क्या जो शराब को मात न कर दे! और बेहोशी क्या जिसमें होश का दीया न जलता हो, होश का फूल न खिला हो, होश की सुगंध न उठती हो! बेहोशी क्या जिसमें होश का माधुर्य और प्रसाद न हो! ये दोनों जहां मिलते हैं, वहां एक अपूर्व संगम पैदा होता है। उस संगम को ही मैं संन्यास कहता हूं।
अमृता, तू ऐसी ही संन्यासिन हो! ऐसे ही प्रत्येक संन्यासी को होना है।
तू कहती है, जब इतनी पिला दी तो होश में आने को कहते हो! इसीलिए तो कहता हूं, इतनी पिला दी इसीलिए कहता हूं, कि अब कहीं बेहोशी ही न रह जाए! नहीं तो आधा हो गया काम, आधे का क्या होगा? इसलिए विपस्सना जो कर रहा है, उसे एक न एक दिन कहता हूं कि जाओ और सूफी नृत्य में सम्मिलित हो जाओ। जो सूफी नृत्य कर रहा है उसे एक न एक दिन कहता हूं कि अब विपस्सना करो।
तुम जानकर हैरान होओगे कि इस परिवार में, संन्यासियों के इस परिवार में सूफी नृत्य को जो संन्यासिन मार्गदर्शन देती है, वह मौलिक रूप से विपस्सना के योग्य है। तात्विक रूप से उसका व्यक्तित्व विपस्सना के योग्य है। अनिता। और जो विपस्सना में मार्गदर्शन करती है, प्रदीपा, उसका व्यक्तित्व सूफियों का है। और दोनों चकित कि उनको मैंने क्यों यह काम दिया है? विपस्सना दिया है उसको मार्गदर्शन करने को, जिसका मौलिक रूप सूफी का है। और सूफी नृत्य दिया है जिसका रस विपस्सना की तरफ है। जानकर। क्योंकि इन दोनों को कहीं जोड़ना है। सूफियों को विपस्सना देनी है, बौद्धों को सूफियों का रस देना है। तुम्हारी यह क्षमता होनी चाहिए कि तुम्हारे भीतर विरोधाभास आकर मिल जाएं, एक हो जाएं, अपना विरोधाभास खो दें। तुम्हारी यह क्षमता होनी चाहिए कि शांत बैठो तो बुद्ध की शांति और नाचो तो मीरा का नृत्य। न तो मीरा के नृत्य में कंजूसी करनी पड़े बुद्ध के कारण, न बुद्ध के मौन में कंजूसी करनी पड़े मीरा के कारण। जब तुम इन दो अतियों के बीच सुगमता से डोल सको, जैसे घड़ी का पेंडुलम डोलता है, जैसे सावन में झूले डोलते हैं, जब इन दो अतियों के बीच तुम सावन का झूला बन जाओ, तब जानना कि तुम्हारे जीवन में पूर्ण मनुष्य का आविर्भाव हुआ।
अब तक पूर्ण मनुष्य जमीन पर पैदा नहीं हो सका है। अभी तक आंशिक मनुष्य पैदा हुए। क्योंकि हमने अंश को बहुत मूल्य दे दिया और अंश को ही पूर्ण मान लिया। अंश ही इतने बड़े हैं कि लोग उनसे ही तृप्त हो जाते हैं। मैं तुम्हें ऐसी अतृप्ति देना चाहता हूं कि तुम अंश से नहीं, अंशी से ही तृप्त होना। पूर्ण को पाए बिना नहीं रुकना है, चले चलो, चले चलो... । तुम बेहोश होने लगोगे तो झकझोरूंगा और कहूंगा कि होश में आओ! और तुम ज्यादा होश में आने लगोगे तो धक्का दूंगा और कहूंगा कि जरा डोलो, नाचो! एकदम होश में ही आकार सूख मत जाओ! जरा कल्पना करो इन दोनों के मध्य नाचते हुए शून्य की, गीत गाते हुए मौन की। तब तुम्हारे भीतर परमात्मा अपना सारा रस और सारी ज्योति उड़ेल देगा। तब उसका रस ज्योतिर्मय होगा।

तूने पूछाः
बैठे हैं राहगुजर पे तेरी, सांस थाम के
मदहोश गिर गए हम तेरे जाम से
यह गिर जाना नहीं है! यह गिर जाना उठ जाना है!
लड़खड़ाऊं उठ न सकूं, जो उठूं कभी
पहुंचेंगे जाने कैसे हबी तेरे धाम पे
जो गिर गए मस्ती में, होश में; जो रुक गए मस्ती में, होश में; जो ठहर गए मस्ती में, होश में, पहुंच गए प्यारे के द्वार पर! अब चलना कहां? उठना कहां? परमात्मा दूर नहीं है, तुम जागरूक भाव से, मौन भाव से यहीं नाचो, परमात्मा यहीं है, अभी है। परमात्मा कहीं और नहीं है, तुम जहां हो वहीं है। न काशी जाओ, न काबा। नासमझ जाते हैं काशी और काबा। समझदारों के पास काबा और काशी आ जाते हैं।
सूफी फकीर बायजीद बिस्तामी ने तीन बार काबा की यात्रा की। लोग सोचते
थे कि शायद अब चौथी बार भी करेगा। लेकिन वर्षों बीत गए और बायजीद ने बात ही न उठाई। उसके भक्तों में कई दफा सवाल उठा कि अब कब होगी चौथी यात्रा? क्योंकि जितनी यात्रा, उतना पुण्य। आखिर एक दिन भक्तों से न रहा गया--कई नये भक्त थे जो पुरानी यात्राओं में सम्मिलित भी नहीं हुए थे, उन्होंने कहाः हमारा भी कुछ ख्याल करें; क्या आप हज को भूल ही गए; काबा की अब याद ही नहीं करते? पहले तो तीन यात्राएं र्की, अब क्या हुआ? और बायजीद कोई बहुत ज्यादा दूर नहीं रहता था काबा से, इसलिए यात्रा आसान थी, यात्रा कभी भी की जा सकती थी। बायजीद ने कहा, अब तुमने पूछ ही लिया तो मुझे सच कहना ही पड़ेगा। पहली दफा गया तो काबा दिखाई पड़ा। दूसरी बार गया तो काबा का मालिक दिखाई पड़ा। और तीसरी बार गया तो कोई भी दिखाई नहीं पड़ा। न काबा, न काबा का मालिक। शून्य, निराकार। तब से तो मैं जहां हूं, वहीं निराकार है। तब से तो मैं जहां हूं, वहीं काबा है, वहीं काबा का मालिक है।
एक और कहानी बायजीद के संबंध में प्रसिद्ध है--
बैठा है एक वृक्ष के नीचे और एक आदमी काबा की यात्रा पर जा रहा है-- जिंदगी भर इकट्ठा किया है पैसा कि काबा की यात्रा करनी है। गरीब आदमी है, बामुश्किल कुछ पैसे इकट्ठे करके चल पड़ा है। थक गया तो वह भी वृक्ष के नीचे विश्राम करने लगा--धूप घनी है, रेगिस्तानी रास्ता है। बायजीद वहां बैठा हुआ है। उस यात्री ने पूछा कि आप भी विश्राम कर रहे हैं, शायद काबा जा रहे होंगे! बायजीद हंसने लगा, उसने कहा, क्या तुम काबा जा रहे हो? नाहक। मैं तीन दफे हो आया, अब तुम्हें परेशान होने की जरूरत नहीं; मैं तुमसे कहे देता हूं कि पहली दफा गया, काबा देखा; दूसरी दफा गया, काबा का मालिक देखा; तीसरी दफा गया, कुछ भी नहीं देखा; सन्नाटा, शून्य। तुम्हें जाने की जरूरत नहीं है। तुम तो मेरे तीन चक्कर लगा लो और घर वापिस जाओ। हज हो गई। और पैसे निकालो! फिजूल खर्चा करोगे; फकीर के काम आ जाएंगे।
बायजीद का यह ढंग और जिस ढंग से उसने कहा कि पैसे निकालो, वह आदमी न रोक सका अपने को, पासे निकालने पड़े। कुछ लोग होते हैं जो कहें कि निकालो पैसे! तो क्या करोगे? जैसे कि अमृता, मैं तुझसे कहूंः निकाल पैसे! तो क्या उपाय है? और तू जा रही हो काबा या काशी की यात्रा पर और मैं कहूंः लगा तीन चक्कर मेरे, बात खतम, अब कहीं जाने की जरूरत नहीं! उस आदमी को भी बात जंची, यह आदमी जिस प्रेम और जिस आनंद में डूबा हुआ दिखाई पड़ा, उसकी आंखों में झांका, इसके चरणों पर रख दिए, तीन चक्कर लगाए, घर वापिस लौट गया। और कहते हैं कि वह आदमी इसके तीन चक्कर लगाने में ही परम ज्ञान को उपलब्ध हो गया। परमात्मा कहीं दूर थोड़े ही है, उठना थोड़े ही है!
लड़खड़ाऊं उठ न सकूं, जो उठूं कभी
पहुंचेंगे जाने कैसे हबी तेरे धाम पे
उसका धाम तो यहां है--तुम जहां हो। उसी में तो तुम्हारे हृदय की धड़कन है, उसी में तो तुम्हारी श्वासें चल रही हैं, वही तो तुम्हारे प्राणों का प्राण है।
और पूछा तूने--
महबूब तू बता तेरी क्या है अब रजा

पैसे निकाल! तीन चक्कर लगा! और क्या?
अब तू बता कि होश में आएं तो किसलिए
पाया खुदा भी पीता हुआ तेरे जाम से।
अब जरूरत ही नहीं है। उस होश की मैं बात ही नहीं कर रहा हूं। अब तो किसी और होश की बात कर रहा हूं जो बेहोशी के भी पार है; जो बेहोशी से भी ज्यादा बेहोश है। अब तो मैं उस मस्ती की बात कर रहा हूं जिस मस्ती से नीचे गिरना होता ही नहीं, ऊपर ही चढ़ना होता है। और-और मंजिलें हैं! लेकिन वे सब अब आंतरिक हैं।
संन्यस्त हो जाने के बाद यात्रा आंतरिक है, अंतर्यात्रा है। और पैसे
की चिंता में मत पड़ना, मुझे कोई जरूरत नहीं है! और मेरे तीन चक्कर भी लगाने की जरूरत नहीं है। बायजीद ने भी नाहक मेहनत करवाई। इतना ही कह देता कि मेरी आंख में झांक ले, बात हो जाती! इतना ही कह देता, मेरे पास बैठ जा, बात हो जाती।
इस सत्संग में डूबो, लड़खड़ाओ, गाओ, मस्त हो जाओ और आएगा एक होश। और ऐसा होश नहीं जो मरुस्थल का होता है। ऐसा होश जहां फूल खिलते हैं, पक्षी गीत गाते हैं; जहां कमल मुस्कुराते हैं। होश ऐसा जिसमें बेहोशी का काव्य होगा, बेहोशी ऐसी जिसमें होश का दीया जले। ये दोनों बातें एक साथ हो सकती हैं। और अमृता, कुछ हो रहा है! अगर चलती रही इसी राह पर, जो राह मिल गई है, जो राह तेरे हाथ आ गई है, तो पहुंचना सुनिश्चित है। एक बात पक्की है कि अमरीका लौटकर तुझे यह न कहना पड़ेगा--
दूर से आए थे साकी सुन के मयखाने को हम
बस तरसते ही चले अफसोस! पैमाने को हम।
नहीं, तुझे ऐसा नहीं कहना पड़ेगा। तू तरसती नहीं जा रही है, तू पीकर जा रही है। हालांकि पीने से और प्यास बढ़ती है और एक नई तड़प पैदा होती है, वह दूसरी बात। एक प्यास तो है बिना-पीए आदमी की और एक प्यास है जिसने पिया, उसकी।
दूर से आए थे साकी सुन के मयखाने को हम
बस तरसते ही चले अफसोस! पैमाने को हम!
मय भी है, मीना भी है, सागर भी है, साकी नहीं
दिल में आता है, लगा दें आग मयखाने को हम।
हमको फंसना था कफस में, क्या गिला सय्याद का
बस तरसते ही चले हैं आब और दाने को हम।
बाग में लगता नहीं, सहरा से घबराता है दिल
अब कहां ले जा के बैठें, ऐसे दीवाने को हम।
क्या हुई तकसीर हमसे तू बतादे ऐ नजीर
ताकि शादी-मर्ग समझें, ऐसे मर जाने को हम।
नहीं, ऐसा तुझे न कहना पड़ेगा। तू घूंट लेकर जा रही है। तू धन्यभागी है। बहुत लोग आते हैं, बहुत थोड़े से लोग स्वाद ले पाते हैं। बहुत लोग सुनते हैं, बहुत थोड़े से लोग सुन पाते हैं। क्योंकि सुनने के लिए गर्दन को तो काट कर अलग ही रख देना पड़ता है, सिर को तो अलग ही कर देना होता है। हृदय से ही सुना जा सकता है। ऐसा ही तूने सुना। स्वाद तुझे लगा है, यह बढ़ता जाएगा, यह बढ़ता रहेगा। यह आब बुझने वाली नहीं है। तू आनंद विभोर जा, कृतज्ञभाव से जा। और तू जहां भी रहेगी, मैं तुझ पर बरसता ही रहूंगा। साकी से अब मिलना हो गया है, अब साकी से बिछुड़ना नहीं हो सकता। इस रास्ते पर मिलन ही है, विरह नहीं है। विरह भी बस मिलन की एक तैयारी है, एक सीढ़ी है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, मैं तो अब वृद्ध हो गया हूं। क्या अभी भी संभव
है कि समाधि को पा सकूं?

रामकृष्ण! समाधि का कोई संबंध समय से नहीं है। समयातीत है समाधि। देह बच्चे की है कि जवान की कि बूढ़े की, आप्रसांगिक है, आत्मा तो सदा वही की वही है। बच्चे के पास भी वही, जवान के पास भी वही, बूढ़े के पास भी वही। आत्मा की कोई उम्र नहीं होती। आत्मा शाश्वत है। उसकी उम्र कैसे हो सकती है? न उसका

कोई जन्म है और न कोई मृत्यु, तो कैसा बुढ़ापा और कैसी जवानी! इसीलिए तो एक चौंकाने वाली बात अनुभव होती है--जरा आंख बंद करके सोचो कि मेरे भीतर की उम्र कितनी है? और तुम बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे, कुछ तय नहीं होगा। भीतर की कोई उम्र होती ही नहीं, उम्र बाहर ही बाहर की होती है। उम्र वस्त्रों की होती है, तुम्हारी नहीं। देह बस वस्त्र मात्र है।
इसलिए चिंतित मत होओ कि अब मैं बूढ़ा हो गया तो समाधि को पा सकूंगा या नहीं? संभावना तो इसकी है कि तुम पा सकोगे। जवानी में तो बड़े तूफान होते हैं। बुढ़ापे में तो तूफान धीरे-धीरे अपने आप शांत हो गए होते हैं। तूफान शांत हो गए हैं, इसीलिए तो तुम्हारे मन में संन्यास का भाव जगा। तूफानों से ऊब गए हो, बहुत देख लिए, जो देखना था जिंदगी में सब देख लिया, अब देखने को बचा भी क्या है, अब तो देखने को सिर्फ परमात्मा बचा है, अब तो आंख एकाग्र होकर परमात्मा की तरफ चल सकती है। हर परिस्थिति के लाभ हैं, हर परिस्थिति की हानियां हैं--याद रखना।
समझदार आदमी हर परिस्थिति से लाभ उठा लेता है, नासमझ हर परिस्थिति से हानि उठा लेता है।
जवानी का एक लाभ हैः ऊर्जा। अपार ऊर्जा। गहन श्रम करने की सामर्थ्य। आकाश छूने की आकांक्षा। सपने देखने का साहस, दुस्साहस। वह जवानी का लाभ है। अगर उस तरंग पर चढ़ जाओ तो समाधि तक पहुंच जाओ। लेकिन कितने जवान उसका लाभ उठा पाते हैं? चढ़ते तो हैं तरंग पर, लेकिन वह तरंग उन्हें बाजार की तरफ ले जाती है। धन की तरफ, पद की तरफ, प्रतिष्ठा की तरफ। वह तरंग उन्हें राजनीति में ले जाती है। वह तरंग उन्हें क्षुद्र और क्षणभंगुर में ले जाती है। ऊर्जा तो है, लेकिन मटकी फूटी-फूटी। छेदों से सब ऊर्जा बह जाती है।
चार दिन को हो भले ही, आज तो मुझमें जवा,
आज सांसों में प्रभंजन
आज आहों में बवंडर
आज अंतर में हिलोरें
आज आंखों में समुंदर
दूर हो, सम्मुख न आओ, यह प्रलय की ही निशानी, आज तो मुझमें जवानी

सिंधुमंथन-सा हृदय में
गिर रही है गाज ऐसी
इस प्रहर में, इस घड़ी में
मान कैसा, लाज कैसी
आज तो दो एक होंगे, अब कहां अपनी-बिरानी,
आज तो मुझमें जवानी

सुधि न तन-मन की मुझे कुछ
बढ़ रहा हूं भुज पसारे
चल रहा हूं, चल रहे हैं
जिस तरह रवि, शशि, सितारे
और पहुंचूंगा कहां पर? यह भविष्यत की कहानी, आज तो मुझमें जवानी।

आज दो लोचन किसी के
दे रहे मुझको निमंत्रण
आज यौवन पर, हृदय पर
है कठिन करना नियंत्रण
आज सारा तर्क भूला, आज सारा ज्ञान पानी, आज तो मुझमें जवानी।

आज तो इतनी पीए हूं

डगमगाते पांव मेरे
हर डगर पर, हर कदम पर
बिछ गए हैं भाव मेरे
एक मैं हूं, दूसरी तुम, तीसरी आशा दीवानी, आज तो मुझमें जवानी।

जीर्ण यह तरणी तुम्हारी
क्या मुझे देगी सहारा
हाय, यौवन-ज्वार में है
सूझता किसको किनारा?
तोड़ दो यह डांड मांझी, फोड़ दो नौका पुरानी,
आज तो मुझमें जवानी।
युवावस्था का एक सौभाग्य है। मगर सौ में से शायद एकाध ही उसे सौभाग्य बना पाता है, निन्यानबे तो दुर्भाग्य बना लेते हैं।
जीर्ण यह तरणी तुम्हारी
क्या मुझे देगी सहारा
हाय, यौवन-ज्वार में है
सूझता किसको किनारा
तोड़ दो यह दांड़ मांझी, फोड़ दो नौका पुरानी,
आज तो मुझमें जवानी।
जिंदगी विक्षिप्त हो जाती है जवानी में। लोग पागल की तरह जीते हैं। होश खोकर जीते हैं। सोचते हैं, चार दिन की जवानी है; आज है, कल तो नहीं होगी, कर लें जो करना है, भोग लें जो भोगना है; पी लें, पिला लें; जी लें, जिला लें, फिर तो मौत है। तो लोग एक त्वरा से जीते हैं--मगर जीते क्या हैं, सिर्फ जीवन गंवाते हैं! हां, कोई बुद्ध ठीक युवावस्था में समाधि की तरफ चल पड़ता है। बस, लेकिन कोई बुद्ध, कभी-कभी; अंगुलियों पर गिने जा सकें, ऐसे लोग इतिहास में इतने कम हुए हैं जिन्होंने युवावस्था के ज्वार का उपयोग कर लिया, जिन्होंने युवावस्था की ऊर्जा को परमात्मा के चरणों में समर्पित कर दिया।
तब तो बड़ा अदभुत है, क्योंकि तुम्हारे पास शक्ति होती। शक्ति से कुछ
भी हो सकता है। विनाश हो सकता है, सृजन हो सकता है।
ऐसे ही बुढ़ापे के भी लाभ हैं और हानियां हैं। हानि है, क्योंकि देह कमजोर हो गई। तो तुम उदास बैठ जाओ, हताश बैठ जाओ, क्योंकि अब तो मौत ही होनी है और क्या होना है, तो तुम मरने के पहले मरे-मरे हो जाओ, ये हानि है। कि तुम देह के साथ इतना तादात्म्य कर लो कि देह की शक्ति होती क्षीण, समझो कि मेरी ही जीवन-ऊर्जा क्षीण हो रही है, कि मैं ही मर रहा हूं। और लाभ भी हैं बुढ़ापे के। जिंदगी देख चुके, तूफान देख चुके, आंधियां देख चुके--सब देख लिया, सब व्यर्थ पाया--अब एक शांति अपने आप सघन होने लगी। तूफान जा चुका, तूफान के बाद की शांति सघन होने लगी। संध्या आ गई, दोपहरी की धूप कट गई, अब सांझ की शीतलता आने लगी; इसका उपयोग कर लो तो यही शीतलता, यही शांति समाधि का द्वार बन जाए।
नज्म-से दिन
गजल-सी रातें
कहां हैं? अब!

कहां है रंगीन अगवानी
बंद है
ग्यारह बजे के बाद जैसे
नलों में पानी
कहकहों-सी
मस्त बरसातें
कहां हैं? अब!

खा गया यह वक्त भूखा
फूल-पत्ती को
पास का अलगाव
घर की भरी खत्ती को

सरल शब्दों में
तरल बातें
कहां हैं? अब!

नज्म-से दिन
गजल-सी रातें
कहां हैं? अब!
सब बीत गया। बाढ़ आई और गई। बाढ़ सब ले गई, अब बचा भी क्या है? इस क्षण में परमात्मा की तरफ मुड़ जाना एकदम आसान है। क्योंकि संसार का कोई लगा अब सार्थक नहीं है। देख तो लिया! जो छुआ, वही मिट्टी हो गया। जहां गए, वहीं अंधकार पाया। जो पाया, वही व्यर्थ था। जब तक नहीं पाया तब तक सार्थक मालूम पड़ा।
दुनिया जिसे कहते हैं,
जादू का खिलौना है।
मिल जो तो मिट्टी है,
खो जाए तो सोना है।
जो भी मिला, मिट्टी हो गया। और जो भी नहीं मिला, उसमें आशा अटकी रही, आंखें अटकी रहीं। मगर इतना पाने और गंवाने के बाद समझ में नहीं आता कि दूर के ढोल सुहावने! मृग-मरीचिकाएं हैं। इतनी भागदौड़ के बाद दिखाई नहीं पड़ता-- कस्तूरी कुंडल बसै! कि अपने ही कुंडल में, कि कहीं अपने ही भीतर छिपा है रहस्य और हम बाहर दौड़ते-दौड़ते व्यर्थ थक गए हैं!
जरूर अगर बाहर दौड़ना हो तो बुढ़ापा मुश्किल देगा। लेकिन बाहर दौड़ना नहीं है। बाहर क्या, दौड़ना ही नहीं है! समाधि तो रुक जाने का नाम है, ठहर जाने का नाम है, थिर हो जाने का नाम है। पड़े-पड़े समाधि हो जाएगी। बैठे-बैठे समाधि हो जाएगी। शरीर दौड़ कर थक चुका है, अब मन को भी कह दो कि तू भी थक! अब तू भी रुक! अब शरीर और मन दोनों की दौड़ को जाने दो। घिर जाए सन्नाटा! हो जाओ शून्य! रामकृष्ण, समाधि घट जाएगी। समाधि स्वभाव है। चुप होते ही स्वभाव का अनुभव होने लगता है। शोरगुल बुद्धि का, विचार का बंद होते ही स्वभाव की अनुभूति होने लगती है।
फिर जवानी और बुढ़ापा ख्याल की बातें हैं। ऐसे जवान हैं तो जवानी में बूढ़े हैं और ऐसे बूढ़े हैं जो बुढ़ापे में जवान हैं। जवानी और बुढ़ापा शरीर की कम, मन की ज्यादा अवस्थाएं हैं।
बुढ़ापे
या जवानी के लिए
अंगुली के पोरों पर
आयु के
बरसों को,
सिर के
श्वेत केशों को,
चेहरे की झुर्रियों को,
या मुंह के
गिरे दांतों को
मत गिनो
यौवन का गणित
ऐसे नहीं गिना जाता

जवानी
और बुढ़ापा

तन का नहीं,
मन का है
और मन का गणित
ऐसे नहीं गिना जाता
और अगर समाधि पाने की आतुरता अभी शेष है तो भीतर तुम युवा हो। भीतर तो तुम सदा युवा हो। इसलिए तुमने गौर नहीं किया, हमने महावीर की, बुद्ध की, कृष्ण की, राम की, किसी की भी बुढ़ापे की प्रतिमा नहीं बनाई? क्या तुम सोचते हो ये लोग बूढ़े नहीं हुए? क्या तुम सोचते हो ये सब लोग जवान ही मर गए? बुद्ध तो अस्सी साल के होकर मरे। जरूर जराजीर्ण हो गए होंगे। महावीर भी अस्सी के पार होकर मरे। जरूर जराजीर्ण हो गए होंगे--नहीं तो मरते ही कैसे? आखिर मरने के पहले बुढ़ापा अनिवार्य कदम है। कृष्ण भी अस्सी के बाद मरे। लेकिन हमने इनकी सबकी प्रतिमाएं बनाई हैं युवावस्था की। कारण है। गहरा कारण है। काव्य है। प्रतीक है। बड़ा सूचक है। हम यह कह रहे हैं कि बुद्ध, महावीर, कृष्ण, राम जैसे लोग शरीर से ही बूढ़े होते हैं, भीतर से बूढ़े नहीं होते। उन्हें तो भीतर का शाश्वत यौवन अनुभव हो गया है। उन्होंने तो भीतर की ऊर्जा से, नित-नवीन होती ऊर्जा से परिचय बांध लिया है। उनका गठबंधन तो वर्तमान से हो गया है। और वर्तमान सदा युवा है। वे समय के पार हो गए हैं। और समय के पार सब कुछ सदा ताजा है। कभी बासा नहीं होता। उस ताजगी की खबर देने के लिए बुद्ध को, कृष्ण को, राम को हमने युवा निरूपित किया है। हमने उनकी प्रतिमाएं युवावस्था की बनाई हैं।
कितने मंदिर हैं महावीर के! लेकिन सारी प्रतिमाएं युवावस्था की। ऐसे
ये रहे होंगे, ऐसा नहीं है। मरते वक्त बूढ़े हुए होंगे। नहीं पकाए होंगे बाल धूप में तो भी तो बाल पके होंगे। अनुभव से सही, नहीं धूप से। शरीर जीर्ण-जर्जर हुआ होगा, झुर्रिया भी पड़ी होंगी। यह सब हुआ होगा। ये होना अनिवार्य है। शरीर किसी को क्षमा नहीं करता और शरीर किसी के लिए अपवाद नहीं है।
प्रकृति बड़ी साम्यवादी है। वह किसी पर भेद नहीं करती। वह किसी के लिए नियम नहीं तोड़ती। उसके नियम अखंड हैं, शाश्वत हैं, सदा वैसे हैं। छोटे के लिए बड़े के लिए; ज्ञानी के लिए, अज्ञानी के लिए; गरीब के लिए, धनी के लिए-- इनकी तो बात ही छोड़ दो, अज्ञानी के लिए, बुद्धत्व को उपलब्ध ज्ञानी के लिए, उसके लिए भी प्रकृति के नियम भिन्न नहीं हैं। वही नियम लागू हैं।
और यह उचित भी है।
लेकिन भीतर बुद्ध का नाद शाश्वत नाद है। वह कभी जरा-जीर्ण नहीं होता।
एस धम्मो सनंतनो। सनातन धर्म को उन्होंने पा लिया है। एस मग्गो विसुद्धिया। शुद्ध होने का ऐसा अमृत-पथ उन्होंने पा लिया है, जहां अशुद्धि अब प्रवेश नहीं करती। उन्होंने स्वभाव का अनुभव कर लिया है। और स्वभाव सदा युवा है।
बच्चे भविष्य में रहते हैं। अतीत तो बच्चों का कुछ होता ही नहीं जो पीछे लौट कर देखें। पीछे लौट कर देखने को कुछ होता ही नहीं। इसलिए तुम भी अगर याद करोगे, बहुत याद करोगे, तो पीछे ज्यादा से ज्यादा जा सकोगे तीन-चार साल की उम्र तक; उसके बाद पीछे नहीं जा सकोगे। क्योंकि तीन-चार साल की उम्र तक तुमने पीछे लौट कर देखा ही नहीं था, इसलिए हिसाब नहीं रखा है। तीन-चार साल की उम्र तक कोई पीछे लौट कर देखता ही नहीं--आगे देखने को इतना है, कौन पीछे लौट कर देखता है! बच्चे के सामने आगे द्वार पर द्वार खुलते चले जाते हैं। बच्चे भविष्यमुखी होते हैं।
और बच्चे ही नहीं, जो समाज नये होते हैं, वे भी भविष्यमुखी होते हैं-- जैसे अमरीका। अभी बच्चा है। इसलिए भविष्यमुखी है। अभी उम्र ही कोई तीन सौ साल की है। अब तीन सौ साल की क्या गणना, भारत जैसे मुल्क के सामने, जो वैज्ञानिकों के हिसाब से कम से कम दस हजार साल पुरानी संस्कृति का है। और अगर वैज्ञानिकों को छोड़ दें और भारत के पंडितों की सुनें, तो वे तो कहते हैं कोई नब्बे हजार साल पुराना! लेकिन दस हजार साल तो पक्का ही समझो। दस हजार साल का पुराना, बूढ़ा भारत--तीन सौ साल की उम्र भी कोई उम्र है! अमरीका आगे की तरफ देखता है, चांद-तारों की तरफ देखता है, आकाश की तरफ देखता है।

भारत? भारत पीछे की तरफ देखता है। भारत का स्वर्णयुग हो चुका, सतयुग हो चुका, बीत चुका रामराज्य--सब हो चुका, भारत बूढ़ा हो गया है। सब श्रेष्ठ हो चुका, आगे देखने को कुछ भी नहीं है। आगे सिर्फ दुर्दिन है, दुर्दशा है। रोज हालत बिगड़ती जाती है। आगे से बचना चाहता है। आगे से बचने के लिए एक ही उपाय है कि पीछे की सोचता रहे। कुरेद-कुरेद कर पुरानी स्मृतियों का मजा लेता रहता है।... अब भी तुम बैठे देख रहे हो! हर साल वही रामलीला। तुमने कितनी दफा रामलीला देख ली! कुछ फर्क भी नहीं होता उस रामलीला में।
एक गांव में कुछ लोगों ने फर्क किया था, दंगा-फसाद हो गया। रीवा से खबर
आई थी कि रीवा कालेज में लड़कों ने सोचा कि रामलीला-रामलीला होते-होते कितने दिन हो गए, कुछ इसमें नया जोड़ें! कुछ इसको आधुनिक करें! इसको नई शैली दें! तो झगड़ा-फसाद हो गया।
नई शैली क्या दोगे? नई शैली यह कि रामचंद्र जी टाई बांधे हुए! सूट-बूट पहने हुए! और जब सीता मैया आईं, ऊंची एड़ी की जूती पहने हुए, तो जनता एकदम खड़ी हो गई! अब यह बहुत हो गया! रामचंद्र जी टाई बांधें, यहां तक भी लोगों ने बरदाश्त कर लिया था किसी तरह कि चलो ठीक है, एक मजाक है, चलेगा! मगर सीता मैया ऊंची एड़ी की जूती पहने हुए जब आईं, तो फिर जूते चल गए! फिर कुर्सियां टूट गईं। फिर रामलीला आगे नहीं बढ़ सकी, क्योंकि लोगों ने कहा अब पता नहीं आगे और क्या हो? जब शुरुआत यह है, तो आगे हालत खराब होने वाली है।
हम उसी रामलीला को देखते रहते हैं। वे ही राम, वही सीता का चोरी जाना, वही राम का जाकर युद्ध करना, वही सीता को वापस ले आना। दुनिया बदल गई, सब बदल गया, हमारी आंखें पीछे अटकी हैं।
एक गांव में रामलीला हो रही थी। युद्ध खतम हो गया, सीता वापस ले आई गईं, बस पुष्पक विमान पार बैठ कर राम, सीता और लक्ष्मण वापस लौटने को हैं अयोध्या... अब पुष्पक विमान क्या? एक रस्सी में एक झूला सा लटकाया हुआ है। मगर इसके पहले कि रामचंद्र जी चढ़ पाएं, कुछ भूल-चूक से खींचने वाले ने रस्सी खींच दी, झूला ऊपर उठ गया; उड़ान खटोला जा चुका, लक्ष्मण जी और रामचंद्र जी सीता मैया, तीनों ऊपर की तरफ देखते रह गए--अब क्या करें? गांव के छोटे-छोटे बच्चे थे जो ये बने थे, लक्ष्मण ने कहाः बड़े भैया, आपके पास टाइम टेबल अगर हो तो देख कर बताएं कि दूसरा विमान कब छूटेगा? टाइम टेबल! आखिर बच्चा तो आज का ही है! उसने सोचा कि जैसे रेलगाड़ी का टाइम टेबल होता है... एक गाड़ी छूट गई, कोई बात नहीं... तो अब यह पुष्पक विमान तो गया, अब दूसरा कब छूटेगा? कभी-कभी ऐसी छोटी-मोटी नई बातें हो जाती हैं अन्यथा तो राम-कथा वही-की-वही चलती रहती है, लोग देखते रहते हैं। लोग गुणगान करते रहते हैं। लोग अभी भी प्रतीक्षा करते हैं कि रामराज्य आ जाए!
हमारे पास भविष्य नहीं। अमरीका के पास अतीत नहीं।
बच्चों के साथ भी यही होता है, समाजों के साथ भी, सभ्यताओं के साथ भी, राष्ट्रों के साथ भी। बच्चे भविष्य में देखते हैं और बूढ़े अतीत में देखते हैं। बूढ़ा आदमी बैठ कर अपनी आरामकुर्सी पर सोचा करता हैः वे दिन जब वह डिप्टी कलेक्टर था! अहह! क्या दिन थे वे भी साहबियत के! जहां से निकल जाओ, वहीं नमस्कार-नमस्कार हो जाता था! सब याद आते हैं वे दिन, बड़े इत्र-सुगंध से भरे। सम्मान, सत्कार, डालियां सजी हुई आती थीं। आम के मौसम में आम चले आ रहे हैं। दिन थे मौज के! आगे देखे भी तो क्या? आगे देखने को कुछ है नहीं। आगे तो सब सन्नाटा है। मौत की पगध्वनि सुनाई पड़ रही है। मौत को देखना कौन चाहता है! पीछे की सोचता है कि क्या दिन थे! रुपये का बत्तीस सेर दूध मिलता था, सोलह सेर घी मिलता था, अहा! . --अब फिर से स्वाद और चटखारे ले लेता है। दिल बाग-बाग हो जाता है। फिर सुगंध आने लगती है पुराने दिनों की। ऐसे अपने को भरमाए रखता है। बूढ़ा अतीत में जीता है।
मनोवैज्ञानिक कहते हैंः जिस दिन से तुम अतीत के संबंध में ज्यादा विचार करने लगो, समझ लेना कि बूढ़े हो गए। बुढ़ापे की यह मनोवैज्ञानिक परिभाषा है। जिस दिन से तुम्हें अतीत के ज्यादा विचार आने लगें और तुम पीछे की बातें करने लगो, कि वे दिन, अब क्या रखा है, अब दुनिया वह दुनिया न रही!

अमरीका का एक बहुत बड़ा न्यायशास्त्री पेरिस गया था। पचास साल पहले भी
वे पेरिस आए थे, पति-पत्नी दोनों, हनीमून मनाने आए थे। पचास साल बाद एक जिज्ञासा फिर मन में उठी कि मरने के पहले एक बार पेरिस और देख लें। क्योंकि पेरिस में जो देखा था पचास साल पहले, फिर वैसा कहीं न देखने मिला! पचास साल बाद--बूढ़े हो गए हैं अब वे; पति अस्सी साल का है, पत्नी पचहत्तर साल की है; जिंदगी बह गई, गंगा की धार में बहुत पानी बह गया है; पचास साल लंबा वक्त होता है--पचास साल बाद पेरिस आए, बहुत चौंका बूढ़ा! उसने अपनी पत्नी से कहा कि अब पेरिस वैसा पेरिस नहीं मालूम होता! वह बात नहीं रही अब! पत्नी हंसने लगी और उसने कहा, पेरिस तो अब भी पेरिस है--जरा नये-नये जोड़ों की नजरों से देखो--हम बूढ़े हो गए हैं। अब हम हम नहीं हैं। पेरिस तो अब भी पेरिस है। जो सुहागरात मनाने आए हैं, उनसे पूछो। अब हम पचास साल जीकर आए हैं, हमारे पास कुछ भी नहीं बचा आगे जीने को, अब जीने को भी क्या है?
मगर फिर भी उन्होंने कोशिश की कि एक बार फिर से पुनरुज्जीवित कर लें। उसी होटल में ठहरे जिस होटल में पचास साल पहले ठहरे थे--उसी कमरे को मांगा कि चाहे जो कीमत लगे। खाली करवाना पड़ा, दूसरा यात्री उसमें ठहरा था, लेकिन उसको रिश्वत देकर खाली करवाया कि हम आए ही इसीलिए हैं, उसी कमरे में ठहरेंगे। उसी खिड़की से दृश्य देखेंगे। वही भोजन, वही समय। रात जब दोनों सोने के करीब आए तो पत्नी ने कहा कि और तुम भूल गए; उस रात तुमने मुझे किस तरह आलिंगनबद्ध करके चूमा था? कमरा तो वही है, चूमोगे नहीं? उसने कहा, अब नहीं मानती तो ठीक है! अभी आया। उसने कहा, कहां जाते हो? तो उसने कहा कि बाथरूम। बाथरूम किसलिए जाते हो? उसने कहा, दांत तो ले आऊं? दांत तो बाथरूम में रख आया हूं। अब पचास साल बीत गए, अब दांत भी अपने न रहे, अब दांत भी सब उधार हो गए, अब ये पोपले सज्जन दांत लगा कर फिर चुंबन लेने जा रहे हैं! यह चुंबन वही होगा? यह कैसे वही हो सकता है! यह सिर्फ अभिनय होगा। थोथा, बासा, मुर्दा। लेकिन लोग अतीत में जीने की चेष्टा करते हैं।
बूढ़े अतीत में जीते हैं।
युवावस्था का मनोवैज्ञानिक अर्थ होता हैः वर्तमान में जीना। शुद्ध वर्तमान में जीना। अगर तुम ठीक से समझो तो इसीलिए हमने बुद्ध-महावीर की युवा मूर्तियां बनाई हैं क्योंकि वे शुद्ध वर्तमान में जिए। युवा जिनको हम कहते हैं, वे भी वहां शुद्ध वर्तमान में जीते हैं? शुद्ध युवा सिवाय बुद्ध-महावीर को कोई होता नहीं। हमारा युवक भी पीछे देखता है। वह भी कहता है, बचपन के दिन बड़े सुंदर थे। हमारा युवक भी भविष्य में देखता है। वह सोचता है, अगले साल बढ़ती होगी, बड़ी नौकरी मिलेगी। हमारा युवक भी कहां युवक होता है? ठीक-ठीक आध्यात्मिक अर्थों में युवा नहीं होता। कटा-कटा होता है। आधा अतीत, आधा भविष्य। थोड़ा पीछे, थोड़ा आगे। बंटा-बंटा होता है। खंडित होता है। इसलिए बेचैन भी होता है। उसमें तनाव भी होता है बहुत।
बुद्ध जैसे व्यक्ति, कबीर, नानक, पलटू जैसे व्यक्ति शुद्ध वर्तमान में जीते हैं। न कोई अतीत है, न पीछे की कोई याद है। धूल-धवांस इकट्ठी ही नहीं करते ऐसे लोग। न कोई भविष्य है, न भविष्य की कोई चिंता है। कूड़ा-करकट में रस ही नहीं लेते ऐसे लोग। यह क्षण, बस यह शुद्ध क्षण पर्याप्त है। इस क्षण के आर-पार कुछ भी नहीं है। इस क्षण में डुबकी मारते हैं--वही समाधि ही। शुद्ध वर्तमान में डूब जाना समाधि है। अतीत में रहना--मन में रहना; भविष्य में रहना--मन में रहना। ये मन के रहने के ढंग हैं--अतीत और भविष्य। वर्तमान में, शुद्ध वर्तमान में डूब जाना... जरा एक क्षण को अनुभव करो! जैसे बस यही क्षण है। मैं हूं, तुम हो, ये वृक्ष हैं, ये पक्षियों की चहचहाहट है, ये सन्नाटा है; बस यह क्षणमात्र, अपनी परिपूर्ण शुद्धता में--न पीछे की कोई याद है, न आगे का कोई हिसाब है, स्मृति छूट गई, फिर इस अंतराल में शाश्वत की प्रतीति होने लगेगी। यही अंतराल समाधि है।
नहीं रामकृष्ण, चिंता न करो! अभी भी भीतर तो वही जीवनधारा है, जो कल थी
और कल रहेगी। दौड़ नहीं सकते अब पुराने ढंग से, नाच नहीं सकते अब पुराने ढंग से--चिंता न करो! बैठ कर ही मस्त हुआ जा सकता है। वर्तमान में हो जाओ, मस्त हो जाओगे। वर्तमान में हो जाओ, बेहोश भी हो जाओगे, होश में भी आ जाओगे। वही समाधि है।

तीसरा प्रश्नः भगवान, हमें तो परमात्मा की कोई अनुभूति नहीं। हमारे लिए तो आप ही भगवान हैं। और प्रश्न पूछने के बहाने जब भी हम अपने भाव आपके चरणों में निवेदित करते हैं--जैसे कि परसों मा वीणा ने पूछा था--तो आप जिस कुशलता से बाजू हट जाते हो और परमात्मा की ओर इशारा कर देते हो कि पूछने वाला भी चौंक जाता है! हम सोचते हैं कि हमारा सीधा निवेदन आपके चरणों में था और आप अंगुली उधर उठा देते हो। ऐसे वक्त ही हम इस पंक्ति का अर्थ और घना होकर समझ पाते हैंः बलिहारी गुरु आपकी गोविंद दियो बताय।

सत्य निरंजन! परमात्मा को तुम नहीं जानते, मैं तो जानता हूं। तुम कितने ही मेरे चरण पकड़ो, मैं तो तुम्हें उसके चरण ही पकड़ाऊंगा। क्योंकि मेरे चरण आज हैं, कल नहीं होंगे। वे तो मिट्टी के हैं। मिट्टी मिट्टी में मिल जाएगी। मैं तुम्हें वे चरण पकड़ाता हूं जो चिन्मय हैं। वे कभी नहीं मिटेंगे। तुम सदा उन चरणों में डूबे रहोगे।
तुम्हें मुझसे प्रेम है, तुम्हें मुझसे लगाव है, तुम्हारी गहन श्रद्धा मेरी तरफ है, लेकिन मैं आज हूं और कल नहीं हो जाऊंगा। फिर तुम क्या करोगे? फिर तुम पत्थर की मूर्ति बना लोगे। फिर तुम पत्थर की मूर्ति की पूजा करोगे--यही तो होता रहा। इसके पहले कि यह भूल हो, मैं बार-बार तुम्हें उस तरफ इशारा कर देना चाहता हूं, ताकि मेरे न होने पर भी तुम्हारा और परमात्मा का संबंध न टूटे। मैं बीच में खड़ा नहीं होना चाहता, टूट जाना चाहता हूं। उतनी ही देर खड़ा होना चाहता हूं जितनी देर में तुम्हारा संबंध परमात्मा से हो जाए, बस। उससे रत्ती भर ज्यादा नहीं। उससे क्षणभर ज्यादा नहीं। क्योंकि एक क्षण की देरी भी खतरनाक हो सकती है।
अभी वैज्ञानिकों ने एक खोज की है, वह समझने जैसी है।
एक वैज्ञानिक मुर्गियों पर प्रयोग कर रहा था। आकस्मिक इस बात का उसे पता चल गया। अकसर विज्ञान की बड़ी से बड़ी खोजें आकस्मिक होती हैं। होंगी ही। क्योंकि हम तो जो खोज करते हैं, वह पुराने से सोच-सोच कर करते हैं। और पुराने से बंधे रहते हैं तो नये की खोज कैसे हो? नये की खोज तो आकस्मिक होती है, अचानक होती है। हमारे हिसाब से नहीं होती। तो वह तो किसी और काम में लगा था, वह तो मुर्गियों के जीवन-व्यवहार का अध्ययन कर रहा था, लेकिन एक दिन एक अचानक बात हो गई। मुर्गी अंडा से रही थी। वह मुर्गी का अध्ययन करता था कि मुर्गी कैसा व्यवहार करती है, उसने मुर्गी को उठा कर अंडे से अलग कर दिया। वह देखना चाहता था कि वह क्रोधित होती है, नाराज होती है, झगड़ने को तैयार होती है, क्या करती है? जैसे ही उसने मुर्गी को अलग किया, संयोग की बात थी, बस संयोग की बात कि अंडा फूट गया और चूजा बाहर आ गया। और जैसा कि हर अंडे से चूजा बाहर आने के बाद अपनी मां की तलाश करता है... वह बिल्कुल नैसर्गिक है। जैसे छोटा बच्चा मां का स्तन खोजने लगता है। जैसे कि मां के पेट से ही दूध पीने की कला सीख कर आता हो। अगर न आता हो तो हम सिखा भी न सकें। बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे। कोई बच्चा अगर मां के पेट से पैदा हो और दूध पीने की कला सीखकर न आया हो, नैसर्गिक, तो हम क्या करेंगे? हम बड़ी मुश्किल में पड़ जाएंगे! न वह भाषा समझे, न हम उसे दंड दे सकते हैं, न पुरस्कार दे सकते हैं; हमारे शिक्षाशास्त्री सिर पीट लेंगे कि अब करना क्या? इसको समझाओ कैसे कि दूध पीओ? लेकिन कुछ नैसर्गिक अंतः प्रेरणा से ओंठ खुल जाते हैं। वह मां के स्तन से दूध पीने लगता है, चूसने लगता है। ऐसे ही मुर्गी का अंडा निकलता है, फूटता है।
चूजा बाहर आया, वह मां की तलाश करने लगा। मां तो मिली नहीं, खड़ा था यह वैज्ञानिक, इसका जूता मिल गया--बस इसका जूता पास था, उसने जूते पर ही चोंच मारी। और एक बड़ी अपूर्व घटना घट गई। बस वह जूते के ही पीछे घूमने लगा। जहां वैज्ञानिक जाए, वह जूते के पीछे ही जाए। जूते को चोंच मारे। जूते से उसका लगाव ऐसा कि वैज्ञानिक बहुत हैरान हुआ... फिर उसने बहुत प्रयोग किए और तब यह पता चला कि जो पहले क्षण में घटना घटती है, उसकी इंप्रिंटिंग हो जाती है। उसकी एक छाप पड़ जाती है जो जीवन भर साथ रहती है। हम सोचते हैं कि वह जो बच्चा है, मां के पीछे जा रहा है। मां के पीछे नहीं जा रहा है। क्योंकि यह

तो चूजा था, यह मां के पीछे गया ही नहीं। मां की फिकर ही न करे! वैज्ञानिक बड़ी मुश्किल में पड़ गया। उसको खिलाना पड़े हाथ से दाना। क्योंकि उसके लिए तो जूता ही मां हो गया। उसकी इंप्रिंटिंग बदल गई। उस पर तो जूते की छाप पड़ गई। वह जूते के साथ ही उसका सारा लगाव हो गया।
और तब एक और मुश्किल हुई। जब वह जवान हुआ तो वह किसी मुर्गी के पीछे न जाए। मुर्गियों से दोस्ती ही न करे। न प्रेम-चिट्ठियां लिखे, न बांग दे, न कलंगी निकाल कर अकड़ कर चले--वह मुर्गियों में उसे कोई रस ही नहीं! हां, अगर जूता दिखाई पड़ जाए उसे, तो फिर क्या कहने! एकदम उसकी कलंगी अकड़ जाए, बांग दे जोर से, अकड़ कर चले। क्योंकि बच्चे की पहली पहचान स्त्री से तो अपने मां के द्वारा होती है। इसलिए जो बच्चे मां के प्रेम से वंचित रह जाते हैं, वे अपनी पत्नी को भी प्रेम नहीं कर पाते। असंभव है फिर। शुरुआत से ही गलती हो गई। शुरुआत से ही भूल हो गई।
और अगर हम थोड़ा वैज्ञानिक विश्लेषण में गहरे जाएं तो हमें समझना होगा
कि आज नहीं कल, जब दुनिया थोड़ी बेहतर हो, थोड़ी ज्यादा समझदार हो, तो जिस तरह मां बेटे को पालती है, उस तरह पिता को बेटी को पालना चाहिए। नहीं तो स्त्रियां नुकसान में रह जाती हैं। बेटा तो मां को प्रेम करके स्त्री का अनुभव ले रहा है; तो आज नहीं कल वह किसी स्त्री के प्रेम में पड़ सकेगा। किसी स्त्री को प्रेम कर सकेगा। इसलिए पुरुष प्रेम में ज्यादा आतुर होते हैं, उत्सुक होते हैं। स्त्रियां प्रेम आदि में ज्यादा उत्सुक नहीं होतीं। उनकी उत्सुकता गहना-साड़ी, हीरे-जवाहरात इत्यादि में ज्यादा होती है। पुरुष के साथ तो वह किसी तरह गुजारा करती हैं। क्योंकि हीरे-जवाहरात और साड़ी इत्यादि और कहां से आएगी? पुरुष तो एक तरह का सेवक है। और अगर वे पुरुष को प्रेम भी देती हैं तो इसी बदले में, यही सौदा है। इसलिए जिस दिन पुरुष को पत्नी का प्रेम चाहिए, उस दिन वह नई साड़ी खरीद लाता है। आइस्क्रीम खरीद लाता है। फूलों का गुच्छा ले आता है। उस दिन स्त्री प्रसन्न है। और जिस दिन स्त्री को पुरुष में कोई रस नहीं है, क्योंकि वह न कुछ लाया है, न तनख्वाह का पता है महीना हो गया, न नई साड़ी खरीदी है, न कोई नया गहना... ।
मुल्ला नसरुद्दीन अपने मित्र से कह रहा था कि मैं यह समझ ही नहीं पाता
कि सरकार संतति-नियमन का इतना प्रचार क्यों करती है? दो या तीन, बस। जगह-जगह लिख रखा हैः दो या तीन, बस। छोटा परिवार, सुखी परिवार। मुफ्त बांटती है साधन संतति-नियमन के। फिजूल की बकवास है! मैं सरल तरकीब जानता हूं, मेरी पत्नी सरल तरकीब जानती है। उसके मित्र ने पूछा, वह क्या तरकीब है? उसने कहा, तरकीब सीधी है, कि वह एकदम करवट ले लेती है और कहती हैः सिर में दर्द है। जैसे ही मैंने उसको देखा, कि वह कहती हैः मेरे सिर में दर्द है। बच्चे पैदा भी कहां होंगे? कैसे होंगे? पत्नी के सिर में दर्द है! वह तो कंबल ओढ़ कर एकदम सो जाती है, सिर में दर्द है। मुल्ला कह रहा था कि सरकार को हर स्त्री को समझाना चाहिए कि जब भी पति आए, एकदम से सिर में दर्द है, कंबल ओढ़ कर सो गए। न संतति-नियमन की जरूरत, न निरोध की जरूरत, न और तरह के उपद्रवों की जरूरत। सीधा काम, पुरानी तरकीब! जांची-परखी तरकीब। सदियों की पहचानी हुई तरकीब।
स्त्री को उतना रस नहीं मालूम होता।
मेरे पास न मालूम कितनी स्त्रियां आकर यह कहती हैं कि हम थक गए हैं; यह बकवास प्रेम की कब बंद होगी? यह कामवासना से कैसे छुटकारा होगा? पति का नहीं हो रहा है। कितनी स्त्रियां मुझे आकर कहती हैं कि यह पति में कब समझ आएगी? इनका रस जाता ही नहीं। इसका कारण है। पति को पाला है मां ने, इसलिए उसे स्त्री में रस है। और लड़की को भी पाला है मां ने, इसलिए प्रत्येक स्त्री को दूसरी स्त्री के साथ वैमनस्य है, विरोध है, ईर्ष्या है। और पुरुष के साथ कोई लगाव पैदा होने का पहला क्षण ही नहीं आ पाया। वह पहली इंप्रिंटिंग, पहला प्रभाव, वह छाप नहीं पड़ पाई।
अगर हम मनुष्य को वैज्ञानिक ढंग से कभी व्यवस्थित करें तो पिता को ज्यादा से ज्यादा मौका अपनी बेटियों के लिए देना चाहिए। जितना समय मिल सके। लेकिन हालतें उलटी हैं। अगर बेटा मां के गले झूमा रहे तो कोई अड़चन

नहीं, लेकिन अगर बेटी पिता के गले झूम जाए तो मां ही एतराज करती है। मां बरदाश्त नहीं करती कि बेटी में पिता ज्यादा रस ले। बेटी में रस लेते हुए मां को ईर्ष्या पैदा होती है। बेटी से भी ईर्ष्या पैदा हो जाती है। इस तरह की मूढ़ता प्रचलित है। इस कारण दुनिया में स्त्रियां पुरुषों को ठीक से प्रेम नहीं कर पातीं। और चूंकि स्त्रियां प्रेम नहीं कर पातीं पुरुषों को ठीक से, पुरुषों का प्रेम भी अधकचरा रह जाता है, क्योंकि दूसरी तरफ से ठीक-ठीक उत्तर ही नहीं मिलता। और जहां प्रेम अधकचरा रह जाए, वहां प्रार्थना कैसे पूरी हो? जहां प्रेम का जीवन ही न जीया जा सके वहां परमात्मा की स्मृति और सुध कैसे आए?
यहां लोग परमात्मा को याद करते हैं असफलता के कारण। और मैं चाहूंगा
कि तुम परमात्मा को याद करो सफलता के कारण। यहां लोग परमात्मा को याद करते हैं कि जीवन में सब गड़बड़ हो गया। मैं चाहूंगा कि तुम परमात्मा को याद करो कि जीवन एक अहोभाग्य था, कि जीवन एक सुअवसर था, एक वरदान था, एक आशीष था परमात्मा का। तब निश्चित ही तुम्हारे धन्यवाद का स्वर दूसरा होगा। तब तुम सच में ही कृतज्ञ-भाव से उसके चरणों में झुकोगे।
तो मैं उतनी ही देर तुम्हारे बीच रहना चाहता हूं जितनी देर में तुम्हारा संबंध परमात्मा से जुड़ा दूं। एक क्षण ज्यादा नहीं। क्योंकि एक क्षण अगर ज्यादा रह गया, इंप्रिंटिंग हो जाती है। वही हो गया। जैनियों की छाती पर महावीर की इंप्रिंटिंग हो गई। मुसलमानों की छाती पर मोहम्मद की इंप्रिंटिंग हो गई है। ईसाइयों की छाती पर जीसस की तस्वीर टंग गई। और यह तो आड़ हो गई। मैं तुम्हारे लिए आड़ नहीं बनना चाहता।
सत्य निरंजन, तुम्हारा प्रश्न तो बिल्कुल ठीक है; तुमने जांचा ठीक; तुम परखे ठीक कि तुम पूछते हो कुछ, मैं जवाब देता हूं कुछ। बात ठीक है। वीणा भी तुमसे राजी होगी। वीणा ने भी पूछा था, उसका इशारा मेरी ही तरफ था-- वह मुझे भी पता है। इतनी तो भाषा मैं भी समझ लेता हूं। लेकिन मैं धीरे-धीरे इधर से, उधर से परोक्षरूपेण धक्के दे-दे कर तुम्हें फिसलाता हूं परमात्मा की तरफ। तुम मुझसे न जकड़ जाना। हां, मैं तुम्हारे लिए इशारा बन जाऊं, बस इतना काफी। जाना तो परमात्मा में है। जाना तो उस परम सागर में है। मैं तो धन्यभागी हूं कि तुम्हें वहां तक पहुंचा पाऊं। मेरा आनंद इतना ही है कि तुम परमात्मा से जुड़ जाओ और मुझे भूल जाओ। अगर न भूल सको, तो इसीलिए याद रखना कि मैंने तुम्हें परमात्मा से जुड़ाया--और किसी कारण नहीं! कहीं ऐसा न हो कि परमात्मा की जगह मैं बैठ जाऊं। तो तुम अटक जाओगे। तो तुम भटक जाओगे। इसलिए सत्य निरंजन, जानते हुए भी कि तुम अपना निवेदन मेरी तरफ करते हो, मैं तुम्हारे निवेदन को परमात्मा की तरफ मोड़ देता हूं। मैं तुम्हारे सब निवेदन उस तरफ मोड़ना चाहता हूं। तुम्हारी आंखें, तुम्हारे हाथ, तुम्हारे प्राण, सब उसे टटोलने लगें। मेरी सन्निधि में तुम्हें उसकी याद आ जाए तो बस मेरा काम पूरा हो गया। मेरी सन्निधि में, मेरे संग-साथ तुम्हें उसका रस लग जाए तो बहुत; संक्रामक हो जाए परमात्मा तो बहुत।
जब नैश प्रकृति के अंचल में
मुसका उठते हो मंद-मंद
हो जाता है क्षण भर मुखरित
मेरा अलसित जीवन अमंद,
करते हो आंख-मिचौनी-सी
दृग-द्वार खोल, कर पुनः बंद
बज उठता है निस्पंद पड़ी, मेरी वीणा का विरह-गीत मेरे पावन, मेरे पुनीत।

जब सज मुक्ता-मालाओं से
कर उठते हो झिलमिल-झिलमिल
चांदी के सूक्ष्म-सितारों-सी
रश्मियां विरल रिलमिल-रिलमिल
करते हो कुछ संकेत मात्र अगणित दृग-सैनों से हिलमिलख

जग-सा जाता है क्षण-भर को विस्मृति में सोया-सा अतीत मेरे पावन, मेरे पुनीत।

जब झूम चूम लेते हो तुम
वारिधि के दृग की मदिर कोर,
लहरा उठता है बेसुध-सा
छल छपक-छपक हिल-हिल हिलोर
देते तुम अपने अधरों को
उसके नव-मधु में बोर बोर
विस्मित-सा देखा करता हूं तब मैं अपनी ही हार-जीत मेरे पावन, मेरे पुनीत।

जब ऊषा के वातायन से
तुम देखा करते उझक झांक,
जग तृण-तरु पर मृदु-कुसुमों पर
लेता सुंदर छवि आंक-आंक
भू पर विलसित हो जाता है
कल्पित स्वप्नों का स्वर्ण-लोक
अनजाने में हो जाते हैं मेरे कुछ क्षण सुख से व्यतीत,
मेरे पावन, मेरे पुनीत।
तुम्हें उस परम पावन, परम पुनीत का स्मरण दिलाना चाहता हूं। इतना, इतना कि सुबह सूरज ऊगे तो वही ऊगता दिखाई पड़े; रात तारों से आकाश भर जाए तो उसी से भरा हुआ मालूम पड़े। परमात्मा मुझमें ही तुम्हें दिखाई पड़े और कहीं दिखाई न पड़े, तो मैं तुम्हारा मित्र न रहा, शत्रु हो गया। मुझमें दिखाई पड़े, यह तो पहला पाठ। गुरु में दिखाई पड़े, यह पहला पाठ। अंतिम पाठ नहीं है यह। यह तो बस क, ख, ग। फिर और आगे जाना है! फिर धीरे-धीरे चांद-तारों में, सूरज में, पहाड़ों में, नदियों में, वृक्षों में, पक्षियों में, पशुओं में, मनुष्यों में--सबसे आखिर में कह रहा हूंः मनुष्यों में। क्योंकि वह सबसे अड़चन की बात है। पड़ोसी में जिस दिन तुम्हें परमात्मा दिख जाए, समझना कि सिद्ध हो गए। सिद्धपुरुष हो गए।
जीसस ने कहा है दो वचन। अपने शत्रु को अपनी ही तरह प्रेम करो। और एक और वचन कि अपने पड़ोसी को भी अपनी ही तरह प्रेम करो। एक ईसाई मिशनरी मुझसे बात कर रहा था। उसने पूछा कि शत्रु को प्रेम करो, यह तो समझ में आता है, मगर जीसस ने यह क्यों विशिष्ट रूप से और कहा कि अपने पड़ोसी को भी अपनी तरह प्रेम करो? तो मैंने कहा, उसका कारण है। कि शत्रु और पड़ोसी, दोनों एक ही आदमी के नाम हैं। पड़ोसी ही शत्रु होते हैं। और कौन शत्रु होगा? इसलिए जीसस ने सोचा होगा कि शत्रु से प्रेम करो, इसमें कहीं भ्रांति न रह जाए। तो पीछे से और एक शर्त जोड़ दी कि पड़ोसी से भी अपनी ही तरह प्रेम करो। और ध्यान रखना, पहले जीसस ने कहाः शत्रु से। शत्रु से भी प्रेम करना आसान है। मगर पड़ोसी से? बहुत मुश्किल! उससे तो प्रतिस्पर्धा है। उससे प्रेम? उससे तो ईर्ष्या है। उससे प्रेम? उससे तो छाती जलती है। उससे प्रेम?
इसलिए मैं मनुष्य को सबसे अंत में ले रहा हूं।
फैलाओ प्रेम को! जो प्रेम तुम्हारा मेरे प्रति है, सत्य निरंजन, वह प्रेम तुम्हारा समस्त के प्रति हो जाए, तो प्रार्थना बन गई, आराधना बन गई, पूजन हो गया। तुम फिर जान सकोगे।
मेरे पावन, मेरे पुनीत
जब झूम चूम लेते हो तुम
वारिधि के दृग की मदिर कोर,
लहरा उठता है बेसुध-सा
छल छपक-छपक हिल-हिल हिलोर
देते तुम अपने अधरों को
उसके नव-मधु में बोर बोर
विस्मिता-सा देखा करता हूं तब मैं अपनी ही हार-जीत

मेरे पावन, मेरे पुनीत।

जब ऊषा के वातायन से
तुम देखा करते उलझ झांक,
जब तृण-तरु पर मृदु-कुसुमों पर
लेता सुंदर छवि आकं-आकं
भू पर विलसित हो जाता है
कल्पित स्वप्नों का स्वर्ण लोक
अनजाने में हो जाते हैं मेरे कुछ क्षण सुख से व्यतीत, मेरे पावन, मेरे पुनीत।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
तेरहवां प्रवचन

राग का अंतिम चरण है वैराग्य

जीवन है दिन चार, भजन करि लीजिए।
तन मन धन सब वारि संत पर दीजिए।।
संतहिं से सब होइ, जो चाहै सो करैं।
अरे हां, पलटू संग लगे भगवान, संत से वे डरैं।।

ऋद्धि सिद्धि से बैर, संत दुरियावते।
इंद्रासन बैकुठ बिष्ठा सम जानते।।
करते अबिरल भक्ति, प्यास हरिनाम की।
अरे हां, पलटू संत न चाहैं मुक्ति तुच्छ केहि काम की।।

आगम कहैं न संत, भड़ेरिया कहत हैं।
संत न औषधि देत, बैद यह करत हैं।।
झार फूंक ताबीज ओझा को काम है।
अरे हां, पलटू संत रहित परपंच राम को नाम है।।

हरिजन हरि हैं एक सबद के सार में।
जो चाहैं सो करैं संत दरबार में।।
तुरत मिलावैं नाम एक ही बात में।
अरे हां, पलटू लाली मेंहदी बीच छिपी है पात में।।

करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।
माया में हैं लीन; बहाना भगति का।।
कहौं तनिक नहिं छुई गया बैराग है।
अरे हां, पलटू जनमें पूत कपूत लगाया दाग है।।

पगरी धरा उतारि टका छह सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का।।
गोड़ धरे कछु देहि मुंड़ाए मूंड़के।
अरे हां, पलटू ऐसा है रुजगार कीजिए ढूंढ़िके।।

मसक्कत ना हूवै सकी मुंड़ाया मूड़ तब।
सेंति-मेंति में खाय मिला औसान अब।।
तब नागा हूवै लिहिन, रहे ना काम के।
अरे हां, पलटू मारि-पीटिके, खाहिं सो बेटा राम के।।

कवि योग प्रीतम ने एक पत्र में मुझे लिखा है-- भगवान!
कौन हो तुम?
प्राण की अमराइयों में
कोकिले से कूकते
मधु घोल जाते हो
या हृदय की गहन घाटी में
मचलते भाव-निर्झर से
शून्य के कुछ अर्थ अनुपम खोल जाते हो कौन तुम?
आकाश-से विस्तीर्ण
जिसमें पंख अपने खोल
मैं उन्मुक्त उड़ता जा रहा अश्रांत, कर रहा हूं संतरण कलहंस-सा अनथक

तुम्हारे प्रेम-रंजित मानसरोवर में बना उदभ्रांत
आग यह कैसी अभीप्सा की
निरंतर जल रही अंतःकरण में
फैलती ही जा रही जो,
राग यह कैसा उठा है आज
अंतर्बीन से मेरी
कि सारा विश्व जगमग हो उठा है
यह तुम्हारी ही जलाई आग है
यह जानता हूं,
यह तुम्हारी ही जगाया राग है अनुराग का पहचानता हूं
पर तुम्हें जब खोजता हूं
जग-जलधि में
थाह मिल पाती नहीं है,
जो तुम्हारी दिव्य मंजिल से मिले
वह राह मिल पाती नहीं है
चेतना पर
जो अमृत वरदान-सा बनकर बरसते हो
हृदय में
भाव के माधुर्य से भीगा हुआ
संगीत बनकर जो सरसते हो,
जो स्व निर्मित सृष्टि में ही छिप गए हो
एक अनबुझ राज-से वह
कौन हो तुम?
परमात्मा प्रकट से भी प्रकट, अप्रकट से भी अप्रकट है। पास से भी पास, दूर से भी दूर है। आंख हो तो पास, आंख न हो तो दूर। और आंख हमारे पास नहीं। सूरज द्वार पर नाच रहा है, अपनी सतरंगी किरणों को लेकर, पर अंधे को पता कैसे चले? या जो आंख बंद किए बैठा है, द्वार-दरवाजे बंद किए बैठा है, उसे अनुभव कैसे हो? सूरज की तरफ से कोई कमी नहीं, कोई कृपणता नहीं है, कृपणता है तो हमारी तरफ से। हम आंख खोलने में भी संकोच करते हैं। द्वार पर दस्तक दे परमात्मा, तो भी हम अनसुनी कर जाते हैं। सुन भी लेते हैं तो अनसुनी करते हैं।
और ऐसा नहीं है कि उसने द्वार पर दस्तक न दी हो। ऐसा कोई द्वार ही नहीं
है जिस पर वह दस्तक न देता हो। और एक बार नहीं, अनेक बार देता है। अनेक बार नहीं, अनंत बार देता है। सुबह देता है, दोपहर देता है, सांझ देता है, रात देता है। हर भावदशा में तुम्हें झकझोरता है। कभी सूरज की किरणों में, कभी चांद की किरणों में, कभी हवा के झोंकों में, कभी फूलों की गंध में, कभी पक्षियों की चहचहाहट में--कितने रूपों में आता है! मगर हमारी कठिनाई यह है कि हम उसके इस अनंत रूप को समाने के लिए राजी नहीं। हमने तो उसकी छोटी-छोटी प्रतिमाएं बना ली हैं। हम तो चाहते हैं वह हमारी प्रतिमा के रूप में आए। हमने शर्तें बांध रखी हैं कि ऐसे ही आओगे तो स्वीकार होओगे। और हमारी शर्तें मानने को वह मजबूर नहीं।
हमारी शर्तें वह मान भी नहीं सकता।
हमारी शुद्र शर्तें मान ले तो वह विराट न रह जाए। हमारी अपेक्षाएं पूरी नहीं की जा सकतीं। हमें अपेक्षाएं छोड़नी होंगी। और तब अचानक सारा रहस्य खुल जाता है। और जब मैं कहता हूं सारा रहस्य खुल जाता है, तो ऐसा मत समझ लेना कि तुम्हें सारे प्रश्नों के उत्तर मिल जाएंगे। उत्तर तो एक भी प्रश्न का नहीं मिलता, लेकिन सारे प्रश्न गिर जाते हैं। जब मैं कहता हूं सब रहस्य खुल जाता है, तो मेरा अर्थ हैः सारे प्रश्न गिर जाते हैं। पूछने वाला ही घुल जाता है, मिल जाता है, डूब जाता है। पूछने वाला ही नहीं बचता। मन ही पिघल जाता है। जिसमें प्रश्न लगते थे, प्रश्न ऊगते थे, वह मूल स्रोत

ही जड़ से कट जाता है। प्रश्न गिर जाते हैं, एक निष्प्रश्न मौन छा जाता है। उस निष्प्रश्न मौन में ही जाना जाता है क्या है।
कौन हो तुम?
प्राण की अमराइयों में
कोकिल से कूकते
मधु घोल जाते हो
या हृदय की गहन घाटी में
मचलते भाव-निर्झर से
शून्य के कुछ अर्थ अनुपम खोल जाते हो
नहीं उत्तर मिलेगा कि कौन है वह। लेकिन प्रश्न गिर जाएगा। और प्रश्न
का गिर जाना ही सार्थक है। उत्तर से कुछ काम बनता भी नहीं। क्योंकि हर उत्तर में नए प्रश्न लग जाते हैं। हर उत्तर नये प्रश्नों को ही लाता है। एक ही जगह दस प्रश्न ले आता है। मजा तो तभी है जब तुम्हारे भीतर प्रश्न ही न उठे। तुम्हारे भीतर प्रश्न का चिह्न ही खो जाए। उस अवस्था को भक्त भजन कहते हैं; जहां प्रश्न का कोई चिह्न नहीं। ध्यानी समाधि कहते हैं; जहां प्रश्न का कोई चिह्न नहीं। जहां निष्प्रश्न, निस्तरंग चैतन्य है, वहां जान लिया गया सब।
और फिर एक बात तुम्हें दोहरा दूंः जब मैं कहता हूं जान लिया गया सब, तो
यह मत समझना कि तुम बड़े ज्ञानी हो जाओगे, कि तुम बड़े पंडित हो जाओगे। नहीं, जब तुम सब जानोगे तो तुम बिल्कुल निर्दोष हो जाओगे। पांडित्य का तो दूर-दूर तक पता न चलेगा। एक सरलता होगी। एक सहजस्फूर्त चैतन्य का आविर्भाव होगा। खुलेगा एक आकाश जिसका न ओर है न छोर है। लेकिन, ज्ञाता तुम नहीं बन जाओगे। मुट्ठी में तुम्हारे ज्ञान नहीं आ जाएगा। तुम तो बचोगे ही नहीं। बचेगा एक माधुर्य, एक स्वाद अमृत का। तुम्हारे रोएं-रोएं में प्रतिध्वनित होगी एक मधुर ध्वनि, एक मधुर रव--अनाहत का, ओंकार का। लेकिन तुम ज्ञानी नहीं हो जाओगे। उत्तर ही पास न हों तो तुम ज्ञानी कैसे होओगे? जहां रहस्य का अनुभव होता है, वहां व्यक्ति निर्दोष हो जाता है। या व्यक्ति निर्दोष हो जाए, तो रहस्य का अनुभव हो जाता है। निर्दोषिता तुम्हारी तरफ से और परमात्मा की तरफ से रहस्य की वर्षा हो जाती है।
और ध्यान रखना, दिन बहुत थोड़े हैं। समय बहुत कम है। राह खोजनी है कि निर्दोष हो सको। राह खोजनी है कि उसके रहस्य से जुड़ सको।
थाह मिल पाती नहीं है,
जो तुम्हारी दिव्य मंजिल से मिले
वह राह मिल पाती नहीं है
शायद हम गलत दिशा में खोजते हैं। हम बाहर खोजते हैं, इसलिए राह नहीं मिल पाती।
स्वयं में उतरना पड़े; राह वहां है। अपने ही अंतस्तल की सीढ़ियों में उतरना है। अपने ही चेतना के कुएं में उतरना है; राह वहां है। स्वयं को जानने में ही उसे जाना जाता है। आत्म-परिचय ही उसका परिचय बन जाता है। और हम खोजते हैं वेद में, कुरान में, बाइबिल में, धम्मपद में, जेंदा अवेस्ता में--और हम कहां-कहां नहीं खोजते! हम मुर्दा किताबों में खोजते हैं और वह तुम्हारे भीतर जीवंत बैठा है, तुम्हारे चैतन्य की तरह। वह खोजने वाले में खोजने वाले की तरह बैठा है। वह कोई लक्ष्य नहीं है दूर कि तुम्हें तीर बनना है और उस लक्ष्य से जा कर जुड़ जाना है। वह तुम्हारे भीतर, तुम्हारे साथ, तुम्हारा अंतरतम है। तुम्हारा स्वभाव है। जब तक बाहर खोजोगे, नहीं पा सकोगे। जब भीतर झांकोगे, खोना भी चाहो तो नहीं खो सकोगे।
जिन्होंने बाहर खोजा, व्यर्थ भटके हैं; जिन्होंने भीतर खोजा, वे हंसे मूढ़ता पर अपनी, औरों की, कि कैसा पागलपन है! जो संपदा अपने घर में पड़ी थी, हम कहां-कहां न खोजते फिरे? किन-किन द्वारों पर झोली न फैलाई? कहां-कहां दुतकारे नहीं गए--आगे बढ़ो! जहां गए, वहीं--आगे बढ़ो! अपने हाथ भिखारी हुए, जब कि सम्राट की भांति पैदा हुए थे।
मगर समय बहुत कम है। इस सम्राट से परिचित होना जरूरी है। पलटू कहते हैं, जीवन है दिन चार... ।

उम्रे-दराज मांग कर लाए थे चार दिन
वह जो उर्म का मालिक है, उम्र का बांटने वाला वह जो विधाता है, उससे चार दिन मांग कर ले आए थे।
उम्र-दराज मांग कर लाए थे चार दिन,
दो आरजू में कट गए दो इंतजार में।
दो आशाओं में कट गए, वासना में कट गए, कामना में कट गए, वासना के बीज बोने में कट गए--और फिर दो इस इंतजार में कि अब चीजों में से निकलते होंगे अकुर, कि अब पौधे लगेंगे, कि अब फूल लगेंगे, कि अब फल लगेंगे। ऐसे ही लोग दिन काट लेते हैं जीवन के। आधी जिंदगी कामना में, आधी जिंदगी--अब कामना पकी, अब पकी! हम सब शेखचिल्ली हैं।
तुमने शेखचिल्ली की कहानी सुनी न!
वह एक खेत में चोरी करने घुस गया। बाजरे के भुट्टे पक गए थे, उनकी सुगंध हवा में थी। बाजरे के भुट्टे सिर उठाए खड़े थे। खेत के किसान का दूर-दूर कुछ पता न था। शेखचिल्ली ने सोचा, यह मौका छोड़ना ठीक नहीं। और बाजरे के पौधे इतने बड़े थे कि उनके भीतर छिप जाए तो पता भी न चले। तो छिप गया। इकट्ठे करने लगा बाजरे के भुट्टे। झोली भर ली पूरी। बड़ा प्रसन्न था। सोचने लगा, बाजार में बेचूंगा, इतने दाम मिलेंगे। मुर्गी खरीद लूंगा। अंडे होंगे--रोज-रोज अंडे देगी मुर्गी--फिर जल्दी गाय खरीद लूंगा, फिर भजस और फिर यात्रा बढ़ती चली गई।
अभी खेत में ही है। अभी भुट्टे इकट्ठे ही कर रहा है। लेकिन मन बहुत दूर की यात्राओं पर निकल गया। यहां तक कि ख्याल आया उसे कि जब भैंस से काफी दूध बेच लूंगा और भैंस के बच्चे होंगे, उनको भी बेच लूंगा, इतना धन हो जाएगा कि खेत ही खरीद लूंगा। यह खेत प्यारा है; इसी खेत को खरीद लूंगा। और तभी मन में एक डर आया कि चोर घुस जाए खेत में, फिर? कोई भुट्टे तोड़ ले जाए, फिर? तो कहा, यह खेल नहीं मेरे खेत से भुट्टे तोड़ना। खड़े होकर ऐसी आवाज दूंगा कि मीलों तक दहाड़ हो जाएगी। और खड़े हो उसने आवाज दी--सावधान!! और किसान जिसका खेत था, वह आ गया। चोर पकड़ा गया सारे भुट्टों के साथ।
किसान भी चौंका, उसने कहा कि चोरी मेरी समझ में आती है, थोड़ी-बहुत चोरी होती ही है, मगर यह खड़े होकर सावधान क्यों चिल्लाए? यह मेरी समझ में नहीं आता। मगर तुम इसका राज मुझे बता दो तो मैं तुम्हें छोड़ दूं, भुट्टों सहित छोड़ दूं। वह चोर कहने लगा, यह न पूछो तो अच्छा! तुम्हें जो सजा देनी हो दे लो, मगर यह राज मैं न कह सकूंगा कि कैसे मैंने सावधान कहा। इसमें मेरी बड़ी दीनता है; इसमें मेरी बड़ी मूढ़ता है।
नहीं माना किसान तो कहानी बतानी पड़ी। ऐसे तो कहानी पता चली शेखचिल्ली की।
अभी कुछ भी न हुआ था और बात कहां से कहां तक पहुंच गई। बात में से बात निकलती गई। कामना में से कामना निकलती गई, नये-नये अंकुर खिलते गए।
दो दिन तो हम कामना में बिता देते हैं, जो कि व्यर्थ गए, क्योंकि कामना
के किसी बीज से काम्य उपलब्ध नहीं होता। कामना का बीज दग्ध होता है तब काम्य उपलब्ध होता है। कामना के बीज से काम्य उपलब्ध नहीं होता। और फिर दो बीज बो कर हम बैठते हैं, प्रतीक्षा करते हैं कि अब... कि अब, कि अब आया वसंत, कि अब आई ऋतु। कि आखिर इसी तरह कामना करने वालों ने तो कहावत गढ़ ली है कि उसकी दुनिया में देर है अंधेर नहीं है। तो देर तो काफी हो गई, अंधेर तो उसकी दुनिया में है नहीं, बस अब आता ही होगा फल! अब स्वर्णमुद्राएं बरसती ही होंगी! और ऐसे ही शेखचिल्लियों ने विचार कर लिए हैं कि जब वह देता है, छप्पर फाड़ कर देता है।
दो दिन कट जाते हैं कामना में, दो दिन कट जाते हैं इंतजार में। और चार
ही दिन हमारे पास हैं। चार दिन भी कहां हैं!
अगर आदमी की जिंदगी को गौर से देखो तो यह वक्तव्य सही मालूम होगा-- जीवन है दिन चार... ।
चार दिन प्रतीक हैं।
इस देश में हमने जीवन को चार हिस्सों में बांटा है। पच्चीस साल--अगर
सौ साल आदमी की जिंदगी हम कल्पित कर लें, अनुमानित कर लें--तो पहला दिन

पच्चीस साल, वे कट जाते हैं शिक्षा में, विश्वविद्यालय में, गुरुकुल में। फिर दूसरा दिन, पच्चीस साल गृहस्थ। वे कट जाते हैं दुकानदारी, शादी-विवाह, बाल-बच्चे। फिर तीसरा दिन हमने माना है वानप्रस्थ। इस आशा में कि अब जंगल की तरफ जाएंगे। अब घर-गृहस्थी से काम निबटा, अब बच्चे भी बड़े हो गए। पचहत्तर वर्ष की उम्र तक जंगल जाने की आकांक्षा। और फिर चौथा दिन संन्यास का; पचहत्तर से सौ वर्ष। फिर प्रभु को स्मरण करेंगे। लेकिन जिंदगी सौ साल की होती कहां! कल का भी भरोसा नहीं है। इसलिए जो लोग सोचते हैं कि अंतिम चरण में, पचहत्तर सौ साल के बीच में संन्यस्त हो जाएंगे, प्रभु का स्मरण करेंगे, भजन में डूबेंगे, वे चूक जाएंगे। फिर एक बात और ख्याल रखना, कि वह जो तीन दिन तुमने गुजारे हैं गलत, वे इतनी आसानी से पीछा नहीं छोड़ देंगे। वे आदत बन जाएंगे। वे अंत तक तुम्हारा पीछा करेंगे।
इसलिए महावीर और बुद्ध ने एक महाक्रांति की इस देश में। इस देश के आध्यात्मिक इतिहास में महावीर और बुद्ध से ज्यादा और ज्योतिर्मय और नाम नहीं हैं। क्योंकि उन्होंने बहुत अर्थों में क्रांति की। यह जो चार का विभाजन था, ये जो जीवन के चार आश्रम थे, उन्होंने खंडित कर दिए, छिन्न-भिन्न कर दिए। क्योंकि उन्होंने कहा, कल का तो भरोसा नहीं है, तुम सौ साल का हिसाब लगा रहे हो! संन्यास कल नहीं, आज। संन्यास घड़ी भर बाद नहीं, अभी। भारत के पंडित-पुरोहित महावीर और बुद्ध को आज भी क्षमा नहीं कर पाए हैं। और उसका कारण है। क्योंकि अगर संन्यास आज, तो पंडित-पुरोहित का उपयोग आज ही व्यर्थ हो गया। संन्यारी को क्या लेना पंडित-पुरोहित से? गृहस्थ होता तो बच्चे होते, यज्ञोपवीत होता, हवन होता, सत्यनारायण की कथा होती; पूजा भी करवानी होती, दीवाली, होली, उत्सव होते; पंडित-पजारी को भेंट भी देनी होती। स्वयं संन्यस्त्त हो गया, स्वयं ध्यान के जगत में लीन हो गया, अब पंडित-पुजारी के पास देने को उसे क्या है? संन्यस्त हुआ अर्थात संतों से जुड़ गया। जो संतों से जुड़ गया, उसके लिए पंडित-पुजारी दो कौड़ी के हो गए, खिलौने हो गए। अब वह बच्चा नहीं रहा कि खिलौनों में उलझा रहे। महावीर और बुद्ध ने यह कह कर कि संन्यास आज, पंडित-पुरोहित के पैर के नीचे से जमीन खींच ली। इसलिए अगर ब्राह्मण उन्हें क्षमा नहीं कर पाया तो कुछ आश्चर्य नहीं है। आज भी नहीं कर पाया। पच्चीस सौ साल बीत गए हैं लेकिन उसकी नाराजगी भयंकर है।
पच्चीस साल विद्यार्थी रहते तो भी पंडित के पास रहना पड़ता। कौन पढ़ाता? कौन व्याकरण, कौन संस्कृत समझाता? पंडित ही समझाता। फिर पच्चीस साल गृहस्थ रहते तो पंडित ही... जन्म से लेकर मरने तक सारा हिसाब पंडित के हाथ में है। जन्मपत्री बनाता, जन्मकुंडली बनाता; बच्चे के संस्कार देता; विवाह करवाता। फिर पचास वर्ष में वानप्रस्थ होते तो किससे पूछते? वही पंडित वानप्रस्थ होने की शिक्षा देता। और जो पचहत्तर वर्ष तक मूढ़ता में जिआ और पंडित के सहारे जिआ, वह अगर संन्यस्त भी होता पचहत्तर वर्ष में तो भी इसी पंडित से उसका संन्यास घटने वालाथा। इस पंडित को भी संन्यास नहीं घटा है, वह उसे संन्यास की भी दीक्षा दे देता। यह जिंदगी चार दिन की ऐसे ही बीत जाती।
महावीर ने यह चार का गणित, बुद्ध ने यह चार का गणित तोड़ दिया। कहा कि न
तो चार आश्रम हैं और न चार वर्ण। न तो कोई ब्राह्मण है, न कोई क्षत्रिय, न कोई शूद्र, न कोई वैश्य। सभी शूद्र हैं। जो ज्ञान को उपलब्ध हो जाए, वह ब्राह्मण। बुद्ध ने कहाः ब्रह्म को जो जाने सो ब्राह्मण। और कल का कोई भरोसा नहीं है, इसलिए आज, तत्क्षण जो जागने को तैयार है, वही संन्यस्त। भारत की तो सारी-की-सारी आधारशिला इन्हीं चारों पर टिकी थी--चार वर्ण और चार आश्रम। यह पूरा गणित तोड़ दिया बुद्ध और महावीर ने।
मगर पंडित हारे नहीं। बुद्ध-महावीर के जाते ही उन्होंने फिर अपना जाल फैला लिया--और भी मजबूती से फैला लिया और भी सरुक्षा से फैला लिया कि फिर कोई दोबारा न तोड़ पाए। पच्चीस सौ साल में फिर बहुत कोशिश हुई--कबीर ने कोशिश की, नानक ने कोशिश की, पलटू ने कोशिश की, नहीं टूटा, नहीं टूटा।

भारत की छाती पर पंडित का बड़ा जाल है। भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य है
कि भारत पंडितों के हाथ में है। इनके कारण अतीत से मुक्त नहीं हो पाता। और जिंदगी छोटी है। और पंडित का जाल बड़ा है।
जीवन है दिन चार भजन करि लीजिए।
टालो मत कल पर। भगवान को याद करना हो तो अभी कर लो। कल की तो बात ही मत उठाना। जिसने कहा, कल, उसने कहा, नहीं। जिसने कहा, नहीं, उसने कहा, कभी नहीं। भगवान को स्थगित नहीं किया जा सकता। प्रेम को कोई स्थगित करता है, टालता है? प्रेम के लिए तो आतुरता होती है कि अभी हो। पलटू कहते हैं, भजन कर लो। कोई बहाने न खोजो। बहाने खोजे, बहुत महंगे पड़ेंगे। फिर बहुत पछताओगे। फिर पछताने से भी कुछ होगा नहीं।
भजन का क्या अर्थ होता है? बैठ कर मंजीरा बजा लिया, कि बैठ कर राम-राम
की धुन कर ली, कि राम-नाम का अखंड पाठ कर लिया? नहीं, इन औपचारिकताओं से भजन नहीं होता। भजन का तो अर्थ हैः प्राण प्रभु के प्रेम में पगें; एक धुन भीतर बजती रहे, अहर्निश; उठते, बैठते एक स्मरण सतत बना रहे; एक धारा, अंतर्धारा बहती रहे--प्रभु की। जो देखो, उसमें प्रभु दिखाई पड़े। जो करो, उसमें प्रभु दिखाई पड़े। जहां चलो, जहां बैठो, वहां तीर्थ अनुभव हो; क्योंकि वह सर्वव्यापी है। जिस भूमि पर हम चलते, उसकी भूमि; जिस भूमि पर बैठते, उसकी भूमि।
सारा जगत परम पुनीत है, पावन है, क्योंकि परमात्मा से आपूर है।
बोलो तो उसने बोलना; सुनो तो उसको सुनना; हवाएं वृक्षों से गुजरें तो उसकी आवाज स्मरण रखना; कोयल पुकारने लगे दूर से तो उसने ही पुकारा है कोयल के रूप में, ऐसा अनुभव करना। ऐसी प्रतीति की सघनता का नाम भजन है। बैठ गए और कोई बंधी-बंधाई पंक्तियां दोहरा लीं, तो भजन नहीं होता। तोतारटंत है; भजन का धोखा है।
और ध्यान रखना, धोखे सस्ते होते हैं, मुफ्त होते हैं। भजन करना तो एक अपूर्व कीमिया है। तुम्हारे सारे जीवन को एक नया रंग दे जाएगा भजन, एक नई शैली।
इति हुई इतिहास की यदि, नेति का धर धयान, मन!
सेति हा हा हेति सुनकर, धन न उस पर कान, मन!

कल्पना के कल्पतरु पर यदि न खिलता फूल मौलिक,
हो न हो हो गई कोई मूल के प्रति भूल मौलिक;
मूल से तू मौलिक तक फिर रच नया सोपान, मन!

वज्रकीलित कोकिला का कंठ यदि अमराइयों में, वज्र को मत देख, बनकर बीज गल गहराइयों में; विसर्जन से मांग सर्जन का पुनः वरदान, मन!

दूर हंसध्वनि गई, आई-गई यदि प्रतिध्वनि है,
छिन्न होकर गगन से यदि खिन्न पथराई अवनि है;
शून्य के अंतःकरण में सुन अतल का गान, मन!

अनसुनी रहती नहीं है अनसुनी आवाज कोई,
अलख सुनता है कहीं जब सिसकता है साज कोई;
हो न कुछ गुंजान में जब, साध फिर सुनसान, मन!
... नेति का धर ध्यान, मन! भजन की पहली प्रक्रियाः नेति-नेति। जो-जो तुमने मान रखा है मूल्यवान, उस सब से मूल्य को खींच लेना है। धन को मूल्यवान माना है, कहनाः नहीं, यह नहीं। मकान को मूल्यवान माना है, कहनाः नहीं, यह नहीं। नाते-रिश्तों को मूल्यवान माना है, कहनाः नहीं, यह नहीं। नेति-नेति से अब तक तुमने मूल्यों का जो एक जगत निर्माण किया है, उसकी आधारशिला खींच लो। जिस दिन तुम्हारे सारे तथाकथित, झूठे, कृत्रिम मूल्य गिर जाएंगे, उस दिन तुम्हें पता चलेगाः इति-इति। फिर जो शेष रह जाएगा, मानवीय मूल्यों के हट जाने के बाद जो निसर्ग शेष रह जाएगा, वही है, वही है।

यह नहीं, यह नहीं--यह मनुष्य के मूल्यों के खंडन की प्रक्रिया। फिर जब सारे मनुष्य-मूल्य खंडित हो गए, तब जो शेष रह गया--जो तुमने नहीं बनाया है, जिसमें तुम्हारा कोई हाथ नहीं है; जो तुमसे पहले था, तुम हो तो है, तुम नहीं होओगे तो भी होगा; जो तुमसे बाहर भी है और तुम्हारे भीतर भी है--फिर जब वही शेष रह गया, शुद्ध निसर्ग, तब एक प्रतिध्वनि भीतर उठती है--यही है, यही है। सर्व खल्विदं ब्रह्म। उस दिन अनुभव होता हैः सब वही है।
इति हुई इतिहास की यदि, नेति का धर ध्यान, मन!
सेति हा हा हेति सुनकर, धर न उस पर कान, मन!
अब तक तो हमने जो भी किया है, बड़ा भूल-चूक भरा है। मूल से ही भूल है। कल्पना के कल्पतरु पर यदि न खिलता फूल मौलिक,
अगर तुम्हारे जीवन में कमल नहीं खिल रहा है, तो पुनर्विचार करो! अगर तुम्हारी झाड़ी पर गुलाब नहीं ऊग रहे हैं, तो पुनर्विचार करो!
कल्पना के कल्पतरु पर यदि न खिलता फूल मौलिक,
हो न हो हो गई कोई मूल के प्रति भूल मौलिक;
मूल से तू मौलि तक फिर रच नया सोपान, मन!
अब हमें फिर एक नई सीढ़ी बनानी पड़ेगी। उसी सीढ़ी बनाने की कला का नाम संन्यास है। एक तुमने बनाया है संसार। उसमें कहीं मूल में भूल हो गई है। क्योंकि चाहते तो सुख हो, पाते दुख हो। आशा तो करते हो फूलों की, सिर्फ कांटे लगते हैं। कांटों पर कांटे लगते जाते हैं। जैसे-जैसे दिन बीतते, कांटे और बड़े होते जाते, छाती में चुभते जाते। चाहे थे फूल, मिलते हैं शूल। सोचा था छाया मिलेगी शीतल, मिलती है दोपहर, दोपहर की तपती धूप, बरसती आग। आशा की थी आकाश-कुसुम झरेंगे, मगर झरते हैं केवल अंगारे।
तुम अपनी जिंदगी ही देखो!
क्या सोचते हो, क्या मिलता है? ठीक उलटा मिलता है। चाहा सम्मान, मिलता अपमान। चाहे गीत, मिलती गालियां। कहीं मूल में ही कुछ भूल हो रही है। बीज तो तुम बो रहे हो नीम के और आशा कर रहे हो आम की। नीम के बीज से तो नीम ही पैदा होगी। कड़वाहट-कड़वाहट ही फैल जाएगी। माधुर्य का जन्म नहीं हो सकता। मूल से तू मौलि तक फिर रच नया सोपान, मन!
संन्यास का इतना ही अर्थ है कि अब हम फिर से गिरा ही दें इस मकान को, जो हमने बनाया। इसमें ही टीम-टाम करना, इसीमें रंग बदल देना, इसीमें थोड़ी सजावट कर लेना, इससे कुछ भी न होगा। एक नया ही जीवन का मंदिर बनाना है। मूल से ही आधार बदलने होंगे। बुनियाद के पत्थर ही बदलने होंगे। अभी बुनियाद के पत्थर हैं वासना के, विचार के, कामना के, कल्पना के; तब मूल में आधार रखना होगा ध्यान का। ध्यान की आधारशिला पर जो मंदिर बनता है, वह संन्यास है। और विचार की आधारशिला पर जो मंदिर बनता है, वह संन्यास है। और विचार की आधारशिला पर जो मकान बनता है, वह संसार है। कामना के पत्थरों से तुम जो दीवालें बनाते हो, वे तुम्हें ले डूबेंगी, कब्रें बन जाएंगी। करुणा से, काश, तुम अपनी दीवालें बना सको, तो तुम एक ऐसा मंदिर बनाओगे जो शाश्वत का है; जिसका फिर कोई अंत नहीं है।
वज्रकीलित कोकिला का कंठ यदि अमराइयों में,
वज्र को मत देख, बन कर बीज गल गहराइयों में;
तुम्हें गलना सीखना होगा--अभी तुमने सिर्फ बचना सीखा है। कैसे बचते रहें? लोग बस बचने में लगे हैं। सब तरफ से सुरक्षित हो जाएं, सब तरफ सुरक्षा की एक दीवाल खड़ी कर लें--लोहे की हो तो और भी अच्छी--उसकी आड़ में छिप जाएं। तुमने सुरक्षा के मोह में जीवन गंवा दिया है। जीवन तो उनका है जो गलना जानते हैं--बीज की तरह गलना जानते हैं। क्योंकि बीज जब गलता है, तभी अंकुरित होता है।
वज्र को मत देख, बन कर बीज गल गहराइयों में;
विसर्जन से मांग सर्जन का पुनः वरदान, मन!
और धन्यभागी हैं वे जो विसर्जित होने को राजी हैं। क्योंकि जो अपने
को विसर्जित कर देता है, जो अपने को मिटा देता है उस परम ऊर्जा में, जो उसके सागर में बूंद की तरह लीन हो जाता है, उसके जीवन में बड़ी सृजनात्मकता पैदा

होती है। उसके जीवन में बड़े काव्य का आविर्भाव होता है। वह फिर जो छुए, वही सोना हो जाता है। अभी तो तुम जो छूते हो, वही मिट्टी हो जाता है।
दूर हंसध्वनि गई, आई-गई यदि प्रतिध्वनि है,
छिन्न होकर गगन से यदि खिन्न पथराई अवनि है;
शून्य के अंतःकरण में सुन अलत का गान, मन!
भजन का अर्थः
शून्य के अंतःकरण में सुन अतल का गान, मन!
भजन तुम्हें नहीं करना होता, भजन तुम्हें सुनना होता है। तुम तो शून्य होकर सिर्फ सुनने वाले रह जाओ और उठने लगेगा भजन। तुम्हारी ही गहराइयों से उठेगा एक संगीत और आच्छादित कर लेगा तुम्हें। तुम्हारे ही भीतर से ऊंगेंगे फूल और तुम सुवास में डूब जाओगे।
शून्य के अतःकरण में सुन अतल का गान, मन!
अनसुनी रहती नहीं है अनसुनी आवाज कोई,
अलख सुनता है कहीं जब सिसकता है साज कोई;
और भजन तुम्हारा सूखा-सूखा हुआ तो व्यर्थ चला जाएगा। उसमें आर्द्रता चाहिए। उसमें प्रेम का गीलापन चाहिए। आंखों में प्रीति के, आनंद के अश्रु चाहिए। जब तुम्हारे गीले साज पर कोई भजन गाया जाएगा, तो जरूर सुना जाता है--अलख उसे सुनता है।
अलख सुनता है कहीं जब सिसकता है साज कोई;
तुम्हारा भजन सिसकी होना चाहिए। तुमने तो भजन को भी एक प्रदर्शन बना लिया है। मंदिर में जा कर, जोर-जोर से घंटा बजा कर--कैसे भगवान कोई बहरा होग! पहले घंटा बजाओ, सोए भगवान को जगाओ! जगाना खुद को है, जगा रहे हो भगवान को घंटा बजा-बजा कर! और फिर जोर-जोर से चिल्ला कर भजन करो; ताकि पास-पड़ोस के लोग सुन लें कि तुम महान धार्मिक व्यक्ति हो! ताकि तुमने जो चोरियां की हैं, बेईमानियां की हैं, धोखेधड़ियां की हैं, वे सब तुम्हारे भजन में छिप जाएं, भजन की आड़ में हो जाएं। मंदिर के घंटे की आवाज, भजन-पूजा में चढ़ाए गए फूल, अर्चन की धूप, इस सब धुएं में छिपा लेना चाहते हो तुम अपने को। यह सब धोखा है। मंदिरों में भजन नहीं होते। भजन तो होते हैं एकांत में, जहां हृदय सिसकता है; जहां.जार-.जार रोते हो तुम। किसी को बताने की थोड़े ही बात है! इसका कोई प्रदर्शन थोड़े ही करना है! यह कोई अभिनय तो नहीं है! यह कोई प्रदर्शनी तो नहीं! इसकी कोई नुमाइश तो नहीं सजानी है!
अलख सुनता है कहीं जब सिसकता है साज कोई;
हो न कुछ गुंजान में जब, साध फिर सुनसान, मन?
सुनसान को साधो। कहने को कुछ भी नहीं होता है भजन में। कहने को है क्या हमारे पास? रो लें तो बहुत। शब्द क्या कहेंगे, आंसू ही कह सकते हैं। नृत्य कह सकता है। आंखें कह सकती हैं। सन्नाटा कह सकता है। चित्त का ठहरा हुआ प्रवाह कह सकता है। निस्तरंग भाव की दशा कह सकती है। और कैसे कहोगे? लेकिन लोगों ने तोतों की तरह भजन रट लिए हैं। हरे कृष्णा, हरे रामा। कहे जा रहे हैं यंत्रवत। कहीं कोई भाव का तालमेल नहीं है। हृदय साथ ही नहीं है, खोपड़ी में ही आवाज गूंज रही है; इसलिए गीली भी नहीं है, रूखी-सूखी है।
जीवन है दिन चार, भजन करि लीजिए।
तन मन धन सब वारि संत पर दीजिए।।
परमात्मा पर तो तन-मन-धन वारने को बहुत लोग तैयार हो जाते हैं।
क्योंकि परमात्मा न तो दिखाई पड़ता, न डर है उससे कुछ। तो लोग तैयार हैं, परमात्मा पर तो सब वारने को तैयार हैं। लोग बड़े कुशल हैं, बड़े चालबाज हैं। परमात्मा तो कहीं मिलेगा नहीं कि तुमसे कहे कि कुछ दो; कि लाओ, तुमने कहा था कि सब वारने को तैयार हूं; दो तन, दो धन, दो मन, परमात्मा तो कहीं कहेगा नहीं; परमात्मा तो निराकार है, वह तो बोलेगा नहीं; सो ठीक सुविधा है, परमात्मा पर सब दान करने को लोग तैयार हैं। लोग कहते हैं हमने तो भगवान के चरणों में अपने को छोड़ दिया है। तुम जैसे हो वैसे-वैसे रहते हो।
लोग ऊंचे-ऊंचे शब्द, बड़े-बड़े शब्दों का उपयोग करके खूब चालबाजियां करते हैं। मनुष्य को प्रेम नहीं करेंगे, मनुष्यता को प्रेम करेंगे।

मनुष्यता कहीं मिलती हैं? मनुष्यता से डर क्या है? जब भी कहीं कोई मिलता है, मनुष्य मिलता है। तुमने कभी मनुष्यता के दर्शन किए? लेकिन अगर लोगों से कहो कि मनुष्य को प्रेम करो, तो अड़चन होती है, क्योंकि मनुष्य को प्रेम करने का मतल हैः आकार, सगुण। उससे तो झंझट पैदा होती है। मनुष्य को प्रेम करना बहुत कठिन। अपनी पत्नी को प्रेम करना कठिन, अपने पति को प्रेम करना कठिन, अपने बच्चों को प्रेम करना कठिन। कोशिश करते हैं लोग; लेकिन सब कोशिशें हार जाती हैं। मनुष्यता को प्रेम करना बहुत आसान है। कोई झंझट ही नहीं है। मनुष्यता कहीं मिलती ही नहीं है। इसलिए लोग ऊंचे-ऊंचे शब्दों की आड़ में बेईमानियां करते हैं। राष्ट्र को प्रेम करे हैं। अब राष्ट्र कहां है? भारतमाता को प्रेम करते हैं। अपनी माता को प्रेम नहीं कर पाते! क्योंकि अपनी माता झंझट खड़ी करती है। भारतमाता, बिल्कुल ठीक।
तसवीरें बनी थीं, अभी भी कुछ घरों में लटकी हैं। भारतमाता बैठी हैं, सिंह के ऊपर, तिरंगा झंझा लिए! लगता है किसी सर्कस में हैं या क्या मामला है? लेकिन भारतमाता को प्रेम किया जा सकता है। एकाध माता को प्रेम करो, तब तुम्हें वह छठी का दूध याद दिला देगी! लेकिन भारतमाता से कुछ लेना-देना नहीं है, थोथे शब्द हैं--मनुष्यता, भारतमाता, भगवान!
पलटू ठीक कहते हैं; सीधे आदमी हैं, साफ आदमी हैं, गर्दन से पकड़ लेते हैं--
तन मन धन, सब वारि संत पर दीजिए।।
अगर भगवान से कुछ भी संबंध जोड़ना हो, तो कोई सगुण रूप में उसे पकड़ना होगा। वहीं कसौटी होगी।
संत परमात्मा का साकार रूप है। संत का अर्थ हैः जहां सत्य ने देह धरी।
जहां सत्य छुआ जा सकता है, देखा जा सकता है, सुना जा सकता है। जहां सत्य के साथ संवाद हो सकता है। जहां सत्य के साथ संबंध हो सकता है।
तन मन धन, सब वारि संत पर दीजिए।।
तो ही समझना कि तुम्हारे भजन में कुछ अर्थ है; अन्यथा थोथी बकवास है।
और बचाना कुछ भी मत। और मजा यह है कि संत तुमसे कुछ भी नहीं चाहता--न तुम्हारा तन चाहता है, न मन चाहता है, न धन चाहता है। कुछ उसे चाहिए नहीं। तुम्हारे पास उसे देने को है भी क्या? संत तो सब कुछ तुम्हें देना चाहता है। अगर वह दे केवल उन्हीं को सकता है जो सब देने को तैयार हैं। यद्यपि संत को लेने को कुछ भी नहीं है तुम्हारे पास। क्या है तुम्हारे पास जो तुम उसे दोगे? लेकिन तुम्हारे देने की तैयारी!
गुरजिएफ के जीवन में उल्लेख है... गुरजिएह इस सदी के बड़े सदगुरुओं में एक। और इस सदी के ही क्यों, सारी सदियों के कुछ बड़े सदगुरुओं में एक था। उसके अपने अनूठे ढंग थे।
एक बहुत बड़े धनपति की पत्नी उसकी शिष्या हो गई। औपचारिक रूप से ही उसने कहा कि सब आपके चरणों में चढ़ाती हूं। गुरजिएफ ने कहा, सोच ले! सब? थोड़ी डरी और झिझकी, लेकिन अब कह चुकी थी, तो उसने कहाः हां, सब। तो गुरजिएफ ने कहा कि जितने हीरे-जवाहरात, जितने मोती-माणिक्य तेरे पास हों, सबकी पोटली बांध कर ले आ! अब बहुत घबड़ाई! मामला ऐसा हो जाएगा, यह नहीं सोचा था-- यह तो औपचारिकता से कहा था। यह तो मामला ऐसा हो गया जैसे मेहमान तुम्हारे घर में आए और आप कहेंः आइए, आइए, आपका ही घर है! और फिर वह जम कर ही रह जाए। वह कहे, तुम्हीं ने तो कहा था; आपका ही घर है! सब आपका है! औपचारिक शिष्टाचार की बात उसने कही थी कि सब आपके चरणों में समर्पित है, इसका कोई मतलब यह नहीं था कि समर्पित है। लेकिन गुरजिएफ ने तो कहा कि ठीक!
बड़ी बेचैन, रात भर सो न सकी। पास में जो महिला आश्रम में थी, उसने पूछा
कि सो नहीं रही हो, बात क्या है! तो उसने अपनी दुख-कथा कही कि यह मामला तो बहुत महंगा हो गया। यह तो करोड़ों के हीरे-जवाहरात मेरे पास हैं। यह मैं कैसे दे दूं? अभी इस आदमी को मैं ठीक से जानती भी नहीं, नई-नई आई हूं--तुम तो यहां वर्षों से हो, तुम्हारा क्या ख्याल है? उसने कहा, तुम बिल्कुल फिकर मत करो। जब मुझसे कहा था कि सब दे दो, तो मेरे पास जो भी था--मेरे पास करोड़ों के तो नहीं थे, मगर कोई लाख-दो लाख के गहने मेरे पास भी थे--मैंने सब पोटली बांध कर दे दी थी। उस धनी महिला ने पूछा, फिर क्या हुआ? उसने कहा, फिर यह

हुआ कि दूसरे दिन सुबह गुरजिएफ ने वह मुझे वापस कर दिया। तो उसने कहा, अरे! निश्चिंत हुई।
उसने सब बांधी पोटली, जाकर गुरजिएफ को उसी रात सब दे आई--करोड़ों रुपये
का जो भी साज-सामान उसके पास था। दूसरे दिन सुबह रास्ता देखा कि वह वापस लौटे, वह वापस नहीं लौटा। तीसरे दिन, चौथे दिन... अब वह घबड़ाने लगी। उसने फिर पड़ोस की महिला से कहा कि भई, कितनी देर लगेगी? उसने कहा, मैं नहीं जानती; मुझे तो दूसरे दिन वापस मिल गया था।
आखिर उसने जाकर गुरजिएफ को पूछा। गुरजिएफ खूब खिलखिला कर हंसने लगा
और उसने कहाः तेरा वापस नहीं लौटेगा। उसका वापस लौटा था, क्योंकि उसने सच में दिया था। तूने तो दिया ही नहीं, वापस क्या खाक! वापस तो तब लौटे जब तू दे! अभी देना ही नहीं हुआ है, तो मैं वापस भी क्या करूं? उसने दिया था। वापस की कोई आकांक्षा से नहीं दिया था। दिया ही था, समग्र मन से दिया था। सो मुझे लौटा देना पड़ा। करता भी क्या? तूने तो अभी दिया ही नहीं है--अभी मुझे मिला कहां? अब तो वह महिला और घबड़ाई कि यह तो हद हो गई! मैं दे भी गई और यह आदमी यह कह रहा है कि मिला भी नहीं; अभी तो मिला भी कहां, वापस मैं क्या लौटाऊं?
लेकिन गुरजिएफ ठीक कह रहा है।
गुरु को अगर तुम दे सके, तो सब वापस लौट जाता है--शायद हजार गुना होकर वापस लौट जाता है। शायद देने की, लेने की जरूरत ही नहीं पड़ती, भाव की ही बात पर्याप्त हो जाती है। मगर बेईमानी नहीं चल सकती।
गुरजिएफ ने लौटा दिया उसका सारा धन और उससे कहाः दरवाजे के बाहर हो जा। यह स्थान तेरे लिए नहीं। यह कोई सौदा नहीं है। यह कोई व्यवसाय नहीं है। यहां हम किसी आत्मिक क्रांति में संलग्न हैं। फिर तो वह बहुत पछताई, बहुत कहा कि ले लें। गुरजिएफ ने कहाः अभी नहीं, अभी तू जा। अभी भी तू कह रही है कि ले लें इसी आशा में कि वापस लौटाऊंगा। जिस दिन वापस लौटाने की कोई भी आकांक्षा भीतर न रह जाए, वापस पाने की कोई भी भावना न रह जाए, उस दिन आना, उस दिन देखूंगा। और पक्का नहीं कहता कि लौटाऊंगा। वह महिला फिर कभी दुबारा नहीं गई।
तन मन धन, सब वारि संत पर दीजिए।।

धूप है ज्यादा कम है छाया
आखिर यह मौसम भी आया!
टूट चुका है नींद का जाद
कोई सपना साथ नहीं है
कहने को तो है बहुतेरा
वैसे कोई बात नहीं है।
सारी रात रहा खुलता जो
सुबह वही घूंघट शरमाया
धुंधली हैं तारों की गलियां पाप के रस्ते चमकीले हैं कांटे हैं वैसे के वैसे
फूलों के चेहरे पीले हैं खुशबू भटके मारी-मारी
मधुबन का हर अंग लजाए!
सांझ के दरवाजे तक हमको
छोड़ गई हैं दिन की राहें
बस्ती के ऊपर फैली हैं
सांपों जैसी काली बांहें मौत के रंग से ज्यादा गहरा उजले इंसानों का साया!
गीत के सौदे करने वाले
दर्द की कीमत को क्या जानें कौन उन्हें जाकर समझो

बिकते नहीं कभी दीवाने!
अंधकार के रंगमहल में
कब कोई सूरज सो पाया!
तेज बहुत हैं वक्त के पहिए अब रुकने की बात करें क्या! राह में क्या कुछ टूटा-फूटा सोच इसे हम आंख भरें क्या!
आओ अब सामान संभालें
देर हुई यह शहर पराया!
परदेश में हैं हम।
देर हुई यह शहर पाया!
आओ अब सामान संभालें
जीवन है दिन चार, भजन करि लीजिए।
तन मन धन, सब वारि संत पर दीजिए।।
संतहिं से सब होइ, जो चाहै सो करैं।
अरे हां, पलटू संग लगे भगवान, संत से वे डरैं।।
कैसा अदभुत वचन कहा है! कहा कि--
अरे हां, पलटू संग लगे भगवान, संत से वे डरैं।।
तुमने तो सुना हैः भगवान से डरो; ईश्वर भीरु हो जाओ; लेकिन पलटू कहते हैं कि हमने यह देखा कि संतों से हमने भगवान को डरते देखा। संतों के पीछे हमने भगवान को लगे देखा। जैसे छाया चलती है आदमी के पीछे, ऐसे भगवान संत के पीछे चलते हैं। भगवान संत की छाल्ला हैं। या यूं कहो कि भगवान का ही साकार रूप संत है। दोनों बातें एक ही हैं। संत आकार है, उसी के आसपास निराकार आभा है।
अरे हां, पलटू संग लगे भगवान, संत से वे डरैं।।
इसलिए संत के चरणों में सब कुछ हो सकता है। मगर उसको ही जो गलने को तैयार हो, विसर्जित होने को तैयार हो। जो समग्र भांति अपने को समर्पित कर दे, अर्पित कर दे।
ऋद्धि सिद्धि से बैर, संत दुरियावते।
और ध्यान रखना, संतों की पहचान कैसे करोगे? मदारियों के चक्कर में मत
पड़ जाना! क्योंकि संत की पहली पहचान हैः ऋद्धि सिद्धि से बैर। संत को न तो सिद्धियों में कोई रस है, न ऋद्धियों में कोई रस है। संत कोई ताबीज नहीं निकालते आकाश से और विभूति नहीं निकालते और स्विस मेड़ घड़ियां नहीं निकालते।
ऋद्धि सिद्धि से बैर, संत दुरियावते।
ऋद्धि-सिद्धि उनके द्वार भी आएं तो संत उन्हें ठुकरा देते हैं, भाग देते हैं कि भागो यहां से! यहां क्या जरूरत है?
सूफी कहानी है--
एक फकीर परम ध्यान को उपलब्ध हो गया। फरिश्ता आकाश से आया और उसने कहाः तू मांग ले जो भी वरदान मांगना हो। परमात्मा तुझ पर प्रसन्न है। उस फकीर ने कहा, रास्ता पकड़ो! जब मांग थी, तुम कहां थे? अब मांग नहीं, तब आए! अब तुम्हारा आना व्यर्थ है। भागो यहां से! फिजूल समय खराब अपना और मेरा न करो। फरिश्ता तो बहुत हैरान हुआ, उसने कहा, मैं बहुतों के पास गया हूं, मगर इस तरह कहीं न दुरियाया गया। मैंने कोई तुम्हारा अपमान कर दिया? संत ने कहा, अपमान नहीं तो और क्या! तुम मुझे भिखमंगा समझे हो! मालिक का मालिक मुझे मिल गया, अब क्या तुम आए हो यहां? क्या तुम दे सकते हो? तुम्हारे पास क्या है देने को? पर उस फरिश्ते ने कहाः भगवान ने ही मुझे भेजा है; और इस तरह लौटाने में भगवान का अपमान होगा। कुछ मांग लो! कुछ ऐसी बात मांग लो जिसकी तुम्हें तो जरूरत न हो लेकिन औरों को जरूरत हो। संत ने बहुत सोचा, लेकिन उसने कहा, मुझे कुछ ऐसा समझ में नहीं आता जो मांगा जा सके।
फरिश्ते ने खुद सुझाव दिया कि तुम ऐसा क्यों नहीं मांग लेते कि तुम बीमार को छुओ तो बीमार ठीक हो जाए। अंधे की आंख पर हाथ रखो तो अंधा ठीक हो जाए। मुर्दे को छू दो तो जी जाए। इससे लोगों की सेवा होगी। करुणा बहेगी

तुमसे। लोगों में धर्म का सदभाव जगेगा, परमात्मा की प्रीति उमगेगी। संत ने कहा, यह बात तो ठीक लगती है; मगर इसमें एक खतरा है, इसमें मेरी अकड़ पैदा हो सकती है। कि मैं किसी अंधे की आंख छुऊं और वह ठीक हो जाए, तो मेरे भीतर अकड़ खड़ी होगी--अहाह, देखो मैंने इसकी आंख ठीक कर दी! और मुर्दे को जिला दिया तो मेरे भीतर कोई कहेगा कि देखा, है कोई और जो मुर्दे को जिला दे? फरिश्ता माना ही नहीं तो संत ने कहा, फिर एक काम करो, तुम मेरी छाया को वरदान दे दो--मैं तो वरदान नहीं चाहता! मेरी छाया अगर मुर्दे पर पड़ जाए, तो जी जाए। मुझे पता नहीं चलना चाहिए। मेरी छाया अगर सूखे वृक्ष पर पड़ जाए तो वह हरा हो जाए; मुझे पता नहीं चलना चाहिए।
और कहते हैं, तबसे वह संत भागता रहता था। लोग उससे पूछते कि रुकते क्यों नहीं? तो वह कहताः कहीं छाया का मुझे पता न चल जाए कि छाया क्या कर रही है। तो वह भागता ही रहता; ताकि छाया जो भी करे, करे। मुर्दे जी गए, सूखे वृक्षों में फूल-फल लग गए, अंधे ठीक हो गए, बीमार स्वस्थ हुए, लेकिन उस फकीर को कभी पता नहीं चला क्योंकि वह भागता ही रहता। वह रुकता ही नहीं देखने के लिए कि छाया क्या कर रही है
सूफी ठीक कहते हैं! यही फकीर का लक्षण है।
ऋद्धि सिद्धि से बैर, संत दुरियावते।
इंद्रासन बैकुंठ बिष्ठा सम जानते।।
उन्हें तो इंद्र का आसन भी देते होओ, उन्हें बैकुंठ में भी जगह मिलती हो, तो भी उनके लिए मल-मूत्र से ज्यादा नहीं है।
करते अबिरल भक्ति, प्यास हरिनाम की।
उनका तो सारा ध्यान बस एक बात में लगा है... कहां का बैकुंठ! कहां का इंद्रासन! ... अबिरल भक्ति। एक अबिरल धारा बह रही है उनके भीतर तो आनंद की, उत्सव की। वहां तो एक नृत्य-गान चल रहा है भीतर। बैकुंठ तरसता होगा उनके भीतर आने को, वे क्यों बैकुंठ के पास जाने को तरसें? इंद्रासन तड़पता होगा कि उनके चरण छू ले, वे क्यों इंद्रासन की फिकर करें? वहां तो बस एक ही धुन है, एक ही स्वर है--हरिनाम का। एक ही प्यास है।
अरे हां, पलटू संत न चाहें मुक्ति तुष्छ केहि काम की।।
यहां भक्तों ने ध्यानियों को भी मात दे दी है। ध्याही की आकांक्षा मोक्ष की है--मुक्त हो जाऊं, सब बंधनों से मुक्त हो जाऊं। भक्त कहता है, अगर बंधन तेरे हैं तो मैं इसकी भी क्या फिकर करूं? इन तुच्छ बंधनों से क्या मुक्त होना! अगर तूने दिए हैं, तो राजी! अगर तूने दिए हैं तो प्यारे हैं।
अगर तूने ही दिए हैं तो तेरी मर्जी पूरी हो! मैं तेरे बंधनों से राजी हूं। तू जहां रखे राजी हूं। तुझसे अन्यथा मेरी कोई चाह नहीं। मेरे लिए मुक्ति भी तुच्छ है। मेरी मांगी मुक्ति तुच्छ है, तेरे दिए हुए बंधन भी महान हैं। अरे हां, पलटू संत न चाहें मुक्ति तुच्छ केहि काम की।।
आगम कहैं न संत...
प्यारे वचन हैं! खूब-खूब ध्यान करना इन वचनों पर। गहरे इन्हें उतर जाने देना। इनका रस तुम्हारी पोर-पोर में समा जाए। आगम कहैं न संत... संतों को शास्त्रों से कुछ लेना-देना नहीं। आगम-निगम सब व्यर्थ हैं उनके लिए। वेद, कुरान, बाइबिल उन्हें कुछ सार नहीं रखते। इनमें क्या पड़ा है? ये तो नक्शे हैं। और नक्शा असलियत नहीं है। जैसे भारत का नक्शा भारत नहीं है और हिमालय की तसवीर हिमालय नहीं है। ये सारे शास्त्र तो नक्शे हैं। संत को तो सत्य मिल गया, अब नक्शों की कौन फिकर करे!
आगम कहैं न संत, भड़ेरिया कहत हैं।
आगम तो जो भाट हैं, जो स्तुति कर-कर के परंपरा की लोगों का शोषण करते हैं, जो तुम्हारे अतीत का गुणगान करके तुम्हारे अहंकार को भरते हैं-- भड़ेरिया, भड्डरी, पंडित, भट्टारक, भाट--उनका धंधा है यह कि वे आगम-निगम की बात करें। संत तो जो बोलते हैं, वह शास्त्र है। नहीं बोलते, तो शास्त्र, बोलते, तो शास्त्र, उठते, तो शास्त्र, बैठते, तो शास्त्र।
संत न औषधि देत, बैद यह करत हैं।।

और संत कोई औषधि नहीं देते फिरते! वह धंधा वैद्यों का है। मगर इस देश में यह भ्रांति खूब फैली है। यहां लोग संतों के पास जाते हैं क्योंकि बीमारी है। कोई संतों के पास जाता है क्योंकि कोई नौकरी नहीं लग रही है। अभी परसों ही एक युवक ने मुझसे आकर कहा, बस इतनी ही प्रार्थना है, दो चीजें चाहिए--भौतिक समृद्धि भी मिले और आध्यात्मिक समृद्धि भी मिले। और भी लोग मौजूद थे, इसलिए मैंने उससे कुछ कहा नहीं; नहीं तो कहना मैं चाहता था कि तुम्हारी शकल देख कर ऐसा लगता है कि इन दोनों में से कुछ भी नहीं मिलने वाला।
और अगर लोग मौजूद न हो तो मैं उससे कहना चाहता, अच्छा तू दो में से एक चुन ले, एक का वरदान मैं देता हूं। तो पक्का था कि वह कहताः भौतिक समृद्धि। आध्यात्मिक समृद्धि तो उसने सिर्फ मुझे प्रसन्न करने के लिए जोड़ दी थी। उसकी शकल से ही मालूम पड़ रहा था... कि भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक समृद्धि दोनों मिले! अगर मैं जिद करता कि दो में से एक चुन, तो वह कहता, फिर पहले भौतिक मिल जाए, फिर आध्यात्मिक पीछे देख लेंगे। वह उसकी शकल से ही टपक रही थी बात। उसकी शकल पर ही वह घिनौनापन था जो रुपये-पैसे की पकड़ वालों के चेहरे पर होता है। जैसे घिसे-पिटे रुपये हो जाते हैं न--नोट भी चलते-चलते कैसे गंदे हो जाते हैं! वैसे ही शकलें हो जाती हैं नोट से प्रेम करने वाले लोगों की। घिसे-पिटे रुपयों की तरह हो जाते हैं वे। हजार हाथ से जाते हैं। इससे ज्यादा गंदगी और कोई चीज में होती ही नहीं जितनी रुपये-पैसे में होती है।
पता नहीं चिकित्सक इस संबंध में कुछ क्यों नहीं करते? क्योंकि मेरी मान्यता है कि नोटों में जितनी संक्रामक बीमारियां फैलाने की क्षमता होती होगी और किसी चीज में नहीं हो सकती। क्योंकि टी. बी. वाला लिए फिर रहा है, कैंसर वाला लिए फिर रहा है, फ्लू है और लोग लिए फिर रहे हैं, बुखार चढ़ा है और नोट खीसे में है, खांस रहे हैं, खंखार रहे हैं और नोट ही नोट भरे हैं। और ये नोट चल रहे हैं।
इनका नाम ही अंग्रेजी मेंः करेंसी। करेंसी मतलब जो चलती है, चलती रहे! इनका चलन हो रहा है। एक हाथ से दूसरे हाथ, दूसरे हाथ से तीसरे हाथ... ये कितने हाथों में जा रहे हैं! नोट से ज्यादा गंदी चीज इस जमीन पर खोजनी मुश्किल है।
और जो नोटों के प्रेम में पड़ जाता है, उसका चेहरा भी उतना ही गंदा हो जाता है। उसके चेहरे पर फूलों की ताजगी नहीं रह जाती, नोटों की गंदगी हो जाती है। अगर फूल दुनिया में सबसे ताजे हैं, तो नोट दुनिया में सबसे गंदे हैं। फूलों को पेम करने वाले के चेहरे पर फूलों का कुछ तो भाव होता है, उसकी आंखों में कुछ तो कमल खिलते हैं!
लेकिन इस देश में यह हो गया है पागलपन। लोग समझते हैं वे आध्यात्मिक हैं। मंदिर जाते, तीर्थ जाते, तथाकथित संतों के पास जाते, मगर उनके इरादे बड़े भौतिक हैं। भारतीयों को कहो कि तुम बहुत भौतिक हो तो उनको बहुत नाराजगी होती है। मगर मजबूरी है। तुम्हारा तथाकथित धर्म बस तथाकथित है। तुम्हारी मांग बताती है कि तुम्हारी असलियत क्या है। मेरे पास भी लोग आ जाते हैं... इतनी रुकावटें मैंने खड़ी कर रखी हैं--इन्हीं लोगों के लिए कि इस तरह के लोगों को मैं नहीं चाहता; लेकिन मेरे पास लोग आ जाते हैं। किसी को बीमारी है, किसी को नौकरी नहीं मिल रही है, किसी का धंधा ठीक नहीं चल रहा है!
पलटू कहते हैंः
आगम कहैं न संत, भड़ेरिया कहत हैं।
संत न औषधि देत, बैद यह करत हैं।।
झार फूंक ताबीज ओझा को काम है।
अरे हां, पलटू संत रहित परपंच राम को नाम है।।
पलटू कहते हैं, अगर संत न मौजूद हो तो तुम राम की कितनी ही गुहार लगाओ,
सब प्रपंच है, सब व्यर्थ है। राम का स्मरण सार्थक तभी है जब राम को जानने वाला मौजूद हो तुम्हारे साथ। राम जिसके भीतर घटा हो, उसकी उपस्थिति में तुम्हारे भीतर भी कुछ घट सकता है अन्यथा नहीं।

इतराकर यों राजहंस से कहता आज उलूक
सुन बेटा! मैं करता हरदम बात खरी दो टूक राजहवेली में, महलों में मेरा नित्य निवास ताल-तलैया में करता तू संबुक आज तलाश
कभी किसी युग में मुक्ताहल तूने चुगे जरूर अब तो मोमी मोती के भी दाम बढ़े भरपूर
ते जिसका वाहन है मैं करता उसका व्यापार सभी मुद्रणालय मेरे, मेरे सब ग्रंथागार मेरे हाथ बिके वाणी के साधक सभी समान
नत मेरी बोली के आगे सभी गुणी मतिमान
मैं हूं जिसका वाहन उसका आज विश्व पर राज नाच रहा उसकी इंगित पर सारा सुधी समाज कौओं-बगुलों का दरबारी तू भी बना निदान देख रहा क्यों मान-सरोवर का सपना नादान! बन जा मेरी निपुण स्वामिनी का अब तू भी भाट पोखर में सड़ने से अच्छा गा उसका ही ठाट
वही गा रहे आज गिरा की वाणी के सब तार
सुन बेटा! मेरी देवी का जयजयकार अपार।
उल्लू हंसों को समझा रहे हैं!
इतराकर यों राजहंस से कहता आज उलूक
सुन बेटा! मैं करता हरदम बात खरी दो टूक
पंडित-पुजारी अंधे लोग हैं; जिनको दिन में भी नहीं सूझता ऐसे उलूक हैं। लेकिन वे सारी दुनिया को समझा रहे हैं कि हम जो कर रहे हैं वही तुम भी करो। जो भजन हम करते हैं, जो हवन हम करते हैं, वही तुम भी करो। इसी से मिलेगी ऋद्धि, इसी से मिलेगी सिद्धि। हम जो शास्त्र पढ़ते हैं, तुम भी कंठस्थ करो। हम जिस ज्ञान की देवी के भक्त हैं, तुम भी हो जाओ। हमारे जयजयकार में तुम भी सम्मिलित हो जाओ; मत सपने देखो मानसरोवर के!
लेकिन तुम्हारे प्राण उल्लुओं की इन बातें से तृप्त नहीं हो सकते।
प्राण तो मानसरोवर का सपना ही देखेंगे। और सपना देखते रहना मानसरोवर का।
और अगर कभी कोई मानसरोवर का जानने वाला मिल जाए तो पकड़ लेना उसका संग-साथ।
उसके संग-साथ होते ही तुम्हारी यात्रा भी चल पड़ेगी परमात्मा की ओर।
अरे हां, पलटू संत रहित परपंच राम को नाम है।।
बिना संत के, बिना किसी पथप्रदर्शक के जो हो आया हो मानसरोवर तक तुम पहुंच न सकोगे। रास्ते में भटकाने वाले बहुत हैं; अटकाने वाले बहुत हैं। क्योंकि तुम भटको और अटको, इसमें लोगों का स्वार्थ सिद्ध होता है। तुम पहुंचो, इसमें किसी का स्वार्थ सिद्ध नहीं होता। तुम्हें तो वही पहुंचा सकता है जिसका अपना कोई स्वार्थ ही नहीं रहा--स्व ही नहीं रहा तो स्वार्थ क्या रहेगा!
थोड़ा-सा सम्मान मिला--पागल हो गए!
थोड़ा-सा धन मिला--बेकाबू हो चले!
थोड़ा-सा ज्ञान मिला--उपदेश की भाषा सीख ली!
थोड़ा-सा यश मिला--दुनिया पर हंसने लगे!
थोड़ा-सा रूप मिला--दर्पण ही तोड़ डाला!
थोड़ा-सा अधिकार मिला--दूसरों को
तबाह कर दिया!
इस प्रकार
तमाम उम्र चलनी से पानी भरते रहे!
अपनी समझ से
बहुत बड़ा काम करते रहे!!
बस पंडितों की जिंदगी चलनी से पानी भरने जैसी है। भरते तो बहुत, मेहनत
तो बहुत करते, लेकिन चलनी में कभी पानी भर नहीं पाता। और बुद्धि कभी बुद्धिमान नहीं हो पाती। बुद्धिमत्ता तो हृदय में घटती है। और हृदय में जाने का द्वार तर्क नहीं, शास्त्र नहीं, प्रेम है, भजन है।

हरिजन हरि हैं एक सबद के सार में।
अगर तुम्हारे भीतर वह ध्वनि गूंजने लगे, शब्द का सार गूंजने लगे; अगर तुम्हारे भीतर ओंकार का नाद तुम्हें सुनाई पड़ जाए--जो कि गूंज तो रहा है लेकिन तुम्हारे विचारों के शोरगुल के कारण सुनाई नहीं पड़ रहा है; जो अहर्निश तुम्हारे भीतर हो रहा है, लेकिन बाजार भरा है तुम्हारे मस्तिष्क में। और उस बाजार को तुम बढ़ाते चले जाते हो। तुम्हारे मस्तिष्क में गीता गूंज रही है, वेद गूंज रहे हैं, कुरान-बाइबिल गूंज रही है--और मस्तिष्क के नीचे हृदय में ओंकार का नाद दबा पड़ा है। हटाओ शास्त्रों को, हटाओ शब्दों को, तो शब्दों का सार, सारों का सार तुम्हें उपलब्ध हो जाए।
हरिजन हरि हैं एक...
उस दिन तुम जानोगे कि संत में और परमात्मा में भेद नहीं है।
हरिजन हरि हैं एक सबद के सार में।
जब तुम अपने भीतर ओंकार का नाद सुनोगे तो तुम चकित हो जाओगे कि जो परमात्मा में है सागर की तरह, वही संत में है बूंद की तरह। बूंद और सागर एक हैं।
जो चाहैं सो करैं संत दरबार में।।
जिसको बौद्ध-परंपरा में बुद्ध-ऊर्जा का क्षेत्र कहा है, उसको ही फकीरों ने संत-दरबार कहा है। संत का भी एक दबरार है, उसकी भी एक अपनी दुनिया है। सम्राटों के दरबार में क्या रखा है? सम्राटों के दरबार में तो क्षुद्र का लेन-देन है, व्यवसाय है। दरबार तो फकीरों के होते हैं! क्या? क्योंकि वहां असली संपदा है। असली साम्राज्य है। जो एक बार मिल जाए तो कभी खोता नहीं। चोर जिसे लूट नहीं सकते, आग जिसे जला नहीं सकती, मृत्यु जिसे छीन नहीं सकती।
जो चाहैं सो करैं संत दरबार में।।
तुरत मिलावैं नाम एक ही बात में।
तुम्हारी तैयारी भर हो, तो तुरत मिलावै नाम एक ही बात में।
अरे हां, पलटू लाली में मेंहदी बीच छिपी है पात में।।
जैसे हर पत्त में मेंहदी की लाली छिपी है--दिखाई तो नहीं पड़ती; थोड़ा पीसो, प्रकट होने लगती है--ऐसे ही प्रत्येक व्यक्ति में हरि छिपा हुआ है। थोड़ा पीसो!
संत के दरबार में तुम मेंहदी के पत्ते हो। तुमको पीसता है। तुम्हारे अहंकार को गलाता है। तुम्हारे कूड़े-कचरे को जलाता है। तुम्हें निखारता है, कुंदन बनाता है। और तुम्हारे भीतर छिपी हुई लाली प्रकट होनी शुरू हो जाती है। मगर पिसोगे तो ही।
अरे हां, पलटू लाली मेंहदी बीच छिपी है पात में।।
परमात्मा कहीं दूर नहीं है, तुम्हारे भीतर छिपा है, तुम्हारे पत्ते में छिपा है। पत्ते-पत्ते में छिपा है। पत्ते-पत्ते पर उसका हस्ताक्षर है।
करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।
लेकिन पंडित-पुरोहित तो धंधे में हैं। एक व्यवसाय है जो धर्म के नाम
पर चल रहा है। और धर्म के नाम पर जितनी आसानी से चल सकता है, किसी और चीज के नाम पर नहीं चल सकता। धर्म के नाम पर जितना धोखा संभव है, किसी और चीज के नाम पर संभव नहीं है। क्योंकि धर्म अदृश्य का व्यवसाय है। कुछ दिखाई भी नहीं पड़ता, कुछ पकड़ में भी नहीं आता; तराजू में कुछ है भी या नहीं, यह भी समझ में नहीं आता, कुछ पकड़ में भी नहीं आता; तराजू में कुछ है भी या नहीं, यह भी समझ में नहीं आता, तराजू खाली भी हो सकता है--और तौले जाए! और तुम सोचो कि तुम्हारे झोली भर रही है।
करते बट्टा ब्याज कसब है जगत का।
माया में हैं लीन, बहाना भगति का।।
कहौं तनिक नहिं छुई गया बैराग है।
अरे हां, पलटू जनमें पूत कपूत लगाया दाग है।।

धर्म के धंधे से थोड़ा जागो! धंधे का अर्थ हैः जिन्होंने जाना नहीं, वे दूसरों को जना रहे हैं। जिन्हें मिला नहीं, वे दूसरों को मिलवा रहे हैं। जिनके पास है, वे केवल उधार शास्त्रों के आधार पर औरों को समझा रहे हैं। स्वामी राम अमरीका से वापस लौटे।... इस सदी में भारत ने जो बहुमूल्य रत्न पैदा किए, उनमें एक हैं स्वामी राम... अमरीका में बहुत सम्मान मिला उन्हें। लोग उनके पीछे पागल थे। पागल होने जैसे वे आदमी थे। जैसे भौंरे दीवाने हो जाएं फूलों के पास, कि परवाने दीवाने हो जाएं शमा के आसपास, ऐसे राम के आसपास लोग दीवाने हो जाते थे। बात थी कुछ, गहरी बात थी कुछ, रस था कुछ। कि जिनके पास थोड़ी भी हृदय की क्षमता थी, उनकी हृदयतंत्री बज उठती थी।
फिर राम भारत वापस लौटे तो उन्होंने सोचा कि पश्चिम में इतने लोगों
ने रस लिया, तो सबसे पहले भारत में कहां यात्रा शुरू करूं? स्वभावतः सोचा, वाराणसी। और वाराणसी में जो हुआ, राम चौंक गए। वाराणसी में राम का जो स्वागत हुआ, उसकी उन्होंने कभी कल्पना भी न की थी। बोलने खड़े हुए, पांच-सात मिनट ही बोले होंगे कि एक पंडित खड़ा हो गया--महापंडित काशी का--और उसने कहा, रुकिए। संस्कृत आती है? ... राम को संस्कृत नहीं आती थी। पंजाब में पैदा हुए, लाहौर में पढ़े। फारसी आती थी, उर्दू आती थी, संस्कृत नहीं आती थी।... वह पंडित खिलखिला कर हंसने लगा और सारी सभा भी हंसने लगी। और उस पंडित ने कहा, संस्कृत नहीं आती और ब्रह्मज्ञान छांट रहे हो! बिना संस्कृत के ब्रह्मज्ञान कैसा! पहले संस्कृत सीखो! पहले व्याकरण सीखो! फिर ब्रह्मज्ञान की बात करना।
राम को तो इतनी हैरानी हुई कि उन्होंने यात्रा का ख्याल ही छोड़ दिया भारत में। वे तो हिमालय चले गए। न केवल हिमालय चले गए बल्कि तुम जान कर हैरान होओगे, उन्होंने गैरिक वस्त्र भी छोड़ दिए। उन्होंने साधारण वस्त्र पहन लिए। इस देश में अब क्या मूल्य है गैरिक वस्त्रों का--उन्होंने सोचा! जहां संस्कृत जानना ब्रह्म को जानने का पर्यायवाची हो गया हो, अब इस देश में क्या संन्यासी!
मगर यह सदा होता रहा है लोग व्यर्थ की बातों को मूल्य देने लगते हैं-- भाषा, व्याकरण, तर्क, गणित। जानना कुछ बात और है। जानना अनुभव है।
मैं उस दिन
नदी के किनारे पर गया
तो क्या जाने
पानी को क्या सूझी
पानी ने मुझे
बूंद-बूंद पी लिया
और मैं
पिया जाकर पानी से
उसकी तरंगों में
नाचता रहा

रात-भर
लहरों के साथ-साथ
सितारों के इशारे
बांचता रहा!
डुबकी मारने की कला चाहिए। ऐसी कला चाहिए कि तुम परमात्मा को ही न पिओ, परमात्मा तुम्हें पी ले।
और मैं
पिया जाकर पानी से
उसकी तंरगों में
नाचता रहा

रात-भर
लहरों के साथ-साथ

सितारों के इशारे
बांचता रहा!
कहां वेद! कहां कुरान! सितारों में इशारे हैं। तुम्हारी श्वास-श्वास में इशारे हैं। लेकिन जिनके जीवन में न तो भक्ति का कोई लक्षण है, न प्रेम का कोई रंग है, जिनके जीवन में वैराग्य का कोई अनुभव नहीं है, वैराग्य की तो बात छोड़ो जो अभी राग से भी परिचित नहीं हैं। राग में ही नहीं पक पाए थे अभी और कच्चे-कच्चे भाग गए। जैसे कुम्हार घड़ों को पकाता है आग में, ऐसे संसार का राग आग है जिसमें पको तो ही मजबूत घड़े बन सकोगे। कोई होशियार घड़ा आग से बचने के लिए कच्चा ही भाग खड़ा हो, ऐसे ही घड़े तुम्हारे तथाकथित साधु- संन्यासी बने बैठे हैं। कच्चे घड़े। पानी के एक ही झोके में बह जाएंगे। राग ही नहीं पका है अभी तो वैराग्य कैसे होगा? राग के अंतिम चरण में वैराग्य होता है।
बुद्ध हुए विरागी। हो सके। क्योंकि राग ने पका दिया था। महावीर हो सके विरागी, क्योंकि राग ने पका दिया था। जैनों के चौबीस तीर्थंकर ही राजपुत्र हैं। राग ने पकाया। ऐसा पकाया कि फिर वैराग्य का फल लगा। यह तुम्हें उलटी बात लगेगी! लेकिन ख्याल रखो, यह जीवन का नियम ऐसा है। यहां आग से गुजरे बिना सोना कुंदन नहीं बनता।
गधे ने
शेर की खाल ओढ़ी
महज एक कहावत है
मुहावरा है
एक झूठ है
पर तुम्हें
वस्त्रों से खींच कर देखने पर भीतर छिपे
सर्प, सियार से लेकर
भेड़िया
और गिद्ध तक
नजर आते हैं साफ-साफ...
आदमी की खाल
जंगल ने पहन ली
एक सच है!
वह तो कहावत है कि गधे ने शेर की ख्याल ओढ़ी। गधों में इतनी अकल कहां कि शेर की खाल ओढ़ लें? आदमी में इतनी अकल जरूर है कि गधे हैं और शेर की खाल ओढ़ लें। पांडित्य का आवरण ओढ़ लें। लेकिन बस आवरण आवरण ही है। और गधा शेर की खाल भी ओढ़ ले तो क्या होता है? मौके बे मौके रेंक देगा। बस, सब पोल-पट्टी खुल जाएगी। पंडित को जरा खरोंचो--जरा खरोंचो और भीतर से सारे जंगली जानवर निकलने शुरू हो जाएंगे। पूरा जंगल भीतर छिपा है।
कारण?
कारण है कि हम संसार को कच्चा छोड़ कर भाग रहे हैं। इसलिए मैं अपने संन्यासी को संसार छोड़ने को नहीं कहता। मैं कहता हूं, आएगा एक वैराग्य; जरा ठहरो! जरा हिम्मत रखो! जरा इस आग से गुजरो राग की! इसी आग से गुजरकर वैराग्य आएगा। राग की ही अंतिम परिणति वैराग्य है। बुद्ध ने अगर राग को न जाना होता तो कभी बुद्ध न हुए होते।
कल की रात
मैं निश्चित ही गौतम बुद्ध बन जाता,
अज्ञानी था
ज्ञानी और प्रबुद्ध बन जाता,
पर बन न सका।
बनवास को वस्त्र मान कर पहन न सका क्योंकि मैं सिद्धार्थ नहीं था सामान्य था।
तन-मन में या जड़-चेतन में

काम-वह्वल पाषाण-युग के दो नग्न बुतों को देख, अंधकार में उजागर होती उसकी करतूतों को देख, मैं वासना में डूब गया--
हाय, मेरी यह दशा कब होगी?
सारथि, मेरे रथ को लौटा ले!
मुझे कहीं नहीं जाना है।
पहले ससुराल जाकर यशोधरा को लाना है,
उसके गहने बनवाना है,
सलवार सिलवाना है,
कुर्ती कटवाना है
और
राहुल को स्कूल में भर्ती कराना है। सारथि, मेरे रथ को लौटा ले!
मुझे कहीं नहीं जाना है।
तो कल की रात,
मैं
निश्चित ही गौतम बुद्ध बन जाता, अज्ञानी था,
ज्ञानी और प्रबुद्ध बन जाता,
पर बन न सका।
वनवास को वस्त्र मान कर पहन न सका क्योंकि मैं सिद्धार्थ नहीं था और आगे अगर खुली नजरें रहीं
तो कहीं बन न जाऊं,
इसलिए
आंखों पर चश्मा काला लगा लिया है
और
कहीं रात को घर से भाग न जाऊं
इसलिए
द्वार बंद करके
भीतर से ताला लगा दिया है।
नहीं, बिना राग को ठीक से जाने, पहचाने, राग के साक्षी बने वैराग्य का अवतरण नहीं होता है। तुम्हारे भगोड़े संन्यासियों में तुम्हें वैराग्य नहीं दिखाई पड़ सकता।
कहौं तनिक नहिं छुई गया बैराग है।
अरे हां, पलटू जनमें पूत कपूत लगाया दाग है।।
और इन झूठे, कच्चे, भगोड़ों ने सारे संन्यास के ऊपर दाग लगा दिए।
संन्यास ही इनके कारण निंदित, अपमानित, लांछित हो गया है। संन्यास को फिर ताजगी देनी है, फिर स्वास्थ्य देना है। क्योंकि संन्यास इस जगत का परम फूल है। जिस दिन इस पृथ्वी से संन्यास विदा हो जाएगा, उस दिन इस पृथ्वी पर रहने योग्य कुछ भी न रह जाएगा। संन्यास काव्य है, गरिमा है, गौरव है।
मगर गुजरना होता है राग की अग्नि से तो वैराग्य पकता है। गुजरना होता
है संसार की कठिनाइयों से तो संन्यास का फूल खिलता है। तूफानों में से गुजर कर ही यह नौका किनारे लगती है। तूफान कसौटी हैं।
पगरी धरा उतारि टका छह सात का।
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का।।
गोड़ धरे कछु देहि मुंड़ाए मूंड़के।
अरे हां, पलटू ऐसा है रुजगार कीजिए ढूंढ़िके।।
धर्म के नाम पर खूब धंधा चल रहा है। लोग छोड़ क्या रहे हैं--छोड़ने को कुछ है ही नहीं।
पगरी धरा उतारि टका छह सात का।
छह-सात टके की पगड़ी थी, उसको उतार कर रख दिया और कहा, महान त्याग हो गया।

मैं एक सज्जन को जानता हूं। होम्योपैथी के डाक्टर थे। डाक्टरी तो चलती नहीं थी! उनकी दुकान पर मरीज कभी मैंने देखा नहीं! ऐसे ही मुहल्ले- पड़ोस के लोग अखबार पढ़ने के लिए आ जाते थे। फिर एक दिन मैंने देखा कि वे संन्यस्त हो गए। उन्होंने सब त्याग कर दिया। न पत्नी थी, न बच्चा। उतने पैसे भी कभी नहीं जुटा पाए कि शादी करते। मां-बाप बचपन में मर गए थे। कुछ पीछे छोड़ भी नहीं गए थे। दुकान चलती नहीं थी। इससे बेहतर कुछ और था भी नहीं।
कोई पांच-सात साल बाद मेरा उनसे मिलना हुआ। तो बड़े सम्मानित हो गए थे! बात-बात में दोहराते थे कि मैंने लाखों पर लात मार दी। जब और लोग चले गए, मैंने उनसे कहा कि कम से कम मेरे सामने तो यह न कहो। मुझे तुम्हारी होम्योपैथी कितनी चलती थी, वह मालूम है। और जहां तक मुझे याद है, पोस्ट आफिस में तुम्हारे बासठ रुपये से ज्यादा नहीं थे। और वे भी तुमने किस हिसाब से इकट्ठे कर लिए थे, चमत्कार है! तुम लाखों की बात कर रहे हो, कि लाखों पर लात मार दी! उन्होंने बड़ी नाराजगी से मुझे देखा। सत्य को कोई बरदाश्त नहीं करता। तब से वे इतने नाराज हो गए हैं कि मेरे खिलाफ जो भी बनता है बोलते रहते हैं। और वह आदत उनकी गई नहीं। वे कहते ही चले जाते हैं कि मजने लाखों पर लात मार दी। क्योंकि लोग सम्मान उतना ही देते हैं जितना तुमने त्याग किया हो।
त्याग करने का भी लोगों के पास कुछ नहीं है--तुम जरा देखो तो जाकर! जब कुभ का मेला भरता है, तुम जरा अपने संन्यासियों को, साधुओं को, नागा बाबाओं को, उनकी कतारों को तो देखो! उनके पास कुछ था जिसको इन्होंने छोड़ा है? उनके पास कुछ था ही नहीं। इसलिए छोड़ने का मजा भी ले लिया और त्यागी भी बन गए, महा त्यागी बन गए!
पगरी धरा उतारि टका छह सात का।
छह-सात टके की पगड़ी थी, वह रख दी और--
मिला दुसाला आय रुपैया साठ का।।
और लोगों ने बड़ा सम्मान दिया। लोगों ने कहा--महा त्यागी!
गोड़ धरे कछु देहि मुंड़ाए मूंड़के।
सिर से अगर बाल घुटवा दिए, तो कौन सी बड़ी कला हो गई! और अगर जमीन पर घुटने टेक कर आकाश की तरफ हाथ जोड़ कर तुमने प्रार्थना भी कर ली, तो क्या हो गया?
अरे हां, पलटू ऐसा है रुजगार कीजिए ढूंढ़िके।।
अगर रोजगार ही करना हो तो यह रोजगार है, ढूंढ कर करने जैसा है। कुछ लगता भी नहीं और धंधा भी खूब चलता है। कुछ खर्च भी नहीं, कुछ पूंजी भी नहीं लगती, कुछ ब्याज भी नहीं भरना पड़ता, सिर्फ बकवास आनी चाहिए। बकवास को लोग ब्रह्म-ज्ञान समझते हैं। सीख लो कुछ तुलसीदास की चौपाइयां और सीख लो कुछ गीता और सीख लो कुछ पुराण की कथाएं--और तुम ज्ञानी हो गए।
मसक्कत ना ह्वै सकी मुंड़ाया मूड़ तब।
जब मेहनत नहीं हो सकी, तो सिर मुंड़ा लिया।
सेंति-मेंति में खाय मिला औसान अब।।
अब बिना कुछ मेहनत किए, मुफ्त खाने को मिलने लगा, संन्यास हो गया।
सम्मान मिलने लगा, आदर मिलने लगा, मुफ्त खाने को मिलने लगा। जिस आदमी के तुम चरण छूते हो संन्यासी देख कर, वही आदमी अगर गैर-संन्यासी के वेष में तुम्हारे द्वार पर भीख मांगने आए तो तुम दो पैसे नहीं दोगे। एक प्रतिष्ठा हो गई। मुफ्त। इससे सस्ता और क्या धंधा होगा!
तब नागा ह्वै लिहिन, रहे ना काम के।
और जब देखा कि इस तरह प्रतिष्ठा मिलती है--सिर मुंड़ा लिया, आदर मिला-- कुछ था भी नहीं छोड़ने को, दो-चार टके की पगड़ी थी, वह त्याग दी--इतना आदर मिला--जब यह समझ में आ गया गणित, तो लोग कपड़े तक छोड़ देते हैं। कपड़ों में भी कुछ नहीं था, फटे-पुराने थे; शायद अपने भी न हों, मांगे-तूंगे हों, उधार हों। लोग नग्न तक हो जाते हैं; क्योंकि नग्न साधु को बहुत आदर मिलता है। उसने तो परम त्याग कर दिया। हमने ऐसी मूढ़तापूर्ण धारणाएं बना ली हैं। कोई

भूखा मरे, महात्यागी! कोई नंगा खड़ा हो जाए, महात्यागी! कोई धूप में खड़ा रहे, महात्यागी!
हमने त्याग की बड़ी असृजनात्मक धारणाएं बना ली हैं। कोई गीत रचे, कोई वीणा बजाए, कोई बांसुरी पर सुर उठाए, अनाहत भी जगा दे, तो भी हमें फिकर नहीं; हमें फिकर हैः उपवास कितने किए? बांसुरी कितनी बजाई, इसकी हमें फिकर नहीं; वीणा पर कैसे तार छेड़े, इसकी हमें फिकर नहीं; दीये जल जाएं चाहे वीणा पर तार छेड़ने से, लोगों के हृदय के दीये जल उठें, तो भी हमें फिकर यह है कि कपड़े हैं कि नंगा है? खाना खाता है कि नहीं खाता? पानी छान कर पीता है कि नहीं पीता? हमने ऐसी क्षुद्र धारणाएं बनाई हैं।
शायद ये चालबाज लोगों ने ही हमें ये धारणाएं पकड़ा दी हैं। क्योंकि इन बातों को वे पूरा कर सकते हैं। इन बातों को पूरा करना बिल्कुल आसान है। दीपक राग बजाना तो आसान नहीं--कोई तानसेन बजाए! किसी के सोए हुए प्राण को जगा देना तो आसान नहीं--कोई बुद्ध जगाए! किसी की निद्रा को तोड़ देना तो आसान नहीं--कोई कबीर, कोई नानक चाहिए! किसी के प्राणों को आकाश की तरफ मोड़ देना कुछ आसान तो नहीं--कोई जरथुस्त्र, कोई जीसस चाहिए! मगर भूखे मरना या नंगे खड़ा हो जाना या सिर मुंडा लेना या पालथी मार कर बैठ जाना, यह तो कोई भी मूढ़ कर सकता है, इसमें तो किसी भी प्रतिभा की कोई जरूरत नहीं।
हमें संन्यास की परिभाषा बदलनी होगी। हमें इस थोथे संन्यास की परिभाषा को छोड़ना होगा। इस थोथी परिभाषा के कारण थोथे लोग बड़े आदृत हो गए हैं। और जिनका सच में आदर होना चाहिए, वे हमारी आंखों से ही अलग हो गए हैं, हम उन्हें देख ही नहीं पाते। जहां कुछ सृजन होता हो, जहां कुछ फूल खिलते हों, जहां जीवन और जगत को कुछ और सुंदर बनाया जाता हो, जहां कुछ और इंद्रधनुष आकाश से जमीन तक उतारे जाते हों, वहां; जहां नृत्य हो, उत्सव हो, वहां; वहां सम्मान करो। जहां आंतरिक समृद्धि प्रकट होती हो, प्रसाद जहां हो, जहां किसी की उपस्थिति में परमात्मा छाया हो, जहां किसी की उपस्थिति में प्रेम की वर्षा होती हो, जहां मस्तों की मधुशाला खुली हो, वहां हमारा सम्मान होना चाहिए। तो हम संन्यास को एक नई गरिमा और गौरव देने में सफल हो सकते हैं।
अरे हां, पलटू मारि-पीटिके, खाहिं सो बेटा राम के।।
इस तरह जबरदस्ती का ठेंगा सिर पर... तुमने देखा कभी-कभी आ जाते हैं दरवाजे पर संन्यासी। बजाते हैं चमीटा जोर से! और घबड़ाहट भी होती है घर में, क्योंकि उन्होंने ये भी कहानियां फैला रखी हैं कि अगर संन्यासी को लौटा दिया, नाराज हो जाए--दुर्वासा की कहानियां तो तुमने सुनीं न--गुस्सा आ जाए; दे ही दो कुछ, झंझट छुड़ाओ। क्योंकि वह आगे-पीछे चमीटा बजाता घूम रहा है। आगे-पीछे कदम रखता है, चमीटा बजाता है, घबड़ाहट पैदा कर देता है घर में कि दो रोटी देकर इससे छुटकारा करो! कहीं कोई अभिशाप दे दे, कुछ हो जाए, तो जनम-जनम बिगाड़ दे! उसने बड़ा डर पैदा कर रखा है। उस डर के कारण ही तुम उसे खिलाए जा रहे हो, पिलाए जा रहे हो, सम्मान दिए जा रहे हो। भिखमंगे संन्यासी मालूम हो रहे हैं। और संन्यासी पहचानने की तुम्हारी आंखें ही खो गई हैं। नहीं, ये राम के बेटे नहीं हैं, ये कपूत हैं, ये दाग हैं।
राम के बेटे चाहिए। मगर राम का बेटा होना आसान तो नहीं। अग्नि से गुजरना हो!
ओ गंध-मधु पर झूमने वाले
और
रस-किंजल्क पर गूंजने वाले!
तुम्हें मालूम इतना ही
कि रवि की मुदित किरणों का परस पाकर सुबह
मैं खिल उठा सहसाः
अचानक हो गई मैं
पुष्पिता,
स्निग्धा,
पुलक-सिहरनमयी।

अलि-किशोरों को नहीं मालूम कितना क्लेश
निशि भर झेलती हूं
सुबह खिलने के लिएः
किस तरह हर पंखुडी पर
रंग-राग-पराग रचकर
और
लेकर प्रस्फुटन की पीर,
देकर रस-विभा संपूर्ण अपनी
एक कोरक में
विकच होती...
कली से फूल बन जाती,
रूप-रस के उपकरण चुन-चुन जुटाती रात-भर उन्निद्र।
जिस निशा में सभी निद्रालीन रहते, उसी के हर याम में
मैं प्राणपण से जाग
रूप-यौवन का नया संसार रचती हूं। मैं कमलिनी नहीं केवल,
कविः (रचयिता) हूं।
कहां है ज्ञात रसिकों को
कि
रचना रक्त से बनती?
कहां अनुमान है इसका
किसी उन्मत्त भौंरे को
कली से फूल बनने में
कमलिनी
किस तरह का क्लेश
निशि भर भोगती रहती?
सस्ता नहीं है संन्यास! सुगंध मुफ्त नहीं मिलती। बहुत पीड़ाओं से गुजर
कर फूल में गंध आती है। मिट्टी से फूल तक की लंबी यात्रा है। कीचड़ से कमल तक की लंबी यात्रा है। और उसी यात्रा का नाम संन्यास है।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
चौदहवां प्रवचन

धर्म की भाषा हैः वर्तमान

भगवान,
पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। लोहा पारस हो जाए, क्या यह संभव है?
भगवान,
नाम-जप करते-करते उम्र ढल गई। हाथ तो कभी कुछ लगा नहीं। लेकिन जब भी तथाकथित पंडित-पुजारियों, साधु-महात्माओं से पूछा, तो उन्होंने कहा--बेटा, यह कार्य जन्मों की साधना से होता है। और जीवन के अंतिम पहर में अब आप मिले तो लगता हैः मैं भी किन धोखेबाजों के चक्कर में पड़ा रहा! अब मैं क्या करूं?

भगवान,
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी
चिर से तव दर्शन की उत्कट अभिलाषा है
तेरे इस मधुर मिलन की इनको आशा है
दर्शन से पहले भी ये कुछ-कुछ गीले हैं
बात मिलन की करें, सजन उन्मीले हैं
तुम बने क्षितिज हम धूल सभी से हैं ये धारावाही ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी
तेरी कटाक्ष की ऊषा किरण इक पहली थी
और तभी हृदय-मकरंद पंखुड़ी फैली थी
रह गया अधखिला क्या केवल मुरझाने को
पहले वसंत में ही क्या पतझड़ बन जाने को
मैं इस वियोग वेला में हूं अब व्यथासिंधु अवगाही
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी

पहला प्रश्नः भगवान, पारस के स्पर्श से लोहा सोना हो जाता है। लोहा पारस हो जो, क्या यह संभव है?

साधु शरण! लोहा न तो सोना होता और न पारस। पारस तो केवल एक प्रतीक है। प्रतीक की तरह बहुमूल्य है; यथार्थ की तरह तो झूठ है। पारस तथ्य नहीं है, एक सत्य है।
तथ्य और सत्य के भेद को ठीक से समझ लेना।
तथ्य तो उसे कहते हैं, जिसका अस्तित्व है। विज्ञान की पकड़ में जो आ सके, तराजू पर तौला जा सके, हाथ जिसे छू सकें, आंख जिसे देख सकें; जिसका रूप है, आकृति है, वजन है। तथ्य तो भौतिक होता, सत्य अभौतिक। न तराजू तौल सकता है, न हाथ छू सकते हैं, न आंख देख सकती हैं। सत्य का ही मूल्य है। सत्य की ही गरिमा है। और जब हम प्रतीकों का प्रयोग करते हैं, तो सदा स्मरण रखना, वे तथ्य नहीं हैं, सत्य हैं।
पारस एक सत्य है। सत्संग के लिए किया गया एक अनूठा काव्यात्मक प्रतीक। सदगुरु के साथ जुड़ जाए कोई, समग्ररूपेण, तो उस संस्पर्श में लोहा सोना हो जाता है। लोहा सोना हो जाता है, इसका अर्थ ही यह हुआ कि लोहा तो सोना था ही, सिर्फ सोया था। और उसे अपना बोध न था। जगाने वाले ने जगा दिया। तुम मुर्दा को नहीं जगा सकते हो, तुम सोए आदमी को जगा सकते हो।
मुर्दा और सोया हुआ आदमी दोनों एक से मालूम पड़े हैं, एक से नहीं हैं। बड़ा भेद है। जमीन-आसमान का भेद है। मुर्दा जगाया नहीं जा सकता। सोया हुआ आदमी जगाया जा सकता है। सोया हुआ आदमी जागने में संपूर्ण रूप से कुशल है,

क्षमतावान है। उसकी संभावना है जागना, इसीलिए सोया है। सोता वही है जो जाग सकता है। जागता वही है जो सो सकता है।
सोना और जागना एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।
लोहा सोना हो जाता है, इसका अर्थ इतना ही है कि लोहा सोना था ही। पारस
ने झकझोर दिया, लोहे को याद आ गई कि मैं कौन हूं। नहीं कि लोहा था और सोना हो गाया। बस इतना ही कि स्मरण न था और स्मरण आ गया। बेहोशी थी, बेहोशी टूट गई। अपने को ही भूला बैठा था, सुरति आ गई। सत्संग है सुरति को जगाने की प्रक्रिया। और निश्चित ही कोई जागा हुआ ही सोए हुए को जगा सकता है। सोया हुआ तो सोए हुए को कैसे जगाएगा? सोया हुआ तो हो सकता है जागे हुए को भी सुलाने लगे।
तुमने कभी ख्याल किया होगा, तुम्हारे पास अगर कोई आदमी बैठा-बैठा ऊंघने लगे, जम्हाई लेने लगे, तो तुम्हें भी ऊंघ आने लगेगी, जम्हाई आने लगेगी। उसकी नींद तुम्हें भी पकड़ने लगेगी। उसकी नींद संक्रामक है। और यह तो साधारण नींद है, आध्यात्मिक नींद तो और भी गहरी जाती है। और तुम नींद से भरे हुए लोगों से ही मिलते हो। उनसे ही तुम्हारे संबंध हैं, नाते हैं, रिश्ते हैं। चारों तरफ सोए हुए लोगों की दुनिया है। इस सोए हुए लोगों के सागर में जागना बड़ा असंभव मालूम होता है। यहां तो सौभाग्यशाली है वह जो किसी जागे हुए के साथ हो ले!
जागे हुए के साथ हो लो, तो जैसे नींद संक्रामक है वैसे ही जागरण भी संक्रामक है।
सत्संग का अर्थ हैः कोई जागा है, तुम सोए हो, तुमने जागे हुए का हाथ पकड़ लिया। तुमने जागे हुए से इतनी प्रार्थना की कि मैं तो सो-सो जाऊंगा, मुझे भूल मत जाना, मुझे जगाए जाना। मैं तो बार-बार बेहोश हो जाऊंगा, छोड़ मत देना आशा मुझ पर, चेष्टा जारी रखना।
लोहा सोना नहीं होता, सोना ही है लोहा। इसीलिए सोना हो जाता है। लोहा पारस भी नहीं होता। लेकिन लोहा जैसे सोना है सोया हुआ, जागने लगे तो सोना होने लगे; जिस दिन परिपूर्ण जागरण घटता है कि फिर लौट कर सोने की कोई संभावना न रही, उस दिन लोहा भी पारस हो गया। पारस का अर्थ हैः अब वह दूसरों को भी जगाने में समर्थ हो गया।
जो सोया है, वह एक आदमी है; जो अधजागा है, वह; और फिर जो पूर्ण जागा, वह--
ये तीन स्थितियां हैं जागरण की। बिल्कुल सोया है जो, वह तो मानता ही नहीं कि मैं सोया हूं। यह नींद की पराकाष्ठा है कि जब सोया हुआ आदमी मानने को राजी नहीं होता कि मैं सोया हूं। इनकार करता है कि कौन कहता है कि मैं सोया हूं? मैं तो जागा हुआ हूं! मुझसे जागा हुआ और कौन है? यह नींद को बचाने की सबसे बड़ी व्यवस्था है। यह नींद की ईजाद है अपनी सुरक्षा के लिए; कि नींद तुम्हें धोखा देती है कि मैं तो जागा हुआ हूं। अब जागने का सवाल ही कहां है? बात ही न रही! सत्संग करूं क्यों? सत्य को उपलब्ध व्यक्तियों को खोजूं क्यों? कहीं झुकूं क्यों? मैं तो वहां हूं जहां होना चाहिए। इसी तरह प्रत्येक आदमी सोचता है। दुनिया में अधिक लोग इसी भांति सोचते हैं और इसी भांति जीवन को गंवा देते हैं।
सोचते हैं जागे हैं और गहरे सो रहे हैं। नींद में बड़बड़ा रहे हैं। बड़बड़ाने को ही सोचते हैंः ज्ञान। सपने चल रहे हैं, लेकिन सपनों को ही समझते हैं सत्य। जिंदगी ऐसे बीत जाती है। ऐसा अपूर्व अवसर इस भांति मिट्टी हो जाता है कि बहुत पछताओगे पीछे! लेकिन यह सामान्य दशा है आदमी की।
गुरजिएफ अपने कुछ शिष्यों को लेकर--तीस शिष्यों को लेकर--रूस के एक दूर एकांत कोने में, तिफलिस के पास ध्यान के प्रयोग करवा रहा था। जो प्रयोग था, कठिन था। जन्मों-जन्मों से सोए आदमी को जगाना आसान है भी नहीं! उसने जो प्रयोग दिया था, वह यह था--एक ही बंगले में तीस लोग थे गुरजिएफ के साथ और उसने तीसों को कहा हुआ था कि तुम इस तरह रहना इस बंगले में जैसे उनतीस हैं ही नहीं। तुम ऐसे ही रहना जैसे तुम अकेले हो। उनतीस को भूलने की कोशिश करना।
क्यों?

क्योंकि इन उनतीस को तुमने याद रखा, तो तुम अपनी याद न कर सकोगे। यह उनतीस ही तो भीड़ है। यही तो समाज है। यही तो सोए हुए लोगों का जगत है। इनको तुम बिल्कुल भूल जाओ। इनके पास से भी निकलो तो नमस्कार भी मत करना, मुस्कुराना भी मत, इंगित-इशारा भी मत करना दूसरे का कि वह है। चलते वक्त दूसरे के शरीर को तुमसे ठोकर भी लग जाए तो रुक कर क्षमा भी नहीं मांगना। है ही नहीं दूरा यहां कोई, तुम अकेले हो। और गुरजिएफ ने कहा, जिसने भी इस तरह का सबूत दिया कि वह दूसरे को भी स्वीकार करता है, उसे मैं निकाल बाहर कर दूंगा। और स्वभावतः जब कोई है ही नहीं, तो बात किससे करनी है! इसलिए पूर्ण मौन।
तीन दिन बीतते-बीतते सत्ताईस आदमी विदा कर दिए गए। बड़ा मुश्किल मामला था। छोटा सा बंगला, उसमें तीस आदमियों का रहना--एक-एक कमरे में सात-सात आठ-आठ आदमी बैठे हुए हैं--कैसे बचोगे यह सोचने से कि दूसरे नहीं हैं? तीन व्यक्ति बचे। और महीना पूरे होते-होते केवल एक व्यक्ति बचा। वही व्यक्ति था पी. डी. आस्पेंस्की, जिसने गुरजिएफ की विचारधारा को सारे जगत में फैलाया।
तीन महीने पूरे हो जाने पर गुरजिएफ उसे लेकर बाजार में गया, तिफलिस के बाजार में गया। घुमाया सारा बाजार। लौट कर तीन महीने के बाद पहली दफा पूछा कि बाजार में क्या देखा! आस्पेंस्की ने कहा कि हर आदमी को सोया हुआ देखा। सोए हुए लोग चल रहे हैं, सोए हुए लोग दुकान कर रहे हैं, सोए हुए लोग सामान खरीद रहे हैं; सोयों की बस्ती देखी! ऐसा मैंने पहले कभी नहीं देखा था, क्योंकि मैं खुद ही सोया था। पागलों को देखा। ऐसा मजने कभी नहीं देखा था, क्योंकि मैं खुद ही पागल था। विक्षिद्वप्त, स्वप्नलीन, निद्रित भीड़-भाड़ देखी। व्यर्थ का शोरगुल देखा। जिसमें कुछ अर्थ नहीं है, जिसका कोई प्रयोजन नहीं है। लोग नाहक यहां से वहां भाग रहे हैं। अपने को व्यस्त किए हैं। मगर यह मैंने पहली दहा देखा। इन तीन महीनों में जो शांति उपलब्ध हुई, उसने यह क्षमता दी, यह आंख दी।
गुरजिएफ एक जागा हुआ आदमी। आस्पेंस्की एक सोया हुआ आदमी था, लेकिन जागा। जागने लगा, नींद टूटने लगी, सपने उखड़ने लगे। थोड़ा-थोड़ा होश आने लगा। जागरण और निद्रा के बीच की अवस्था को योग में तंद्रा कहते हैं। थोड़े- थोड़े जागे, थोड़े-थोड़े सोए। साधारण आदमी बिल्कुल सोया है, सत्संगी तंद्रा में होता है--थोड़ा जागा, थोड़ा सोया। सोना हो गया लोहा, यह अर्थ है इस प्रतीक का। फिर जब पूरा जाग जाएगा, जब शिष्य शिष्य ही नहीं रह जाएगा वरन सदगुरु होने की स्थिति पा लेगा--सदगुरु होने की स्थिति का अर्थ हैः अब न केवल खुद जाग गया है बल्कि समर्थ हो गया कि औरों को भी जगा दे--तब पारस हो गया।
साधु शरण, लोहा तो लोहा ही रहता है, कैसे सोना होगा, कैसे पारस होगा? मगर यह लोहे की बात नहीं है, यह किसी और ही तल की बात हो रही है--लोहा तो प्रतीक है। यह सोए हुए आदमी का नाम लोहा, अधजगे आदमी का नाम सोना, पूर्णरूप से जागे हुए बुद्धपुरुष का नाम पारस। अगर प्रतीक समझ में आ जाए, तो तुमने सत्य समझा। और अगर प्रतीक को तुमने मुट्ठी में बांध लिया और उसी को समझ कि यही यथार्थ है, तो तुम मूढ़ता में पड़ जाओगे। बहुत-से मूढ़ लोग इसी कोशिश में लगे रहे हैं--कई पारस की तलाश करते हैं, सदियों से, सारी दुनिया में, न मालूम कितने लोगों ने जीवन बरबाद किया, पारस पत्थर की तलाश कर रहे हैं! उनका ख्याल है कि कहीं किसी झील में, किसी पहाड़ पर, किसी खदान में पारस पत्थर मिल जाएगा। फिर क्या कहने हैं! छुएंगे लोहा और सोना हो जाएगा! ऐसा पारस पत्थर कहीं भी नहीं है।
ऐसा पूरब में ही रहा, ऐसा नहीं, पश्चिम में भी। इसी के समानांतर पश्चिम में कीमियागर हुए, अल्केमिस्ट हुए। उन्होंने पूरी जिंदगी इसी बात में गंवाई कि किस तरह हम यह सूत्र खोज लें, तरकीब खोज लें, फार्मूला खोज लें, जिससे कि लोहे को सोना बनाया जा सके। वह जिंदगी भर बड़े-बड़े प्रयोग करते रहे। एक प्रतीक--काव्य-प्रतीक--जब मूढ़तापूर्ण ढंग से तथ्य की तरह पकड़ लिया जाता है, तो इसी तरह की अड़चनें होती हैं, इसी तरह के उपद्रव होते हैं। और इस प्रतीक के संबंध में ऐसा नहीं हुआ, धर्मों के सारे प्रतीक ऐसे
ही गलत हो गए हैं।

बुद्ध को ज्ञान हुआ, बौद्ध-शास्त्र कहते हैंः आकाश से फूलों की वर्षा शुरू हो गई। झर-झर-झर आकाश से फूल झरने लगे। अलौकिक फूल, अलौकिक उनकी गंध। वे पृथ्वी के नहीं थे, आकाश के फूल थे। बौद्ध कहते हैं, ऐसा सच में हुआ। यह ऐतिहासिक तथ्य है, वे कहते हैं। उन्हें कुछ पता नहीं कि इससे इतिहास का कोई संबंध नहीं है। आकाश को क्या पड़ी है फूल बरसाने की! ऐसे कहीं फूल गिरते हैं! फिर किसी और बुद्धपुरुष के जीवन में ऐसा उल्लेख नहीं है। महावीर भी बुद्धत्व को उपलब्ध हुए--नेमि और पार्श्व, कृष्ण और पतंजलि, जरथुस्त्र और जीसस--लेकिन फूल किसी पर बरसे नहीं। यह काव्य-प्रतीक है। यह इस बात की खबर है कि अस्तित्व आनंदमग्न हुआ। यह इस बात की खबर है कि अस्तित्व खिल गया बुद्ध के साथ। प्रमुदित हो गया। जैसे सुबह सूरज निकले और फूल खिल जाएं; जैसे वसंत आए और फूल झर-झर झरने लगें, ऐसा बुद्ध के भीतर बुद्धत्व क्या अया, सारे अस्तित्व में आनंद की लहर दौड़ गई। इस बात को कैसे कहें कि अस्तित्व उत्सवमय हो गया?
बुद्ध ने कहा हैः जिस दिन मैं बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ, उस दिन मेरे साथ सारा अस्तित्व बुद्धत्व को उपलब्ध हो गया। बुद्ध यह कह रहे हैं, उस दिन मैंने फिर किसी को किसी और रूप में नहीं देखा। सोए हुए बुद्ध, भटके हुए बुद्ध--मगर बुद्ध तो बुद्ध हैं; चाहे सोए हों चाहे भटके हों; चाहे आंखों पर पट्टियां बांधे हों, चाहे कीचड़ में अपने को डुबा लिया हो; मगर बुद्ध तो बुद्ध हैं। हीरा तो हीरा है, कीचड़ में डाल दो तो भी हीरा है। कीचड़ हीरे को नष्ट नहीं कर पाएगी। तो बुद्ध यह कह रहे हैंः जब से मैं जागा और मैंने अपने भीतर देखा कौन है, तब से मुझे सबके भीतर वही ज्योति, वही प्रकाश, वही अमृत दिखाई पड़ने लगा है।
और जब एक व्यक्ति बुद्धत्व को उपलब्ध होता है, तो यह बिल्कुल स्वाभाविक है कि सारे अस्तित्व में आनंद की, उल्लास की एक तरंग व्याप जाए। क्योंकि हम अस्तित्व से भिन्न नहीं हैं। अगर तुम्हारा हाथ बीमार था और स्वस्थ हो गया, तो क्या तुम्हारी पूरी देह को उसका स्वास्थ्य अनुभव नहीं होता? तुम्हारी आंख में एक कंकरी पड़ी थी और आंख दुखती थी, तो क्या पूरी देह को उसका दुख व्यापता नहीं था? और जब आंख से कंकड़ निकल जाएगा और आंख प्रसन्न होगी, स्वस्थ होगी, तो क्या पूरी देह में उसके स्वास्थ्य की छाप न पड़ेगी? प्रतिध्वनि नहीं होगी? हम इस अस्तित्व से भिन्न नहीं हैं, एक हैं। इसी बात की खबर देने के लिए यह प्रतीक है, यह काव्य-प्रतीक है कि झर-झर-झर फूल गिरने लगे आकाश से। आकाश ने उत्सव मनाया, दीवाली मनाई। दीए जल गए आकाश में। बे-मौसम के फूल खिल गए वृक्षों पर। सूखे वृक्षों में पत्ते आ गए। इनको तथ्य की तरह पकड़ोगे तो चूक जाओगे।
और दुनिया में दो ही तरह के मूढ़ हैं। एक हैं जो कहते हैं, ये तथ्य की तरह सत्य हैं। और फिर दूसरे हैं जो सिद्ध करने में लग जाते हैं कि ऐसा हो ही नहीं सकता; यह असंभव है। और दोनों सिरफोड़ी करते हैं। और दोनों गलत हैं।
काव्यों को समझने का यह कोई ढंग नहीं।
जीसस के संबंध में उल्लेख है कि मरने के बाद वे पुनरुज्जीवित हो गए।
यह प्रतीक है। यह काव्य-प्रतीक है। लेकिन ईसाई इसको जोर से पकड़े हुए हैं। उनका सारा धर्म इस पर टिका हुआ है। अगर यह सिद्ध हो जाए कि जीसस का पुनरुज्जीवन नहीं हुआ, तो ईसाइयत के प्राण निकल जाएंगे। रोम का चर्च तत्क्षण गिर जाएगा। बुद्धिवाद का पत्थर खिसक जाएगा। पोप-पादरी विदा होने लगेंगे। उनका सारा का सारा अस्तित्व इस बात पर निर्भर है, इस झूठी बात पर कि जीसस पुनरुज्जीवित हुए।
इस जगत में मरने के बाद कोई पुनरुज्जीवित नहीं होता। इस जगत में कोई अपवाद नहीं होते। इस जगत में नियम सब के लिए समान हैं। यहां न कोई विशिष्ट है, न कोई हीन है। यह अस्तित्व सब के प्रति समभावी है। होना भी यही चाहिए। अगर अस्तित्व भी समभावी न हो, अगर यह भी पक्षपात करता हो--कि जीसस मरें तो पुनरुज्जीवित कर दे, और कोई दूसरा मरे--ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा--तो उसकी फिकर ही न करे, तो तो यह अस्तित्व भी फिर बड़े अन्याय से भरा हुआ हो गया। जीसस के साथ दो चोरों को भी सूली हुई थी। वे तो मरे ही रहे और जीसस पुनरुज्जीवित हो गए। नहीं, यह पुनरुज्जीवन की बात तथ्य नहीं है। सत्य जरूर है। प्रतीक है।

इस प्रतीक में यह बड़ी गहन बात छिपी है कि जीसस जैसे व्यक्ति मरते ही नहीं। तुम लाख मारो, नहीं मरते। मारे-मारे भी नहीं मरते। क्योंकि जीसस ने जान लिया जीवन की शाश्वतता को, उसकी अमरता को। उन्होंने जान लिया कि न तो जन्म में मेरा जन्म है और न मृत्यु में मेरी मृत्यु है। उन्होंने जान लिया कि मैं जन्म के पहले भी था और मृत्यु के बाद भी हूं। जिनको समाधि उपलब्ध हुई है, उनकी फिर मृत्यु कैसी! इस अनूठे सत्य को कहने के लिए यह पुनरुज्जीवन की कथा है। लेकिन तुम जिद्द करके अगर तथ्यों की तरह पकड़ लो तो मुश्किल हो जाती है।
मैंने सुना है, एक गणितज्ञ ने विवाह किया। पत्नी उसकी कवयित्री थी। पत्नी ने सुहागरात के दिन... और क्या करती, काव्य उसके हृदय में था; रसविभोर थी... एक गीत लिखा। गीत अपने पति को सुनाया। मगर वह यह भूल गई कि पति गणितज्ञ है। और गणित की भाषा अलग है, काव्य की भाषा अलग है। उनके लोग अलग, उनके आयाम अलग, उनके आकाश अलग। पति ने तो गीत ऐसे सुना कि जैसे पत्नी पागल हो। क्योंकि पत्नी ने गीत में कहा था कि मेरे प्रिय, आकाश में चांद को देख कर मुझे तुम ही दिखाई पड़ते हो चांद में। तुम्हें देखती हूं, तुम्हारे चेहरे में मुझे आकाश का चांद दिखाई पड़ता है। पति ने कहा, ठहरो। कहां चांद और कहां आदमी का चेहरा! चांद कितना वजनी, कितना बड़ा और कहां आदमी का चेहरा! मैं तो दब कर ही मर जाऊंगा अगर मेरे सिर पर कोई चांद रख दे। और चांद और मेरे चेहरे में क्या तालमेल है? चांद में गड्ढे हैं--बड़े-बड़े गड्ढे हैं; ऊंच-नीचे, ऊबड़-खाबड़--तुझे मेरा चेहरा ऐसा ऊबड़-खाबड़ दिखाई पड़ता है?
पत्नी तो चौंकी होगी! संवाद असंभव हो गया होगा। वे दोनों अलग भाषाएं बोल रहे हैं। वे दोनों एक-दूसरे की भाषा नहीं समझ सकते हैं।
और यही भ्रांति बढ़ती चली गई है। क्योंकि तुम्हें शिक्षा दी जाती है गणित की, विज्ञान की, भौतिकशास्त्र की, रसायनशास्त्र की। तुम्हारा सारा का सारा मस्तिष्क तैयार किया जाता है तथ्यों के लिए। इसलिए दुनिया में काव्य रोज-रोज मरता गया है। कविता रोज-रोज तिरोहित होती गई है। अब दुनिया में कालिदास, भवभूति, मिल्टन, शेली, रवींद्रनाथ के होने की संभावना रोज-रोज कम होती जाती है--रोज-रोज कम होती जाती है! अब तो कवि भी जो कविता लिखते हैं, वह कचरे जैसी होती है। अब तो कवि भी कविता लिखते हैं तो तथ्यों की ही बात होती है, सत्यों की नहीं। अब तो कवि भी हिम्मत नहीं जुटा पाते कि सत्यों की बात करें; क्योंकि लोग कहेंगे--पागल हो!
विसेंट वॉनगाग पश्चिम का एक बहुत बड़ा चित्रकार हुआ। उसके चित्र उसकी जिंदगी में समझे नहीं जा सके। क्योंकि उसके चित्र तथ्यगत नहीं थे। उसके चित्रों में सत्य तो बहुत थे, लेकिन तथ्य बिल्कुल नहीं थे। तथ्यों के विपरीत थे। जैसे उसने एक चित्र बनाया, जिसमें वृक्ष इतने ऊंचे हैं कि तारों के ऊपर निकल निकल गए हैं। अब वृक्ष कहीं इतने ऊंचे होते हैं कि तारों के ऊपर निकल जाएं! तारे नीचे रह गए और वृक्ष ऊपर चले गए। किसी ने पूछा वॉनगाग को कि यह तो बिल्कुल कपोल कल्पना है। इतने बड़े वृक्ष कहां होते हैं जो चांद-तारों के ऊपर निकल जाएं? वानगाग ने कहा, मैं तो जब भी वृक्षों को देखता हूं, तो मुझे एक ही बात दिखाई पड़ती है कि वृक्ष हैं पृथ्वी की आत्मा की आकांक्षाएं चांद-तारों को पार करने की। आज नहीं पार हुए हैं तो कल हो जाएंगे। मैं भविष्य देख रहा हूं। पृथ्वी की आकांक्षा तारों को छू लेने की। जब भी मैं वृक्ष को देखता हूं तो बस मुझे ऐसा ही दिखाई पड़ता है--पृथ्वी के फैले हुए हाथ, भुजाएं आकाश में उठी हुईं, तारों को छूने की अभीप्सा, तारों के भी पार निकल जाने का प्रण। आज नहीं तो कल हो जाएगा, लेकिन मैं तो वैसा ही चित्रित करूंगा जैसा देखता हूं।
लेकिन यह देखना किसी द्रष्टा का होगा, ऋषि का होगा, कवि का होगा। यह देखना वैज्ञानिक का तो नहीं हो सकता। वैज्ञानिक तो कंधे बिचका कर अपने रास्ते पर हो जाएगा। कहेगा, दिमाग खराब है। होश की बातें करो!
इस बात को अगर तुम स्मरण रख सको, साधु शरण, तो फिर मैं तुमसे कहता हूं
कि लोहा सोना हो जाता है; और, लोहा एक दिन पारस भी हो जाता है। मगर प्रतीक की तरह समझना। नहीं तो तुम तलाश करने लगो पारस पत्थर की।

कहानियां हैं कि लोगों ने पारस पत्थर की तलाश की। करीब-करीब इस देश के
हर कोने में कहानियां हैं कि किसी झील में पारस पत्थर था।... मैं तो एक ऐसी झील पर गया, जहां मुझे यह कहानी बताई गई कि यहां पारस पत्थर है। और एक राजा ने बड़ी मेहनत की पारस पत्थर को खोजने की। झील में उसने हाथियों के पैरों में जंजीरें लोहे की बंधवा कर और चलवाया--क्योंकि झील गहरी है, हाथी ही चल सकते थे। हाथी चले। एक हाथी की जंजीर सोने की हो कर वापस लौट आई। तो इतना तो पक्का हो गया कि पारस है, मगर उसको खोजें कैसे? बहुत हाथी चलाए, एक हाथी की जंजीर छू गई होगी--संयोगवशात। उस झील तक न-मालूम कितने लोग पारस पत्थर की खोज में सदियों में आते रहे हैं।
इस तरह की मूढ़ता में मत पड़ जाना। ऐसा कोई पारस पत्थर नहीं है, ऐसी कोई झील नहीं है, ऐसा कोई लोहा नहीं है। तुम हो लोहा, जिसकी बात हो रही है। जागो तो सोना हो जाओ। और जगाने की क्षमता आ जाए तो तुम भी पारस हो?
कांटे क्या हैं? सुस्मृति हैं मधुभार धरे फूलों की
आहें क्या हैं? विस्मृति हैं उन प्यार-भरी फूलों की
पीड़ा क्या है? तड़पन है दुखियों के अंतस्तर की,
क्रीड़ा क्या है? क्रीड़ा है यौवन में अजर-अमर की,
वैभव क्या है? सपना है, इस छोटे-से जीवन का,
अपना क्या है? खो देना, जीवन में अपनेपन का,
काव्य की भाषा समझना शुरू करो। क्योंकि धर्म की भाषा काव्य की भाषा
के बहुत करीब है।
अपना क्या है? खो देना जीवन में अपनेपन का
यह तो उलटबांसी हो गई! अपना क्या है? खो देना जीवन में अपनेपन का। जो स्वयं को खो देता है, वह स्वयं को पा लेता है। गणित ऐसी भाषा से राजी नहीं होगा। लेकिन काव्य जरूर राजी होगा। काव्य की दुनिया में तो कांटे भी फूल हो सकते हैं।
कांटे क्या हैं? सुस्मृति हैं मधुभार धरे फूलों की
आहें क्या हैं? विस्मृति हैं उन प्यार-भरी फूलों की
पीड़ा क्या है? तड़पन है दुखियों के अंतस्तर की,
क्रीड़ा क्या है? क्रीड़ा है यौवन में अजर-अमर की,
वैभव क्या है? सपना है, इस छोटे-से जीवन का,
अपना क्या है? खो देना, जीवन में अपनेपन का,
धर्म काव्य के बहुत करीब है। गणित धर्म से बहुत दूर है। और तुम सब गणित की भाषा में रचे-पचे हो। बाजार में वही भाषा चलती है। काव्य की भाषा तो कहीं भी नहीं चलती। बाजार की तो छोड़ ही दो, प्रेमियों के बीच भी काव्य की भाषा नहीं चलती। मां और बेटे के बीच नहीं चलती, भाई-भाई के बीच नहीं चलती, मित्र-मित्र के बीच नहीं चलती। वहां भी गणित, वहां भी हिसाब, वहां भी दो-दो कौड़ी का मोल-तोल चलता है। हमने तो सारी जिंदगी बाजार बना दी है। हमने तो हर चीज दुकान बना दी है। और इसलिए यह आश्चर्य की बात नहीं है कि काव्य को समझने में हम असमर्थ हो गए हैं। हमारी पहचान खो गई है। और जो काव्य को समझने में असमर्थ है, वह परमात्मा को न समझ पाएगा, क्योंकि परमात्मा परम काव्य है।
यह अस्तित्व है तथ्य और परमात्मा है इस अस्तित्व में छिपा हुआ परम काव्य। यह बदलियों से गिरती हुई बूंदों की टपटप, इसमें तुम्हें अगर सिर्फ पानी ही पानी मालूम पड़े--एच टू ओ तो मिलेगा, परमात्मा नहीं मिलेगा। लेकिन एक और ढंग है छप्पर पर गिरती इन बूंदों को सुनने का। एक और दृष्टि है, एक और भाव-दशा है--तल्लीन होने की, तन्मय होने की--तब इस बूंदाबांदी में संगीत पकड़ में आएगा। तब इस बूंदाबांदी में तुम अनुभव करोगे कुछ एच टु ओ के पार, कुछ विज्ञान के पार। तब तुम्हें इसमें पृथ्वी की प्यास भी दिखाई पड़ेगी और आकाश की उत्कंठा भी पृथ्वी की प्यास को बुझा देने की। और तुम अगर आगे चलते रहे, बढ़ते रहे, इस भाषा को और-और गहराते रहे, तो एक दिन तुम्हें दिखाई पड़ेगाः ये पृथ्वी और आकाश अलग-अलग नहीं हैं; इंद्रधनुषों के सेतु से जुड़े हैं। यह सारा अस्तित्व इस भांति जुड़ा है कि एक ही है। एक ही स्पंदित हो रहा

है, अनेक रूपों में, अनंत रूपों में। जानने वाले उसे बहुत-बहुत शब्दों में कहते हैं, मगर अनुभव उसका एक है।
विज्ञान से हटो काव्य पर, फिर काव्य से छलांग लो धर्म में--ये तीन सीढ़ियां हैं। मंदिर की तीन सीढ़ियां। और तब तुम मंदिर के अंतर्गृह में प्रवेश पा सकोगे।
तो मैं तुमसे कहता हूं कि सोना हो सकता है लोहा; लोहा पारस भी हो सकता है। मगर तुम हो वह लोहा। सत्संग करो तो सोना हो जाओ। सत्संग पूर्ण हो जाए तो पारस भी हो सकते हो। पारस होना तुम्हारी संभावना है। लेकिन नई भाषा सीखनी होगी, नई शैली सीखनी होगी, नये जीवन का ढंग, आचरण सीखना होगा। मैं उस जीवन शैली को ही संन्यास कहता हूं। वह यात्रा लोहे से पारस तक की, वही संन्यास है।
दीवानापन चाहिए इस यात्रा के लिए। बुद्धि तो दो कौड़ी की है, हृदय चाहिए इस यात्रा के लिए। बुद्धि यानी तथ्य की सीमा। हृदय यानी सत्य में प्रवेश।
मैं प्रिय का पथ अपनाता हूं
जो जी में आता गाता हूं
इतना कह सकता हूं, मुझको तो अपना ही होश नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं है।

सुख-दुखमय चिर-चंचल मन है
मानव हूं, अपूर्ण जीवन है
इसलिए तो इस जीवन से आज मुझे संतोष नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं है।

आशा अभिलाषा का धन है
सब कहते मुझमें यौवन है
तुम्हीं बता दो यौवन-मद में कौन हुआ मदहोश नहीं है, मेरा इसमें दोष नहीं है।

इसका कहीं नहीं इति-अथ है
जीवन अमर साधना-पथ है
दुनिया जो कहना हो कह ले, मुझे किसी पर रोष नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं है।

मैं प्रिय का पथ अपनाता हूं
जो जी में आता गाता हूं
इतना कह सकता हूं, मुझको तो अपना ही होश नहीं है,
मेरा इसमें दोष नहीं है।
प्रेम का मार्ग पकड़ो। तर्क नहीं, प्रीति का। प्रीति से गांठ बांधो। प्रेम के फेरे जब तक नहीं लोगे तब तक परमात्मा से कोई संबंध न हो सकेगा। और दुनिया पागल कहेगी, यह पक्का मान लेना, पहले से ही मान लेना, जान कर चलना। कवियों को दुनिया ने सदा पागल कहा है। और ऋषियों को तो बिल्कुल पागल कहा है। ऋषियों को कहा हैः परम हंस। यह अच्छा शब्द है, बस; इसका अर्थ पागल होता है!
रामकृष्ण, रास्ते पर कोई जय रामजी कर लेता, वहीं खड़े हो कर नाचने लगते थे। लोग कहते, परमहंस हैं। वैसे मतलब उनका यह था कि पागल हैं... अब पागल कहना ठीक नहीं मालूम पड़ता! रास्ते पर नाचना, यह कोई बात हुई। शिरडी के साईं बाबा अपने अंतिम क्षणों में गालियां बकते थे, पत्थर मारते थे। लोग प्रश्न पूछते, वे डंडा लेकर दौड़ते थे। लोग कहते, परमहंस हैं। लोग अच्छे-अच्छे शब्द उपयोग कर लेते हैं, लेकिन मतलब उनका यह है कि पागल हैं। अब इनको होश नहीं। अब ये अपने में नहीं। जो अपने में आ गया है, वह अपने में नहीं मालूम होता!

लेकिन जो समझ सकते थे, उन्हें कुछ और दिखाई पड़ा। शिरडी के साईं बाबा
की गालियों में उन्हें दिखाई पड़ा कि वे हमें जगाने की आखिरी चेष्टा कर रहे हैं। जाने के पहले आखिरी उपाय, अथक चेष्टा। ऐसे नहीं जगे तो अब पत्थर मारकर जगा रहे हैं। ऐसे नहीं जगे तो अब डंडा मार कर जगा रहे हैं। बड़ी करुणा होगी! नहीं तो कौन इतनी झंझट मोल लेता है? एकाध दफा दे दी पुकार, बात खतम हो गई। सुनी तो सुनी, नहीं सुनी तो तुम जानो। सुन ली तो ठीक, नहीं सुनी तो भाड़ में जाओ। लेकिन महा करुणा रही होगी इस मनुष्य में। कि छोड़ ही नहीं रहा है पीछा; कहता है कि जगा कर ही छोडूंगा। गाली देनी पड़ेगी तो गाली दूंगा।
कुछ लोग हैं जो सिर्फ गाली ही सुनकर जागेंगे। और किसी तरह जाग ही नहीं सकते। और तो हर चीज को वे लोरी समझते हैं। उनकी नींद और गहरी जाती है। वे और मस्ती के सपने देखने लगते हैं। इनको शायद गालियों की ही जरूरत है। शायद गालियां ही इन्हें चौकाएं, तिलमिलाएं। शायद कोई पत्थर मारे तो ही इन्हें थोड़ा होश आए। कोई डंडा लेकर इनके पीछे दौड़े तो उस घबड़ाहट में शायद इनकी नींद टूट जो।
जो जानते थे, वे तो कहेंगे कि एक अथक चेष्टा हो रही है बुद्धपुरुष की।
इस दृष्टि से बुद्ध से भी ज्यादा करुणा शिरडी के साईं बाबा ने दिखाई। मगर जो नहीं जानेंगे, भीतर तो समझेंगे पागल है, बाहर से कहेंगे परमहंस है-- क्योंकि डरते भी हैं कि पागल कहना ठीक नहीं, शिष्टाचार नहीं।
लोग तो तुम्हें पागल समझेंगे; लेकिन परमात्मा से तुम्हारे संबंध जुड़ने लगेंगे। और वही बात मूल्यवान है। वही बात निर्णायक है, लोग क्या समझते हैं इसका कोई मूल्य नहीं है।

दूसरा प्रश्नः भगवान, नाम-जप करते-करते उम्र ढल गई। हाथ तो कभी कुछ लगा नहीं। लेकिन जब भी तथाकथित पंडित-पुजारियों, साधु-महात्माओं से पूछा तो उन्होंने कहा--बेटा, यह कार्य जन्मों की साधना से होता है। और जीवन के अंतिम पहर में अब आप मिले हैं तो लगता हैः मैं भी किन धोखेबाजों के चक्कर में पड़ा रहा! अब मैं क्या करूं?

गुरुदास! उनसे पूछोगे जिन्हें स्वयं नहीं मिला है, तो बेचारे वे भी क्या करें! तुम उनकी भी तो दुविधा समझो। जिन्हें स्वयं नहीं मिला है, अपनी अस्मिता को बचाने का उन्हें भी तो तुम कुछ उपाय दोगे या नहीं दोगे! वही उपाय है। वे तुमसे कहते हैं कि जन्मों-जन्मों की साधना से होता है, यह कोई एक दिन की बात नहीं है; कोई एक जन्म की बात नहीं है।
तिब्बत में एक बहुत प्रसिद्ध कथा है।
एक फकीर हुआ, उसकी बड़ी ख्याति फैलने लगी। ख्याति का कारण कि वह शिष्य नहीं बनाता था। लोग भी बड़े अजीब हैं! किस बात से ख्याति फैलाने लगेंगे, कुछ कहना कठिन है। शिष्य नहीं बनाता था, तो उन्होंने कहा, अहा! महात्मा हो तो ऐसा! अहंकार बिल्कुल है ही नहीं। किसी को शिष्य बनाता ही नहीं। यह भाव ही नहीं है कि मैं जानता हूं और तुम नहीं जानते, तो शिष्य कैसे बनाए? शिष्य तो जो बनाते हैं, वे अहंकारी हैं। और यही बात वह फकीर लोगों से कहता भी था कि मुझे कोई अहंकार नहीं है, तो कैसे शिष्य बनाऊं? कौन शिष्य, कौन गुरु! बात जंचती। शिष्य जो बनने आते थे, उनको भी बड़ी प्रसन्नता होती यह बात जानकर कि हम में और गुरु में कोई भेद ही नहीं है। यही तो सुनना चाहते हैं लोग। झुकना कौन चाहता है! और यह आदमी बड़ा प्यारा है, झुकने की बात ही नहीं करता। कोई झुकना भी चाहे तो धक्के देकर निकाल देता था बाहर फकीर कि भाग जाओ, मैं किसी को शिष्य नहीं बनाता।
जितना भगाता उतने लोग और आते। लोग अजीब हैं, उनके अपने गणित हैं! भगाता है तो जरूर इसको हीरा मिल गया है। गांठ बांधे बैठा है, देना नहीं चाहता। भीड़ बढ़ती चली गई। लोग बहुत प्रार्थनाएं किए कि किसी को तो कान फूंक दो, किसी को ज्ञान दे दो। तुमने पा लिया, एक दिन चले जाओगे, कुंजी हमें सौंप जाओ। मगर वह था कि अड़ा ही रहा।
आखिर धीरे-धीरे लोग थक गए। एक सीमा होती है धैर्य की! लोग धीरे-धीरे आना बंद भी हो गए। सिर्फ एक आदमी रुका रहा। वह भी इसलिए रुका रहा कि उसे

कोई और काम था भी नहीं कहीं, यहां फकीर की थोड़ी सेवा कर देता था, खाना-पीना मिल जाता था फकीर के पास, कपड़ा मिल जाता था, सुविधा थी।
एक दिन फकीर ने अचानक सुबह ही उससे कहा कि उठ-उठ, अब देर न कर, भाग कर नीचे जा मैदान में और जिनको भी शिष्य बनना हो, जल्दी ले आ! अब समय खोने को नहीं है। उसको तो भरोसा ही नहीं आया कि जिसने जीवन भर किसी को शिष्य नहीं बनाया, वह कह रहा है कि भगा, जा किसी को भी ले आ! उसने पूछा कि आप क्या कह रहे हैं? होश में हैं? आपका दिमाग तो खराब नहीं हो गया? बड़े-बड़े पंडित, बड़े-बड़े बुद्धिमान आए और आपने धक्का दे कर निकलवा दिए--मैंने ही धक्का देकर निकाले! अब आप कहते हैं, किसी को भी! पात्र-अपात्र का कोई हिसाब नहीं करना है! उसने कहा, अब तू समय खराब मत कर। जो भी आने को राजी हो, ले आ। पात्र-अपात्र की बात ही मत उठाना।
कहा फकीर ने तो वह गया। गांव में जाकर पीट दी कि भाई, जिसको भी शिष्य होना हो... । बहुत लोग आते थे शिष्य होने--शायद इसी आशा में आते थे कि वह बनाएगा तो है ही नहीं, तो यह मौका भी क्यों चूको! कहने को रह जाएगा कि गए तो हम भी थे! वह उस दिन डुंडी पीटी शिष्य ने तो बामुश्किल शाम होते तक केवल दस-बारह आदमी इकट्ठे पर पाया--बामुश्किल। उसमें भी करीब-करीब सब बेकार थे। एक की पत्नी मर गई थी, वह खाली था, उसे कुछ सूझ नहीं रहा था क्या करूं, क्या न करूं, उसने कहा चलो यही ठीक, कुछ गोरखधंधा रहेगा! एक को नौकरी नहीं मिलती थी, वह बेकार था बहुत दिन से, उसने कहा--चलो भाई, मैं भी आता हूं। कोई सिर्फ जिज्ञासावश साथ हो लिया कि देखें! ऐसे दस-बारह आदमी इकट्ठा करके सांझ तक वह लौटा।
वह बड़ा चिंतित था मन में कि इनको देख कर गुरु क्या कहेगा? इनमें एक भी पात्र नहीं है। कोई की पत्नी मर गई, किसी का धंधा नहीं चल रहा है, किसी की नौकरी नहीं लग रही है; कोई जुए में हार गया है तो दुखी है; किसी का दीवाला निकल गया है तो वह आत्महत्या की सोच रहा था, उसने सोचा, चलो, आत्महत्या करने के पहले मंत्र ही ले लो, दीक्षा ही ले लो। मरना तो है ही। परमात्मा के सामने भी कुछ कहने को रह जाएगा। इस तरह के फिजूल के लोग। इनको गुरु क्या ज्ञान देगा? और गुरु ने बड़ी प्रसन्नता से उनका स्वागत किया, एक-एक को अंदर गुफा में ले जा कर, जो उसकी कुंजी थी, जिससे उसने पाया था, वह देने लगा। वे बारह ही आदमी बड़े चौंके। आखिर उन सब ने इकट्ठे होकर प्रार्थना की कि हम यह पूछना चाहते हैं कि हम में से पात्र कोई भी नहीं है--हम खुद ही जानते हैं अपनी अपात्रता; हम एक-दूसरे को भी भलीभांति जानते हैं! बड़े-बड़े पात्र आए, आपने इनकार कर दिए, आज हम अपात्रों को बुला कर आप बांट रहे हैं!
उस गुरु ने कहा, अब तुम नहीं मानते तो मैं सत्य बात तुमसे कह दूं। जब लोग मेरे पास शिष्य होने आते थे, तो मेरे पास कुछ देने को ही नहीं था। मुझे खुद ही नहीं मिला था। तो अपनी रक्षा करने का एक ही उपाय था कि मैं कहता था, मैं कोई शिष्य नहीं बनाता। मैं कोई अहंकारी नहीं हूं। शिष्य बनाता तो क्या खाक बनाता! मेरे पास देने को कुछ नहीं था। इसलिए मैं शिष्यों की पात्रता की बात करता था कि जब आएगा कोई पात्र, उसको बनाऊंगा। सचाई उलटी थी, पात्र मैं ही नहीं था। अब मैं पात्र हूं। मेरा पात्र लबालब भरा है। उसके रस से भर गया है। अब सवाल यह नहीं है कि तुम पात्र हो या नहीं? अंजुली में भर कर पी लो। मिट्टी के बर्तन लाओ कि सोने के बर्तन लाओ, तुम जैसे भी आओ, स्वीकृत हो। आज मेरे पास देने को है। आज मैं कोई शर्त नहीं लगाता। आज बेशर्त दूंगा। और मेरे पास समय भी कम है। बस तीन दिन मुझे जीना है और। मेरी नाव आ लगी किनारे, और जल्दी ही मुझे दूसरे किनारे की यात्रा पर निकल जाना है। इसके पहले कि मैं जाऊं, जितनों के पात्र भर सकूं, भर दूं। अब मैं यह क्या पूछूं कि तुम्हारा पात्र सोने का, कि पीतल का, कि लोहे का, कि मिट्टी काः कि गरीब का, कि अमीर का; कि सोना चढ़ा, हीरे जड़ा, कि दो कौड़ी का? कि तुम्हारे पास पात्र ही नहीं है तो तुम अपनी अंजुली ही बना लो; अगर अंजुली भी न बना सको तो अपना मुंह ही खोलो, मैं मुंह में ही सीधा ढाल दूंगा, मगर पी लो!
गुरुदास, तुम जिनके पास गए और तुमने उनसे कहा कि इतना नाम जप कर रहा हूं, उम्र बीत गई, कुछ हो नहीं रहा है, तो तुम उनकी भी मुसीबत समझो! वे करें

क्या? या तो वे कहें कि नाम-जप से कुछ होता नहीं। तो उनका सारा धंधा गिर जाए। नाम-जप पर ही उनका सारा धंधा टिका हुआ है। या वे कहें कि भाई, हमें पता नहीं, किसी जानने वाले जागे पुरुष से पूछो, तो भी उनका धंधा गिर जाए। क्योंकि तुम तभी तक उनके पास जाओगे जब तक वे दावा करते हैं कि वे जानने वाले हैं। दोनों बातें वे नहीं कर सकते। तो तीसरी ही बात बचती है कि तुम अभी पात्र नहीं हो; और पात्रता जन्मों-जन्मों में मिलती है। यह कोई एक दिन का काम नहीं है।
मछली मारने के शौकीन ढब्बू जी एक दिन चंदूलाल को भी अपने साथ नदी के किनारे ले गए। एक बंसी उन्हें भी पकड़ा दी। बेचारे चंदूलाल क्या जानें मछली मारना? तीन-चार घंटे खूब भागदौड़ की, पसीना-पसीना हो गए। जब शाम को बिल्कुल अंधेरा हो गया, तब वे अपनी रोनी सूरत लिए ढब्बू जी के पास आकर हताश स्वर में बोले, यार, क्या बताऊं, एक भी मछली नहीं फंसी। मैं तो शर्म से पानी-पानी हुआ जा रहा हूं। अरे, इसमें शर्म से पानी-पानी होने की क्या बात है, ढब्बूजी ने आश्चर्य से आंखें फाड़ कर जवाब दिया। मुझे देख कर कुछ शिक्षा लो। पिछले बीस वर्षों से मछली मार रहा हूं, मगर आज तक एक भी नहीं फंसी। तुम भी गजब के कायर हो, एक ही दिन में हार मान गए।
तुमने जिनसे पूछा था, गुरुदास, उनकी आंखों में झांक कर तो देख लेते। मछली वहां फंसी? उनका हाथ तो हाथ में लेकर देख लेते। उसमें तरंग है ईश्वर-आनंद की? उनके पास बैठ कर चुपचाप, शून्य होकर, मौन हो कर थोड़ा उनको पीते, स्वाद लेते। अमृत का वहां स्वाद है? आंख बंद करके जरा उनकी तरफ देखते। उस तरफ से आती रोशनी अनुभव होती है? प्रकाश की कोई धारा तुम्हारे हृदय में उतरती है? फिर पूछना था। तुम उनसे पूछ रहे थे जिनको खुद ही न मिला था। वे बहाने न खोजें तो क्या करें? वे तुम्हीं को जिम्मेवार न ठहराएं तो क्या करें?
और इसीलिए स्वभावतः जब तुम मेरे पास आए हो तो तुम्हें हैरानी लगती होगी, क्योंकि मैं कहता हूंः परमात्मा एक क्षण में मिल सकता है। क्योंकि परमात्मा कल मिले, यह बात ही फिजूल। परमात्मा तो सदा आज है। कल तो परमात्मा के लिए है ही नहीं। कल तो हमारे लिए है, उसके लिए नहीं। परमात्मा के लिए तो सिर्फ आज का ही अस्तित्व है, कल का कोई अस्तित्व नहीं है।
तुम कल परमात्मा से मिलना चाहो और उसके लिए कल का कोई अस्तित्व नहीं,
तो मिलना होगा कैसे?
परमात्मा अभी है। आकाश से बरसती इस वर्षा में, वृक्षों की हरियाली में, इस सन्नाटे में, इस बूंदाबांदी में, इस तुम्हारी मौजूदगी में, मेरी मौजूदगी में; मेरे बोलने में, तुम्हारे सुनने में; यह हमारे हृदय की धड़कनों में, हमारी श्वासों में वही मौजूद है। कल की बात क्यों? परमात्मा कुछ दूर है कि उसे पाने के लिए चलना पड़ेगा? परमात्मा पास से भी पास है। तुम्हारे प्राणों से भी ज्यादा पास है। तुम्हारे हृदय की धड़कन भी थोड़ी दूर है, परमात्मा उससे भी ज्यादा पास है। क्योंकि परमात्मा है वह साक्षी जो तुम्हारे हृदय की धड़कन को देखता है। परमात्मा तुम्हारी सांसों से भी तुम्हारे ज्यादा पास है, क्योंकि परमात्मा है वह साक्षी जो श्वास का भीतर आना-बाहर जाना देखता है।
इसीलिए तो बुद्ध ने विपस्सना ध्यान का आविष्कार किया। अपनी श्वास को देखते रहो; बस इतनी ही बुद्ध ने प्रक्रिया दी जगत को। बुद्ध का सारा सार विपस्सना है। विपस्सना का अर्थ होता हैः श्वास को देखना; प्रश्वास को देखना। श्वास भीतर गई, देखना; श्वास बाहर गई, देखना। सिर्फ देखते रहना, कुछ करना नहीं। न राम-राम जपना, न ओंकार जपना, न गायत्री, न नमोकार, कुछ भी नहीं। सिर्फ श्वास भीतर गई, होशपूर्वक इसे देखना। साक्षी। फिर श्वास बाहर गई, इसे देखना। फिर जल्दी ही तुम्हें दो और बातें दिखाई पड़ेंगी। श्वास जब भीतर जाती है तो दिखाई पड़ेगी, बाहर जाती है तो दिखाई पड़ेगी--यह प्राथमिक चरण। दूसरे चरण में, जब गहराई देखने की बढ़ेगी, तो तुम्हें यह भी दिखाई पड़ेगाः श्वास भीतर जाती है और फिर क्षण भर को ठहर जाती है। श्वास बाहर जाती है और क्षण भर को ठहर जाती है। फिर तुम्हें दो चीजें दिखाई पड़ने लगेंगी और--श्वास का आना और जाना और श्वास का भीतर ठहरना और बाहर ठहरना। वह

जो ठहराव है जब श्वास बाहर की बाहर रह गई और श्वास भीतर की भीतर रह गई, छोटा सा है, पल मात्र का है, लेकिन उसी पल में पलक खुलती है। उसी पल में द्वार खुलता है। उसी पल में साक्षी का अनुभव होता है। क्योंकि श्वास भी देखने को नहीं बचती, देखने वाला अकेला रह जाता है। और जब देखने को कुछ भी नहीं बचता तो देखने वाला स्वयं को देखता है। जब सब विषय-वस्तु खो जाते हैं, सब दृश्य विलीन हो जाते हैं, तो द्रष्टा अपने को ही अनुभव करता है। उस अनुभूति का नाम परमात्मा है।
तुम नाम-जप करते-करते उम्र बिता दिए, मैं तुमसे कहता हूंः तुम अनेक उम्र बिताओ तो भी कुछ न होगा। नाम का जप नहीं करना होता। क्या करोगे नाम-जप में? राम-राम, राम-राम, राम-राम दोहराते रहोगे। यंत्रवत हो जाएगा! जल्दी ही दोहराते-दोहराते आदत हो जाएगी। फिर लोग दुकान पर बैठ कर सामान तौलते रहते हैं, डांडी भी मारते रहते हैं और राम-राम भी जपते रहते हैं--मुख में राम बगल में छुरी। कुछ ऐसे ही थोड़े लोगों ने यह कहावत बना ली होगी। यह भारतीय कहावत है। इस धर्मप्राण देश में बहुत अनुभव के बाद यह कहावत बनी होगी--मुख में राम बगल में छुरी। छुरी पर धार भी देते रहते हैं और राम-राम, राम-राम भी जपते रहते हैं।
मैंने तो सुना है, एक जौहरी ने अपनी दुकान पर यह हिसाब बना लिया था-- बड़ी दुकान थी--जैसे ही ग्राहक आता... दुकानदार की बड़ी प्रसिद्धि थी उस जौहरी की कि बड़ा भक्त है! भगत जी ही लोग उनको कहते थे। और भगत जी वे थे। मगर वैसे ही भगत जी जैसे बगुला भगत होते हैं। बगुला देखा है कैसा खड़ा होगा है? शुद्ध खादी के वस्त्र पहने हुए बगुला खड़ा होता है। और एक टांग पर खड़ा होता है--बगुलासन! बड़े-बड़े योगी मुश्किल से साध पाते हैं। एक टांग पर खड़ा रहता है, बिल्कुल थिर--हिलता ही नहीं, डुलता ही नहीं। हिले-डुले तो मछली फंसे कैसे! हिले-डुले तो पानी हिल-डुल जाए, पानी हिल-डुल जाए तो बगुले का बनता हुआ प्रतिबिंब हिल-डुल जाए, मछली संदिग्ध हो जाए कि मामला कुछ गड़बड़ है, भगत जी खड़े हैं! तो भगत जी ऐसे खड़े रहते हैं कि पानी हिलता ही नहीं। जब कुछ भी नहीं हिलता और गतिमान नहीं होता तो मछली निश्चिंत गुजरती रहती है। उसी में मछली फंसती है।... तो वे भगत जी बड़े जाहिर भगत जी थे। मछलियों को कुछ पता नहीं था। मछली यानी ग्राहक। वे ग्राहक को देख कर ही जपने लगते थे एकदम। कभी कहते, राम-राम, राम-राम, राम-राम... ! राम-राम का अर्थ थाः बेकाम; किसी मतलब का नहीं है, इसको जाने दो। वे अपने नौकर-चाकरों को कह रहे थे, बेकार मेहनत मत करो, मैं इसको भलीभांति जानता हूं। राम-राम करो! समय खराब मत करो। इससे कुछ निकलेगा नहीं। इस पर कुछ है भी नहीं। तो जब भगत जी राम-राम कहते, दुकान पर जो उनके नौकर-चाकर थे, टाल-टूल करके खिसका देते ग्राहक को।
किसी ग्राहक को देख कर भगत जी कहतेः हरे-हरे! हरे-हरे! मतलबः लूटो! लूटो! हरि का मतलब होता हैः लूटो। लुटेरा। हरण करो, छोड़ो मत। काटो इसको! ये उनके कोड शब्द थे।
राम-राम यानी बेकाम। जाने भी दो! छुटकारा पाओ, राम-राम करो। और हरि- हरि, जाने मत देना! अब आ ही गया है तो छूट न जाए, फांसो। ऐसे उन्होंने मंत्रों के भी अर्थ तय कर रखे थे। जब वे एकदम मंत्रजाप करने लगते, उनके नौकर-चाकर सब समझ जाते क्या करना है। कितना दाम बताना है, कितना नहीं बताना है। दुगुना बताना है कि तीन गुना बताना है। कम करना है कि नहीं करना है। इस सब के धार्मिक मंत्र तय कर रखे थे। कभी गायत्री जपने लगते... मगर ये सब प्रतीक थे।
तुम राम-राम जप सकते हो--यंत्र की भांति तुम्हारी जीभ दोहराए जाए, तुम्हारा कंठ दोहराए जाए, इससे कुछ भी न होगा, होश चाहिए। अगर राम-राम भी जपने में तुम्हें रस हो, तो ख्याल रखना, राम-राम जपना और भीतर साक्षीभाव रखना कि मैं राम-राम जप रहा हूं। राम कहा, राम कहा, भीतर देखते जाना। जैसे बुद्ध ने कहाः श्वास देखना, ऐसे तुम राम-राम देखना। मगर उलटा राम-राम में कहां उलझना? यह तो ज्यादा आसान श्वास है। क्योंकि अपने-आप चल रही है। राम-राम तो चलाना पड़ेगा। और राम-राम चलाने में थोड़ा खतरा भी है। जैसे कार ड्राइव कर रहे हो और राम-राम जपने लगे और मन राम-राम पर लगाया, तो

एक्सीडेंट हो सकता है। सायकिल पर चले जा रहे हो और राम-राम कर रहे हो, तो एक्सीडेंट हो सकता है। तुम राम-राम जप रहे हो और ट्रक वाला हार्न बजा रहा है, तुम्हें सुनाई ही न पड़े।
जीवन में नुकसान हो सकता है।
इसलिए लोगों ने फिर राम-राम जपने के लिए अलग इंतजाम कर लिया। घड़ी आधा घड़ी निकाल ली, सुबह नहा-धोकर बैठ गए अपने एक कोने में, मंदिर बना लिया घर में, वहां राम-राम जप लिया। जिंदगी से राम-राम का कोई संबंध न रहा। एक खंड में बना लिया।
नहीं, बुद्ध की प्रक्रिया ज्यादा वैज्ञानिक है। श्वास का सहज-भाव से बोध रहा आए। तुम चकित होओगे कि जैसे-जैसे तुम श्वास को देखोगे वैसे-वैसे विचार कम हो जाएंगे। श्वास और विचार में एक अनिवार्य संबंध है। अब तो इस बात से वैज्ञानिक भी राजी हैं कि अगर कोई व्यक्ति अपनी श्वास को देखे, तो उसके विचार कम हो जाते हैं। उसी मात्रा में। जिस व्यक्ति के भीतर बहुत विचारों का ऊहापोह होता है, उसे श्वास देखना बहुत कठिन पड़ती है, बहुत मुश्किल पड़ती है। वे दोनों विपरीत प्रक्रियाएं हैं। दोनों का कोई सह-अस्तित्व नहीं हो सकता।
इसलिए, गुरुदास, मैं तो तुम से कहूंगाः नाम-जप छोड़ो; श्वास-प्रश्वास
पर ध्यान को जमाओ। अब तुम उसी को राम-जप समझो। क्योंकि जो देख रहा है, वह राम है। वह जो साक्षी है, वही राम है। और तब यह घटना इसी जन्म में घटेगी। क्यों अगले जन्म में? क्यों आगे पर टालना? और यह घटना अभी घट सकती है। सब निर्भर करता है तुम्हारी त्वरा, तुम्हारी तीव्रता, तुम्हारी सघनता, तुम्हारी समग्रता पर।
तुम पूजा-पाठ में लगे रहे! पूजा-पाठ में करोगे क्या? मंत्र पढ़ोगे, मांग करोगे--यह मिल जाए, वह मिल जाए--कोई ऐसे मुफ्त तो... नाम-जप करता नहीं! लोग प्रार्थना ऐसे ही तो नहीं करते अहेतुक, उसमें हेतु होते हैं। उनकी प्रार्थना में भी वासना भरी होती है।
मैंने सुना है, एक आदमी मरा। वह बहुत नाराज हुआ। क्योंकि उसके साथ ही उसका साझीदार भी मरा--दोनों एक कार एक्सीडेंट में मरे तो साथ ही मरे-- देवदूत लेने आए तो इस आदमी को जो कि प्रार्थना, पूजा-पाठ में तल्लीन रहता था, कभी-कभी अखंड पाठ करवा देता था--मुहल्ले भर में शोरगुल मचवा देता था लाउडस्पीकर लगवा कर--सत्यनारायण की कथा करवा देता था, प्रसाद बंटवाता था, मंदिर नियम से जाता था, तिलक लगाता था, जनेऊ धारण करता था, सब तरह से जो धार्मिक आदमी को करना चाहिए सब करता था; और इसका जो साझीदार था, इससे बिल्कुल उलटा था। महा नास्तिक। न कभी ईश्वर का नाम ले, न एक पैसा दान दे; न पूजा, न पाठ, कुछ भी नहीं। मंदिर के भीतर तो वह कभी देखा ही नहीं गया था। उसको देवदूत ले जाने लगे स्वर्ग की तरफ और इसको ले जाने लगे नरक की तरफ। इसने कहा, ठहरो भाई, कुछ भूल-चूक हो रही है! तुम्हारे दफ्तर की कुछ भूल है। लगता है तुम गलती कर रहे हो। मुझे ले जाना चाहिए स्वर्ग की तरफ, इसे नरक की तरफ, यह तुम क्या कर रहे हो? उन्होंने कहा कि कोई भूल-चूक नहीं है। अभी परमात्मा का दफ्तर सरकारी दफ्तर नहीं हुआ। अभी वहां भूल-चूक नहीं होती। हालांकि जल्दी ही खतरा है! क्योंकि दिल्ली से मर-मर कर जितने लोग पहुंच रहे हैं, उन सबको भी नौकरी पर लगाना पड़ रहा है, कुछ न कुछ काम देना पड़ रहा है; अब वे सब गड़बड़झाला करेंगे, मगर अभी सब ठीक चल रहा है!
उसने कहा कि मैं यह बर्दाश्त नहीं कर सकता। मुझे पहले परमात्मा के सामने मौजूद किया जाए। मुझे पूछना है। जिंदगी मैंने नाम-जप में बिताई, पूजा-पाठ में बिताई, और यह लफंगा, यह मेरा साझीदार है, यह मेरा मित्र है, यह एकदम नास्तिक, इसको स्वर्ग, मुझको नरक! पहले परमात्मा से पूछूंगा। आज दो- दो बातें हो जाएं! जिंदगी भर रोया, गिड़गिड़ाया, उसका यह फल! रात-दिन पुकार, सोते-जागते पुकारा, उसका यह फल!
उसको परमात्मा के सामने ले जाना पड़ा--उसने शोरगुल इतना मचाया!
उसने पूछा परमात्मा से कि यह क्या मामला है? यह कैसी ज्यादती? मैंने
तो सुना था, देर होती है अंधेर नहीं होता, अब तो दिखता है कि अंधेर भी होता है। यह मेरे जीवन-भर के पुण्य कर्मों का फल मुझे मिल रहा है--नरक! और इसको

किस चीज का फल मिल रहा है? मैंने तुम्हारी प्रार्थना नहीं की, पूजा नहीं की? व्रत-नियम-उपवास नहीं किए? परमात्मा ने कहाः सब किए; इसीलिए तुम्हें नरक भेज रहा हूं। तुमने जिंदगी भर मुझे चैन से न रहने दिया। मेरी खोपड़ी खाते रहे। रात-दिन बकवास लगा रखी थी, मेरी खोपड़ी में भनभनाते रहे। मैं तुमको यहां स्वर्ग में नहीं टिकने दूंगा। अगर तुमको यहां रहना है, तो मैं नरक चला! तुम रहो, करो तुम अखंड पाठ, लगाओ लाउडस्पीकर और जो तुम्हें करना हो करो! और उसके साझीदार से कहा कि भाई आ, तू भी मेरे साथ चल! अब इसी को रहने दे स्वर्ग में। या तो तुम रहोगे यहां या मैं रहूंगा।
मुझे बात में अर्थ समझ आता है। बात ठीक है।
तुम करते भी हो पूजा-पाठ, तो उसके पीछे कुछ वासना है, कुछ कामना है। उसी से चूकते हो। फिर जन्मों-जन्मों चूकोगे। फिर तुम्हारे पंडित-पुजारी ठीक ही कहते हैं कि बेटा, यह मामला कठिन है। वे तो जन्म-जन्म कहते हैं, मैं तुमसे कहता हूंः अगर वासना है तुम्हारी प्रार्थना में, तो अनंत जन्मों में भी उपलब्धि नहीं हो सकती। वासना-शून्य होनी चाहिए प्रार्थना। प्रार्थना अहोभाव होनी चाहिए, आनंद होनी चाहिए; धन्यवाद, कृतज्ञता--मांग नहीं।
यत्न से कितने दबाए
था जिन्हें अब तक छिपाए
आज मेरे गान बरबस
कंठ में फिर उतर आए
आज मैंने रख दिया है हृदय अपना चीर मेरे गान तुम मत सुनो।

देख मेरी चिर-विकलता
देख पग-पग पर विफलता
देख मेरे पलक भीगे
देख मेरा हृदय जलता
हा, कहीं तुम हो न जाओ आज स्नेह-अधीर मेरे गान तुम मत सुनो।

मुख मलिन, निःशब्द, कातर
देख मेरा वेष जर्जर
देख मुरझे हत्कमल-दल
देख यह सूखा हुआ सर
हा, छलक आए न नयनों में तुम्हारे तीर मेरे गान तुम मत सुनो।

मन विरागी राग से भर
कर रहा प्रतिध्वनि अंबर
आज अधरों की हंसी में
व्यंग का आभास पाकर
हा, न हो उट्ठे तुम्हारे हृदय में फिर पीर
मेरे गान तुम मत सुनो
रोओ मत, गिड़गिड़ाओ मत, मांगो मत। अपनी पीड़ा को उछालो मत। अपने दुख-दर्द
की बात क्या करनी? अपने कांटों की गिनती क्या करवानी? अपने फूल चढ़ाओ। तुम्हारे जीवन में जो आनंद के क्षण हों, वे समर्पित करो। और आनंद के क्षण कुछ कम हैं! चांदनी रातें कुछ कम हैं! सुबह ऊगते हुए सूरज का आनंद, सांझ डूबते हुए सूरज का आनंद, पहाड़ों-पर्वतों का सौंदर्य--यह सब कुछ कम है! यह जीवन इतना अपूर्व अवसर, इतना अमोलक रत्न, इसके लिए धन्यवाद नहीं दोगे? रोते हो, गिड़गिड़ाते हो, छोटी-छोटी बातें उठाते हो, उसी में तुम्हारी प्रार्थना कलुषित हो जाती है। उसी में तुम्हारी प्रार्थना पत्थरों में दब जाती है, उसके पंख टूट जाते हैं। प्रार्थना में पंख होते हैं, जब

वासनामुक्त होती है। जब तुम कुछ मांगते नहीं परमात्मा से, तब तुम पर वर्षा होगी उसके दानों की। मांगोगे, चूकोगे, नहीं मांगोगे, बहुत कुछ पाओगे। गुरुदास, जरूर तुम मांगते रहे होओगे। नहीं तो नाम-जप किया किसलिए? और
यह भी क्या पूछना कि कब हाथ लगेगा! क्या हाथ लगना है? क्या हाथ लगाने का इरादा रखते हो? कुछ जरूर भीतर तलाश चल रही है--छिपी, सूक्ष्म। यहां की न हो चाहे, परलोक की हो, मगर कुछ तलाश चल रही है, कुछ न कुछ पाना चाहते हो। और जब तक पाना चाहते हो तब तक मन सांसारिक है। जब तक पाना चाहते हो तब तक संसार के हिस्से हो। तब तक तुम्हें धर्म का स्वाद ही नहीं लगा। अब पाने की बात ही छोड़ो! पाना क्या है? मिला ही हुआ है। जो मिलना था, वह तुम्हें दिया ही गया है। जागो और देखो और भोगो और आनंदित होओ। नाचो, उत्सव मनाओ।
मैं तो प्रार्थना को तुम्हारे लिए उत्सव का रूप देना चाहता हूं। मगन होकर नाचो। जितना दिया है इतना है कि हमारे सब धन्यवाद छोटे हैं। लेकिन लोग शिकायत करते हैं। लोग मंदिरों में जाकर शिकायत ही करते हैं। शायद ही कोई कभी आभार प्रकट करने जाता हो। और शिकायतें अधार्मिक आदमी का लक्षण हैं। आभार धर्म का सूचक है।
तुम पूछते हो, नाम-जप करते-करते उम्र ढल गई। हाथ तो कभी कुछ लगा नहीं। हाथ कुछ लगना चाहिए था, वहीं चूक हो रही है। और पूछते हो, लेकिन जब भी तथाकथित पंडित-पुजारियों, साधु-महात्माओं से पूछा, तो उन्होंने कहा--बेटा, यह कार्य जन्मों की साधना से होता है। वे बेचारे भी क्या करें? सांत्वना दी तुम्हें। तुम्हारी पीठ थपथपाई, कहा कि किए जाओ, जरूर पाओगे, मगर इतनी जल्दी नहीं होता। धीरज रखो, मिलेगा, जन्मों-जन्मों की साधना से मिलता है। उन्हें भी कुछ पता नहीं कि वासना हो तो प्रार्थना कभी पूरी नहीं होती-- जन्मों-जन्मों में भी पूरी नहीं होती। और वासना न हो तो इसी क्षण पूरी है। फिर प्रार्थना अधूरी होती है नहीं। वासना हो तो सदा निष्फल, वासना न हो तो सदा सफल।
इस उलटे गणित को ख्याल में ले लो, इस विरोधाभास को ख्याल में ले लो। परमात्मा के द्वार पर भिखमंगे की तरह मत जाना। वहां सम्राटों का स्वागत है। भिखमंगे तो सब जगह दुरदुराए जाते हैंः आगे हटो, आगे बढ़ो! और तुम परमात्मा के सामने भिखारी की तरह जाते हो। उसे धन्यवाद देने जाओ! यह कहने जाओ कि कितना दिया तूने--अपार, अकूत; मेरी सामर्थ्य से बहुत ज्यादा; मेरी पात्रता से बहुत ज्यादा। फिर तुम देखो कि वैसा सोना बरसता है तुम्हारे ऊपर, कि कैसी झड़ी लग जाती है हीरे-जवाहरातों की!
और ख्याल रखना, सोना, हीरे-जवाहरात में प्रतीक की तरह उपयोग कर रहा हूं। नहीं तो बीच-बीच में आंख खोल कर देखो कि अभी तक झड़ी नहीं लगी? कंकड़-पत्थर भी नहीं दिखाई पड़ रहे हैं, हीरे-जवाहरात कहां! लोहा तक नहीं गिर रहा है, सोना कहां!
और ऐसा भी मत सोचना कि चलो यही सही, अगर वासना छोड़ने से प्राप्ति होती
है तो वासना भी छोड़ देंगे। तो वासना तुमने छोड़ी ही नहीं। अब यह प्राप्ति के लिए ही वासना छोड़ी तो क्या खाक वासना छोड़ी!
मेरी बात ठीक से समझ लेना, चूकने की बहुत संभावना है।
विवेकानंद अमरीका में बोलते थे तो उन्होंने बाइबिल का प्रसिद्ध वचन उदधृत किया कि धन्य हैं वे जो श्रद्धालु हैं, क्योंकि श्रद्धा की सामर्थ्य अपार है। श्रद्धा तो पहाड़ों को भी आज्ञा दे तो पहाड़ चल पड़ें। एक बुद्धिया ने सुना। उसके घर के पीछे ही पहाड़ था। वह उस पहाड़ से परेशान थी। क्योंकि पहाड़ के कारण हवा भी नहीं आती थी, पहाड़ की चट्टानें तपती थीं तो गर्मी भी दिन-रात बनी रहती थी। और उसने कहा, यह, बाइबिल तो मैं बहुत पढ़ती थी, यह क्या भी कई दफे आया--फेद कैन मूव माउंटेंस, मगर मैंने कभी इसका उपयोग ही नहीं किया! मैं भी मूढ़ हूं! इस आदमी ने अच्छा याद दिला दिया, आज ही जाकर निपटारा कर देती हूं!
गई। खिड़की से आखिरी बार खोल कर पहाड़ देखा कि अब तो आखिरी बार है, एक बार और देख लो! फिर तो गया सो गया! खिड़की बंद की, आंख बंद करके बैठी और कहा, हे पहाड़, श्रद्धापूर्वक कहती हूं, परिपूर्ण श्रद्धा से कहती हूं कि हट जा, यहां से सदा के लिए हट जा! हजारों कोस दूर हट जा कि तेरी खोज-खबर भी करना

चाहूं तो तेरा पता न चले! फिर एक दो-एक मिनट बैठी रही--ज्यादा देर तो बैठ भी नहीं सकती थी--फिर उत्सुकता पकड़ने लगी कि हटा कि नहीं? फिर खिड़की खोली। पहाड़ वहां का वहां ही था। और उस बुढ़िया ने क्या कहा, मालूम है? उसने कहा, मुझे पहले ही से पता था, कि कुछ हटने वाला नहीं है। अरे, पहाड़ क्या, एक पत्थर भी हटने वाला नहीं है। सब बकवास है।
पहले से पता था! तो फिर श्रद्धा कैसी? श्रद्धा का तो अर्थ ही होता है
कि कहीं कोई संदेह की कोर भी न थी। यह श्रद्धा नहीं है। यह श्रद्धा का शोषण है।
मेरे पास लोग आते हैं, मैं उनसे कहता हूं कि प्रार्थना पूरी होगी मगर तुम वासना छोड़ो। तो वे कहते हैं, वासना छोड़ दें तो फिर सच में पूरी होगी? वासना तक छोड़ने को राजी हैं--अगर प्रार्थना फिर पूर्ण हो जाए। मैं उनसे पूछता हूं, पूर्ण... फिर तुम क्या चाहते हो? फिर क्या बचा? जब वासना छोड़ दी तो पूर्ण होने में तुम्हारी क्या अभिलाषा है? वही की वही वासना।
एक सज्जन हैं, उनको बेटा नहीं होता। वे कहने लगे, बहुत दिन हो गए प्रार्थना करते; पूजा, यज्ञ-हवन, सब करवा डाले; जब सब से थक गया तब आपके पास आया हूं। मेरे पास तो मरीज आते ही तब हैं जब कहीं और कोई चिकित्सा उनकी नहीं कर पाता। असाध्य रोगी ही यहां पहुंचते हैं। क्योंकि जब तक कोई और चिकित्सक मिल जाए तब तक तो वहीं निपट लेना चाहते हैं, क्योंकि यहां झंझट का मामला है! यहां मामला इतना झंझट का है कि शायद बीमारी तो छूट जाए, लेकिन औषधि पकड़ जाए। तो फिर औषधि छोड़ना बहुत मुश्किल है। तो वे बहुत जगह हो-हवा कर, सब जगह हार कर, उन्होंने कहा, फिर सोचा कि अब आखिरी आपके पास भी जा कर देख लूं। तो मैंने कहा, अगर यह वासना छोड़ दो, तो ही प्रार्थना पूरी हो। एकदम खुश हो गए। बाग-बाग हो गए। चेहरा मुस्कुरा गया। कहा कि आपने भी ठीक बताया। तो यही वासना बाधा बन रही! जब तो मैं कहूं, जिंदगी भर हो गई, प्रार्थना करता, पूजा करता, हवन, पाठ, एक बेटा पैदा नहीं होता। और दूसरी तरफ लोग हैं कि संतति-नियमन करते हैं तो भी बच्चे पैदा हो रहे हैं! गोलियां ले रहे हैं बच्चों को रोकने की, गोलियों को धोखा देकर बच्चे पैदा हो रहे हैं! और एक मैं हूं कि मरा जा रहा हूं... । आपने बताया, किसीने नहीं बताया कि यह वासना छोड़ दो। तो ठीक है, अब यह वासना छोड़ देता हूं। फिर जाते-जाते बोले कि फिर तो बच्चा होगा न!
आदमी का मन ऐसा धोखेबाज है कि किस-किस तरह से अपने को धोखा दे ले, कहना कठिन है। क्या पाना चाहते हो? जो पाना है, वह मिला हुआ है। तुमने मांगा, उसके पहले दिया हुआ है। धन्यवाद दो अब! अब प्रार्थना का पूरा का पूरा रंग बदलो! अब प्रार्थना को अनुग्रह का भाव बनाओ! अब झुको! लेकिन धन्यवाद देने के लिए, कि तेरी अनुकंपा अपार है!
गुरुदास, बात घटेगी। मगर तुम क्या चाहते हो, उसके संबंध में मैं कुछ
भी नहीं कह रहा हूं। जब मैं कहता हूं बात घटेगी, तो मैं यह कह रहा हूं कि तुम्हारे भीतर से यह सब जाल विचार का, वासना का, आकांक्षा का--यह सारा अंधकार टूट जाएगा। रोशनी होगी। शून्य उतरेगा। शून्य में पूर्ण भी उतरेगा। तुम अमृत को जान सकोगे। मगर तुम क्षुद्र मांगते हो! तुम व्यर्थ की चीजें मांगते हो! वे नहीं मिलतीं। फिर पंडित-पुजारियों के चक्कर में पड़ते हो। एक पंडित से नहीं मिलती हैं तो दूसरे पंडित के पास जाते हो। और ऐसे भटकते हो धक्के खाते हुए, दीन-हीन, बाकी तुम सम्राट हो और परमात्मा तुम्हारे भीतर विराजमान है। न किसी मंदिर में जाना है, न काबा, न कैलाश, न काशी, जरा अपने भीतर झांक कर देखना; घूंघट के पट खोल, तोहे पिया मिलेंगे। जिनके पास तुम जाते रहे, उन्होंने बहुत सा कचरा तुम्हें दिया होगा। क्योंकि जो सत्य नहीं दे सकते, वे असत्य दिए बिना नहीं कर सकते। कुछ तो वे देंगे ही। अगर हीरे-जवाहरात नहीं दे सकते, तो कंकड़-पत्थर देंगे। तो झाड़ लो अपनी झोली अब बिल्कुल! जो-जो तुम्हें पंडित-पुरोहितों ने दिया हो, बड़ी कृपा होगी तुम्हारी तुम पर, उस सबे से अपनी झोली खाली कर लो! उनके पास ही होता तो वे पंडित-पुरोहित न होते; वे बुद्ध होते, महावीर होते, कृष्ण होते, क्राइस्ट होते।

पंडित-पुरोहित तो कृष्ण, क्राइस्ट और बुद्ध के वचनों पर जीते हैं। उनकी संपदा पर, उनकी प्रतिष्ठा कर धंधा करते हैं। उनका अपना कोई अधिकार नहीं है, अपना कोई अनुभव नहीं है। काश, उनके पास कुछ होता तो वे दो कौड़ी के धंधे नहीं करते रहते। वे तुम्हारे लिए ताबीज और गंडे नहीं बांधते रहते। कौन बुद्ध तुम्हारे लिए गंडे-ताबीज बांधेगा! वे तुम्हारी जन्म-कुंडलियां नहीं देखते रहते। कौन बुद्ध तुम्हारी जन्म-कुंडलियां देखेगा!
मैं एक नगर में बहुत वर्षों तक रहा। मेरे पड़ोस में एक पंडित जी रहते थे। उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी। उनकी प्रसिद्धि यह थी कि जिन युवक-युवतियों के विवाह दूसरे पंडित कह देते कि नहीं हो सकते--क्योंकि इसमें अड़चन है, तालमेल नहीं है, लक्षण नहीं मेल खाते; खतरा है; मंगल आता है; और न मालूम क्या-क्या बातें जिनमें दूसरे पंडित-पुरोहित बता देते थे, उनकी प्रसिद्धि यह थी कि वे हर किसी का मेल बिठा देते थे। मैंने उनसे पूछा, एक दिन ऐसे ही उनके बगीचे में घूम रहा था, मैंने उनसे कहा कि आपकी बड़ी प्रसिद्धि है, लोग मुझसे कहते हैं आकार कि बड़े-बड़े पंडित... काशी भी हम हो आते हैं, वहां के पंडित भी कह देते हैं कि नहीं भाई, यह विवाह नहीं होगा, लड़की को मंगल है, मगर आप जमा देते हैं! उन्होंने कहा कि जमाना अपने हाथ का काम है। कोई कुंडली में सत्य है क्या? सब खेल है। अगर कुंडली में कुछ सत्य होता, तो दुनिया में आनंद ही आनंद न होता! सब ने तो अपनी कुंडली मिलवा कर शादी-विवाह किए हैं; और फिर फांसी लग गई! जब कुंडली मिल कर फांसी लग गई, तब और ज्यादा क्या होगा? नहीं मिलेगी तो भी चलेगा। तो मैं तो बिठा देता हूं, मिला देता हूं, किसी भी तरह से, जमा देता हूं। मेरी फीस जरा ज्यादा है। जो भी चुकाने को राजी है, मैं उसकी मिला देता हूं। दूसरे पंडित-पुजारी किताब के हिसाब से ही चलते रहते हैं, मेरा ढंग और है।
मैंने उनसे एक कहानी कही। मैंने उनसे कहा, आपने मुझे याद दिलाया--
एक सम्राट एक गांव से गुजर रहा था। चकित हुआ बहुत। उसका एक ही शौक था जीवन में--निशानेबाजी। और उस जैसा निशानेबाज नहीं था। और वह निशानेबाजों की बड़ी कद्र करता था। उसने सारे देश के अच्छे से अच्छे निशानेबाज अपने दरबार में इकट्ठे कर रखे थे। मगर उस गांव में आकर उसे थोड़ी सी निराशा हुई, थोड़ा सा हीनता का भी भाव हुआ। उसने जगह-जगह देखा, वृक्षों पर तीर लगे हैं। ठीक गोला जो खींचा गया है, उसके बिल्कुल मध्य में तीर लगे हैं। न रत्ती भर इधर, न रत्ती भर उधर। खलिहानों के दरवाजों पर तीर लगे हैं, ठीक गोलों के मध्य में। इतनी जगह तीर लगे देखे गोले के मध्य में कि उसने कहा कि ऐसा तीरंदाज मैंने देखा नहीं जो एक तीर नहीं चूका! उसने कहा, रोको रथ मेरा, पता करो कौन है यह आदमी? इसकी हमें खबर भी नहीं है।
गांव में पूछताछ की गई। लोग हंसने लगे; लोग कहने लगे कि आप उसकी फिक्र
ही न करो; वह गांव का पगला है। उसका दिमाग खराब है। सम्राट ने कहा, दिमाग खराब हो या ठीक, इससे सवाल नहीं हैं; हमारे सब के दिमाग ठीक हैं मगर हम से भी कभी चूक हो जाती है, इस आदमी का तो निशाना गजब का है! हो पागल तो हो, मगर मेरे सम्राट की आज्ञा है, उसे लाया जाए, हम उसे सम्मानित करें, वह हमारे राजदरबार का रत्न होगा। वे लोग कहने लगे, आप उसकी तरकीब नहीं जानते। उसकी तरकीब यह है कि वह तीर पहले मारता है। और फिर बाद में गोला खींचता है। अब तीर बीच में न लगे तो करे भी क्या? कहीं भी तीर मार दो है, फिर जाकर चाक से गोला खींच देता है। उसका दिमाग खराब है! आप उससे परेशान न हों।
तो मैंने उन पंडित जी से कहा कि आपकी बात से मेरी बात मेल खाती है, मैं समझा। उन्होंने कहा कि यही मेरा राज है। मैं पहले मिला देता हूं जन्म-कुंडली, फिर उसी हिसाब से जन्म-कुंडली जमा देता हूं। जिससे मेल खा जाए; न मेल से कोई मूल्य है, न बेमेल से कोई मूल्य है; लोग मूढ़ हैं, वे कहने लगे। मेरा धंधा चलता है, उनका काम निपट जाता है--दोनों की बन जाती है, बिगड़ता क्या है? न अपना कुछ गया, न उनका कुछ गया। न हल्दी लगी न फिटकरी, रंग चोखा हो जाए।
तुम जिनसे पूछने गए थे, तुमने यह भी देखा, उनको रामनाम मिला?
बुढ़ापे में ढब्बूजी को मानसिक रोग हो गया। वे कुछ उदास-से रहने लगे। कारण यह था कि उन्हें रोज रात को एक बहुत ही बेहूदा सपना दिखाई देता था कि

वे कड़ाही में गोबर तल रहे हैं। रोज-रोज यही सपना आता। एक रात में तीन-तीन, चार-चार बार आता। रात भर गोबर तलते रहते! हालत बिगड़ गई। बिगड़ ही जाए! आखिर रात भर गोबर तलो, तो सुबह से सिर दुखे और दिन भर चिंता बी रहे कि फिर रात आ रही है! अंततः एक मनोचिकित्सक के पास गए। उससे सपने का पूरा ब्यौरा बतलाया। मनोवैज्ञानिक बोला, रोग जरा कठिन है, ढब्बूजी! उपचार के लिए पांच सौ रुपये फीस देनी पड़ेगी। क्या कहा, ढब्बूजी ने नाराज होकर कहा, पांच सौ रुपए? होश की बात कर! अरे मूर्ख, उल्लू के पट्ठे, अगर मेरे पास इतने रुपए ही होते तो क्या मैं गोबर तलता? अरे, बाजार से मछलियां खरीद कर न लाता!
वे जो तुमको सलाह दे रहे हैं नाम की, वे जो तुमको सलाह दे रहे हैं कि जन्मों-जन्मों में मिलेगा, जरा गौर से उनकी आंखों में तो देखते गुरुदास, उनको मिला? उनसे तो पूछते कि आप कितने जन्मों से तलाश कर रहे हैं? अभी तक आपको नहीं मिला? कब तक आप तलाश करेंगे? और तुम यह भी तो सोचते कि तुम भी कुछ नये थोड़े ही हो, तुम भी तो बहुत जन्मों से तलाश कर रहे हो! अनंत-अनंत जन्मों से तलाश कर रहे हो, अब और अभी जनम लेने पड़ेंगे? कुछ कमी रह गई है तलाश करने में?
तुम उतने ही प्राचीन हो जितना यह अस्तित्व। अगर कभी कोई प्रारंभ था
तो तुम प्रारंभ से यहां हो। कितने तुमने पाठ नहीं किए होंगे और कितनी गीताएं नहीं पढ़ी होंगी; कितने धर्मों में तुमने जन्म न लिया होगा; कितने पंडितों की कितनी मूढ़ताओं को तुमने पालन न किया होगा; कितने व्रत-उपवास न किए होंगे--अनंत यात्रा है--हाथ क्या लगा है? और अभी भी यही सवाल कि आगे कुछ होगा।
बंबई में एक नई-नई होटल खुली थी, जिसके बाहर ही एक बड़ा साइनबोर्ड लगा
था कि चिंता न करें, इस होटल में आपका बिल आपके नाती चुकाएंगे। मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने मित्रों के साथ उस होटल के सामने से गुजर रहा था, उसकी नजर साइनबोर्ड पर गई, उसने कहा, अरे, यह होटल कब खुल गई? क्या पते की बात लिखी हैः आपका बिल आपके नाती चुकाएंगे! चलो, हो जाए कुछ! इस तख्ती को देख कर तो भूख भी जग गई है। सभी पहुंच गए होटल के भीतर और भरपेट भोजन किया और जो कुछ भी वे खा-पी सकते थे उन्होंने खाया-पिया, जब हाथ-मुंह धोकर चलने लगे तो बैरे ने एक सौ बीस रुपये का बिल लाकर सामने रख दिया। बिल देख कर मुल्ला तो बहुत नाराज हुआ। उसने कहा, यह क्या अंधेर है! बाहर इतना बड़ा बोर्ड लगा रखा है कि आपका बिल आपके नाती चुकाएंगे, फिर यह बिल देते हुए शर्म नहीं आती? बैरा बोला, हुजूर, यह आपका नहीं, आपके दादाजी का बिल है। तुम कितने दिन से यहां हो! कितनी बार तुम जिए हो! कितने बार तुम मरे हो! जन्म और मरण की इस अनंतशृंखला में अब तक कुछ उपलब्धि नहीं हुई? और पंडित-पुरोहित कह रहे हैं कि और थोड़े जनम! अब क्या जोड़ लोगे और जो तुमने अब तक नहीं किया है? नहीं, यह भाषा गलत है। भविष्य की भाषा गलत है। धर्म की भाषा हैः वर्तमान।
मैं तुमसे कहता हूं, अभी और यहीं, इसी क्षण परमात्मा उपलब्ध हो सकता है, क्योंकि परमात्मा उपलब्ध ही है। तुमने उसे कभी खोया ही नहीं था। सिर्फ तुम पीठ करके खड़े हो गए हो। जैसे कोई सूरज की तरफ पीठ करके खड़ा हो जाए। तो कोई सूरज खो थोड़े ही जाता है! जरा सा घूमना है और सूरज सामने हैं। या यह भी हो सकता है कि सूरज सामने हो और तुम आंख बंद किए खड़े हो। जरा सी आंख खोलनी है और सूरज सामने है। ऐसा ही परमात्मा है। ऐसा ही जीवन का परम अर्थ है। ऐसा ही निर्वाण है। निर्वाण तुम्हारा स्वभाव है। परमात्मा तुम्हारा अस्तित्व है।
इसलिए जो तुमसे कहे कि बहुत जन्म लगेंगे, समझ लेना चालबाजी है। मैं तुमसे कहता हूं, जन्म की तो बात छोड़ो, दिनों की भी बात व्यर्थ है, क्षणों की भी बात व्यर्थ है। प्रश्न समय का ही नहीं है। प्रश्न तो अभी जागने का है। जब जागे तब सवेरा। क्योंकि सवेरा तो है ही, बस तुम सोए हुए हो।
गुरुदास, जागो!
और जागने के लिए मैं तुमसे कहूंगा कि अब नाम-जप तुम काफी कर चुके, माला तुम काफी फेर चुके, अब उसी उपद्रव से कुछ न होगा। अब तो उचित होगा कि तुम शांत बैठो, श्वास को देखो, साक्षी बनो। और श्वास को देखने से सुंदर साक्षी

[illegible] है , साधनी नहीं पड़ती , अपने आप चल रही है --आ रही है , जा रही है --तुम्हें कुछ करना नहीं है। कृत्य का सवाल ही नहीं है। राम-राम तो करना पड़ेगा। कभी भूल भी जाओगे। कभी पड़ोसी खुसुर-पुसुर बातें करने लगेगा तो सुनने की इच्छा जग जाएगी , राम-वाम सब भूल जाएगा। सड़क पर कुत्ते लड़ने लगेंगे , शोर-गुल हो जाएगा , [illegible]-बाधा पड़ जाएगी --हजार उपद्रव आ जाएंगे , [illegible]-राम [illegible], चाहे न देखो , उसकी तो अनवरत धारा बह रही है।

श्वास माला है। असली माला है। श्वास से मनके ही असली मनके हैं। और साक्षीभाव असली भजन है , असली कीर्तन है।

तुम देखो श्वास को चलते , आते-[illegible]-[illegible] पड़ने लगें , श्वास ठहर गई क्षण भर को भीतर , क्षण भर बाहर , उन अंतरालों में खूब सजग होकर , [illegible]? जो तुम देखोगे वह परम धन है। परम ऐश्वर्य है। वही परमात्मा है। उसे देखते ही जीवन के सब [illegible], सब चैतन्य है , सब आनंद है। [illegible]

[illegible],
ये युगल बाबरे नैन
और तू दूर देश का वासी
[illegible]
[illegible]
दर्शन से पहले भी ये कुछ-कुछ गीले हैं
[illegible], सजन उनमीले हैं
[illegible]
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी
[illegible]
और तभी हृदय-मकरंद पंखुड़ी फैली थी
[illegible]
पहले वसंत ही में क्या पतझड़ बन जाने को
[illegible]
ये युगल बावरे नैन
और तू दूर देश का वासी

रवींद्र सत्यार्थी ! नहीं , वह दूर देश का वासी नहीं है ! वह अंतरवासी है ! [illegible], श्वेतकेतु !

आज इतना ही।

सपना यह संसार
पंद्रहवां प्रवचन

करामाति यह खेल अंत पछितायगा

करामाति यह खेल अंत पछितायगा।
चटक-भटक दिन चारि, नरक में जायगा।।
भीर-भार से संत भागि के लुकत हैं।
अरे हां, पलटू सिद्धाई को देखि संतजन थुकत हैं।

क्या लै आया यार कहा लै जायगा।
संगी कोऊ नाहिं अंत पछितायगा।।
सपना यह संसार रैन का देखना।
अरे हां, पलटू बाजीगर का खेल बना सब पेखना।।

जीवन कहिए झूठ, साच है मरन को।
मरूख, अजहूं चेति, गहौ गुरु-सरन को।।
मांस के ऊपर चाम, चाम पर रंग है।
अरे हां, पलटू जैहै जीव अकेला कोउ ना संग है।।

भूलि रहा संसार कांच की झलक में।
बनत लगा दस मास, उजाड़ा पलक में।।
रोवनवाला रोया आपनि दाह से।
अरे हां, पलटू सब कोई छेंके ठाढ़, गया किस रहा से।।

कच्चा महल उठाय, कच्चा सब भवन है।
दस दरवाजा बीच झांकता कवन है।।
कच्ची रैयत बसै, कच्ची सब जून है।
अरे हां, पलटू निकरि गया सरदार, सहर अब सून है।।

हाथ गोड़ सब बने, नाहिं अब डोलता।
नाक कान मुख ओहि, नाहिं अब बोलता।।
काल लिहिसि अगुवाय, चलै ना जोर है।
अरे हां, पलटू निकरि गया असवार सहर में सोर है।।

आया मूठी बांधि, पसारे जायगा।
छूछा आवत जात, मार तू खायगा।।
किते बिकरमाजीत साका बांधि मरि गये।
अरे हां, पलटू रामनाम है सार संदेसा कहि गए।।

जो जनमा सो मुआ नाहिं थिर कोई है।
राजा रंक फकीर गुजर दिन दोइ है।।
चलती चक्की बीच परा जो जाइकै।
अरे हां, पलटू साबित बचा न कोय गया अलगाइकै।।

आस्कर वाइल्ड की एक कथाः
रात का समय था और वह अकेला था। वह अर्थात जीसस। उसने दूर एक भव्य नगरी
का प्राचीर देखा और वह उसकी ओर बढ़ा।
जब वह पास पहुंचा तो उसने नगरी के अंतराल से आनंदमय पदचाप और प्रमुदित मुखों के हास और अनेक वीणाओं की उन्मत्त झंकार के शब्द मुखरित होते सुने। उसने मुख्य द्वार खटखटाया और द्वारपालों ने उसके लिए द्वार खोल दिए। और उसने देखा एक भवन, जो स्फटिक का बना था और जिसके सामने स्फटिक के सुंदर स्तंभ खड़े थे। स्तंभों पर फूलों के वंदनवार लटके थे और घर के भीतर और बाहर चंदन की मशालें जल रही थीं। उसने भवन में प्रवेश किया।

जब वह पद्मराग के सभाकक्ष और मरकत के सभाकक्ष से होता हुआ भोज के कक्ष में पहुंचा तो उसने नीलरक्ताभ आसन पर एक व्यक्ति को लेटे पाया, जिसके बालों में गुलाब के फूल लगे थे और जिसके अधर मदिरा से लाल हो रहे थे। वह उसके पास गया और उसके कंधे पर हाथ रख कर बोला, मित्र, तुम्हारा जीने का यह ढंग कैसा है? क्या यही जीवन है! वह युवक उसकी ओर मुड़ा और उसे पहचान कर बोला, हे प्रभु! लेकिन मैं तो पहले कोढ़ी था, तुमने ही तो मुझे स्वस्थ कर दिया, अब मैं इस जीवन का क्या करूं? इसे कैसे व्यतीत करूं? जीवन जीने का और कोई ढंग तो मैं जानता नहीं हूं।
उसने उस भवन को त्याग दिया और सड़क पर लौट आया। वह थोड़ा उदास था। उसने ऐसी अपेक्षा न की थी।
कुछ देर बाद उसने एक स्त्री को देखा, जिसका मुखड़ा तथा परिधान रंगीन थे
और जिसके नूपुरों में मोती लगे थे। एक युवक उसका पीछा एक शिकारी की तरह मंद गति से कर रहा था। युवक ने दोरंगी कमीज पहन रखी हुई थी। स्त्री का मुख एक मूर्ति की तरह सुंदर था और नवयुवक की आंखों में वासना की चमक थी। उसने द्रुतगति से उसका पीछा किया और नवयुवक के हाथ पर हाथ रख कर कहा, भाई मेरे, तुम स्त्री की ओर क्यों देख रहे हो और इस तरह क्यों घूर रहे हो? आंखें क्या वासना के लिए बनाई गई हैं? आंखें क्या क्षुद्र को देखने के लिए बनाई गई हैं? नवयुवक पलटा और उसे पहचान कर उसने कहा, हे मेरे मालिक! पर मैं तो अंधा था, तुमने ही मुझसे दृष्टि दी, अब मैं किस तरह निहारूं, किसको निहारूं? इन आंखों का क्या करूं? जिम्मेवार हो तो तुम जिम्मेवार हो। मेरा कसूर क्या है?
उसने दौड़ कर स्त्री का रंगीन आवरण छुआ और कहा, बहन, क्या पाप के अतिरिक्त कोई और मार्ग नहीं है? औरत उसे पहचान कर हंसी और बोली, पर प्रभु मेरे! तुमने ही तो मेरे पाप क्षमा कर दिए थे। और यह मार्ग सुखमय भी है। और दूसरे किसी मार्ग का मुझे पता भी तो नहीं। क्या तुम मुझे भूल गए? मैं वही तो हूं जिसे लोग नदी के किनारे पत्थरों से मारने के लिए ले गए थे और तुमने उन लोगों से कहा थाः वही पत्थर मारे पहले जिसने जीवन में न तो पाप किया हो और न पाप की आकांक्षा की हो। और फिर वे सारे लोग पत्थरों को छोड़ कर चुपचाप हट गए थे; क्योंकि उनमें से कोई भी न था जिसने पाप न किया हो और कोई भी न था जिसने पाप के विचार न किए हों। तब हम दोनों ही अकेले नदी-तट पर रह गए थे। सांझ होने लगी थी और सांझ के पहले तारे निकल आए थे और मैंने तुमसे कहा था, हे मेरे प्रभु! मेरे पापों का दंड दो। लेकिन तुमने कहा था, मैं दंड देने वाला कौन हूं? मैं तुम्हें क्षमा करता हूं। और तब से मैं ऐसे ही जी रही हूं। पाप को तुमने क्षमा कर दिया--और पाप रसमय भी है, सुखमय भी है!
वह बहुत उदास हो गया--वह यानी जीसस, स्मरण रहे--और नगर छोड़ कर बाहर चला गया। जब वह नगर के बाहर हो गया, तो उसने सड़क के किनारे एक नवयुवक को बैठे रोते देखा। वह नवयुवक वृक्ष से रस्सी बांध कर आत्मघात की व्यवस्था कर रहा था। वह उसके पास गया और उसके लंबे बालों को छूकर बोला, मेरे प्रिय! तुम रोते क्यों हो! और यह अपनी ही मृत्यु का आयोजन कैसा! जीवन जैसे बहुमूल्य हीरे को क्या ऐसे फेंका जाता है? नवयुवक ने सिर उठाया और उसे देखा और पहचान कर बोला, महाप्रभु! मैं तो मर चुका था और तुम ने मुझे फिर से जीवन दिया। अब मेरी समझ में नहीं आता मैं इस जीवन का क्या करूं? मैं रोऊं नहीं तो भला और क्या करूं! और रोता कब तक रहूं? और रो-रो कर जीने से फायदा क्या है? इसलिए मैंने मर जाने का निश्चय किया है।
आस्कर वाइल्ड की यह कथा सच हो या सच न हो--क्योंकि ईसाई-ग्रंथों में इसका कोई उल्लेख नहीं है--लेकिन ग्रंथों में उल्लेख हो या न हो, आस्कर वाइल्ड की अंतर्दृष्टि तो पैनी है। बात तो उसने गहरी पकड़ी है। उसने तो जीसस के पूरे जीवन पर एक प्रश्नचिह्न लगा दिया। लोगों को आंखें देना काफी नहीं है, उन्हें देखने का ढंग भी तो देना होगा! लोगों को जीवन देना काफी नहीं है--क्योंकि जीवन तो सबके पास है और प्रत्येक उसे गंवा रहा है। कुछ और लोगों को जीवन मिल जाएगा, वे भी यही करेंगे।
मुर्दों को जिला दो, इसमें चमत्कार नहीं है। असली चमत्कार हैः जीवित
को जीवन की कला देना। और अंधे को आंख दे दो, इसमें कुछ बड़ा राज नहीं है।

असली रहस्य की बात तो हैः आंख वाले को देखने की कला दे देना। सभी तो जी रहे हैं और सभी के पास आंखें हैं। लंगड़ों को पैर दे दो, जाएंगे कहां? वेश्यालयों में पहुंच जाएंगे। अंधों को आंखें दे दो, वे भी इसी दौड़ में, इसी स्पर्धा में, इसी बाजार की भीड़ में खो जाएंगे। मुर्दों को जिलाना अर्थात उनकी वासनाओं को जिलाना। अंधों को आंख देना अर्थात उनकी वासना को आंख देना। लंगड़ों को पैर देना अर्थात उनकी वासना को पैर देना। और वासना को पैर हों, आंख हों, जीवन हो, तो नर्क ही निर्मित होता है, स्वर्ग नहीं। आस्कर वाइल्ड की कथा बहुमूल्य है। जीसस के जीव में घटी हो या न घटी हो, लेकिन तुम्हारे सबके जीवन में तो रोज घट रही है। परमात्मा ने जीवन दिया और एक दिन जब परमात्मा तुमसे पूछेगा कि मेरे भाई, तुमने जीवन का क्या किया? तो क्या कहोगे? आंखें उठा सकोगे? उससे आंखें चार कर सकोगे? शर्म से गड़-गड़ जाओगे! आंखें जमीन से उठाते न बनेंगी। लौट कर देखोगे तो बहुत पछताओगे। जिंदगी तो ऐसे चली गई जैसे सपना हो। पकड़ में तो कुछ न आया। हाथ तो कोई संपदा न लगी। कोई शाश्वत सत्य तो उपलब्ध न हुआ। हां, धन मिला, पद मिला, प्रतिष्ठा मिली, लेकिन सब पानी के बबूले थे--बने और फूट गए। इंद्रधनुष थे, दूर से बड़े सुहावने थे, पास गए तो कुछ भी न था। मृग-मरीचिकाएं थीं। दूर से बहुत प्रलोभन दिया था और पास जब आए, तो सब सोना मिट्टी हो गया।
पलटू कहते हैंः
करामाति यह खेल अंत पछितायगा।
अभी जागो! इसी क्षण जाओ! न कल पर टालना। टाला तो टालते ही चले जाते हो। टाला तो टालने की आदत बन जाती है। आज कल पर टालोगे, कल परसों पर टालोगे; पिछले जन्म इस जन्म पर टाल दिया था, इस जन्म अगले जन्म पर टाल दोगे--टालते ही रहोगे, जिओगे कब? टालते ही रहोगे, देखोगे कब? टालते ही रहोगे, सुनोगे कब? और अहर्निश बज रहा है उसका नाद और अहर्निश हो रहा है उसका नृत्य और अहर्निश वर्षा हो रही है उसके आनंद की। और तुम हो कि वंचित के वंचित।
तुम हो ऐसे चिकने घड़े कि पानी तुम्हें छूता भी नहीं। प्रभु बरस जाता
है और तुम रूखे-के-रूखे रह जाते हो। या कि तुम हो उलटे रखे घड़े। प्रभु बरसता है मगर तुम खाली सो खाली। या कि तुम सीधे रखे घड़े हो, मगर बहुत छिद्रों भरे हो। भरते लगते हो मगर भर नहीं पाते। छिद्रों से सब बह जाता है। या कि तुम्हें भ्रांति है कि तुम भरे ही हुए हो। इसलिए तुम प्रभु को द्वार ही नहीं देते कि तुम्हें भर सके। तुमने न मालूम कितनी तरकीबें निकाल ली हैं जीवन को गंवाने की! कमाओगे कब?
करामाति यह खेल...
सम्हालो! यह जिंदगी जादू का एक खेल है।
दुनिया जिसे कहते हैं, जादू का खिलौना है,
मिल जाए तो मिट्टी है, खो जाए तो सोना है।
और खो ही जाता है। और पछताते विदा होते हो कि कितना था, कितना पा सकता था, कुछ भी तो न पा सको! और जहां हीरे मिल सकते थे, वहां समुद्र के तट पर शंख-सीपी बीनता रहा; रंगीन पत्थर बीनता रहा।
मरते वक्त लोग इसलिए नहीं रोते कि मौत आ गई। नहीं, मरते वक्त लोग इसलिए रोते हैं कि जिंदगी व्यर्थ गई।
इसे मैं फिर दोहरा दूं।
मरते वक्त लोग जिंदगी से इसलिए नहीं चिपटते कि मौत से डरते हैं। जिसको जानते ही नहीं, उससे डरेंगे भी कैसे? जिससे कभी मुलाकात ही नहीं हुई, उससे भय क्या? और कौन जाने, वह जीवन से भी बेहतर हो? नहीं, मरते वक्त लोग जीवन को पकड़ते हैं, क्योंकि यह जीवन चला हाथ से और हम तो कल पर टालते रहे--अब कोई कल नहीं होगा, मौत आ गई; अब हम टाल नहीं सकते; अब हमारी पुरानी आदत के लिए कोई उपाय नहीं। और आज जीना तो हम जानते ही नहीं! हम तो सदा कल में जीते हैं।
हिंदी शायद दुनिया की अकेली भाषा है, जिसमें हम बीते कल को भी कल कहते हैं और आने वाले कल को भी कल कहते हैं। यह अनूठी बात है। मगर इसमें बड़ा राज छिपा है। जरूर ज्ञानियों ने इन शब्दों की खोज की होगी। इस देश के शब्दों

में ज्ञानियों की ध्वनि समा गई है। बीत गया, वह भी कल; आने वाला है, वह भी कल। दोनों झूठ।
और कल शब्द हमने बनाया कैसे?
बनाया है काल से। काल के दो अर्थः एक समय और एक मृत्यु। वह भी बड़ा विचारणीय है। समय ही मृत्यु है। मृत्यु समय का ही दूसरा नाम है। बंगाली में तो कल को भी काल कहते हैं।... ऐसे ही तो कलकत्ते का नाम पड़ा।
जब अंग्रेज पहली दफा भारत आए, तो वे तलाश कर रहे थे कहां राजधानी बनाएं। उनके इंजीनियर और उनके स्थापत्य-कला के पारखी स्थान की तलाश कर रहे थे। एक जगह उन्हें बहुत पसंद आई--मनोरम, सुंदर। उन्होंने जो किसान कहां काम कर रहा था उससे पूछा कि इस जगह का नमा क्या है? वह उनकी भाषा न समझा। वह समझा कि वे पूछ रहे हैं कि जो फसल उसने काटी, कब काटी? उसने कहा, काल; काल काटा। ऐसे कलकत्ता पैदा हुआ। तो उन्होंने समझा कि इस जगह का नाम हैः काल काटा; कलकत्ता।
काल का अर्थ समय भी, काल का अर्थ मृत्यु भी। कल भी मृत्यु थी। गया कल, मौत घट गई। और आने वाले कल भी और क्या घटने को शेष है, सिर्फ मौत घटेगी! जीवन तो अभी है। जीवन आज है। जीवन समय का हिस्सा नहीं है। जीवन समयातीत है, कालातीत है। जीवन तो क्षण-क्षण जीने की कला है। जो इस कला को सीख लेता है, वही पछताता नहीं। अन्यथा अंत समय बहुत पछताना होता है।
जीना है तो पी कर जी

दुनिया और दुनिया वालों को
मजहब के सब रखवालों को
नाम बता और जाम चढ़ा जा
आंख दिखा और जाम चढ़ा जा
पीना है तो जीकर पी
जीना है तो पीकर जी

पी की नजरें घोल के पीले
जय साकी की बोल के पीले
पी ले पी ले जितना चाहे
जी ले जी ले जितना चाहे
पीकर किसने तोबा की
जीना है तो पीकर जी

मन से चिंता मुंह मोड़ेगी
दुख की नागिन दम तोड़ेगी
नश्शे में आशा झूमेगी
तारों की चितवन चूमेगी
पीने वाले जल्दी पी
जीना है तो पीकर जी
जीवन अभी है। और काश तुम पी सको, अभी पी सको! यह घूंट, काश, इसी क्षण तुम्हारे कंठ से उतर जाए, तुम्हारे हृदय के पात्र में भर जाए, तो पछताओगे। नहीं। मृत्यु है कल, जीवन है आज। मृत्यु है स्थगित करने में, जीवन है जीने में। इसीलिए मैं सभी लोगों को जीवित नहीं कहता। जी ही नहीं रहे हैं, तो जीवित क्या खाक कहो! चलते हैं, फिरते हैं जरूर, और श्वास भी लेते हैं और भोजन भी करते हैं, काम-धंधे भी करते हैं हजार; रात सोते भी हैं, सुबह उठते भी हैं; ऐसे तो सब हो रहा है, अगर इसको ही तुम जीवन कहते हो तो तुम्हारी मर्जी! फिर तुम बुद्धों के जीवन से परिचित न हो पाओगे। फिर तुमने क्षुद्र से ही तृप्ती कर ली, तुम जानो! फिर पछताओगे तो पीछे कहना मत! यह जीने का कोई ढंग नहीं है। ऐसे तो पशु भी जीते हैं, फिर मनुष्य का आविर्भाव कहां? मनुष्य का जीवन एक नई खोज है। मनुष्य का जीवन एक अन्वेषण है। मनुष्य
का जीवन एक उत्तुंग आकाश को छूती हुई लहर है। उसके जीने की कला है कि प्रतिपल समग्रता से, एक-एक पल पूरे डूब कर जीना। इतने डूब कर जीना कि न तो

बीते कल की याद आए और न आने वाले कल की याद आए; न अतीत रह जाए, न भविष्य रह जाए, सिर्फ वर्तमान हो--फिर कोई मृत्यु नहीं है। और जब कोई मृत्यु नहीं है, तभी तुम जानोगे कि परमात्मा है।
जीना है तो पीकर जी

दुनिया और दुनिया वालों को
मजहब के सब रखवालों को
नाम बता और जाम चढ़ा जा
आंख दिखा और जाम चढ़ा जा
पीना है तो जीकर पी
जीना है तो पीकर जी

पी की नजरें घोल के पीले
जय साकी की बोल के पीले
पी ले पी ले जितना चाहे
जी ले जी ले जितना चाहे
पीकर किसने तोबा की
जीना है तो पीकर जी

मन से चिंता मुंह मोड़ेगी दुख की नागिन दम तोड़ेगी
नश्शे में आशा झूमेगी
तारों की चितवन चूमेगी
पीने वाले जल्दी पी
जीना है तो पीकर जी

पैमाने की रीत मिटा दे
मैखाना होठों से लगा दे
फिर ये मौसम कब आएगा
आएगा क्या तरसाएगा
अब भी पी हैं और तू भी
जीना है तो पीकर जी
परमात्मा मौजूद है, प्यारा मौजूद है; लेकिन प्यारा अभी मौजूद है, तुम
कल पीओगे, तालमेल हो न पाएगा। तुम्हारी प्याली सुराही के पास कभी आ न पाएगी। सुराही अभी है और प्याली कल। कहीं वर्तमान भविष्य से मिला है? जो है वह उससे मिला है जो नहीं है? कभी भाव अभाव से मिला है? नहीं, यह मिलन होता ही नहीं। किसी राह पर, किसी द्वार पर, किसी मार्ग पर, किसी मोड़ पर यह मिलन होता ही नहीं। वर्तमान में जीने का नाम ध्यान है। वर्तमान में समग्ररूप लीन हो जाने का नाम समाधि है।
करामाति यह खेल अंत पछिताएगा।
चटक-मटक दिन चारि, नरक में जाएगा।।
हां, तुम कहोगे हम भी जी रहे हैं। मगर तुम्हारा जीना है क्या? चटक-मटक! चटकुओं-मटकुओं की भीड़ है। तुम्हारा जीवन क्या है? एक नुमाइश, जैसे दूसरों को दिखाने के लिए जी रहे हो। पहन लिए अच्छे कपड़े, थोड़ा रंग-रोगन कर लिया, थोड़ा इत्र-फुलेल लगा लिया और चले! तुम लोगों को दिखा रहे हो कि जी रहे हो? तुम्हारे जीने में कोई गहराई कैसे होगी! तुम तो अभिनेता मात्र हो गए हो। और तुम्हारे चेहरे पर बहुत मुखौटे हैं; जब जैसी जरूरत होती है वैसा मुखौटा लगा लेते हो। कहीं पूंछ हिलानी होती है तो पूंछ हिला देते; कहीं गुर्राना होता है तो गुर्रा देते। मगर न तुम्हारे गुर्राने में बल है, न तुम्हारे पूंछ हिलाने में कोई सत्य है। तुम्हारी जिंदगी एक झूठ है। एक लंबा झूठ, जिसको तुम खींचे चले जाते हो। एक झूठ, जिसको तुम पाने चले जाते हो। न तुमने ठीक से प्रेम किया है, न तुमने कभी मैत्री की है।

ऐसी तुमने मैत्री जानी कि जरूरत पड़े तो जीवन दे दो? तो फिर तुमने मैत्री नहीं जानी। और ऐसा तुमने प्रेम किया है कि अपना सब गंवाने को राजी हो जाओ? नहीं, प्रेम तुम करते हो गंवाने के लिए नहीं, दूसरे से कुछ पाने के लिए। प्रेम सौदा है। तुमने कभी ऐसी भक्ति की है कि अपनी गर्दन उतार कर रख दो? अपने को नहीं चढ़ाते भक्त, पड़ोसियों के बगीचों से फूल तोड़ कर चढ़ा देते हैं। अपने बगीचे से भी नहीं तोड़ते! वह भी पड़ोसियों के बगीचे से फूल तोड़ कर चढ़ा देते हैं! चैतन्य का फूल चढ़ाओ, अपनी आत्मा का फूल चढ़ाओ, तो उस प्यारे से मिलना हो। तुमने सस्ती तरकीबें निकाली हैं, तुम परमात्मा तक को धोखा देने की चेष्टा में संलग्न हो। दीया जलाया, आरती उतार ली। प्राणों में कब दीया जलाओगे? आरती वहां उतारनी है! धूप-दीप जला ली, सुगंध का धुआं उड़ा दिया। अपने को कब जलाओगे? तुम्हारे प्राणों से कब धूप उठेगी? कब तुम्हारे प्राण धुआं बन कर आकाश की तरफ उड़ेंगे! तब तुम छू पाओगे उसके चरण; उसके पहले नहीं। लेकिन लोग चटक-मटक में लगे हैं। कोई हीरों के दीवाने हैं, कोई मोतियों
के दीवाने हैं, कोई धन के दीवाने हैं, कोई पद के दीवाने हैं। और बड़े भूले हैं। और सोचते हैं, मिल गया पद, मिल गया धन तो सब मिल गया।
मैंने सुना है--
मंत्री जी जंगल में भटक गए। सिर पर गांधी टोपी, अचकन, चूड़ीदार पाजामा-- बिल्कुल ठेठ नेता थे, नेता में जरा भी कमी न थी। पीछे सेक्रेटरी था। सेक्रेटरी के हाथ में तिरंगी झंडी थी। कोई भी पहचान लेता कि ये मंत्री जी हैं। भटकते-भटकते एक आदमी दिखाई दिया--देहात का गंवार--नेता जी ने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए पूछा, भइया, तुम बता सकते हो कि मैं कहा हूं? उस गंवार ने नीचे से ऊपर तक नेता जी को कई बार देखा, पीछे झंडी देखी, फिर बोलाः महाराज, अभी तो कुर्सी पर हैं। लेकिन जिस दिन यह छूट जाएगी, उस दिन असली जगह का पता चल सकेगा। उसके पहले तो मैं कुछ भी नहीं कह सकता हूं।
धन है, तुम फूले नहीं समाते। यह धन का धोखा है। कल धन न होगा तब पता चलेगा कि तुम कौन हो, कहां हो, क्या हो? अपने वाले भी पहचानेंगे नहीं। पराए तो पराए, अपने भी पराए हो जाएंगे। रास्ते से कट कर निकल जाएंगे। अभी पद पर हो, तो चमचों की जमात तुम्हें घेरे रहेगी। कल पद पर न हो, तब देखना। तब तुम्हें खुद ही चमचा होकर किसी की जमात में सम्मिलित होना पड़ेगा। लेकिन कुर्सियां धोखा दे देती हैं। और छोटे बच्चों को ही नहीं देती हैं, बूढ़ों को दे देती हैं।
छोटे बच्चे अक्सर, बाप अखबार पढ़ रहा है, छोटे बच्चे कुर्सी के मुट्ठे
पर खड़े हो जाते हैं और कहते हैंः मैं तुमसे बड़ा। पिता मुसकरा कर कहता है कि हां, ठीक! बच्चे प्रसन्न, बाप से बड़े हो गए। इन पर तुम हंसते हो, कहोगे बच्चे हैं, नासमझ हैं। मगर कुर्सियों पर बैठे हुए दिल्ली में जो लोग हैं, ये बच्चे नहीं हैं? कोई सत्तर पार कर गया है, कोई पचहत्तर पार कर गया है, कोई अस्सी पार कर गया है, कोई चौरासी पार कर गया है... इनको अब तक कब्रों में विश्राम करना चाहिए था। मगर कुर्सियां इनको जिलाए हैं। कुर्सियों के कारण ये मर भी नहीं सकते। और कौन जाने कई इनमें मर भी गए हों! मगर शेरवानी और अचकन और गांधी टोपी के मारे पता ही नहीं चलता कि कौन मर गया कौन जिंदा है! कुर्सियां इनको ऐसा बल देती हैं कि ये चले जा रहे हैं।
मैंने सुना है ऐसा कि फोर्ड के एक प्रदर्शन-गृह में एक आदमी ने एक कार पसंद की। मैनेजर उस कार में उसे बिठा कर पास की पहाड़ी का चक्कर लगवाने ले गया कि दिखा दे। कोई दस मील जाकर कार अचानक पहाड़ी पर रुक गई। संभावित खरीददार ने पूछा, नई गाड़ी और ठेठ पहाड़ पर रुक जाए, यह क्या मामला है? अच्छा हुआ कि तुमने चला कर मुझे दिखा दी; अन्यथा मैं फंसता। मैनेजर ने कहा, चिंता न करो, कोई गाड़ी में खराबी नहीं है। असल में मैं पेट्रोल डालना भूल गया। तो उस आदमी ने पूछा कि बिना पेट्रोल के दस मील कैसे चली आई? मैनेजर ने कहा, इसमें कोई खूबी नहीं है, दस मील तो फोर्ड के नाम से ही गाड़ी चल जाती है। दस-पांच मील का तो कोई हिसाब ही नहीं, फोर्ड का नाम काफी है!
दिल्ली में गौर से अगर जांच-पड़ताल की जाए, अगर पोस्टमार्टम किया जाए,
तो बहुत से नेता पाए जाएंगे कि मर चुके हैं, काफी दिन पहले मर चुके हैं, मगर

कुर्सी की गरमी थर्मामीटरों को धोखा दे रही है! कुर्सी की धक-धक और तुम समझ रहे हो उनके हृदय धड़क रहे हैं!
एक लड़की अपनी मां से कह रही थी कि मां, मैं जिस युवक के प्रेम में हूं, उसका प्रेम बहुत होना चाहिए। क्योंकि जब भी वह मुझे गले लगता है, मैं सुन सकती हूं उसके हृदय की धक-धक, धक-धक, धक-धक... ! उसकी मां ने कहा कि तू जरा ठहर! तेरे पिताजी भी मुझे धोखा देते रहे दो साल तक। उसने कहा, क्या मतलब? उसने कहा कि एक बड़ी सी जेबघड़ी रख कर छाती के पास... धक-धक, धक-धक, धक-धक... मैं यही समझती थी कि वह प्रेम चल रहा है। वह केवल जेबघड़ी थी।
दिल्ली में नेताओं की एक जांच होनी ही चाहिए... एक जांच-कमीशन! शाह कमीशन तो काम नहीं आया, बादशाह कमीशन बैठना चाहिए! पहले तो यही जांच होनी चाहिए, इनमें कितने लोग मर गए हैं और कितने लोग जिंदा हैं? जो मर गए हैं, उनको विदा किया जाए। सम्मान सहित! कुर्सी की गर्मी जिलाए रख सकती है। और ध्यान रखना, कुर्सी की गर्मी होती है। बड़ी गर्मी होती है। पैसे की गर्मी होती है।
मुल्ला नसरुद्दीन और उसका बेटा दोनों एक नाले को पार कर रहे थे, मुल्ला ने तो छलांग मारी और नाले के उस पार निकल गया! बूढ़ा! अब बूढ़ा छलांग मारे और बेटा पीछे रह जाए तो जरा जंचे न, भद्द हो, तो बेटे ने भी छलांग मारी। भद्द होकर रही! बुरी भद्द हुई! इससे तो बेहतर था कि नाले में उतर कर पार कर जाता आसानी से! बीच नाले में गिरा, चारों खाने चित्त! पानी में डुबकी मार गया। बाहर निकला और पिता से पूछा कि आपका राज क्या है? आप बूढ़े हो गए, नाला छलांग लगा गए, मैं जवान आदमी हूं, मैं बीच में गिर गया। मुल्ला हंसा। उसने कहा, इसका राज है, बेटा! जिंदगी मैंने कुछ ऐसे ही नहीं गंवाई-- धूप में बाल नहीं पकाए हैं! जेब खनखाई। उसमें नगद रुपये थे। बेटे ने कहा, मैं कुछ समझा नहीं; जेब खनखनाना, नगद रुपये, इससे क्या मतलब? मुल्ला ने कहा, मैं कभी जेब में बिना नगद रुपये लिए चलता ही नहीं--इसमें गर्मी बनी रहती है। उसी गर्मी से छलांग लगाई। तेरी जब में क्या है? खाली जेब, फोकट जेब--गर्मी कहां! अरे, गर्मी चाहिए!
बिना पैसे के गर्मी नहीं होती।
तुमने देखा है, नेता जब पदों पर होते हैं तो कैसे युवा मालूम होने लगते हैं? जैसे अभी-अभी इस्त्री किए हुए कपड़े! और फिर जब पद चले जाते हैं तब उनकी हालत देखो। कैसे कुटे-पिटे! इस्त्री वगैरह सब खो जाती है। जैसे कई दिनों से इन्हीं कपड़ों को पहने हैं। न नहाया है, न धोया है, इन्हीं कपड़ों को पहन कर सोते हैं, इन्हीं को पहन कर उठ आते हैं।
कहते हैं, चमार लोगों के जूते देख कर पहचान लेते हैं कि कौन आदमी जिंदगी में सफल हो रहा है और कौन असफल। बात तो ठीक है। जरूर पहचान लेते होंगे, जूतों में कहानी छिपी होती है। सफल आदमी के जूते पर चमक होती है, असफल आदमी के जूते की भी हालत वही होती है जो असफल आदमी की होती है। झुर्रियां पड़ी होती हैं। जगह-जगह चूं-चरर-मरर करता है। वर्षों से तेल नहीं दिया गया है। जगह-जगह फट जाता है। थेगड़े लग जाते हैं।
लोग चटक-मटक को जिंदगी समझ रहे हैं! यह जिंदगी का सिर्फ धोखा है। कुर्सी की गर्मी कोई जीवन का उत्ताप नहीं है। और धन की गर्मी कोई आनंद का उल्लास नहीं है।
और ध्यान रखना कि आसान है चटक-मटक की जिंदगी में खोजना क्योंकि भीड़ उन्हीं लोगों की है। चारों तरफ वे ही लोग तमाशा बनाए हुए हैं। न खुद जीते है ठीक से, न किसी और को जीने देते हैं ठीक से। पड़ोसी ने नई कार खरीद ली, अब तुम्हें भी खरीदनी होगी। नहीं तो भद्द होती है। पड़ोसी अकड़ कर निकलने लगता है। उसकी चाल बदल जाती है। वह नई कार ले आया। और तुम अभी तक फटियल... फोर्ड का टी माडल, जिसमें बाबा आदम इडन के बगीचे से निकाले गए थे उसी में चल रहे हो! पड़ोसी ने नये कपड़े बना लिए... स्त्रियां इस मामले में बहुत सजग हैं। कौन कौन सी साड़ी पहन कर निकल आया है?
मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपनी पत्नी को कह रहा था कि हल हो गई तेरी बेखर्ची की, फिजूलखर्ची की! अब मेरी बरदाश्त के बाहर है। मैं तो कर्ज में डूबा जा रहा हूं और तू नई साड़ी लेकर फिर आ गई! साड़ियों की कमी नहीं है;

पहनेगी कब इतनी साड़ियां? तीन सौ तो साड़ियां मैं गिनती कर चुका हूं। ये साड़ी तू पहनेगी कब? पत्नी एकदम भनभना गई, साड़ी जोर से नीचे पटक दी और कहा कि फिजूलखर्ची और मुझको सिखा रहे हो! और वह तुम जो फायर एक्सटिंग्विशर, आग बुझाने का वह जो लाल बंबा ले आए हो, जो हनुमान जी की तरह लटका हुआ है घर में--आज तीन साल हो गए, उसका क्या उपयोग? और मुझे तुम फिजूलखर्ची बता रहे हो!
स्त्रियों के अपने तर्क हैं, अपनी सोचने की व्यवस्थाएं हैं।
और भी चटक-मटक वाली बातें हैं। उनका सारा रस ही इसमें है कि कितने गहने, कितने वस्त्र... यही उनकी आत्मा हो गई है। पुरुषों की हालत भी बहुत भिन्न नहीं है। क्योंकि दोनों जीते तो एक ही जीवनशैली में हैं।
पलटू कहते हैं, जरा सम्हल जाओ--
चटक-मटक दिन चारि, नरक में जाएगा।।
और यह चटक-मटक तुम्हें और-और गहरे दुखों की पर्तों में उतारेगी। क्योंकि जितने ही तुम जीवन से टूटते जाओगे उतने दुखी होते जाओगे। दुख का अर्थ हैः जीवन से जड़ों का उखड़ जाना। जैसे किसी वृक्ष की जड़ें जमीन से उखड़ जाएं। वह दुखी हो जाएगा। उसके पत्ते कुम्हला जाएंगे। सके फूल झुक जाएंगे। उसकी कलियां मुर्झा जाएंगी। उस पर फिर पक्षी गीत नहीं गाएंगे। उसके नीचे फिर बटोही छाया में नहीं टिकेंगे। चांद भी निकलेगा, सूरज भी निकलेगा, लेकिन उसके प्राणों में कोई रसधार न बहेगी, कोई उत्सव न होगा। वसंत भी आएगा, लेकिन फूल न खिलेंगे, क्योंकि जड़ें ही जमीन में न रहीं। जीवन में जड़ें चाहिए।
संन्यास का मैं अर्थ करता हूंः जीवन में जड़ें फैलाने की कला। जीवन में जितनी तुम्हारी जड़ें फैल जाएं और जितनी गहरी जड़ें फैल जाएं! मगर जड़ों में तुम्हारी उत्सुकता नहीं है। तुम्हारी उत्सुकता पत्तों में है। क्योंकि जड़ें तो दिखाई नहीं पड़तीं। कौन फिकर करता है! पत्ते दिखाई पड़ते हैं, सो रंग लो पत्ते! पत्तों पर लगा दो, लिपिस्टिक। पत्तों को पहना दो सुंदर-सुंदर साड़ियां। पत्तों के गलों में हार लटका दो। थोड़ी-बहुत जिंदगी भी हो पत्तों में तो मर जाएगी। तुम्हारे हार उन्हें मार डालेंगे! लोग ऐसे ही मर रहे हैं!
इस पूरी जीवन-दृष्टि को बदलना जरूरी है।
सोचो हजार बार, तुम कैसे जी रहे हो? तुम्हारी शैली क्या है? तुम्हारे जीवन का गणित क्या है? चटक-मटक? औरों को दिखाने के लिए भर जी रहे हो? या सच में ही भीतर... तुम जो चीजें खरीद लाते हो उनकी जरूरत थी या औरों को दिखाने के लिए खरीद लाए? उनकी सच में ही आवश्यकता थी? लोग ऐसी चीजें खरीद रहे हैं जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं है। उधार भी लेकर खरीद रहे हैं, जिनकी उन्हें आवश्यकता नहीं है। जिनको वे समझ भी नहीं सकते, वह भी लोग खरीद रहे हैं। लोग पिकासो के चित्र तक खरीद कर अपनी दीवालों पर लटका लेते हैं। हालांकि उन्हें यह भी पता नहीं कि चित्र को वे जो लटका रहे हैं वह सीधा लटका है कि उलटा! ... क्योंकि पिकासो के चित्रों में तय करना बड़ा मुश्किल है कि सीधा क्या, उलटा क्या!
एक प्रदर्शनी में, पिकासो के चित्रों की प्रदर्शनी चल रही थी और सारे कला-परीक्षक एक चित्र के पास इकट्ठे थे। वह सबसे अनूठा था, और उसकी प्रशंसा में पुल बांध रहे थे यह अनूठी कृति है। इससे एक नये युग का प्रारंभ हुआ। ऐसी कोई कृति कभी नहीं बनाई गई। तभी पिकासो आया और उसने कहाः अरे भाई, इसे किसने उलटा लटका दिया है! उसने जल्दी से चित्र को सीधा लटकाया। वह उलटा लटका होने की वजह से अनूठा मालूम हो रहा था! क्योंकि किसी की कुछ समझ में नहीं आ रहा था। लोग ऐसे मूढ़ हैं कि जो बात जितनी कम समझ में आए, समझते हैं उतनी गहरी होनी चाहिए।
एक महिला ने पिकासो से अपना पोर्ट्रेट बनवाया। पिकासो ने छह महीने लगाए और लाखों डालर मांगे। महिला अरबपति थी, उसने कहा लाखों डालर लो, मगर बनाओ! चित्र तुम्हारे ही हाथ का चाहिए। चित्र बन कर तैयार हो गया, महिला आई, उसने चित्र देखा, उसकी कुछ समझ में नहीं आया--उसको यह समझ में ही न आए कि मैं इसमें कहा हूं? लेकिन पिकासो से कहे कैसे? इतना महान चित्रकार! उसने

सिर्फ इतना ही कहा झिझकते-झिझकते कि और सब तो ठीक है, मगर जरा मेरी नाक ठीक नहीं बनी। पिकासो ने कहा, यह बहुत झंझट की बात है! छह महीने मैंने खराब किए, अब इसमें बदलाहट करना मुझे बहुत मुश्किल होगी। उस महिला ने कहा, कुछ जो और खर्च हो ले लेना, मगर नाक तो ठीक कर रही दो। पिकासो ने कहा, बाई, तू मुझे माफ कर! क्योंकि मुझे पता ही नहीं है कि नाक मैंने बनाई कहां है? अब मैं कहां खोजूं?
लेकिन ऐसे चित्रों को लोग लटका रहे हैं। चित्रकार को भी पता नहीं कि नाक कहां है! मगर पिकासो के चित्त होने चाहिए; तो तुम समृद्ध हो। तो अमरीका में पागलपन है। जिसके घर में पिकासो का चित्र नहीं है, यह मध्यमवर्गीय है; आभिजात्य नहीं है। पिकासो, डाली, वॉनगाग, सीजां, इनके चित्र होने ही चाहिए। तब तुम सुसंस्कृत हो। तब तुम्हें कला की परख है।
लेकिन यह सब दूसरों को दिखा कर चल रहा है।
मैं ऐसे बहुत से घरों को जानता हूं जिनमें किताबों-किताबों की अलमारियां सजी हैं। लेकिन वे किताबें कभी पढ़ी नहीं गई। क्योंकि मैंने उन किताबों को खोल कर देखा है, उनके पन्ने तक कई जुड़े हैं! तो उनको पढ़ा तो किसी ने नहीं है।
मैं एक घर में इसी तरह मेहमान था, एक महाराज के घर में। उनकी बड़ी लाइब्रेरी थी! वे अपनी लाइब्रेरी मुझे दिखाने ले गए। मैंने दो-चार किताबें खोल कर देखीं, उनके पन्ने तक जुड़े थे। मैंने पूछा, इनको किसी ने पढ़ा? महाराज हंसने लगे। उन्होंने कहा, पढ़ने का सवाल ही नहीं है। ये सुंदर मालूम पड़ती है। इनसे घर की शोभा है। किताबें और शोभा!
तुम तुम किसको धोखा दे रहे हो!
मगर यह हमारे जीवन का ढंग है। गरीब से लेकर अमीर तक भी ऐसे ही जी रहा है। यह जीने की शैली बदलनी होगी; अन्यथा तुम्हारे जीवन में कभी परमात्मा का आगमन नहीं हो सकता है।
जिंदगी की कला धीरे-धीरे सीखनी पड़ती है। एकदम नहीं आ जाती। इसलिए मैं कुछ यह नहीं कह रहा हूं कि तुम आत्म-निंदा से भर जाओ। यह स्वाभाविक है। तुम जिस दुनिया में पैदा हुए हो, वहां हर आदमी चटक-मटक से जी रहा है, तुम उन्हीं के बीच बड़े हुए हो, तुमने भी उनकी आदतें सीख ली हैं।
जिंदगी के साज को धीरे-धीरे छेड़िए
तार हैं डरे हुए
दर्द से भरे हुए
दम बखुद, मरे हुए
जखम जब हरे हुए
रंग क्या बहाएगा
साज टूट जाएगा
जिंदगी साज को धीरे-धीरे छेड़िए

फूल ले के आइए
प्रेम रस पीलाइए
साज को मनाइए
फिर इसे बजाइए
साज है कली नहीं
रंग की डली नहीं
जिंदगी के साज को धीरे-धीरे छेड़िए

लो वो तार हिल पड़े
बेदरेग खिल पड़े
अब सुरों में दिल पड़े
जर्ब-ए-मुत्तसिल पड़े
रंग खुल के आएगा
अब्र घिर के छाएगा
जिंदगी के साज को धीरे-धीरे छेड़िए

जल्दी नहीं। ये काम जल्दी में होने वाले नहीं हैं। धीरजपूर्वक, धैर्यपूर्वक, शांति पूर्वक अपने जीवन का पुनरावलोकन करो। और फिर धीरे- धीरे, आहिस्ता-आहिस्ता एक-एक पहलू को बदलना शुरू करो। जिंदगी के तार को धीरे-धीरे छेड़िए। ये तार नाजुक हैं, तोड़ मत डालना। कुछ लोग जल्दबाजी करते हैं, परिणाम बुरे होते हैं। जैसे तुमने सुना कि यह चटक-मटक जिंदगी बेकार है, तुमने कहा फिर छोड़ो-छाड़ो। भाग गए जंगल, हो गए महात्मा। मगर वहां तुम करोगे क्या? जिंदगी के जो पुराने ढांचे थे वे तुम्हारे साथ चले जाएंगे। वहां भी तुम क्या करोगे?
तुमने महात्मा देखे? महात्मा भी कम से कम एक आईना रखते हैं अपने झोले में। क्योंकि जब भभूत लगाते हैं और तिलक-चंदन-मंदन लगाते हैं, तो आईने की जरूरत तो पड़ती है। आईने में बिना देखे चंदन इरछा-तिरछा लग जाए, तिलक उलटा- सीधा हो जाए... अलग-अलग पंथों के अलग-अलग तिलक हैं, तो बड़ी होशियारी से तिलक लगाना पड़ता है! राख कहीं छूट न जाए, पूरे शरीर पर पोतनी पड़ती है, जगह-जगह... अलग-अलग पंथों के अलग-अलग तिलक हैं, तो बड़ी होशियारी से तिलक लगाना पड़ता है! राख कहीं छूट न जाए, पूरे शरीर पर पोतनी पड़ती है, जगह-जगह... एक ढंग है उसका भी, एक शैली है उसकी भी। उसकी भी एक कला है। सो साधु को भी आईना रखना पड़ता है। यही सज्जन कल आईने के समाने घंटों बाल सजा रहे थे; अब भी आईने के सामने बैठे घंटों बालों को बिगाड़ रहे हैं! उनमें धूल-धवांस भर रहे हैं। यही सज्जन कल आईने के सामने खड़े होकर पाउडर चेहरे पर पोतते थे, यही अब राख पोत रहे हैं--मगर आईना वही का वही। और भीतर आदमी वही का वही।
कल तक ये सुंदर रेशमी वस्त्र पहनते थे और आईने के समाने खड़े होकर छाती फुलाते थे, प्रसन्न होते थे, आज ये टाट के वस्त्र पहन रहे हैं। लेकिन उनको भी आईने के सामने खड़े होकर पहन रहे हैं। भेद कहीं कुछ भी न पड़ा। बात कुछ बनी नहीं। बात और बिगड़ गई। इसलिए जल्दी मत करना, जल्दी में अति हो जाती है, एक अति से आदमी दूसरी अति पर चला जाता है--और अतियों पर जाने से क्रांति नहीं होती, क्रांति होती है मध्य में ठहरने से।
जिंदगी के साज को धीरे-धीरे छेड़िए
तार हैं डरे हुए
दर्द से भरे हुए
दम बखुद, मरे हुए
जखम जब हरे हुए
रंग क्या बहाएगा
साज टूट जाएगा
जिंदगी साज को धीरे-धीरे छेड़िए

फूल ले के आइए
प्रेम रस पिलाइए
साज को मनाइए
फिर इसे बजाइए
साज है कली नहीं
रंग की डली नहीं
जिंदगी के साज को धीरे-धीरे छेड़िए

लो वो तार हिल पड़े
बेदरेग खिल पड़े
अब सुरों में दिल पड़े
जर्ब-ए-मुत्तसिल पड़े
रंग खुल के आएगा
अब्र घिर के छाएगा
उठेंगे गीत, बजेगा नाद, बदलियां गिरेंगी, तुम्हारा नृत्य व्यर्थ नहीं जाएगा, बादल बरसेंगे, झूम-झूम बरसेंगे, लेकिन जिंदगी की कला आते-आते आती हैं! और संन्यास जीवन की सबसे बड़ी कला है!
भीर-भार से संत भागि के लुकत हैं।

अरे हां, पलटू सिद्धाई को देखि संतजन थुकत हैं।।
पलटू कहते हैं कि संत भीड़-भाड़ से बचते हैं; छिपते हैं। भीड़-भाड़ है किसकी? बुद्धुओं की। भेड़ों की हैं भीड़ें। संत तो केवल उनमें रस लेते हैं जो शिष्य हैं। जिनकी क्षमता झुकने की है। और जिनका प्रण अपने को बदलने का है। और जिनके जीवन में एक संकल्प उठा है जो कोई भी बाधा नहीं मानेगा। और जिन्होंने तय कर लिया है कि जीवन रहे कि जाए लेकिन पंखों को खोलेंगे और सूरज की यात्रा करेंगे। संत तो केवल शिष्यों के हैं; संसार के नहीं हैं, बाजार के नहीं हैं, भीड़-भाड़ के नहीं हैं। संत तो केवल सिर्फ चुने हुए लोगों के लिए हैं।
मुझसे लोग आ-आ कर कहते हैं कि आश्रम सबके लिए क्यों नहीं खुला हुआ है? सबको आश्रम की जरूरत नहीं है।... उनके लिए निश्चित खुला हुआ है जिनको जरूरत है।... उनको कसौटी देनी होगी। उनको परीक्षा देनी होगी। मुझसे लोग कहते हैं कि आपसे हर कोई किसी समय आकार क्यों नहीं मिल सकता? इसीलिए कि अपात्रों की भीड़ यहां इकट्ठी नहीं करनी है। हर कोई हर समय आकर मिल सके, तो मैं पात्रों के लिए तो अनुपलब्ध हो जाऊंगा और अपात्रों की भीड़ से घिर जाऊंगा।
बहुत सी सीढ़ियां पार कर सकोगे तो ही मेरे पास आ सकोगे। और जितनी देर करोगे उतनी ही ये सीढ़ियां और-और बढ़ती जाएंगी। मैं और दूर-दूर छिपता जाऊंगा। ताकि मैं सिर्फ उन्हीं को उपलब्ध हो सकूं, जिनको सच में ही जरूरत है। अमृत को पीने की योग्यता भी तो संग्रहीत होनी चाहिए। तुम अपने गंदे पात्र लेकर आ जाओ, क्या होगा? पहले पात्रों को साफ करो।
भीड़-भाड़ आने को उत्सुक होती है। उसकी उत्सुकता बस उत्सुकता होती है, कुतूहल होता है। उसे कुछ प्रयोजन नहीं है। उसकी कुछ खोज नहीं है। खोज होगी, तो व्यक्ति दाम चुकाने को राजी होता है, कीमत चुकाने को राजी होता है। खोज हो, तो आदमी सब दांव पर लगाने को राजी होता है। भीड़ कुछ दांव पर लगाने को राजी नहीं है--भीड़ तो उलटा प्रसाद चाहती है। पंडित-पुजारी भीड़ों में उत्सुक होते हैं। पंडित-पुजारी भीड़ों में जीते हैं। संत और पंडित में भेद है। संत छिप जाता है।
भीर-भार से संत भागि के लुकत हैं।
अरे हां, पलटू सिद्धाई को देखि संतजन थुकत हैं।
और जब संत के जीवन में सिद्धियों का आविर्भाव होता है, तो वे उन पर थूक देते हैं। जो संत सिद्धियों को प्रदर्शन करने लगे, वह बाजारू है। उसका कोई मूल्य नहीं। उसका अस्तित्व के जगत में कोई अर्थ, कोई महिमा नहीं; कोई गरिमा नहीं। हालांकि भीड़-भाड़ उसके पीछे खूब इकट्ठी होगी। क्योंकि भीड़-भाड़ मदारियों में रस लेती है।
भीड़-भाड़ तो तमाशाई है। कहीं कोई ताबीज निकाल दे हाथ से कि धूल निकाल
दे कि बस भीड़-भाड़ को बड़ा रस आ गया! कि कोई घड़ी प्रकट कर दे, कि भीड़-भाड़ के रस का क्या कहना! कि भीड़-भाड़ को भगवान मिले! यह राख कहीं भी मिल जाती। यह तो साधारण मदारी, सड़क छाप मदारी निकाल देते। इसमें कुछ भी नहीं है। इसका कोई मूल्य नहीं है। मगर भीड़ की बुद्धि कितनी! उसकी क्षमता कितनी! उसकी समझ कितनी! उसके पास आंखें कहां हैं पारखी की? कंकड़-पत्थरों से राजी हो जाती हैं। संतजन तो हीरे बांटते हैं। मगर हीरे तो उन्हीं के लिए हैं जो पारखी हैं। पहले पारखी बनो, तो संतों से मिलना हो सकता है।
क्या लौ आया यार कहा लौ जाएगा।
संगी कोऊ नाहिं अंत पछितायगा।
सपना यह संसार रैन का देखना।
अरे हां, पलटू बाजीगर का खेल बना सब पेखना।।
यह जगत तो बस ऐसा ही है जैसे जादूगर का खेल। बजाया डमरू जादूगर ने, फूंके मंत्र, ऊंची लफ्फाजी की बातें र्की, झूठे आम उगा दिए--वे सिर्फ प्रतीत होते हैं, हैं नहीं। सम्मोहन है। तुम्हारी आंखों को दिया गया धोखा है। तुम्हें भरोसा दिला दिया, इसलिए दिखाई पड़ रहा है।

मनुष्य के मन की एक महत्वपूर्ण बात समझ लेनाः उसे जिस बात का भरोसा आ जाए, वही उसे दिखाई पड़ने लगती है। अगर तुम्हें भूत-प्रेत में भरोसा है, तुम्हें भूत-प्रेत दिखाई पड़ेंगे। तुम हर बात में से भूत-प्रेत देख लोगे। मैं एक गांव में कुछ दिन रहा। मेरे साथ एक मित्र रहते थे। वे बार-बार कहते थे, कारण-अकारण कहते थेः मैं भूत-प्रेत नहीं मानता। मैंने उनसे कहा कि तुम इतनी बार कहते हो, इससे जाहिर है कि तुम भूत-प्रेत मानते हो। नहीं तो जरूरत क्या? मैंने एक दफे नहीं कहा! अगर भूत-प्रेत हैं ही नहीं, तो मानना क्या और नहीं मानना क्या? तुम नहीं मानते, यह कहते जरूर हो, लेकिन लगता है भीतर कहीं मानते हो, उस मान्यता को छिपाने की कोशिश में लगे हो। उन्होंने कहा, आप भी उलटे आदमी हैं; आपकी उलटी खोपड़ी है! मैं कहता हूं कि नहीं मानता और आप सिद्ध करना चाहते हैं कि मानते हो!
मैंने कहा, फिर ठहरो। मैं जानता हूं कि भूत-प्रेत कहां हैं। आज ही रात निर्णय हो जाएगा। उन्होंने कहा, क्या मतलब? मैंने कहा, यह जो सामने मकान है, इसके ऊपर की मंजिल पर तुम रात आज सो जाओ। बस आज तय हो जाएगा। सुबह पता चल जाएगा। सुबह भी मैं समझता हूं नहीं हो पाएगी। आधी रात में ही तय हो जाएगा। अब कह तो फंसे थे! एकदम से झुक भी नहीं सकते थे। काशी हिंदू विश्वविद्यालय से संस्कृत की बड़ी उपाधियों लेकर आए थे। पीएचड़ी. थे। अकड़ भी बड़ी थी। कहा कि मैं मानता ही नहीं हूं! तो मैंने कहा कि मैं विवाद भी नहीं कर रहा हूं कि तुम मानो। जब हैं ही, तो तुम्हारे न मानने से क्या होता है?
मैंने उनके सोने का इंतजाम सामने के मकान में कर दिया।... सामने के मकान में कुछ भी नहीं था, केरोसिन तेल बेचने वाले एक आदमी के खाली डिब्बे ही डिब्बे भरे थे। पूरे मकान में खाली डिब्बों का ही जमाव था। वे मेरे परिचित थे, मैंने उनसे कहा कि भाई, इतना कर दो। उन्होंने कहा, मामला क्या है? मैंने कहा कि तुम इसकी फिक्र न करो, मामला रात में ही जाहिर हो जाएगा। जैसे-जैसे सांझ करीब आने लगी, पी.एचड़ी. के पैर के नीचे की जमीन खिसकने लगी। वे मुझसे बोले, क्या आप सच में मानते हैं कि भूत-प्रेत होते हैं? मैंने कहा, यह बात ही फिजूल है! आज जब तय ही हो जाना है, तो इसकी बात ही क्या करनी है! मैं तर्क में नहीं भरोसा करता, अनुभव में। सांझ होते-होते उनका चेहरा पीला पड़ने लगा, उनके हाथ कंपने लगे। मैंने उन्हें देखा कि वे बाथरूम में बैठ कर राम-राम जप रहे हैं। गायत्री मंत्र पढ़ रहे हैं--जो भी उन्हें मालूम था... हनुमान चालीसा! जाते वक्त छोटी कितबिया ले जाने लगे, मैंने कहा, यह क्या है? उन्होंने कहा, यह हनुमान चालीसा है। मैंने कहा, किसलिए ले जा रहे हो? जब भूत-प्रेत होते ही नहीं तो हनुमान बिचारे क्या करेंगे? इनकी जरूरत क्या है? उन्होंने कहा कि मैं तो यह हमेशा रखता हूं अपने पास। भूत-प्रेत से क्या लेना-देना, मुझे हनुमान से प्रेम है। मैंने कहा, तुम्हारी मर्जी!
गर्मी के दिन थे। उनका बिस्तर ऊपर लगवा दिया और नीचे मैंने ताला डाल दिया। कहने लगे कि चाभी तो मुझे दे दो। मैंने कहा, चाभी तुम्हें क्यों दूंगा? वे लोग जब आएंगे रात चाभी मांगने, फिर मैं क्या करूंगा? उन्होंने कहा, कौन लोग? मैंने कहा, वही जिनको भूत-प्रेत कहते हैं। आखिर वे चाभी मुझ से मांगेंगे! तुमने तो हनुमान चालीसा रख लिया, वे मुझे झंझट देंगे; मैं सोना चाहता हूं शांति से, सो चाभी उनको देकर मैं शांति से सो जाऊंगा। उन्होंने कहा, आपकी बातें कुछ समझ में नहीं आतीं; कैसी चाभी और कैसे भूत-प्रेत! मैंने कहा, सब समझ आ जाएगा।
उनको ऊपर करवा आया। उनको ले जाना पड़ा मुझे ऊपर; नहीं तो वे हजार बहाने निकालते थे कि मैं अभी क्यों जाऊं, अभी तो जल्दी है, अभी तो मैं सोऊंगा भी नहीं। मैंने कहा कि तुम... मुझे भी सोना है! ग्यारह बजे उनको मैं ऊपर कर आया।
गर्मी के दिनों में खाली डिब्बे टीन के हों तो वे सिकुड़ते हैं, फैलते हैं। उनमें आवाज होनी शुरू होती है। और डिब्बों के ऊपर डिब्बे लगे हों तो एक की आवाज दूसरे में और दूसरी की तीसरे में... !

बस कोई बारह बजा होगा, साढ़े बारह... उन्होंने एकदम चीख मारी। वह मुझे पता ही था। मैंने मकान-मालिक को भी बिठा रखा था कि आज तुम खेल देखो! चीख मारी, मुहल्ला इकट्ठा हो गया, वे ऊपर छज्जे पर खड़े, एकदम कंप रहे, थर-थर कंप रहे। मैंने उनसे कहा कि उतर कर आ जाओ, हम दरवाजा खोल देते हैं, उन्होंने कहा कि मैं सीढ़ियों पर जा ही नहीं सकता। वहीं तो है वे लोग! और हद्द हो रही है, एक डिब्बे में से दूसरे डिब्बे में जा रहे हैं! एक नहीं हैं, हजारों मालूम होते हैं। मैंने कहा, भई, और तो कोई दूसरा दरवाजा है नहीं निकालने का, तुम आओ उतर कर, मैं दरवाजा खोल दूं नीचे; सीढ़ियां तो उतरो। उन्होंने कहा कि नहीं, भूल कर नहीं; नसेनी लाओ और यहीं से उतरूंगा। नसेनी लाकर दो आदमियों को चढ़ा कर उनको पकड़ कर उतारना पड़ा। बुखार नपवाया तो एक सौ चार डिग्री बुखार पसीना-पसीना हो रहे। डाक्टर को बुलाना पड़ा, दवा लिवानी पड़ी, रात सुलवाया। रात भर हनुमान चालीसा अपनी छाती से लगाए रहे।
फिर मैंने उनसे कहा, अब आइंदा मत कहना कि भूत-प्रेत नहीं होते। तुम मानते हो कि होते हैं। उस मकान में कुछ भी न था, केवल टीन के डिब्बे थे; तुम पी.एचड़ी. हो, इतनी तो अकल होनी चाहिए कि टीन के खाली डिब्बे होंगे तो गर्मी में सिकुड़ेंगे-फैलेंगे, खटर-पटर होगी। फिर एक-दूसरे के ऊपर कतारबद्ध लगे हैं तो खटर-पटर एक-दूसरे में जाएगी। उन्होंने कहा कि अब तुम मुझे फिर दुबारा फंसाने की कोशिश मत करो! अब मैं उस मकान में कदम नहीं रख सकता। ऐसी की तैसी पी.एचड़ी. की! जान बची और लाखों पाए, लौट कर बुद्धू घर को आए। उन्होंने कहा, अब मुझे... मुझे पक्का विश्वास है कि होते हैं! अब आपसे मुझे विवाद नहीं करना है। इसी विवाद में मैं नाहक झंझट में पड़ गया। फिर मैं उनको बहुत समझाने की कोशिश किया कि नहीं होते, वे सुनें ही नहीं।
तुम जो मान लो वह हो जाता है। तुम्हारी मान्यता तुम्हारे चारों तरफ
एक संसार निर्मित करती है। न तो तुम कुछ लाए हो, न कुछ तुम ले जाओगे, जो तुमने बना लिया है संसार, बस मान्यता का है। किसी स्त्री के साथ सात चक्कर लगा लिए, वह तुम्हारी पत्नी हो गई! खूब खेल खेल रहे हो! बैंड बाजा बजा, शहनाई बजी, कोई भोंदू को पकड़ लाए और उसने मंतर-तंतर पढ़ दिए और तुम्हें सात चक्कर लगवा दिए और गांठ बांध दी--और बंध गई!
एक सज्जन मुझसे कहते थे उन्हें पत्नी छोड़नी है, मगर कैसे छोड़ें, गांठ बंध गई, सात चक्कर लग गए हैं; मैंने कहा, तुम पत्नी को लिवा लाओ, अगर वह भी राजी हो तो मैं सात उलटे चक्कर लगवा दूं। और गांठ खोल दूं। और मंतर-तंतर, जितने तुम कहो उतने पढ़वा दूं। उलटे पढ़वा देंगे इस बार! सो मामला खतम हो जाएगा। आखिर गांठ बंधी है न, तो गांठ खुल सकती है! सात चक्कर ऐसे लगाए, उलटे लगा लेना! मंतर-तंतर पढ़े थे, पढ़वा देंगे!
उस दिन से वे यहां आए ही नहीं हैं। वे तो बात कर रहे थे, जैसा कि सभी लोग करते हैं कि कोई सार नहीं है। संसार में... पत्नी, बच्चे, मुश्किल हो गई... ! उन्होंने यह नहीं सोचा था कि मैं इतना सुगम उपाय बताऊंगा, कि उलटे फेरे डाल लो!
क्या लेकर आए थे? पलटू कहते हैं--
क्या लौ आया यार कहा लौ जाएगा।
संगी कोऊ नाहिं अंत पछिताएगा।
सपना यह संसार रैन कादेखना।
यह सब अंधेरे में तुमने अपने सपनों का एक जाल बुन लिया है, जिसको तुम संसार कहते हो। यह सब टूटा पड़ा रह जाएगा। यहीं का यहीं पड़ा रह जाएगा। यह बाजार उखड़ जाएगी। मौत आएगी और तुम्हारा किया हुआ सब अनकिया हो जाएगा। अरे हां, पलटू बाजीगर का खेल बना सब पेखना।
ये सब दृश्य जो तुम देख रहे हो, माया के, मोह के, लगाव के, आसक्ति के, अपने, पराए, मेरा, तेरा... कैसे लड़-लड़ पड़ते हो इंच-इंच जमीन पर, तलवारें खिंच जाती हैं, जिंदगी मुकदमों में बीच जाती है--और सब पड़ा रह जाएगा!
और मजा तो देखोः
जीवन कहिए झूठ, साच है मरन को।
पलटू कहते हैं, यह जीवन तो तुम्हारा बिल्कुल झूठ है, इससे तो तुम्हारी मौत कहीं ज्यादा सच है!

मूरख, अजहूं चेति, गहौ गुरु-सरन को।।
अभी भी जाग जाओ, इसके पहले कि मौत आए, जाग जाओ! यह सपने को सत्य न समझो।
इस सपने के प्रति मर जाओ। सपने के प्रति मर जाना संन्यास है। और सपने के प्रति जो मर गया, उसके भीतर एक होश का दीया जलता है।
लेकिन यह संभव है तभी, तुम जब किसी गुरु के साथ जुड़ जाओ। बुझा दीया जले दीए के पास सरक आए, तो ज्योति से ज्योति जले!
मांस के ऊपर चाम, चाम पर रंग है।
अरे हां, पलटू जैहै जीव अकेला कोउ ना संग है।।
है क्या अपने पास? हड्डी-मांस-मज्जा। अस्थिपंजर।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मर रही थी। दोनों में बातचीत होने लगी कि मृत्यु के बाद आत्मा बचती है कि नहीं! पत्नी कहती थी बचती है, मुल्ला कहता था कि नहीं बचती। असल में मुल्ला चाहता नहीं था कि बचे। क्योंकि पत्नी से जिंदगी भर परेशान रहा था और अब और संभावना कि बचेगी पत्नी फिर भी! ... और अभी तो कम से कम देह में बंद थी; तो घर आए तो ही सताती थी; देहमुक्त हो जाएगी तो पता नहीं कहां-कहां सताए! मधुशाला ही में पहुंच जाए! किसी और स्त्री से मुल्ला अपना राग-रंग रचा रहा हो, वहीं जाकर ऊधम करने लगे! मुल्ला कह रहा था कि नहीं बचती। पत्नी कहती थी--बचती है! आखिर बात यहां तक बढ़ी कि पत्नी ने कहा कि फिर ऐसा करो, कि हम दोनों में से जो पहले मरे, वह यह कसम खाए कि मरते ही आकर दूसरे को खबर देगा कि देखो मैं जिंदा हूं। मैं अभी भी हूं।
मुल्ला ने कहा, यह ठीक है। शर्त रही।
फिर थोड़ा डरा! कह तो गया जोश में... फिर कहा, लेकिन एक बात ख्याल रखना कि अगर कभी आओ तो दिन में आना, रात में नहीं! पत्नी ने कहा, क्यों, रात में तुम्हें क्या डर है? आखिर मैं तुम्हारी पत्नी हूं। उन्होंने कहा, वह तो मैं समझा कि मेरी पत्नी अभी हो! मरने के बाद पता नहीं किस रूप में प्रकट होओ? नहीं! दिन में आना, भरी रोशनी में आना! और ऐसे भी रात में तुम आओ तो रात में तुम मुझे घर में पाओगी नहीं! क्योंकि तुम मर गईं, इसका यह मतलब नहीं कि दुनिया में सब स्त्रियां मर गईं! इसलिए बेकार परेशान मत होना। या तो मैं मधुशाला में रहूंगा या किसी स्त्री के पास रहूंगा। तुम तो दिन में आना, भरी दोपहरी में और एक ही बार आना काफी है!
पत्नी ने कहा, अच्छा ठीक, तो दिन में ही आऊंगी! भर दोपहरी में ही आऊंगी! मुल्ला ने फिर थोड़ा सोचा, फिर पत्नी का हाथ हाथ में लिया और कहा, हे प्यारी, मुझे क्षमा करो, मैं मानता हूं कि आत्मा बचती है, आने वगैरह की कोई आवश्यकता नहीं है। क्योंकि भरी दोपहरी में भी तुम मेरी छाती दहला दोगी! अभी जिंदा में ही दहला देती हो, तुम्हें देख कर ही मेरे पैर कंपने लगते हैं, घर की तरफ आते डरता हूं। कल ही रात की बात है, रास्ते पर चल रहा था, दो बज गए, चक्कर काट रहा था। आखिर सिपाही ने कहा कि नसरुद्दीन, दो बज गए और मैं तुम्हें देख रहा हूं कि कम से कम दो घंटे से तुम यहीं-यहीं चक्कर काट रहे हो। तुम्हारे पास यहां बार-बार चक्कर काटने के लिए कोई उत्तर है? नसरुद्दीन ने कहा, अगर उत्तर ही होता तो घर ही क्यों न चले गए होते! उत्तर नहीं है, वही सोचने के लिए चक्कर काट रहा हूं कि घर जा कर पत्नी को क्या उत्तर देना? और जैसे-जैसे देर होती जा रही है वैसे-वैसे मुसीबत होती जा रही है। हवलदार साहब, अगर आपके पास कोई उत्तर हो तो आप बताओ! कभी-कभी यह मुसीबत आप पर भी तो आती होगी!
घर आते वक्त पति को उत्तर तैयार करना पड़ता है। घर आते वक्त पति की वही हालत होती है जो परीक्षा में जाते वक्त विद्यार्थियों की होती है। और वे कोई भी उत्तर तैयार करें, पत्नी मानने को राजी नहीं। वह हर उत्तर में से कुछ न कुछ भूल-चूक निकाल लेती है।
यह हमने एक संसार बना रखा है। इसमें सुख तो कुछ पाया नहीं, दुख बहुत पाया है, पीड़ा बहुत पाई है। चाहा तो सुख है, मगर मिला नहीं।
आदर्श सोते हैं
आईने रोते हैं

मनमानी करके रहेंगे

आप कौन होते हैं

अंधे भाई नयन सुख
सूरज के पोते हैं

दर्द बेहिसाब है
बेहिसाब रोते हैं

सुख उगता ही नहीं
सुख रोज बोते हैं।
रोज बोते हो सुख, आशा-अपेक्षा में, आकांक्षा में, मगर सुख ऊगता कब? जब ऊगता है तब दुख ऊगता है। स्वर्ग चाहते हो, मिलता नरक है। जरूर कहीं कोई मौलिक भूल हो रही है। तुम झूठ को सच मान रहे हो।
भूलि रहा संसार कांच की झलक में।
बनत लगा दस मास, उजाड़ा पकल में।।
कितना जिंदगी में मेहनत करके इसको बसा पाते हो, इस सपने को! और उजड़ने में पलक नहीं लगती। इधर सांस टूटी कि सब उजड़ गया।
रोवनवाला रोया आपनि दाह से।
और ध्यान रखना, जो लोग रोएंगे तुम्हारे मर जाने पर, वे तुम्हारे लिए नहीं रो रहे हैं, वे अपने लिए रो रहे हैं। पत्नी रोएगी, पति रोएगा, बच्चे रोएंगे, माता-पिता रोएंगे, मित्र रोएंगे, मगर ध्यान रखना, इस भ्रांति में मत पड़ना कि वे तुम्हारे लिए रो रहे हैं; वे अपने लिए रो रहे हैं। पत्नी रो रही है कि अब क्या होगा? यह पति तो खिसक गया, अब अपना क्या होगा? बच्चे रो रहे हैं कि पिता चल बसे, अब अपना क्या होगा? मां-बाप रो रहे हैं कि बेटा चल बसा, अब बुढ़ापे में अपने हाथ की लाठी कौन? यहां कोई किसी और के लिए नहीं रोता है, यहां सब अपने लिए रोते हैं।
अरे हां, पलट सब कोई छेंके ठाढ़, गया किस राह से।।
और जब तुम्हारी जिंदगी उड़ने लगेगी--जैसे कपूर उड़ जाए--जब तुम्हारे प्राण-पखेरू उड़ने लगेंगे, तो सभी रोक कर खड़े होंगे राह, मगर कोई छेड़ न पाएगा, रोक न पाएगा। क्योंकि तुम अदृश्य हो। लाख पत्नी सिर पटके, रोक न सकेगी। लाख पति रोए, रोक न सकेगा। और सब रोकने इत्यादि की बातें दिन-दो दिन की हैं। फिर पत्नी बसा लेगी नया सपना, फिर पति बसा लेगा नया सपना।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी मरी। मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी का एक प्रेमी था। और सब मित्र और वह प्रेमी भी आखिरी विदाई में सम्मिलित हुए। मरघट पर वह प्रेमी ऐसा छाती पीट-पीट कर रो रहा था। जैसे वही असली पति हो।
आखिर नसरुद्दीन से न रहा गया और उसने जाकर उसके कंधे पर हाथ रखा और कहा, भाई मेरे, ज्यादा दुख न पाओ, मैं फिर विवाह करूंगा। घबड़ाओ मत। इतने न पछताओ, मैं फिर विवाह करूंगा।
कच्चा महल उठाय, कच्चा सब भवन है।
दस दरवाजा बीच झांकता कवन है।।
कच्चा महल उठाए, कच्चा सब भवन है। यहां तुम जो बना रहे हो, सब कच्चा है। यहां तो पक्की सिर्फ एक चीज बन सकती है, वह है तुम्हारी आत्मा की प्रौढ़ता; वह है तुम्हारी चेतना का जागरण।
दस दरवाजा बीच झांकता कवन है।।
जो इन दस दरवाजों, इंद्रियों के भीतर छिपा है, उसमें जो झांक ले, उसने पक्का महल बनाया।
कच्ची रैयत बसै, कच्ची सब जून है।
अरे हां, पलटू निकरि गया सरदार, सहर अब सून है।।
और आज नहीं कल हंसा तो उड़ जाएगा, सूना शहर पड़ा रह जाएगा। और इस शरह को बसाने में तुमने कितना श्रम किया था! कितनी मेहनत उठाई थी। क्या नहीं कर छोड़ा था! सब दांव पर लगा दिया था। लेकिन सब पत्तों के घर हैं; हवा का झोंका आया, गिर जाते हैं। कागज की नावें हैं; चल भी नहीं पातीं कि डूब जाती हैं।
इन पर भरोसा मत करो।

हाथ गोड़ सब बने, नाहिं अब डोलता।
एक क्षण में, श्वास क्या उड़ी, हाथ-पैर सब वैसे के वैसे हैं लेकिन अब डोलता नहीं।
नाक कान मुख ओहि, नाहिं अब बोलता।।
नाक-कान सब वैसे के वैसे हैं, लेकिन अब बोलता नहीं।
काल लिहिसि अगुवाय, चलै ना जोर है।
मौत आ गई, काल द्वार पर खड़ा हो गया, धक्के दे कर ले चलने लगा, अब उस पर कुछ जोर नहीं चलता। एक क्षण भी रुकने के लिए नहीं मांगा जा सकता। एक क्षण की छुट्टी नहीं मिलती। चाहे तुम लाख कहो कि मैं कोई साधारण आदमी नहीं, वी.वी.आई.पी हूं; लाख कहो कि मैं प्रधानमंत्री, मैं राष्ट्रपति, मैं यह, मैं वह, मौत कुछ सुनती नहीं। मौत के पास ये कोई प्रमाणपत्र चलते नहीं। एक क्षण का भी अवसर नहीं दिया जा सकता।
आया मूठी बांधि, पसारे जाएगा।
और कैसा मजा है, कैसा मजाक है, बच्चा आता है तो मुट्ठी बंधी होती है और जाता है तो हाथ खुले होते हैं। यह तो खूब उलटी बात हो गई। खुले हाथ आते, बंधे हाथ जाते तो कुछ समझ में आती बात कि आए थे खाली हाथ, कुछ लेकर गए! यहां हालत उलटी है। बच्चा बंद मुट्ठी आता, शायद कुछ लेकर आता है; कुछ अदृश्य; एक निर्दोषता लेकर आता है; एक सरलता, एक स्वच्छता, एक ताजगी। जैसे ओस की बूंद सुबह ताजी-ताजी, कि कमल के फूल की पंखुड़ी सुबह ताजी-ताजी। कोरा आता। कुछ भी गुदा नहीं, कुछ भी लिखा नहीं, कोरा कागज। जिस पर कोई संस्कार नहीं, कोई लिखावट नहीं। एक शून्य की तरह आता। एक मौन की तरह आता। न शब्द हैं, न विचार हैं, न भाषा है। न वासना है कोई अभी, न कामना है कोई अभी। न बीता कल है, न आगा कल है। क्षण-क्षण में पुलकित होता, आनंदित होता।
और प्रामाणिक होता है बच्चा। आथेंटिक होता है। धोखा नहीं देता। अगर क्रोध है तो क्रोध प्रकट कर देता है। और प्रेम है तो प्रेम प्रकट कर देता है। तर्क और तर्क की संगति में भी नहीं उलझा होता। अभी कह रहा था कि तुम्हारे बिना जी न सकूंगा और अभी नाराज हो गया और कहता है, अब तुम्हारी शकल दुबारा नहीं देखूंगा--और फिर घड़ी भर बाद तुम्हारी गोदी में बैठा है। क्षण-क्षण जीता है। स्वस्फूर्त।
जरूर कुछ लेकर आता है। कुछ बहुमूल्य। इसीलिए तो जीसस ने कहा हैः अगर मेरे प्रभु के राज्य में प्रवेश पाना हो तो तुम्हें पुनः छोटे बच्चे की भांति हो जाना पड़ेगा।
आया मूठी बांधि, पसारे जाएगा।
छूछा आवत जात, मार तू खाएगा।।
और जितने तुम छूछे जाओगे उतने ही मार खाओगे। क्योंकि परमात्मा के समक्ष, अस्तित्व के समक्ष उत्तर क्या है तुम्हारे पास देने को? कैसे तुमने जीवन गंवाया, कुछ हिसाब... कुछ तो कह सको कि ऐसे गंवाया। कि बुद्धू की तरह खड़े रह जाओगे! कहते न बनेगा, जवाब लड़खड़ाएगी, क्योंकि जिसमें भी तुमने जीवन गंवाया, वह सब तुम्हें फिजूल दिखाई पड़ेगा। अब तुम उसका उत्तर नहीं बना सकते। वह सब सपना था। और सपने को तुमने सच मान लिया था। आंख न उठेगी!
किते बिकरमाजीत साका बांधि मरि गए।
और साधारण लोगों की तो छोड़ दो, बड़े-बड़े सम्राट, विक्रमादित्य जैसे सम्राट, जिनके नाम से विक्रम संवत चलता है; जिनके नाम से संवत बना, जो इतनी बड़ी छाप छोड़ गए समय पर...
किते बिकरमाजीत साका बांधि मरि गए...
संवत रूपी कीर्ति-स्तंभ जो बना गए, समय पर ऐसी अमिट देख छोड़ गए, वे भी पानी में खो गए, धूल में खो गए। उनका भी कहां पता है? कभी होंगे तो बहुत अकड़ कर चले होंगे; सोने के सिंहासनों पर उठे होंगे, धूल में पैर न पड़े होंगे, कांटों से परिचित न हुए होंगे; धूप न लगी होगी, पसीना न बहा होगा; फूलों में, फूलों की गंध में, इत्रों में डूबे रहे होंगे; गुलाब जल में नहाए होंगे। और फिर वही देह, गुलाबजलों में नहाई देह एक दिन मिट्टी में मिल जाती है। जब बड़े-बड़े ऐसे मिट जाते हैं, छोटे-छोटों की तो बिसात क्या!
अरे हां, पलटू रामनाम है सार संदेसा कहि गए।।

और विक्रमादित्य जैसे लोग भी जब मर जाते हैं, जब अरथी उठती है तो मालूम है हम क्या कहते हैं? रामनाम सत्त है। हर अरथी के साथ हम कहते हैंः रामनाम सत्य है, सत्त बोले गत्त है। जिंदगी भर राम को याद न क्या, मुर्दा लाश के चारों तरफ हम दोहराते हैंः रामनाम सत्त है। बड़ी देर हो गई, जरा पहले दोहराना था!
मैं तो तुमसे कहूंगा, जिनसे तुम्हें प्रेम हो उनको पकड़ लो, बांध दो अरथी में, ले चलोः रामनाम सत्त है! जिंदगी में कुछ कहो, तो सुनें तो कुछ अकल आए! अब मर गए, अब न उन्हें सुनाई पड़ता है, अब तुम चिल्ला रहे होः रामनाम सत्त है!
और ध्यान रखना, तुम मुर्दों के लिए तो रामनाम सत्त कह रहे हो और कह रहे होः सत बोले गत्त है, कि सत्य बोलो तो गति हो जाती है, अपने बाबत क्या ख्याल है? वह तुम दूसरों पर छोड़ रहे हो, कि भई, जैसे हमने तुम्हारी लाश पर बोला रामनाम सत्य है, जब हम मरें, तुम भी बोल देना। एक औपचारिकता निभा रहे हो! मरघट पर लोग जाकर गपशप करते हैं बाजार की... कौन सी फिल्म अच्छी लगी है गांव में? न मालूम कहां-कहां की फिजूल बातें करते हैं।... जरा मरघट पर जाया करें! जब अरथी ले जाते हैं तो रामनाम सत्त है! अर्थी पहुंचा कर, अरथी को रखा चिता पर, फिर अर्थी की तरफ पीठ करके जरा लोगों की बातें सुनो! क्या- क्या गजब की बातें लोग कर रहे हैं!
मैंने तो अपने गांव में ऐसे लोग भी देखे हैं की उधर लाश जल रही है और
वे जुआ खेल रहे हैं। मरघट पर! मरघट पर जुआ खेलने की सुविधा है, पुलिस को भी पता नहीं चलता कि वहां जुआ चल रहा है। और फिर बैठे-बैठे करें भी क्या? अब ये सज्जन तो जलने में वक्त लेंगे। तीन-चार घंटे लगें, कि छह घंटे लगें। और अगर लकड़ियां गीली हों और वर्षा का मौसम हो तो पता नहीं दिन भर खराब होने वाला है! तो लोग ताश ले जाते हैं साथ कि वहीं बैठ कर ताश जमा देंगे! कैसी अदभुत दुनिया है, कोई मर गया और तुम्हें अभी भी ताश खेलने की पड़ी है! लेकिन मैं समझता हूं, इसके पीछे मनोवैज्ञानिक कारण हैं। ये बचने के उपाय हैं। इस तरह अपने मन को इस सत्य से बचाना है कि मौत है, कि मौत आती है। इसकी आई, कल अपनी भी आती होगी। इसको झुठलाना है। और कोई मरते हैं; यह मरने का धंधा हमेशा दूसरे करते हैं, अपने को थोड़े ही मरना है! मैं नहीं मरूंगा, ऐसा हम अपने भीतर भाव रखते हैं। कहें, चाहे न कहें।
अरे हां, पलटू रामनाम है सार संदेसा कहि गए।।
जो जनमा सो मुआ नाहीं थिर कोई है।
जो जन्मा, वह मरेगा, कोई भी बचने वाला नहीं है। जन्म के साथ ही मृत्यु
भी आ गई।
राजा रंक फकीर गुजर दिन दोई है।।
फिर चाहे अमीर हो, चाहे गरीब, दो दिन की जिंदगी है! ऐसे गुजारो कि वैसे, सुविधा में कि असुविधा में, झोपड़ों में कि महल में, कुछ बहुत फर्क नहीं पड़ता।
चलती चक्की बीच परा जो जाइकै।
यह जो जन्म-मृत्यु की चक्की है, इसके बीच में जो भी पड़ गया है...
अरे हां, पलटू साबित बचा न कोय गया अलगाइकै।
उसे काल का ग्रास हो ही जाना पड़ा है। मृत्यु अवश्यंभावी है।
जिसको इस सत्य की गहरी प्रतीति होने लगती है कि मृत्यु अवश्यंभावी है, वह धार्मिक हुए बिना नहीं रह सकता। क्योंकि मृत्यु से बचने का एक ही उपाय है, वह धर्म है। मृत्यु के सागर के पार ले जाने वाली एक ही नौका है, वह धर्म है। मृत्यु के पार आंखों को अमृत का दर्शन करा देने वाला अगर कोई भी द्वार है तो वह धर्म है।
पलटू की बात पर ध्यान करना। यहां खूब जिंदगी सुहानी है, प्यारी है, मगर रुक मत जाना!
देख सजन का रूप सुहाना करना मत बिसराम
बटोही करना मत बिसराम
तेरा काम है चलते रहना
धूल डगर की तेरा गहना

तूफानों में खोजते रहना नये-नये नित गाम बटोही नये-नये नित गाम

गरमी हो चाहे सर्दी हो
फूलन रुत हो या जर्दी हो
प्रेम के कारण बैठके जलना नहीं है तेरा काम बटोही नहीं है तेरा काम

सूरज तेरे पांव चूमे
धरती तेरे संग में घूमे
प्रेम लगन के गीत सुना और जाप हरी का नाम बटोही जाप हरी का नाम

देख सजन का रूप सुहाना करना मत बिसराम बटोही करना मत बिसराम

आज इतना ही।

सपना यह संसार
सोलहवां प्रवचन

गहन से भी गहन प्रेम है सत्संग

भगवान,
बुद्ध कहते हैंः अप्प दीपो भव। अपने दीये स्वयं बनो। और आपकी देशना हैः रसमय होओ, रासमय होओ। क्या दोनों उपदेश मात्र अभिव्यक्ति के भेद हैं? भगवान,
मैं वर्षों से संतों की वाणी के अध्ययन-मनन में लीन रहा हूं, पर अभी तक कहीं पहुंचा नहीं। और संत तो कहते हैं कि सत्संग क्षण में पहुंचा देता है! भगवान,
कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है
आदमी सिर्फ बहाना है, बस खुदा देता है
वह जहन्नुम भी दे तो करूं शुक्र अदा
कोई अपना ही समझकर तो सजा देता है

पहला प्रश्नः भगवान, बुद्ध कहते हैंः अप्प दीपो भव। अपने दीये स्वयं बनो। और आपकी देशना हैः रसमय होओ, रासमय होओ। क्या दोनों उपदेश मात्र अभिव्यक्ति के भेद हैं?

नरेंद्र! मात्र अभिव्यक्ति का भेद नहीं है। भेद और थोड़ा गहरा है। बुद्ध का वक्तव्य साध्य के संबंध में, मेरा वक्तव्य साधन के संबंध में। मैं बुद्ध से राजी हूं; अप्प दीपो भव, अपने दीये बनो। दीये बनने का और तो कोई मार्ग भी नहीं। कोई दूसरा तुम्हारे लिए दीया हो सकता भी नहीं। खुद की आंख ही होगी तो देख सकोगे। खुद के पैर ही होंगे तो चल सकोगे।
तुमने वह कहानी जरूर सुनी होगी। जिन्होंने गढ़ी है, शायद सोचा होगा गहरी बात कह रहे हैं। संसार के संबंध में तो शायद सच भी हो, लेकिन अध्यात्म के संबंध में बिल्कुल झूठ है। तुमने सुना होगा, एक जंगल में आग लगी। उस जंगल में एक अंधा आदमी और एक लंगड़ा आदमी रहते थे। लंगड़ा देख सकता था, चल नहीं। अंधा चल सकता था, देख नहीं। बात सीधी-साफ थी। दोनों ने समझौता किया। दोनों ने सौदा किया। अंधे ने लंगड़े को कंधे पर उठा लिया। लंगड़ा देखता है, अंधा चलता है। दोनों के साथ-सहयोग से जंगल की आग से बच कर वे बाहर निकल आए। यह बात संसार के संबंध में सही हो सकती है। यहां अंधों में लंगड़ों में बहुत सौदे होते हैं, बहुत साझेदारी होती है। यहां अंधे और लंगड़े ही हैं। और किसको खोजोगे? दोस्ती उनसे, दुश्मनी उनसे! लेकिन जीवन के परम सत्य तक जाने का ऐसा कोई उपाय नहीं है। तुम किसी और की आंख से नहीं देख सकते हो वहां। अपनी ही आंख चाहिए। वहां उधार नहीं चलेगा। धर्म नगद है। तुम्हारे पास अपनी संपदा होगी तो ही कुछ हो सकेगा। परमात्मा के सामने तुम वेद का उच्चार करोगे, गीता गुनगुनाओगे, कुरान की आयतें पढ़ोगे, तो दो कौड़ी के सिद्ध होओगे। परमात्मा के सामने तो तुम्हें अपना गीत गाना होगा। अपना वेद जन्माना होगा। अपनी कुरान जगानी होगी। वहां तो केवल तुम्हारी अंतरात्मा से जो स्वर उठेंगे वे ही स्वीकृत हो सकते हैं। वहां किसी और के बजाए हुए गीत, किसी और के नाचे हुए नृत्य काम नहीं आएंगे। वहां तुम हिज मास्टर्स वाइस के रिकार्ड की तरह मत जाना। वहां रिकार्डों का कोई मूल्य नहीं है। वहां तो तुम्हारी परख होगी। वे आंखें तो तुम्हारे अंतस्तल में झांकेंगी। वे तो तुम्हारे अंतरतम को परखेंगी। वहां तो तुम्हें नग्न खड़े होना होगा। मांगे गए उधार वस्त्र द्वार पर ही छुड़ा लिए जाएंगे। इसलिए बुद्ध ने कहाः अप्प दीपो भव। अपने दीए बनो।
बुद्धों के पास यह खतरा खड़ा होता है। बुद्धों को इस बात के लिए बार-बार चौंकाना पड़ता है, चेताना पड़ता है। क्योंकि तुम हो आलसी। तुम्हारी आदत है कि कुछ मुफ्त मिल जाए तो क्यों श्रम करो! तुम्हारे जीवन भर का हिसाब हैः चोरी-चपाटी। सत्य भी तुम चुरा लेना चाहते हो। वह भी किसी की जेब काट लो, ऐसी तुम्हारी आकांक्षा है। सत्य तक पहुंच जाने के लिए भी कोई सुगम-सस्ता

मार्ग मिल जाए; मुफ्त मिल जाए तो बहुत बेहतर; कुछ न चुकाना पड़े तो धन्यभाग; ऐसी तुम्हारी अभीप्सा है। लेकिन सत्य मुफ्त नहीं मिलता। सत्य को तो प्राणों से खरीदना होता है। सत्य कुर्बानी मांगता है। सत्य कहता हैः अपने सिर को काटो और चढ़ाओ। अपने अहंकार को मिटाओ। इतनी कीमत न दे सको तो फिर झूठ में ही जीना होगा। रोशनी कहती हैः तुम मिटो तो मैं होऊं। अंधेरा कहता है, तुम मजे से रहो; तुम्हारे रहने में ही मेरा रहना है। अहंकार और अंधेरे में सांठ-गांठ है। प्रकाश के आते जैसे अंधकार चला जाता है, ऐसे ही अंतरात्मा में प्रकाश के उदय होते ही आध्यात्मिक अंधकार टूट जाता है, छूट जाता है। अप्प दीपो भव सभी बुद्धों को कहना पड़ता है; क्यों? क्योंकि बुद्धों का जलता हुआ दीया देखकर तुम्हें लगता है, अब हमें क्या करना? भगवान, आप तो जानते हैं, आप हमें जना दें! आपको मिल गया, आप हमें सुझा दें! आपने रास्ता पा लिया, अब हम क्यों रास्ते की तलाश करें? हम तो अनुसरण करेंगे। हम तो आपके पीछे-पीछे चलेंगे। हम तो आपकी छाया बनेंगे। कहने वाले शायद सोचते होंगे, बड़ी श्रद्धा की बात कह रहे हैं! कहने वाले शायद सोचते होंगे--और समर्पण क्या होगा! लेकिन आदमी का मन बहुत बेईमान है। यह समर्पण नहीं है, न श्रद्धा है। यह तो श्रद्धा से बिल्कुल विपरीत है। यह तो अहंकार का ही उपाय है, आयोजन है। अपने को बचाने की अंतिम तरकीब है, अंतिम व्यवस्था है। अब तुम बुद्ध के वस्त्र ओढ़ लो, तो बुद्ध हो जाओगे! कि बुद्ध का कमंडल उठा लो तो बुद्ध हो जाओगे? कि बुद्ध जैसे उठो, बैठो, तो बुद्ध हो जाओगे!
बुद्ध का चचेरा भाई थाः देवदत्त। बचपन से बुद्ध के साथ खेला, बड़ा हुआ। लड़े भी होंगे, झगड़े भी होंगे, एक-दूसरे को कभी मारा भी होगा, एक-दूसरे को कभी पटका भी होगा--सब कुछ हुआ होगा, दोनों बराबर उम्र के थे, साथ-साथ बड़े... एक ही महल में बड़े हुए। फिर बुद्ध तो तथागत हो गए, परम ज्ञान को उपलब्ध हुए, देवदत्त के मन में बड़ी ईर्ष्या जगी। उसने कहाः जो बुद्ध कर सकते हैं, वह मैं भी कर सकता हूं। तो वह आ कर बुद्ध से दीक्षित हुआ। लेकिन दीक्षित होने में काइयांपन था; चालबाजी थी, दुकानदारी थी। वह दीक्षित हुआ कि जरा ठीक से देख लूं, आखिर बुद्ध की प्रतिष्ठा का राज क्या है? क्या खाते हैं, क्या पीते हैं, क्या पहनते हैं; कब सोते, कब उठते; क्या-क्या करते हैं, ठीक से जांच कर लूं, साल-छह महीने में सब मेरी समझ में आ जाएगा; फिर मैं भी वही करूंगा। मैं भी बुद्ध हो जाऊंगा।
और साल-छह महीने में... देवदत्त बुद्धिमान आदमी था... उसने बुद्ध की ठीक
से जांच-पड़ताल कर ली। ठीक से निरीक्षण कर लियाः ऐसे उठते, ऐसे बैठते, ऐसे चलते। वैसे ही उठने लगा, वैसे ही बोलने लगा, वैसे ही चलने लगा--बुद्ध की बिल्कुल ही अनुकृति हो गया। और तब कुछ लोग उससे प्रभावित भी होने लगे। अंधों की दुनिया है! इस अंधों की दुनिया में काने भी राजे हो जाते हैं। अंधों की दुनिया में काना ही राजा हो सकता है। आंखवालों को तो अंधे बर्दाश्त ही नहीं करते। अंधा समझौता कर लेता है काने से कि चलो, तुम आधे- आधे, आधे हम जैसे। कम-से-कम आधे तो हम जैसे!
देवदत्त का और सब व्यवहार तो अज्ञानी का था, मूर्च्छित का था, लेकिन उठता था, बैठता था, चलता था, बोलता था... बड़े सुभाषित बोलता था। वचन, परिमार्जित थे। भाषा, सुगठित थी, सुडौल थी। उद्धरण देता था परम शास्त्रों के। व्याख्या, अनूठी थी! विश्लेषण, गहरा था! तर्क, प्रतिष्ठित, प्रतिभापूर्ण। अंधे साथ होने लगे! देवदत्त को भी पांच सौ शिष्य मिल गए। और जब पांच सौ शिष्य मिल गए, तो देवदत्त का असली अहंकार प्रकट हुआ जो अब तक छिपा था। उसने घोषणा कर दीः मैं भी बुद्ध हूं।
बुद्ध को खबर मिली, बुद्ध बहुत हंसे। बुद्ध ने कहा, मेरे जैसा चलना, मेरे जैसा उठना, मेरे जैसा बोलना--ऐसे कोई बुद्ध होता है! दो बुद्ध कभी एक जैसे उठते हैं, एक जैसे बैठते हैं, एक जैसे चलते हैं! इस तरह तो पाखंड पैदा होता है।
और देवदत्त पागल है, ठीक, मगर ये पांच सौ लोग जो बुद्ध को छोड़ कर देवदत्त के साथ हो लिए, इनके लिए क्या कहो?
देवदत्त बुद्ध को छोड़ कर अलग हो गया। उसने अपने अलग धर्म की घोषणा कर दी। मगर जल्दी ही वे लोग बिखर गए। और देवदत्त जब मरा तो पछताता हुआ मरा।

बहुत पीड़ा में मरा। एक महा अवसर खो गया। मरते वक्त उसे समझ आई बात, बड़ी देर से समझ में आई बात, कि मैं ऊपर-ऊपर का आचरण सीख लिया, अंतस का दीया तो जला ही नहीं।
आचरण कितना ही तुम सुव्यवस्थित कर लो, इससे अंतस का दीया नहीं जलेगा। आचरण को सुव्यवस्थित करना ऐसा ही है जैसे कोई दीए की तसवीर बना ले... सुंदर तस्वीर बना ले, प्यारे-प्यारे रंग भर दे, फिर उस तस्वीर को ले जाकर अपने कमरे में टांग ले--अंधेरा उस तस्वीर से प्रभावित नहीं होगा। अंधेरा उस तसवीर से डरेगा नहीं। तस्वीरों से कहीं अंधेरा भगा है? तसवीर टंगी रहेगी और अंधेरा कुंडली मार कर बैठा रहेगा। असली दीया चाहिए। फिर चाहे असली दीया मिट्टी का हो और तस्वीर सोने की बनी हो। असली दीया चाहिए। फिर चाहे असली दीया दो कौड़ी का हो और तसवीर पर हीरे-जवाहरात जड़े हों। तो भी अंधेरा असली दीये को पहचानेगा। असली दीये को पहचानते ही बाहर हो जाएगा। बाहर हो जाना ही पड़ेगा। असली दीये के पास आने का उपाय नहीं है।
मनुष्य ने बहुत से बुद्धों को जाना है। महावीर, कृष्ण, क्राइस्ट, जरथुस्त्र, लाओत्सु, नानक, कबीर, पलटू, फरीद। सदियों में ये जलते हुए दीए हुए। मगर फिर हम इनसे चूक क्यों गए? कहां भूल होती रही? इतने दीए जले, अंधेरा कम क्यों नहीं होता? अंधेरा इतना ज्यादा है कि शक होने लगता है कि दीये कभी जले भी कि नहीं! बुद्ध कभी हुए भी कि नहीं! कहीं महावीर और कृष्ण और क्राइस्ट सब कपोल-कल्पनाएं तो नहीं हैं!
और जो लोग ऐसे संदेह करते हैं, उनके संदेह में सत्य का थोड़ा-सा अंश है। क्योंकि अंधेरा इतना ज्यादा है; हम कैसे मानें कि दीये जले और अंधेरा मिटा नहीं। पृथ्वी वैसी की वैसी गर्हित, वैसी की ही वैसी नरक में डूबी है! इतने उबारने वाले हुए, उबरे लोग क्यों नहीं? कहां चूक होती है? कहां मूल में भूल होती है?
चूक यहां होती है कि जब भी कोई जाग्रत पुरुष होता है, कोई दीया जलता है, हम बाह्य आचरण का अनुकरण करने लगते हैं। हम उसी जैसे कपड़े पहन लेते हैं, उसी जैसे उठते-बैठते, वही जो भोजन करता है करने लगते हैं। वह सब सोता है, सोते, सब उठता, तब उठते। हम सोचते हैं, ऐसे बाहर से जब बुद्धि जैसे हो जाएंगे तो भीतर भी बुद्ध जैसे हो जाएंगे। नहीं, ऐसा नहीं है। जीवन का गणित ऐसा नहीं है। भीतर बुद्ध जैसे हो जाओ तो बाहर जरूर बुद्ध जैसे हो जाओगे। लेकिन बाहर बुद्ध जैसे हो जाओ, इससे भीतर के बुद्ध का कोई संबंध नहीं है। तुम्हारे केंद्र को मान कर चलती है तुम्हारी परिधि, लेकिन तुम्हारी परिधि को मान कर तुम्हारा केंद्र नहीं चलता है।
इस मौलिक भूल ने आदमी को खूब भटकाया है। और अब समय है कि हम जागें-- बहुत देर हो गई! शायद बहुत समय भी नहीं बचा है जागने को। अगर यह नींद जारी रही तो यह आदमियत जल्दी ही समाप्त हो जाएगी। क्योंकि अंधों के हाथ में एटम बम, हाइड्रोजन बम हैं। मूर्च्छित लोगों के हाथ में बड़े खतरनाक अस्त्र-शस्त्र हैं।
निक्सन ने अपने संस्मरणों में कहा है कि जब आखिरी घड़ी आ गई और मुझे ऐसा लगा कि अब मुझे राष्ट्रपति का पद छोड़ ही देना पड़ेगा, तो मैं यह बात छिपा नहीं सकता, मैं यह बात कह देना चाहता हूं कि एक क्षण को मेरे मन में भी यह विचार आया था कि क्यों न अपने साथ सारी दुनिया को नष्ट कर दूं! निक्सन के हाथ में ताकत तो थी सारी दुनिया को नष्ट करने की। चाभी तो थी। चाहता तो तीसरा महायुद्ध छेड़ देता। सब भस्मीभूत हो जाता। निक्सन का धन्यवाद करना होगा। निक्सन का सम्मान करना होगा। निक्सन ने अपने पर काबू रखा। मेरे लिए तो हजार वाटरगेट हुए होते तो भी दो कौड़ी के हैं और निक्सन मूल्यवान है। क्योंकि निक्सन ने बड़ा संयम रखा। ऐसी घड़ियों में संयम रखना मुश्किल हो जाता है। जब आदमी खुद डूब रहा हो, तो क्यों न सबको डुबा ले! और निक्सन इस भांति मूढ़ों की दुनिया में कम से कम थोड़ी सी समझ वाला आदमी साबित होता है। छोड़ दिया राष्ट्रपति का पद। हाथ में चाभी थी, घड़ी भर में सारी दुनिया आग की लपटों से डूब जाती!
मूर्च्छित आदमी के हाथ में भयंकर अस्त्र-शस्त्र हैं। इसलिए अब ज्यादा देर भी नहीं है, या तो आदमी को जागना पड़ेगा या मिटना पड़ेगा। अब

हमारे पास समय खोने को है भी नहीं। शायद यह अच्छा है। शायद समय के इस दबाव में, शायद महाविनाश की इस संभावना में एक वरदान छिपा है। शायद आदमी ऐसे ही जाग सकता है। दुर्दिन में ही जागरण होता है। और इससे बड़े दुर्दिन कभी भी न थे।
लेकिन मौलिक भूल से अब सावधान रहना।
बुद्ध कहते हैंः अप्प दीपो भव। अपने दीए बनो, मेरा अनुसरण न करो, मेरी नकल न करो, मेरी कार्बन कापी न बनो। तुम खुद चैतन्य से भरपूर हो, अपने ही चैतन्य को झकझोरो, धूल से झाड़ो! तुम्हारे भीतर दर्पण है, उसे ही पोंछो, निखारो, नहलाओ। तुम भी वही हो जो मैं हूं। मुझ में और तुम में जरा भी भेद नहीं। तुम क्यों मेरे पीछे चलोगे?
यह साध्य है, यह लक्ष्य है कि प्रत्येक व्यक्ति अपना दीया बन जाए। नरेंद्र! और जब मैं कहता हूंः रसमय होओ, रासमय होओ, तो मैं साधन सुझा रहा हूं। मैं यह कह रहा हूं, कैसे अपने दीये बनोगे? रोते-रोते कोई अपना दीया नहीं बना। जो भी अपना दीया बना है, वह एक अपूर्व नाच से भर गया है तब दीया बना है! मुस्कुराहट, नाच, आनंदमग्नता, अस्तित्व के साथ एक रास--रस-विभोर हो जाओ तो अपने दीये बनोगे। जो रसविभोर है, लेकिन जिसने होश का कोई प्रयास नहीं किया है, उस दीए में तेल तो बहुत है लेकिन बाती नहीं है। और न तो अकेली बाती काम की है, न अकेला तेल काम का है।
फिर बाती भी हो, तेल भी हो और जिसने प्रयास नहीं किया, चकमक नहीं रगड़ी... चित चकमक लागै नहीं... जिसने ज्योति नहीं जगाई सोई हुई तो बाती भी पड़ी रहे, तेल भी पड़ा रहे!
तीन चीजें चाहिए।
दीया तो तुम हो! तुम्हारी देह तुम्हारा दीया है! ... तुमने एक मजे की बात देखी? हमारी भाषा अनूठी भाषाओं में एक है। इसमें तेल का अर्थ तेल भी होता है और स्नेह भी होता है। स्नेह का अर्थ प्रेम भी होता है और तेल भी होता है। किसी ज्ञानी ने बात जोड़ दी, मालूम होता है। किसी जानने वाले ने इस शब्द में रहस्य भर दिया। स्नेह के दो अर्थः तेल भी और प्रेम भी। शरीर तो तुम्हारे पास है, यह तो मिट्टी का दीया है। मिट्टी से बना, मिट्टी में गिर जाएगा और मिल जाएगा। प्यारा है! क्योंकि बिना दीये के तेल सम्हालोगे कहां? मिट्टी का है, मिट्टी का धन्यवाद करो, पृथ्वी का गुणगान करो! पृथ्वी की स्तुति करो! लेकिन अकेले दीये का क्या सार है? अकेले दीए को लिए अंधेरे में चलते रहो, क्या होगा?
एक अंधा फकीर विदा हो रहा था अपने गुरु से। रात अंधेरी थी। और उसने कहा कि रात अंधेरी है और जाने में मुझे डर लगता है, जंगल का रास्ता है। मैं अंधा आदमी, रात अंधेरी है! गुरु ने कहा, घबड़ाओ न; मैं एक दीया जला देता हूं। यह दीया ले लो और चल पड़ो। गुरु ने दीया जला दिया, अंधे के हाथ में दे दिया और अंधा जब सीढ़ियां उतर रहा था तब गुरु ने दीया फूंक कर बुझा दिया। अंधे ने कहा, यह भी खूब मजाक हुई! फिर जलाया ही क्यों था जब बुझाना था? गुरु ने कहा, तुम्हें याद दिलाने को। मेरा जलाया हुआ दीया बाहर के अंधेरे में तो काम आ जाएगा, मगर बाहर के अंधेरे को तोड़ना-न तोड़ना सब बराबर है! भीतर के अंधेरे को तोड़ने में मेरा जलाया दीया काम नहीं आएगा। और खतरे वहां हैं। बाहर क्या खतरा है! खतरे तुम्हारे भीतर हैं--वासनाओं का, विचारों का जंगल तुम्हारे भीतर है। हिंसा के, क्रोध के, वैमनस्य के जानवर तुम्हारे भीतर हैं। खतरा उनसे है, मेरे भाई! बाहर के जानवर क्या करेंगे? ज्यादा से ज्यादा देह को छीन लेंगे। सो देह फिर मिल जाएगी। अनंत बार मिली है, अनंत बार मिलती रहेगी। और भीतर मेरा जलाया दीया काम नहीं आ सकता।
इस सदगुरु का दीया का बुझाना और ऐसा कहना और उस अंधे फकीर की भीतर की आंखें खुल गईं। वह हंसा, झुका, चरण छुए और उसने कहा, आपने भी खूब समय पर मुझे जगाया! रात कट गई, सुबह हो गई। अब मैं निश्चिंत जाता हूं। अब न मेरी मृत्यु है, अब न मेरा अंत है, अब न कोई भय है, अब न कोई जंगल है।
एक शराबी एक रात लौटा। जब गया था शराबघर तो लालटेन लेकर गया था। इस डर
से कि लौटते-लौटते देर हो जाएगी और अंधेरी रात है। जब लौटा तो अपनी लालटेन उठाई और चल पड़ा। डगमगाते पैर, रास्ते पर खड़ी भैंस से टकरा गया, ट्रक से

टकरा गया, नाली में गिर पड़ा... बड़ा हैरान! बीच-बीच कभी-कभी झोंका शराब का उतरे थोड़ा तो ख्याल आए कि मामला क्या है, लालटेन मेरे हाथ में है, तो मैं टकराता क्यों हूं? तो रोशनी का हुआ क्या? फिर रोशनी का सार क्या है? अपने घर क्यों नहीं पहुंच पाता हूं? सुबह किसी ने उसे बेहोश वहां पड़ा देखा तो उठाकर घर पहुंचाया। दोपहर तक उसे होश आया।
शराबघर का मालिक दोपहर आया उसकी लालटेन लेकर और शराबी को कहा कि भाई,
यह लालटेन तुम अपनी सम्हालो; रात तुम भूल से तोते का पिंजड़ा उठा कर चल दिए! अब बेहोश आदमी को क्या पता--क्या तोते का पिंजड़ा है, क्या लालटेन? तोते का पिंजड़ा उठाया होगा, समझ में आया कि चलो लालटेन उठा ली; चल पड़ा। और तोते के पिंजड़े से रोशनी नहीं मिलती।
जब तक तुम मूर्च्छित हो, तब तक तुम्हारे हाथों में तोतों के पिंजड़े हैं! फिर तुम उन्हें चाहे वेद कहो, गीता कहो, धम्मपद कहो, कुरान कहो, जो तुम्हें कहना हो, मगर वे तोते के पिंजड़े हैं। तुम्हारी बेहोशी के कारण तुम्हारे हाथ में लालटेन हो ही नहीं सकती। लालटेन हो तो बेहोशी नहीं हो सकती। और फिर कोई तुम्हें दे भी दे... मैं तुम्हें दीया दे भी दूं और समझो कि उस गुरु जैसा बुझाऊं भी न, तो भी कितनी देर तुम उस दीए को सम्हाल सकोगे? और एक कहानी है।
एक झेन फकीर विदा हो रहा है। चलते वक्त उसने कहा कि रात अंधेरी है, क्या आप मुझे लालटेन न देंगे--अपने मित्र को कहा। मित्र ने लालटेन दे दी, वह चल पड़ा। कोई दस कदम ही गया होगा कि किसी से टकरा गया। अंधा है, उसे दिखाई नहीं पड़ता। उसने उस दूसरे आदमी से कहा कि मेरे भाई, क्या तुम भी अंधे हो? यह मेरे हाथ की लालटेन तुम्हें दिखाई नहीं पड़ती? मैं तो अंधा हूं, मुझे दिखाई नहीं पड़ता कुछ--इसीलिए तो लालटेन लेकर चला कि कम से कम दूसरे को तो दिखाई पड़ेगी। कम से कम दूसरा तो मुझसे टकराने से बच जाएगा। तुम्हें क्या हुआ? वह आदमी हंसने लगा। उसने कहा, मैं अंधा नहीं हूं, लेकिन तुम्हारी लालटेन बुझ गई है!
अब अंधे आदमी को कैसे पता चले कि उसकी लालटेन बुझ गई है! तुम्हारे हाथ
की गीता कब की बुझ गई है, तुम्हें पता है! तुम्हारे हाथ की कुरान कब की बुझ गई है, तुम्हें पता है! काश, तुम्हें इतना ही पता होता तो कुरान और गीता की जरूरत क्या होती? तुम्हारे भीतर का दीया ही नहीं जल रहा है।
मिट्टी की देह है, यह दीया है। इसमें प्रेम का रस अगर भरा हो, तो तेल है। इसलिए मैं कहता हूंः रसमय होओ, रासमय होओ। नाचो, गाओ, उत्सव मनाओ! क्योंकि ऐसे ही तुम्हारे पोर-पोर से रस झरेगा और तुम्हारा दीया तेल से भर जाएगा। और फिर तुमसे कहता हूं कि ध्यान में चकमक को रगड़ो। होश को जगाओ। जाग कर देखो विचारों को, जाग कर देखो वासनाओं को--छोड़ने को तो मैं कहता ही नहीं। जो तुमसे छोड़ने को कहे, समझना कि तुम जैसा ही अंधा है। अंधेरे को कोई छोड़ने को के, तो समझ लेना कि अंधा है। अंधेरा छोड़ा नहीं जाता, बस दीया जल जाए, अंधेरा छूट जाता है।
इसलिए मैं तुमसे त्याग करने को नहीं कहता; त्याग होना चाहिए। अपने से होना चाहिए। होगा ही। अनिवार्य है। अपरिहार्य है। एक बार तुम्हारे भीतर बोध जग जाए, त्याग तो होगा ही। बोध जग जाने पर कौन कंकड़-पत्थरों को पकड़े बैठा रहेगा! बोध जग जाने पर कौन कचरे को इकट्ठा करेगा! बोध जग जाने पर कौन पकड़ेगा संसार को! रहेगा भी संसार में तो कमलवत। रहेगा पानी में और पानी छुएगा नहीं।
इसलिए मैं तुमसे त्याग करने को नहीं कहता, छोड़ने को नहीं कहता।
जो तुमसे कहते हैं, वे तुम जैसे अंधे हैं। और तुम्हें उनकी बात जंचती है, क्योंकि अंधों को अंधों की भाषा समझ में आती है। गूंगों को गूंगों की भाषा समझ में आती है। बहरे एक-दूसरे को इशारा कर लेते हैं। कठिनाई तो तब होती है जब आंख वाला तुम्हारे बीच होता है, क्योंकि वह कुछ और भाषा बोलता है। किसी और लोक की भाषा बोलता है। ऐसे तो तुम्हारी ही भाषा बोलता है, लेकिन उसके अर्थ इतने भिन्न होते हैं कि तुम चूक-चूक जाते हो। या तुम अपने अर्थ समझ लेते हो जो कि उसके अर्थ नहीं हैं। और तुम्हारे अर्थ अनर्थ कर देते हैं।

दीया मौजूद है, प्रेम तुम्हारे रोएं-रोएं में भरा है, लेकिन सदियों से धर्म तुम्हें प्रेम के विपरीत सिखा रहे हैं। प्रेम का शत्रु बना रहे हैं।
सदियों से धर्मों ने जीवन का विरोध किया है, निषेध किया है। उन्होंने तुम्हारे प्रेम के स्रोत अवरुद्ध कर दिए हैं। उन्होंने तुम्हारे प्रेम की इतनी निंदा की है कि तुम सूख गए हो। दीया ही रह गया, झरने बंद हैं।
मैं चाहता हूं तुम्हारे झरने फिर खुलें।
इसलिए मैं तुमसे फिर प्रेम की बात कर रहा हूं। प्रेम के बिना तुम कहीं
भी नहीं पहुंच सकोगे। प्रेम के बिना कोई भक्ति नहीं है और प्रेम के बिना कोई भगवान नहीं है। प्रेम ही प्रार्थना बनेगा और प्रार्थना ही अंतिम अवस्था में परमात्मा का अनुभव बनती है। इसीलिए प्रेम को पोर-पोर, रोएं- रोएं से बहने दो; भरने दो तुम्हारे हृदय के दीए को। प्रेम से भर जाओ! इसलिए कहता हूंः समय होओ, रसमय होओ। इसलिए निरंतर दोहराता हूंः रसो वै सः। वह परमात्मा रसरूप है, तुम भी रसरूप होओ। इसलिए कहता हूंः जीवन से भागो मत, जीवन के अवसर का उपयोग कर लो।
नहीं कहता तुमसेः पत्नी को छोड़ो, बल्कि कहता हूंः इतना प्रेम करो कि पत्नी में परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। नहीं कहताः पति को छोड़ो; इतना प्रेम करो कि पति में परमात्मा दिखाई पड़ने लगे। प्रेम जैसे गहरा होता है, वहीं परमात्मा की झलक आनी शुरू हो जाती है। है ही नहीं परमात्मा कुछ और सिवाय प्रेम की गहरी झलक के, प्रेम की गहरी लपट के। बच्चों को छोड़ कर मत भागो! उनकी आंखों में झांको! वहां अभी परमात्मा ज्यादा ताजा है। अभी वहां धूल नहीं जमी। अभी बच्चे सूख नहीं गए हैं; अभी रसपूर्ण हैं। उनसे कुछ सीखो! बच्चों को सिखाओ ही मत... क्योंकि तुम सिखाओगे क्या? सिखाओगे धन-पैसा जोड़ना, पद-प्रतिष्ठा के लिए लड़ना। सिखाओगे ईर्ष्या, वैमनस्य। सिखाओगे गणित, हिसाब, चालबाजियां। बच्चे को तुम सिखाओगे क्या?
मुल्ला नसरुद्दीन ने अपने बच्चे से कहा कि बेटा, यह सीढ़ी रखी है, इस पर
चढ़ जा! उसने कहा, क्यों पाप? नसरुद्दीन ने कहा, कुछ पाठ पढ़ाना है, बेटा! किस बात का पाठ, बेटे ने पूछा। नसरुद्दीन ने कहा, राजनीति का पाठ पढ़ाना है। मैं राजनीति हूं, चाहता हूं तू भी अपनी जिंदगी में राजनीतिक बन। क्योंकि जो मजा राजनीति में है, वह मजा कहीं भी नहीं। दिल्ली पहुंच कर रहना--यह लक्ष्य! कोई चीज विघ्न-बाधा न बने। एक पाठ तुझे देता हूं। यह दिल्ली पहुंचने में काम आएगा।
बेटा सीढ़ियां चढ़ गया। कोई दस फीट ऊपर पहुंच गया तब नसरुद्दीन ने कहा,
आ, छलांग लगा ले! दोनों हाथ नसरुद्दीन ने फैलाए। बेटा थोड़ा डरा! दस फीट ऊंचाई से कूदना, कहीं चूक जाए, इधर-उधर हो जाए, हाथ पैर टूट जाएं! नसरुद्दीन ने कहा, अरे, डरता क्या? मैं तेरा बाप तुझे सम्हालने को तत्पर खड़ा हुआ हूं। कूद जा! कूद जा, बेटा, श्रद्धा रख!
और जब बाप ने बहुत कहा तो बेटा कूद गया। और जैसे ही बेटा कूदा, नसरुद्दीन दो कदम हट कर खड़ा हो गया। धड़ाम से बेटा नीचे गिरा, घुटने छिल गए, रोने लगा; नसरुद्दीन ने कहा, चुप हो, पहले पाठ सीख ले! उसके बेटे ने कहा, यह किस तरह का पाठ है? आपने मुझे धोखा दिया। कहा सम्हालेंगे, सम्हाला नहीं। नसरुद्दीन ने कहा, यही पाठ दे रहा हूं, बेटा, कि राजनीति में अपने बाप का भी भरोसा मत करना। इसको गांठ बांध ले। अगर दिल्ली पहुंचना है, तो ख्याल रखना, राजनीति में अपने बाप का भी भरोसा मत करना। भरोसा ही मत करना! संदेह को सजग रखना।
तुम सिखाओगे क्या बच्चों को? वही सिखाओगे जो तुम जानते हो। तुम जानते क्या हो? तुम्हारे अनुभव की सार-संपदा क्या है? कुछ भी तो नहीं! एक रिक्तता हो तुम। एक अर्थहीनता हो तुम। विषाद से भरी हैं तुम्हारी आंखें। थोथेपन से भरा है तुम्हारा हृदय। न जीवन में कुछ महान जाना, न विराट पहचाना। क्षुद्र ही तुम्हारा जीवन रहा है। समुद्र के किनारे शंख-सीप बीनते रहे। डुबकी तो मारी नहीं समुद्र में भय के कारण। मोती तो तलाशे नहीं। अपने को भरमाए रखा किनारे पर ही, नाव कभी छोड़ी नहीं। क्योंकि तूफान के भय थे और दूसरे किनारे का कोई भरोसा न था। इसी कीचड़ में रहे; सिखाओगे क्या? बच्चे से कुछ सीखो!

अच्छी दुनिया होगी तो हम बच्चे को सिखाएंगे कम, उससे सीखेंगे ज्यादा।
और जो सिखाएंगे, वे उसे सजग करके सिखाएंगे कि ये दो कौड़ी की बातें हैं-- कामचलाऊ हैं, उपयोगी हैं तेरी जिंदगी में, रोटी-रोजी कमाने में सहयोगी होंगी, इनसे आजीविका मिल जाएगी, इनसे जीवन नहीं मिलता। और हम बच्चे से सीखेंगे जीवन। उसकी आंखों में झलकता हुआ प्रेम, आश्चर्यचकित विमुग्ध भाव। बच्चे की अवाक हो जाने की क्षमता। छोटी-छोटी चीजों से ध्यानमग्न हो जाने की कला। एक तितली के पीछे ही दौड़ पड़ा तो सारा जगत भूल जाता है, ऐसा उसका चित्त एकाग्र हो जाता है। एक फूल को ही देखता है तो ठिठका रह जाता है। भरोसा नहीं आता। इतना सौंदर्य भी इस जगत में हो सकता है! इसीलिए तो बच्चे पूछे जाते हैं, प्रश्नों पर प्रश्न पूछे जाते हैं; थका देंगे तुम्हें, इतने प्रश्न पूछते हैं। उनके प्रश्नों का कोई अंत नहीं। क्योंकि उनकी जिज्ञासा का कोई अंत नहीं। उनकी मुमुक्षा का कोई अंत नहीं। जानने की कैसी अभीप्सा है! अगर हम में समझ हो, तो हम बच्चों से उनकी सरलता सीखेंगे, उनका प्रेम सीखेंगे, उनका निर्दोष-भाव सीखेंगे, उनकी आश्चर्यविमुग्ध होने की क्षमता और पात्रता सीखेंगे। तब शायद तुम्हारा हृदय भरने लगे एक नये रस से। तुम भी शायद नाच सको छोटे बच्चों के साथ। तुम भी शायद खेल सको छोटे बच्चों की भांति। तुम्हारे जीवन में भी एक लीला प्रकट हो। परमेश्वर लीलामय है, तुम भी थोड़े लीलामय हो जाओ तो उसकी भाषा समझ में आए, उससे सेतु बने, उससे थोड़ा संबंध जुड़े, उससे थोड़ी गांठ बंधे।
इसलिए कहता हूं, रसमय होओ। रसमय होओ अर्थात प्रेममय होओ; प्रीतिमय होओ। इसलिए कहता हूं, रासमय होओ। चांद-तारे नाच रहे हैं, पशु-पक्षी नाच रहे हैं, पृथ्वी, ग्रह-उपग्रह नाच रहे हैं, सारा अस्तित्व नाच रहा है। एक तुम क्यों खड़े हो उदास? क्यों अलग-थलग? क्यों अपने को अजनबी बना रखा है? क्यों तोड़ लिया है अपने को इस विराट अस्तित्व से? किस अहंकार में अकड़े हो? कैसी जड़ता? झुको! अर्पित होओ! अस्तित्व से गलबहियां लो! अस्तित्व को आलिंगन करो! नाचो इसके साथ!
जब मेघ घिरें और मोर नाचने लगे, तब बैठ कर अखबार मत पढ़ते रहो! और जब दूर जंगल में कोई चरवाहा अलगोजा बजाने लगे, तो तुम्हारे भीतर कुछ नहीं बजता? कुछ बजता ही नहीं! तुम जीवित हो या मर गए हो! यह कैसा जीवन है? जब कोई तार छेड़ देता है सितार के, तुम्हारी हृदयतंत्री में कुछ नहीं छिड़ता? तुम वैसे ही खड़े रह जाते हो? रूखे-सूखे; दूर-दूर।
थोड़े काव्यमय होओ, थोड़े संगीतमय होओ, थोड़े उत्सवमय होओ। इसे मैं धर्म कहता हूं। धर्म की मेरी परिभाषा हैः उत्सव। धर्म की मेरी परिभाषा हैः आनंद की क्षमता। मैं नहीं कहता कि धर्म की परिभाषा में ईश्वर की मान्यता जरूरी है। नहीं है, बिल्कुल जरूरी नहीं है। ईश्वर तो धर्म का अंतिम अनुभव है; उसको हम प्राथमिक जरूरत कैसे बना सकते हैं? वह तो निष्कर्ष है। और लोग ऐसे अजीब हैं कि निष्कर्ष को पहले ही कहते हैं मानो। कहते हैं, ईश्वर को मान कर चलो तो तुम धार्मिक हो। मैं कता हूं; तुम धार्मिक हो। मैं कहता हूंः तुम धार्मिक होओ तो एक दिन ईश्वर प्रकट होगा और तुम्हें उसे मानना ही होगा। मैं कहता हूं, नास्तिक हो, चलेगा। चल पड़ो!
आस्तिक आएं, नास्तिक आएं; मानने वाले आएं, न मानने वाले आएं; मानने न मानने से कोई भेद नहीं पड़ता, अप्रासांगिक है यह बात यह तो अंतिम निष्कर्ष में जब प्रकट होता है विराट, तो क्या करोगे? उस वक्त अपनी आस्तिकता बचाओगे? उस वक्त अपने क्षुद्र कोने-कांतर में छिपे हुए व्यर्थ के सिद्धांत बचाओगे? जब आकाश तुम पर टूट पड़ेगा, तो तुम्हारे आंगन को कहां बचाओगे? जब सागर तुम्हें खोजता चला आएगा, तो अपनी बूंद को बचकर भागोगे कहां! नहीं कोई भाग सकता है फिर।
लेकिन लोग कहते हैंः पहले ईश्वर को मानो!
धर्म की परिभाषा में मैं ईश्वर की कोई जगह ही नहीं मानता। ईश्वर हो या
न हो, इससे कुछ लेना-देना नहीं है, रस हो! रस हो तो ईश्वर एक दिन होकर रहेगा। रस की धारा एक दिन उसके सागर तक पहुंच ही जाती है। खूब रस हो। इसलिए मैं एक जीवन-विधायक धर्म तुम्हें दे रहा हूं। यह जीवन-निषेधक धर्म नहीं है। इसमें उपवास पर जोर नहीं है, इसमें उत्सव पर जोर है। हां,

अगर तुम्हें उपवास में भी आनंद आता हो, तो मुझे कोई एतराज नहीं। अगर उपवास भी तुम्हारा उत्सव बन सकता है, अगर उपवास तुम्हें नाच देता हो, तो मुझे स्वीकार है। समग्ररूपेण स्वीकार है। लेकिन उपवास अगर तुम्हें सताता हो और सताने को तुम धर्म समझते होओ तो तुम बड़ी भूल में हो। परमात्मा पागल नहीं है और परमात्मा कोई दुष्ट नहीं है और परमात्मा को आततायी नहीं है कि तुम अपने को सताओगे तो वह प्रसन्न होगा। तुम्हारी प्रसन्नता में प्रसन्न होगा। तुम्हारे अहोभाव में आह्लादित होगा। यह अस्तित्व जब तुम रस से भरते हो तो खूब आह्लादित होता है।
अभी तो वैज्ञानिक इन निष्कर्षों पर पहुंचे हैं कि अगर कोई आनंदमग्न होकर वृक्षों के पास बांसुरी बजाए या सितार छेड़ दे, तो वृक्ष में ज्यादा फूल आ जाते हैं। ज्यादा फूल! फल जल्दी लग जाते हैं--समय के पहले--और जल्दी पक जाते हैं और ज्यादा सुस्वादु होते हैं। अब यह वैज्ञानिक शोध है। यह मैं कोई कविता की और कवियों की बात नहीं कर रहा हूं। अब तो वैज्ञानिक समर्थन बड़े प्रमाण में मिल रहा है। जब तुम गाय को दुह रहे हो, अगर उसके आसपास मधुर संगीत बजाया जाए, ज्यादा दूध दे देती है। दुनिया के अलग-अलग कोनों में प्रयोग किए जा रहे हैं।
एक साथ बीज बोए गए। आधे खेत को संगीत सुनाया गया, आधे खेत को संगीत नहीं सुनाया गया। दोनों को बराबर खाद दी गई, बराबर पानी, बराबर धूप, सब तरह से सब बराबर। सिर्फ एक भेद--आधे को संगीत सुनाया गया, आधे को संगीत नहीं। जिस हिस्से को संगीत सुनाया गया, उसके पौधे दुगुने बड़े हुए और उसके फल दुगुने बड़े हुए। और जल्दी पौधे बढ़े और जल्दी फल आए। ज्यादा फल आए। और ज्यादा रसपूर्ण थे। पौधे भी संगीत की भाषा समझते हैं। तो परमात्मा न समझेगा! पत्थर समझते हैं। तो परमात्मा न समझेगा!
तुम अगर रसमय हो तो परमात्मा तुम्हारी तरफ बहने लगता है। तुम में असमय आने शुरू हो जाएंगे, तुम्हारे जीवन में नये-नये पत्ते ऊग आएंगे, खूब हरियाली हो जाएगी। फल लगेंगे, फूल लगेंगे। एक तृप्ती तुम्हें घेर लेगी। एक परितोष तुम्हारे चारों तरफ छा जाएगा। तुम पहली दफा जानोगे संतोष का अर्थ। सुना तो तुमने बहुत है, मगर वह सब बकवास है जो तुमने सुना है। जिसको तुम संतोष कहते हो, वह संतोष नहीं है; वह तो मन को समझा लेना है। वह तो वैसे ही है जैसे लोमड़ी नहीं पहुंच सकी अंगूरों तक तो कहती हुई चली गई कि अंगूर खट्टे हैं। तुम्हारा संतोष बस ऐसा ही है जैसे, अंगूर खट्टे हैं! यह कोई संतोष नहीं है।
चाहते तो तुम भी हो कि धन बहुत होना, मगर नहीं है। चेष्टा भी की थी, मगर नहीं पा सके। अकेले ही थोड़े धन पाने चले हो, और करोड़ों लोग लगे हैं इस धन की दौड़ में। यह कोई सामान्य झंझट नहीं है। बड़ी स्पर्धा है। गलाघोंट प्रतियोगिता है। तुम हार गए, धक्के दे निकाल दिए गए, चारों खाने चित कर दिए गए। चारों-खाने चित पड़े हो और कह रहे होः संतोष है! हमें चाहिए ही नहीं। हमें कुछ नहीं चाहिए। हम तो अपनी धूल में बड़े मस्त हैं। हमें सिंहासन चाहिए ही नहीं। यह सिर्फ अपने को सांत्वना देना है, यह संतोष नहीं है। तुम मुर्दा हो, तुम्हारे साथ बड़े-बड़े सिद्धांत तक मुर्दा हो गए। तुम्हारे हाथ में सोना पड़ जाए तो मिट्टी हो जाता है। तुम भी गजब के जादूगर हो! संतोष तो तब है जब तुम्हारे भीतर फूल लगें, फल लगें; तुम्हारा जीवन अभिव्यक्त हो, अपनी समग्र संभावनाओं को प्रकट करने में समर्थ हो। तुम जो गीत गाने आए थे, गा सको; तुम जो नृत्य नाचने आए थे, नाच सको। तब एक संतोष उपजता है। लाना नहीं पड़ता, थोपना नहीं पड़ता, आरोपण नहीं करना होता। उठना है तुम्हारे भीतर। जागता है तुम्हारे भीतर। घेर लेता है तुम्हें। बह उठता है तुम्हारे चारों तरफ। तुम उसमें डूब जाते हो। उस संतोष को पाने के लिए जीवन को रसमय बनाना होगा, रासमय बनाना होगा। छोड़ो न कोई भी अवसर नृत्य का, गीत का, रस का, आनंद का। इसलिए कहता हूंः रसमय होओ, रासमय होओ। यह दूसरा कदम हुआ। तुम्हारे भीतर प्रीति भर जाए, तो तुम तेल से भर गए।
फिर तीसरा उपाय, ध्यान। तीसरा चरण। देह तो मिली प्रकृति से। प्रेम को तुम्हें सीखना होगा कला की तरह। और फिर ध्यान का विज्ञान है। कैसे चकमक को रगड़ो? कैसे चकमक की रगड़ से ज्योति पैदा हो जाए, दीया जल उठे?

साक्षी उसकी प्रक्रिया है। विचार को देखो, वासना को देखो, कामना को देखो--लड़ो मत, सिर्फ देखो! शांत भाव से बैठ कर देखते रहो। देखते-देखते-- सिर्फ देखते-देखते सिर्फ साक्षी बनते-बनते--ऐसी अग्नि प्रज्वलित होती है कि भभक उठता है दीया।
बुद्ध ने कहा साध्य, मैं तुमसे कह रहा हूं साधन। और बिना साधन के साध्य की बात का कोई अर्थ नहीं है। दोहराते रहोः अप्प दीपो भव, अपने दीये खुद बनो, दोहराते रहो; लिख लो छाती परः अपने दीये खुद बनो, एक दीया भी बना लो, छपवा लो, गुदवा लो, मगर उस दीये से रोशनी नहीं होगी। अप्प दीपो भव दोहराते रहो, दोहराने से कुछ हल नहीं होने वाला है।

कल की बातें भूल भी जाओ आज का जश्न मनाओ
कल की बातें दुख का कारण, कल की बातें जहर का प्याला
कल की बातों के चक्कर ने अनहोनी के फेर में डाला
अनहोनी के फेर से निकलो गए समय पर मत पछताओ
कल की बातें भूल भी जाओ आज का जश्न मनाओ

कल जो रात था सपना देखा उसे न समझो जीवन मती
आज के सुंदर सपनों से तुम करियो निसदिन प्रीत
कल के झूठे सपनों में मत खोकर उम्र गंवाओ
कल की बातें भूल भी जाओ आज का जश्न मनाओ

आज की माया आज की बातें जीवन बगिया की सौगात
आज के दुखड़े आज रहेंगे कल को खो जाएंगे मात
आज अटल है आज के काम को आज ही तुम निबटाओ
कल की बातें भूल भी जाओ, आज का जश्न मनाओ
चित्त, मन कल में जीता है। बीत गया कल, उसमें और आने वाला कल, उसमें। ये
दो तुम्हारे भीतर साक्षी को जगने नहीं देते, ये दो कल, इन दो कलों के पाट में। तुम पिसते हो। न तो पीछे के कल को बहुत मूल्य दो, न आने वाले कल को बहुत मूल्य दो, यह वर्तमान का क्षण अभी और यहीं, झकझोर कर अपने को जगा लो। एक सूफी फकीर अपने शिष्यों को कहा करता थाः चटकाओ हाथ, मारो चांटा चेहरे पर और जागो अभी! जैसे सोते से उठता हुआ आदमी अंगड़ाई लेता है, अंगुलियां चटकाता... वह फकीर ठीक कहता थाः चटकाओ हाथ, लो अंगड़ाई, न चले इतने से काम तो मारो एक चांटा भी अपने चेहरे पर, झकझोरो और जागो! तो फिर न कहोगे कि चित चकमक लागै नहीं। लग ही जाएगी; फिर कैसे कहोगे? फिर चकमक रगड़ खा गई! जो दो चक्कियां तुम्हें पीसती थीं, वे ही दो चक्कियां चकमक बन जाती हैं। तुम्हारे साक्षी बनते ही यह क्रांति घटती है। जिन चक्कियों में लोग पिस रहे हैं, उन्हें चक्कियों को रगड़ कर लोग बुद्ध हो गए हैं। चक्कियां तो वही हैं, अवसर तो वही है, जीवन वही है, सिर्फ उनके उपयोग करने के ढंग अलग-अलग।

जाओ नया सवेरा लाओ

अंधियारे में कब तक बैठे मन बहलाओगे
कब तक सूखे पत्तों से ये महल सजाओगे
पतझड़ आखिर बीतेगी सावन रुत आएगी
जीवन की शाखों पर कोयल झूम के गाएगी

तुम भी अपने सोग मिटाओ
चुप के सब बंधन बिसराओ
गाओ गीत मिलन के गाओ
जाओ नया सवेरा लाओ

कीरूखीुत्त ने बेदर्द किया है तुमको

सूखे पत्ते के संग इसने जर्द किया है तुमको ये जर्दी मिट जाएगी जब फूल खिलेंगे हर सू
फुलवारी में नाचेगी फिर मस्त मनोहर खुश्बू

छोड़ो भी वो रात की बातें
भूल भी जाओ जलती रातें
प्रेम अमर की जोत जगाओ
जाओ नया सवेरा लाओ

आत्मा को दीया तो बनाना है लेकिन प्रेम का दीया बनाना है।

प्रेम अमर की जोत जगाओ
जाओ नया सवेरा लाओ
और जाना कहां है? तुम प्रेम की ज्योति जगाओ, सवेरा अपने-आप चला जाता है, तुम्हें तलाशता चला आता है।
नरेंद्र, बुद्ध साध्य की बात कर रहे हैं, मैं साधन की। दोनों में एक ही सत्य की अभिव्यक्ति है। लेकिन भिन्न-भिन्न आयामों से। और बिना साधन के साध्य का कोई अर्थ नहीं है। साधन है तो साध्य तक तो पहुंच जाओगे। मार्ग है तो मंजिल तक पहुंच जाओगे। मंजिल की बात चलती रहे और मार्ग का कुछ पता न हो, तो बस बात ही बात हाथ में रह जाएगी, पहुंचोगे नहीं। इसलिए मंजिल को भूल भी जाओ तो चलेगा, मार्ग को मत भूलना। साध्य विस्मृत करो, क्षमा हो सकता है। साधन को विस्मृत मत करना!
इसलिए धर्म की मौलिक आधारशिला साधन है। इसलिए तो धर्म को साधना कहते हैं। साधना यानी साधन। यदि साधन सम्यकरूपेण हमारे हाथ में है, तो साध्य तो फलेगा--फलेगा ही! उसके फलने, न फलने की तुम्हें चिंता करने की जरूरत ही नहीं है। अगर तुमने खाद ठीक दिया और पानी समय पर दिया और धूप पहुंचने दी और बीज ऋतु आने पर बोए, तो ठीक समय पर अंकुर निकल ही आएंगे। फिर बागुड़ लगा देना, ताकि कोई कोमल अंकुरों को नष्ट न कर दे। और बागुड़ भी थोड़े दिन के लिए। जैसे ही वृक्ष बड़े हो जाएंगे, अपनी रक्षा करने में खुद समर्थ हो जाएंगे, फिर बागुड़ भी हटा लेना। साधन सम्यक हो, नये-नये अंकुर जब जीवन में तुम्हारे चेतना के उठें, तो सुरक्षा करना।
संन्यास दोनों ही काम करने में समर्थ है। संन्यास तुम्हें साधन देता
है कि क्या करो और संन्यास तुम्हें उपाय देता कि कैसे जब नये अंकुर आएं तो उन्हें बचाओ। फिर एक घड़ी आती है जब न बचाने की कोई जरूरत रह जाती है, न खाद-पानी की कोई चिंता लेनी पड़ती है, वृक्ष बड़ा हो गया, उसकी जड़ें दूर पाताल तक पहुंच गई, उसकी शाखाएं चांद-तारों से बात करने लगीं, अब वह अपने ही बल पर काफी है। अब तुम्हें उसकी कोई चिंता नहीं लेनी पड़ती। अब तुम निश्चिंत बैठ सकते हो। इस अवस्था का नाम ही बुद्धत्व है। जब साधना की कोई जरूरत न रही और तुम सिद्धावस्था को उपलब्ध हो गए।
बनना है, अपने दीए जरूर बनना है। लेकिन कैसे बनोगे? प्रीति का जितना संग्रह कर सको, उतना शुभ! और ध्यान की चकमक को जितना रगड़ सको, उतना कल्याणकारी!

दूसरा प्रश्नः भगवान, मैं वर्षों से संतों की वाणी के अध्ययन-मनन में लीन रहा हूं, पर अभी तक कहीं पहुंचा नहीं। और संत तो कहते हैं कि सत्संग क्षण में पहुंचा देता है।

हरिदेव, सत्संग क्षण में पहुंचा देता है, संत ठीक कहते हैं। मगर अध्ययन-मनन सत्संग है, यह किस संत ने तुमसे कहा है? अध्ययन-मनन तो सत्संग से बचने का उपाय है। अध्ययन-मनन का अर्थ है, किताब से ही काम चला लेंगे, जीवित गुरु के पास क्यों जाएं?
किताब के साथ एक सुविधा है, जब दिल हो खोलो, जब दिल हो बंद कर दो। कभी गुस्सा आ जाए, फेंक दो। कभी पूजा आ जाए, फूल चढ़ा दो। कभी मन न हो तो महीनों न

खोलो--धूल जमने दो। कभी मन हो जाए तो रोज-रोज खोल कर बैठो। किताब तुम्हारे हाथ में है, तुम किताब के हाथ में नहीं। तुम जो चाहो किताब के साथ कर सकते हो, किताब तुम्हारे साथ क्या कर सकती है?
फिर जैसे अर्थ तुम्हें लगाने हों किताब के वैसे अर्थ लगाओ। कौन रोक सकता है? किताब यह तो नहीं कह सकती कि ठहरो भाई, यह मेरा अर्थ नहीं। किताब तो कुछ बोल नहीं सकती। किताब है क्या? कागज पर खींची गई स्याही की लकीरें। अर्थ कौन देगा? अर्थ तो तुम दोगे न!
समझो।
तुम्हारी गीता रखी है और एक चींटा गीता पर चल रहा है। उसको तो कुछ गीता का पता नहीं चलेगा कि कृष्ण भगवान अर्जुन से क्या कह रहे हैं! वहीं- वहीं चल रहा है। और तुम उसे फेंक दो वहां से, हटा दो, तो चींटे बड़े जिद्दी होते हैं, हठयोगी होते हैं, जहां से भगाओ वहीं लौट कर वापस आते हैं, तो तुम यह मत समझना कि इसका बड़ा लगाव, बड़ी आसक्ति है गीता से। कि देखो मैं फेंक देता हूं, यह वापस वहीं लौट आता है।... वहीं भगवान उवाच के आस-पास चक्कर मारता है। मगर चींटे को कुछ पता नहीं कि यहां क्या है। उसे तो यह भी पता नहीं कि यह किताब है। मगर चींटे पर मत हंसो। अगर तुम अरबी नहीं जानते तो कुरान तुम्हारे लिए क्या है? और अगर तुम संस्कृत नहीं जानते तो उपनिषद तुम्हारे लिए क्या हैं? कुछ अर्थ उनमें नहीं रह गया! अर्थ तो हम डालते हैं।
फिर तुम जब पढ़ते हो कोई किताब, तो क्या पढ़ते हो? क्या तुम वही पढ़ सकते
हो जो कहा गया है? असंभव! गीता कही गई पांच हजार साल पहले। पांच हजार साल में सब कुछ बदल गया। सब कुछ बदल गया! कुछ भी वही नहीं है। पांच हजार साल पहले जिनको गीता कही गई थी, वे लोग और थे, उनके सोचने-समझने के, जानने-मानने के ढंग और थे, उनके जीवन की शैली और थी। तुम्हारी जीवन-शैली से उस जीवनशैली का कोई नाता नहीं है।
क्या तुम सोचते हो, आज तुम्हें कृष्ण मिल जाएं तो फिर वही गीता कहेंगे, कि हे अर्जुन! तूने गांडीव क्यों छोड़ दिया? पहले तो वह भी चौंकेंगे कि गांडीव है कहां, छोड़ोगे कहां से! थोड़ा चौंकेंगे कृष्ण भी कि रथ कहां है? हाथी-घोड़े कहां हैं? कौरव-पांडव कहां हैं? और अर्जुन, कान में कलम लगाए स्टेशन पर टिकटें बांट रहे हैं! कि किसी दफ्तर में फाइलों में आंखें गड़ाए बार-बार नाक पर चश्मा सरका रहे हैं! ऐसे अर्जुन को देख कर कृष्ण भी थोड़े हैरान होंगे कि हे अर्जुन! तुझे क्या हो गया? नाक पर चश्मा! अरे, क्षत्रिय होकर! स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः! यह तू क्या कर रहा है? परधर्म? नाक पर चश्मा सरका रहा है? कान में कलम लगाए बैठा है? तेरे स्वधर्म का क्या हुआ? और अर्जुन भी कहेंगे, महाराज, होश में आओ! कहां की बातें कर रहे हो! किन दिनों की बातें कर रहे हो!
पांच हजार साल में भाषा के भी अर्थ बदल गए। शब्द भी बड़ी यात्रा करते हैं। सम्मानित शब्द अपमानित हो जाते हैं, अपमानित शब्द सम्मानित हो जाते हैं। घूरों के भी दिन फिरते हैं! शब्दों में नये-नये अर्थ लगते जाते हैं जैसे समय बढ़ता है। पुराने अर्थ धीरे-धीरे खो जाते हैं। शब्दों का कोई अपना अर्थ तो होता नहीं, समय के अनुकूल शब्दों को अर्थ लेने पड़ते हैं।
तुम क्या अर्थ लगाओगे गीता जब तुम पढ़ोगे? हरिदेव, अध्ययन-मनन में क्या करोगे? तुम अपने अर्थ बिठाओगे, जो वहां नहीं हैं। और तुम दूसरे अर्थ बिठा भी नहीं सकते, क्योंकि वे दूसरे अर्थ तुम में नहीं हैं। कृष्ण को समझना हो तो कृष्ण जैसी चेतना चाहिए। उससे कम में काम नहीं चलेगा। बुद्ध को समझना हो तो बुद्ध जैसी चेतना चाहिए। उससे कम में काम नहीं चलेगा। बुद्ध के वचनों में बुद्ध नहीं हैं, बुद्ध के चैतन्य में बुद्ध हैं। उस चैतन्य से शब्द निकले, तो उनमें बुद्ध की ध्वनि है। लेकिन तुम तक जब पहुंचेंगे तो उनकी बुद्ध-ध्वनि तो खो जाएगी, तुम्हारी ध्वनि समाविष्ट हो जाएगी। बुद्ध ने जो कहा था, वह तुम नहीं सुनोगे। तुम जो सुन सकते हो, वही सुनोगे। तुम जो अर्थ पकड़ सकते हो, वही पकड़ोगे।
अध्ययन-मनन से सत्य तक नहीं पहुंचा जाता। हां, पंडित हो सकते हो। प्रज्ञावान नहीं। बौद्धिकता आ जाएगी, बुद्धत्व नहीं। खूब जानकारी बढ़

जाएगी, मगर ज्ञान की तो बूंद भी न आएगी। किताबें तो ऐसी हैं जैसे सूखे हुए फूल। न अब उनमें गंध है, न उनमें रस है। सूखे फूल शायद आदमियों को धोखा दे दें, लेकिन सूखे फूल रख दो तो मधुमक्खियां उनके ऊपर भिन-भिन करके नाचेंगी नहीं। भंवरे आकर गीत न गाएंगे। तुम भंवरों को धोखा नहीं दे सकते।
सम्राट सोलोमन के जीवन में यह कहानी है। सोलोमन दुनिया के थोड़े से ज्ञानियों में एक ज्ञानी हुआ। जनक जैसा आदमी रहा होगा। सिंहासन पर बैठे- बैठे परम बुद्धत्व को उपलब्ध हुआ। उसकी बड़ी ख्याति फैल गई थी--आज भी मिटी नहीं है। और ऐसा ही नहीं है कि... सोलोमन तो यहूदी था... यहूदियों में ही उसकी ख्याति रही हो, उसकी ख्याति दूर-दिगंत तक फैल गई है। दुनिया के कोने- कोने में हर जाति में इस तरह की कहावतें हैं--भारत में भी। लोग, अगर कोई बहुत बुद्धिमानी बताता हो तो उससे कहते हैंः बड़े सुलेमान बने हैं! वह सुलेमान जो कह रहा है, वह सोलोमन की तरफ इशारा कर रहा है। उसे पता भी न हो कि उसकी भाषा में आते-आते सोलोमन सुलेमान हो गए। मगर वह भी कहता है कि बड़े सुलेमान के बच्चे! न मालूम क्या समझ रखा है अपने को?
सोलोमन की बड़ी ख्याति थी, उसकी बुद्धिमत्ता की। इथोपिया की रानी उसकी परीक्षा लेने गई। उसने अपने दोनों हाथों में फूल ले रखे थे। उसने बड़े-बड़े कलाकार बुला कर नकली फूल बनवाए थे--नकली गुलाब के फूल। एक हाथ में नकली फूल, एक हाथ में असली फूल, वह सोलोमन के दरबार में उपस्थित हुई और उसने सोलोमन से कहा कि हे सम्राट, मैंने तुम्हारी बुद्धिमत्ता की बहुत खबरें सुनी हैं, क्या तुम बता सकते हो मेरे किस हाथ में असली फूल हैं और किस हाथ में नकली? सोलोमन ने एक क्षण गौर से देखा और समझ गया कि झंझट की बात है। दोनों फूल एक-जैसे मालूम होते थे। सच तो यह था कि नकली असली से भी अच्छा मालूम हो रहा था। खूब सजाया गया था। सोलोमन ने कहाः मैं जरा बूढ़ा हो गया, मेरी आंखें भी कमजोर हो गईं, जरा द्वार-दरवाजे खोल दो, ताकि रोशनी आए, मैं ठीक से देख सकूं।
द्वार-दरवाजे खोल दिए गए और वह गौर से देखता रहा और फिर उसने कहाः तेरे बाएं हाथ में असली फूल हैं। सारा दरबार हैरान हुआ! इथोपिया की रानी भी बहुत हैरान हुई! उसने कहा, कैसे पहचाना? सोलोमन ने कहा, छिपाना क्या? खिड़कियां मैंने इसलिए नहीं खुलवाईं कि रोशनी चाहिए, रोशनी तो काफी थी, खिड़कियां मैंने इसलिए खुलवाईं कि बगीचे से कोई मधुमक्खी भीतर आ जाए। क्योंकि जो मैं नहीं परख सकता, वह मधुमक्खी परख सकती है। और एक मधुमक्खी भीतर आ गई। और जिस फूल पर बैठी, वह असली है। जिस फूल पर नहीं बैठी, वह नकली है। तुमने ध्यान नहीं दिया। गौर करो, असली फूल के बीच में आकर एक मधुमक्खी बैठी है। एक मधुमक्खी बैठी पाई गई।
मधुमक्खी को तो धोखा नहीं दे सकते तुम झूठे फूल से, मगर आदमी को धोखा दिया जा सकता। आदमी खुद इतना झूठा हो गया है कि सब तरफ के झूठ उसको जकड़ लेते हैं।
हरिदेव, तुम संतों की वाणी का अध्ययन-मनन करते रहे। क्या अध्ययन-मनन करोगे! तोतारटंत की तरह सीख लिए होंगे। कबीर के वचन दोहराने लगोगे, रहीम के वचन दोहराने लगोगे। तुम्हें पक्का भी कहां है कि कबीर पहुंचे! पक्का होगा भी कैसे? बिना पहुंचे किसी को कभी पक्का नहीं हो सकता।
कल ही किसी मित्र ने पूछा था कि भगवान, आप भी खूब हैं! पहले भी बुद्धपुरुष हुए हैं, लेकिन किसी ने किसी के कंधे पर बंदूक रख कर नहीं चलाई। आप दूसरों के कंधों पर रख कर बंदूक चलाते हैं। जैसे कि आप पलटू के कंधे पर बंदूक रख कर चला रहे हैं। तुम जाने कैसे कि पलटू बुद्धत्व को उपलब्ध हो गए हैं? मैं अगर पलटू के कंधे पर रख कर बंदूक न चलाऊं, तो शायद पलटू की तुम्हें कभी याद भी न आती। पलटू कहीं रास्ते में मिल जाते तो तुम शायद जय रामजी भी न करते। तुम सोचते हो कि पलटू बुद्ध हैं इसलिए मैं उनके कंधे पर रख कर बंदूक चला रहा हूं, हालत उलटी है। मैं बंदूक उनके कंधे पर रख कर चला रहा हूं, इसलिए वे तुम्हें बुद्ध मालूम हो रहे हैं। मैं जानता हूं कि वे बुद्ध हैं।
और कौन बंदूक का बोझ अपने कंधे पर ढोए! जब इतने बुद्ध मिल रहे हों, उपलब्ध हों, और राजी हों, और अपनी राजी से कहते हों आ-आ कर कि महाराज, मेरा

कंधा कब चुनिएगा? ... पलटू कई दिन से पीछे पड़े थे। कि कबीर पर बोले, दादू पर बोले, फरीद पर बोले, नानक पर बोले, मुझ गरीब को क्यों छोड़ रहे हो?
पलटू के कंधे पर बंदूक रख कर इसलिए चला रहा हूं कि होंगे कुछ तुम में
जो पलटू के पास से गुजरे होंगे और चूक गए होंगे। लेकिन कुछ अनुस्मृति तो रह गई होगी कहीं डोलती! किसी अंतस्तल में कुछ गंध तो छूटी रह गई होगी। उस याद को पुनरुज्जीवित कर दूं तो शायद उसी बहाने तुम मेरे करीब आ जाओगे। नानक पर बोलता हूं; बुद्ध पर, महावीर पर, कृष्ण पर, क्राइस्ट पर, लाओत्सु पर; सिर्फ इस कारण कि तुम अनंत यात्री हो और तुम न मालूम कब किसके सत्संग में रहे होओ, तो कुछ न कुछ गूंज जरूर रह गई होगी--जन्मों-जन्मों के बाद भी-- उसे फिर पुकार दे रहा हूं।
आसान हो जाएगी बात। शायद तुम मुझे एकदम से समझ भी न पाओ। पलटू के बहाने समझ लो। शायद तुम सीधा-सीधा मुझे समझ न पाओ, लेकिन महावीर के बहाने समझ लो। मेरे लिए तो ये सब बहाने हैं। मैं सीधा ही कह सकता हूं, मुझे जो कहना है वही कह रहा हूं।... कोई पलटू की मैं फिकर करता हूं! जहां मुझे लगता है वहां उनको पलटा देता हूं। वे लाख चिल्लाएं, शोरगुल मचाएं, मैं कहा हूंः पलटू ही हो, चुप रहो! अगर मैंने थोड़ा पलट दिया तो ऐसा क्या... ! समय बदल गया, लोग बदल गए, मुझे बहुत-से पलटे देने ही होंगे।
तुम पढ़ोगे क्या? लेकिन चूंकि अध्ययन-मनन की तुम्हारी बड़ी आकांक्षा रहती है, इसलिए बुद्धपुरुषों पर बोल रहा हूं, ताकि तुम्हारे अध्ययन-मनन की खुजलाहट भी कम हो जाए। वह खुजलाहट भी पूरी हो जाए। फिर तुम्हें असली काम में लगा दूं, वह है सत्संग। सत्संग का अर्थ शास्त्र नहीं होता, सत्संग का अर्थ होता हैः जीवित सत्य के साथ जुड़ जाना; सत्य का संग। शब्द का नहीं, सिद्धांत का नहीं। जिसने जाना हो, उसके साथ जुड़ जाना। लेकिन जुड़ने की हिम्मत तो जुटाते-जुटाते जुटती है। यह तो बात बनते-बनते बनती है। एकदम से नहीं हो जाती। तुम्हें धीरे-धीरे फुसलाना होता है। तुम्हें बड़ी कुशलता से फुसलाना होता है। तुम्हारे अहंकार को गलाना कोई साधारण खेल नहीं है। और बिना अहंकार गले सत्संग नहीं होता। तुम मिटो तो सत्संग हो। मैं मिट गया हूं, तुम भी मिट जाओ, तो अभी हमारे दोनों के शून्य एक हो जाएं।
शून्य दो नहीं होते। दो शून्यों को पास लाओ तो दो शून्य नहीं होते, एक शून्य बन जाता है। बस एकदम एक शून्य हो जाता है। दो शून्य जोड़ो, कि तीन शून्य जोड़ो, कि हजार शून्य जोड़ो, एक ही शून्य बनता है। वहां गणित के नियम लागू नहीं होते। शून्य गणित के नियम के बाहर है।

इधर मैं शून्य हुआ बैठा हूं। यह जो नाद है; शून्य का नाद है। इस नाद के साथ तुम जुड़ सकते हो, अगर शून्य हो जाओ। सत्संग होगा, हरिदेव! संतों की वाणी पढ़ते-पढ़ते चलो इतना तो हुआ कि तुम यहां आ गए। यहां भी तुम इसलिए आ गए होओगे कि सोचा होगा कि संतों पर चर्चा हो रही है। फंस गए! संतों पर चर्चा तो हो रही है, मगर पीछे मामला और है। ऐसे जैसे कि मछली को फांसते हैं न तो कांटे में आटा लगा देते हैं। मछली कांटे में तो फंसने आती नहीं। कांटा देख कर तो दूर-दूर भागती है मगर आटे को देख कर चली आती है। इधर अटका गले में आटा, तब पता चलता है कि फंस गई, कांटे में उलझ गई। मगर तब तक बहुत देर हो चुकी। अब लौटने का कोई उपाय न रहा।
ये पलटू, ये कबीर, ये दादू, ये मलूक, ये सब आटे हैं। कांटा तो सत्संग का है।
चलो इसी बहाने आ गए। पलटू में रस रहा होगा, तो सोचा हरिदेव ने कि चले चलें! पलटू को इतना पढ़ा, अध्ययन किया, मनन किया, अब जरा पलटू पर सुनें कि पलटू पर कोई जाग्रतपुरुष क्या कहता है? मगर अब लौटने के बाहर है मामला! हरिदेव, कांटा तो फंस गया! संन्यास ले बैठे! यह तो तुम सोच कर भी न आए थे। तुम्हारे सोचे थोड़े ही कुछ चीजें होती हैं। बहुत सी चीजें हैं तुम्हारे बिना सोचे होती हैं, वे ही बहुमूल्य हैं। तुम्हारे सोचे तो क्षुद्र होता है। शास्त्रों के सहारे कहीं पहुंचोगे नहीं--न कहीं कोई कभी पहुंचा है। वैतरणी करोगे पार
दूसरों के कंधों पर

अंधों की जमात में
अपंगों का अभिनय?
कटवा लो अपनी टांगें
टांग दो दरख्तों पर
नंगापन पतझर का
कुछ तो ढक जाएगा।
नये फूल-पत्ते तो
खून से सींचे बिना
झेल नहीं पाते
लू-लपटों का उच्छवास।
प्लास्टिक के फूलों से
बाग को सजाने का
शौक नया चर्राया
पानी मर गया है शायद
मालियों की पीढ़ियों का
कोई तय्यार नहीं
खाद बन जाने को।
और जब लोग खाद बन जाने को तैयार नहीं होते, तो सत्संग कहां? और जब लोग खाद बन जाने को तैयार नहीं होते, तो फिर प्लास्टिक के फूलों से ही काम चलाना पड़ता है। शास्त्र तो प्लास्टिक के फूल हैं। सत्संग तो पास आने की कला है, गुरु के पास आने की कला है।
तुम्हारा किसी से प्रेम हो जाए--किसी स्त्री से, किसी पुरुष से, तो तुम उसकी तसवीर से काम चला लोगे? तसवीर को छाती से लगा कर मन भर जाएगा? नहीं, तुम जीवित व्यक्ति के करीब होना चाहोगे, उसका हाथ हाथ में लेना चाहोगे, उसका आलिंगन करना चाहोगे, उसके जीवन में अपने को डुबोना चाहोगे। उसके जीवन को अपने में डुबोना चाहोगे। सत्संग भी वैसा ही है, एक और ऊंचे आयाम में यह भी एक गहन प्रेम है। प्रेम से भी गहन प्रेम है।
इतना मत दूर रहो
गंध कहीं खो जाए
आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाए

देखा तुमको मैंने कितने जन्मों के बाद
चम्पे की बदली-सी धूप छांह आस पास घूम सी गई दुनिया यह भी न रहा याद
बह गया है वक्त लिए सारे मेरे पलाश

ले लो ये शब्द
गीत भी न कहीं सो जाए
आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाए

उत्सव से तन पर सजा ललचाती मेहराबें खींच लीं मिठास पर क्यों शीशे की दीवारें टकरा कर डूब गईं इच्छाओं की नावें
लौट लौट आई हैं मेरी सब झनकारें

नेह फूल नाजुक
न खिलना बंद हो जाए
आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाए

क्या कुछ कमी थी मेरे भरपूर दान में

या कुछ तुम्हारी नजर चूकी पहिचान में या सब कुछ लीला थी तुम्हारे अनुमान में या मैंने भूल की तुम्हारी मुस्कान में

खोलो देह-बंध
मन समाधि-सिंधु हो जाए
आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाए।

इतना मत दूर रहो
गंध कहीं खो जाए।
प्रेमी प्रेयसी के करीब होना चाहता है। प्रेयसी प्रेमी के करीब होना चाहती है।
इतना मत दूर रहो
गंध कहीं खो जाए
आने दो आंच
रोशनी न मंद हो जाए
ऐसी ही घटना एक और महत्तर तल पर शिष्य और गुरु के बीच घटती है। उसका नाम सत्संग है। जब गुरु की आंच शिष्य के अहंकार तक पहुंचने लगती और उसे पिघलाने लगती है। जब गुरु की प्रज्वलित अग्नि शिष्य को राख करने लगती है। पास आओ, हरिदेव! और-और पास आओ! दूर-दूर न खड़े हो। शास्त्रों में बहुत दिन डूबे रहने के कारण दूर-दूर रहने की आदत हो जाती है। शास्त्र और आदमी के बीच पास होना होता ही नहीं। शास्त्र में कोई आंच ही नहीं होती, तो डर क्या? शास्त्र तो ठंडा है, मुर्दा लाश है!
तुम सौभाग्यशाली हो, एक ऐसी जगह आ गए हो, जहां शास्त्र अभी जीवित है, जहां शास्त्र अभी जन्म ले रहा है। लेकिन पास आओ! आंच को झेलो! जलो! आंच को पिघलाने दो तुम्हारी बर्फ जैसी स्थिति को। अहंकार के ठंडेपन को। वह जाने दो! पिघल जाए यह बर्फ तुम्हारी, बह जाओ तुम बिल्कुल, रह जाए भीतर रिक्त शून्य, तो पूर्ण उतरेगा। तब तुम जानोगे। उसके पहले कोई जाना नहीं है।

आखिरी प्रश्नः भगवान,
कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है
आदमी सिर्फ बहाना है, बस खुदा देता है
वह जहन्नुम भी दे तो करूं शुक्र अदा
कोई अपना ही समझकर तो सजा देता है

हरि भारती! बात तो पते की कही है, मगर तुम्हारी अपनी नहीं है! पते की है। जिसने कही होगी, जानी होगी। उसके लिए पते की। तुम्हारे लिए तो खतरनाक भी हो सकती है।
तुम कहते होः
कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है
आदमी सिर्फ बहाना है, बस खुदा देता है
जिसने जान कर कहा, ठीक कहा। लेकिन अनजान के हाथ में इसका अर्थ बिल्कुल उलटा हो जाएगा। जिसने जान कर कहा, उसका तो अर्थ यह है कि खुदा ही है, आदमी है कहां! इसलिए आदमी क्या देगा। और क्या लेगा! देने वाला भी वही है, लेने वाला भी वही है।
लेकिन जब न जानने वाला इस शब्द को पकड़ेगा, तो उसका अर्थ यह होता है कि आदमी में क्या रखा है! आदमी क्या ले-दे सकता है! जब देने वाला तो खुदा है। तो तुम आदमी के प्रति कृतज्ञता छोड़ दोगे, प्रेम छोड़ दोगे, अनुग्रह का भाव छोड़ दोगे। यह तुम्हारी आदमी के प्रति निंदा बन जाएगी। कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है! इसलिए किसी इंसान के चरणों में क्यों झुकना? और किसी इंसान को धन्यवाद क्यों देना? देने वाला तो खुदा है! यह खुदा सिर्फ तुम्हारा बहाना है। यह आदमी को धन्यवाद न देना पड़े, इसलिए अच्छी आड़ हो गई;

सुंदर आड़ हो गई, बड़ी प्यारी आड़ खोज ली! लोग बहुत जालसाज है इस मामले में।
अनजाने होता है यह, मूर्च्छा में होता है।
लेकिन आदमी से अगर खुदा ही देता है, अगर आदमी के भीतर भी खुदा ही है, तब
तो फिर आदमी-आदमी के चरण में झुको। फिर तो जो मिल जाए उसके चरण में झुको। क्योंकि परमात्मा ही है और तो कोई है नहीं!
ये दो अर्थ हो सकते हैं। एक अर्थ कि सब में परमात्मा है। इसलिए पत्थर
के सामने भी झुक जाओ। इसलिए बुरे से बुरे आदमी में भी परमात्मा है। कैसे ही गंदे वस्त्र उसने पहन रखे हों, परमात्मा है। किसी शक्ल में आए, परमात्मा है।
शिरडी के साईं बाबा के पास एक ब्राह्मण रोज भोजन लेकर आता था। वे रहते मस्जिद में थे। किसी को पता नहीं वे हिंदू थे कि मुसलमान। ऐसे लोगों के बाबत पता लगाना मुश्किल भी होता है। अब तुम मेरे बाबत कभी पता लगा पाओगे कि मैं हिंदू हूं कि मुसलमान; कि ईसाई, कि बौद्ध, कि यहूदी, कि पारसी! तुम कभी पता न लगा पाओगे। क्यों? क्योंकि ऐसे व्यक्ति तो किसी सीमा में आबद्ध होते ही नहीं।... रहते थे मस्जिद में और यह ब्राह्मण रोज भोजन लाता। इसका नियम थाः जब तक साईं बाबा को भोजन न करा ले, तब तक खुद भोजन न करे। कभी देर भी हो जाती। कभी साईं बाबा मस्त हैं भजन में! और कभी मस्त हैं लोगों को पत्थर मारने में, डंडे लेकर दौड़ने में! कभी मस्त हैं लोगों को गालियां देने में! भीड़-भाड़ मच गई है! तो देर-अबेर हो जाती।
एक दिन साईं बाबा ने कहा कि तू नाहक पांच मील चल कर आता है। पहुंचते- पहुंचते सांझ हो जाती है, तब तू भोजन कर पाता है। कल से मैं ही आ जाऊंगा। तू कल मत आना। बड़ा खुश हुआ ब्राह्मण! कल तो उसने खूब सुस्वादु भोजन बनाए, मिष्ठान्न बनाए। सुबह से ही जल्दी-जल्दी उठ कर सब तैयारी कर डाली कि पता नहीं कब आ जाएं। नौ बजे, दस बजे, ग्यारह बजे, बारह बजे, एक बजे... कोई पता नहीं! दो बज गए, कोई पता नहीं। चार बज गए, कोई पता नहीं भागा थाली लेकर! सांझ होते-होते पहुंचा। साईं बाबा से कहाः आप भूल गए क्या? साईं बाबा ने कहाः मैं और भूल जाऊं! तू सोचता है, मैं कुछ भूल सकता हूं! मैं आया था, मगर नासमझ, तूने मुझे बाहर से ही दुतकार दिया! दुतकारा ही नहीं, तू डंडा लेकर मुझे मारने दौड़ा! उस ब्राह्मण ने कहा, हद हो गई, क्या बातें कर रहे हैं आप! होश में हैं? बैठा हूं सुबह से थाली सजाए, एक आदमी नहीं फटका! साईं बाबा ने कहा, मैंने कब कहा कि मैं आदमी की शकल में आऊंगा? एक कुत्ता नहीं आया था? वह तो भूल ही गया था ब्राह्मण; उसे याद आया कि हां, एक कुत्ता आया था। न केवल आया था बल्कि कई बार आने की कोशिश की... और एकदम थाली की तरफ ही जाता था! उसने कहा, हां एक कुत्ता आया था और एकदम थाली की तरफ ही जाता था। साईं बाबा ने कहा, मैंने सोचा कि थाली तूने मेरे लिए सजाई तो मैं थाली की तरफ जाता था। और तू एकदम डंडा मारता था! तूने घुसने ही न दिया घर में, तो मैं लौट आया।
ब्राह्मण ने कहाः मुझे माफ करें। मुझसे भूल हो गई। मुझे क्या पता, कि आपने मुझे एक अदभुत संदेश दिया, कि वही, एक ही सब में विराजमान है! कल, कल आ आएं! ऐसा नहीं होगा।
कल बैठा ब्राह्मण थाली लगाए... कुत्ते का आगमन कब हो? मगर कुत्ते का कोई पता नहीं। मोहल्ले में जाकर चक्कर भी मार आया कि कहीं कुत्ता भटक न गया हो। एक-दो कुत्ते मिले भी ऐसे आवारा, उनको लाने की भी कोशिश की, मगर वे आएं न! धमकाया, डंडा भी बताया, मगर वे और भाग गए! बड़ा हैरान... ! फिर वही सांझ होने लगी, फिर आया और कहा कि महाराज, दिन भर हो गया, परेशान हो गया, गांव के आवारा कुत्तों को खदेड़ता फिर रहा हूं, यह मैंने कभी सोचा नहीं था कि गांव के आवारा कुत्ते और सुस्वादु भोज लेने से इनकार कर देंगे! मैं उनको बुलाते जाता हूं, वे भागते हैं। जैसे कि किसी जाल में फंसा रहा हूं।
साईं बाबा ने कहाः मैं तो आया था, मगर तूने मुझे दुतकार दिया। मैं एक भिखमंगे की तरह आया था। अरे, उसने कहा, तो कल ही क्यों नहीं कहा! आज मैं कुत्ते की राह देखता रहा और आपको भिखमंगे की तरह आने की सूझी! एक भिखमंगा जरूर दो-तीन बार आया, मैं तो उस पर इतना नाराज हुआ कि तू रास्ता पकड़ता है कि

नहीं? यह भोजन तेरे लिए नहीं बनाया है। तो आप भिखमंगे की शक्ल में आए थे? कल!
साईं बाबा ने कहाः तुझे नहीं चलेगा। कल तू भिखमंगे की राह देखेगा।
मेरा क्या भरोसा कल मैं किस शक्ल में आऊं! तू ही ले आया कर! वही आसान है।
इसमें तू और झंझट में पड़ गया, और उलझन में पड़ गया।
विराट है अस्तित्व।
जो जानते हैं, उनके लिए, उनके ओंठों पर यही शब्द, हरि भारती, और अर्थ रखेंगे--
कोई इंसान इंसान को भला क्या देता है
आदमी सिर्फ बहाना है, बस खुदा देता है।
इसमें इंसान का विरोध नहीं है। इसमें प्रत्येक व्यक्ति के भीतर परमात्मा की स्वीकृति है। मगर बिना जाने, अनजान में, अज्ञान में, मूर्च्छा में अर्थ बिल्कुल बदल जाएगा। इसमें खुदा सिर्फ बहाना है। तुम्हें खुदा का कुछ पता है? खुदा कभी मिला है? कहीं आदमी मिला, कहीं कुत्ता मिला, कहीं बिल्ली मिली, कहीं हाथी मिला, कहीं घोड़ा मिला, कहीं झाड़ मिला--खुदा तुम्हें कहीं मिला है? खुदा की आड़ में तुम सब से इनकार कर दोगे। और ऐसा खुदा कहीं भी नहीं है, जिसकी तुम आड़ ले रहे हो। खुद तो सब में छिपा है। जहां भी खुदी का भाव है, वहीं खुदा है।

देख कहीं पाछे तू पछताए
घर-घर वही गीत सतरंगा जिसका ध्यान सताए
देख कहीं पाछे तू पछताए

दर्पण में मुंह देख साए के पीछे हाथ पसार
दीवारों के बीच बैठ कर ढूंढ अपना संसार
घर-घर वही हंसे जब कोई नई कली शरमाए
देख कहीं पाछे तू पछताए

कलाबाजियां खाते नन्हें मुन्ने करें कुलेल घर में नया देवता उतरे जब हल लाए बेल
रात पड़े नीली आंखों में वही हंसे मुस्कुराए
देख कहीं पाछे तू पछताए

सुन, दुख उसकी टेढ़ी चितवन सुख उसकी मुस्कान
अपने में अपना कहलाए बैरी में भगवान
इस सराय में भेस बदल कर वही आए वही जाए
देख कहीं पाछे तू पछताए
हरि भारती, स्मरण रखो, वही है! आदमी से भी देता है, तो वही देता है। लेकिन इस कारण आदमी का अनुग्रह मत भूल जाना। वृक्षों से देता है तो वही देता है। लेकिन इस कारण वृक्षों का अनुग्रह मत भूल जाना। क्योंकि जो जितने अनुग्रह से भर जाए, उतना ही परमात्मा के निकट आ जाता है। अनुगृहीत होना ही प्रार्थना की परम परिष्कृति है।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
सत्रहवां प्रवचन

ज्ञान ध्यान के पार ठिकाना मिलैगा

टोप-टोप रस आनि मक्खी मधु लाइया।
इक लै गया निकारि सबै दुख पाइया।।
मोको भा बैराग ओहि को निरखिकै।
अरे हां, पलटू माया बुरी बलाय तजा मैं परिखिकै।।

फूलन सेज बिछाय महल के रंग में।
अतर फुलेल लगाय सुनदरी संग में।।
सूते छाती लाय परम आनंद है।
अरे हां, पलटू खबरि पूत को नाहिं काल को फंद है।।

खाला के घर नाहिं, भक्ति है राम की।
दाल भात है नाहिं, खाए के काम की।।
साहब का घर दूर, सहज ना जानिए।
अरे हां, पलटू गिरे तो चकनाचूर, बचन कौ मानिए।।

पहिले कबर खुदाय, आसिक तब हुजिए।
सिर पर कप्फन बांधि, पांव तब दीजिए।।
आसिक को दिनराति नाहिं है सोवन।
अरे हां, पलटू बेदर्दी मासूक दर्द कब खोवना।।

जो तुझको है चाह सजन को देखना।
करम भरम दे छोड़ि जगत का पेखना।।
बांध सूरत की डोरि सब्द में पिलैगा।
अरे हां, पलटू ज्ञानध्यान के पार ठिकाना मिलैगा।।

कडुबा प्याला नाम पिया जो, ना जरै।
देखा-देखी पिवै ज्वान सो भी मरै।।
घर पर सीस न होय, उतारै भुईं धरै।
अरे हां, पलटू छोड़े तन की आस सरग पर घर करै।।

राम के घर की बात कसौटी खरी है।
झूठा टिके न कोय आजु की घरी लै।।
जियतै जो मरि जाय सीस लै हाथ में।
अरे हां, पलटू ऐसा मर्द जो होय परै यहि बता में।।

हम दीवानों का क्या परिचय?
कुछ चाव लिए, कुछ चाह लिए
कुछ कसकन और कराह लिए
कुछ दर्द लिए, कुछ दाह लिए
हम नौसिखिए, नूतन पथ पर चल दिए, प्रणय का कर विनिमय हम दीवानों का क्या परिचय?

विस्मृति की एक कहानी ले
कुछ यौवन की नादानी ले
कुछ-कुछ आंखों में पानी ले
हो चले पराजित अपनों से, कर चले जगत को आज विजय, हम दीवानों का क्या परिचय?

हम शूल बढ़ाते हुए चले

हम फूल चढ़ाते हुए चले
हम धूल उड़ाते हुए चले
हम लुटा चले अपनी मस्ती, अरमान कर चले कुछ संचय,
हम दीवानों का क्या परिचय?

हम चिर-नूतन विश्वास लिए
प्राणों में पीड़ा-पाश लिए
मर मिटने की अभिलाषा लिए
हम मिटते रहते हैं प्रतिपल, कर अमर प्रणय में प्राण-निलय, हम दीवानों का क्या परिचय?

हम पीते और पिलाते हैं
हम लुटते और लुटाते हैं
हम मिटते और मिटाते हैं
हम इस नन्हीं-सी जगती में बन-बन मिट-मिट करते अभिनय,
हम दीवानों का क्या परिचय?

शाश्वत यह आना-जाना है
क्या अपना और बिराना है
प्रिय में सबको मिल जाना है
इतने छोटा-से जीवन में, इतना ही कर पाए निश्चय,
हम दीवानों का क्या परिचय?

... इस छोटे-से निश्चय में सारे जीवन का सार समाया हुआ है।...
शाश्वत यह आना-जाना है
क्या अपना और बिराना है
प्रिय में सबको मिल जाना है
इतने छोटे-से जीवन में, इतना ही कर पाए निश्चय,
हम दीवानों का क्या परिचय?
जीवन भला छोटा हो, निश्चय छोटा नहीं। इस निश्चय के साथ ही जीवन शाश्वत
हो जाता है। इस निश्चय के साथ ही जीवन छोटा नहीं रह जाता, विराट हो जाता है। इस निश्चय के साथ ही तुम बूंद नहीं, सागर हो जाते हो। इस निश्चय का नाम ही संन्यास है।
तुम्हारे भीतर यह निश्चय सघन हो जाए कि क्षणभंगुर में उलझे रहना अपने
को गंवाना है; शाश्वत में अपने को गंवाना अपने को पाना है; इतना संकल्प, इतना निश्चय, इतना निष्कर्ष और जीवन में क्रांति हो गई। फिर तुम बाजार में भी हो तो भी बाजार में नहीं। भीड़ में होओ, फिर भी भीड़ में नहीं। भीड़ में भी अकेले हो और बाजार में भी शून्य-गुहा में विराजमान। फिर विचारों की भीड़ में भी तुम्हारा हृदय अछूता है। फिर सब करते हुए भी तुम अकर्ता हो। और अकर्ता की यह दशा, कर्म के बवंडर में घिरे अकर्ता का यह शून्य-भाव सिद्धि है; साधना का परम लक्ष्य है। इस लक्ष्य की ओर ही पलटू के आज के सूत्र है-- टोप-टोप रस आनि मक्खी मधु लाइया।
इक लै गया निकारि सबै दुख पाइया।।
मोको भा बैराग ओहि को निरखिकै।
अरे हां, पलटू माया बुरी बलाय तजा मैं परखिकैं।।
मधुमक्खी बूंद-बूंद मधु संचय करती है। और फिर आता है मधु को इकट्ठा करने वाला, लगा देता है आग मधुमक्खियों के छत्ते में! बूंद-बूंद हजारों मधुमक्खियों ने जो इकट्ठा किया था, वह एक मशालची आकर आग लगा कर सब लूट कर ले जाता है! पलटू कहते, ऐसी ही जिंदगी है। बूंद-बूंद तुम इकट्ठा करते हो, फिर आती मौत, सब झटक कर ले जाती। मधुमक्खियां न समझें, क्षमा की जा सकती हैं। लेकिन तुम तो क्षमा नहीं किए जा सकते।
फिर यह भी हो सकता है कि मधुमक्खियों का छत्ता मधु संगृहीत करने वालों से बच भी जाए, लेकिन तुम तो मौत से न बच सकोगे। सभी छत्ते लुटते भी

नहीं! दूर वृक्षों की शाखाओं में पहाड़ों में छिपे बहुत से छत्ते आदमी के हाथ के बाहर भी रह जाते हैं। लेकिन मौत की पहुंच के बाहर कौन है! सात समुंदरों के पार छिपो, कि पहाड़ों की गुफाओं में चले जाओ, कि पाताल में उतर जाओ, मौत तो हर जगह उतर जाएगी।
मौत तो उसी दिन आ गई जिस दिन तुम जन्मे थे। मौत तो उसी दिन से तुम्हारे पीछे छाया की तरह चल रही है। तुम जहां जाओगे, वहीं पहुंच जाएगी। मौत बाहर नहीं घटती, मौत तो भीतर बढ़ रही है। वह तो तुम्हारी श्वास-श्वास में रमी है। वह तो तुम्हारे हृदय की धड़कन-धड़कन में आ रही है। हर धड़कन उसके ही पदों की चाप है। और हर श्वास उसे करीब ला रही है। तुम कुछ भी करो, सोओ कि जागो, बाजार में रहो कि मंदिर में, भेद नहीं पड़ता, मौत प्रतिपल पास से पास चली आ रही है। तुम जो भी इकट्ठा करोगे, सब छीन लिया जाएगा।
टोट-टोट रस आनि मक्खी मधु लाइया।
कितना मेहनत करती हैं मधुमक्खियां! हजारों-हजारों फूलों पर भटकती हैं, कण-कण फूलों का पराग इकट्ठा करती हैं, मीलों की यात्रा करती हैं, तब मधु-छत्ता बनता, तब मधु-छत्ता भरता। और एक क्षण में लुट जाता है सब। दो क्षण भी नहीं लगते लुटने में।
इक लै गया निकारि सबै दुख पाइया।।
वह कौन है एक? मृत्यु की तरफ इशारा है। तुमने जो घर बनाया है, वह मधु
का छत्ता है। ला रहे हो, बड़ा श्रम करके ला रहे हो--धन, पद, प्रतिष्ठा--बड़ा संघर्ष, बड़ी स्पर्धा, बड़ी जलन, ईर्ष्या... गलाघोंट प्रतियोगिता है, आसान नहीं है। मधुमक्खियां तो शायद आसानी से फूलों से सौरभ इकट्ठा कर लेती होंगी, लेकिन आदमी की दुनिया में तो बड़ी मुश्किल है, क्योंकि सभी महत्वाकांक्षी हैं। प्रज्वलित महत्वाकांक्षा, भयंकर संघर्ष है। तब कहीं छीन-झपट कर के थोड़ा सा तुम ला पाओगे। और मजा यह है कि सब मौत छीन लेगी। तुम इकट्ठा करोगे और मौत रिक्त कर देगी। यह इकट्ठा करना बड़ी नासमझी का हुआ! यह बात बड़ी मूढ़ता की हुई! जो मटकी फूट ही जाने वाली है, उसको भरने में क्यों समय नष्ट कर रहे हो?
मोको भा बैराग ओहि को निरखिकै।
पलटू कहते हैंः मधुमक्खियों को देख कर, उनके छत्तों को लुटते देखकर मुझे तो वैराग्य हो गया! जिसने मृत्यु को पहचाना, उसे वैराग्य हो ही जाएगा। मृत्यु से आंखें चार कर लेना वैराग्य का जन्म है। जो जीवन को थोड़ा गौर से देखेगा, मृत्यु को छिपा हुआ पाएगा। जीवन तो घूंघट जैसा है, पीछे तो मौत छिपी है। जीवन तो चिलमन जैसा है, पीछे तो मौत छिपी है। जहां भी पदार्थ उठाओगे, मौत को छिपा पाओगे। और मौत ने बहुत तरह के वेष पहन रखे हैं। इसलिए धोखा हो जाता है। लेकिन जो जरा सजग होकर देखेगा, धोखा नहीं खाएगा। जिसका धोखा टूट गया, जिसे एक बात समझ में आ गई कि इस जीवन में कुछ भी इकट्ठा करो, तुम्हारे साथ नहीं जाएगा, हाथ खाली के खाली रहेंगे, प्राण रिक्त के रिक्त रहेंगे, उसके जीवन में वैराग्य पैदा न होगा तो क्या होगा?
राग का अर्थ होता हैः लूट लो जितना लूटते बन सके; भर लो अपने को जितना
भर सको; भोग लो जितना भोग सको, यह महा अवसर मिला है भोगने का। वैराग्य का अर्थ होता हैः कितना ही भरो, मौत खाली कर देगी। इसलिए भरने के लिए किया गया सारा श्रम व्यर्थ चला जाएगा। तो कुछ ऐसे की तलाश करो जो मौत न छीन सके। वैराग्य का अर्थ होता हैः मृत्यु के पार भी जो तुम्हारे साथ जा सके; चिता में जले न, अस्त्र-शस्त्र जिसे भेद न सकें, ऐसी कोई संपदा खोज लो। और ऐसी संपदा भी है!
लेकिन जो क्षणभंगुर में उलझे रह जाते हैं, वे शाश्वत से चूक जाते हैं। रामकृष्ण को एक बार किसीने आकर कहा कि आप महात्यागी हैं। रामकृष्ण ने कहा कि नहीं-नहीं! बाबा, ऐसी बात न कहो! महात्यागी तुम हो! वह आदमी तो बहुत चौंका। वह कलकत्ते का सबसे धनी-मानी आदमी था। राग-रंग ही उसकी जिंदगी थी। भोग ही उसका योग था। उसने कहा, आप क्या कहते हैं, मजाक करते हैं, व्यंग्य करते हैं? मुझ भोगी को त्यागी कहते हैं? आप महात्यागी हैं। रामकृष्ण ने कहाः नहीं-नहीं, मैंने शाश्वत को पकड़ा, तुमने क्षणभंगुर को, अब तुम्हीं कहो त्यागी कौन है? मैंने वह खोजा जिसे मौत न छीन सकेगी, तुम उसे पकड़े बैठे

हो जिसका छिन जाना सुनिश्चित है। तुम त्यागी हो; शाश्वत को छोड़ कर क्षणभंगुर को पकड़ा है।
मैंने एक आदमी के संबंध में सुना है। एक समुद्र-तट पर वह भीख मांगता था। उसके भीख मांगने का ढंग बड़ा अनूठा था। जो भी कोई उसके सामने रुपये का नोट करे, दस रुपये का नोट करे, सौ रुपये का नोट करे और एक हाथ में दस पैसे का सिक्का और कहे कि चुन लो, वह हमेशा दस पैसे का सिक्का चुन लेता। लोग हंसते, खिल-खिलाते, मजाक उड़ाते कि दुनिया में मूढ़ बहुत देखे मगर ऐसा मूढ़ नहीं देखा। सौ रुपये का नोट छोड़ देता है, दस पैसे का सिक्का चुन लेता है! वर्षों से वह यही कर रहा था। लोग बड़े हैरान थे कि इसको कभी अकल आएगी कि नहीं आएगी? एक दिन एक आदमी ने एकांत देख उससे पूछा कि मेरे भाई, बीस साल से मैं तुझे जानता हूं, तू यही धंधा कर रहा है। शुरू-शुरू किया तो हम समझे कि तुझे पता नहीं है। लेकिन अब तो तू जानता है भलीभांति कि रुपए, दस रुपए, सौ रुपये के नोट, उनको तू छोड़ देता है और दस पैसे के सिक्के उठा लेता है! लोग हंसी-मजाक करते हैं।
वह भिखमंगा हंसने लगा और उसने कहा, अब तुमने पूछा तो मैं कहे देता हूं; लेकिन किसी और को मत बताना! मैं भी जानता हूं कि रुपये का नोट है, दस रुपये का नोट है, सौ रुपये का नोट है, मगर एक बार ले लूंगा कि खेल खतम! फिर कौन आएगा खेल खेलने? ये मूढ़ इसीलिए तो खेलने आए हैं, ये सोचते हैं--मैं मूढ़ हूं। यह बीस साल से धंधा चल रहा है। दिन भर में दस-पंद्रह रुपये इकट्ठे कर लेता हूं, और क्या चाहिए? एक दिन भी मैंने अगर नोट चुन लिया और दस पैसे का सिक्का छोड़ दिया, तो बस उसी दिन धंधा समाप्त हो जाएगा। वह नोट कितने दिन काम आएगा। यह बीस साल से चल रहा है, और जब तक जिंदा हूं चलता रहेगा। तुम मुझे मूढ़ मत समझना! जो यहां आते हैं और दस रुपये का नोट और दस पैसे का सिक्का मुझे दिखाते हैं, वे मूढ़ हैं।
दुनिया बहुत अजीब हैं। यहां कौन मूढ़ है, यह तय करना इतना आसान नहीं। सबकी अपनी परिभाषाएं हैं।
सांसारिक से पूछोगे तो आध्यात्मिक मूढ़ है। छोड़ रहा जीवन का रस-रंग, राग। चार्वाक से पूछोगे तो कहेगा, पागल हो। ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत। अगर ऋण लेकर भी घी पीना पड़े तो भी ऋण लो, घबड़ाओ मत! क्योंकि मरने के बाद कौन लौट कर आया है? किसको ऋण चुकाना है? कोई नहीं बचता, मिट्टी मिट्टी में मिल जाती है। अच्छा करो कि बुरा, कुछ साथ नहीं। तुम ही नहीं बचते तो कुछ हाथ में नहीं बचता। हाथ ही नहीं बचता, तो चोरी करना पड़े, उधार लेना पड़े, धोखा देना पड़े--फिक्र न करो, दिल खोल कर दो! धोखा दो, चोरी करो, बेईमानी करो--सब चलेगा-- मगर भोग लो! यह चार दिन की चांदनी है, फिर अंधेरी रात।
चार्वाक की दृष्टि में आध्यात्मिक तो मूढ़ है। हालांकि तुम में से बहुत कम लोग सोचते हैं कि वे चार्वाकवादी हैं, लेकिन मेरा निरीक्षण यह है कि इस दुनिया में सौ में निन्यानबे प्रतिशत लोग चार्वाकवादी हैं। चाहे वे मंदिर जाते हों, चाहे गिरजा, चाहे गुरुद्वारा, इससे भेद नहीं पड़ता। उनकी अंतर-दशा क्षणभंगुर को पकड़ने की है। जो शाश्वत को पकड़ने चलता है, उसे तो वे भीतर-भीतर हंसते हैं--पागल है! दीवाना है! कैसा शाश्वत? मृत्यु के पार कुछ है? यहीं सब कुछ है। उस पार का किसी को भरोसा नहीं है। हां, भय के कारण, डर के कारण कभी मंदिर में पूजा के दो फूल भी चढ़ा आते हो कि कौन जाने, अगर हुआ उस पार कुछ तो कहने को रहेगा कि दो फूल चढ़ाए थे, मंदिर में पूजा की थी, प्रार्थना की थी। जीसस को पुकारा था, कृष्ण को पुकारा था। उस वक्त याद दिलाने को रहेगा। कुछ कर लो थोड़ा सा। कभी भिखमंगे को दान दे दो, कभी भूखे को भोजन करा दो--थोड़ा सा पुण्य भी अर्जित कर लो। अगर बचना पड़ा, अगर मौत के बाद भी जीवन रहा करा रूप में, तो कुछ संपदा वहां के लिए भी इकट्ठी कर लो-- थोड़ा बैंक बैलेंस परलोक के लिए भी। लेकिन भरोसा किसी को नहीं है कि परलोक है।
तुम्हारी जिंदगी सबूत नहीं देती कि तुम्हें भरोसा है। तुम्हारी जिंदगी तो कुछ और सबूत देती है। तुम्हारी जिंदगी तो सबूत देती है कि यहीं सब कुछ है। तुम्हारा व्यवहार यही कहता है कि यहीं सब कुछ है।
इस पार, प्रिये, मधु है, तुम हो,

उस पार न जाने क्या होगा!

यह चांद उदित होकर नभ में कुछ ताप मिटाता जीवन का, लहरा लहरा यह शाखाएं कुछ शोक भुला देतीं मन का
कल मुर्झाने वाली कलियां, हंसकर कहती हैं मग्न रहो, बुलबुल तरु की फुनगी पर से संदेश सुनाते यौवन का, तुम देकर मदिरा के प्याले, मेरा मन बहला देती हो,

उस पार मुझे बहलाने का
उपचार न जाने क्या होगा!

जग में रस की नदियां बहतीं, रसना दो बूंदें पाती है, जीवन की झिलमिल-सी झांकी नयनों के आगे आती है, स्वर-तालमई-सी वीणा बजती, मिलती है बस झंकार मुझे, मेरे सुमनों की गंध कहीं, यह वायु उड़ा ले जाती है, ऐसा सुनता, उस पार, प्रिये, ये साधन भी छिन जाएंगे;

तब मानव की चेतनता का
आधार न जाने क्या होगा!

प्याला है, पर पी जाएंगे, है ज्ञात नहीं इतना हमको, इस पार नियति ने भेजा है असमर्थ बना कितना हमको! कहने वाले, पर, कहते हैं, हम कर्मों में स्वाधनी सदा, करने वालों की परवशता है, ज्ञात किसे, जितनी हमको कह तो सकते हैं, कहकर ही कुछ दिल हलका कर लेते हैं;

उस पार अभागे मानव का
अधिकार न जाने क्या होगा!

कुछ भी न किया था जब उसका, उसने पथ में कांटे बोए, वे भार दिए धर कंधों पर, जो रो-रो कर हमने ढोए, महलों के स्वप्नों के भीतर जर्जर खंडहर का सत्य भरा! उर में ऐसी हलचल भर दी, दो रात न हम सुख से सोए!
अब तो हम अपने जीवन भर उस क्रूर कठिन को कोस चुके,

उस पार नियति का मानव से
व्यवहार न जाने क्या होगा!

संसृति के जीवन में, सुभगे! ऐसी भी घड़ियां आएंगी, जब दिनकर की तमहर किरणें, तम के अंदर छिप जाएंगी, जब निज प्रियतम का शव रजनी तम की चादर से ढक देगी, तब रवि शशि पोषित यह पृथ्वी कितने दिन खैर मनाएगी! जब इस लंबे-चौड़े जग का अस्तित्व न रहने पाएगा,

तब तेरा-मेरा नन्हा-सा
संसार न जाने क्या होगा!

ऐसा चिर पतझड़ आएगा कोयल न कुहुक फिर पाएगी,
बुलबुल न अंधेरे में गा-गा जीवन की ज्योति जगाएगी, अगणित मृदु नव पल्लव के स्वर मरमर न सुने फिर जाएंगे, अलि-अवली कलि-दल पर गुंजन करने के हेतु न आएगी;
जब इतनी रसमय ध्वनियों का अवसान, प्रिये, हो जाएगा,

तब शुष्क हमारे कंठों का
उदगार न जाने क्या होगा!

सुन काल प्रबल का गुरु गर्जन निर्झरिणी भूलेगी नर्तन, निर्झर भूलेगा निज तलमल, सरिता अपना कलकल गायन
वह गायक-नायक असधु कहीं, चुप ही छिप जाना चाहेगा! मुंह खोल खड़े रह जाएंगे, गंधर्व, अप्सरा, किन्नरगण! संगीत सजीव हुआ जिनमें जब मौन वही हो जाएंगे

तब प्राण तुम्हरी तंत्री का
जड़ तार न जाने क्या होगा!

उतरे इन आंखों के आगे जो हार चमेली ने पहने,
वह छीन रहा, देखो, माली सुकुमार लताओं के गहने,
दो दिन में खींची जाएगी ऊषा की साड़ी सिंदूरी, पट इंद्रधनुष का सतरंगा पाएगा कितने दिन रहने! जब मूर्तिमती सत्ताओं की शोभा-सुषमा लुट जाएगी,

तब कवि के कल्पित स्वप्नों का
शृंगार न जाने क्या होगा!

दृग देख जहां तक पाते हैं, तम का सागर लहराता है, फिर भी उस पार खड़ा कोई हम सबको खींच बुलाता है! मैं आज चला, तुम आओगी कल, परसों, सब संगी-साथी; दुनिया रोती धोती रहती, जिसको जाना है जाता है।
मेरा तो होता मन डगमग तट पर के ही हलकोरों से!

जब मैं एकाकी पहुंचूंगा।
मझधार, न जाने क्या होगा!

इस पार प्रिये, मधु है, तुम हो,
उस पार न जाने क्या होगा!
उस पार का भरोसा आता नहीं। आए तो आए भी कैसे, उस पार की हमारी आंखों में कोई झलक भी तो नहीं! हम इस पार में ऐसे उलझे हैं, हमने इस किनारे पर इतने खूंटे गाड़ दिए हैं--वासनाओं के, इच्छाओं के--हमारी आंखें इतनी भर गई हैं इस पार से कि दूर आंखें उठा कर कौन देखे? फुरसत किसे? समय किसे? अवसर किसे? जैसे छोटे-मोटे कीड़े मिट्टी में अपने घर बनाते रहते हैं, ऐसे ही हम भी मिट्टी में घर बनाते रहते हैं। जब तक मृत्यु का दर्शन नहीं हुआ है तब तक हमारे सब घर मिट्टी में बनाए घर हैं। मृत्यु का दर्शन होते ही अमृत की तलाश शुरू होती है।
ठीक कहते हैं पलटू--
मोको भा बैराग ओहि को निरखिकै।
आंखें हों देखने वाली, तो वैराग्य पैदा होगा ही। सिर्फ अंधे वैराग्य
से बच सकते हैं। सिर्फ बहरे वैराग्य से बच सकते हैं। जिनके पास देखने वाली आंखें हैं, सोचने वाला चित्त है, वह तो किसी भी बहाने उन्हें वैराग्य हो जाएगा। पलटू कहते हैंः मधुमक्खियों को मधु इकट्ठा करते देख और फिर एक दिन आता देख मधु को लूटने वाला--और मुझे वैराग्य हो गया।
तुम कहोगे, इतनी छोटी-सी बात से?
लाओत्सु को वैराग्य हुआ वृक्ष से गिरते हुए एक सूखे पत्ते को देखकर। सूखा पत्ता वृक्ष से गिर रहा है... लाओत्सू ने उसे गिरते देखा और उसे याद आयाः अपनी भी गिरने की बारी आने की! कब तक हरे रहेंगे? यह वृक्ष का पत्ता अब तक हरा था, कल तक हरा था, रस से भरा था, पक्षी इसके आसपास गीत गाते थे, मधुमक्खियां भिनभिनाती थीं, भंवरे डोलते थे, आज सूख गया। आज न पक्षी कोई

गीत गाएगा, आज न मधुमक्खियां आएंगी, न तितलियां उड़ेंगी। आज रसहीन हो गया; आज रस के स्रोत से उखड़ गया। आज चल पड़ा, गिर पड़ा। मिट्टी में गिरेगा, मिट्टी में मिल जाएगा। मिट्टी से ही उठा था, मिट्टी में ही वापस लौट आया। लाओत्सु को दिखाई पड़ाः हम भी क्या हैं? आज हरे, कल सूखे। आज मदमाते यौवन में, कल सब खो जाएगा। कुछ बचेगा नहीं। पर्याप्त था इतना, वैराग्य हो गया।
मैंने सुना है, बंगाल में एक परम साधु हुए। मजिस्ट्रेट थे हाईकोर्ट के, रिटायर्ड हो गए थे। सुबह-सुबह घूमने निकले थे। लाला बाबू उनका नाम था। सूरज निकलने को था। और तब कोई महिला अपने घर के भीतर अपने देवर को उठाती होगी, कहती थी कि लाला बाबू, उठो! ऐसे भी बहुत देर हो गई! सुबह हो गई, सूरज निकलने को है, यह समय सोने का नहीं, लाला बाबू, अब उठो! उसे तो बाहर गुजरते इस वृद्ध का कुछ पता भी न था। लाला बाबू अपनी लकड़ी लेकर घूमने निकले थे। वह तो किसी और को उठाती थी, अपने देवर को उठाती थी, लेकिन लाला बाबू ने बाहर सुना। सुबह का सन्नाटा होगा, ताजी हवा होगी, रात भर के विश्राम के बाद उठे होंगे, मन थोड़ा थिर होगा; सुसमय में, किसी शुभ घड़ी में वह वचन उनके कानों में पड़ा--लाला बाबू उठो। कब तक सोए रहोगे? ऐसे भी बहुत देर हो चुकी है, सूरज ऊगने-ऊगने को है! और जैसे एक क्रांति हो गई। वे घर नहीं लौटे। याद आया कि हां, उठने का समय आ गया। सुबह होने के करीब है, सूरज निकलने को है। जिंदगी तो रात थी, गुजर गई, अब मौत आती है। अब कुछ कर लूं। आगे की तैयारी कर लूं। अब लौट कर क्या जाना? जंगल का रास्ता पकड़ लिया।
घर के लोगों को खबर लगी, भागे! बहुत समझाया कि बात क्या हुई? उन्होंने कहा, कुछ बात नहीं हुई, बस समझ में आ गया कि लाला बाबू, उठो! बहुत देर वैसे ही हो चुकी, अब सुबह होने के करीब है! लोगों के तो कुछ समझ में नहीं आया। उन्होंने कहा, यह बात अचानक कैसे दोहराने लगे--लाला बाबू, उठो! उन्होंने कहा अचानक नहीं दोहरा रहा हूं; प्रभु का संदेश आ गया। कोई महिला जगाती थी अपने देवर को--उसे तो शायद पता भी न हो, लेकिन किस बहाने परमात्मा पुकार लेता है, कुछ कहा नहीं जा सकता।
पलटू कहते हैंः मुझे वैराग्य उत्पन्न हुआ मधुमक्खियों को देख कर। बूंद-बूंद, कण-कण इकट्ठा करती हैं। कितना श्रम? हजारों-हजारों मधुमक्खियों का श्रम, तब कहीं छत्ता भरता है। फिर आता है एक आदमी, मशाल जला कर, लूट ले जाता है! ऐसे ही जिंदगी को हम बसाते हैं, फिर आती है मौत मशाल लेकर चिता की तरह--लूट कर ले जाती है।
अरे हां, पलटू माया बुरी बलाय तजा मैं परखिकै।।
लेकिन एक बड़ी कीमत की बात कहते हैं कि यह मैंने ऐसे ही किसी और की बात सुन कर नहीं छोड़ दी माया, परखिकै... अपने ही अनुभव से जान कर, जाग कर, होशपूर्वक। यह वैराग्य उधार नहीं है। यह किन्हीं वैरागियों की चर्चा से नहीं है। किसी ने समझाया और मैंने मान लिया, ऐसा नहीं है। मैंने देखा, मैंने जाना, मैंने टटोला, मैंने जिंदगी की व्यर्थता, असारता को पहचाना, तब यह वैराग्य फलित हुआ है।
हम लेकर हृदय अधीर, प्राण में पीर, नयन में नीर चले
हम दीवाने युग-युग की बंदी प्राचीरों को चीर चले,
हम लिए अचल अनुराग हृदय में दाग आह में आग चले
हम लिए अनोखा एक निराला एक बेसुरा राग चले,
हम लिए एक अभिमान एक अरमान एक तूफान चले
हम परवाने ले दुनिया से जल मरने का सामान चले,
हम लेकर एक उसास, एक निःश्वास, एक उच्छवास चले
जो जनम-जनम तक बुझ न सके हम लेकर ऐसी प्यास चले,
हम एक अपरिचित प्राणों से क्षण-भर कर प्यार-दुलार चले हम मस्ताने इस जगती में कर मस्ती का व्यापार चले
हम कुचल हसरतें अपनी सब ले हार-जीत का दांव चले
हम कभी रुलाते, कभी हंसाते, लेकर एक अभाव चले,
हम चले झूमते झुकते-से झंझा का कुछ आभास लिए
हम चले किसी पर कभी कहीं मर मिटने का विश्वास लिए

हम जला होलिका जीवन की खुल खेल मृत्यु से फाग चले हम पाप-पुण्य से परे लिए अपना अनुराग-विराग चले। हम किधर चले? क्या बतला दें, चल दिए जिधर को राह मिली
हम जहां-जहां होकर निकले कुछ वाह मिली कुछ आह मिली
हम चले, चल पड़े क्योंकि हमें चलने वालों का संग मिला
हम ऐसे ही अलमस्तों का कुछ रंग मिला, कुछ ढंग मिला,
हम जग से नाता तोड़ एक से अपना नाता जोड़ चले
हम भला-बुरा इस जीवन का सब आज यहीं पर छोड़ चले,
देखोगे तो अनेक से नाता टूटने लगेगा, एक से नाता जुड़ने लगेगा। देखोगे, पहचानोगे, तो सत्संग खोजने ही लगोगे।
हम चले, चल पड़े क्योंकि हमें चलने वालों का संग मिला
हम ऐसे ही अलमस्तों का कुछ रंग मिला, कुछ ढंग मिला,
हम जग से नाता तोड़ एक से अपना नाता जोड़ चले
हम भला-बुरा इस जीवन का सब आज यहीं पर छोड़ चले,
एक अंतर-दशा है वैराग्य। अपरिग्रह का भाव है वैराग्य--मेरा यहां कुछ
भी नहीं। खेलो, अभिनय करो, पासे फेंको, शतरंज बिछाओ, मगर जानते रहनाः सब घोड़े झूठे, सब हाथी झूठे! खेल है। ज्यादा गंभीर मत होकर पकड़ लेना। जो गंभीर हुआ, वह रागी। जो गैर-गंभीर रहा, वह विरागी। जो उठ कर चल पड़े और पीछे लौट न देखे, वह विरागी।
फूलन सेज बिछाय महल के रंग में।
अतर फुलेल लगाय सुंदरी संग में।।
सूते छाती लाय परम आनंद है।
अरे हां, पलटू खबरि पूत को नाहिं काल कौ फंद है।।
लोग बिछा रहे हैं फूल, सेज बना रहे हैं; इत्र-फुलेल लगा रहे हैं; सुंदर पुरुषों, सुंदर स्त्रियों के साथ सपने सजा रहे हैं। सौंदर्य को आलिंगन लगा कर सोचते हैंः सब पा लिया। हड्डी-मांस-मज्जा की देह है। सब मिट्टी का खेल है।
अरे हां, पलटू खबरि पूत को नाहिं काल कौ फंद है।।
जिसको तुम प्रेम समझ रहे हो, वह मौत का जाल है। जिसको तुम आलिंगन समझ रहे हो, मौत ने ही तुम्हारे गले में हाथ डाला।
पलटू कहते हैंः बचकानापन न करो! अरे हां, पलटू खबरि पूत को नाहिं... बच्चू, इतनी सी बात खबर नहीं! जरा होश सम्हालो! थोड़े बालपन से जगो! थोड़ा बुद्धूपन छोड़ो! ऐसे ही कितने लोग धोखा खा गए! ऐसे ही कितने लोग धोखा खा रहे हैं! धन्यभागी है वह, जो धोखा खाने वालों की इस भीड़ में धोखे से बच जाता है और जग जाता है। जो क्षणभंगुर के रस से मुक्त हो जाता है। मगर पलटू यह नहीं कह रहे हैं कि तुम मेरी मानकर ऐसा करना। परिखकै! खुद जांच-परख कर लो। यह कोई सिद्धांत की बात नहीं है, यह जीवन का खरा अनुभव है।
खाला के घर नाहिं, भक्ति है राम की।
दाल भात है नाहिं, खाए के काम की।।
साहब का घर दूर, सहज ना जानिए।
अरे हां, पलटू गिरे तो चकनाचूर, बचन को मानिए।।
खाला के घर नाहिं, भक्ति है राम की।... एक बात, कहते हैं याद रखना--सत्य
की तलाश में चलो तो कोई मौसी के घर नहीं जा रहे हो! सत्य की तलाश में चलो तो, तैयारी रखना, दुस्साहस है। सत्य की तलाश इस जगत में सबसे बड़ा अभियान है। कायरों के लिए नहीं, वीरों के लिए है। धन तो कोई भी खोज लेता है, पद कोई भी खोज लेता है। बुद्धू भी धनी हो जाते हैं, बुद्धू भी पदों पर पहुंच जाते हैं। धन और पद का बुद्धि से कोई संबंध नहीं है। सच तो यह है कि जिनके पास बुद्धि है, वे क्यों धन और पद खोजेंगे? बुद्धि है बुद्ध के पास। बुद्धि है महावीर के पास। बुद्धि है कबीर के पास। धन और पद की तलाश नहीं है। असल में बुद्धू हों और जिद्दी हों तो धन और पद की तलाश में सफलता मिलना बिल्कुल आसान है। दो गुण चाहिएः बुद्धूपन और जिद्दीपन। फिर जूझ जाते हैं लोग!
धन और पद की यात्रा में समझदार जाएगा क्यों? किस कारण? कल की तो खबर नहीं है। कल सुबह होगी या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। धन और पद के लिए आज

को कोई क्यों गंवाएगा? अगर खोजना ही है तो उसको खोजें जो आज भी है, कल भी है और सदा है। मगर उसकी खोज आसान नहीं है।
कठिनाई क्या है?
कठिनाई उसकी तरफ से नहीं है, यह ख्याल रखना, नहीं तो भूल हो जाएगी।
कठिनाई तुम्हारी तरफ से है। तुम्हारे चित्त की आदतें इतनी जटिल, इतनी उलझी, इतनी पुरानी हो गई हैं कि उन आदतों के बाहर आना कठिन है। अन्यथा वह तो सहज है। इसलिए तुम विरोधाभास मत देखना।
संत एक ओर तो कहते हैं कि परमात्मा सहज है। अभी मिल सकता है, इसी क्षण।
और दूसरी तरफ ऐसा वचन भी बोलते हैंः साहब का घर दूर, सहज ना जानिए। ये दोनों बातें ठीक हैं, इनमें विरोधाभास नहीं है। जब साहब की तरफ देखते हैं तो लगता हैः बिल्कुल सहज; मालिक तो मिला ही हुआ है। दूर कहां? पास से भी पास। जब तुम्हारी तरफ देखते हैं, तो लगता हैः साहब बहुत दूर; मिलना बहुत मुश्किल। तुम्हारी आदतें ऐसी गलत हैं। तुम्हारे सोचने-समझने के ढंग ऐसे भ्रांत हैं। तुम्हारा चित्त सपनों में कुशल हो गया है, इसलिए सत्य से दूर हो गया है।
एक आदमी सोया है, सपने देख रहा है। सवाल हैः जागरण से यह आदमी कितनी दूर है? ऐसे तो कुछ भी दूरी नहीं। हिला दो, नींद टूट जाए--अभी, इसी क्षण टूट जाए! मगर यह भी हो सकता है, यह जागने को राजी ही न हो। तुम हिला भी दो और यह करवट लेकर फिर सो जाए। क्योंकि यह एक ऐसा प्यारा सपना देख रहा था और उस सपने को नहीं छोड़ना चाहता।
मैं इलाहाबाद में था... बोल रहा था... एक मित्र सामने ही बैठे थे... विश्वविद्यालय में प्रोफेसर हैं। चूंकि सामने ही थे, इसलिए मैं देखने से चूक भी नहीं सका कि उनकी आंखों से झर-झर आंसू बह रहे थे--और फिर वे बीच में ही उठ गए। बीच में ही उठे तो और भी मेरे ख्याल में आ गए। उनकी पत्नी भी थी। जब मैं बाहर निकल रहा था बोल कर, तो उनकी पत्नी से मैंने पूछा कि क्या हुआ, तुम्हारे पति को क्या हुआ? इतने भाव-विह्वल होकर रो रहे थे, बीच से उठ क्यों गए? कोई बहुत जरूरी काम था? पत्नी हंसने लगी, उसने कहा कि कल मैं उनको लेकर आपके पास आऊंगी, आप ही उनसे पूछ लेना।
दूसरे दिन वह उनको लेकर आई। मैंने उनसे पूछा, क्यों बीच से उठ गए? उन्होंने कहा कि इसलिए उठ गया कि आधी बात सुनी और मन ऐसा आतुर होने लगा कि चल पडूं इस राह पर! फिर डर लगा। पत्नी है, बच्चा है, परिवार है, अच्छी नौकरी है! और तब मुझे ऐसा लगा कि पूरी बात सुननी अभी ठीक नहीं। मैं डर के कारण उठ गया। मैं ऐसा भाव-विह्वल हो रहा था कि मुझे यह भय सताया कि अगर यह बात मेरी समझ में पूरी आ गई तो मैं घर वापस न लौट सकूंगा। आप मुझे क्षमा करें। बीच से उठना उचित नहीं था, अशिष्ट था। सामने ही बैठा था, इसलिए बहुत देर मैंने संकोच भी किया। लेकिन अपनी जिंदगी बचाऊं कि शिष्टाचार?
मुझे उनकी बात समझ में आई। मैंने उनसे कहाः परमात्मा तो पास है। इतने पास था कि तुम शायद आधा घड़ी और बैठे रह गए होते तो एक नये जीवन की शुरुआत हो गई होती। बस मंजिल करीब आते-आते छूट गई, किनारा पास आते-आते दूर हो गया! तुमने नाव दूसरी तरफ मोड़ दी!
संत एक तरफ कहते हैंः वह सहज है। उससे सहज और क्या होगा? क्योंकि वह हमारा स्वभाव है। वह हमारे भीतर विराजमान है। उससे ही तो हम जन्मे हैं। वही तो हमारा मूल उदगम स्रोत है। हम गंगा हैं तो वह गंगोत्री है। हम गंगा हैं तो वह गंगासागर है। वही स्रोत है, वही अंतिम मंजिल है। दूर कैसे? पास से भी पास है।
मोहम्मद ने कहाः यह जो तुम्हारी सांस धड़कती है, उससे भी वह ज्यादा पास है। उपनिषद कहते हैंः वह पास से भी पास और दूर से भी दूर। दूर है तुम्हारे कारण, पास है उसके कारण। मगर सवाल तो तुम्हारा है। वह तो तुम्हारे पास भी आकर खड़ा हो और तुम आंख न खोलो! वह तुम्हारे हाथ में हाथ दे और तुम हाथ झटक लो! वह तुम्हारे पीछे छाया की तरह चलता रहे लेकिन तुम लौट कर न देखो! सूरज भी निकला हो और तुम आंखें बंद किए खड़े रहो तो सूरज क्या करे?
इसलिए विरोधाभास मत समझना।

खाला के घर नाहिं, भक्ति है राम की।
दाल भात है नाहिं, खाए के काम की।।
आसान नहीं है, कि दाल-भात की तरह खा लिया। पीओगे तो पहले तो जहर मालूम पड़ेगा। क्योंकि तुम्हारी आदत जहर को पीने की पड़ गई है। तुम्हें जहर अमृत।
जैसा मालूम पड़ता है। तो अमृत जहर जैसा मालूम पड़ेगा। एक घूंट गले से न उतरेगी। तुम्हारा सारा प्राण जन्मों-जन्मों से गलत का अभ्यासी हो गया है। झूठ में तुम ऐसे रच-पच गए हो कि सत्य को अपने भीतर न ले जा सकोगे। ले भी जाओगे तो असत्य करके ले जाओगे। विकृत करके, तोड़-फोड़ कर।
मैंने सुना है, जर्मनी के एक विचारक कैसरलिंग... संयोगवशात कैसरलिंग
के बेटे का बेटा यहां संन्यासी है, मौजूद है।... काउंट कैसरलिंग के पास एक जापानी केटली, कप, चाय का पूरा का पूरा सेट था। नौकर की भूल से केटली गिर पड़ी, टुकड़े-टुकड़े हो गई। बहुत बहुमूल्य केटली थी, बहुत प्राचीन थी। किसी झेन फकीर ने भेंट दी थी।... काउंट कैसरलिंग पूरब की यात्राओं पर आए थे, बहुत बार, ईश्वर की तलाश में... भारत में भी वर्षों घूमे थे। जापान भी गए थे।... बड़े दुखी हुए। केटली को किसी तरह जोड़-जाड़ कर वापस जापान भेजा, किसी बड़े कारीगर के पास कि ठीक ऐसी केटली वापस बना कर भेज दी जाए; जो भी दाम होंगे, दूंगा।
कोई छह महीने के बाद उस जापानी कुशल कारीगर ने केटली बनाकर भेजी। कैसरलिंग ने बड़ी उत्सुकता से पार्सल खोली, फिर सिर ठोंक लिया! उस जापानी ने क्या किया? ... दोनों भेज दी थीं। जो इन्होंने भेजी थी, वह भी, ताकि तुम मिला लो। और नई भी भेजी थी।... बिल्कुल वैसी ही बनाई थी, सिर्फ एक भूल हो गई। वह भी भूल काउंट कैसरलिंग की खुद की थी। जैसी पहली केटली टुकड़े-टुकड़े होकर जुड़ी थी, वैसे ही उसने टुकड़े-टुकड़े करके जोड़ कर दूसरी केटली भी भेज दी। बिल्कुल ठीक वैसी। जरा रत्ती भर भेद नहीं था। भूल तो काउंट कैसरलिंग की थी, साफ लिखना था, उन्हें क्या पता! लेकिन भूल होना स्वाभाविक थी। लेकिन जापानी कलाकार भी क्या करे? जब उससे कहा गया कि ठीक ऐसी, तो पुरानी आदत, जीवनभर का संस्कार... चीज जैसी है वैसी ही बनाने में उसकी प्रसिद्धि थी... तो उसने बना दी केटली, लेकिन वैसे ही टुकड़े! ठीक वैसे ही टुकड़े!
एक तुम्हारा चित्त है, जन्मों-जन्मों की एक उसकी कुशलता है। वह सत्य
को भी जब अपने भीतर ले जाता है तो उसको टुकड़े-टुकड़े कर लेता है, झूठ की तरह जमा लेता है। वह सत्य को भी सत्य की तरह नहीं पी सकता। पहले उसे असत्य करेगा, तब पीएगा। वह सत्य को भी जब तक खंड खंड न कर ले... । झूठ को आत्मसात करने की आदत इतनी पुरानी है कि अब तुम सिर्फ झूठ को ही आत्मसात कर सकते हो। सत्य भी तुम्हारे द्वार पर झूठ की तरह आए तो ही तुम स्वागत कर सकते हो। अन्यथा तुम स्वागत न कर सकोगे।
इसलिए बुद्धों का तो तुम स्वागत नहीं करते, पंडितों का, पुरोहितों का स्वागत करते हो।
पंडित-पुरोहित कौन हैं?
जो सत्य को इतना झूठ कर देते हैं कि वह तुम्हारे पचाने के योग्य हो जाता है। जो सत्य को इतना विकृत कर देते हैं, इतना लीप-पोत देते हैं कि तुम्हारी झूठी दुनिया में समाविष्ट हो सके। पंडित-पुरोहित बुद्धों और तुम्हारे बीच एक महान कार्य में संलग्न होते हैं। वह महान कार्य यह है कि वे सत्य में से सत्य छीनते हैं और सत्य को झूठ को वस्त्र पहनाते हैं। कठिनाई परमात्मा की तरफ से नहीं है।
साहब का घर दूर, सहज न जानिए।
वह दूरी तुम्हारे ही भीतर है। तुम्हारे भीतर जितना चित्त का फैलाव है, जितने विचारों की भीड़ है, उतनी दूरी है। विचार कम होते जाएं, दूरी कम हो जाएगी। एक कदम नहीं उठाना है परमात्मा तक पहुंचने के लिए; सिर्फ विचार से खाली हो जाओ! निर्भार हो जाओ! निर्विचार हो जाओ! निर्विकल्प हो जाओ! और परमात्मा अपने भीतर आंख बंद किए-किए, अपने घर में बैठे-बैठे उपलब्ध हो जाता है।
जिस दिन परमात्मा पाया जाता है, उस दिन यह भी कहना ठीक नहीं मालूम होता कि मैंने परमात्मा पाया।

बुद्ध को जब पहली दफा ज्ञान हुआ और आकाश से देवता उतरे और ब्रह्मा ने उनकी पूजा की और पूछा कि आपको क्या मिला? तो बुद्ध हंसे और उन्होंने कहाः मिला कुछ भी नहीं, हां, खोया जरूर कुछ। अपने को खोया। और मिला? मिला कुछ भी नहीं। ब्रह्मा ने कहाः उलझाइए मत। सीधी-साफ बात करिए। आप सत्य को उपलब्ध हो गए हैं, यही सोच कर तो हम आपकी पूजा-प्रार्थना को आए और आप कहते हैंः कुछ मिला नहीं! बुद्ध ने कहाः फिर दोहराता हूं कि कुछ नहीं मिला। जो मिला ही हुआ था, उसको जाना। उसको मिलना कैसे कहें? वह मेरे भीतर मौजूद ही था, सिर्फ मुझे पता नहीं था; होश नहीं था, सुरति नहीं थी, स्मृति नहीं थी।
जैसे खजाना गड़ा हो घर में और तुम भूल गए कि कहां गड़ाया है। और फिर एक दिन तुम्हें याद आ गई या नक्शा हाथ लग गया और तुमने खजाना खोद लिया। तो कुछ पाया? पाए हुए को ही पाया तो इसको पाना क्या कहना!
बुद्ध ठीक कहते हैं कि मैंने खोया कुछ। खोया अपना अहंकार, खोया अपना अज्ञान, खोई अपनी जड़, अंधी आदतें, खोया अपना चित्त, मन, मन का व्यापार। पाया? पाई समाधि, जो कि सदा से ही मेरे भीतर मौजूद थी। जिस दिन भी विचारों की भीड़ को विदा कर देता, उसी दिन मिली थी।
अरे हां, पलटू गिरे तो चकनाचूर, बचन को मानिए।।
पलटू कहते हैं, लेकिन एक बात तुम्हें याद दिला दूं, इस सत्य की खोज में बहुत होश से चलना; क्योंकि गिरे तो चकनाचूर... ! स्वभावतः। जो लोग समतल भूमि पर चलते हैं, राजपथ पर चलते हैं, वे गिर भी पड़ें तो चकनाचूर नहीं हो जाएंगे। लेकिन हिलेरी और तेनजिंग अगर एवरेस्ट से गिरेंगे, तो चकनाचूर नहीं होंगे तो क्या होंगे? जितनी ऊंचाई पर चढ़ोगे उतना ही चकनाचूर होने का डर है।
इसलिए हमारी भाषा में एक शब्द हैः योगभ्रष्ट। लेकिन भोग-भ्रष्ट शब्द नहीं है। भोगी भ्रष्ट हो ही नहीं सकता। और कहां गिरेगा? गिरने को अब कोई जगह नहीं बची। वे पहले से ही बैठे हैं वहां जहां कोई गिर सकता था! स्वर्ग से तो भ्रष्ट होते हैं लोग, नरक से भ्रष्ट नहीं होते। तुमने सुना कभी कि कोई नरक से भ्रष्ट हो गया और नरक से निकाल दिया गया? हां, अदम को स्वर्ग से तो निकाला गया, नरक से तो किसी को नहीं निकाला जा सकता। निकालोगे तो भेजोगे कहां? और तो कोई जगह ही नहीं उससे नीचे। इसलिए योगी भ्रष्ट हो सकता है। इसका इतना ही अर्थ है कि योगी ऊंचाइयों पर उड़ता है।
जितनी ऊंचाइयों पर उड़ते हो, उतने ही पंख टूटने का डर है। पर्वत-शिखरों
पर चढ़ोगे, जैसे-जैसे ऊंचाई करीब आएगी, श्वास लेना मुश्किल होने लगता है। जैसे-जैसे ऊंचाई करीब आएगी, थोड़ा सा भार भी बहुत भारी हो जाता है। जैसे- जैसे ऊंचाई करीब आएगी, वैसे ही रास्ते संकरे और खतरनाक होने लगते हैं। और एक पैर चूका कि फिर बचने का उपाय नहीं!
झेन फकीर रिंझाई अपने शिष्यों से एक प्रयोग करवाता था। उसने अपने आश्रम में एक फीट चौड़ी और सौ फीट लंबी एक लकड़ी की पट्टी बनवा रखी थी। वह लोगों से कहता कि इस पर चलो। लोग बड़े हैरान होते कि इसमें कौन सी खूबी की बात है? बच्चे भी चल जाते, बूढ़े भी चल जाते। एक फीट चौड़ी, सौ फीट लंबी लकड़ी की पट्टी आश्रम में रखी थी, उस पर चलने को कहता वह। जो भी कोई उससे पूछता कि ध्यान क्या है, वह कहताः जरा ठहरो। फिर लकड़ी को उठवा कर आश्रम के दो मकानों की छतों पर रखवा देता। अब कहताः अब चलो! वही लकड़ी--एक फीट चौड़ी, सौ फीट लंबी--मगर अब दो छतों के बीच में रखी है! अब गिरे तो गए काम से! जो लोग मजे से चल गए थे उस लकड़ी पर, उनके भी हाथ-पैर कंपने लगते। वे कहते कि अब नहीं चल सकते। लेकिन रिंझाई कहता कि फर्क क्या है? तुम्हें क्या भेद पड़ता है लकड़ी कहां रखी है? जमीन में रखी है कि आसमान में रखी है, क्या फर्क पड़ता है? उतनी ही चौड़ी है, उतनी ही लंबी है, वही तुम हो--तुम में और लकड़ी में कोई फर्क नहीं, लकड़ी कहां रखी है, इससे फर्क क्या पड़ता है? वे लोग कहते, हम समझ गए आपका मतलब। अब कृपा करो, मगर चलवाओ मत।
रिंझाई उस लकड़ी पर चलता। कुछ अपने शिष्य, जो ध्यान में गहरे उतर गए थे, उनको चलवाता। कहता कि ये चल रहे हैं। तुम भी चल सकते हो। मगर नये लोग तो बहुत घबड़ाते, कि यह जान का खतरा है इसमें।

क्या खतरा है? क्योंकि अब होश से चलना होगा। जमीन पर रखी थी, सोए-सोए
भी चल गए तो चल गया। गिर भी जाते तो क्या हर्जा था? गिरते तो गिरते कहां! पैर भी नहीं मोचता। अब गिरे तो सिर भी टूट सकता है। अब होश से चलना होगा। जितनी ऊंचाई, उतना होश। और जितना होश, उतनी ऊंचाई। अन्योन्याश्रित हैं।
ऊंचाई बढ़ती है, होश बढ़ाना पड़ता है। होश बढ़ता है, ऊंचाई बढ़ती है। जिस दिन परम ऊंचाई पर तुम पहुंचते हो, उस दिन परम होश। और जब परम होश होता है, तो परम ऊंचाई।
अरे हां, पलटू गिरे तो चकनाचूर, बचन को मानिए।।
इसलिए बहुत सम्हल कर चलना, बहुत होशपूर्वक चलना।
पहिले कबर खुदाय, आकिस तब हूजिए।
इसलिए तैयारी से चलना। पहले कब्र खुदा लेना और फिर आशिक होना।
पहिले कबर खुदाय, आसिक तब हूजिए।
सिर पर कप्फन बांधि, पांव तब दीजिए।।
जब इतनी तैयारी हो, प्राणों को गंवाने की, तो फिर कोई हर्जा नहीं है।
जीवन को चढ़ा देने की सामर्थ्य हो, तो महाजीवन मिलता है। निश्चित मिलता है! लेकिन यह कोई सस्ता सौदा नहीं है। इससे महंगा और सौदा क्या होगा!
आसिक को दिनराति नाहिं है सोवना।
प्रेमी को सोना कहां है? जागना ही जागना है।
अरे हां, पलटू बेदर्दी मासूक दर्द कब खोवना।।
एक क्षण को भी प्रेमी का दर्द नहीं खोता। पीड़ा उसके हृदय में गूंजती
ही रहती है। पीर उसके रोएं-रोएं में समाई होती है। स्मरण प्रीतम का बना ही रहता है--नींद में भी।
सौ सौ जन्म प्रतीक्षा कर लूं,
प्रिय मिलने का वचन भरो तो!

पलकों पलकों शूल बुहारूं
अंसुअन सींचूं सौरभ-गलियां।
भंवरों पर पहरा बिठला दूं
कहीं न जूठी कर दें कलियां।

फूट पड़े पतझर से लाली,
तुम अरुणारे चरण धरो तो!

लट बिखराए जोग रमाए
प्रीत कुमारी तुम्हें बुलाए। बैरन पीड़ा तुम बिन मन में बिना धुएं का हवन कराए।

सांस सांस फिर रास रचा ले, बन घनश्याम उमड़ बिखरो तो!

रात न मेरी दूध नहाई
प्रात न मेरा फूलों वाला। तार तार हो गया निमोही
काया का रंगीन दुशाला।

जीवन सिंदूरी हो जाए,
तुम चिवन की किरन करो तो!

सूरज को अधरों पर धर लूं
काजल कर डालूं अंधियारी। युग-युग के पल-छिन गिन-गिन कर बाट निहारूं प्राण तुम्हारी!

सांसों की जंजीरें तोडूं,
तुम प्राणों की अगन हरो तो!
सौ सौ जन्म प्रतीक्षा कर लूं,
प्रिय मिलने का वचन भरो तो!

सांसों की जंजीरें तोडूं,
तुम प्राणों की अगन हरो तो! ...
... श्वास-श्वास में पुकार, धड़कन-धड़कन में स्मृति; न सोते चैन, न आगे चैन; दिन और रात का भेद मिट जाता है प्रेमी को। जब ऐसी स्मृति पकड़ लेती है कि तुम भुलाना भी चाहो तो भुला न सको, तभी जानना कि मिलन संभव है।
तब तो हर तरफ से उसके इशारे मिलने लगते हैं--
महुए के पीछे से झांका है चांद
पियाऽ आ!

आंगन में बिखराए जूही के फूल
लहरों पर तिर आए सपनों के कूल
नयन मूंद लो, बड़ा बांका है चांद
पियाऽ आ!

बांट गईं सांझिन हवाएं पराग बांकी स्वर लौट गए शेष वही राग टेसू के फूल-सा टहाका है चांद
पियाऽ आ!

प्रीति से नहाया है तन का हिरन
चुपके से चुनता है क्वांरी किरन
जीतो तो इससे, लड़ाका है चांद
पियाऽ आ!
परमात्मा को भक्त प्रेमी की तरह खोजता है। परमात्मा उसके लिए प्रियतम है--या प्रियतमा है। तब सुबह ऊगते सूरज में भी वही है, चांद में भी वही है; अंधेरे में भी वही है; प्रकाश में भी वही है; पूर्णिमा भी उसकी, अमावस भी उसकी; लोगों में भी वही; चारों तरफ उसका मंदिर निर्मित होने लगता है। सारा अस्तित्व उसका मंदिर हो जाता है। चांद-तारे उसके मंदिर की सजावट हो जाते हैं।
जो तुझको है चाह सजन को देखना।
करम भरम दे छोड़ि जगत का पेखना।।
बांध सूरज की डोरि शब्द में पिलैगा।
अरे हां, पलटू ज्ञान ध्यान के पार ठिकाना मिलैगा।।
जो तुझको है चाह सजन को देखना।... उस प्यारे को अगर देखना हो, साजन को अगर देखना हो, तो एक बात छोड़ दो--करम भरम दे छोड़ि जगत का पेखना। यह ख्याल छोड़ दो कि तुम्हारे करने से कुछ होगा। परमात्मा तुम्हारे कृत्य से नहीं पाया जाता, तुम्हारी प्रीति से पाया जाता है। आरती उतारो, व्रत-उपवास करो, नग्न होकर जंगलों में भटको, करो लाख उपाय, तुम उसे न पा सकोगे। और कुछ भी न करो सिर्फ उसकी सुरति तुम्हारे भीतर उतर जाए, सिर्फ उसकी गूंज तुम्हारी श्वास-श्वास में समा जाए और वह मिला; निश्चित ही मिला। देर नहीं होगी मिलने में।
करम भरम दे छोड़ि जगत का पेखना।
यह जो कर्म का भ्रम है कि मैं कुछ कर लूंगा, धन में चल जाता है, पद में
चल जाता है, प्रार्थना में नहीं चलता। लेकिन हमने प्रार्थना को भी कर्म बना लिया है! लोग कहते हैं--प्रार्थना की या नहीं? आज प्रार्थना की या नहीं? प्रार्थना कहीं की जाती है! पूछना चाहिएः आज प्रार्थना में हुए या

नहीं? कर्म की भाषा ठीक नहीं है प्रार्थना के संबंध में। वह तो डुबकी मारना है। भावना है, कृत्य नहीं।
इस भेद को ठीक से समझ लो।
संसार में जो भी पाया जाता है, कृत्य से पाया जाता है। और परमात्मा में जो भी पाया जाता है, झोली फैला कर पाया जाता है, कृत्य से नहीं। जो भी पाया जाता है, हृदय को खोल कर पाया जाता है। श्रम से नहीं, विश्राम में पाया जाता है।
तुमने यह क्या कर दिया कि मैं गाता हूं।
भर भर आता है हिया कि मैं गाता हूं।
भक्त कुछ नहीं करता, परमात्मा कुछ करता है। भक्त तो सिर्फ करने देता है। भक्त का अर्थ हैः जो परमात्मा को बाधा नहीं डालता। जो कहता हैः जो तेरी मर्जी! तू कर! बाएं चला तो बाएं, दाएं चला तो दाएं; उठा तो उठा, गिरा तो गिरा! सुख दे तो सुख, दुख दे तो दुख! तू जो दे, चूंकि तू देने वाला है, इसलिए सबका स्वागत है! छेड़ मेरी वीणा को, संगीत उठा, कि गीत का, कि बांसुरी बजा, कि मुझे मौन में छोड़ दे, तू जो कर, मैं तेरे हाथ में हूं!
तुमने यह क्या कर दिया कि मैं गाता हूं।
भर भर आता है हिया कि मैं गाता हूं।
यह कौन आग है मीठी मीठी मन में,
भीतर भीतर तुमने कैसे सुलगाई?
कुछ ऐसे झनका दिए तार वीणा के,
हर सांस गीत बनकर अधरों तक आई,
यों तो मिट्टी थी इसमें, ऐसा क्या था? तुमने सोना कर लिया कि मैं गाता हूं। भर भर आता है हिया कि मैं गाता हूं।

जैसे सावन की सन-सन-सनन समीरन-लतिकाओं के तन-मन पुलका जाती है, जैसे कि ओस की बूंद शिथिल फूलों का-- सौरभ पराग छूकर छलका जाती है,
जैसे अमराई महके तो कोयल के--
--पागल प्राणों की हूक बहक उठती है, वैसे ही बहका बहका प्राण पपीहा,
रह रह पुकारता पिया कि मैं गाता हूं। भर भर आता है हिया कि मैं गाता हूं।

कोई जादू है, इंद्रजाल है कोई,
ऐसा वरदान कहां से तुमने पाया?
जिस पत्थर को छू लिया, जगत ने पूजा जिसके भीतर बस गए, प्राण कहलाया,
लगता है, जड़-तन में कुछ चेतन भी है
जो गा देता हूं दुनिया दुहराती है
तुमने ही तृण को वंशी बना दिया है,
मैंने ऐसा क्या किया कि मैं गाता हूं।
भर भर आता है हिया कि मैं गाता हूं।
भक्त तो चौंकता है जब उसके भीतर गीत उठने लगते हैं, जो उसके गाए हुए नहीं। भक्त तो चौंकता है जब उसके हृदय में प्रार्थनाएं जगने लगती हैं, जो कि उसकी निर्मित नहीं। जब उसके भीतर गायत्री जगती है, ओंकार का नाद होता है, तब भक्त वैसा ही अवाक रह जाता है--चमत्कृत--जैसे तुम्हारे सामने कोई अनूठी घटना घट जाए। कोई ऐसी घटना घट जाए जो प्रकृति के नियम के अनुकूल नहीं है। कि पत्थर चलने लगे, कि पत्थर में पंख लग जाएं और पत्थर उड़ने लगे। कुछ ऐसी घटना जब भक्त के भीतर घटती है तो वह भी चौंक जाता है।
क्यों?

क्योंकि मैंने तो किया नहीं, यह प्रार्थना कैसे हो रही है? मैंने तो किया नहीं, यह अर्चना कैसे जगी है? मैंने तो फूल सजाए नहीं, मैंने तो आरती उतारी नहीं, आरती उतर रही है!
प्रेम इस जगत में सबसे बड़ा जादू है। उससे बड़ा कोई जादू नहीं है। भक्त प्रेम के जादू में डूब जाता है।
जो तुझको है चाह सजन को देखना।
करम भरम दे छोड़ि जगत का पेखना।।
बांध सूरज की डोरि सब्द में पिलैगा।
स्मृति की डोर बांधो। याद की डोर बांधो। बस कच्चा धागा याद का काफी है। और उस स्मृति के धागे को पकड़ कर चल पड़ो। गहरी डुबकी मारो।
जिसको बुद्ध ध्यान कहते हैं, उसकी को भक्त सुरति कहते हैं। असल में बुद्ध से ही आया शब्द। बुद्ध ने कहा हैः सम्मासति। सम्यक स्मृति। वही स्मृति शब्द लोक व्यवहार में घिसते-घिसते सुरति हो गया। लोक-व्यवहार शब्दों को गोलाई दे देता है। स्मृति में थोड़े कोने हैं। सुरति, घिस-पिस गई। जैसे नदी में तुम एक पत्थर डाल दो। घिसटता-पिसटता, चलता, धक्के खाता, गुजरता जब पहुंचेगा समुद्र तक, तो तुम पाओगे गोल हो गया; शंकरजी की पिंडी हो गई। शंकरजी की पिंडी ऐसे ही बनती है। एक गोलाई आ जाती है। गोलाई में एक सौंदर्य है, एक स्त्रैणता है। स्मृति शब्द में थोड़ा पुरुष-भाव है। सुरति प्यारी हो गई, ज्यादा रसपूर्ण हो गई।
इसीलिए कोई भाषा ऊपर से नहीं थोपी जा सकती। और जब भी कोई भाषा ऊपर से थोपी जाती है, जो सदियों-सदियों में घिसती-पिसती नहीं, वह बड़ी बेहूदी लगती है।
ऐसी कोशिश इस देश में की गई। डाक्टर रघुवीर ने एक पूरी की पूरी हिंदी भाषा गढ़ डाली। क्योंकि अंग्रेजी के बहुत से शब्द हैं जो पुरानी हिंदी में नहीं हैं--होंगे भी कैसे--और उनका उपयोग करना जरूरी है, तो रघुवीर ने भाषा गढ़ ली। डाक्टर रघुवीर से मेरा एक बार मिलना हुआ। मैंने उनसे कहा कि आप शब्द गढ़ने में तो कुशल हैं, लेकिन शब्दों में नोकें हैं, उनमें गोलाई नहीं है। और मैंने यही उदाहरण दिया, जैसे--स्मृति और सुरति। स्मृति संस्कृत है, सुरति लोकभाषा। स्मृति पंडित का शब्द है, सुरति अपढ़ अज्ञानी का। लेकिन जो सुरति में मजा है, वह स्मृति में नहीं है।
डाक्टर रघुवीर ने बड़े-बड़े शब्द गढ़े। मगर गढ़े हुए शब्द कृत्रिम। लोक-व्यवहार में आ न सके। रघुवीर की भाषा मर गई। और न केवल रघुवीर की भाषा मर गई, रघुवीर के कारण हिंदी का राष्ट्रभाषा होना असंभव हो गया। क्योंकि उन्होंने जो शब्द दिए... जैसे, रेलगाड़ी के लिएः लौह-पथ-गामिनी। बिल्कुल ठीक अनुवाद कर दिया। रेल यानी लौह-पथ; लौह-पथ पर जो दौड़ती है--गामिनी। शब्द तो खूब गढ़ा। लेकिन गढ़ा हुआ है, थोथा है। लोकभाषा ने घिसा नहीं। लोकभाषा घिस देती है और चीजों को बड़ा प्यारा कर देती है। जैसे, अंग्रेजी शब्द हैः रिपोर्ट। गांव के किसान से पूछो, वह कहता हैः रपट लिखवा दी? रपट। यह ठीक अनुवाद है। अगर हिंदी को वह राष्ट्रभाषा बनना हो, तो रपट... । यह जो गांव का आदमी है, इसको अंग्रेजी का कुछ पता नहीं, मगर रपट--कैसी रपट आती है जबान से! रिपोर्ट, जरा अटकती है। रिपोर्ट जरा उधार मालूम होती है। सुगम नहीं, सरल नहीं।
बांध सूरत की डोरि सब्द में पिलैगा।
बांध लो स्मृति का धागा, डोर! जैसे कोई कुएं में डोर लटकाता है, ऐसे स्मृति की डोर लटका दो अपने हृदय के कुएं में और उसी डोर के सहारे उतर जाओ। अरे हां, पलटू ज्ञान ध्यान के पार ठिकाना मिलैगा।।
खूब कीमती बात कही! ज्ञान के ही पार नहीं, ध्यान के भी पार। क्यों? ज्ञान तो उधार है, बासा है--समझ में आता है। कि ज्ञान से कभी किसी को नहीं मिला; ज्ञान से कभी कोई ज्ञानी नहीं हुआ। ज्ञान तो अज्ञान को छिपा लेता है, बस। ज्ञान तो धोखा देता है। अज्ञानी को ज्ञानी बना देन का भ्रम पैदा कर देता है। ज्ञान तो आडंबर है। मूढ़ रट लेता वेद के वचन और ज्ञानी मालूम होने लगता है। जैसे अंधा प्रकाश के संबंध में बात करने लगे और बहरा संगीत की

चर्चा छेड़ दे। ऐसा मूढ़ गीता, कुरान, बाइबिल को दोहराने लगता है। बस दोहरा सकता है। ऊपरी सिखावन है, उसके भीतर कोई अनुभव नहीं।
इसलिए ज्ञान के तो पार है ही, मगर पलटू ने तो और भी गजब किया, कहाः ध्यान के भी पार। क्यों? क्योंकि ध्यान शब्द में भी ऐसा लगता है जैसे, कुछ करना। ध्यान भी क्रिया है। ध्यान में भी करने की अकड़ बनी रहती है। प्रेम तो होता है, ध्यान किया जाता है। प्रेम किया नहीं जाता। इसलिए तो हम कहते हैं कि क्या करें, मेरा उससे प्रेम हो गया। तुमसे कोई अगर कहे, करो इसको प्रेम, सरकारी आज्ञा है! तो तुम क्या करोगे? तुम कहोगे, भाई, आज्ञा है तो ठीक है; कोशिश करते हैं। ऐसे ही तो लोग कोशिश कर रहे हैं, सरकारी आज्ञा के अनुसार। पति पत्नियों को प्रेम कर रहे हैं, पत्नियां पतियों को प्रेम कर रही हैं, मां-बाप बेटों को प्रेम कर रहे हैं, बेटे मां-बाप को प्रेम कर रहे हैं--सरकारी आज्ञा है। अब पत्नी है तो उसको तो प्रेम करना ही पड़ेगा। लेकिन जो प्रेम करना पड़े, वह झूठा होगा।
प्रेम करना नहीं पड़ता, प्रेम होता है। तुम्हारे बस के बाहर है। तुम परवश होते हो। तुम न करना चाहो तो भी कुछ नहीं हो सकता। ऊपर से उतरता है। किसी अलौकिक लोक से आता है।
और पति-पत्नी का प्रेम ही नहीं, शिष्य और गुरु के बीच जो प्रेम की अपूर्व घटना घटती है, वह भी किए-किए नहीं होती। लाख करो, चूक जाओगे। और किसी तरह कर ली तो झूठी होगी, मिथ्या होगी, व्यवहार मात्र होगी। हृदय सूखा का सूखा रह जाएगा, रसधार न बहेगी। यह प्रेम भी हो जाता है।
इसीलिए तो कोई शिष्य नहीं समझा सकता कि क्या हो गया है उसे।
मेरे पास जो लोग संन्यस्त हुए हैं, उनकी अड़चन... ! मेरे पास रोज पत्र आते हैं। लोग कहते हैं कि अच्छी झंझट में हम पड़ गए। जो देखो वही पूछता है कि तुम्हें क्या हो गया? तुमने क्यों संन्यास लिया? चूंकि हम आंखें फाड़े रह जाते हैं और कुछ उत्तर दे नहीं पाते--क्योंकि जो उत्तर सही है, वह वे नहीं समझ सकते। अगर हम कहते हैंः क्या करें, प्रेम हो गया! तो वे कहते हैं, प्रेम-वेम कुछ नहीं, तुम सम्मोहित हो गए हो। तुम पर कोई जादू-टोना कर दिया गया है। ऐसे कहीं होता है! हम भी गए थे! हमें कुछ नहीं हुआ। तुम्हें कैसे हुआ?
प्रेम अव्याख्य है, अनिर्वचनीय है। और अव्याख्य है, अनिर्वचनीय है, इसीलिए परमात्मा का द्वार है। क्योंकि परमात्मा भी अव्याख्य है और अनिर्वचनीय है।
पलटू कह रहे हैं, ध्यान तो शायद तुम कर भी लो... पालथी मार कर बैठ जाओ, योगासन साध लो, आंख बंद कर लो, प्राणायाम करो, ध्यान लगाओ, भीतर एक प्रकाश के बिंदु पर चित्त एकाग्र करो--ये सब तो शायद तुम कर भी लो, लेकिन प्रेम तुम कैसे करोगे? और तुम्हारा किया जो है, वह तुमसे बड़ा नहीं हो सकता। तुम्हारा किया परमात्मा तक नहीं पहुंचा सकता। तुम्हारा किया बाधा बन जाएगा। तुम्हारा हर कृत्य तुम्हारे अहंकार को और मजबूत करेगा। कृत्य अहंकार का भोजन है। और जहां अहंकार है, वहां ब्रह्म का कोई साक्षात्कार नहीं।
अरे हां, पलटू ज्ञान ध्यान के पार ठिकाना मिलैगा।।
ज्ञान भी जाने दो, ध्यान भी जाने दो, प्रेम में डुबकी मारो। उतर जाओ सुरति का धागा पकड़ कर।
कडुवा प्याला नाम पिया जो, ना जरै।
और प्रेम का यह प्याला पहले बहुत कडुवा मालूम पड़ेगा। क्योंकि कभी पिया नहीं है। स्वाद भी सीखने होते हैं। स्वाद की भी कला होती है।
मुल्ला नसरुद्दीन की पत्नी एक दिन पहुंच गई शराबघर। थक गई समझा-बुझा कर, लड़ कर, झगड़ कर, रो-धो कर, सिर पीट कर, दीवाल से सिर मार कर, लेकिन मुल्ला किसी बात में आए ही न! वह रोज शराबघर!
आखिर उसने आखिरी उपाय किया।
शराबघर पहुंच गई। मुल्ला घबड़ाया। मुसलमान स्त्रियों को तो मस्जिद तक में जाने की मनाही है, शराबघर की तो बात ही और। जाकर उसने बुर्का उतार कर रख दिया। मुल्ला ने कहा, अरे, यह क्या करती है? उसने कहा, अब मैं भी पीऊंगी। जब तुम पी रहे हो, तो मैं क्यों रुकूं। इसके पहले कि मुल्ला कुछ कहे... वह तो

ऐसा अवाक, ठगा सा रह गया; भीड़ इकट्ठी हो गई... उसकी पत्नी ने बोतल से उंड़ेली शराब--कभी पी तो थी नहीं पहले कि सोडा इत्यादि मिलाए, कि थोड़ा कुछ--गटागट पी गई! एक दो ही घूंट लिए थे कि गिलास भी नीचे पटक दिया, थू-थू करने लगी और कहा कि हद्द हो गई, इस बेस्वाद, तिक्त, कड़वी चीज को पीते हो! वह मुल्ला हंसा और उसने कहा, तू समझती थी कि हम यहां रोज मजा-मौज करने आते हैं! अरे, यह बड़ी तपश्चर्या है! यह बड़ा कठिन काम है! अब तेरी समझ में आया? अब भूल कर मत कहना कि चले मजा-मौज करने!
पहली दफा शराब पीओगे, तो रिक्त लगेगी। अभ्यास करना होगा। प्रेम भी शराब है। शराबों की शराब है। उसके पार और शराब कहां? उससे गहरी और शराब कहां?
कडुवा प्याला नाम पिया जो, ना जरै।
लेकिन जिसने पी लिया, उसकी फिर मृत्यु नहीं होती। क्योंकि वह है तो अमृत। फिर वह न तो बूढ़ा होता और न मरता। शरीर तो बूढ़ा होगा और मरेगा, मगर तुम्हारी चैतन्य की भीतर की अवस्था शाश्वत युवा है। उसका अनुभव शुरू हो जाता है। जिसने प्रेम पिया, उसने अपने भीतर शाश्वत को जाना।
देखा-देखी पिवै ज्वान सो भी मरै।।
लेकिन ध्यान रखना, दूसरे की देखा-देखी मत करना। कुछ लोग देखा-देखी कर रहे हैं! धर्म के जगत में देखा-देखी खूब चल रही है! कोई मंदिर में पूजा कर रहा है तो तुम भी पूजा करने लगे। सोचते हो, यह पूजा में कितना मस्त हो रहा है, मैं क्यों नहीं हो रहा? उसकी पूजा भीतर से उमगी है, तुम्हारी पूजा कागजी है।
मैंने सुना है--एक पुरानी सूफी कहानी है--एक आदमी को सम्राट ने बुलाया
और उसका बड़ा सम्मान किया। कारण, उस आदमी ने पूछा, कारण? तो उसने कहा कि मैंने पता लगवाना चाहा कि हमारी राजधानी में सबसे सुंदर दंपति, जिनके दांपत्य में प्रसाद हो, वे कौन हैं? बहुत खोज-बीन करके तुम्हारी हमें खबर दी गई। कि तुम जैसा पति पाना मुश्किल और तुम्हारी जैसी पत्नी पाना मुश्किल। तुम्हारी पत्नी सदा सेवा में रत रहती है। तुम सुबह पांच बजे उठते हो तो वह चार बजे से उठ कर चाय तैयार किए तुम्हारे पास बैठी रहती है, कि तुम्हें क्षण भर की देरी न हो जाए। तुम रात दो बजे लौटते हो तो वह दो बजे तक बैठी द्वार पर प्रतीक्षा करती है। तुम जब तक भोजन न कर लो, वह भोजन नहीं करती। और तुम्हारा भी प्रेम उसके प्रति ऐसा ही गहन है। हमारा खोजियों का दल निरीक्षण करता रहा है, एक वर्ष में तुम दोनों के बीच एक बार भी कलह नहीं हुई। तो ये एक लाख स्वर्ण अशर्फियां हम तुम्हें भेंट देते हैं।
आग लग गई सारे गांव में! जब यह लेकर स्वर्ण अशर्फियां घर पहुंचा, तो पड़ोसियों को तो... हालत तुम सोच सकते हो! पड़ोसी स्त्री ने अपने पति से कहा कि लो, अब मार लो अपना सिर दीवाल से! बैठे-ठाले एक लाख अशर्फियां मिल गईं। अब आज से हम भी अच्छा व्यवहार करें। लड़ाई-झगड़ा बंद। मैं भी तुम पर तकिया नहीं फेंकूंगी और तुम भी गाली-गलौज बंद करो। आज से हम मधुर-मधुर वचन बोला करेंगे। प्यारे-प्यारे वचन! मैं तुम्हें खूब प्यारी-प्यारी चिट्ठियां लिखा करूंगी; तुम भी दफ्तर से खबर किया करो, फोन भी किया करो। दिन में दो- चार बार कहीं से भी फोन कर लिया, कि हे प्राण प्रिये... ! पति को भी बात तो जंची, एक लाख स्वर्ण अशर्फियां! और पत्नी ने कहा कि चाहे कुछ भी हो जाए, तुम नहीं आओगे तो मैं भूखी बैठी रहूंगी। रात तुम बीमार रहोगे तो मैं बैठ कर पास तुम्हारा सिर दाबूंगी।
संयोग की बात, उसी रात पति के सिर में दर्द था। अब मजबूरी थी, तय कर लिया था, तो भीतर तो कुढ़ रही थी पत्नी कि कब तक जागना है! थोड़ी-बहुत देर सिर दाबा ऐसे जोर-जोर से दाबा कि पति ने कहा, मार डालेगी या क्या करेगी? सिर दुख रहा है कि तू मेरी जान लेना चाहती है? फिर याद आया, कहा कि हे प्राण प्रिये! मैं तो मजाक में कह रहा था। थोड़ी देर पत्नी और जागी, उसने कहा कि मुए! अब सो भी जा! ऐसे कब तक मैं जागती रहूंगी? और फिर कहा, हे पतिदेव, जो मैंने कहा-सुना, सो माफ करना! ऐसे रात भर चला। फिर-फिर चूक जाएं!

दूसरे दिन पति को कहा कि अब तू जा सम्राट के वहां और प्रार्थना करना उसने कि हमारा भी दांपत्य-जीवन अदभुत है। पति ने कहा, मेरी तो हिम्मत नहीं होती, तू ही जा। इसी पर झगड़ा हो गया कि कौन जाए!
झगड़ते ही पहुंचे दोनों। सम्राट ने अपने सिर से हाथ मार लिया, उन्होंने कहा कि तुम थोड़ा सोचो, तुम यहीं झगड़ रहे हो, मेरे ही सामने झगड़ रहे हो! सम्राट के सामने ही एक-दूसरे से बकवास होने लगी कि तूने मुए क्यों कहा था? और तू सिर दबा रही थी कि मेरे प्राण ले रही थी? और मैंने सुबह चार बजे आंख खोल कर देखी तो तू वहां चाय लिए मौजूद ही नहीं थी। तो पत्नी ने कहा, मैंने कहा नहीं था कि नींद खुलने के पहले, तुम जगो उसके पहले मुझे हुद्दा मार देना।... अब जगने के पहले कोई कैसे हुद्दा मारेगा! ... और मैं कोई ज्योतिषी तो हूं नहीं कि मैं पहले से पता लगा लूं कि तुम कब उठोगे? सम्राट ने कहा कि मैं तुम्हारी तकलीफ समझता हूं, तुम्हारे पड़ोसी को पुरस्कार मिला! लेकिन देखा-देखी कुछ भी करोगे, इससे हल होने वाला नहीं है। प्रेम ही नहीं है तो देखा-देखी क्या होगा?
लोग देखा-देखी प्रार्थना कर रहे हैं! प्रेम भी नहीं हो पाता देखा-देखी
तो प्रार्थना तो कैसे होगी?
देखा-देखी पिवै ज्वान सो भी मरै।।
जो देखा-देखी करेगा, वह भी धोखा खाएगा। वह अभिमानी मरेगा। वह तो मृत्यु के चक्कर में पड़ेगा।
धर पर सीस न होय, उतारै भुई धरै।
अरे हां, पलटू छोड़ै तन की आस सरग पर घर करै।।
उसका ही है स्वर्ग जो अपने सिर को उतार कर रख देने को तैयार हो; अपने अभिमान को, अपने अहंकार को गला देने को तैयार हो।
राम के घर की बात कसौटी खरी है
वहां धोखा न चलेगा।
झूठा टिकै न कोय आजु की घरी लै।।
आज तक कोई झूठा उस कसौटी पर टिक नहीं सका है। इसलिए धोखाधड़ी में मत पड़ना, पाखंड में मत पड़ना; देखा-देखी में मत पड़ना। दूसरों का आचरण देख कर उधार आचरण मत करना। मिथ्या आचरण की वहां कोई गति नहीं है। प्रमाणिकता की गति है। तुम्हारा अपना हो। तुम्हारा अपना हो तो पत्थर भी हीरा है। और हीरा दूसरे का हो तो हीरा भी पत्थर है।
झूठा टिकै न कोय आजु की घरी लै।।
जियतै जो मरि सीस लै हाथ में।
जीते-जी जो मरने की कला जानता है। क्या है जीते-जी मरने की कला? ऐसे जीना जैसे कि मैं हूं ही नहीं, वही है। वही मुझसे जीए, मैं न जीऊं। मैं उसकी बांसुरी बन जाऊं। उसके ओंठों से जो गीत आए, मुझसे बहे, मैं बाधा न दूं।
अरे हां, पलटू ऐसा मर्द जो होय परै यहि बात में।।
इस प्रेम-पंथ में, इस कठिन राह में... प्रेम-पंथ ऐसो कठिन... इसमें वही
आए जो ऐसा मर्द हो, जो ऐसा साहसी हो। और जिनमें ऐसा साहस है, वे निश्चित पहुंच जाते हैं।
मेरे इस दीवानेपन पर तुमको क्यों होती हैरानी,
परिणाम यही होता जिसके उर में संचित आगी-पानी
तप वाष्प बन गया तन फिर भी यौव-घन-मन आशा न भरी
विद्युत में कितनी कसक-कड़क, बादल में कितनी तड़प भरी।

दो दिन में मिट जाने वाला यह प्रणयी का व्यवहार नहीं, अदान-प्रदानों से सीमित मेरा जीवन-व्यपार नहीं घुल-मिल जाने की अभिलाषा है अंत यहां अभिसार नहीं उर-अंतरिक्ष की सीमा का सच कहता पारावार नहीं।

जब इस पथ पर चलते-चलते अपने प्रिय को पा जाऊंगा
चिर श्रांत-क्लांत सत्वर उसकी गोदी में मैं सो जाऊंगा हिम-कण सा किरणों में मिलकर उज्जवल प्रकाश बन जाऊंगा

जग याद करेगा व्यथा-कथा, मैं तो प्रिय में मिल जाऊंगा।
जो इस प्यारे में बिल्कुल गलने, मिलने को राजी हैं, केवल उन दुस्साहसियों के लिए प्रेम का पंथ है।
और तुम्हारे पंडित-पुरोहित क्या कहते हैं? कि कलियुग में बस भक्ति- मार्ग से ही पहुंचा जा सकता है। कलियुग में, क्योंकि कलियुग में सच्चे आदमी कहां? इसलिए भक्ति-मार्ग से पहुंचा जा सकता है।
इन सज्जनों को कहो, भक्ति-मार्ग से कठिन और कोई मार्ग नहीं। क्योंकि प्रेम से ज्यादा बलिदान और कौन मांगता है! अपने गर्दन को काट कर रखने की हिम्मत है तो ही प्रेम के रास्ते पर तुम्हारी गति हो सकती है।
और नकल न चलेगी। देखा-देखी न चलेगी। उधारी न चलेगी। प्रेम तो प्रामाणिक हो तो ही प्रेम होता है। और प्रामाणिक प्रेम अपने आप प्रार्थना बन जाता है। और प्रार्थना बन जाती है तुम्हारे पंख, ले चलती है तुम्हें परमात्मा तक।
ऐसी धन्य घड़ी तुम्हारे जीवन में आए! प्रत्येक का जन्मसिद्ध अधिकार है। लेकिन साहस होना चाहिए अपना अधिकार मांगने का। मिल सकता है तुम्हें, लेकिन द्वार खटखटाओ। द्वार निश्चित खुलेंगे। जीसस ने कहा हैः मांगेगा जो, मिलेगा। द्वार जो खटखटाएगा, उसके लिए द्वार निश्चित खुलते हैं।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
अठारहवां प्रवचन

मुझे दोष मत देना!

भगवान,
मैं प्रभु को पुकारता हूं, वर्षों से पुकारता हूं, नियमित प्रार्थना करता हूं, लेकिन मेरी पुकारों का कोई उत्तर कभी मिलता नहीं। क्या मुझसे कहीं कोई भूल हो रही है?

मैकशों की यही आरजू है
साकिया आज ऐसी पिला दे
मैकदे में हैं जितने शराबी
आज सबको नामजी बना दे

यह कैसे पता चले कि जो हो रहा है वह प्रभु की मर्जी से हो रहा है या हम आलस्य के प्रभाव से नहीं कर पा रहे हैं? कृपा करके समझाएं।

पहला प्रश्नः भगवान, मैं प्रभु को पुकारता हूं, वर्षों से पुकारता हूं, नियमित प्रार्थना करता हूं, लेकिन मेरी पुकारों का कोई उत्तर कभी मिलता नहीं। क्या मुझसे कोई भूल हो रही है?

नारायण देव! प्रार्थना अपना उत्तर स्वयं है। किसी और उत्तर की अपेक्षा में ही भूल है। प्रार्थना साधन नहीं है, स्वयं साध्य है। अपने आप में परिपूर्ण है। तुमने अपने हृदय को निवेदित किया, तुमने अपने आंसू के फूल चढ़ाए, तुमने प्राणों का गीत गाया, उस गीत में रस है, उन आंसुओं में उल्लास है। उस समर्पण में ही उत्सव है। उसके पार किसी उत्तर की अपेक्षा कि आकाश कुछ बोले, कि उस पार से कोई उत्तर आए--वहीं भूल हो रही है। वैसी अपेक्षा ही तुम्हारी प्रार्थना को पूर्ण नहीं होने दे रही।
अपेक्षा वासना का ही रूप है। और जहां वासना है, वहां प्रार्थना मृत। जहां वासना नहीं है, वहां प्रार्थना जीवंत। अपेक्षा है, तो विषाद से भरोगे। क्योंकि कोई अपेक्षा कभी पूरी नहीं होती। प्रार्थना तो मौलिक रूप से निरपेक्ष होती है। प्रार्थना तो भाव की निरपेक्ष दशा है।
फूल खिले हैं। किस अपेक्षा में? कोई उत्तर मिलेगा? तारों से आकाश भरता है। किसी अपेक्षा में? कोई उत्तर मिलेगा? नहीं, यह महोत्सव अपना उत्तर स्वयं है। इस सत्य को जितना गहरा हृदय में बैठ जाने दो उतना अच्छा। नहीं तो वर्षों से चूक रहे हो, जन्मों तक चूकते रहोगे।
तुम सोचते हो कि प्रार्थना करने में कोई भूल हो रही है। नहीं, प्रार्थना की पृष्ठभूमि में भूल है। तुम प्रार्थना ही कर रहे हो आंखों की कोर से प्रतीक्षा करते हुए कि अब आया उत्तर, अब आया उत्तर, अब प्रभु प्रकट होंगे, कि अब आकाश से वाणी झरेगी। अभी तक नहीं उत्तर आया! अभी तक परमात्मा प्रकट नहीं हुआ! तुम्हारी प्रार्थना कैसे पूर्ण हो पाएगी? तुम तो बंटे- बंटे हो! आधा मन प्रार्थना कर रहा है, आधा मन किनारे खड़ा राह देख रहा है। आधा मन प्रार्थना कर रहा है, आधा मन शिकायत से भरा है--अब तक नहीं हुआ! वह जो शिकायत है, वह प्रार्थना पर पत्थर की तरह बंधी है। उड़ने न देगी प्रार्थना को; पंख न लगने देगी प्रार्थना को।
जीवन में कुछ तो चाहिए ऐसा जो बस अपना साध्य स्वयं हो। उस कुछ को ही मैं धर्म कहता हूं। फिर चाहे तुम गाओ, चाहे नाचो, चाहे मौन बैठ जाओ, लेकिन एक सूत्र को सदा स्मरण रखोः तुम्हारे जीवन में ऐसी कोई चीज, जिसके पार कोई अपेक्षा नहीं है, वही धर्म है।
अगर पार कोई अपेक्षा है, तो संसार जारी है। जहां वासना, वहां संसार। जहां वासना, वहां भविष्य। आज करेंगे प्रार्थना, कल उत्तर आएगा। अभी करेंगे प्रार्थना, थोड़ी देर के बाद उत्तर आएगा। तुम्हारी प्रार्थना में और उत्तर में थोड़ा तो अंतराल होगा; साधन और साध्य में थोड़ा तो भेद होगा।

जहां वासना है, वहां तुम चूक गए इस क्षण से। वर्तमान का यह अपूर्व क्षण खाली चला गया। तुम्हारी आंखें भविष्य में अटक गईं। भविष्य तो रिक्त है, शून्य है। भविष्य कभी आया है कि आएगा! जो आता है, उसका नाम वर्तमान है। और वर्तमान आया ही हुआ है। आता है, ऐसा कहना भी ठीक नहीं।
जब मैं कहता हूं प्रार्थना अपना लक्ष्य स्वयं है, तो इशारा कर रहा हूं, इस बात की तरफ कि कुछ क्षण तो तुम्हारे जीवन में ऐसे हों जब तुम बस अभी और यहीं जीओ। इस क्षण के न तो पीछे कुछ हो, न आगे कुछ हो। यह क्षण अपने में पूरा हो। इसकी पूर्णता में जरा भी, रत्ती भर भरने को कुछ शेष न रहे। और तब तुम चकित हो जाओगे, प्रार्थना ही अपना उत्तर है, प्रेम ही अपना उत्तर है। तुम झुक सके, यही पर्याप्त है अनुगृहीत होने को। चिंता क्या है? परमात्मा कुछ बोले, तब तुम तृप्त होओगे!
कभी तो तुम्हारे नयम बोल देंगे
रहो मौन तुम, मैं पुकारा करूंगा।
सुना है कि पाषाण भी बोलते हैं,
कभी वज्र के भी अधर डोलते हैं,
जड़े मंदिरों में बधिर देवता भी
स्वयं द्वार की सांकलें खोलते हैं। इसी एक विश्वास पर कामनाएं--
सहेजा करूंगा, संवारा करूंगा।
कभी तो तुम्हारे नयम बोल देंगे,
रहो मौन तुम, मैं पुकारा करूंगा।

तुम्हें ध्यान होगा यहां की प्रथा का, मुझे प्यार की इस अधूरी कथा का,
इसी द्वंद्व में दिन ढले जा रहे हैं न जाने कहां अंत होगा व्यथा का।

मगर तुम भरोसा करो मैं तुम्हारे-- प्राणों को हृदय से उबारा करूंगा। कभी तो तुम्हारे नयम बोल देंगे, रहो मौन तुम, मैं पुकारा करूंगा।

मुझे हर सुमन-शूल पहचानता है,
मगर क्या करूं, मन नहीं मानता है, कभी एक पल चैन लेने न देता
नियति के नियम, आचरण जानता है। अगर मर गए स्वप्न, तो अर्थियों को-- स्वरों की धरा पर उतारा करूंगा। कभी तो तुम्हारे नयम बोल देंगे, रहो मौन तुम, मैं पुकारा करूंगा। विदा की घड़ी पर लगाना न देरी, खुली छोड़ना प्राण आंखें न मेरी, चला आ रहा जो निशाना लगाए
किसीका नहीं है, समय का अहेरी।
उमर भर अथक एक क्षण के मिलन को--
तुम्हारी डगर में निहारा करूंगा।
कभी तो तुम्हारे नयम बोल देंगे,
रहो मौन तुम, मैं पुकारा करूंगा।
प्रीतिकर लगते हैं ऐसे शब्द, सुंदर लगती हैं ऐसी कविताएं, मगर अर्थहीन हैं, व्यर्थ हैं। ऐसी कविताओं में ही कहीं तुम भटके हो। तुम्हारी प्रार्थना ने अभी भी उड़ान नहीं ली, छलांग नहीं ली। अभी जमीन पर ही सरक रही है। इस तरह की कविताएं मनुष्य के साधारण प्रेम के लिए तो शायद सच हों... फिर भी कहता हूंः शायद; थोड़ी-बहुत सच हों, अंशतः सच हों... लेकिन उस परम प्रेम के

लिए तो बिल्कुल झूठ हैं। जब तक तुम निहारते रहोगे, जब तक तुम प्रतीक्षा करोगे, तब तक मिलन संभव नहीं है। जिस दिन निहारना गया, जिस दिन प्रतीक्षा छूटी, जिस दिन तुमने चिंता से ही मुक्ति पा ली, जिस दिन तुम प्रार्थना में झुके--और वही क्षण परिपूर्ण हुआ! तुम्हारा झुकना अपने आप में पूरा आनंद बना। तुमने गीत गाया और गीत गाने में ही तुम्हारा रस हुआ। साधन ही जिस दिन साध्य हो गया, उस दिन प्रार्थना पूर्ण हो गई। और उसी पूर्णता में परमात्मा का दर्शन है।
परमात्मा वर्तमान है और अपेक्षा भविष्य है। इन दोनों का कहीं मिलना नहीं होता। कभी नहीं हुआ है। नारायण देव, तुम्हारे जीवन में भी नहीं होगा। इतने वर्ष तुमने व्यर्थ ही बिताए। अब भी सचेत हो जाओ।
तुमने प्रार्थना को समझा ही नहीं। तुमने वासना को ही नये वस्त्र दे दिए। पहले धन मांगते थे, पद मांगते थे, प्रतिष्ठा मांगते थे, फिर प्रभु को मांगने लगे। मगर मांग जारी रही। और मांग तो वही है, क्या तुम मांगते हो, इससे भेद नहीं पड़ता। तुम्हारे हाथों में तो भिक्षापात्र है। धन मांगो, भिक्षापात्र तो वही है, मांग भी वही है, तुम भी वही हो। कुछ भी नहीं बदला। सिर्फ मांगने की बात बदल गई, विषय बदल गया। विषय के बदलने से क्रांति नहीं होती, तुम्हारा अंतस्तल बदलना चाहिए। मांगना ही जाने दो। तोड़ दो यह भिक्षापात्र। गिरा दो यह भिक्षापात्र। मत करो प्रतीक्षा किसी उत्तर की। आकाश कभी कोई उत्तर न दिया है, न देगा। और जब तुम उत्तर की अपेक्षा ही न करोगे, तो तुम चकित हो जाओगे। चौंकोगे बहुत, अवाक रह जाओगे कि जिस दिन उत्तर की अपेक्षा गई, उसी दिन प्रश्न भी गया। क्योंकि प्रश्न जीएगा कैसे बिना उत्तर की अपेक्षा के? प्रश्न के प्राण तो उत्तर में रखे हैं। उत्तर मगर गया, प्रश्न भी मर गया। प्रार्थना उत्तर नहीं लाती, प्रार्थना निष्प्रश्न चित्त की दशा है। प्रार्थना मांगती नहीं, प्रार्थना धन्यवाद है। जो मिला है, इतना है... उसके लिए धन्यवाद देना है! तुम और मांग रहे हो! और मांगना मन का जाल है। प्रार्थना आभार है, कृतज्ञता-ज्ञापन है। इतना दिया है तूने!
लेकिन हम मांगे चले जाते हैं। इस लोक की मांग छूटती है तो परलोक की मांग शुरू हो जाती है।
जीवन का इकतारा टूटे जाकर तेरे गांव में,
प्राणों का यह दीप बुझे तेरे आंचल की छांव में।
आओ निर्मम! फूल तड़पते
आंसू की जय-माल के,
कहां छिप गए हो छलिया
सांसों की भांवर डाल के,

मन की मीरा दरद की मारी, बन-बन डोले बावरी,
देह मुरलिया गीत तुम्हारे गाती फिरी दिशाओं में

आंसू तुमको अर्ध्य चढ़ाए
आह उतारे--आरती,
तुमको दिल की धड़कन टेरे
तुमको सांस पुकारती,

सुधि की लौ को बुझा नहीं पातीं आहों की आंधियां, यही दीप है जो जलता रहता है तेज हवाओं में।

मेरी अंतिम दृष्टि तुम्हारा
अंतिम रूप निहार ले,
मेरे आंसू का अंतिम कण
तेरे चरण पखार ले,

अंतिम हिचकी का स्वर तेरी पायल को झनकार दे

अंतिम रक्तबिंदु मेंहदी बन रचे तुम्हारे पांव में।
जीवन का इकतारा टूटे जाकर तेरे गांव में,
प्राणों का यह दीप बुझे तेरे आंचल की छांव में।
लेकिन यह सारा गांव उसी का है। ये सब आंचल उसी के हैं। ये आकाश में उठे हुए बादल उसी के आंचल हैं। और यह चांद-तारों की सजी बारात उसी की आंखें हैं। यह फूलों में जो मुस्कुराया है, कौन है? वृक्षों में जो हरा हो उठा है, वह कौन है? पशुओं में, पक्षियों में, मनुष्यों में, मुझ में, तुम में जो जाग्रत है, जो चैतन्य है, वह कौन है? हम उसी के गांव में हैं। हम उसी के मंदिर में विराजमान हैं। जहां तुम हो, वहीं काबा है और वहीं काशी है और वहीं कैलाश है, वहीं गिरनार है। कहीं और जाना नहीं, कुछ और पाना नहीं। परमात्मा मिला हुआ है, इस बोध का नाम प्रार्थना है।
परमात्मा को पाना है, ऐसी अगर आकांक्षा है तो यह प्रार्थना नहीं है। परमात्मा मिला ही हुआ है; अब क्या करें? नाचें, खुशी मनाएं, जश्न मनाएं, उत्सव होने दें। परमात्मा मिला ही हुआ है श्वास-श्वास में; गीत गाएं, स्तुति को जगने दें। उसकी महिमा, उसका प्रसाद तो बरस ही रहा है। और क्या चाहते हो!
तुम्हारी भूल, नारायण देव, सिर्फ इतनी ही है कि तुमने प्रार्थना बड़ी परंपरागत ढंग से शुरू की। और तुम उसी परंपरागत प्रार्थना को यहां आकर भी किए जा रहे हो!
मेरी दृष्टि को समझने की कोशिश करो।
पूछते हो तुमः मैं प्रभु को पुकारता हूं। प्रभु को जानते हो जो पुकारोगे? उसका नाम, पता, ठिकाना कुछ मालूम है? राम को पुकारते होओगे-- धनुर्धारी राम! कि कृष्ण को पुकारते होओगे--मोरमुकुट, मुरली वाले कृष्ण! कि बुद्ध को पुकारते होओगे, कि महावीर को! मगर ये सब तो तरंगें ही हैं उसके सागर की। उसको इन्होंने जान लिया है, इसलिए इन्हें हमने भगवान कहा है। जिसने उसे जाना, वही भगवान। तुम भी भगवान हो, सिर्फ अपने से अपरिचित हो, बस इतनी भूल हो रही है। सिर्फ अपनी तरफ पीठ किए खड़े हो, इतनी भूल हो रही है। किसको पुकारते हो? उसका कोई नाम है! उसका कोई भी नाम नहीं। किस दिशा में पुकारते हो? उसकी कोई दिशा है! सब दिशाओं में वही है। कौन-सा विधि- विधान है तुम्हारी प्रार्थना का? फूल चढ़ाते हो शंकर जी की पिंडी पर? घंटी बजाते हो? गायत्री पढ़ते हो? वेद की ऋचाएं दोहराते हो? कि कुरान की आयतें गुनगुनाते हो? क्या करते हो?
यह सब तो शब्द ही हैं। प्रार्थना का इनसे कुछ लेना-देना नहीं है। प्रार्थना तो मौन समर्पण है। वहां वेद भी छूट जाते हैं, कुरान-बाइबिल भी छूट जाती हैं। वहां हिंदू हिंदू नहीं होता, मुसलमान मुसलमान नहीं होता, ईसाई ईसाई नहीं होता। प्रार्थना में प्रार्थी होता है। वहां कोई और नहीं बचता! वहां मन ही नहीं बचता। मांगने वाला गया कि मन गया। मन है भिखमंगा। मन का रूप हैः और मिले, और मिले, और मिले... ।
तुम किस प्रभु को पुकारते हो? आकाश की तरफ देख कर? पृथ्वी में वह नहीं है? आंख खोल कर पुकारते हो? आंख बंद करो तो वह नहीं है? आंख बंद करके पुकारते हो? आंख खोलो तो वह नहीं है? कोई विधि-विधान नहीं है उसे पुकारने का। सिर्फ समग्र रूप से मौन हो जाने में ही तुम्हारे भीतर जो अहोभाव जगने लगता है--निःशब्द। तुम्हारे भीतर ही एक दीया जलने लगता है--शून्य का, मौन का; निर्विकल्प; निर्विचार का। अकंप उसकी लौ होती है। तुम्हारे भीतर ही एक सुगंध फूटने लगती है। तुम्हारे भीतर का ही कमल खिलता है। वहीं सुगंध प्रार्थना है।
प्रार्थना कोई क्रियाकांड नहीं है कि ऐसे की, कि वैसे की, प्रार्थना सहज स्फूर्त आनंद का भाव है। जहां बैठे, वहीं हो गई, जहां खड़े हुए, वहीं हो गई। चलते-चलते हो गई, काम करते-करते हो गई। कोई अलग कोना खोजने की जरूरत भी नहीं है। नहाये तो ठीक, न नहाए तो ठीक। प्रार्थना औपचारिकता नहीं है।
तुम कहते होः नियमित प्रार्थना करता हूं। एक यंत्रवत बात हो गई होगी। रोज-रोज कर लेते हो, इतने दिन से करते हो, लत पड़ गई होगी। नहीं करते होओगे तो अड़चन होती होगी। नहीं करते होओगे तो वैसी ही अड़चन होती होगी जैसे

धूम्रपान करने वाले को धूम्रपान करने न मिले। चाय पीने वाले को चाय न मिले। वैसे प्रार्थना जो करता है, उसे एक दिन प्रार्थना करने को न मिले तो उसे बड़ी बेचैनी होती है। कुछ खाली-खाली लगता है, कुछ चूका-चूका मालूम होता है। कुछ कमी रह गई। मन लौट-लौट वहां जाता है। मन की आदत है यंत्रवत जीने की--मन यंत्र ही है। और यंत्र अपनी पूरी प्रक्रिया चाहता है। जैसा रोज होता रहा, वैसा ही।
मैंने सुना है, एक मदारी के पास एक बंदर था। वह रोज सुबह उसे चार चपाती देता और सांझ तीन चपाती दीं, बंदर ने फेंक दीं। रोज सुबह चार मिलती हैं। बंदर बड़ा नाराज हुआ! बड़ा समझाया-बुझाया तो बंदर ने बामुश्किल से तीन लीं। शाम को चार दीं तो उसने फेंक दीं। क्योंकि शाम को हमेशा वह तीन खाता रहा।
मदारी तो बहुत हैरान हुआ। मदारी ने बहुत कहा, अरे मूरख, तुझे थोड़ा गणित नहीं आता? चार और तीन सात। सात तुझे रोज मिलती थीं। सुबह तीन, चार शाम या चार सुबह, कि तीन शाम। लेकिन बंदर अकड़ा बैठा रहा। बंदर तब तक राजी न हुआ, जब तक उसे सुबह चार और सांझ तीन रोटियां मिलनी शुरू न हुईं।
आदमी का मन भी बंदर जैसा है। उसे तुम जो देते हो, वह उसी की मांग करता है। रोज-रोज वैसा ही चाहिए। मन पुनरुक्ति करता है।
तो प्रार्थना भी एक यंत्रवत बात हो जाती है। रोज सुबह उठ कर, स्नान करके प्रार्थना करते हो; स्नान करके नहीं करोगे, खाली जगह रह जाएगी। जैसे कभी कोई दांत टूट जाता है, तो जीभ वहीं, वहीं-वहीं जाती है। इतने दिन से दांत था, जन्म भर से, जीवन भर से, तब से जीभ वहां नहीं गई थी। आज दांत गिर गया, खाली जगह में दिन भर जीभ जाती है। तुम लाख जीभ को समझाओ कि मालूम है कि टूट गया, अब बार-बार क्या जाना, मगर फिर भूले कि जीभ गई!
खाली जगह अखरती है। तुमने प्रार्थना न की तो प्रार्थना की कमी अनुभव होगी। और करोगे, तो कुछ मिलेगा नहीं। आखिर जीभ को ले जाओगे टूटे हुए दांत की जगह तो क्या पा लोगे? प्रार्थना करते रहोगे, कुछ मिलेगा नहीं, प्रार्थना नहीं करोगे तो कुछ खोया खोया लगेगा--यह बहुत हैरानी की घटना घटती है। इसलिए लोग जो करते हैं, किए चले जाते हैं।
लेकिन अब काफी हो गया! वर्षों से पुकार रहे हो, कुछ हुआ नहीं। अब पुकारने का नया ढंग सीखो। जिसमें न नाम है, न औपचारिक रूप है। नियमित प्रार्थना करते रहे हो जैसे और सब काम नियमित करते हो--स्नान करते हो, भोजन करते हो, सोते हो। अब एक और प्रार्थना सीखो, जिसका नियम से कोई संबंध नहीं। जो किसी मर्यादा में नहीं होती। जो श्वास की तरह होती है। जो अहर्निश चलती रहती है। उठते-बैठते, सोते-जागते, काम करते न करते। लेकिन ऐसी प्रार्थना का अर्थ यह मत समझ लेना कि मैं तुमसे कह रहा हूं कि अब चौबीस घंटे राम-राम, राम-राम, राम-राम जपते रहो। वैसा करोगे तो विक्षिप्त हो जाओगे। वैसा करोगे तो जो थोड़ी-बहुत प्रतिभा होगी, वह भी खो जाएगी; जंग खा जाएगी।
इसलिए तुम्हारे तथाकथित रामनाम जपने वाले लोगों में कोई प्रतीक्षा
के दर्शन नहीं होते। उनकी तलवार में कोई धार नहीं होती; जंग लगी होती है। यह तो जंग लगाने का ढंग है। एक ही शब्द को बार-बार दोहराते रहोगे तो प्रतिभा को धार रखने का मौका ही नहीं मिलेगा। प्रतिभा में धार आती है नये- नये अनुभव से; नई-नई प्रतीतियों से; नई भूमि तोड़ने से; नये पर्वत-शिखरों पर चढ़ने से; नये अभियान से; नई यात्रा से। चौबीस घंटे राम-राम दोहराते रहे तो गाड़ी के चाक की तरह घूमते रहोगे उसी जगह। कोल्हू के बैल हो जाओगे।
तो जब मैं कहता हूंः अहर्निश, तो मेरा अर्थ हैः एक भावदशा। शब्द उतना नहीं, जितना भावदशा। फूल दिखाई पड़े तो प्रभु को स्मरण करना; लोग दिखाई पड़ें तो प्रभु को स्मरण करना, सूरज ऊगता दिखाई पड़े तो प्रभु को स्मरण करना। सब उसका है। सब इशारे उसके हैं। सब रूपों में वही व्यक्त हो रहा है। ऐसा कोई रूप नहीं जो उसका न हो। तुम्हारे शत्रु में भी वही है, मित्र में भी वही है। ऐसा कर सको तो प्रार्थना हो।
और ध्यान रखना, कहते होः मेरी पुकारों का कोई उत्तर नहीं मिलता, उत्तर
है ही नहीं। यह जगत निरुत्तर है। इसीलिए तो इस जगत को रहस्य कहते हैं। रहस्य का अर्थ हैः इसका कोई उत्तर नहीं है। रहस्य का अर्थ हैः उत्तर खोजते-खोजते मर जाओगे, उत्तर नहीं पाओगे। सदियां हो गईं, दार्शनिक खोज रहे

हैं उत्तर; क्या खाक उत्तर खोजा जा सका है! एक जीवन के मौलिक प्रश्न का उत्तर नहीं है। हो ही नहीं सकता। यहीं दर्शन और धर्म का भेद है। धर्म कहता हैः उत्तर हैं ही नहीं। दर्शन कहता हैः और थोड़ा खोजें तो शायद मिल जाए उत्तर। उत्तर तो नहीं मिलते--और नये प्रश्न मिल जाते हैं। खोदते चलो, नये- नये प्रश्न मिलते जाते हैं। धर्म कहता हैः उत्तर तो है ही नहीं, प्रश्न को भी गिर जाने दो। और जिस दिन प्रश्न गिर जाता है, उस दिन तुम निर्भार हो जाते हो। चिंता नहीं रह जाती। प्रश्न है तो विचार है। प्रश्न नहीं तो विचार नहीं। प्रश्न है तो जीवन समस्या मालूम होती है और प्रश्न नहीं है तो जीवन समाधान है। निष्प्रश्न होना समाधि है।
नारायण देव, उत्तर की प्रतीक्षा ही न करो! उत्तर है ही नहीं! आकाश भी बेचारा क्या करे! तुम पुकारते होओगे, तुम पूछते होओगे, आकाश को भी तुम असुविधा में डालते हो। आकाश भी क्या करे, उत्तर कोई है नहीं।
यह अस्तित्व एक रहस्य है, एक प्रश्न नहीं। इस रहस्य को भोगा जा सकता है, लेकिन इस रहस्य को सुलझाया नहीं जा सकता। और भोगने में मजा है, सुलझाकर करोगे भी क्या? पागल सुलझाते हैं, बुद्धिमान भोगते हैं।
बगिया में फूल-ही फूल खिले हैं। जो बुद्धिमान है, वह फूलों को भोगेगा। उनकी गंध को पीएगा; उनके आनंद, हवाओं में होते उनके नृत्य को देखेगा; उनके साथ नाच लेगा; उनके साथ झूमेगा; उनके साथ मदमस्त हो जाएगा। और जो नासमझ है, वह अजीब-अजीब प्रश्न उठाएगा। सौंदर्य क्या है? सुगंध क्या है? और इन्हीं प्रश्नों में खो जाएगा। जल्दी ही बगिया तो विसर्जित हो जाएगी, तुम उसे बैठा किसी पुस्तकालय में पाओगे। ढूंढ रहा होगा, पुस्तकों में तलाश रहा होगा। सौंदर्य पुस्तकों में मिलेगा! बगिया में भरपूर था, वहां से चला आया प्रश्न लेकर।
नाचो, गाओ--और अस्तित्व तुम्हारा है। पूछो--और तुम चूके।
पूछते हो, नारायण देव, क्या मुझसे नहीं कहीं कुछ भूल हो रही है? तुमने पूछा है किसी और अर्थ में--तुमने पूछा है, क्या मेरी प्रार्थना के ढंग में कोई गलती है? क्या मेरे प्रार्थना के शब्द समुचित नहीं? क्या मेरे प्रार्थना के उच्चारण भूल भरे हैं? क्या मेरे प्रार्थना का व्याकरण चूक भरा है? क्या मैं प्रार्थना को बदलूं? क्या मैं जिस नाम से पुकारता हूं, वह नाम मेरे हृदय से तालमेल नहीं खाता? कृष्ण-कृष्ण कहता हूं तो क्या अब राम-राम कहूं? इतने फूल चढ़ाता हूं, इतनी आरती उतारता हूं, कम तो नहीं पड़ती? कितनी बार आरती उतारूं, कितने फूल चढ़ाऊं? एक बार करता हूं, एक बार करना शायद पर्याप्त न हो तो दो बार करूं। घर में ही कर लेता हूं, शायद यह ठीक नहीं; मंदिर में जाकर करूं? तुमने पूछा है कि कहीं कोई भूल तो नहीं हो रही? तुम्हारा इस तरह की भूलों से प्रश्न जुड़ा है।
नहीं, ऐसी कोई भूल नहीं हो रही। लेकिन एक भूल जरूर हो रही है--मौलिक भूल हो रही है--तुम्हारी प्रार्थना अभी भी वासना है। छिपी हुई वासना। अप्रकट। तुम्हारी प्रार्थना अभी भी प्रश्न है। तुम्हारी प्रार्थना अभी भी मस्तिष्क में है, अभी तक हृदय में नहीं उतरी है। तुम्हारी प्रार्थना अभी भी शब्द है, मौन नहीं बनी है। तुम्हारी प्रार्थना में अभी भी भविष्य है, वर्तमान में डुबकी नहीं लगी है। वहां भूल हो रही है। तुम कौन-सी प्रार्थना करते हो--मुझे प्रयोजन नहीं है। हिंदू, मुसलमान, ईसाई--मुझे प्रयोजन नहीं। इस पंथ की, उस पंथ की--मुझे कुछ लेना-देना नहीं है। यह मौलिक भूल जो हो रही है, वह मैं तुमसे कहे देता हूं। वही मुसलमान कर रहा है, वही हिंदू कर रहा है, वही ईसाई कर रहा है। प्रार्थना होनी चाहिए शून्य, प्रेम का समर्पण। इस क्षण को, अभी और यहीं उंडेल दो अपने हृदय को। मत मांगो कुछ! बिन मांगे मोती मिलै, मांग मिलै न चून। और मोतियों की वर्षा हो जाएगी। झर लग जाएगी मोतियों की! फूल ही फूल गिरेंगे कि तुम सम्हाल भी न पाओगे, तुम्हारी झोली छोटी पड़ जाएगी!
और तुम तुम जानोगेः मैं यहां-वहां टटोलता फिर और परमात्मा भीतर मौजूद था। मैं दूर-दूर देखता रहा और परमात्मा पास था। मैं नाम ले-ले कर पुकारता रहा और परमात्मा अनाम है। मैं शास्त्रों से परमात्मा को खोजता रहा और परमात्मा का कोई भी शास्त्र नहीं है।

दूसरा प्रश्नः भगवान,
मैकशों की यही आरजू है
साकिया आज ऐसी पिला दे
मैकदे में हैं जितने शराबी
आज सबको नमाजी बना दे

हरि भारती! और मैं कर ही क्या रहा हूं? लगता है कि तुम मैकदे में आकर
भी नहीं पीने की कसम लिए बैठे हो; तोबा किए बैठे हो! यह कोई मंदिर तो नहीं, मधुशाला है। यहां पीना-पिलाना ही चल रहा है।
तुम कहते होः
मैकशों की यही आरजू है
साकिया आज ऐसी पिला दे।
लेकिन प्रतिपल, प्रतिदिन शराब ही उंडेली जा रही है। तुम ही शायद ओठों
को सिए बैठे हो। शायद तुम ही अकड़े बैठे हो; अपने तर्क, अपने सिद्धांत, अपने शास्त्रों में घिरे। तुमने शायद अंजुली नहीं भरी। तुमने शायद अपना पैमाना साफ नहीं किया। शायद तुम अभी समझ ही नहीं सके कि पीने की कला क्या है, पीने की कला के सूत्र क्या हैं?
पहली बात, पीने की कला के लिए झुकना आना चाहिए। यह शराब कुछ ऐसी शराब नहीं है जो सुराहियों से ढाली जाती है। यह तो ऐसी शराब है जो सागर जैसी। तटों से टकरा रही है। तुम झुको, अंजुली भरो, दिल भर कर पीओ! मगर झुकना होगा। और झुकना हम जानते नहीं। हमारी रीढ़ें अकड़ गई हैं, झुकना भूल गई हैं। जहां झुकने की बात होती है वहां हम एकदम सचेत हो जाते हैं। झुकना यानी श्रद्धा। संदेह करने में हम कुशल हैं, श्रद्धा करने में बिल्कुल ही अकुशल हो गए हैं। हमें श्रद्धा की भाषा ही भूल गई है। हमें भाषा सिखाई भी नहीं जाती श्रद्धा की। स्कूल, कालेज, विश्वविद्यालय, सब संदेह सिखाते हैं। यह विज्ञान का आधार है, संदेह। वैज्ञानिक होने के लिए संदेह जरूरी है। वैसे ही जरूरी है जैसे धार्मिक होने के लिए श्रद्धा जरूरी है।
विज्ञान की यात्रा बहिर्गामी है। बाहर की यात्रा के लिए संदेह के घोड़े पर सवार होना होता है। धर्म की यात्रा अंतर्यात्रा है। अंतर्यात्रा विपरीत दिशा है। अगर विज्ञान में संदेह उपयोगी है तो धर्म में संदेह बाधा है। भीतर जाना है; जितने भीतर जाना है उतना संदेह छोड़ना पड़े; उतना श्रद्धा से भरना पड़े। विज्ञान में श्रद्धा से अड़चन पड़ती है। श्रद्धालु को वैज्ञानिक नहीं बनाया जा सकता। वैसे ही संदेह से भरी चेतना को धार्मिक नहीं बनाया जा सकता।
यह शराब श्रद्धा के पात्र में ही भरी जा सकती है। तुम श्रद्धा बनो, तो अभी भर जाओ, लबालब भर जाओ! लेकिन अगर श्रद्धा में कहीं भी संदेह के छिद्र हैं, तो मैं भरता रहूंगा और तुम खाली के खाली रहोगे। यह शराब कोई मस्तिष्क, विचार, पांडित्य, ज्ञान--उस दुनिया की बात नहीं है; भाव, भावना, प्रार्थना, पूजा, अर्चना, आराधना--उस जगत की बात है। ये दो जगत हैं। ये जीने के दो ढंग हैं। और हम सब खोपड़ी में जी रहे हैं। खोपड़ी हिसाब लगाती है। बस हिसाब ही लगाती रहती है! वह गणित ही बिठाती रहती है! गणित बिठाते-बिठाते ही जिंदगी समाप्त हो जाती है। समय ही नहीं मिलता कि नाच सको, गुनगुना सको, वीणा बजा सको, कि बांसुरी पर फूंक दे सको। उसके लिए एक दूसरा जगत है तुम्हारे भीतर; हृदय का।
यह शराब हृदय से पीओगे तो पी सकोगे। वहीं चूक हो रही है। बहुत लोगों
को तो हृदय भूल ही गया है। विज्ञान की किताबों में तो हृदय क्या है? बस फेफड़ा, फुफ्फुस। विज्ञान की किताबों में हृदय की कोई जगह नहीं है। हो भी नहीं सकती। विज्ञान आदमी का विश्लेषण करता है। खोपड़ी तो मिलती है, मस्तिष्क मिलता है, लेकिन प्रेम का कोई स्रोत नहीं मिलता। विचार का स्रोत तो मिलता है। विचार का स्रोत शरीर का हिस्सा है। प्रेम का स्रोत आत्मा का हिस्सा है। आत्मा अदृश्य है; उसकी न कोई तौल हो सकती है, न कोई माप हो सकती

है। और विज्ञान तो तौल और माप से जीता है। जिसकी तौल और माप न हो सके, उसे अस्वीकार कर देता है विज्ञान।
और, आधुनिक शिक्षा तुम सबको ही नास्तिकता के लिए तैयार करती है।
एक बड़ी दुविधा पैदा हुई है दुनिया में। तुम्हारा परिवार तुम्हें आस्तिकता की तरफ ले जाने की चेष्टा करता है। फिर चाहे घर हिंदू हो, चाहे मुसलमान, चाहे ईसाई, चाहे जैन। बचपन से मां-बाप तुम्हें मंदिर, मस्जिद, गुरुद्वार ले जाना शुरू करते हैं। घर की हवा में जपुजी सुनते हो, गायत्री सुनते हो, हवन-यज्ञ-पूजन देखते हो, तो तुम्हारे भीतर थोड़ी सी दबी-दबी आग धर्म की होती है। लेकिन तुम्हारा सारा शिक्षा का जगत--प्राइमरी स्कूल से लेकर विश्वविद्यालय तक--तुम्हें तर्क सिखाता, विचार सिखाता, गणित सिखाता, संदेह सिखाता। ऐसे तुम्हारे भीतर द्वंद्व पैदा हो जाता है। तुम्हारे भीतर एक द्वैत का जन्म होता है। तुम खंड-खंड हो जाते हो। और इन खंडों के बीच संघर्ष है। इस संघर्ष में तुम्हारी ऊर्जा व्यर्थ ही व्यय होती है। और तुम न यहां के न वहां के। तुम्हारी स्थिति धोबी के गधे की हो जाती है--न घर का न घाट का। तुम मध्य में अटक जाते हो, तुम त्रिशंकु हो जाते। किन्हीं-किन्हीं क्षणों में हृदय जोर मारता है, थोड़ी-सी लहरें उठाता है, लेकिन वे कमजोर लहरें होती हैं, क्योंकि शिक्षा ने उनके ऊपर खूब पत्थर जमा दिए हैं। चौबीस घंटे तो तुम गणित और हिसाब-किताब की दुनिया में जीते हो--बही-खाते--और कभी-कभी गीता खोल लेते हो, कुरान खोल लेते हो। इन दोनों में कोई तालमेल नहीं है। ये दोनों एक-दूसरे के विपरीत हैं। इनमें से एक की मानो तो दूसरे की मानना मुश्किल है। तो मानते तो तुम बही-खाते की हो और झूठी श्रद्धा के फूल कुरान और बाइबिल पर चढ़ा देते हो। मानते तो बाजार की हो, हां, कभी-कभी मंदिर हो आते हो। और धीरे-धीरे तुमने मंदिर भी बाजार में ही बना लिया है। और धीरे-धीरे तुमने मंदिर को भी बाजार में ही ढाल दिया है। धीरे-धीरे तुम्हारा मंदिर भी बाजार की ही एक दुकान है। वहां भी पंडित-पुजारी बिठा दिए हैं, जो सिर्फ व्यवसायी हैं। जिनके जीवन में खुद धर्म का कोई अनुभव नहीं है। तुमसे उनका तालमेल बैठता है--तुम भी व्यवसायी, वे भी व्यवसायी, भाषा समझ में आती है, संवाद आसान हो जाता है।
हरि भारती, इसलिए जब कभी संयोगवशात, सौभाग्यवश तुम किसी मधुशाला में प्रविष्ट हो जाते हो तो भी पी नहीं पाते। पीने से डरते हो। तुम्हारी बुद्धि कहती है कि पीओगे, पागल हो जाओगे। और एक अर्थ में बुद्धि ठीक कहती है, पीओगे तो जरूर पागल हो जाओगे। हालांकि यह पागलपन तुम्हारी बुद्धि के स्वास्थ्य से बहुत ऊंचाई पर है। यह पागलपन तुम्हारी बुद्धि की होशियारी से ज्यादा कीमती है। यह पागलपन परमात्मा का है। मगर बुद्धि कहती तो ठीक ही है एक बात कि जरा सम्हल कर चलना! जरा होशियारी रखना! जरा पैर फिसला कि फिर एक ऐसी दुनिया में समाविष्ट हो जाओगे जिसकी न तो तुम्हें कोई पहचान है, न जिसकी तुम्हें कोई शिक्षा दी गई है, न जिसका नक्शा तुम्हारे पास है। फिर कहीं ऐसा न हो कि लौटना मुश्किल हो जाए। इसलिए बातें धर्म की करो, मगर चलो राजपथ। पगडंडियों पर धर्म की उतरना मत, जंगल भयंकर है, बीहड़ है, खो जा सकते हो। और पियक्कड़ होना है तो पागल होने की सामर्थ्य तो चाहिए ही।
तुम कहते होः
मैकशों की यही आरजू है
साकिया आज ऐसी पिला दे
मैकदे में हैं जितने शराबी
आज सबको नामजी बना दे
यह शराब तो नमाज की ही है। नमाज ही तो पिलाई जा रही है। नमाज ही को तो मैं शराब कह रहा हूं।
तुम्हारे तथाकथित संत तुम्हें उदास बनाते हैं। उनका वैराग्य एक तरह
की बीमारी है। उनका धर्म जीवन-निषेधक है। उनका अध्यात्म मृत्यु से संयुक्त है, जीवन से नहीं। उनका अध्यात्म मृत्योन्मुखी है, आत्मघाती है। वे तुम्हें मरना सिखाते हैं। वे तुम्हें सिकुड़ना सिखाते हैं। यह छोड़ो, वह छोड़ो... ।

छोड़ने का अर्थ क्या होता है? सिकुड़ते जाओ, सिकुड़ते जाओ। भूखे मरो, उपवास करो, शरीर को गलाओ, सिकुड़ते जाओ, सिकुड़ते जाओ। एक आहिस्ता-आहिस्ता आत्मघात कर लो।
मैं उन सबके विरोध में हूं। उन्होंने इस पृथ्वी को धार्मिक नहीं होने दिया। उनकी बातों के कारण केवल वे ही लोग धर्म में उत्सुक हुए जो किसी तरह मानसिक रूप से रुग्ण हैं। उनके धर्म के कारण केवल अस्वस्थ लोग ही धर्म के जगत में उत्सुक हुए। स्वस्थ आदमी तो नाचना चाहेगा, गाना चाहेगा। अगर स्वास्थ्य नहीं नाचेगा, नहीं गाएगा, तो क्या बीमारी नाचेगी और बीमारी गाएगी?
तुम्हारे मंदिर मधुशालाएं न बन सके, अस्पताल बन गए। तुम्हारे मंदिरों
को गौर से देखो, वहां तुम बीमार लोगों को बैठा हुआ पाओगे। जिनमें जीने की क्षमता नहीं थी, जो जीवन से डर गए, जिन्हें जीवन घबड़ाने वाला लगा, उन्होंने एक आवरण ओढ़ लिया--वैराग्य का। असलियत कुछ और थी। नपुंसक थे, जीवन जीने में असमर्थ थे, दुर्बल थे, अंगूर खट्टे हैं, ऐसा कह कर वे भाग गए। अंगूर चखे ही नहीं--अंगूर ऊंचाई पर थे, उन्हें पाने के लिए छलांग लगानी होती है। मगर किसी का अहंकार यह मानने को तैयार नहीं होता कि मेरी छलांग छोटी है।
एक सर्दी की सुबह, एक हाथी धूप ले रहा था। एक चूहा भी आकर उसके पास खड़ा
हो गया और धूप लेने लगा। चूहे ने बहुत चें-चें की, हाथी के पैर पर इधर से चोंच मारी, उधर से चोंच मारी--हाथी का ध्यान आकर्षित करना चाहता था। बहुत मेहनत करने के बाद आखिर हाथी को कुछ लगा कि कुछ चें-चें, चें-चें की कुछ आवाज... नीचे झुक कर देखा, बामुश्किल चूहा दिखाई पड़ा। हाथी ने इतना छोटा प्राणी कभी देखा नहीं था। उसने पूछाः अरे, तुम इतने छोटे! इतने छोटे प्राणी भी होते हैं? चूहे ने कहा, माफ करिए, छोटा नहीं हूं, असल में छह महीने से बीमार हूं। बीमारी की वजह से यह हाल हो गया है।
चूहे का भी अहंकार है। वह भी यह नहीं मान सकता कि मैं कोई हाथी से छोटा हूं।
मैंने एक कहानी और सुनी है कि एक हाथी पुल पर से गुजरा। पुल चर्र-मर्र होने लगा। लकड़ी का पुल था, चरमराने लगा। उस हाथी के सिर पर एक मक्खी भी बैठी थी। उस मक्खी ने कहा, बेटा, हम दोनों का वजन बहुत भारी पड़ रहा है! मक्खी भी यह मान नहीं सकती कि यह हाथी के वजन से चरमरा रहा है पुल। हम दोनों का वजन बहुत भारी पड़ रहा है!
अहंकार स्वीकार नहीं कर सकता कि मैं कमजोर हूं; कि अंगूर दूर हैं, मेरी पहुंच के बाहर हैं। तो फिर क्या उपाय है अहंकार को अपनी रक्षा का? वैराग्य। छोड़ ही दो। जिस संसार को पा नहीं सकते, कहो कि उसमें कुछ पाने योग्य ही कहां है? हम तो पा सकते थे, पा ही लिया था, मगर कुछ पाने योग्य था ही नहीं। कूड़ा-करकट है सब। और ऐसा आदमी चौबीस घंटे समझाता रहेगा मंदिरों- मस्जिदों में बैठ कर कि सब कूड़ा-करकट है, तुमको भी समझाएगा कि सब कूड़ा-करकट है, संसार में कुछ है नहीं।
मैं तुमसे कहता हूंः संसार में परमात्मा है। गहरी खोज करनी पड़ेगी। हाथ दूर तक फैलाने होंगे। नावें अज्ञात में ले जानी होंगी! मैं तुमसे कहता हूंः अंगूर दूर हैं, लेकिन पाने योग्य हैं। और उन अंगूरों को पा लो तो शराब बने। जीवन से भागने से नहीं, जीवन के स्वाद में ही शराब है!
लेकिन मैं जिस शराब की बात कर रहा हूं, ख्याल रखना, वह नमाज का ही दूसरा नाम है। लेकिन वह उनको ही मिल सकती है जो जीवन को पीने को राजी हैं। यह जीवन की सुरा है। जीवन को पीओ तो परमात्मा का स्वाद तुम्हें मिलेगा। लेकिन फिर याद दिला दूं, मैं जिसको जीवन कहता हूं, वह तुम्हारे मन का जीवन नहीं है। धन-पद पाने का; प्रतिष्ठा, यश, सम्मान, सत्कार पाने का; वह जो तुम्हारा मन का जाल है, वह तो पलटू ठीक कहते हैं उसके संबंध में... सपना यह संसार। वह संसार तो सपना है। क्योंकि तुम्हारे मन सपने के अतिरिक्त क्या कर सकते हैं! लेकिन तुम्हारे सपने जब शून्य हो जाएंगे और मन में जब कोई विचार न होगा और जब मन में कोई पाने की आकांक्षा न होगी, तब एक नया संसार तुम्हारी आंखों के सामने प्रकट होगा--अपनी परम उज्वलता में, अपने परम सौंदर्य में--वह परमात्मा का ही प्रकट रूप है। उसको पिलाने के लिए ही

मैंने तुम्हें बुलाया है। उसे तुम पीओ, उसे तुम जीओ! मैं तुम्हें त्याग नहीं सिखाता, परम भोग सिखाता हूं।
सुन लो मेरी बात मुनव्वर तुम भी शेर कहो मदमाते
नाच उठे ये धरती सारी गति तुम्हारे गाते-गाते
सुन लो मेरी बात मुनव्वर

तुम उपदेशक क्यों बनते हो तुम भी रस में डूब न जाओ
जिसमें होशृंगार उमड़ता तुम भी ऐसे गीत न गाओ
सुन लो मेरी बात मुनव्वर

सूखे उपदेशों को सुनकर सारी दुनिया हंस देती है
रस यौवन में जो डूबी हो उस कविता का रस लेती है।
सुन लो मेरी बात मुनव्वर

उम्र पे अपनी क्यों जाते हो उम्र तो भावों से बनती है
नई पुरानी हर छलनी से प्रेम सुरा पल पल छनती है
सुन लो मेरी बात मुनव्वर

सुन लो मेरी बात मुनव्वर तुम भी शेर कहो मदमाते
नाच उठे ये धरती सारी गीत तुम्हारे गाते-गाते
सुन लो मेरी बात मुनव्वर
मैं तुम्हें एक गीत देना चाहता हूं। एक गीत, जो मेरे भीतर जन्मा है। मैं तुम्हें एक रस पिलाना चाहता हूं। एक रस, जो मैंने पिया है। मैं चाहता हूं कि तुम भी इस अलमस्ती में डूब जाओ! मैं तुम्हें वैराग्य नहीं सिखाना चाहता। और अगर वैराग्य सिखाना चाहता हूं, तो मेरा वैराग्य तथाकथित वैरागियों के वैराग्य से बिल्कुल उलटा है। मेरा वैराग्य राग की पराकाष्ठा है। राग का अतिक्रमण है, अंतिम चरण है।
चांद हंसने लगा रात गाने लगी
उनके कदमों की आवाज आने लगी
दे उठी लौ सी फिर रहगुजर की जम
और भी हो गई आज हर शै हसीं
फूल महके कहीं रंग बरसे कहीं
सोचते हैं कि खो जाएं अब तो यहीं दिल की धड़कन नये रंग लाने लगी चांद हंसने लगा रात गाने लगी

जगमगाने लगा आरजू का दिया
फिर ख्यालों में एक हुस्न लहरा उठा कह गई दिल से कुछ गुनगुना कर हवा छिड़ गए राग से नाच उट्ठी फिजा
एक मस्ती निगाहों पे छाने लगी चांद हंसने लगा रात गाने लगी

छट गए गम के बादल मिटी बेबसी थरथराए अंधेरे हुई रोशनी
मुस्कुराने लगी हर तरफ चांदनी
हो गई अब मेरी जिंदगी जिंदगी
फिर कोई आंख जादू जगाने लगी।
चांद हंसने लगा रात गाने लगी
उनके कदमों की आवाज आने लगी
परमात्मा के पदचाप तुम्हें सुनाई पड़ सकते हैं, मगर मस्ती में ही। थोथी नमाजों से कुछ भी न होगा। पियक्कड़ की नमाज चाहिए! तुम्हारी नमाज ऐसी

हो कि बेहोश कर दे। और बेहोशी तुम्हारी ऐसी हो कि होश के दीए के साथ हो। एक तरफ भीतर परम होश भी जगे और साथ ही साथ एक मस्ती भी तुम्हें डुलाए, नचाए। सम्राट अकबर गया था शिकार को। सांझ हो गई, नमाज का वक्त हो गया, तो अपना मुल्ला बिछा कर नमाज पढ़ने बैठ गया। तभी एक युवा स्त्री भागती हुई वहां से निकली। उसके मुसल्ले को रौंदती। वह नमाज में झुका है, उसको धक्का देती कि वह गिर भी पड़ा। लेकिन नमाज में बोले कैसे! क्रोध तो बहुत आया। एक तो कोई नमाज पढ़ रहा हो, उसके साथ ऐसा दुर्व्यवहार। दूसरे सम्राट नमाज पढ़ रहा हो, उसके साथ ऐसा दुर्व्यवहार। जल्दी-जल्दी उसने नमाज पूरी की, घोड़े पर बैठने को ही था पीछा करने को कि पकड़े इस युवती को, लेकिन वह युवती खुद ही वापस लौट रही थी। अकबर ने उससे कहा, पागल, होश में है? मैं नमाज पढ़ रहा था, तूने मुझे धक्का दिया। इतना तो ख्याल होना चाहिए! फकीर भी नमाज पढ़ रहा हो, गरीब से गरीब भी नमाज पढ़ रहा हो तो उसका सम्मान होना चाहिए। प्रभु की प्रार्थना में जो लीन है, उसके साथ ऐसा दुर्व्यवहार! फिर मैं सम्राट हूं! तुझे दिखाई नहीं पड़े मेरे वस्त्र, मेरी पगड़ी--हीरे-जवाहरात जड़ी--मेरा घोड़ा, यह तुझे दिखाई नहीं पड़ा?
उस युवती ने झुक कर प्रणाम किया और कहा, मुझे क्षमा कर दें, मुझे माफ
कर दें; मुझसे भूल हो गई। क्योंकि मेरा प्रेमी आज आने वाला था, मैं राह पर, गांव के बाहर उसका स्वागत करने गई थी। मुझे याद ही नहीं कि आपको कब धक्का लगा। मुझे याद ही नहीं कि आप बीच में पड़े भी। मुझे माफ कर दें। लेकिन सम्राट, एक बात मुझे पूछनी है। मैं तो अपने साधारण प्रेमी से मिलने जा रही थी और ऐसी मस्त थी कि मुझे आप दिखाई न पड़े, और आप परमात्मा से मिलने बैठे थे, आपको मेरा धक्का मालूम हुआ? मैं आपको दिखाई पड़ी?
सम्राट अकबर ने अपने संस्मरणों में लिखवाया है कि शर्म से मेरी आंखें झुक गईं। बात तो उसने ठीक कही थी। मेरी नमाज झूठी थी। उसमें बेहोशी न थी। उसमें मस्ती न थी। शायद उसकी ही नमाज बेहतर थी। माना कि वह अपने साधारण प्रेमी से मिलने जा रही थी, लेकिन उसके साधारण प्रेम में भी एक असाधारण नशा था। अगर उसे पता ही नहीं चला कि मैं था, कि मुझे धक्का लगा--मुझे धक्का लगा तो उसे भी धक्का लगा होगा; दोनों को साथ ही लग सकता है--अगर उसे मेरा पता नहीं चला, तो मुझे क्यों पता चला? कब वह घड़ी आएगी, शुभ घड़ी, तब मुझे इस तरह की छोटी-छोटी बातों का पता न चलेगा?
नमाज, प्रार्थना, आराधना तब पूरी होती है जब तुम बाहर की तरफ बिल्कुल
ही बेहोश हो जाओ; तुम्हारा सारा होश भीतर आ जाए। इसलिए दोहरी घटनाएं घटती हैं--नमाज एक बड़ा विरोधाभास है। बाहर से सारा का सारा होश खिंच कर भीतर आ जाता है। बाहर बंटा था, परिधि पर बिखरा था, भीतर आकर संगृहीत हो जाता है। तो एक तरफ तो नमाजी बाहर से बेहोश हो जाता है और भीतर परम होश से भर जाता है। भीतर एक जगमगाती ज्योति प्रकट होती है। बाहर का सब भूल जाता है। शायद तुम उसे तलवार से काट दो तो उसे पता न चले!
ऐसा हुआ। उन्नीस सौ पांच में काशी के नरेश का आपरेशन हुआ। अपेंडिक्स
का आपरेशन था। लेकिन काशी के नरेश ने व्रत ले रखा था कि कोई मादक द्रव्य कभी नहीं लेंगे जो बेहोश करे। परमात्मा को पीते थे, अब और क्या मादक द्रव्य चाहिए! बड़ी अड़चन हो गई--वे क्लोरोफार्म लेने को भी राजी नहीं थे। और बिना क्लोरोफार्म के कैसे अपेंडिक्स निकाली जाए?
अंग्रेज डाक्टर परेशान थे। निकालनी जरूरी थी, नहीं तो जीवन खतरे में था। लेकिन काशी-नरेश ने कहा, तुम चिंता न करो! मैं प्रार्थना में लीन हो जाऊंगा, तुम आपरेशन कर देना। उन्हें भरोसा तो नहीं आया कि प्रार्थना ऐसी हो सकती है कि तुम अपेंडिक्स निकालो और पता न चले! उन्होंने तो प्रार्थना करने वाले लोग देखे थे कि जरा बच्चा शोरगुल मचा दे कि वे निकल कर बाहर आ जाते हैं, अपने मंदिर के बाहर और चिल्लाते हैं कि कौन शोरगुल मचा रहा है? कि पत्नी के हाथ से बर्तन गिर जाए कि बस, उनकी खोपड़ी गरम हो जाती है--कि वह आराधना के लिए बैठे थे और सब आराधना भ्रष्ट हो गई। मोहल्ले का कुत्ता भौंक दे और काफी है! ऐसे प्रार्थना करने वाले लोग देखे थे। अपेंडिक्स निकाली जाए, बड़ा आपरेशन... और उन्नीस सौ पांच में और भी बड़ा आपरेशन था, अब तो

अपेंडिक्स कोई बड़ा आपरेशन नहीं है। अब तो कुछ भी थोड़ा उपद्रव हो कि निकालो अपेंडिक्स!
लेकिन कोई और उपाय नहीं था तो राजी होना पड़ा। सम्राट लेने को राजी नहीं था क्लोरोफार्म, मर जाने के लिए राजी था। तो उन्होंने कहा एक प्रयोग करके देखें। मौत तो होने ही वाली है। इसमें कम से कम एक संभावना है कि शायद यह आदमी कहता है तो बच जाए।
वह अपनी प्रार्थना में लीन हो गया और अपेंडिक्स का आपरेशन हो गया और उसे पता भी नहीं चला। उससे पूछा गया बाद में कि कैसे यह किया? उसने कहा, इसमें तो कुछ बात ही नहीं। यह तो सीधा सा हिसाब है। सारी चेतना भीतर की तरफ मुड़ जाती है।
तुमको भी इस तरह के अनुभव कभी-कभी होते हैंः अनायास। जैसे कभी खेल में, तुम अगर खिलाड़ी हो, हाकी खेल रहे हो और तुम्हारे पैर में चोट लग गई और खून बह रहा है, तो जब तक खेल जारी रहेगा तब तक पता नहीं चलेगा। हां, खेल खत्म होते ही से पता चलेगा कि अरे, बड़ा दर्द हो रहा है, खून बह रहा है, पता नहीं कितना खून बह गया! लेकिन खेल जारी रहते तुम्हें पता क्यों नहीं चला? तुम्हारी सारी चेतना खेल पर लगी थी। पैर तक जाने के लिए चेतना को सुविधा ही नहीं थी।
तुम्हारे घर में आग लग जाए; तब तुम्हारे मन में फिजूल विचार नहीं आएंगे, जो रोज आते हैं। उस वक्त तुम सोचोगे कि कौन सी टाकीज में कौन सी फिल्म चल रही है? घर में आग लगी हो, उस वक्त तुम इस तरह की फिजूल बातें सोचोगे? सारी चेतना सिकुड़ आएगी।
ऐसे अनुभव तुम्हें होते हैं। जब तुम व्यस्त होते हो किसी काम में, तो चित्त सारी तरफ से खिंच आता है।
प्रार्थना ऐसी ही स्थिति की परम अवस्था है। वहां सारी चेतना सिकुड़ आती है भीतर। तो भीतर तो सघन होकर रोशनी हो जाती है और बाहर अस्तित्व खो जाता है। और ऐसी ही घड़ियों में प्रभु की पगध्वनि, उसके पैरों की पहली आहट, अतिथि के आगमन का पहला सुसमाचार पहुंचता है।
हरि भारती, वही तो मैं कर रहा हूं, पिला रहा हूं। मेरी तरफ से कंजूसी जरा भी नहीं है। अगर तुम न हो पाओ नमाजी, अगर तुम न हो पाओ शराबी, तो ध्यान रखना, कहीं न कहीं पीने में तुम कंजूसी कर गए। कहीं न कहीं तुमने हाथ सरका लिया; कहीं न कहीं तुम डर गए, भयभीत हो गए।
मुझे दोष मत देना! मेरी तरफ से तो तुम जितना पीओ उससे ज्यादा उपलब्ध है। तुम जन्मों-जन्मों में जितना पी सको, उससे ज्यादा उपलब्ध है। मैं तुम्हें पूरा सागर ही दिए दे रहा हूं। मगर तुम चुल्लू भर भी नहीं पी रहे हो; क्योंकि तुम पीने से डरते होः पीने से बेहोशी आएगी, पीने से पागलपन आएगा; पीने से श्रद्धा आएगी, पीने से समर्पण आएगा। और पीने से तुम्हारी पुरानी व्यवस्था सब डांवाडोल हो जाएगी, अस्तव्यस्त हो जाएगी। तुम्हारे सारे पुराने न्यस्त स्वार्थ उखड़ जाएंगे। तुम्हें एक नई जिंदगी जीनी पड़ेगी। और नई जिंदगी जीने का साहस कम ही लोगों में होता है।
लोग तो पुराने को ही खींचते रहते हैं, क्योंकि पुराना सुविधापूर्ण होता है। जाना-माना, पहचाना, उसके हम अभ्यस्त होते हैं, हम कुशल भी होते हैं उसे जीने में, उसे करने के लिए हमें कोई श्रम भी नहीं करना पड़ता। इसीलिए तो जैसे-जैसे आदमी की उम्र बड़ी होने लगती है वैसे-वैसे वह नई चीज सीखने में असमर्थ होने लगता है। छोटे बच्चे जल्दी सीख लेते हैं। छोटे बच्चों को कोई भी भाषा सिखाओ, वे जल्दी सीख लेते हैं। जैसे उम्र बड़ी होने लगती है, मुश्किल होने लगता है।
क्या मुश्किल आ जाती है?
मुश्किल यह आ जाती है कि अब पुरानी भाषा से काम चलने लगा, सुगमता हो गई, अब कौन नई झंझट ले! कौन नया उपद्रव बांधे! कौन श्रम करे! एक गहन आलस्य है, जो मनुष्य के मन में छिपा बैठा है। उस आलस्य के कारण हम उतना ही करते हैं जितना करना पड़ता है।... अब प्रार्थना की कोई जरूरत तो है नहीं। रोटी- रोजी तो उससे मिलेगी नहीं। मकान तो बड़ा बन न सकेगा। प्रतिष्ठा तो जगत में मिलेगी नहीं--होगी थोड़ी-बहुत तो वह भी खो जाएगी! सुनते हो मीरा ने क्या

कहा? लोक-लाज खोई। प्रतिष्ठा थी वह भी गई, लोक-लाज भी गई। लोग पागल समझेंगे। मिलने को कुछ भी नहीं है और खो सब जाएगा।
ऐसा नहीं है कि मिलने को कुछ भी नहीं है; लेकिन जो मिलेगा वह भीतर है। उसे तुम दूसरों को दिखा भी न सकोगे। उसका प्रदर्शन भी न कर सकोगे। उसकी अभिव्यक्ति भी कठिन है। कहोगे तो लोग हंसेंगे। अगर किसी से कहोगे कि मुझे भीतर प्रकाश अनुभव होता है, तो वह चौंक कर इधर-उधर देखेगा कोई और तो नहीं सुन रहा है कि हम भी इनके साथ हैं। कहोगे कि भीतर मुझे बड़े आनंद की लहरें उठती हैं, तो वह दूसरा आदमी संदेह करेगा कि दिमाग ठीक है? क्योंकि उसका अनुभव और सब का अनुभव तो भीतर दुख की लहरों का है। कहोगे कि भीतर मेरे पूर्णिमा है, उसका अनुभव तो अमावस का है। वह माने तो कैसे माने? तुम कहोगे, बड़ा उल्लास है, बड़ी मस्ती है; भीतर आनंद के, हंसी के फव्वारे फूट रहे हैं। लोग कहेंगे, या तो तुम भ्रम में पड़े हो या भ्रम में डालना चाहते हो। अपने वाले भी नहीं मानेंगे, परायों की तो बात छोड़ दो। पहले-पहले तो तुम खुद भी नहीं मानोगे कि ऐसा हो सकता है। समझोगे कि शायद सम्मोहित कर लिए गए हो।
किसी भ्रमजाल में पड़ गए हो।
कल ही मैं एक लेख पढ़ रहा था। उस लेख में लिखा है, इस आश्रम के संबंध में
कि इस आश्रम में जाना खतरे से खाली नहीं है।
दो कारण बताए हैं।
एक, प्रत्येक व्यक्ति जो यहां आता है, सम्मोहित कर लिया जाता है। अब
यह शब्द सम्मोहन, बस लोगों को चौंकाने के लिए काफी है। और जो सम्मोहित नहीं हो सकते, जो बड़े संकल्पवान हैं, उनको पानी में या चाय में कुछ मादक द्रव्य पिला दिए जाते हैं। एल.एसड़ी., या कुछ इस तरह की चीजें उनको पिला दी जाती हैं। क्योंकि यहां से जो लौटता है, वह कुछ और ही तरह की बातें करने लगता है।
जिन मित्र ने लेख लिखा है, एक अर्थ में ठीक ही लिखा है। कुछ तो जरूर जो यहां से लौटता है कुछ और तरह की बात करने लगता है। और आम जनता को ऐसा लगे कि कुछ गड़बड़ हो गई है। ऐसी बातें करने लगता है जैसे लोग भांग-गांजे के नशे में करते हैं। तो या तो सम्मोहित हो गया है, या कुछ गांजा-भांग... !
न उन्हें सम्मोहन का कुछ पता है, न इस तरह के लोग कभी आए हैं--आएंगे भी कैसे; क्योंकि आ जाएं तो खतरा ही है! आना तो है ही नहीं। लेख ही इसीलिए लिखा है कि कोई दूसरा भी न जाए। तुम भी पढ़ोगे लेख को तो तुमको भी एक दहा विचार आएगा कि बात कुछ जंचती तो है, कि हम वही तो नहीं रहे जैसे थे आने के पहले। फिर लोग गैरिक वस्त्र पहनने लगते हैं। फिर उनके चेहरे पर एक मुस्कुराहट दिखाई पड़ती है। जैसे इस जिंदगी के सारे दुख उनके लिए दुख न रहे। जैसे इस जिंदगी के सारे विषादों से उनका संबंध छूट गया।
उन्हें एक नई जीवनशैली मिल गई है। वह इतनी नई है और जगत इतने नरक में
जी रहा है कि अगर नरक में तुम अचानक पाओ कि एक आदमी नाच रहा है, बांसुरी बजा रहा है, तुम्हें शक होगा कि गांजा पीए है; या अफीम खा गया है। होश में होता तो नरक में कहीं ऐसा कर सकता था! लोग हंसना ही भूल गए हैं। हंसते भी हैं तो ओछा, छिछला। उनकी हंसी भी खोखली मालूम पड़ती है। बस ज्यादा से ज्यादा कंठ से आती लगती है। हृदय का कोई भी दान उसमें नहीं होता।
मेरा संन्यासी हंसने लगता है। दिल खोल कर हंसने लगता है। उसके जीवन में एक रस है। जो उसके ही भीतर मौजूद था। निश्चित ही शराब पिलाई जा रही है, लेकिन ऐसी शराब नहीं जो बाहर ढलती है, वरन ऐसी शराब जो भीतर ही ढलती है।

तीसरा प्रश्नः भगवान, यह कैसे पता चले कि जो हो रहा है वह प्रभु की मर्जी से हो रहा है या हम आलस्य के प्रभाव से नहीं कर पा रहे हैं? कृपा करके समझाएं।

रामसिंह! आलस्य भी होगा तो उसी की मर्जी से होगा। जिसने सब छोड़ दिया,
वह आलस्य को बचा लेगा? जब सभी चढ़ा दिया उसके चरणों में तो इतनी कंजूसी और क्यों कर रहे हो? आलस्य भी उसी के चरणों में चढ़ा दो।

चढ़ाओ तो पूरा चढ़ाओ, बंटवारे न करो, नहीं तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाओगे। अगर बंटवारा किया तो बुरा-बुरा तुम्हारे हाथ में रह जाएगा और भला-भला उसके हाथ में चला जाएगा। लोग अच्छी चीजें चढ़ा देते हैं। सोचते हैं, चढ़ाना है तो अच्छी ही चीजें चढ़ाना चाहिए! फिर आलस्य का क्या होगा? फिर बेईमानी का क्या होगा? फिर चालबाजी का क्या होगा? फिर झूठ का क्या होगा? फिर तुम्हारे पाखंड का क्या होगा? वह सब तुम्हारे हिस्से में पड़ जाएगा।
यही तो अब तक का इतिहास है कि आदमी को सिखाया गया हैः अच्छी-अच्छी चीजें उस पर चढ़ा दो। फूल उस पर चढ़ा दो। फिर कांटे? फिर कांटे तुम्हारे जिम्मे पड़े। सो उसके तो मोरमुकुट, फूल लग गए--वैसे भी उसको फूलों की कोई कमी न थी, सारे फूल उसी के थे--और तुम अभागे, जो दो-चार फूल हाथ लगे थे वे भगवान को चढ़ा आए, अब बचे कांटे! अब रोओ! इन कांटों को छाती से लगाओ और तड़फो! समर्पण का अर्थ होता हैः समग्र। समग्र ही हो तो समर्पण।
रामसिंह का मन में विचार उठा होगा कि यह बात तो ठीक है कि सब परमात्मा
की मर्जी से हो रहा है, मगर अगर आलस्य हो रहा है, फिर? परमात्मा आलसी तो नहीं हो सकता! यह तुमसे किसने कहा? मेरे हिसाब से तो परमात्मा का काम कितना आहिस्ता चल रहा है। सदियां-सदियां बीत गईं... कोई जल्दी दिखाई पड़ती है? कोई जल्दबाजी? जल्दबाजी आदमी को है, परमात्मा को नहीं। सदियों-सदियों में करोड़ों-करोड़ों वर्षों में पृथ्वी बनती है। करोड़ों-करोड़ों वर्षों में पृथ्वी पर हरियाली ऊगती है। करोड़ों-करोड़ों वर्षों में फिर पृथ्वी पर प्राणी आते हैं। करोड़ों-करोड़ों वर्षों में फिर मनुष्य आता है। और परमात्मा का धीरज इतना है कि करोड़ों-करोड़ों मनुष्यों में कभी कोई एक बुद्ध हो पाता है, फिर भी वह राजी है। या तो कहो आलसी है, या कहो परम धैर्यवान है।
आलस्य की इतनी निंदा क्यों है? क्योंकि आदमी अतीत में बड़ी मुश्किल से जीया है--बड़ी मुश्किल से जीया है! खूब श्रम किया है तो ही जी सका है, बच सका है। जीवन एक गहन संघर्ष था। इसलिए उसमें आलसी की बड़ी निंदा हो गई। और उसमें कर्मठ का बड़ा सम्मान हो गया। हालांकि बात यह है कि कर्मठ लोगों ने दुनिया को जितना गड्ढों में पटका, उतना आलसियों ने नहीं। आलसियों ने कोई नुकसान ही नहीं किया। वे नुकसान करने लायक काम भी नहीं कर सकते। वे किस तरह नुकसान करेंगे? एडोल्फ हिटलर आलसी हो सकता है? मुसोलिनी आलसी हो सकता है? स्टैलिन, माओत्से तुंग आलसी हो सकते हैं? असंभव। ये तो बड़े कर्मठ पुरुष हैं। लौह-पुरुष। स्टैलिन शब्द का अर्थ होता हैः लौह-पुरुष। स्टील से बना शब्द स्टैलिन। वह उसका असली नाम नहीं है, दिया हुआ नाम है। ये तो सदा कर्म में रत रहते हैं ये लोग। नादिरशाह और तैमूरलंग और चंगीजखान और सिकंदर और नेपोलियन, ये कोई आलसी हैं?
नेपोलियन के संबंध में कहा जाता है, वह घोड़े पर ही दो घंटे सो लेता था। घोड़े पर ही! नीचे भी नहीं उतरे; इतना भी समय कौन खराब करे? उतरना, चढ़ना... घोड़े पर ही सो लेता था। बस दो घंटे चौबीस घंटे में काफी था। इस तरह के लोगों का हमने खूब सम्मान किया। मगर उन्होंने किया क्या?
आलसियों के ऊपर कोई दोष है? उन्होंने कोई बड़ा पाप किया? रावण आलसी होता तो सीता नहीं चुराई जाती--पक्का समझो! कौन झंझट में पड़ता!
तुमने आलसियों की कहानियां तो सुनी ही हैं; कि दो आलसी लेटे हैं एक झाड़ के नीचे, जामुनें टपक रही हैं; पकी जामुनें, उनकी गंध! और एक आलसी दूसरे से बोला कि हद्द हो गई, हम सोचते थे कि तू अपना मित्र है! और मित्र तो वह है जो समय पर काम आए। जामुनें टपा-टप गिर रही हैं और तुझसे इतना भी नहीं हो सकता कि एक जामुन उठा कर मेरे मुंह में डाल दे! और उस दूसरे ने कहा कि जाओ-जाओ, तेरे मुंह में और मैं जामुन डालूं! अरे, दोस्त वह जो दुख में काम आए! अभी एक कुत्ता मेरे कान में मूत रहा था तो तू उसे भगा भी नहीं सका!
एक आदमी रास्ते से गुजर रहा था, उसने दोनों की बात सुनी, उसने कहा हद्द
हो गई! दया आई उसे बहुत, बेचारे महा आलसी हैं, उसने एक-एक जामुन दोनों के मुंह में उठा कर डाल दी। चलने को ही था कि दोनों बोले, अबे ठहर, गुठली कौन निकालेगा? जरा रुक! अब इतना किया है तो इतना और!

ऐसे आदमी से तुम सोचते हो कि दुनिया में कोई नुकसान हो सकता है? लेकिन आलस्य का हमने विरोध किया है, क्योंकि जीवन एक संघर्ष था और संघर्ष में कर्मठ की उपयोगिता था। अन्यथा आलस्य में अपने आप तो कुछ ऐसी विरोध की बात नहीं है। अपने आप में तो कुछ बुरा नहीं है।
और यह संभव है कि आने वाले भविष्य में आलसी का सम्मान बढ़ जाए।
आने वाली सदी में उन लोगों का सम्मान किया जाएगा जो काम नहीं मांगेंगे। क्योंकि सारा काम धीरे-धीरे यंत्रों के द्वारा होने लगेगा--हो ही रहा है। विकसित देशों में पहले सात दिन का सप्ताह होता था, फिर छह दिन का होने लगा, फिर पांच दिन का होने लगा, अब चार दिन का होने लगा। अब अमरीका में विचार चलता है उसको हटा कर तीन दिन का कर दिया जाए, क्योंकि मशीनों से काम पूरा हुआ जा रहा है। बीस साल पूरे होते-होते करोड़ों लोग बिना काम के होंगे। भोजन तो उन्हें देना होगा। वह उनका जन्मसिद्ध अधिकार है। मकान भी देना होगा, कपड़े भी देने होंगे।
पश्चिम के अर्थशास्त्री तो यह कहते हैं--तुम चौंकोगे जान कर--कि पचास साल के भीतर यह हालत आ जाने वाली है कि जो आदमी काम नहीं मांगेगा, उसको तनख्वाह ज्यादा मिलेगी उस आदमी के बजाय जो काम मांगेगा। क्यों? क्योंकि वह दो-दो चीजें एक साथ चाहता है--तनख्वाह भी और काम भी! तो स्वभावतः उसको तनख्वाह कम मिलेगी। दोनों हाथ लड्डू! जो काम नहीं मांगता, उसको तनख्वाह ज्यादा मिलेगी--स्वभावतः उसको कुछ कॉम्पनसेशन देना होगा, क्योंकि वह काम भी नहीं मांग रहा है।
आलस्य के दिन आ रहे हैं, रामसिंह, घबड़ाओ मत! ... रामसिंह हैं अमृतसर से।
... पंजाबियों के दिन जा रहे हैं, रामसिंह, घबड़ाओ मत! आलसियों के दिन आ रहे हैं। यंत्र सब कर देगा। फिर विश्वविद्यालयों में और शिक्षालयों में बड़े- बड़े तख्तों पर लिखा होगा--धन्य हैं आलसी, क्योंकि प्रभु का राज्य उन्हें का है। हमें जोड़ने पड़ेंगे ये वचन। हमें धर्मशास्त्रों में ये बातें लिखनी पड़ेंगी। आलस्य को सदगुण बनाना ही पड़ेगा।
और परमात्मा तो इतनी धीमी चाल से चलता है कि पता ही कहां चलती है उसकी चाल! एक बीज बोओ, कितना समय लेता है! वर्षों लग जाते हैं वृक्ष के बनते- बनते, तब कहीं फूल आते, तब कहीं फल लगते। कोई जल्दी है वहां! समय की अनंतता है, कोई जल्दी नहीं।
और रामसिंह, जब सभी उस पर चढ़ा दिया तो इतनी भी क्या कंजूसी! आलस्य भी उसी का!
तुमने कहानी नहीं सुनी?
एक सूफी कहानी है कि एक बुढ़िया जो कुछ उसके पास होता सभी परमात्मा पर चढ़ा देती। यहां तक कि सुबह वह जो घर का कचरा वगैरह फेंकती, वह भी घूरे पर जाकर कहतीः तुझको ही समर्पित। लोगों ने जब यह सुना तो उन्होंने कहा, यह तो हद हो गई! फूल चढ़ाओ, मिष्ठान चढ़ाओ... कचरा?
एक फकीर गुजर रहा था, उसने एक दिन सुना कि वह बुढ़िया गई घूरे पर, उसने जाकर सारा कचरा फेंका और कहाः हे प्रभु, तुझको ही समर्पित! उस फकीर ने कहा कि बाई, ठहर! मैंने बड़े-बड़े संत देखे... तू यह क्या कह रही है? उसने कहा, मुझसे मत पूछो; उससे ही पूछो। जब सब दे दिया तो कचरा क्या मैं बचाऊं? मैं ऐसी नासमझ नहीं।
उस फकीर ने उस रात एक स्वप्न देखा कि वह स्वर्ग ले जाया गया है। परमात्मा के सामने खड़ा है। स्वर्ण-सिंहासन पर परमात्मा विराजमान है। सुबह हो रही है, सूरज ऊग रहा है, पक्षी गीत गाने लगे--सपना देख रहा है--और तभी अचानक एक टोकरी भर कचरा आ कर परमात्मा के सिर पर पड़ा और उसने कहा कि यह बाई भी एक दिन नहीं चूकती! फकीर ने कहा कि मैं जानता हूं इस बाई को। कल ही तो मैंने इसे देखा था और कल ही मैंने उससे कहा था कि यह तू क्या करती है? लेकिन घंटे भर वहां रहा फकीर, बहुत से लोगों को जानता था जो फूल चढ़ाते हैं, मिष्ठान्न चढ़ाते हैं, वे तो कोई नहीं आए। उसने पूछा परमात्मा को कि फूल चढ़ाने वाले लोग भी हैं... सुबह ही से तोड़ते हैं, पड़ोसियों के वृक्षों में से तोड़ते हैं। अपने वृक्षों के फूल कौन चढ़ाता है! आस-पास से फूल तोड़ कर चढ़ाते हैं... उनके फूल तो कोई गिरते नहीं दिखते?

परमात्मा ने उस फकीर को कहा, जो आधा-आधा चढ़ाता है, उसका पहुंचता नहीं।
इस स्त्री ने सब कुछ चढ़ा दिया है, कुछ नहीं बचाती, जो है सब चढ़ा दिया है।
समग्र जो चढ़ाता है, उसका ही पहुंचता है।
घबड़ाहट में फकीर की नींद खुल गई। पसीने-पसीने हो रहा था, छाती धड़क रही थी। क्योंकि अब तक की मेहनत, उसे याद आया कि व्यर्थ गई। मैं भी तो छांट-छांट कर चढ़ाता रहा।
समर्पण समग्र ही हो सकता है।
इसलिए, रामसिंह, तुम पूछते होः यह कैसे पता चले कि जो हो रहा है वह प्रभु की मर्जी से हो रहा है? पता चलाने की जरूरत क्या है? और किसकी मर्जी से हो रहा होगा! और भी कोई है? जो हो रहा है, उसी की मर्जी से हो रहा होगा-- और तो कोई है ही नहीं।
और फिर तुम्हें डर लगता हैः कहीं हम आलस्य के प्रभाव में न कर पा रहे हों। तो आलस्य उसकी मर्जी। तुम जरा आलस्य को भी चढ़ा कर देखो और तुम बड़े हैरान हो जाओगे। आलस्य चढ़ाते ही तुम्हारे ऊपर से जैसे एक गर्द की पर्त गिर जाएगी। उस पर गिरे, जाने दो, वह जाने। उसका संसार है, वह करे फिकर! उसने अगर तुमको आलसी बनाया तो तुम करोगे भी क्या? वस्तुतः धार्मिक व्यक्ति वही है, जो वह देता है कि सब तेरा। बुरा भी, भला भी, सब तेरा।
कबीर के घर लोग भोजन के लिए आते थे। रोज भजन के लिए आते थे असल में तो, मगर जाने के पहले कबीर कहतेः अरे, कहां चले? भोजन तो कर जाओ! गरीब आदमी, बामुश्किल रोटी जुटती थी। पत्नी परेशान थी। लड़का तो बहुत परेशान था। कमाल ने एक दिन कहा कि हद्द हो गई। हम पर कर्ज भी बहुत हो गया है। भजन तक ठीक बात है, यह भोजन हर एक को करवाना, सौ, दो सौ आदमी रोज भोजन करें, हम लाएं कहां से? सारे गांव से उधार मांग चुके, अब तो कोई उधार देने को राजी नहीं है। और इन लोगों ने धंधा बना लिया है। ये रोज आकर हाजिर हैं! और मुझे शक होता है कि ये भजन के लिए आते हैं? ये भोजन के लिए आते हैं। और तुमको कितनी दफे समझाया और तुम हां भर देते हो कि ठीक, कल मैं नहीं कहूंगा, लेकिन बस, भजन खत्म हुआ कि तुम मानते ही नहीं, लोगों से कहते हो कि भोजन कर जाओ। क्या हम चोरी करने लगें?
गुस्से में कहा था कमाल ने किया क्या हम चोरी करने लगें? कबीर ने कहाः अरे पागल, तो यह तुझे पहले क्यों नहीं सूझा? कितने दिन से मेरी खोपड़ी खाता है कि भोजन के लिए मत कहो। मुझसे रहा नहीं जाता। तेरी अकल पहले कहां गई थी? गजब का ख्याल है! लड़के ने सोचा, हल हो गई! तो ये चोरी करवाने के लिए भी राजी हैं! उसने पूछा भी कि आप समझे मेरा मतलब? होश में हैं? कहीं अपने भजन-कीर्तन में ही तो नहीं डूबे हैं? चोरी कह रहा हूं, चोरी! कबीर ने कहा, जो उसकी मर्जी होगी, करवाएगा। अब चोरी ही करवानी होगी तो हम क्या करेंगे? इसको आस्तिकता कहते हैं। इससे कम हो तो आस्तिकता नहीं।
लेकिन कबीर का लड़का भी कबीर का ही लड़का था आखिर। इतनी जल्दी छोड़ नहीं देता। उसने कहा कि यह बात ही बात समझ कर मामला निपटा रहे हैं। जानते हैं कि मैं चोरी करूंगा नहीं। मगर मैं भी दिखाकर रहूंगा! सांझ को, उसने कहा, ठीक, अब मैं चोरी को जा रहा हूं, आप भी चलें! क्योंकि मैं अकेला क्यों जाऊं? भोजन आप करवाएं, चोरी मैं करूं? पाप पाप मेरे सिर पड़ेगा, पीछे जवाब कौन देगा? वह यह कह ही रहा था कि कबीर उठ कर खड़े हो गए। उन्होंने कहा कि चल, मुझे कुछ काम भी नहीं है; यहां भी बैठे-बैठे क्या कर रहा हूं? भजन कर रहा हूं यहां, वहीं भजन करेंगे। मैं चल पड़ता हूं तेरे साथ।
बेटा भी पक्का था। अभी भी उसे भरोसा नहीं था कि कबीर चोरी करने के लिए राजी होंगे। चले गए। कबीर खड़े वहीं भजन करते रहे और लड़का सेंध मारता रहा, बार-बार देखता रहा कि अब रोकें, अब रोकें। दीवाल टूट गई, अभी भी नहीं रोका। अब तो थोड़ा उसे भय लगने लगा कि यह मामला ज्यादा बढ़ जा रहा है। उसने पूछा, अब भीतर जाऊं? कबीर ने कहा, और दीवाल काहे के लिए तोड़ी? भीतर जा! और जाना ही नहीं, भीतर से कुछ ला!
कबीर का ही बेटा था, उसने हिम्मत की, भीतर गया। खींच कर एक बोरा गेहूं
का लाया। बामुश्किल उसको छेद में से बाहर निकाल पाए। दोनों ने मिल कर बाहर निकाला। फिर जब बोरा बाहर निकल आया तो कबीर ने कहाः अब एक काम और कर; घर के

लोगों को जाकर जगा दे। चिल्ला दे कि चोरी हो गई, चोरी हो गई! उसने कहा, यह किस ढंग की चोरी? फंसूंगा मैं! कबीर ने कहा, जिसने करवाई है, वही फंसेगा, हम क्यों फंसेंगे? तू बीच-बीच में अपने को क्यों लाता है?
कबीर की बात को समझना; बारीक है! कबीरपंथी इस कहानी को अपनी किताबों में से छोड़ देते हैं। क्योंकि डर लगता है; इस बात को लाना खतरनाक मालूम पड़ता है। क्योंकि हमने तो धर्मों को भी नीति के तल पर खींच लिया है। और धर्म तो नीति-अनीति के परे होते हैं। न वहां कुछ अच्छा है, न वहां कुछ बुरा है। हम तो धर्म की नीति के साथ पर्यायवाची बना दिए हैं। तो कबीरपंथी भी डरते हैं कि यह कहानी जोड़ना कि नहीं! लेकिन कितनी ही छिपाओ, जानने वाले इन कहानियों को जानते हैं। कानों-कान चलती रही हैं ये कहानियां--किताबों में न भी लिखो तो क्या होगा! कहीं-न-कहीं से इनके लिए स्रोत मिलते रहे हैं। इतनी बहुमूल्य कहानियां हैं, गंवाई भी नहीं जा सकतीं। तो मेरे जैसा कोई-न-कोई आदमी फिर उनको कह देगा, वे फिर चलने लगती हैं!
तुम्हें किताब में न मिलें तो घबड़ाना मत, मैं अपनी साक्षी से कहता हूं
कि यह बात सच है। ऐसा हुआ ही होगा। होना ही चाहिए। कबीर की जिंदगी में न हो तो और किसकी जिंदगी में होगा! कहानी प्यारी है।
कबीर ने कहा, जा, खबर कर दे! और जब कबीर कहें तो बेटा न जाए! गया भीतर, लोगों को हिला-हिला कर जगा दिया कि चोरी हो गई! लोगों ने उसको पकड़ लिया। भागा, निकलने की कोशिश ही कर रहा था कि लोगों ने उसको पकड़ लिया, पैर उसके पकड़ लिए। गर्दन बाहर, पैर भीतर। कबीर ने कहा, भाई, अब तो सुबह हुई जा रही है, भजन करने वाले आते होंगे। अब मैं क्या करूं? तो रखने दे पैर उनको, गर्दन तेरी मैं ले जाता हूं। सो उन्होंने उसकी गर्दन काट ली; गर्दन लेकर घर पहुंच गए।
लोगों ने भीतर खींच लिया। सिर तो था ही नहीं। लेकिन रंग-ढंग से ऐसा लगा कि कबीर का बेटा है। परिचित था, गांव-भर का परिचित था। किसी से पूछा कि कैसे पक्का करें कि यह कबीर का बेटा ही है या कोई और? तो उन्होंने कहा, ऐसा करो, सुबह कबीर की मंडली निकलेगी गंगा स्नान को, भजन करती हुई। इसको बाहर एक वृक्ष से टांग दो। उन्होंने कहा, इससे क्या होगा? उन्होंने कहा, अगर यह कबीर का ही बेटा है, तो जब कबीर भजन करते निकलेंगे तो यह ताली बजाएगा। उन्होंने कहा, पागल हो गए हो? इसका सिर नदारद; मुर्दे कहीं ताली बजाते हैं! उन लोगों ने कहा, तुम मानो या न मानो, हमने कबीर के पास मुर्दों को बैठे देखा और ताली बजाते देखा है।
सुनते हो यह कहानी! कि हमने बहुत से मुर्दों को वहां जाते देखा है और उनको ताली बजाते देखा है। और ताली बजाते-बजाते निंदा हो गए हैं मुर्दे।... कबीर के पास आते ही लोग जब हैं तब मुर्दे होते हैं। आखिर और कौन आएगा? सारी दुनिया मुर्दों से भरी है।... तो कहानी कहती है कि लटका दिया बेटे के शरीर को बाहर एक वृक्ष से और लोग छिप कर बैठ रहे। और जब कबीर की मंडली आई और धुन छिड़ी और शराब बही और नमाज उठी कि बस, कबीर के बटे ने ताली देना शुरू कर दिया!
लोगों ने कबीर को पकड़ लिया और कहा कि यह तुम्हारा ही बेटा है। कबीर ने कहा, इतने आयोजन की क्या जरूरत थी? मुझसे आकर पूछ लिए होते! यह बेटा मेरा है। और इसने अकेले चोरी नहीं थी, मैं भी मौजूद था। और मैं भी मौजूद नहीं था, परमात्मा भी मौजूद था। सब जिम्मेवारी उसकी है। हम तो उसके हाथ के खिलौने हैं। जैसा नचाए, नाचते हैं।
जो इस कहानी को समझ सके, वह समर्पण का भाव समझ सकेगा।
रामसिंह! आलस्य भी उसी का। भला भी उसका, बुरा भी उसका।

तुम को क्या मालूम कि कितना समझाया है मन,
फिर भी बार-बार करता है भूल, क्या करूं?

बीसों बार कहा खुलकर मत बोल बावरे
कानों के कच्चे हैं लोग जमाने भर के,
और कहीं भूले भटके सच बोल दिया तो--

गली-गली मारेंगे लोग निशाने कर के,

लेकिन जिद्दी मन को कोई क्या समझाए
खुद मुझ से ही रहता है प्रतिकूल, क्या करूं?

मना किया हर बार कि ऐसी गैल न चल तू
जिसमें अरमानों की बदनामी का डर हो,
ऐसा साथ तलाश कि जो खाता-पीता हो--
जिसके पास उमर अपनी हो, अपना घर हो,

लेकिन जाने कैसा पाया है स्वभाव जो
लगती हर मतलब की बात फिजूल, क्या करूं?

समझाया बहुतेरा देख न कर नादानी
ओस और आंसू का भाईचारा कैसा,
ओस चांद की बेटी, तू आवारा पानी,
आवारा पानी का मीत किनारा कैसा,

आंधी ने सौ बार दिए हैं धोखे अब तक
मिले, भले मत मिले, जनम भर कूल, क्या करूं?

तुम को क्या मालूम कि कितना समझाया है मन,
फिर भी बार-बार करता है भूल, क्या करूं?
एक तो प्रक्रिया है नीति की कि मन को भूल मत करने दो। हर भूल को सुधारो। एक-एक भूल को सुधारो, थेगड़े लगाओ। लेकिन तुम पक्का समझ लो, एक तरफ भूल सुधारोगे, दूसरी तरफ से भूल बहने लगेगी। एक तरफ से रोकोगे झरना दूसरी तरफ से फूट बहेगा। इसलिए नैतिक व्यक्ति रूपांतरित नहीं हो पाता। सिर्फ उसकी बीमारियां बदलती रहती हैं। एक बीमारी दबाता है, दूसरी बीमारी। दूसरी दबाता है, तीसरी बीमारी। मूल वही का वही रहता है।
धार्मिक व्यक्ति एक-एक भूलों को नहीं सुधारता। कौन थेगड़े लगाए! सब उसका है। धार्मिक व्यक्ति कह देता हैः मैं भी तेरा, सम्हाल! भूल करवानी हो भूल करवा, ठीक करवाना हो, ठीक करवा। सम्मान मिलेगा तो तुझे, अपमान मिलेगा तो तुझे। कल अगर जूते पड़ेंगे, तो तुझे, माला पहनाई जाएगी तो तुझे। मैं बीच में नहीं हूं।
इस अदभुत क्रांति का नाम धर्म है।
और जो ऐसा कर पाए, उसको फिर और कुछ करने की आवश्यकता नहीं रह जाती।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
उन्नीसवां प्रवचन

मुंह के कहे न मिलै, दिलै बिच हेरना

हरि-चरचा से बैर संग वह त्यागिये।
अपनी बुद्धि नसाय सवेरे भागिये।।
सरबस वह जो देइ तो नाहीं काम का।
अरे हां, पलटू मित्र नहीं वह दुष्ट जो द्रोही राम का।।

लोक-लाज जनि मानु वेद-कुल-कानि को।
भली-बुरी सिर धरौ भजौ भगवान को।।
हंसिहै सब संसार तौ माख न मानिये।
अरे हां, पलटू भक्त जक्त से बैर चारो जुग जानिये।।

देव पित्र दे छोड़ि जगत क्या करैगा।
चला जा सूधी चाल, रोइ सब मरैगा।।
जाति-बरन-कुल खोइ करौ तुम भक्ति को।
अरे हां, पलटू कान लीजिये मूंदि, हंसै दे जक्त को।।

केतिक जुग गये बीति माला के फेरते।
छाला परि गये जीभ राम के टेरते।।
माला दीजे डारि मनै को फेरना।
अरे हां, पलटू मुंह के कहे न मिलै, दिलै बिच हेरना।।

तीसो रोजा किया, फिरे सब भटकिकै।
आठो पहर निमाज मुए सिर पटकिकै।।
मक्के में भी गये, कबर में खाक है।
अरे हां, पलटू एक नबी का नाम सदा वह पाक है।।

डांड़ी पकड़े ज्ञान, छिमा कै सेर है।
सुरत सबद से तोल मनै का फेर है।।
भला-बुरा इक भाव निबाहै और है।
अरे हां, पलटू संतोष की करै दुकान महाजन जोर है।।

गति प्रबल पैरों में भरी
फिर क्यों रहूं दर-दर खड़ा
अब आज मेरे सामने
है रास्ता इतना पड़ा
जब तक न मंजिल पा सकूं, तब तक मुझे न विराम है, चलना हमारा काम है।

कुछ कह लिया, कुछ सुन लिया
कुछ बोझ अपना बंट गया
अच्छा हुआ तुम मिल गए
कुछ रास्ता ही कट गया
क्या राह में परिचय कहूं, राही हमारा नाम है, चलना हमारा काम है।

जीवन पूर्ण लिए हुए
पाता कभी खोता कभी
आशा निराशा से घिरा
हंसता कभी रोता कभी,
गति-मति न हो अवरुद्ध, इसका ध्यान आठों याम है,

चलना हमारा काम है।

इस विशद विश्व-प्रवाह में
किसको नहीं बहना पड़ा,
सुख-दुख हमारी ही तरह
किसको नहीं सहना पड़ा,
फिर व्यर्थ क्यों कहता फिरूं, मुझ पर विधाता वाम है, चलना हमारा काम है।

मैं पूर्णता की खोज में
दर-दर भटकता ही रहा
प्रत्येक पग पर कुछ न कुछ
रोड़ा अटकता ही रहा
पर हो निराशा क्यों मुझे? जीवन इसी का नाम है, चलना हमारा काम है।

कुछ साथ में चलते रहे
कुछ बीच से ही फिर गए
पर गति न जीव नकी रुकी
जो गिर गए सो गिर गए,
चलता रहे हर दम, उसीकी सफलता अभिराम है,
चलना हमारा काम है।

मैं तो फकत यह जानता
जो मिट गया वह जी गया
जो बंद कर पलकें सहज
दो घूंट हंसकर पी गया
जिसमें सुधा-मिश्रित गरल, वह साकिया का जाम है,
चलना हमारा काम है।
धर्म एक यात्रा है।
जिसे हम साधारणतः जीवन कहते हैं, वह भी यात्रा जैसा मालूम होता, लेकिन यात्रा नहीं है। यात्रा का धोखा है। यात्रा तो वह जो पहुंचा दे जिसके आगे जाने को फिर कोई और जगह न बचे। यात्रा तो वह जो मंजिल से जुड़ा दे, राम से मिला दे। क्योंकि राम मिले तो विश्राम है। जब तक राम नहीं, तब तक विश्राम नहीं। तब तक आपाधापी है, दौड़धूप है, चिंता-विषाद है।
जब तक राम नहीं तब तक तुम जिसे यात्रा समझ रहे, वह कोल्हू के बैल की यात्रा है। गोल रहे गोल-गोल, घूम रहे गोल-गोल। वही राह हजार बार चल रहे। कहीं पहुंचोगे नहीं। ऐसे ही कोल्हू के बैल की तरह चलते-चलते गिर जाओगे एक दिन। भ्रांति तो रहेगी कि चल रहे हो। मगर चलने से ही थोड़े कोई पहुंचता है! चलने में एक कला चाहिए। चलने में भी एक दिशा चाहिए। चलने का भी एक विज्ञान है और बहुत कम लोग हैं जो चलना जानते हैं।
चलते सभी हैं, लेकिन चलना वे ही जानते हैं जो पहुंचते हैं। कोई बुद्ध, कोई कृष्ण, कोई कबीर, कोई पलटू, कोई नानक, कोई मोहम्मद। जो कह सके कि मैं आ गया। जो कह सके कि अब मेरी कोई चाह न रही। कह ही न सके, जिसके जीवन की ध्वनि, जिसका प्रसाद, जिसकी उपस्थिति, जिसका सान्निध्य, जिसकी तरंग तुम्हें प्रमाण दे कि जो पाने योग्य था, पा लिया गया। बीज फूल हो गया। अमावस पूर्णिमा हो गई। ऐसी यात्रा जीवन बने तो उस कला, उस विज्ञान का नाम धर्म है।
और कैसे यह होगा? करोड़ों तो लोग हैं। सभी चल भी रहे हैं। चल ही नहीं रहे, दौड़ भी रहे हैं।
मैंने सुना है--
एक बहुत तीव्र गति से उड़ता हुआ हवाई जहाज, उसके पायलट ने इंटरकाम पर यात्रियों को सूचना दी कि दो खबरें हैं, एक अच्छी, एक बुरी। पहले बुरी खबर,

कि हमारा दिशासूचक यंत्र बिगड़ गया है। हम नहीं जानते कि हम कहां हैं? और हम नहीं जानते कि हम कहां जा रहे हैं? और दूसरी अच्छी खबर, कि हम जहां भी हैं और हम जहां भी जा रहे हैं, हम तेजी से जा रहे हैं।
लोग चल ही नहीं रहे हैं, दौड़ रहे हैं। पता नहीं कहां हैं? पता नहीं कहां जा रहे हैं? पता नहीं कहां से आ रहे हैं? मगर त्वरा है, तेजी है, बड़ा उद्दाम वेग है। क्षण भर की फुरसत नहीं है लोगों को। समय नहीं कि दो घड़ी राम को याद करें, कि दो घड़ी प्रार्थना में डूबें। कहोः प्रार्थना, ध्यान, लोग कहते हैं, समय कहां है? जीवन की आपाधापी इतनी है। फुरसत नहीं है। कहां जा रहे हो? क्यों जा रहे हो? । तुमसे आगे भी लोग चल-चल कर कब्रों में गिर रहे हैं। तुम भी गिर जाओगे। कैसे ही चलो, कहीं भी जाओ, कब्र पर ही पहुंच जाओगे। गरीब भी पहुंच जाते हैं, अमीर भी पहुंच जाते हैं। पैदल भी और घुड़सवार भी। सोने के छत्रों की छाया में या धूप में पसीने से लथपथ, लेकिन सब बस मृत्यु के गड्ढे में गिर जाते हैं।
मृत्यु के पहले जो अमृत को जान ले, समझना कि वही यात्री है।
फिर लोग इस यात्रा से ऊबते भी हैं। वही-वही रोज। वही दुकान, वही घर, वही खाना, वही पीना, वही धन... । और दिखाई भी पड़ता है कि जिनके पास धन है, उन्हें क्या मिल गया? और जिनके पास पद है, उन्हें क्या मिल गया? उनकी आंखों में भी शांति नहीं; उनके प्राणों में भी गीत नहीं; उनके जीवन में भी उत्सव नहीं; यह दिखाई भी पड़ता है। न भी देखना चाहो तो भी दिखाई पड़ता है। चारों तरफ यही है, कहां तक बचोगे, कैसे बचोगे?
लेकिन, करें क्या? सारी दुनिया दौड़ रही है। अगर हम न दौड़े तो पीछे रह जाएंगे। यह डर दौड़ाए चला जाता है कि कहीं हम पीछे न रह जाएं। पहुंचें या न पहुंचें, इसकी इतनी फिकर नहीं है, लेकिन दूसरों से पीछे न रह जाएं, इसकी फिक्र ज्यादा है। एक स्पर्धा है, एक अहंकार है जो दौड़ाए रखता है।
और फिर कभी अगर यह दिखाई भी पड़ जाता है और समझ में भी आने लगती है बात
कि दौड़ व्यर्थ है, यह यात्रा यात्रा नहीं है, तो लोग तीर्थयात्रा को निकल जाते हैं। चले काशी, चले काबा, चले गिरना! एक मूढ़ता छूटी नहीं कि दूसरी पकड़ने में देर नहीं लगती। मौलिक रूप से हमारी मूढ़ता वही की वही रहती है। फिर चाहे तुम कलकत्ता जाओ, चाहे काशी, क्या फर्क पड़ेगा? जाने वाले तुम वही के वही। पीने वाले तुम वही के वही। तुम्हारे पात्र में अमृत भी जहर हो जाएगा। तुम्हारे हाथ में सोना भी मिट्टी हो जाएगा। और मैं किसी सिद्धांत की ही बात नहीं कह रहा हूं, तुम्हारा अनुभव है यह। तुमने जो छुआ, वही मिट्टी हो गया है।
जब तक तुम न बदलो, कुछ भी न होगा। जब तक तुम्हारी आंतरिक कीमिया न बदले, तुम्हारे भीतर की रसायन-विद्या न बदले, तब तक कुछ भी न होगा। जब तक तुम पारस न बनो तब तक कुछ भी न होगा। हां, पारस बन जाओ, लोहा भी छुओगे तो सोना हो जाएगा। जहर भी पीओगे तो अमृत हो जाएगा। ऐसी अदभुत कला का नाम धर्म है, जिससे तुम पारस हो जाओ, जिससे तुम्हारे भीतर की रसायन बदल जाए।
पलटू के ये सूत्र उसी रसायन की तरफ इशारे हैं।
हरि-चरचा से बैर संग वह त्यागिये।
पहली बात, पलटू कहते हैं, जिनका हरि-चर्चा से बैर हो, उस संग-साथ को जल्दी ही छोड़ देना। इसके पहले कि बीमारी तुम्हें लग जाए, वहां से भागना, लौटकर देखना ही मत। उस चर्चा में रस है। उस चर्चा में उलझाव भी है। उस चर्चा में तर्क भी है। उस चर्चा में बहुत धोखे की संभावना है। वह चर्चा सार्थक भी लग सकती है। ईश्वर के पक्ष में तर्क ही क्या है! ईश्वर अतर्क्य है। आज तक कोई तर्क दिया नहीं जा सका। सब तर्क उसके खिलाफ हैं। अगर तुमने तर्क पर ध्यान दिया, तो तुम्हें नास्तिक ही ठीक मालूम होगा, आस्तिक ठीक नहीं मालूम होगा। आस्तिक तो परवाना है, दीवाना है। तुम्हें नास्तिक ही ठीक मालूम होगा, अगर तर्क पर ध्यान दिया। नास्तिक का तर्क सुडौल है, सुदृढ़ है, ठीक भूमि पर आधारित है। नास्तिक जो कहता है, उसमें भूल-चूक खोजनी कठिन है।
इसे समझ लेना ठीक से।

नास्तिक से विवाद में जीतना असंभव है। क्योंकि विवाद तो उसका जगत है।
नास्तिक से संवाद नहीं हो सकता, विवाद हो सकता है। नास्तिक को परमात्मा का कोई पता नहीं है; लेकिन परमात्मा नहीं है, इसके वह प्रमाण दे सकता है। और जिसे ईश्वर का पता है, वह उसके लिए कोई भी प्रमाण नहीं दे सकता।
यह बेबूझ पहेली है।
जिसने जाना है, उसके लिए गूंगे का गुड़ हो गया। जिसने जाना है, उसने अनुभव किया कि कोई शब्द उसे प्रकट नहीं कर सकते हैं। वह अभिव्यक्ति में नहीं आता है। जाना तो जाता है, लेकिन ज्ञान में नहीं समाता है। हमसे बड़ा है, हमसे विराट है। हम उसमें डूब जाते, गल जाते, पिघल जाते, एक हो जाते हैं। अब जो बूंद सागर में गिर कर एक हो गई है, वह क्या प्रमाण दे सागर का? वह बची कहां? उसका अलग होना न रहा, उसका अपना अस्तित्व न रहा; कैसा प्रमाण, किसका प्रमाण, कौन दे प्रमाण?
जिन्होंने जाना, वे चुप रह गए हैं ईश्वर के संबंध में। जिन्होंने नहीं जाना, वे बहुत मुखर हैं। जो ईश्वर के संबंध में प्रमाण देता है, वह उतना ही अज्ञानी है जितना वह, जो ईश्वर के विरोध में प्रमाण देता है। ईश्वर के संबंध में प्रमाण दिया ही नहीं जा सकता। यह तो पियक्कड़ों की बात है, प्रमाण की नहीं। यह तो मस्ती की बात है, तर्क की नहीं। हां, जाना जा सकता है। सत्संग में ही जाना जाता है। जो पीए बैठे हैं, जो डोल रहे हैं मस्ती से, जो यहां रखते हैं पैर और वहां पड़ता है पैर, जो कहीं रखते हैं पैर और कहीं पड़ता है पैर, जिनके भीतर आनंद छलक रहा है, उनके पास बैठोगे तो शायद कुछ बूंदाबांदी तुम पर भी हो जाए। उनका सत्संग करना। जहां हरि-चर्चा होती हो, वहां बैठना, उस रंग में रंगना।
लेकिन जहां हरि-चर्चा से बैर हो, पलटू कहते हैं, वह संग तत्काल छोड़ दो। क्योंकि वे बातें तुम्हारी बुद्धि को बहुत संगत मालूम होंगी। तुम्हारी खोपड़ी में उन बातों का खूब प्रभाव पड़ेगा। तुम्हारी खोपड़ी बिल्कुल आश्वस्त हो जाएगी कि ऐसा ही है। तुम्हारा अहंकार चाहता है कि ईश्वर न हो।
इसलिए जो भी तुम्हें ईश्वर के न होने के प्रमाण देगा, वह प्रीतिकर लगेगा। क्योंकि तुम्हारे अहंकार की प्रतिष्ठा होगी। तुम्हारा अहंकार बलिष्ठ होगा, पुष्ट होगा। तुम्हारे अहंकार को भोजन मिलेगा।
फ्रेडरिक नीत्शे ने कहा हैः ईश्वर नहीं है, नहीं हो सकता, क्योंकि मैं हूं। और एक म्यान में दो तलवारें नहीं हो सकतीं। फ्रेडरिक नीत्शे का वक्तव्य विचारणीय है। एक बहुत विचारशील आदमी का वक्तव्य है। उसकी विचारशीलता यद्यपि उसे विक्षिप्तता में ले गई--वह पागल हुआ। होना ही था पागल। क्योंकि ईश्वर से जितने टूटते जाओगे, उतनी ही तुम्हारी जड़ें अस्तित्व से अलग होने लगती हैं। और कोई वृक्ष पृथ्वी से टूट कर कितनी देर रहा रहेगा? कितनी देर उसकी कलियां फूल बनेंगी? कितनी देर उसके फूलों में गंध रहेगी? कितनी देर पक्षी उस पर घोंसले बनाएंगे? जल्दी ही सूख जाएगा। जल्दी ही अस्थिपंजर रह जाएगा। न यात्री उसकी छाया में बैठेंगे--छाया ही न होगी--न पक्षी उनके आस-पास फुदकेंगे, गीत गाएंगे--हरियाली ही न होगी। वृक्ष जैसे भूमि से टूट जाए, जड़ें उसकी उखड़ जाएं, मर जाता है, वैसे ही आदमी भी एक वृक्ष है। उसकी जड़ें परमात्मा में हैं। अदृश्य है वह परमात्मा, अदृश्य हमारी जड़ें हैं। ऐसे भी वृक्षों की जड़ें भी कहां दिखाई पड़ती हैं? वे भी दबी हैं भूमि में, वे भी अदृश्य हैं इस अर्थ में। हमारी तो और भी अदृश्य हैं। क्योंकि हमारी जड़ें पौदगलिक नहीं हैं, पदार्थ की नहीं हैं, चैतन्य की हैं।
चेतना अदृश्य घटना है। हम चेतना से जुड़े हैं परमात्मा से। जितना हम परमात्मा को इनकार करते हैं, उतनी ही हमारी जड़ें टूटती चली जाती हैं। उतने ही हम रुग्ण और विक्षिप्त होने लगते हैं। जो नीत्शे के जीवन में घटा, वह अब पूरी दुनिया के जीवन में घट रहा है।
नीत्शे ने यह भी कहा था कि मैं भविष्यवाणी हूं। जो मुझे हो रहा है, वह
सौ साल के भीतर प्रत्येक आदमी को होगा। और उसकी भविष्यवाणी सच साबित हो रही है। आज का आदमी जितना चिंतित, जितना उदास, जितना हारा-थका, जितना अर्थहीनता के बोझ से दबा है, उतना किसी सदी में कभी ऐसा न हुआ था। आदमी ने

ऐसा ही नास्तिक है। उसे परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा दिखाई पड़ने वाली चीज भी नहीं है। परमात्मा तो वह है जो देखता है। तुम्हारे भीतर कौन है जो देख रहा है? नास्तिक तो देखता है। नास्तिक भी देखता है। आखिर कौन है जो देखता है? वही परमात्मा है। परमात्मा दृश्य नहीं है, परमात्मा द्रष्टा है। लेकिन नास्तिक यह बात मानकर चलता है कि परमात्मा को दृश्य होना चाहिए। कहां है, दिखलाओ! जब तक मैं देख न लूं तब तक मानूंगा नहीं। बच्चों को, बचकानी बुद्धि के लोगों को उसकी बात जंच जाएगी; कि बात तो ठीक है, दिखाई पड़े तब प्रमाण मिले।
लेकिन जिनके जीवन में थोड़ी चेतना की प्रौढ़ता है, वे कुछ और बात कहते हैं। वे कहते हैंः परमात्मा दृश्य नहीं है। इसलिए कभी दिखाई नहीं पड़ा। किसी को दिखाई नहीं पड़ा। अगर कोई कहता हो कि मुझे परमात्मा दिखाई पड़ा है, तो समझना कि वह भ्रांति में है, उसने सपना देखा है। परमात्मा दिखाई नहीं पड़ता। परमात्मा तो द्रष्टा है तुम्हारे भीतर, साक्षी है तुम्हारे भीतर। तुम्हारे साक्षी चैतन्य का ही नाम परमात्मा है। तुम्हारी आत्मा की परम विशुद्ध अवस्था का नाम परमात्मा है। तुम उसे अनुभव कर सकोगे जब सब दृश्य छूट जाएंगे; जब केवल द्रष्टा ही रह जाएगा। कुछ दिखाई पड़ने को न होगा, सिर्फ देखने वाला बचेगा, तब देखने की ऊर्जा अपने पर ही लौट आती है। जैसे सांप कुंडली मार कर बैठ जाए, ऐसे द्रष्टा अपने पर ही कुंडली मार लेता है। उस कुंडली मार लेने का नाम ही ईश्वर का अनुभव है।
लेकिन अगर तुम्हारे पास प्रश्न हैं, तो तुम्हें उत्तर देने वाले लोग मिल जाएंगे। फिर चाहे वे नास्तिक हों, चाहे आस्तिक, जानने वालों के हिसाब में वे सभी नास्तिक हैं। जो तुम्हें उत्तर देता है, वह नास्तिक है। जो तुम्हें निरुत्तर की तरफ ले चलता है, वही आस्तिक है। जो तुम्हें अगर उत्तर भी देता है तो सिर्फ इसीलिए कि तुम्हारे सारे उत्तर छीन ले। जैसे एक कांटा गड़ जाए तो हम दूसरे कांटे से निकाल लेते हैं।
बुद्धों ने भी उत्तर दिए हैं; मगर उनके उत्तर उत्तर नहीं हैं, सिर्फ तुम्हारे प्रश्नों और तुम्हारे उत्तरों को निकालने वाले कांटे हैं। एक कांटा निकल आएगा तो फिर दूसरे कांटे को भी उसी के साथ फेंक देना पड़ता है। जो गड़ा था वह भी फेंक देते हैं हम और जिसने निकाला, उसे भी फेंक देते हैं। दोनों कांटे कांटे हैं। दोनों का कोई मूल्य नहीं है। दोनों से मुक्त होकर स्वास्थ्य है।
बचना उन स्थानों से, जहां प्रभु की चर्चा नहीं होती। बचना उन स्थलों से, जहां प्रभु-विरोध होता है। और तलाश करना उन जगहों की... कठिन होता जा रहा है रोज-रोज, उन स्थानों का अस्तित्व कठिन होता जा रहा है, जहां हरि- चर्चा; तोता-रटंत पंडितों की बकवास न हो वरन किसी जाग्रत, प्रबुद्ध पुरुष की वाणी हो।
ये दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। हरि-चर्चा से जिनका बैर है, उन्हें त्यागना और जहां हरि-चर्चा चलती हो, वहां डूबना।
आज गगन में सावन बन कर,
फिर घिर आई याद तुम्हारी।

जरा पुरा था घाव कि छूकर हरा कर गई फिर पुरवाई,
झपका ही था दर्द कि सहसा, बादल ने आवाज लगाई,
तनिक चुपा था हिया कि आकर निठुर पपीहा पिया कह उठा
कुछ सूखी थी सेज कि नभ ने बूंदों की बांसुरी बजाई, सिसकी सांस, आंख बरसती, तरती पुतली, बंध गई हिचकियां,

किस किस तरह न जाने मेरे--
घर अकुलाई याद तुम्हारी।

खटका कहीं किवाड़, धड़कने लगी विकल रह रहकर छाती, गूंजी कहीं मल्हार, बुझ गई कांप कांप दीपक की बाती, बिखरी कोई बूंद, बिखर झर गई गुंथे सपनों की माला

महकी कोई गंध, हरहरा उठी नयन नदिया बरसाती,
छूटा धीरज डांड, बह गई अनजाने सागर में नैय्या,

जाने कहां कहां आकर डूबी--
उतराई याद तुम्हारी।

सपन हवन हो गए, कटी जब नहीं, किसी विधि रात उदासी, अश्रु यती बन गए, थमी जब नहीं, बरसती पुतली प्यासी, धर धर परवत दिए वक्ष पर, जब जब हृदय अधीर कराहा भर भर लिए अंगार, न सोई किसी तरह जब बांह विसासी, कभी अश्रु ने, कभी जलन में, कभी नयन ने, कभी सपन ने, तुम्हें पता क्या, तुम बिन किस--
किसने बहलाई याद तुम्हारी।

आया बचपन याद समय के सजे खिलौने चूर हो गए,
एक न दो, सारे के सारे खेल खिलाड़ी दूर हो गए,
वर्तमान के घर आकर उतरी कोई डोली अतीत की
जितने क्षण थे शेष उमर के, जाने को मजबूर हो गए,
कहीं जनम बन, कहीं मरण बन, कहीं धूप बन, कहीं छांव बन
जाने कितनी बार यहां--
भूली भरमाई याद तुम्हारी।
बैठना ऐसी जगह, उठना ऐसी जगह, जहां कोई भूली-बिसरी याद--जिसे हम जन्मों-जन्मों से भूल गए हैं--फिर पुनरुज्जीवित हो उठे, फिर हरी हो उठे।
फिर कोई घाव, फिर कोई पीड़ा, फिर कोई प्रेम जग उठे।
आज गगन में सावन बन कर,
फिर घिर आई याद तुम्हारी।
जहां हरि-चर्चा चलती हो, वहां फिर बादल घिरते हैं, फिर सावन आता है।
जरा पुरा था घाव कि छूकर हरा कर गई फिर पुरवाई,
झपका ही था दर्द कि सहसा, बादल ने आवाज लगाई,
तनिक चुपा था हिया कि आकर निठुर पपीहा पिया कह उठा
कुछ सूखी थी सेज कि नभ ने बूंदों की बांसुरी बजाई,
सिसकी सांस, आंख बरसी, तरसी पुतली, बंध गई हिचकियां,
किस किस तरह न जाने मेरे--
घर अकुलाई याद तुम्हारी।
जैसे पपीहा पुकार उठे पिया को। जैसे दूर जंगल से पी कहां की आवाज आए
और तुम्हें घेर ले, ऐसे जहां सत्संग होता हो, उस परम प्यारे की स्तुति होती हो, बैठना, उठना, रंगना; कौन जाने कौन बात छू जाए! कौन जाने हवा का कौन सा झोंका तुम्हारे भीतर धूल की परतों को उड़ा ले जाए, दर्पण को स्वच्छ कर जाए। तनिक चुपा था हिया कि आकर निठुर पपीहा पिया कह उठा
बुद्धपुरुष और करते क्या हैं? तुम्हारे पास, तुम्हारे हृदय के पास आकर पिया कह उठते हैं! पुकार देते हैं उसे जो तुम्हारे भीतर सोया है। अंगड़ाई लेकर कोई तुम्हारे भीतर उठ आता है। फिर हर तरफ उसकी खड़क मिलने लगती है।
खटका कहीं किवाड़, धड़कने लगी विकल रह रहकर छाती,
गूंजी कहीं मल्हार, बुझ गई कांप कांप दीपक की बाती,
बिखरी कोई बूंद, बिखर झर गई गुंथे सपनों की मामला
महकी कोई गंध, हरहरा उठी नयन नदिया बरसाती,
छूटा धीरज डांड, बह गई अनजाने सागर में नैय्या,
जाने कहां कहां जाकर डूबी--
उतराई याद तुम्हारी।
परमात्मा एक अज्ञात सागर है। वहां डांड लेकर नावें नहीं चलाई जातीं। डांड की क्या बिसात! वहां तो सागर के ही ऊपर नैया छोड़ देनी होती है। सागर

के ही सहारे छोड़ देनी होती है। वहां तो तूफान को ही किनारा समझ लेने वाले पार पा पाते हैं।
जहां सत्संग हो, वहां पुकार है। जहां सत्संग न हो, वहां से बचना! हरि-चर्चा से बैर संग वह त्यागिये।
अपनी बुद्धि नसाय सवेरे भागिये।।
इसके पहले कि तुम्हारी बुद्धि नष्ट होने लगे, जल्दी भागना। सबेरे
भागिये... तुरंत! देर मत करना! टालना मत! --कहना कि थोड़ी देर और। वहां क्षण-भर भी टिकना खतरनाक है।
अपनी बुद्धि नसाय सवेरे भागिए।।
सरबस वह जो देह तो नाहीं काम का।
अगर ऐसे लोगों के साथ रहने से धन मिले, पद मिले, प्रतिष्ठा मिले, किसी काम की नहीं है, क्योंकि मौत सब छीन लेगी।
अरे हां, पलटू मित्र नहीं वह दुष्ट जो द्रोही राम का।।
जो तुम्हें जाने-अनजाने, प्रत्यक्ष-परोक्ष परमात्मा से तोड़ता हो, वह मित्र नहीं है। उससे बड़ा कोई शत्रु नहीं हो सकता है।
लोक-लाज जनि मानु वेद-कुल-कानि को।
भली-बुरी सिर धरौ भजो भगवान को।।
और छोटी-छोटी चीजें छोड़ो।... लोक-लाज। कितनी क्षुद्र चीजों में लोग उलझे हैं। वर्ण, कुल, जाति, पद, मर्यादा, कितनी व्यर्थ की चीजों को कितना मूल्य दे रहे हो! सांयोगिक है कि किस घर में पैदा हो गए... ब्राह्मण कि शूद्र... अकड़े-अकड़े न फिरो। जरा चोटी बढ़ा ली और एक धागा जनेऊ का गले में डाल लिया और चंदन-तिलक लगा लिया--व्यर्थ अकड़े-अकड़े न फिरो! थोड़ा धन है, थोड़ा पद है, प्रतिष्ठा है--पगला न जाओ! चुल्लू भर पानी में डूब मरने जैसी हैं ये बातें। इनका कुछ मूल्य नहीं; इनकी कोई गहराई नहीं।
लोक-लाज जनि मानु वेद-कुल-कानि को।
भली-बुरी सिर धरौ भजो भगवान को।।
फिक्र छोड़ो ये सब। लोग गालियां दें तो ठीक, लोग सम्मान दें तो ठीक, अपमान करें तो ठीक। भली-बुरी सिर धरौ भजो भगवान को। सबको सिर रख लो। बुरे- भले को सब स्वीकार कर लो। मान-अपमान को अंगीकार कर लो। मगर एक काम मत छोड़ देना--भगवान के भजन को मत छोड़ देना। सब छूट जाए, चलेगा--क्योंकि सब छूट ही जाना है--भगवान बच जाए, बस काफी है। क्योंकि वही एक है जो नहीं छूटेगा। मौत सिर्फ तुम्हारे परमात्म-अनुभव को नहीं छीन सकती है, और तो सब छिन जाएगा। और जिसे मौत छीन ले वह कसौटी है। व्यर्थता सिद्ध हो गई। जैसे सुनार सोने को कसता है पत्थर पर, कसौटी पर, ऐसे ही जिंदगी में मौत कसौटी है। मौत को कसौटी समझ लो। मौत पर कस-कस कर देख लेना। जो मौत पर कच्चा निकल जाए, उसे कूड़ा समझना।
एक बात हमेशा सोच लेना कि तुम जो समय लगा रहे हो, जिस चीज में भी लगा रहे हो, क्या मौत के पार इसे बचा कर ले जा सकोगे? अगर ले जा सको तो बिल्कुल ठीक है; दांव लगा दो। अगर न ले जा सको, तो समय न गंवाओ।
हंसिहै सब संसार तो माख न मानिए।
लोग हंसें, बुरा न मानना। लोगों का क्या कसूर है? लोग तुम पर हंसते हैं आत्म-रक्षा के लिए। लोगों को हरि-चर्चा में डूबे व्यक्ति से खतरा पैदा हो जाता है। लोगों को, हरि-रस में जो संलग्न हो रहा है, उससे बेचैनी पैदा हो जाती है। क्योंकि उन्हें भी याद आनी शुरू हो जाती है कि हम कुछ गलत कर रहे हैं; कि हम कुछ चूक रहे हैं। यह आदमी उन्हें उकसाता है। यह आदमी तीर की तरह उनकी छाती में गड़ने लगता है। वे अपनी आत्मरक्षा के लिए हंसेंगे, अपमान करेंगे, गालियां देंगे, पत्थर मारेंगे, जहर पिलाएंगे, सूली पर लटकाएंगे-- वे जो भी कर सकते हैं करेंगे।
तुम फिक्र मत करना।
मौत तो यहां होनी ही है, इससे क्या फर्क पड़ता है आज मरे कि कल! मौत तो यहां होनी है, इससे क्या फर्क पड़ता है कि चार दिन की दुनिया में सम्मान मिला कि अपमान। सम्राट भी मर जाते हैं, भिखमंगे भी मर जाते हैं--और एक

जैसे! सिर्फ कुछ थोड़े से लोग हैं तो मर कर भी नहीं मरते। बस उन थोड़े से लोगों में तुम भी एक हो जाओ, तो जीवन सार्थक हुआ।
लोग हंसेंगे--उन्हें हंसना पड़ेगा। क्योंकि जब कोई हरि-भजन में लीन होता है, तो जो आदमी रुपये-पैसे इकट्ठे करने में लगा है, वह क्या करें? अगर हरि-भजन में लीन होने वाला व्यक्ति सही है, तो फिर उसका रुपया-पैसा इकट्ठी करना मूढ़ता-पूर्ण है। और रुपया इकट्ठा करने में भीड़ लगी है, बड़ी भीड़ लगी है, सारी दुनिया लगी है, तो सारी दुनिया को बेचैनी पैदा होती है हरि-भक्त को देख कर। सारी दुनिया चाहती है उसे गलत सिद्ध कर दे। उसे गलत सिद्ध करने में ही दुनिया अपने काम में लगी रह सकती है। अगर वह सही है, तो दुनिया गलत है। दोनों साथ-साथ सही नहीं हो सकते। उसे गलत सिद्ध करना ही होगा।
और स्वभावतः अज्ञानियों की भीड़ है, मूढ़ों की जमात है। और इस दुनिया में चीजें संख्या से तय होती हैं। संख्या का बड़ा बल है। जिनके पास संख्या है, वे अपने को सत्य मान ले सकते हैं। हालांकि सत्य का संख्या से कोई संबंध नहीं है। एक भी आदमी के पास हो तो भी सत्य सत्य है, और झूठ अनेक लोग मानते हों, तो भी झूठ है। अनेकों के मानने से झूठ सत्य नहीं होता और सिर्फ एक के ही पास होने से सत्य झूठ नहीं होता। संख्या का कोई संबंध सत्य से नहीं है। लेकिन, भीड़ के पास संख्या का बल है। वह बुद्धों पर हंस सकती है। फिर क्षमा योग्य है। हंसने के द्वारा वह सिर्फ अपनी मूढ़ता प्रकट कर रही है।
इसमें तुम्हें परेशान हो जाने की कोई जरूरत नहीं है।
हंसिहै सब संसार तो माख न मानिए।
अरे हां, पलटू भक्त जक्त से बैर चारो जुग जानिए।।
सभी सदियों में, सभी कालों में, चारों युगों में, वह जो भीड़-भाड़ से भरा हुआ जगत है, उसका भक्त से विरोध है। क्योंकि भक्त के मूल्य और हैं। भक्त के मूल्य पारलौकिक हैं। उसके जीवन के देखने का ढंग भिन्न है।
जैसे उदाहरण के लिए--
जीसस एक नदी-तट पर बैठे हैं। सांझ का समय है। और एक वेश्या को गांव के लोग पकड़ कर लाए। और उन्होंने जीसस से कहा कि यह स्त्री दुराचारिणी है, व्यभिचारिणी है। इसे हमने रंगे हाथों पकड़ा है। आप क्या सजा तजबीज करते हैं?
वे चालबाज लोग थे। गांव का पादरी, पुरोहित, पंडित, रबाई, वे सब वहां उनके साथ थे। गांव के प्रतिष्ठित सज्जन, आदृत लोग, गांव का मेयर, सरपंच, सब वहां थे। उन्होंने यह तरकीब निकाली थी जीसस को फंसाने की। क्योंकि जीसस बार-बार अपने वचनों में कहते थेः पहले तुमसे कहा गया है, लेकिन मैं तुमसे ऐसा कहता हूं। पहले तुमसे कहा गया है कि जो तुम्हें ईंटें मारे, उसे पत्थर से जवाब देना, लेकिन मैं तुमसे कहता हूंः जो तुम्हारे बाएं गाल पर चांटा मारे, दायां उसके सामने कर देना। जो तुम्हारा कोट छीने, कमीज भी उसे दे देना। और जो तुमसे एक मील बोझ ढोने को कहे, दो मील उसके साथ चले जाना। पुराने लोगों ने तुमसे कहा है कि जो तुम्हारी आंख फोड़े, उसकी आंख तुम फोड़ना। और मैं तुमसे यह कहता हूं कि जो तुम्हारे एक गाल पर चांटा मारे, दूसरा भी उसके सामने कर देना।
जीसस बार-बार इस तरह के वक्तव्य देते थे। पंडित-पुरोहित परेशान थे।
वे एक निर्णय पर आना चाहते थे। उन्होंने देखा यह मौका अच्छा है। आज सब तय हो जाएगा। वे तय ही करके आए थे कि जीसस क्या कहते हैं अब! क्योंकि पुरानी किताब कहती थी, उनकी धर्म-किताब कहती थी कि जो स्त्री दुराचारिणी हो, उसको पत्थरों से मार कर मार डालना। अब यह बड़े मजे की बात है कि कोई स्त्री अकेली ही तो दुराचार नहीं कर सकती! किसी पुरुष ने ही किया होगा! लेकिन पुरुष के संबंध में शास्त्र में कोई उल्लेख नहीं है। दुराचारिणी स्त्री को पत्थर मार-मार कर मार डालना। लेकिन दुराचारिणी स्त्री ने क्या देवताओं के साथ दुराचार किया? भूत-प्रेतों के साथ दुराचार किया? किसी पुरुष के साथ ही किया होगा! सच तो यह है, किसी पुरुष ने दुराचार किया होगा। क्योंकि स्त्री बलात्कार नहीं कर सकती। वह उसकी शारीरिक संरचना नहीं है। तुमने कभी सुना कि किसी स्त्री ने किसी पुरुष पर बलात्कार किया हो? वह असंभव है। पुरुष बलात्कार कर सकता है। स्त्री तो कर ही नहीं सकती।

जो स्त्री बलात्कार कर ही नहीं सकती, उसके लिए तो शास्त्र में नियम हैं कि पत्थर मार-मार कर मार डालना। और जो पुरुष बलात्कार कर सकता है, उसके लिए कोई नियम नहीं है। जरूर चालबाज पुरुषों ने ही ये शास्त्र लिखे होंगे। ये उन्हीं पुरुषों ने लिखे हैं जिन्होंने लिखा है कि पति परमात्मा है। ये वे ही पुरुष हैं। उन्होंने ही ये किताबें लिखी हैं। इनमें स्त्रियों के लिए कोई न्याय नहीं है।
सोचा था पंडित-पुरोहितों ने कि अब जीसस को हम फांस लेंगे। अगर जीसस कहेंगे कि हां, पुराने मसीहा ठीक कहते हैं, पत्थर मार कर इसे मार डालो, तो हम कहेंगेः फिर क्या हुआ तुम्हारी प्रेम की बातों का? कि शत्रु को भी प्रेम करो। और क्या हुआ तुम्हारे सिद्धांत का कि जो क्षमा करेगा, वही क्षमा किया जाएगा? और क्या हुआ तुम्हारे सिद्धांत का कि बुराई पर भी निर्णय न लो? उन सब बातों का क्या हुआ? ऐसा हम पूछेंगे। और अगर जीसस ने कहा कि नहीं, इस स्त्री को पत्थर न मारो, तो जो पत्थर हम लेकर चले हैं, इन्हीं से हम जीसस को मार डालेंगे। कि तुम हमारी धर्म-किताब का विरोध करते हो! तो हमारे सब नबी-पैगंबर मूढ़ थे! एक तुम्हीं समझदार पैदा हुए हो!
यह बढ़ई का छोकरा, न पढ़ा-लिखा बहुत, यह महा ज्ञानी है! और मूसा और इजेकियल और अब्राहम और पुराने मसीहा जिन्होंने ईश्वर का स्वयं दर्शन किया था, जो ईश्वर के ही हाथ से आज्ञाएं लेकर आए थे, जिन्होंने ईश्वर के ही नियम को स्थापित किया था, वे सब अज्ञानी हैं! तो इस स्त्री की तो हम फिक्र छोड़ देंगे, पहले हम जीसस का भुर्ता बना डालेंगे।
बड़ी तैयारी से गए थे। ठीक जाल फैलाया था। आखिर जीसस दो में से एक ही बात कह सकते हैं। या तो इसे क्षमा करो; तो हम जीसस को मार डालेंगे। और या, इस स्त्री को मार डालो; तो कहेंगे, क्या हुआ तुम्हारी ज्ञान की बातों का? तो अब दुबारा इस तरह की बकवास मत करना जो तुम करने के आदी हो गए हो। दोनों हालत में जीत हमारी है।
उन्हें पता भी न था कि जीसस जैसे आदमी के साथ जीत तुम्हारी कभी हो ही नहीं सकती। तुम जीसस को मार सकते हो, मगर जीत तुम्हारी कभी नहीं हो सकती। तुम जीसस को मार सकते हो, मगर जीत तुम्हारी कभी नहीं हो सकती। वह असंभव है। सत्य के सामने असत्य की कहीं कोई जीत होती है! सत्यमेव जयते। सत्य जीतता ही है। जीत उसका स्वाभाविक लक्षण है। हां, तुम मार सकते हो, काट सकते हो जीसस को, मगर सत्य नहीं कटेगा और सत्य नहीं मरेगा। तुम जीसस को मारोगे, सत्य और जी उठेगा। जीसस के खून से और परिपुष्ट हो जाएगा।
जीसस ने बात सुनी और कहा कि ऐसा करो--पुराने शास्त्र कहते हैं तो ठीक
ही कहते होंगे--तुम सब पत्थर हाथ में उठा लो। वे तो पत्थर लेकर आए ही थे। उन्होंने कहा, पत्थर तो हमारे हाथ में हैं, बस तुम्हारी आज्ञा चाहिए, हम इस स्त्री को मार डालें। जीसस ने कहा, लेकिन पत्थर पहले वह आदमी मारे जिसने कभी स्वयं कोई पाप न किया हो और पाप की आकांक्षा न की हो, पाप करने की कल्पना, योजना न बनाई हो, पाप करने का सपना न देखा हो। पहले वह आदमी पत्थर मारे। वे जो सरपंच आगे खड़े थे, मेयर इत्यादि, म्युनिसिपल कमेटी के मेम्बर वगैरह, उन्होंने पत्थर वहीं के वहीं रेत में गिरा दिए और पीछे सरक गए। धीरे-धीरे भीड़ छंटने लगी। क्योंकि कौन पत्थर मारे! ऐसा कौन आदमी था, जिसने पाप न किया हो या पाप की कल्पना भी न की हो! हां, पाप न किया हो, ऐसे लोग तो मिल जाते; लेकिन पाप का विचार और पाप करने में कुछ भेद नहीं है। धर्म की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। कानून की दृष्टि से फर्क पड़ता है। यही पाप और अपराध का भेद है।
पाप का अर्थ फोता हैः तुम्हारे मन में बुरा करने का विचार उठा। अपराध
का अर्थ होता हैः तुमने उसे कृत्य में परिणत किया। क्योंकि पुलिस और कानून तो कृत्य को पकड़ सकते हैं, विचार को नहीं पकड़ सकते। विचार करने के लिए तो तुम्हें छूट है। तुम ठीक अदालत के सामने बैठ कर, आंखें बंद करके जितना बलात्कार करना हो करो! कोई मजिस्ट्रेट कुछ नहीं तुम्हारा बिगाड़ सकता! जितनी हत्याएं करनी हों--दुनिया भर को मार डालो--कोई पुलिस तुम्हारे हाथों में जंजीरें नहीं पहना सकती! विचार को पकड़ने के लिए कोई कानून नहीं है।

लेकिन धर्म के जगत में तो विचार का ही मूल्य है। क्योंकि तुमने सोचा
तो किया। तुमने करना चाहा तो किया। क्योंकि वहां तो अभिप्राय की कीमत है, किया या नहीं यह सवाल नहीं है।
तो जीसस ने कहा कि जिसने सोचा भी हो पाप का विचार, वह मारे पत्थर, वह गलती करेगा, अपराध हो जाएगा। उसे पत्थर मारने का हक नहीं है। सिर्फ पुण्यात्मा लोग पत्थर मार सकते हैं। कौन पुण्यात्मा था! वे सब भाग गए। थोड़ी देर में स्त्री अकेली छूट गई जीसस के पास।
वह स्त्री जीसस के पैरों पर गिर पड़ी और उसने कहा, आप मुझे दंड दें, मैं अपराधिनी हूं। उनके सामने तो मैं अपना अपराध स्वीकार नहीं कर सकती थी, क्योंकि उन्होंने मेरे अहंकार को बड़ी चोट पहुंचाई थी। और मैं उन सब को जानती हूं और उनकी नीयत को जानती हूं। उनमें एक भी ऐसा नहीं था जो मुझे पत्थर मार सकता, क्योंकि उनमें से अनेक ने मेरे द्वार पर अनेक बार रात में दस्तक दी है। उनमें से बहुत से तो मेरे ग्राहक हैं। वह जो पुजारी बहुत पुजारी बना फिरता है, वह मेरा ग्राहक है। जब तुमने कहा कि जिसने पाप न किया हो वह पत्थर मारे, तभी मैं निश्चिंत हो गई थी कि अब पत्थर कोई नहीं मार सकता। और जब तुमने कहा कि जिसने विचार भी किया हो, वह भी पत्थर नहीं मार सकता, तब तो बात ही खतम हो गई थी। क्योंकि मैं इन सबको जानती हूं। ये इस गांव के पंडित-पुरोहित हैं, मैं इस गांव की वेश्या हूं। मुझसे भलीभांति इन्हें कौन जानता है? मैं इनके रग-रग, रेशे-रेशे से परिचित हूं। इनके सामने मैं अपराधिनी अपने को स्वीकार नहीं कर सकती थी, ये खुद ही अपराधी हैं। सच तो यह है, इन्हीं ने मुझे वेश्या बनाया। इन्हीं ने मुझे इस गर्त में ढकेला।
लेकिन, तुम्हारे चरणों पर गिरती हूं, अपना अपराध स्वीकार करती हूं, मुझे तुम जो भी दंड दोगे वह सहर्ष स्वीकार है। जीसस ने कहा, मैं दंड देने वाला कौन? तेरे और तेरे परमात्मा के बीच मैं आने वाला कौन हूं? तू उसी परमात्मा से प्रार्थना करना! वह महा करुणावान है! निश्चित क्षमा मिलेगी। हमारे पाप बहुत छोटे हैं, उसकी करुणा बहुत बड़ी है। हमारे पाप छोटे-छोटे आंगन, उसकी करुणा विराट आकाश। तू उससे ही क्षमा मांग लेना।
लेकिन ऐसा व्यक्ति स्वभावतः जगत की सामान्य धारणाओं से बहुत भिन्न होगा। भिन्न है ही। ऐसे व्यक्ति को जगत माफ नहीं कर सकता। ऐसे व्यक्ति के खिलाफ पूरा जगत खड़ा हो जाएगा। जीसस को बहुत लांछन मिली। जीसस को बहुत सताया गया। फांसी तो आखिरी बात थी, उसके पहले भी बहुत सताया गया--जगह-जगह सताया गया, जहां गए वहां सताया गया।
ठीक कहते हैं पलटूः
अरे हां, पलटू भक्त जक्त से बैर चारो जुग जानिए।।
वह जो भक्त है परमात्मा का, उसका जगत से कुछ अनिवार्यरूपेण उलझाव हो जाता है। क्योंकि वह जो कहता है, जगत उसकी मान नहीं सकता। और जो जगत मानता है, उसको वह सहमति नहीं दे सकता।
जगत राजनीति है। राजनीति में धर्म को कहां जगह? वहां तो अधर्म का खेल है। वहां तो जो जितना झूठा, जितना बेईमान, जितना चालबाज, उसकी गति है। वहां सीधे-सरल के लिए कहां स्थान है? वहां तो तिरछे-तिरछे जाने वाले को सफलता मिलती है। जो कहे कुछ, करे कुछ, बोले कुछ, सोचे कुछ। जिसका तुम पता ही न लगा सको कि उसका प्रयोजन क्या है! जो एक को एक बात कहे, दूसरे को दूसरी बात कहे, तीसरे को तीसरी बात कहे। जिसके संबंध में तुम्हें अंदाज ही न बैठ सके कि उसका अभिप्राय क्या है! जो सबको धोखे में रखने में कुशल हो। वही इस जगत में सफल होता है। लेकिन भक्त तो होता है सीधा-सादा; उसकी गति साफ होती है, निष्कपट होती है। भक्त तो होता है नग्न, वह आवरणों में छिपा नहीं होता। वह तो जैसा होता है वैसा ही प्रकट कर देता है अपने को। उसके भीतर कोई पाखंड नहीं होता। और इसलिए पाखंड से भरे इस जगत में अगर उसका विरोध हो तो आश्चर्य नहीं।
देव पित्र दे छोड़ि जगत क्या करैगा।
ध्यान रखना, जगत कुछ बिगाड़ नहीं सकता, विरोध कितना ही करता रहे। इसलिए पलटू कहते हैं, इसकी फिक्र न लेना; जगत क्या करैगा!

चला जा सूधी चाल, रोइ सब मरैगा।।
तू तो अपनी सीधी चाल चल। इनकी मान कर इरछी-तिरछी चालों में मत पड़ना।
और इनकी मान कर झूठे देवताओं की पूजा मत करना। मंदिरों में रखी प्रतिमाएं आदमियों की ही बनाई हुई प्रतिमाएं हैं।
लोग देवताओं को ईजाद कर लिए हैं। अपनी ही शक्लों में! इसलिए चीनी देवता की नाक चपटी होती है। इसलिए अफ्रीकी देवता के ओंठ खूब मोटे होते हैं और बाल घुंघराले। उतने मोटे ओंठ तुम कृष्ण के नहीं बनाओगे। बनाओगे तो कृष्ण की तुम्हारी प्रतिमा को कोई खरीदने को राजी नहीं होगा। क्योंकि भारत में तो जितना पतला ओंठ हो, उतना ही सुंदर। तुम जरा कृष्ण-कन्हैया की चपटी नाक तो बनाओ! लोग पिटाई कर देंगे, कि तुम हमारे कृष्ण-कन्हैया की चपटी नाक तो बनाओ! लोग पिटाई कर देंगे, कि तुम हमारे कृष्ण-कन्हैया को बिगाड़ रहे हो! यहां तो तोते की चोंच जैसी नाक होनी चाहिए, तब सुंदर।
हर देश के, हर जाति के देवी-देवता अगर गौर से देखो तो तुम चकित होओगे,
वह लोगों ने अपनी ही शकल में बनाए हैं। वे उनके ही प्रतीक हैं; उनकी ही ईजाद हैं। फिर उनकी पूजा चल रही है। कैसी मूढ़ता है! खुद ही बना लेते हो देवता, फिर खुद ही अपने बनाए देवताओं के सामने घुटने टेक कर झुक जाते हो। अपने ही बनाए खिलौने और उनकी पूजा कर रहे हो, प्रार्थना कर रहे हो! इससे ज्यादा और अज्ञान क्या हो सकता है?
परमात्मा को तलाशना होता है, बनाना नहीं होता। खोजना होता है, निर्माण नहीं करना होता।
फिर तुम्हारी मौज! तुम्हें जो बनाना हो बनाओ! लोगों ने अपने-अपने ढंग
के देवी-देवता बना लिए हैं। जो जिनको जैसा लगा। अब गणेश जी हैं! ... खूब खोज की है! जरा उनकी देह तो देखो! और चूहा उनका वाहन है! हाथ में लड्डू लिए बैठे हैं!
एक बहुत बड़े पालि-संस्कृत के विद्वान महापंडित राहुल सांकृत्यायन कहते थे कि वह लड्डू नहीं है, अंडा है। उन्होंने बड़े शास्त्रीय आधार पर सिद्ध करने की कोशिश की थी कि वह अंडा है, लड्डू नहीं है। तुम समझ रहे हो मोतीचूर का लड्डू! राहुल सांकृत्यायन से मैंने कहा था कि तुम्हारी बात सैद्धांतिक रूप से सही हो या न हो, मुझे मतलब नहीं, लेकिन जंचती है। क्योंकि यह सूंडधारी गणेश और मोतीचूर के लड्डू खाएं! ... अंडा ही होगा। ज्यादा आसान होगा।
गणेश जी बना लिया, गणेश-उत्सव कर लिया... धूम-धड़ाम... और तुम समझे कि धार्मिक हो गए। और फिर इनको बिचारों को गए और डुबा भी आए! विसर्जित करने में भी तुम्हें देर नहीं लगती है! अपना ही खेल है--अपने ही बनाए, अपने ही हाथ से मिटाए।
देव पित्र दे छोड़ि...
पलटू कहते हैं, इस तरह के देवता छोड़ो। और लोग मर गए हैं जो, उनकी पूजा
कर रहे हैं--पितर! अब पितरों को कहां खोजो? खिलाते हैं पितरों को, कौवे खाते हैं। तुम क्या सोच रहे हो सब पितर तुम्हारे कौवे हो गए! जिंदा में कभी फिक्र नहीं की उनकी! दिखता है जब से मर गए हैं तब से तुम भयभीत हो, डर रहे हो कि जिंदगी में तो फिकर नहीं की, अब कहीं सताएं न, अब कहीं परेशान न करें! चलो साल में एक दफा, पितृ-पक्ष में खिला-पिला दो, झंझट मिटाओ। भूत-प्रेतों से लोग बहुत डरते हैं कि कहीं नाराज हो जाएं। पलटू कहते हैंः देव पित्र दे छोड़ि... यह सब बकवास बंद करो। जीवन की पूजा करो! मृत्यु की पूजा में लगे हो। जीवन को तो मिटाते हो। जीवन को मिटाने के लिए तो तलवारें, बंदूकें, बम, एटम बम, हाइड्रोजन बम और पित्रों के लिए, मरे मुरदों के लिए, पूजा के थाल! तुम होश में हो? यह तुम्हारी जिंदगी किस हिसाब से चल रही है?
देव पित्र दे छोड़ि जगत क्या करैगा।
चिंता मत करो!
नानक के जीवन में उल्लेख है, हरिद्वार गए। वहां देखा कि लोग पित्र-पूजा कर रहे हैं। लोग एक कुएं पर पानी भर कर और पितरों को चढ़ा रहे हैं। वे भी एकदम से कुएं पर पहुंचे, किसी से बालटी मांगी, भरा पानी और पास ही कुएं के डाला और कहाः पहुंच मेरे खेत में! भीड़ इकट्ठी हो गई कि यह क्या मामला

है? खेत कहां? दूसरी बाल्टी, तीसरी बाल्टी... जब वे भरते ही गए तो लोगों ने कहा, भाई रुको, तुम्हारा खेत कहां है? खेत तो मेरा पंजाब में है। तो तुम होश में हो? हरिद्वार की सड़क पर पानी डाल रहे हो और पंजाब के खेत पर पहुंचेगा! उन्होंने कहा, यह मुझे पहले मालूम ही नहीं था। जब मर गए पित्रों तक पहुंच रहा है--तुम्हारे पित्र कहां हैं? कोई नरक में होगा... ज्यादातर तो नरक में ही होंगे, कोई एकाध स्वर्ग में पहुंच गया होगा... जब वहां तक पहुंच रहा है पानी, तो पंजाब तो कोई बहुत दूर नहीं है। मैं तो तुम्हारी इस अदभुत कला को देख कर सोचा कि यह तो खूब मजे की रही! अब पंजाब जाने की जरूरत भी नहीं। नहीं तो जाना पड़ता है बार-बार। अब जहां रहे वहीं से डाल देंगे। नानक याद दिला रहे हैं उन्हें कि तुम क्या मूढ़ता कर रहे हो! सारे संत तुम्हें याद दिलाते रहे हैं कि तुम जोर कर रहे हो धर्म के नाम पर, मूढ़ता है। लेकिन लोग क्यों कर रहे हैं? लोकलाजवश। और सब लोग कर रहे हैं, न करो, अच्छा नहीं लगता। लोग पूछते हैं, क्यों, तुमने क्यों नहीं किया? लोग चाहते हैं कि तुम ठीक उनकी कार्बनकापी रहो। वे तुम्हें मौलिक व्यक्तित्व नहीं देना चाहते। तुम उनसे अलग-थलग खड़े होओ, लोग बर्दाश्त नहीं करते। लोग चाहते हैं, जैसा वे करें, वैसा तुम करो। ताजिया उठाएं तो ताजिया उठाओ। छाती पीटें--याऽअलेऽऽयाऽअलेऽऽ, तो तुम भी छाती पीटोः याऽअलेऽऽयाऽअलेऽऽ... । जो लोग करें, वही तुम करो; तो लोग प्रसन्न होते हैं। क्योंकि तुम उनका समर्थन कर रहे हो। समर्थन से क्यों प्रसन्न होते हैं? क्योंकि उन्हें भी शक है कि वे जो कर रहे हैं, वह सच है कि नहीं? जितना समर्थन मिलता है, उतना ही उनको ढाढ़स बंधता है कि ठीक ही होगा, जब तो इतने लोग कर रहे हैं। अगर ठीक न होता तो इतने लोग कैसे करते? उनके पास सत्य का कोई अनुभव तो नहीं है। उनके पास सत्य के लिए सिर्फ एक ही आधार है--अधिक लोग कर रहे हों; जब इतने लोग कर रहे हैं तो सभी मूढ़ तो नहीं हो सकते। अपने मन में वे सोचते हैंः हो सकता है मैं मूढ़ हूं, मैं नासमझ हूं, मैं अज्ञानी, मगर सारी दुनिया तो अज्ञानी नहीं है। जब इतने लोग कर रहे हैं तो ठीक ही कर रहे होंगे। और मजा यह है कि ऐसा ही बाकी लोग भी सोच रहे हैं।
तुमने वह कहानी सुनी है? कि एक सम्राट ने राजधानी में घोषणा की कि प्रत्येक व्यक्ति एक-एक मटकी दूध लाकर महल के सामने बनी हुई हौज में डाल जाए। हर व्यक्ति ने सोचाः इतने लोग वहां जाकर दूध डालेंगे, हम अगर एक मटकी पानी डाल आए, कहां पता चलेगा? लेकिन ऐसा प्रत्येक ने सोचा। लोगों के सोचने में कुछ बहुत फर्क होते नहीं; गणित-हिसाब एक ही होते हैं। प्रत्येक ने यही सोचा कि हजारों लोग दूध डालेंगे, मैं अकेला एक मटकी सुबह-सुबह अंधेरे में पानी डाल आऊंगा, कौन पता चलने वाला है!
सुबह जब सम्राट उठा, बड़ा हैरान हुआ! हौज पानी से भरी थी। एक मटकी भी दूध की कोई नहीं डाल गया था। उसने अपने वजीरों से पूछा कि यह क्या मामला है? वजीरों ने कहा, कुछ मामला नहीं है, यही लोगों का हिसाब है। प्रत्येक अपने भीतर सोचता है, इतने लोग कर रहे हैं, तो मैं चुप रहूं, बोलने की कोई जरूरत नहीं, नहीं तो मैं अज्ञानी समझा जाऊंगा। चलो, पितृ-पक्ष मनाओ! इतने लोग मना रहे हैं तो ठीक ही मना रहे होंगे। ऐसा प्रत्येक सोच रहा है।
काश, तुम सब अपने हृदय खोल कर रख सको तो तुम्हारे धर्म तिरोहित हो जाएं! काश, तुम ईमानदारी से कह सको अपने पड़ोसी से कि तुम्हारी भीतरी दशा क्या है, तो सारे मंदिर-मस्जिद, सारे पंडित-पुरोहित इस पृथ्वी से विदा हो जाएं! उनके जीने का ढंग एक है। उस ढंग में एक ही गणित है कि कोई किसी से नहीं कहता। मैं क्यों फंसूं?
एक और कहानी तुमने सुनी होगी!
एक सम्राट के दरबार में एक दिन एक आदमी आया और उस आदमी ने कहा, आपके पास सब है, मगर एक चीज की कमी है। सम्राट ने कहा, वह क्या, जल्दी बोलो! क्योंकि मैं नहीं चाहता कि मेरे पास किसी चीज की कमी हो। मैं तो सोचता था, सब जो इस दुनिया में है, मेरे पास है। मैं चक्रवर्ती सम्राट हूं। छहों महाद्वीप मेरे कब्जे में हैं। सारा धन, सारी दौलत, सारी पृथ्वी मेरी है। कौन सी चीज की कमी है, तुम बोलो! उस आदमी ने कहा कि आपके पास देवताओं के वस्त्र नहीं हैं। सम्राट ने कहा, यह बात तो ठीक है! वस्त्र मेरे पास

देवताओं के नहीं हैं। और उस आदमी ने कहा, आप जैसा महा सम्राट और आदमियों जैसे वस्त्र पहने, शोभा नहीं देता। मेरी पहुंच है देवताओं तक, मेरी ऐसी सिद्धि है, मैं आपके लिए वस्त्र ला सकता हूं। लेकिन सौदा महंगा है। सम्राट ने कहा, तू पैसे की फिक्र मत कर! पैसे की क्या कमी है! कितना खर्च होगा? उसने कहा, करोड़ों का खर्च है। और अभी एकदम से नहीं कह सकता। क्योंकि आप तो जानते ही हैं! पहले तो स्वर्ग पहुंचना लंबी यात्रा, फिर द्वारपाल से लेकर देवताओं तक रिश्वत खिलाना, कोई आसान काम तो है नहीं! मगर करके लाऊंगा। अंदाजन कह रहा हूं कि करोड़ों का खर्च है। सम्राट ने कहा, हो खर्च, लेकिन तू धोखा देने की कोशिश मत करना, क्योंकि मैं खतरनाक आदमी हूं। शर्त एक रहेगी। तुझे हम एक महल दे देते हैं। महल चारों तरफ फौज से घिरा रहेगा। तुझे जो करना हो भीतर--साधना, सिद्धि, तंत्र-मंत्र--वह तू कर! कितने दिन लगेंगे? उसने कहा कि समय तो लगेगा, लेकिन कम से कम तीन सप्ताह। सम्राट ने कहा, ठीक! तीन सप्ताह बड़ी प्रतीक्षा में गुजरे। और डर कोई था नहीं, क्योंकि फौजें चारों तरफ से घेरे थीं! तीन सप्ताह बाद वह आदमी एक बड़ी सुंदर काष्ठ-मंजूषा लेकर महल के बाहर आया। उसने कहा कि वस्त्र ले आया हूं। सम्राट ने दरबार में उसे बुलाया। सारे दरबारी इकट्ठे हुए थे। राजधानी में बड़ा तहलका था। एक ही चर्चा थी। बस एक ही बात थी तीन सप्ताह से। कोई पक्ष में बोल रहा है, कोई विपक्ष में बोल रहा है। लेकिन आज तो बात ही खतम हो गई, जब उसको देखा कि वह ले ही आया! भीड़ लग गई महल के चारों तरफ, लाखों लोग इकट्ठे हैं, और आवाज लगा रहे हैं कि हम भी दर्शन करना चाहते हैं सम्राट के।
उस आदमी ने जाकर अपनी काष्ठ की मंजूषा बीच दरबार में रखी और कहा कि एक शर्त देवताओं ने कही है कि ये वस्त्र उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो। अब यह एक झंझट की बात लगा दी! सम्राट से उसने पूछा, आपको पक्का है कि आप अपने ही बाप से पैदा हुए हो? सम्राट ने कहा, तू क्या समझता है हम किसी और से पैदा हुए हैं? अपने ही बाप से पैदा हुए हैं। तो फिर, उसने कहा, कोई चिंता नहीं। दरबारियों से पूछा कि आप लोगों में कोई ऐसा नहीं है यहां जो अपने बाप से पैदा नहीं हुआ हो? दरबारियों ने कहा, तू क्या बात कर रहा है? होश में आ! हम कोई साधारण कुछ के लोग नहीं हैं! कुलीन लोग हैं। अभिजात लोग हैं। फिर, उसने कहा, फिर कोई चिंता नहीं।
पेटी खोली। सबने पेटी में देखा, कुछ भी नहीं था। सम्राट ने भी देखा। लेकिन कोई कुछ बोले नहीं--क्योंकि कौन बोले? जो बोले सो फंसे! सबने यही सोचा कि तो अपनी ही कुछ गड़बड़ है! बाकी सब लोग तो एकदम कह रहे हैं कि अहह! धन्य हुए! ऐसे वस्त्र कभी देखे नहीं थे! जब सबको प्रशंसा करते देखा तो सम्राट भी बोला कि अहह! भीतर तो उसके प्राण कंपे कि यह हद्द हो गई, मगर यह कभी सोचा भी नहीं था कि मेरे पिता और मुझे धोखा दे गए! कि मेरे मां मुझे धोखा दे गई! आज यह भी राज पता चल गया। अब ठीक है, जो है सो है। उसे छिपाकर ही रखना ठीक है। अब चार को बताने से फायदा भी क्या है?
मगर मामला यहीं खत्म तो होने वाला नहीं था। उस आदमी ने कहा, निकालिए अपनी पगड़ी! पगड़ी लेकर उसने डाल दी पेटी में और वहां पेटी में हाथ डाला, खाली हाथ बाहर निकाला, खाली हाथ सम्राट के सिर पर रखा और कहा, यह देवताओं की पगड़ी। देखें इसको कहते पगड़ी! न कोई पगड़ी, न कुछ--और दरबारी एकदम वाह-वाह, वाह-वाह! --सम्राट भी बोला कि है, सुंदर चीज है! न देखी न सुनी! न कभी आंखों देखी, न कभी कानों सुनी! और धीरे-धीरे अंगरखा उतर गया और चूड़ीदार पैजामा और नेहरूकट जवाहर-बंडी... सब! जब आखिरी चड्डी उतरने लगी, तब सम्राट थोड़ा डरा! मगर अब बात बहुत आगे बढ़ चुकी थी, अब लौटा भी नहीं जा सकता था। थोड़ा झिझका! उस आदमी ने कहा, झिझक रहे हैं! सम्राट ने कहा, मैं और झिझकूं! अपने बाप से पैदा हुआ हूं! चड्डी भी उतार दी। ऐसी हालातों में आदमी को सभी कर देना पड़े। नंग-धड़ंग खड़े हैं और सारा दरबार उनके वस्त्रों की प्रशंसा कर रहा है।
और हर दरबारी देख रहा है कि राजा नंगा है! मगर कहो क्या? कहे कौन? जो कहे सो फंसे। मगर वह आदमी भी गजब का था! उसने कहा, महाराज, जनता बाहर इकट्ठी है। लोग देवताओं के वस्त्रों के दर्शन करना चाहते हैं। सम्राट ने सोचा कि अब मारे गए! मगर अब इतने आगे आ गए हैं कि अब लौटना कैसे? लौटने की भी सीमाएं होती हैं। एक सीमा के पार फिर लौटा नहीं जा सकता। अब इतनी भद्द तो हो ही गई,

अब दरबारियों ने तो देख ही लिया, अब जो होना था हो ही गया, अब क्या पीछे लौटना? अब क्या पीठ दिखाना? और जब इतने लोगों को दिखाई पड़ रहा है तो होंगे ही!
आना पड़ा बाहर।
और भीड़ में देखो तो जय-जयकार! क्योंकि उस आदमी ने आकर पहले ही घोषणा कर
दी कि वस्त्र केवल उसी को दिखाई पड़ेंगे जो अपने ही बाप से पैदा हुआ हो। सिर्फ एक छोटा बच्चा जो अपने बाप के कंधे पर बैठ कर आया था, उसने कहा, पप्पा, राजा नंगा मालूम होता है! उसके पप्पा ने कहा, चुप, नालायक! अभी तेरी उम्र नहीं है; जब बड़ा होगा तब तुझे भी वस्त्र दिखाई पड़ेंगे; चुप! अभी तू छोटा है, कच्ची उमर है। मगर उसने कहा कि इसका उमर से क्या संबंध है, पापा! राजा बिल्कुल नंगा है! बाप ने उसके मुंह पर हाथ रखा और कहा कि बदतमीज! तू इज्जत डुबा देगा, घर चल! मैं पहले ही कह रहा था कि इसको नहीं ले जाना है; तेरी मां पीछे पड़ी कि ले जाओ। मुझे पहले ही डर था कि कुछ झंझट होगी।
एक सिर्फ बच्चे को असलियत कहने की हिम्मत थी। और वह भी सिर्फ इसलिए थी
कि वह बच्चा था और उसे पता नहीं था कि पद और प्रतिष्ठा, लोक-लाज का खतरा है। और बाप ठीक कह रहा था कि बेटा, जरा बड़ा हो जा, तुझे भी दिखाई पड़ेंगे।
गणेश जी में तुमको सच में भगवान दिखाई पड़े हैं? या कि सिर्फ बड़े हो गए, इसलिए दिखाई पड़ने लगे! मंदिरों में, मूर्तियों में तुम्हें भगवान दिखाई पड़े हैं? कि चूंकि सब को दिखाई पड़ रहे हैं इसलिए तुम भी देख रहे हो! तुम्हें कौओं में पितर दिखाई पड़े हैं? पितृ-पक्ष को छोड़ कर जब कांव-कांव कौआ करता है तो पत्थर मारते हो। और यही सज्जन पितृ-पक्ष में तुम्हारे पितरों के वाहन हो जाते हैं, या क्या हो जाता है?
तुम्हें राजनेताओं में कभी सज्जन दिखाई पड़े हैं? मगर नहीं, चरण छू-छू
कर प्रशंसा करते हो कि आपके कारण ही चांद-तारे टिके हैं। नहीं तो कब के गिर जाते। आपके कारण ही लोक थिर है। आप हो तो व्यवस्था है। आप नहीं हो तो अराजकता हो जाएगी। और ये ही हैं अराजकता फैलाने वाले! ये ही हैं मूलस्रोत सारे उपद्रव के! लेकिन गांधी टोपी, और खादी के शुद्ध वस्त्र... देखने में बड़े भोले-भाले मालूम पड़ते हैं। और तुम भी भलीभांति जानते हो कि तुम कितने ही सफेद वस्त्र पहनो, तुम्हारी कालिख नहीं छिपने वाली है। मगर आमने-सामने जब खड़े होते हो, तो एकदम प्रशंसा करने लगते हो।
सारी दुनिया प्रशंसा कर रही है। जो पद पर होता है, उसकी प्रशंसा की ही जाती है। जो पद से उतरा कि प्रशंसा गई, निंदा शुरू। कैसा अंधापन है! और यह एक दिशा में नहीं, तुम्हारे जीवन की सारी दिशाओं में है। धार्मिक व्यक्ति को इन सारी दिशाओं से अपने को खींच लेना होता है। जो भी कीमत हो, चुका देने योग्य है। मगर इन भ्रांतियों को सहयोग न देना।
देव पित्र दे छोड़ि जगत क्या करैगा।
चला जा सूधी चाल, रोइ सब मरैगा।।
ये सब मर जाएंगे रो-रो कर, मत फिक्र करो इनकी। तुम अपनी सीधी चाल चलो।
जो तुम्हारी सहज गति हो, तुम्हारा स्वभाव हो, उसके अनुसार जीओ। किसी को हक नहीं है कि तुम्हारे स्वभाव के प्रतिकूल तुम्हें चलाए। लेकिन तुम्हें चलाया जा रहा है स्वभाव के प्रतिकूल। तुम्हें सिर के बल खड़ा होना सिखाया जा रहा है। तुमसे कहा जा रहा है कि शीर्षासन बिना किए स्वर्ग नहीं मिलेगा। और तुम शीर्षासन भी कर रहे हो। तुमसे कहा जाता है, हाथ-पैर तिरछे करो, मोड़ो, उलटे-सीधे होओ, वह भी तुम कर रहे हो। तुम कभी पूछते नहीं कि शरीर की इस कवायद से मोक्ष का क्या संबंध!
जाति-बरन-कुल खोइ करौ तुम भक्ति को।
अरे हां, पलटू कान लीजिये मूंदि, हंसै दे जक्त को।।
हंसने दो जगत को। मगर तुम कान मूंद लेना जगत के प्रति। तुम तो अपने भीतर देखना और अपने भीतर से जीना। अपने अंतःकरण की आवाज सुनो। और अगर तुम्हारा अंतःकरण कहता है राजा नंगा है, तो राजा नंगा है। फिर चाहे भीड़ कितना ही कहती हो कि बड़े सुंदर वस्त्र हैं, तुम फिकर मत करना! जीसस ठीक कहते हैं कि जो बच्चों की भांति सरलचित्त होंगे, वे ही केवल परमात्मा के राज्य में प्रवेश पा सकेंगे। अब उस भीड़ में सिर्फ एक बच्चे ने सत्य कहा

था। अक्सर यह हो जाता है कि इस झूठों की भीड़ में कभी-कभी कोई साहसी, सरलचित्त व्यक्ति सीधी-सीधी बात कह देता है। हालांकि उसे बहुत गालियां झेलनी पड़ती हैं।
केतिक जुग गए बीति माला के फेरते।
तुम कितने जमानों से माला फेर रहे हो! और तुमने कभी एक बार सोचा कि ये माला के मनके फेरने से क्या होगा? मगर और लोग भी फेर रहे हैं, सो तुम भी फेर रहे हो।
डर लगता है शीश झुकाते, अपने बंदन सुमन चढ़ाते
कहीं न मेरा भाल कलंकित कर दे पावन चरण तुम्हारे।
मन ने कैसी की नादानी
जो तुमको पाने को मचला।
जैसे नन्हा जुगनू, सूरज--
की पूजा करने को निकला।
तुमको अपनी पीर सुनाऊं, इतनी शक्ति कहां से लाऊं सावन भादों बन जाएंगे, धुले गगन से नयन तुम्हारे।
सारी उम्र धुआं करने को
मन की दबी आग काही है।
चंदा की बदनामी को बस
उसका एक दाग काफी है।
मुझको अपने अंग लगाओ, सोच समझ बाहें फैलाओ
काले पड़ जाएंगे मुस्कानों वाले आभरण तुम्हारे।
मेरे अपराधी अधरों पर
सिर्फ तुम्हारा नाम बचा है।
माटी की गागर में जैसे
गंगाजल भर रही ऋचा है।
अगर तुम्हारे स्वर मिल जाएं, मेरे गीत मंत्र बन जाएं जीवन हो पूजा की थाली, फूल बनें संस्मरण तुम्हारे।
दरस तुम्हारा जैसे कोई
वैरागी तीरथ पा जाए।
या जन्मांध भिखारिन मावस
पूनम वाला पथ पा जाए।
सकुचाये निर्धन प्रणाम हैं मचल रहे हर सुबह शाम हैं
शायद हट जाएं पल भर को संकोची आवरण तुम्हारे।
तुम्हारे माला फेरने से परमात्मा के चेहरे की नकाब थोड़ी हटी, थोड़ी सरकी? कुछ दरस-परस हुआ?
दरस तुम्हारा जैसे, कोई
वैरागी तीरथ पा जाए।
या जन्मान्ध भिखारिन मावस
पूनम वाला पथ पा जाए।।
इतने जन्मों से माला फेर रहे हो, पूर्णिमा हुई जीवन में? अमावस की अमावस बनी है। तुम जहां थे, वहीं पत्थर के ढेले की तरह पड़े हो। इंच भर गति नहीं होती, क्योंकि माला फेरना झूठ है। तुम्हारे हृदय में क्रांति नहीं हुई है सिर्फ हाथों ने माला पकड़ ली है--यंत्रवत।
मेरे अपराधी अधरों पर
सिर्फ तुम्हारा नाम बचा है।
माटी की गागर में जैसे
गंगाजल भर रही ऋचा है।
अगर तुम्हारे स्वर मिल जाएं, मेरे गीत मंत्र बन जाएं
जीवन हो पूजा की थाली, फूल बनें संस्मरण तुम्हारे।
फिर मालाएं नहीं फेरनी पड़तीं। तुम जो बोलो वही मंत्र हो जाता है। तुम
जो गुनगुनाओ वही ऋचा हो जाती है।
लेकिन हृदय में होनी चाहिए क्रांति। मालाएं फेरने से यह नहीं हो सकता।

केतिक जुग गए बीति माला के फेरते।
छाला परि गए जीभ राम के टेरते।।
और कुछ हैं कि राम-राम, राम-राम जपे जा रहे हैं। बस जीभी ही जीभ पर रटन है; कंठ से भी नीचे नहीं उतरती। हृदय तो उन्हें पता ही नहीं कि है भी उनके पास या नहीं। जीभ पर राम-राम चल रहा है, हृदय में कुछ और चल रहा है--ठीक राम से विपरीत चल रहा है, काम चल रहा है। भीतर तो वासना है, ऊपर-ऊपर प्रार्थना है। ऐसे कच्चे रंग पानी के पहले झोंके में बह जाएंगे।
जनम-जनम हम गलियां बदले।
जैसे बदले चमन चिरैया,
कुन्ज-निकुन्ज तितलियां बदलें।
कोई बदले नूतन कंगना,
कोई चाहे चुनरी रंगना
पिया हमारे बदलें अंगना,
हम घर-घर पायलियां बदलें। रात-रात भर चांद निहारें,
राह देखते उमर गुजारें
क्या पतझड़ क्या मस्त बहारें, जब कांटों से कलियां बदलें। सेज सजाएं हम कलियों से,
फिर भी दूर पिया गलियों से प्रियतम की तारावलियों से, अपनी दीपावलियां बदलें।

जनम-जनम जीने का धंधा,
आंखमिचौली का है फंदा
रूप हजारों बदलें चंदा,
लाखों रंग बदलियां बदलें।

बरस-बरस पर बादल बरसें,
पनघट पर हम प्यासे तरसें किसको पकड़ें, किसको परसें पल-पल पंथ बिजलियां बदलें।

पेड़ गिने हमने बस लाखों,
फल खाए तो आंखों-आंखों
अंत समय किस्मत के हाथों हम तो सिर्फ गुठलियां बदलें

भाग्य-गीत के ताल-छंद पर
बदलें, हम तो गांव, डगर, घर जैसे लहर-लहर लहराकर,
जल की धार मछलियां बदलें।

जब रुख बदले पवन सनन-सन,
बदले सरगम, छूम-छनन-छन
बदलें तार-सितार-झनन-झन,
पर ना कभी उंगलियां बदलें।
हम बस ऊपर-ऊपर की बदलाहटों में लगे रहते हैं। सितार बदल लेते हैं। मगर अंगुलियां... बजाने की कला आती है या नहीं? लोगों को नाचना आता नहीं और कहते हैंः आंगन टेढ़ा है। तुम्हारे हृदय में गीत नहीं उठे हैं; तुम्हारे हृदय में प्रार्थना नहीं जगी है; तुम्हारे हृदय में प्रेम का बीज अंकुरित नहीं हुआ है; तो फिर तुम करते रहो लाख-लाख उपाय--
केतिक जुग गए बीति माला के फेरते।

छाला परि गए जीभ राम के टेरते।।
माला दीजे डारि मनै को फेरना।
पलटू कहते हैं, फेंको यह माला, मन को फेरो, मन को बदलो।
माला दीजे डारि मनै को फेरना।
अरे हां, पलटू मुंह के कहे न मिलै, दिलै बिच हेरना।।
ऐसे मुंह के कहने से नहीं मिलेगा, हृदय के मध्य में, ठीक प्रणों के मध्य में खोजना होगा।
तुम डगर पर बाट मेरी जोहना
मैं मिलन के गीत लेकर आ रहा हूं।

पाप जो मैंने किए, स्वीकार कर लूं,
पीर जो मुझको मिली, शृंगार कर लूं,
जो युगों से मौन ही अब तक रहे--
होंठ में गीले नयन का प्यार भर लूं,

पालकी में बैठ पलकों की--
अदेखे स्वप्न का संगीत लेकर आ रहा हूं।

रश्मियों से गूंथकर अपनी कहानी,
और दुर्बलता भरी अपनी जवानी,
भाग्य का तूफान आंचल में छुपाये-- श्वांस की बाती जला, काया अजानी,

हारकर सौ बार तामस के समर म--
ज्योति की मैं जीत लेकर आ रहा हूं।

तृप्ति का परिचय पिपासा से करा दूं,
प्यार का परिचय निराशा से करा दूं,
गूंजती अव्यक्त जो मेरे गगन में--
भावना का मेल भाषा से करा दूं,

जो विषय अनुभूतियों से भी न छूटा--
वह हृदय का गीत लेकर आ रहा हूं।
उसकी तरफ चलना है तो हृदय में दीया जलाओ! ज्योति लेकर बढ़ो! चैतन्य का दीया, होश का दीया, बोध का दीया। अपने चारों तरफ प्रेम की रोशनी छिटकाओ! राम-राम जपने से क्या होगा, राम को जीओ। माला मत फेरो, मन को फेरो। मन अभी बाहर की तरफ दौड़ रहा है, इसे खींचो, इसे भीतर ले चलो। अभी यह विषयों में उलझा है, इसे विषयों से मुक्त करो, इसे शून्य से भरो। और तब तुम जानोगे-- क्या है धर्म? और तब तुम पहचानोगे--क्या है परमात्मा? और वह पहचान तृप्ती से भर जाएगी। ऐसी तृप्ती जो फिर कभी समाप्त नहीं होती।
तीसों रोजा किया, फिरे सब भटकिकै।
आठो पहर निमाज मुए सिर पटकिकै।।
सिर पटक-पटक कर आठों पहर नमाज पढ़-पढ़ कर लोग मर गए, कुछ पाया नहीं।
मक्के में भी गए, कबर में खाक है।
गए काबा, गए मक्का, कब्रों की खाक छानी; कब्रों में कुछ भी नहीं है।
अरे हां, पलटू एक नबी का नाम सदा वह पाक है।।
लेकिन अब कभी कोई ऐसा आदमी मिल जाए जिसने प्रभु को जाना हो... जिसे हम बुद्ध कहते हैं, उसे मुसलमान नबी कहते हैं, जिसे हम अवतार कहते हैं, उसे मुसलमान नबी कहते हैं; जिसे हम तीर्थंकर कहते हैं, उसे मुसलमान नबी कहते हैं। नबी का अर्थ है, जिसने जाना। जिसने जाना, वही तो जना सकता है। इसलिए वह पैगंबर है। उसका होना पैगंबर है। उसका अस्तित्व एक पैगाम है, एक संदेश है। उसकी श्वास-श्वास में परमात्मा के लिए प्रमाण है।
अरे हां, पलटू एक नबी का नाम सदा वह पाक है।।

बस एक सदगुरु को खोज लो, वही एकमात्र पवित्र स्थल है इस पृथ्वी पर। जहां सदगुरु है, वहां तीर्थ है। और सदगुरु के पास बैठ जाओ, अपनी व्यर्थ की बकवास को छोड़ कर, तो तुम भी डूब जाओगे; तुम्हारी नौका भी उतर जाएगी अज्ञात के सागर में।
आज नए बादल फिर उमड़े--
लगा कि तुमने मुझे पुकारा।

मुक्त करों से अमृत-गगरियां
ढुलका कर तुम मुस्काओगे।
मरे श्रांत-क्लांत तन-मन में
नई चेतना भर जाओगे।
नए नए मेघों के पट में--
लगा कि तुमने मुझे संवारा।

घन निनाद से गीत तुम्हारे गूंजेंगे मेरे कानों में।
लौट लौट कर जैसे आते
तुम्हीं प्यार के आह्वानों में।
नए बादलों की उड़ान में--
लगा कि मेरी खोज पसारा।

भूल गई मैं मरु की जलती
दुपहर की चिर आकुल प्यासें।
चंदन शीतल सुमन-सुरभि सी
लहराई पुरवा की सांसें।
लगा कि पत्थर चट्टानों ने-- मुझे बनाया निर्झर धारा।

हुआ क्या कि इतने नि तक जो रहा तड़पता सागर खारा।
नदियां कृश हो गईं, धरा का
उजड़ गया था यौवन सारा।
अब तो लगा कि जल-थल सबकी--
तृप्ति हेतु ही मुझे निहारा।
आज नए बादल फिर उमड़े--
लगा कि तुमने मुझे पुकारा।
किसी सदगुरु के पास बैठो तो तुम्हें लगेगा--परमात्मा ने तुम्हें पुकारा। सदगुरु की पुकार उसकी ही पुकार है। वही बोलता है उससे। सदगुरु स्वयं शास्त्र है। वही है कुरान, वही है वेद, वही है बाइबिल, वही है गीता। क्योंकि उसके भीतर गीत गूंज रहा है परमात्मा का। वह तो बांसुरी बन गया है। वह तो पोला हो गया है, बांस की पोली पोंगरी, प्रभु के ओंठों पर रख कर अदभुत संगीत से भर जाती है। जो भी शून्य होने को राजी है, वही पूर्ण हो जाता है।
और जो शून्य होकर पूर्ण हो गया, उसे पैगंबर कहो, तीर्थंकर कहो, अवतार कहो, नबी कहो, कुछ फर्क नहीं पड़ता, लेकिन पलटू कहते हैंः बस वही एक पाक स्थल है; वही एक पवित्र स्थान है। उसे खोज लो।
डांडी पकड़े ज्ञान, छिमा कै सेर है।
और अगर तुम किसी सदगुरु के पास पहुंच गए, तो तुम्हें यह समझ में आ जाएगाः डांडी पकड़े ज्ञान... । वह जो तुम्हें दे दे, उससे तुम्हारे हृदय में जो ढल जाए, वही ज्ञान है। और वह ज्ञान एक तराजू है! जिस तराजू पर सब तुल जाएगा। जो तुल सकता है वह भी तुल जाएगा और जो अतुलनीय है, वह भी तुल जाएगा।
डांडी पकड़े ज्ञान, छिमा कै सेर है।
और जैसे ही तुम ज्ञान से जागोगे, तुम्हारे भीतर क्षमा पैदा होगी, करुणा पैदा होगी।

सुरत सबद से तोल मनै का फेर है।।
और तब तुम्हारे भीतर स्मृति उठेगी अपने अस्तित्व की। मैं कौन हूं, इसका बोध जगेगा।
सुरत सबद से तोल मनै का फेर है।।
और तब जानना कि मन बदला। जब ज्ञान का तराजू हाथ लगे, करुणा के बांट हाथ लगें, और सुरत सबद की तौल हो जाए, परमात्मा की स्मृति तुलने लगे तुम्हारे तराजू में, तब जानना कि मन का रूपांतरण हुआ, क्रांति हुई।
भला-बुरा इक भाव निबाहै और है।
और तब न कुछ भला है, न कुछ बुरा है। फिर दोनों को समान रूप से निबाहने
की कला आ जाती है। सम्यकत्व पैदा होता है; समता पैदा होती है।
अरे हां, पलटू संतोष की करै दुकान महाजन जोर है।।
और वही है महाजन, वही है बड़ा, वही है महान, जिसके जीवन में संतोष की दुकान खुली।... पलटू तो साधारण से, गरीब बनिया थे। तो उनकी भाषा में भी उनके जीवन के अनुभव की छाप है। जिंदगी भर तौलते रहे। पत्थर के सेर, बांट, पसेरी रही होंगी। लकड़ी की तराजू रही होगी, कि लोहे की। दुकान में बेचते रहे होंगे गेहूं कि चावल कि दाल। अब भी वे प्रतीक उपयोग करते हैं--
डांडी पकड़े ज्ञान, छिमा कै सेर है।
सुरत सबद से तोल मनै का फेर है।
भला-बुरा इक भाव निबाहै और है।
अरे हां, पलटू संतोष की करै दुकान महाजन जोर है।।
वे धन्यभागी हैं, वे और ही हैं, विशिष्ट हैं, जो ज्ञान का तराजू पकड़ लेते हैं। और जो ज्ञान के तराजू में अतुलनीय को तौल लेते हैं।
क्या है अतुलनीय?
सुरति, स्मृति, परमात्मा की याद।
इस जगत में पाने योग्य अगर कोई धन है तो बस प्रभु की स्मृति है। और सब व्यर्थ है। और कुछ भी धन नहीं है, धन का धोखा है। और सब विपदा है। संपदा तो एक हैः प्रभु का स्मरण। क्योंकि वही स्मरण तुम्हें मृत्यु के पार ले जाएगा। वही स्मरण तुम्हें देह के पार, मन के पार ले जाएगा। वही स्मरण तुम्हें उस परम ज्योति से मिला देगा, जिससे मिल जाने के बाद फिर कोई बिछुड़ना नहीं है, फिर कोई विरह नहीं है।
तुम्हारे नेह के कारण
उठा ऊपर असाधारण
नहीं तो पांव के नीचे कहीं धरती नहीं है।
न तुम छूते अगर चट्टान कैसे गल गई होती
धधकती आग कैसे रोशनी में ढल गई होती
तुम्हारे ज्योति-कण पीकर
बना हूं चंद्रमा भू पर
नहीं तो चांदनी मेरे बिना मरती नहीं है। कभी गुण भी फिरे मेरे गली में ठोकरें खाते कहां अब दोष भी मेरे किताबों में लिखे जाते! तुम्हारा हाथ है सिर पर
मिला है इसलिए आदर
नहीं तो जिंदगी मुझ पर कृपा करती नहीं है। समंदर देखता हूं तो उसे दर्पण समझता हूं निकट हो तुम, तभी तूफान को भी तृण समझता हूं तुम्हारे नाम के बल से
नहीं मरता हलाहल से
नहीं तो मृत्यु मेरे नाम से डरती नहीं है। विमुख जब तक रहे तुम, सिर्फ था मैं राख की ढेरी सजल जब से हुए तुम, प्यास भी पुजने लगी मेरी तुम्हारे ही इशारे पर
खड़े हैं द्वार पर निर्झर
नहीं तो तृप्ति जल मेरे लिए भरती नहीं है।

एक परमात्मा मिला तो सब मिला। एक परमात्मा मिला तो अमृत मिला। इसलिए
पलटू ठीक कहते हैंः
हरि-चरचा से बैर संग वह त्यागिये।
अपनी बुद्धि नसाय सेवेर भागिये।।
सरबस वह जो देइ तो नाहीं काम का।।
जहां हरि-चर्चा होती हो, चार दीवाने बैठ कर प्रभु का स्मरण करते हों, वहां बैठो, गुनो; सुनो; समझो; डुबो; जीओ; तो इसी जीवन में अमृत-जीवन का अनुभव हो सकता है। क्षण में शाश्वत की प्रतीति हो सकती है। और अपने भीतर ही वह पाया जा सकता है, जिसे जन्मों-जन्मों से दौड़ कर भी बाहर तुम नहीं पा सके हो और नहीं पा सकते हो। वह बाहर है ही नहीं, तो बाहर पाया कैसे जा सकता है? अंतर्यात्रा का विज्ञान धर्म है।

आज इतना ही।

सपना यह संसार
बीसवां प्रवचन

ज्ञान से शून्य होने में ज्ञान से पूर्ण होना है

भगवान,
क्या प्रभु-मिलन में विरह-अवस्था से गुजरना आवश्यक है?

भगवान,
मैं मृत्यु की तो बात दूर, मृत्यु शब्द से भी डरती हूं। मृत्यु से कैसे छुटकारा हो सकता है?

भगवान,
आप इतने प्रेम से समझाते हैं, पर मुझ अज्ञानी के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता। वैसे वेद, पुराण, गीता इत्यादि सब मेरी समझ में आ जाते हैं। फिर आप क्यों समझ में नहीं आते?

पहला प्रश्नः भगवान, क्या प्रभु-मिलन में विरह-अवस्था से गुजरना आवश्यक है?

कैलाश! विरह की अवस्था में तो तुम हो ही, गुजरने की बात नहीं। तुम्हारा होना ही विरह की अवस्था है। तुम्हारा मिट जाना मिलन। विरह कोई ऐसी बात नहीं है कि कल तुम्हें उसमें से गुजरना होगा, आज ही तुम उसमें हो। कल भी तुम उसमें थे। और यदि कुछ न किया तो कल भी तुम उसमें ही रहोगे।
विरह का अर्थ हैः मैं पृथक हूं, अलग हूं, अस्तित्व से भिन्न हूं, अभिन्न नहीं, ऐसी प्रतीति। जैसे कोई पत्ता वृक्ष का समझ ले कि मैं वृक्ष से अलग हूं। होता नहीं समझने से, मानने से होता नहीं, रहता तो वृक्ष का ही हिस्सा है, लेकिन मान्यता हो जाए तो भ्रांति खड़ी हो जाती है। प्रभु से हम अलग नहीं हैं, सिर्फ अलग होने की भ्रांति है। भ्रांति ही तोड़नी है। प्रभु से जुड़ना थोड़े ही है! उससे तो जुड़े ही हैं। लाख उपाय करें तो भी टूट नहीं सकते। टूटना असंभव है। क्योंकि टूट कर होना असंभव है। जो भी है प्रभु में है। अस्तित्व अर्थात परमात्मा। तुम हो, इतना काफी है तुम्हारा परमात्मा में होने के लिए। कौन ले रहा है तुम्हारे भीतर श्वास? कौन तुम्हारे प्राण में धड़क रहा है? कौन है तुम्हारे भीतर चैतन्य? वही है।
लेकिन, पत्ते ऐसी भूल नहीं करते। कर नहीं सकते। करने की उनकी सामर्थ्य नहीं। मनुष्य ऐसी भूल करता है। करने की उसकी सामर्थ्य है। यह मनुष्य की महिमा है और उसका दुर्भाग्य भी। महिमा, क्योंकि मनुष्य अकेला है जो स्व-चेतन हो सकता है। और दुर्भाग्य, क्योंकि स्व-चेतन होने की क्षमता का दुरुपयोग हो सकता है। और स्व-चेतन होने की क्षमता अहंकार बन सकती है। अहंकार बन जाए तो हम टूट गए परमात्मा से।
अहंकार यानी विरह की अवस्था।
फिर जीवन रुदन है, विषाद है, विक्षिप्तता है। इसलिए क्योंकि जैसा नहीं है वैसा हम मान रहे हैं। जहां दीवाल है वहां द्वार मानोगे तो विक्षिप्त नहीं तो और क्या? और जहां द्वार है वहां दीवाल मानोगे तो मुश्किल में तो पड़ोगे! निकल तो न सकोगे। द्वार का उपयोग न कर सकोगे! दीवाल से टकराओगे और द्वार से निकल न पाओगे। मगर द्वार द्वार है, तुम चाहे दीवाल मानो और दीवाल दीवाल है, तुम चाहे द्वार मानो।
मान्यता में मनुष्य भूला है। मान्यता के अतिरिक्त कहीं कोई भ्रांति नहीं है। तुमने मान रखा है कि मैं हूं। न केवल मान रखा है, वरन तुम इसे सब भांति पुष्ट करते हो। धन से, पद से, प्रतिष्ठा से। इसे पोषण देते हो। कोई इस पर चोट करे तो मरने को तैयार हो जाते हो। तुम अपने अहंकार की रक्षा में सतत तैनात हो, नंगी तलवार लिए। और कभी अगर तुम्हें मजबूरी में झुकना भी पड़ता है तो झुकना ऊपर-ऊपर होता है, भीतर तुम बदले की प्रतीक्षा करते हो। कब

मिले समय, कब आए अवसर कि जिसके समाने तुम्हें झुकना पड़ा है, तुम उसे झुका लो?
विरह का अर्थ हैः मैंने मान लिया कि मैं इस विराट से अलग हूं। बस पीड़ा शुरू हुई! तड़फन शुरू हुई! फिर तुम्हें अगर तड़फन का ठीक-ठीक बोध हो जाए तो तुम आस्तिक। तो तुम तलाश में लग जाओगे, कि कैसे भ्रांति टूटे और कैसे सत्य से मेरा संबंध पुनः हो जाए? कैसे मुझे सुरति आए, स्मृति आए? और अगर तुमने ठीक से न समझा तो विरह को तुम समझोगे धन की कमी, पद की कमी, प्रतिष्ठा की कमी। फिर संसार की दौड़ है।
ये दोनों ही यात्राएं धर्म की और संसार की विरह से पैदा होती हैं। एक सद-यात्रा है, सम्यक यात्रा है, क्योंकि अगर तुम चल पड़े धर्म के मार्ग पर, स्वभाव के मार्ग पर, तो आज नहीं कल विरह मिट जाएगा और मिलन होगा। मिलन जो कि वस्तुतः है ही। सिर्फ उसका आविष्कार होगा, उदघाटन होगा, पर्दा उठेगा। परदे की ओट में है अभी। फिर आंख के सामने होगा। भक्त भी विरह में जीता है और जिनको तुम संसारी कहते हो, वे भी विरह में जी रहे हैं। यद्यपि भक्त का विरह एक दिन मिलन बन जाएगा और जो संसारी हैं, उनका विरह और भी और नर्क बनता जाएगा।

लिख-लिख भेजीं अनगिन पाती
फिर भी नहीं निठुर तुम आए।

दिन फिर गए बिजन-बगिया के, घिर-घिर आए घन कजरारे,
महक उठी मेंहदी की क्यारी, चहक उठे द्वारे चौबारे,
आंगन की निबिया बौराई, फूल उठी घर की अमराई,
सब-सब बोले, तुम्हीं न बोले, बैठे एक हमी मन मारे,

हंसी खो गई, खुशी खो गई
नींद बिकाई, चैन गंवाए।

किसके मंदिर करूं आरती, किसके द्वारे करूं समर्पण, किसको भेजूं मौन संदेशे, किसको भेजूं नेह निमंत्रण, लिख-लिख भेजी अनगिन पाती, कोई नहीं लौट कर आती, सब-सब आए, तुम्हीं न आए, ऐसी बान पड़ी किस कारण,

इतनी-इतनी लगन धराई
इतने-इतने जतन कराए।

गुमसुम चुप रह गई देहरी, खटक-खटक रह गई किवरिया, झूम-झूम झुक उठे बदरवा, बरस-बरस रह गई बदरिया, जब-जब आई याद तुम्हारी, बढ़ी और मन की लाचारी,
कसक-कसक रह गया करेजवा, बीज गई बेरहम उमरिया,

सौ-सौ बार संदेश पठाए
फिर भी नहीं निठुर घर आए।
लिख-लिख भेजीं अनगिन पाती
फिर भी नहीं निठुर तुम आए।

भक्त अस्तित्व के प्रेम में है। जहां प्रेम है, वहां विरह सघन होगा। जहां प्रेम है, वहां प्यास सघन होगी। जहां प्रेम है, वहां पुकार उठेगी अहर्निश, आकांक्षा जगेगी। कब होगी सुबह? कब टूटेगी रात? कब अंधेरा मिटेगा दूरी का? कब होगा सामीप्य, सान्निध्य उपलब्ध? जितनी-जितनी यह प्रीति, जितनी-जितनी यह प्यास सघन होगी, उतनी ही संभावना प्रबल होगी मिलन की। एक ऐसी घड़ी आती है कि प्यासा तो गल ही जाता है, प्यास ही रह जाती है। एक ऐसा अपूर्व क्षण आता है जब रोने वाला नहीं बचता सिर्फ रुदन बचता है। जब भीतर

कोई नहीं होता खोजने वाला सिर्फ अहर्निश एक खोज रह जाती है। श्वास-श्वास धड़कन-धड़कन में एक पुकार रह जाती है। जागे-सोए पुकार बनी ही रहती है। उसी क्षण मिलन घट जाता है। परदा उठ जाता है।
कैलाश! विरह की अवस्था में तो हो ही। अब इस विरह को दो ढंग दे सकते हो।
एक तो अज्ञानी का ढंग है कि वह सोचता है थोड़ा धन हो जाएगा तो सब ठीक हो जाएगा। सोचता है सुंदर पत्नी होगी, पति होगा, बच्चे होंगे, सब ठीक हो जाएगा। बड़ी नौकरी होगी, पद होगा, प्रतिष्ठा होगी, सब ठीक हो जाएगा। सोचता है कुछ कमी है बाहर, इसे भर लूं। वह कमी कभी भरती नहीं। वह ऐसा भिक्षापात्र नहीं जो भर जाए। मांग बढ़ती चली जाती है, मृग-मरीचिका की तरह, वे दूर दिखाई पड़ने वाले जलस्रोत बस दूर से ही जलस्रोत दिखाई पड़ते हैं, पास पहुंचते- पहुंचते रेत के ढेर हाथ आते हैं। लेकिन तब तक मृगतृष्णा आगे दौड़ाने लगती है, सपने आगे सजते चले जाते हैं। वे दूर के ढोल सुहावने हैं। जब तक उन ढोलों की पोल खुले, तब तक तुम नये सपने संजो लेते हो। उनमें उलझ जाते हो। यह भी विरह है। लेकिन ठीक से समझा नहीं गया। बीमारी का ठीक निदान नहीं हुआ, इसलिए कुछ भी उलटी-सीधी दवाएं ले रहे हो। और बीमारी तो एक तरफ, दवाएं और नई बीमारियां खड़ी कर रही हैं, वह दूसरी तरफ। बीमारी तो मिटती नहीं, दवाएं और बीमारियां बन जाती हैं।
ठीक निदान हो तो कमी बाहर नहीं है, कमी भीतर है। ठीक निदान हो तो होश
की कमी है, धन की कमी नहीं। होश बढ़े तो मिलन हो जाए। होश में ही मिलन हो सकता है। नींद में विरह है, जागरण में मिलन है। और विरह से घबड़ाओगे तो मिलन कभी न हो पाएगा। विरह को समझोगे तो विरह निखारता है, पखारता है, धूल-धवांस झाड़ता है। विरह स्नान है। अंतरात्मा विरह से गुजर-गुजर कर ही कुंदन बनती है। और तभी पात्रता पैदा होती है परमात्मा को पाने की।
परमात्मा तो मौजूद है, हर एक को मिलता क्यों नहीं? पलटू को, कबीर को, नानक को मिलता है, तुम्हें क्यों नहीं मिलता? नानक भी यहीं, पलटू भी यहीं, कबीर भी यहीं, रैदास भी यहीं, तुम भी यहीं, यही दुनिया, दुनिया कोई दूसरी नहीं, यही आकाश, यही चांद-तारे, यही लोग, मगर उन्हें परमात्मा मिलता है और तुम्हें परमात्मा नहीं मिलता। तुम्हारे निदान में भूल है। तुम बाहर तलाशते हो, सो चूकते चले जाते हो। जितना चूकते हो उतना ही घबड़ाहट में और जोर से भागते हो। जितने जोर से भागते हो उतने और ज्यादा चूकते हो। एक दुष्टचक्र पैदा हो जाता है। नहीं मिलता तो लगता है शायद दौड़ ठीक से नहीं कर रहा हूं। नहीं मिलता है तो लगता है और दौडूं और थोड़ा श्रम लगाऊं। लेकिन यह याद नहीं आता कि कहीं ऐसा तो नहीं कि जिस दिशा में मैं दौड़ रहा हूं, वहां संपदा है ही नहीं। नई दिशा खोजूं।
ग्यारह दिशाएं हैं। दस दिशाएं बाहर और ग्यारहवीं दिशा भीतर है। दस दिशाएं संसार की और ग्यारहवीं दिशा धर्म की। जो उस ग्यारहवीं दिशा पर चल पड़ा, निश्चित पहुंचा है। आज तक कोई भी अपवाद नहीं। फिर तो आंसू भी उस पर चढ़ जाते हैं। हंसी भी उस पर चढ़ जाती है, खुशी भी उस पर, सब उस पर न्योछावर हो जाता है। कांटे और फूल, सब; अच्छा और बुरा, सब; रात और दिन, सब।
अबोले गीत की दुआएं तुम को।

रुआंसी इस हंसी की,
अधर की बेबसी की,
अदेखे अश्रु की दुआएं तुम को।
अबोले गीत की दुआएं तुम को।

किन्हीं बिकते प्रणों की-- कि डोली के क्षणों की--
अजानी राह की दुआएं तुम को।
अबोले गीत की दुआएं तुम को।

दुआ है ताज की भी,
अधूरे साज की भी,

बुझे संगीत की दुआएं तुम को।
अबोले गीत की दुआएं तुम को।
जैसे-जैसे तुम भीतर जाओगे, रसधार बहेगी, थोड़ा स्वयं का अनुभव होगा, वैसे ही वैसे तुम पाओगेः सब उस पर समर्पित है। बेशर्त समर्पित है। उस समर्पण में ही मिलन का द्वार खुल जाता है।
एक समर्पण है, जबरदस्ती कराया जाता है। एक समर्पण है, जो स्वेच्छा से किया जाता है। जबरदस्ती का समर्पण झूठा है। उसके भीतर क्रोध है। आज नहीं कल क्रोध फूटेगा। ज्वालामुखी के ऊपर तुम बैठे हो। और तुमसे धर्म के नाम पर भी जबरदस्ती ही समर्पण करवा लिए गए हैं, इसलिए तुम्हारा धर्म भी मिथ्या है। तुम्हारा परिवार तुम्हें ले गया मंदिर, कि मस्जिद, कि गुरुद्वार, कि गिरजा और तुम्हें झुका दिया है। जबरदस्ती झुका दिया है। तुम झुक भी गए; बचपन से झुकते रहे, झुकने की आदत हो गई; संस्कार दृढ़ हो गया; अब मंदिर के सामने से निकलते हो तो यंत्रवत हाथ जुड़ जाते हैं; मरण प्राण, नहीं जुड़ते; प्रार्थना, नहीं उठती।
पलटू ने कहा न कल, राम-राम, जप-जप कर जीभ पर छाले पड़ गए हैं, सार क्या? जनम-जनम से, युगों-युगों से माला फेरते-फेरते थक गए, पाया क्या? माला का कसूर नहीं है, ख्याल रखना। माला बेचारी का क्या कसूर! भूल होगी तो तुम्हारी होगी कहीं। राम के नाम की कुछ भूल नहीं है, भूल होगी तो तुम्हारी होगी कहीं। जीभी से ही जपते रहे तो छाले ही पड़ेंगे और क्या होगा! हाथों में गट्ठे पड़ जाएंगे माला जपते-जपते, लेकिन जब तक अंतर्भाव का जोड़ न हो तब तक कुछ भी न होगा। अंतर्भाव का जोड़ हो जाए तो तुमने सुनी है न कहानी, वाल्मीकि तो राम तो छोड़ो, मरा-मरा जप कर भी राम को पा गए। उलटा नाम जपते रहे। गैर पढ़े- लिखे थे, गंवार थे, जंगली थे, भूल गए ठीक नाम, उलटा ही जपते रहे।
टाल्सटाय की प्रसिद्ध कहानी है।
तीन फकीर बड़े प्रसिद्ध हो गए। इतने प्रसिद्ध हो गए कि रूस का जो सबसे बड़ा पुरोहित था, उस तक को ईर्ष्या और जलन पकड़ी। लोग उनके पास न आते और उन फकीरों के पास जाते। एक झील के पार उन तीनों फकीरों ने एक झाड़ के नीचे डेरा जमा रखा था। उनकी कहानियां, उनकी चर्चा गांव-गांव, चेहरे-चेहरे, मुख-मुख पर फैल गई। प्रधान पुरोहित के बरदाश्त के बाहर हो गया, उसने एक दिन नाव ली, मांझी लिया, झील पार की, उस तरफ पहुंचा। वे तीनों उठ कर उसके पैर छुए। उनके पैर छूने से तो समझ में आ गया कि इनको कुछ आता-जाता नहीं। अहंकारी आदमी था। देख लिया कि ये तो सीधे-सादे लोग हैं, गांव के गंवार हैं, नाहक की प्रतिष्ठा हो गई है!
उनको पूछा कि तुम्हारी सिद्धि क्या है? उन्होंने कहा, सिद्धि हमारी कोई भी नहीं। पूछा तुम प्रार्थना क्या करते हो, साधना क्या है? तो वे एक-दूसरे की तरफ देख कर कहने लगे कि तू बता दे! पुरोहित की तो अकड़ बढ़ी, उसने कहा कि बोलो, मैं प्रधान पुरोहित हूं, मैंने तो तुम्हें कभी दीक्षा भी नहीं दी; अदीक्षित तुम परमात्मा को उपलब्ध हो गए? उन्होंने कहा कि नहीं- नहीं, हम और परमात्मा को कैसे उपलब्ध होंगे! हम दीन, हम हीन, हम कहां परमात्मा को उपलब्ध होंगे। हम तो उसके चरणों की धूल भी नहीं हैं। रही प्रार्थना, सो हम झिझकते हैं कहने में, क्योंकि हमने किसी से सीखी नहीं, हम तीनों ने खुद ही गढ़ ली है। और ज्यादा बड़ी भी नहीं है, सुंदर भी नहीं है, क्योंकि हमें कविता भी नहीं आती, हम पढ़े-लिखे भी नहीं हैं। हमने तो छोटी-सी बना ली है, अपने काम के लिए। घरेलू है। आप क्षमा करें, न पूछें, शर्म लगती है बताने में।
पुरोहित ने जिद्द की तो उन्होंने कहा, आप नहीं मानते तो सुन लें। हमने सुना है कि परमात्मा तीन है।... ईसाइयों में परमात्मा को तीन रूपों में माना गया है। पिता, पुत्र और पवित्र आत्मा। जैसे हिंदू त्रिमूर्ति मानते हैं, ऐसे ईसाई ट्रिनिटी मानते हैं। परमात्मा के तीन रूप। तो उन्होंने कहा, हमने सुना है कि परमात्मा के तीन रूप हैं, और फिर हमने देखा कि हम भी तीन हैं, सो हमने एक प्रार्थना बना ली कि तुम भी तीन, हम भी तीन, अब हम पर कृपा करो! प्रधान पुरोहित तो सुनकर चौंका! ऐसी प्रार्थना उसने कभी सुनी नहीं

थी। तुम भी तीन, हम भी तीन, हम पर कृपा करो। यू आर थ्री, वी आर थ्री, हेव मर्सी अपान अस।
पुरोहित ने कहा, बंद करो यह बकवास। यह प्रार्थना नहीं है। तुम मजाक कर रहे हो परमात्मा का, व्यंग्य उठा रहे हो! मैं तुम्हें प्रार्थना बताता हूं। उसने पूरी जो उसके चर्च की नियमित--सरकारी प्रार्थना थी... सरकारी प्रार्थनाएं होती हैं, सरकारी संत होते हैं, बड़ी दुनिया अदभुत है! अंग्रेजी में तो संत शब्द का जो रूप है, सेंट, बहुत से लोग सोचते हैं
कि वह हिंदी के संत या संस्कृत के संत का ही रूपांतरण है। गलत सोचते हैं। अंग्रेजी में जो शब्द है, सेंट, उसका संत शब्द से कोई संबंध नहीं है, उसका संबंध है सेंक्शन से। सरकार के द्वारा प्रमाणित। जिसके पास प्रमाणपत्र है, वह संत है।
तो उन्होंने कहा कि बंद करो, यह रही प्रार्थना! लंबी प्रार्थना थी, उन तीनों ने सुनी और कहा, एक दफा और कह दें, नहीं तो हम भूल जाएंगे। दुबारा कही। फिर उन्होंने कहा, एक बार और कह दें, नहीं तो हम भूल जाएंगे। तीन बार कही। उन्होंने धन्यवाद दिया। पुरोहित बड़ा प्रसन्न कि इनको रास्ते पर लगा दिया। चला अपनी नाव में। मांझियों ने पतवार उठाईं।
जब वह बीच झील में पहुंचा तो देख कर सब हैरान हुए, मांझी भी हैरान हुआ, पुरोहित भी हैरान हुआ, वे तीनों फकीर झील पर भागते चले आ रहे थे। छाती दहल गई उसकी। झील पर चलते हुए उसने सिर्फ कहानी सुनी थी कि जीसस चले थे एक बार। उसका भी उसे कभी पक्का भरोसा नहीं आया था कि जीसस कभी चले होंगे झील पर, कि पानी पर कोई चल सकता है। मगर अपनी आंखों से देखा, आंखें मींड़ कर देखा, मांझी से पूछा कि तू देख रहा है यह क्या हो रहा है? उसने कहा, मैं भी देख रहा हूं, मैं भी उतना ही चौंका हूं जितना आप चौंके हैं। आपको तो नहीं चौंकना चाहिए। आप तो मानते हैं कि जीसस चले थे। तो चलना हो सकता है। मैं तो साधारण आदमी हूं, मैं तो बहुत चौंक गया हूं। मैं तो बहुत घबड़ा गया हूं, मेरे हाथ-पैर कंप रहे हैं। ये पता नहीं अब क्या करेंगे तीनों आकर? वे तीनों दौड़ते हुए आकर बगल में खड़े हो गए नाव के, हाथ जोड़ कर उन्होंने कहा, एक बार और कह दें प्रार्थना, हम भूल ही गए! इसलिए हमें आना पडा, आपको फिर कष्ट दे रहे हैं। अब तो पुरोहित की जबान लड़खड़ा गई। अब इनसे क्या प्रार्थना कहे! झुक गया उनके चरणों में और कहा, मुझे क्षमा करो, तुम्हारी प्रार्थना ही ठीक है, तुम अपनी ही प्रार्थना जारी रखो, वह तुम्हारी हार्दिक है। हालांकि उस शब्दों में कुछ भी नहीं है, जो तुम दोहरा रहे हो, लेकिन तुम्हारे प्राण जरूर होंगे। अन्यथा यह चमत्कार जो मैं अपनी आंख से देख रहा हूं! मेरी इतनी आस्था नहीं है कि मैं प्रार्थना के बल पर पानी पर चल जाऊं, हालांकि मैं भी यह प्रार्थना जन्मभर से दोहरा रहा हूं। तुम जीते, मैं हारा। तुम मुझे क्षमा कर दो! तुमने मेरी आंखें खोल दीं। मैं अंधा था, तुमने मुझे आंखें दीं। मैं बहरा था, तुमने मुझे कान दिए। मुझे शास्त्रों का अब तक कोई पता नहीं था, आज पहली बार तुमने मुझे शास्त्र की अनुभूति दी, सत्य दिया।
विरह की अवस्था, कैलाश, कोई शास्त्रीय बात नहीं है! ऐसा नहीं कि बैठे हैं, माला जप रहे हैं, राम-राम जप रहे हैं, ढोंग कर रहे हैं, विरह की अवस्था हार्दिक है। तुम्हारे भीतर प्राण तड़फें, जैसे मछली तड़फ जाए पानी से खींच कर उसे किनारे पर डाल दो तो। जैसे किसी पक्षी को पिंजड़े में बंद कर दो, वह पर फड़फड़ाए। ऐसे जब तुम्हारे प्राण पर फड़फड़ाएं, ऐसे जब तुम्हारे प्राण मीन की तरह, मछली की तरह धूप में तट पर तड़फें, तब जानना कि विरह की अवस्था है। और एक ही याद रह जाए, सब याद भूल जाए, एक ही परमात्मा की स्मृति रहे, अपनी भी याद भूल जाए, तो जिस घड़ी ऐसी प्रज्वलित प्यास तुम्हारे भीतर होगी, मिलन घट जाता है। विरह की परम अवस्था ही मिलन है। इसलिए उससे गुजरना तो होगा ही। तुम्हारे प्रश्न से ऐसा लगता है कि मिलन तो तुम चाहते हो और विरह से बचना चाहते हो।
पूछते हो, क्या प्रभु-मिलन में विरह-अवस्था से गुजरना आवश्यक है? तुम्हारे इरादे नेक नहीं। तुम्हारी नीयत साफ नहीं। तुम चाहते हो कि कोई ऐसा रास्ता मिल जाए कि विरह से बच कर निकल जाएं। तुम चाहते हो कीमत न चुकानी पड़े और परमात्मा मिल जाए। तुम चाहते हो पैर में कांटा न गड़े और

यात्रा पूरी हो जाए। तुम जरा भी मूल्य चुकाने को तैयार नहीं मालूम होते।
तुम मुफ्त पाना चाहते हो।
और ध्यान रखना, परमात्मा मुफ्त नहीं मिलता।
मेरा मतलब यह नहीं है कि परमात्मा धन से मिलता है। मेरा मतलब यह नहीं
कि तुम परमात्मा को बाजार में खरीद सकते हो। मेरा मतलब यह है कि परमात्मा को पाने के लिए स्वयं को अर्पण करना होता है। धन, पद, प्रतिष्ठा देने से नहीं, अपने प्राणों को समर्पित करने से परमात्मा मिलता है। प्राणों से जो कीमत चुकाने को तैयार है, बस मिलन उसके लिए ही संभव है। जिस दिन मिलन होगा, उस दिन तुम जानोगे कि जो तुमने चुकाया, वह कुछ भी नहीं, दो कौड़ी था, और जो तुमने पाया, वह अनंत है। जैसे दो कौड़ियों में किसी को कोहनूर हीरा मिल जाए। मगर कोहनूर हीरे की परख चाहिए न! अगर परख न हो--अगर तुम्हारे भीतर पारखी न हो--तो शायद तुम दो कौड़ियों को बचाओ और हीरे को छोड़ दो।
मैंने सुना है, एक कुम्हार को रास्ते के किनारे एक हीरा मिल गया। बड़ा हीरा! चमकदार पत्थर समझ कर, कि सोच कर कि चलो उठा लो, और तो उसे कुछ उपयोग सूझा नहीं, अपने गधे के गले में लटका दिया। कुम्हार था, गधे ही से प्रेम था, गधे ही से दोस्ती थी, गधे ही को सजाने की इच्छा रहती थी, चलो अच्छा हुआ। लाखों का हीरा, गधे के गले में लटका दिया!
गधे पर लादकर बर्तन-भांडे बाजार की तरफ जा रहा था कि एक जौहरी की नजर पड़ी। उसने बहुत हीरे देखे थे मगर इतना बड़ा हीरा नहीं देखा था। और गधे के गले में लटका! और कुम्हार गधे को हांक रहा है, बर्तन-भांडे लादे हुए हैं! यह गधा तो सम्राटों से भी ज्यादा कीमती है। उस जौहरी ने कहा, रुक भाई! समझ गया कि इसको कुछ पता नहीं है कि यह क्या है। कहा, इस पत्थर का क्या लेगा? इस चमकदार पत्थर का क्या लेगा? कुम्हार ने बहुत सोचा, कहा--अच्छा, आठ आने दे दो! बड़ी हिम्मत करके आठ आने मांगे उसने। कौन देगा आठ आने पत्थर के? जौहरी भी रहा होगा महा कंजूस। उसने कहा, आठ आने! शर्म नहीं आती! इस पत्थर के आठ आने! दो आने ले लो! चल तीन आने ले ले! आखिरी, चार आने ले ले! फिर जौहरी ने सोचा, देगा ही यह! चार आने भी कौन इसको देने वाला है? जौहरी थोड़ा दो-चार-दस कदम आगे चला गया, यह सोच कर कि यह खुद ही अपने-आप पुकारेगा। लेकिन चूंकि नहीं पुकारा कुम्हार ने, तो जौहरी को लौटकर आना पड़ा, लेकिन तब तक चूक हो चुकी थी। एक दूसरे जौहरी की नजर पड़ गई और उसने एक रुपए में पत्थर खरीद लिया।
अब तुम सोच सकते हो, पहले जौहरी की छाती पर सांप लोट गए हों! छाती धक से
रह गई होगी! हाथ आई परम संपदा गंवा दी! लाटरी अपने-आप खुली जा रही थी, सिर्फ चार आने के पीछे गंवा दी! ईर्ष्या से जल-भुन गया दूसरे जौहरी को देख कर। कुम्हार से कहा, अरे नासमझ, अरे मूढ़, तुझे इतनी भी अकल नहीं है कि यह लाखों का हीरा और तूने एक रुपए में बेच दिया! उस कुम्हार ने कहा, मैं मूढ़ हूं सो जाहिर है। नहीं तो कुम्हार न होता। मगर तुम्हारी मूढ़ता का क्या कहें? तुमने यह हीरा लाखों का चार आने में छोड़ दिया! तुम तो जौहरी हो, तुम तो जानते थे, तुम तो पहचान गए थे! मेरे लिए तो पत्थर था। मेरे लिए तो आठ आने की जगह रुपया मिला तो दुगुने दाम मिले। लेकिन तुम अपनी तो सोचो! तुम्हें मैं आठ आने में दे रहा था; तुम आठ आने में लेने को राजी न हुए!
अभी तो लग सकता है कि विरह में हम जो दे रहे हैं, वह बड़ा कीमती है। क्योंकि हमें परख नहीं है। हम जौहरी नहीं हैं। जिन्होंने जाना है परमात्मा को, वे तो कहते हैंः हमारे पास देने को ही क्या है! जो है, उसका है, हमारा क्या है! त्वदीयं वस्तु, ... तेरी ही चीज है, तुभ्यमेव समर्पये, तुझको ही समर्पित कर रहे हैं। इसमें अपना लेना-देना क्या है? यह जीवन भी तो उसी का है। ये आंखें और ये आंसू और यह हृदय, ये सब तो उसी का है। उसका ही उसको लौटाते हैं। कैसी कृपणता पकड़ रही है!
नहीं, कैलाश, इस भाव को विदा करो! विरह अवस्था से नाचते हुए गुजरो, गीत गाते हुए गुजरो, उत्सव-मनाते हुए गुजरो। यह विरह अवस्था भी तो उसी की है। उसके लिए ही है। यह पीड़ा भी तो उसीकी ओर इशारा कर रही है। ये आंसू भी तो उसके ही चरणों में झर-झर झर रहे हैं। कंजूसी करोगे, कृपणता करोगे, बच जाना चाहते हो? मुफ्त पा लेना चाहते हो। कुछ न लगे। एक आंसू भी न झरे। तो फिर

तुम नहीं पा सकोगे। फिर असंभव है। फिर बात ही छोड़ दो। फिर धन कमाओ, राजनीति की सीढ़ियां चढ़ो, अपने घर में टांग लो दिल्ली दूर नहीं है तख्ती पर लिख कर, दिल्ली पहुंचने को लक्ष्य बनाओ!
और मजा यह है कि दिल्ली पहुंचने वाले लोग सब चढ़ा देने को राजी हैं, सब समर्पित कर देने को राजी हैं। धन के दीवाने क्या नहीं दांव पर लगा देते? सारा जीवन दांव पर लगा देते हैं। धन के दीवाने यह नहीं पूछते कि बिना दांव पर लगाए धन मिल सकेगा? आखिर सिकंदर ने सब दांव पर लगाया या नहीं? अपना पूरा जीवन गंवाया या नहीं? कौड़ी-कौड़ी लोग इकट्ठी करते हैं और कभी नहीं पूछते कि इन कौड़ियों में हम जो इकट्ठा कर रहे हैं, वह इकट्ठा करने योग्य है भी या नहीं? लेकिन विरह के संबंध में बहुत बार लोग पूछते हैं कि क्या परमात्मा को पाने के लिए रोना पड़ेगा?
मगर रोना भी सिर्फ उन्हीं को रोना मालूम होता है जिन्हें परमात्मा से
सच में कोई लगाव नहीं है। जिन्हें लगाव है, वे तो धन्यभागी समझते हैं। उसके मार्ग पर अगर आंसू भी बहे तो आंसू भी अमृत हैं। उसे पाने की तलाश में अगर कांटे भी मिले तो कांटे भी फूल हैं। उसे पाते-पाते अगर पत्थरों की भी वर्षा हो गई तो मोती-माणिक ही बरसे।
मिलन इतनी बड़ी घटना है कि हजार विरह सहे जा सकते हैं।

दूसरा प्रश्नः भगवान, मैं मृत्यु की तो बात और, मृत्यु शब्द से भी डरती हूं। मृत्यु से कैसे छुटकारा हो सकता है?

कुसुम रानी! मृत्यु से तो छुटकारा नहीं हो सकता। मरना तो पड़ेगा! मृत्यु तो जन्म के ही सिक्के का दूसरा पहलू है। जब जन्म ले लिया, जब सिक्के का एक पहलू ले लिया, तो अब दूसरे पहलू से कैसे बचा जा सकता है? मृत्यु तो जन्म में ही घट गई। सत्तर साल तो तुम्हें पता लगाने में लगेंगे, बस, घट तो चुकी ही है।
जिस दिन बच्चा पैदा होता है, उसी दिन रो लेना; मृत्यु तो आ गई। अब जीवन में और कुछ हो या न हो, एक बात पक्की हैः मृत्यु होगी। अदभुत है जीवन! इसमें मृत्यु के सिवाय और कुछ भी सुनिश्चित नहीं है। सब अनिश्चित है; हो या न हो; हो भी सकता है, न भी हो; मगर मृत्यु तो होगी ही। कितने ही भागो और कितने ही बचो, मृत्यु से न कोई बच सकता है और न कोई भाग सकता है।
और जितने डरोगे, उतने ही मरोगे।
मृत्यु तो एक बार आती है, मगर डरने वाले को रोज प्रतिपल खड़ी है, गला दबोचे। डरने वाला तो जी नहीं पाता, सिर्फ मरता ही मरता है। कहते हैं, वीर की मृत्यु तो एक बार होती है, कायर की हजार बार। ठीक कहते हैं। कहावत अर्थपूर्ण है।
तू कहती है, मैं मृत्यु की तो बात और, मृत्यु शब्द से भी डरती हूं। तेरा ही ऐसा नहीं है मामला, अधिक लोगों का मामला ऐसा है। मृत्यु शब्द से ही लोग डरते हैं। इसलिए मृत्यु शब्द को बचा कर बात करते हैं। कोई मर जाता है तो भी हम सीधा-सीधा नहीं कहते। कहते हैंः स्वर्गीय हो गए। ऐसा नहीं कहते कि मर गए। सभी स्वर्गीय हो जाते हैं। तो फिर नरक कौन जाता है? जिनको तुम भलीभांति जानते हो कि वे नारकीय ही हो सकते हैं--शायद नरक में भी जगह मिले कि न मिले; शायद नर्क के भी योग्य न समझे जाएं--उनको भी तुम कहते होः स्वर्गीय हो गए। स्वर्गीय मीठा शब्द है। मृत्यु के ऊपर शक्कर पोत दी। जहर की गोली को मीठा कर लिया।
अदभुत-अदभुत शब्द लोगों ने खोज निकाले हैं। परम यात्रा पर चले गए। मर
गए हैं, मगर लोग कहते हैंः परम यात्रा पर चले गए। मर गए हैं, लोग कहते हैंः प्रभु के प्यारे हो गए। प्रभु का कभी उन्होंने नाम न लिया, प्रभु को उन्होंने कभी प्रेम न किया, और अब मर गए हैं तो प्रभु के प्यारे हो गए! ये तरकीबें हैं मृत्यु शब्द से बचने की, कि कहीं उस शब्द का उपयोग न करना पड़े। उस शब्द को हम बचाते हैं। जैसे ही कोई मर जाता है, लोग आत्मा की अमरता की बातें करने लगते हैं। कि आत्मा अमर है। अरे, कहीं कोई मरता है! शरीर तो बस वस्त्र की भांति है। पुराने वस्त्र जीर्ण-शीर्ण हो जाते हैं, गिर जाते

हैं, नये वस्त्र मिल जाते हैं। और जो ये बातें कर रहे हैं, उनकी छाती धड़क रही है; वे घबड़ा गए हैं। क्योंकि हर किसी की मौत तुम्हारी मौत की खबर लाती है। किसी की भी मौत हो, तुम्हारी मौत की खबर मिलती है।
हम अच्छे-अच्छे शब्द बनाकर जो मर गया उसको धोखा नहीं दे रहे हैं--वह तो
मर ही गया--हम अपने को धोखा दे रहे हैं। हम अपने को समझा रहे हैं कि मृत्यु नहीं होती।
पश्चिम में तो इसके लिए पूरा धंधा चल पड़ा है। जब कोई मर जाता है, तो जितनी उसकी हैसियत हो, उसके घरवालों की हैसियत हो, उतना खर्च किया जाता है उसके मरने के बाद। उसके शरीर को सजाया जाता है। अगर स्त्री हो तो लिपिस्टिक, बाल, सुंदर-सुंदर कपड़े, बड़ा सुंदर ताबूत, बहुमूल्य ताबूत। कहते हैं, पश्चिम में कला इतनी विकसित हो गई है मुर्दों को सजाने की, उसके विशेषज्ञ हैं, जो हजारों रुपया फीस पाते हैं। लाश को सजाने की! फिर लाश सज गई, फूल चढ़ गए, फिर लोग देखने आते हैं। अंतिम बिदाई दे रहे हैं। तो उनके लिए धोखा दिया जा रहा है। मुर्दे के गाल पर लाली पोत दी गई है, लिपिस्टिक लगा दिया गया है, बाल ढंग से सजा दिए गए हैं--नहीं थे तो नकली बाल लगा दिए हैं, सुंदर कपड़े पहना दिए गए हैं, फूलमालाएं, ऐसा लगता है जैसे व्यक्ति मरा ही नहीं, जिंदा है। जैसे किसी बड़ी महायात्रा पर जा रहा है, महा-प्रस्थान के पथ पर।
ऐसी मैंने एक घटना सुनी है। एक आदमी मरा। उसको खूब सजाया-बजाया गया। बड़ा आदमी था, धनपति था। लोग देखने आए, अंतिम विदा होने आए। एक दंपति आया। पत्नी ने कहा, देखते हो? कितना सुंदर मालूम हो रहा है यह व्यक्ति! कितना शालीन, कितना शांत! कितना प्रसादपूर्ण! पति ने कहा, हो भी क्यों नहीं, अभी- अभी छह महीने स्विटजरलैंड होकर आया है!
छह महीने स्विटजरलैंड टी. वी. की चिकित्सा कराने गया था बेचारा! वहीं
मर गया। वहां से लाश लाई गई। पति ने कहा, हो भी क्यों नहीं, अभी-अभी छह महीने स्विटजरलैंड का मजा लेकर लौट रहा है। स्विटजरलैंड की हवा और स्विटजरलैंड की ताजगी और स्विटजरलैंड के पहाड़ और मौसम, हो भी क्यों न! मुर्दे को हम इस तरह छिपा सकते हैं कि जिंदा आदमी को ईर्ष्या होने लगे। यह पति इस तरह बोल रहा है जैसे गहरी ईर्ष्या से भर गया हो।
लेकिन मृत्यु में डरने योग्य है क्या? मृत्यु तुमसे छीन क्या लेगी? तुम्हारे पास है क्या जो छिन जाएगा? कुसुम रानी, कभी शांति से बैठ कर आंख बंद करके यह सोचना कि मृत्यु आएगी तो तुम्हारा छिन क्या जाएगा? तुम्हारे पास है भी क्या? श्वास नहीं चलेगी। तो चलने से भी क्या हो रहा है? भीतर गई, बाहर आई, नहीं आएगी, नहीं जाएगी, तो क्या हो रहा है? आने-जाने ही से क्या हुआ था? ये धुक-धुक, धुक-धुक जो हृदय चल रहा है, यह नहीं चलेगा। तो चलने ही से कौन सी बड़ी महिमा हो रही है? अभी चलने से तुम्हें कौन सा मजा आ रहा है? कौन सा आनंद बरस रहा है? इस जीवन में तुम्हारे है क्या जो तुम खोने से डरते हो? यह प्रश्न सोचने जैसा है और इसलिए सोचने जैसा है क्योंकि तुम डरते ही इसलिए हो कि तुम्हारे जीवन में कुछ नहीं है।
तुम्हें बड़ी बात बेबूझ लगेगी। विरोधाभासी लगेगी। लेकिन ठीक से समझने
की कोशिश करना।
तुम्हारे जीवन में कुछ नहीं है, इसलिए मृत्यु का डर लगता है। क्यों? क्योंकि अभी कुछ भी तो नहीं मिला और मौत कहीं आकर बीच में ही समाप्त न कर दे! अभी हाथ तो खाली के खाली हैं। अभी प्राण तो रिक्त के रिक्त हैं। और कहीं ऐसा न हो कि परदा बीच में ही गिर जाए! अभी नाटक पूर्णाहुति पर नहीं पहुंचा। अभी कुछ भी तो जाना नहीं, कुछ भी तो जीया नहीं। अभी ऐसी कोई भी तो तृप्ती नहीं है। कोई तो ऐसा संतोष नहीं मिला कि कह सकें कि जिंदा थे। जीवन की अभी कोई सौगात नहीं मिली। और मौत कहीं आकर एकदम से पटाक्षेप न कर दे! नहीं तो खाली रहे और खाली गए।
मैं यह कहना चाहता हूं कि मौत से कोई नहीं डरता, तुम्हारी जिंदगी खाली है, इसलिए मौत का डर लगता है। भरे हुए आदमी को मौत का डर नहीं लगता। बुद्ध मृत्यु से नहीं डरते। जीसस मृत्यु से नहीं डरते। मोहम्मद मृत्यु से नहीं डरते। मृत्यु का सवाल ही नहीं है। जीवन इतना भरा-पूरा है, इतना अहोभाव से

भरा है, इतनी धन्यता से, इतना भरपूर है कि अब मौत आए तो आ जाए! कल आती हो तो आज आ जाए! आज आती हो तो अभी आ जाए! इतनी परितुष्टि है कि जो पाने योग्य था पा लिया गया, अब मौत क्या बिगाड़ेगी? जो जानने योग्य था जान लिया गया, अब मौत क्या छीन लेगी?
और जानने योग्य क्या है? स्वयं की सत्ता जानने योग्य है। स्वयं की चैतन्य अवस्था पहचानने योग्य है। आत्मा का धन पाने योग्य है। क्योंकि उसी धन को पाकर परमात्मा मिलता है। जिसने अपने को पहचाना, उसने परमात्मा को पहचाना।
कुसुम रानी, मृत्यु के साथ नाहक भय के संबंध न जोड़ो। जीवन से प्रेम के संबंध जोड़ो, मृत्यु के साथ भय के संबंध मत जोड़ो। जीवन को जीओ उसकी अखंडता में, उसकी समग्रता में और उसी जीने में, उसी जीने के उल्लास में मृत्यु तिरोहित हो जाती है। शरीर तो मरेगा ही मरेगा, शरीर तो मरा ही हुआ है; जो मरा ही हुआ है, वह मरेगा। लेकिन तुम्हारे भीतर जो चैतन्य है, वह तो कभी जन्मा नहीं, इसलिए मरेगा भी नहीं। उससे पहचान करो। यह मत पूछो कि मृत्यु से कैसे छुटकारा हो सकता है? तुम्हारे भीतर जो असली तत्व है, वह तो मृत्यु के पार है ही, छुटकारे की जरूरत नहीं है। और जो मृत्यु के घेरे में है, तुम्हारी देह, उसका छुटकारा हो सकता नहीं।
तुम्हारे भीतर दो हैं।
उपनिषद कहते हैंः जैसे एक वृक्ष पर दो पक्षी बैठे हैं। एक ऊंची शाखा
पर बैठा है--सिर्फ बैठा है, देख रहा है, बस देख रहा है। न हिलता, न डोलता, जैसे पत्थर की मूर्ति, बस देख रहा है। और एक नीचे की शाखाओं पर फुदक रहा है। इस शाखा से उस शाखा पर। इस फल में चोंच मारता है, उस फल में चोंच मारता है।
यह सुंदर प्रतीक है। यह तुम्हारे संबंध में कहानी है। ये दो पक्षी तुम्हारे भीतर बैठे हैं। एक ऊपर की शाखा पर, द्रष्टा, साक्षी; और एक नीचे की शाखा पर, भोगी। इधर चोंच मारता, उधर चोंच मारता। यह भोगी तो मरेगा। यह नीचे की शाखा का पक्षी तो आज नहीं कल गिरेगा। मगर वह जो ऊपर की शाखा पर बैठा है, वह शाश्वत है। तुम्हारे भीतर एक साक्षी है--सबका द्रष्टा--जो तुम्हारी देह को भी देखता है, तुम्हारे मन को भी देखता है; वह देखने वाला कभी दृश्य नहीं बनता। दृश्य मरेगा, द्रष्टा अमृत है। दृश्य को बचाया नहीं जा सकता। बना है, मिटेगा। पानी का बबूला है, अभी गया, अभी गया; अभी है, अभी नहीं है; लेकिन इस पानी के बबूलों को देखने वाला एक तुम्हारे भीतर मौजूद है। ऊपर की शाखा पर बैठा हुआ पक्षी, साक्षीमात्र। उसे ही ध्यान कहो, उसे भजन कहो--जो तुम्हारी मर्जी हो वह नाम दे दो! भक्त उसे भजन कहता है, भगवान की स्मृति कहता है; ज्ञानी-ध्यानी उसे साक्षी कहता है। लेकिन अर्थ एक ही है। जिस दिन तुम्हारी उससे पहचान हो जाएगी, उसी दिन फिर कोई मृत्यु नहीं है।
आज दीवाली की वेला, घर-घर दीपों की साल गिरह है,
पर तुम तो अपने महलों में, चिर-अंधियार किए बैठी हो।

ऐसी ढेर उदासी जैसे हंसी न जीवन भर आई हो,
इतनी बुझी बुझी सी सांसें, जैसे कभी न गरमाई हो,
बनवासी सा वेश बनाए ओढ़े धूल पड़ा दर्पण है,
बिखरा-बिखरा सा सिंगार है, उतरा-उतरा सा यौवन है,

आज किसी रसिया के हाथों काजल अंजवाने की रितु है, पर तुम तो अपने नयनों में मेघ-मल्हार लिए बैठी हो।

आज बहुत गुमगुम हो, शायद कल तक तो यह बात नहीं थी, इतनी अंधी इतनी सूनी, यह पूनम की रात नहीं थी,
शोक सभा सी बोलो आखिर कौन खिलौना टूट गया है,
इन दीपों की हरियाई को कौन बवंडर लूट गया है।

बगिया में मधुमास खिला है, कली-कली पर तरुणाई है,
पर तुम तो जैसे कांटों को घाव उधार दिए बैठी हो।

तन की मजबूरी तो मन के समझाने से हट जाएगी,
कुछ आंसू में, कुछ आहों में सारी पीड़ा बंट जाएगी, सपनों को हल्दी चढ़वा लो, फिर सायत जाने कब आए,
मौसम का कुछ ठीक नहीं है, किस क्षण क्या से क्या हो जाए,

घर-घर वंदनवार टंगे हैं, गीतों के सावन की संध्या--
पर तुम तो अपने होठों पर सौ अंगार लिए बैठी हो।

अब तो शव उठने दो आंगन से, दिन कब का डूब चुका है,
कब तक आंसू से खेलोगी, दर्द गले तक आ पहुंचा है,
दो दिन का रोना-धोना है, फिर यह चोट उमर ले लगी,
घाव न सबके आगे खोलो, दुनिया सौ-सौ नाम धरेगी,

लौट चुका है हर संसारी तट पर अपनी प्यास सिला कर
पर तुम तो अब भी लहरों से कौल-करार किए बैठी हो।

यहां कौन रुक सकता है? इस तट पर कोई नहीं रुक सकता।
लौट चुका है हर संसारी तट पर अपनी प्यास सिलाकर
और यहां प्यास भी नहीं बुझती, ओंठ ही सी लेने पड़ते हैं।
कोई यहां रुक सकता नहीं। जाना ही पड़ेगा उस तट पर। लेकिन कुछ तुम्हारे भीतर है जो अभी भी उस तट पर है। देह इस तट पर, तुम उस तट पर। जिन ने जाना, उन्होंने ऐसा जाना है। एक तो यहां है, तुम्हारी देह, तुम्हारा दृश्य रूप; और एक वहां है, तुम्हारा अदेही, तुम्हारा अदृश्य रूप। तुम दो में से किसी के भी साथ तादात्म्य कर सकते हो। अगर तुमने देह के साथ तादात्म्य किया, तो मृत्यु का भय सताएगा। मृत्यु शब्द भी घबड़ाएगा। मृत्यु शब्द से भी मृत्यु की याद आती है न! शब्द-शब्द ही तो नहीं रह जाते, हमारे भीतर भावों को उमगाते हैं। जैसे अचानक कोई यहां आ जाए और चिल्लाने लगेः आग, आग... तो तुममें से बहुत से उठ कर खड़े हो जाएंगे, भागने की तैयारी करने लगेंगे। किसी सिनेमा- गृह में जब अंधेरा हो गया हो और फिल्म चल पड़ी हो, कोई चिल्ला देः आग, आग... बस, भगदड़ मच जाएगी। फिर कोई लाख समझाए कि नहीं, मगर कोई भीतर नहीं रुकना चाहेगा। अनेकों को तो धुआं दिखाई पड़ने लगेगा, अनेकों को आग की लपटें दिखाई पड़ने लगेंगी। भगदड़ मच जाएगी। शायद भगदड़ में ही हो सकता है दो-चार के हाथ-पैर टूट जाएं, या कोई दबकर मर जाए। न आग है न कुछ है; सिर्फ शब्द! लेकिन शब्द भी तो हमारे भीतर अर्थ ले लेते हैं।
मृत्यु शब्द भी घबड़ाता है। हम उसे बातचीत के बाहर रखते हैं।
बर्ट्रेंड रसल ने लिखा है, कि मैं एक महिला को जानता था जो बड़ी आध्यात्मिक थी। उसके पति की मृत्यु हो गई तो बर्ट्रेंड रसल शोक-संवेदना प्रकट करने गया। बर्ट्रेंड रसल तो आत्मा इत्यादि में मानता नहीं था, नास्तिक था, लेकिन वह महिला तो आध्यात्मिक थी। तो उसने बातचीत में बातचीत छेड़ी और कहा कि आपका तो पक्का भरोसा होगा, आपके पति भी आध्यात्मिक थे, आप भी आध्यात्मिक हैं, आपका तो पक्का भरोसा होगा कि आपके पति स्वर्ग पहुंच गए हैं। उस महिला ने दुख और क्रोध से बर्ट्रेंड रसल की तरफ देखा और कहा, हां, निश्चय स्वर्ग पहुंच गए हैं। लेकिन इस तरह की बेचैन करने वाली बातें आप न छेड़ें तो अच्छा! स्वर्ग पहुंचने की बात और बेचैन करने वाली बात! अगर पति स्वर्ग पहुंच गए हैं तो इससे खुशी की और क्या बात हो सकती है? स्वर्ग से और बड़ा क्या आनंद है? एक तरफ तो कह रही है कि हां, निश्चय, पति मेरे स्वर्ग गए। और तत्क्षण दूसरी तरफ कह रही है कि ऐसी बेचैन करने वाली बातें छेड़ना शोभा नहीं देता।
मौत की खबर ही छाती को दहलाती है। तथाकथित अध्यात्मवादी भी मौत से डरे होते हैं।

इस देश में तो बहुत अध्यात्मवाद है! लेकिन जितने लोग इस देश में मौत
से डरते हैं, शायद दुनिया में किसी देश में नहीं डरते। ये बड़ी विचारणीय बात है। नहीं तो एक हजार साल तक कोई तुम्हें गुलाम रख सकता था! अगर तुम मौत से न डरते होते!
कोई सचाइयां कहता नहीं तुमसे, कि तुम क्यों एक हजार साल गुलाम रहे! तुम्हारे थोथे अध्यात्म के कारण तुम एक हजार साल गुलाम रहे। तुम्हारे अध्यात्म में सचाई होती तो तुम्हें कौन गुलाम कर सकता था? तुम मरने को राजी हो जाते मगर गुलाम होने को राजी न होते। और करोड़ों के इस देश की कौन हत्या कर सकता था? जो आए थे, थोड़ी-बहुत संख्या लेकर आए थे। छोटी-मोटी सेनाएं थीं। फिर चाहे मुगल हों, चाहे तुर्क हों, चाहे हूण हों, चाहे यूनानी हों, छोटी-छोटी फौजें लेकर आए थे। उनका पूरा देश भी आ जाता तो भी यह देश इतना बड़ा है कि अगर वे लोग मारने में लगते, तो उनकी जिंदगी काटते-काटते कट जाती। तो भी इस देश को नहीं काट सकते थे। लेकिन इस विराट देश को गुलाम बनाने में किसी को भी क्षण भर की देरी न लगी।
कारण?
और फिर सदियों तक यह देश गुलाम बना रहा! कारण एक हैः तुम्हारा अध्यात्म झूठा है। तुम्हारा अध्यात्म सिर्फ मौत के डर के कारण है। तुम मानते हो कि आत्मा अमर है क्योंकि तुम डरते हो मौत से, इसलिए मानते हो। यह तुम्हारी प्रतीति नहीं, यह तुम्हारा साक्षात्कार नहीं, यह तुम्हारा अनुभव नहीं, यह केवल शास्त्रीय ज्ञान है--उधार, बासा, दो कौड़ी का। इसका कोई मूल्य नहीं है। साक्षी को अनुभव करो। फिर तुम्हारे लिए कोई मृत्यु नहीं है।
तो या तो तादात्म्य हो जाएगा देह से, फिर मृत्यु है और फिर मृत्यु का
डर भी लगेगा। और या तादात्म्य करो आत्मा से, जो कि तुम्हारी सच्ची नियति है, तुम्हारा स्वभाव है; फिर कोई भय नहीं है। फिर देह कट जाए, जल जाए, तो भी तुम जानते रहोगेः तुम्हें अग्नि जला नहीं सकती। नैनं दहति पावकः। शस्त्र छेद डालें तुम्हारी देह को, लेकिन तुम जानते रहोगेः नैनं छिंदन्ति शस्त्राणि। मुझे शस्त्र नहीं छेद सकते। और यह तुम गीता के शब्द दोहरा नहीं रहे होओगे। अगर गीता के शब्द दोहरा रहे हो, तो बेकार। यह तुम्हारा अनुभव होना चाहिए! और यह तुम्हारा अनुभव हो सकता है।
मुझसे यह मत पूछो, कुसुम रानी, कि मृत्यु से कैसे छुटकारा हो सकता है? छुटकारे में तो भय का भाव बैठा ही हुआ है। हां, मृत्यु से जागा जा सकता है। देह से तादात्म्य टूट जाए, यह मृत्यु से जाग जाना है। फिर कोई मृत्यु नहीं। फिर मृत्यु सबसे बड़ा झूठ है।
इस दुनिया में दो सबसे बड़े झूठ हैं। और वे दो नहीं हैं, एक ही सिक्के
के दो पहलू हैं। एक का नाम अहंकार है, दूसरे का नाम मृत्यु है। अहंकार है जब तक, तब तक मृत्यु है। जिस दिन अहंकार नहीं, उस दिन मृत्यु नहीं। अहंकार से जो मुक्त है, वह मृत्यु से भी मुक्त है।
क्योंकि अहंकार हमारा बनाया हुआ है, मिटेगा। देह संयोग है, बिखरेगा। लेकिन कुछ हमारे भीतर ऐसा है जो हमारा बनाया हुआ नहीं है, जिस पर परमात्मा की छाप है, जिस पर उसकी सील है, उसके हस्ताक्षर हैं; कुछ है हमारे भीतर जो पारलौकिक है, जो दूर-दिगंत से आता है, जो इस पृथ्वी का नहीं है, जो देह में जीता जरूर है लेकिन सिर्फ मेहमान है, अतिथि है; उस अतिथि को पहचान लो, फिर कोई मृत्यु नहीं है।

तीसरा प्रश्नः भगवान, आप इतने प्रेम से समझाते हैं, पर मुझ अज्ञानी के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ता। वैसे वेद, पुराण, गीता इत्यादि सब मेरी समझ में आ जाते हैं। फिर आप क्यों समझ में नहीं आते?

स्वरूपानंद! पहली तो बात, अज्ञानी तुम नहीं हो। वेद, पुराण, गीता इत्यादि सब तुम पढ़ चुके हो। तुम और अज्ञानी! विनम्रतावश कह रहे हो कि तुम अज्ञानी हो!
हम विनम्रतावश बहुत सी बातें कहते हैं। उनको सच्चा मत मान लेना।

लोग आकर कहते हैं कि हम आपके चरणों की धूल। सच्चा मत मान लेना। नहीं
तो वे तुम्हें कभी क्षमा नहीं करेंगे। कोई तुमसे कहे कि मैं आपके चरणों की धूल, ऐसा मत कहना उससे कि बिल्कुल ठीक कह रहे हो, मुझे पहले से ही मालूम कि आप चरणों की धूल हैं। आप बिल्कुल सत्य कह रहे हैं। सत्य वचन, महाराज! ऐसा मत कहना, नहीं तो वह आदमी जिंदगी भर क्षमा नहीं करेगा। वह जिंदगी भर कोशिश करेगा कि तुमको दिखला दे कि तुम पैरों की धूल हो। लोग कहते हैं, मैं तो कुछ भी नहीं हूं, आपके समाने मैं क्या, लेकिन उनका भाव कुछ और है। वे यह कह रहे हैंः प्रशंसा करो मेरी विनम्रता की, सम्मान करो मेरे निर-अहंकार भाव का! देखो क्या कह रहा हूं कि मैं तो कुछ भी नहीं!
एक चौराहे पर तीन ईसाई फकीर मिले। तीन अलग-अलग ईसाई संप्रदायों के अनुयायी थे वे। एक था केथोलिक। उसने कहा कि जहां तक ज्ञान का संबंध है, हमारे आश्रमवासियों का कोई मुकाबला नहीं। हमारे आश्रम की सारी साधना ही ज्ञान-साधना है। जैसे शास्त्रज्ञ हमारे आश्रम ने पैदा किए हैं और किसी आश्रम ने पैदा नहीं किए। इस बात को तो स्वीकार दुश्मनों को भी करना पड़ेगा। दूसरा था, प्रोटेस्टेंट। उसने कहा, यह बात ठीक है। शास्त्रों में हमारी बहुत गति नहीं; हमारी बहुत रुचि भी नहीं। शास्त्रों में धरा क्या है? हमारा जोर तो त्याग पर है। त्याग ही असली धर्म है। और जहां तक त्याग-तपश्चर्या, व्रत-उपवास का संबंध है, हमारा कोई मुकाबला नहीं। तीसरा, ईसाइयों का एक संप्रदाय है ट्रेपिस्ट, वह तीसरा मुस्कुराया और उसने कहा, हमारे पास तो न ज्ञान है, न त्याग है, लेकिन विनम्रता में हम से ऊपर कोई भी नहीं। विनम्रता में हमसे ऊपर कोई भी नहीं। विनम्रता में हमारा कोई मुकाबला नहीं।
विनम्रता में हमसे कोई ऊपर नहीं, ऐसी बात! तो तो फिर विनम्रता भी अहंकार की ही घोषणा हो गई। फिर तो विनम्रता भी अहंकार का ही आभूषण हो गई। फिर तो विनम्रता अहंकार का नया बचाव हो गई, नया छिपाव हो गई। और सबसे सुंदर छिपाव। दिखाई ही नहीं पड़ेगा, अहंकार ऐसा छिपा; अब तुम इसे पकड़ ही नहीं पाओगे, ऐसा सूक्ष्म हो गया।
स्वरूपानंद, ऐसा तो कहो ही मत कि मैं अज्ञानी हूं। अज्ञानी होना आसान मामला नहीं है। अज्ञानी होना बड़ी साधना है। उनको मैं अज्ञानी नहीं कहता जिन्होंने गीता, वेद, कुरान नहीं पढ़े हैं। वे अपढ़ हैं। और उनको मैं ज्ञानी नहीं कहता, जिन्होंने वेद, कुरान, बाइबिल पढ़े हैं। वे पठित हैं। अज्ञानी तो मैं कहता हूं सुकरात जैसे व्यक्ति को, जिसने अपने मरने के पहले कहा कि मैं सिर्फ एक ही बात जानता हूं कि मैं कुछ भी नहीं जानता। यह है अज्ञानी। मगर ऐसा अज्ञान ही तो ज्ञान का पहला चरण है। जो यह कह सके कि मैं कुछ भी नहीं जानता हूं और कह ही न सके, ऐसी उसकी प्रतीति हो; यह भी अहंकार का दावा न हो, यह अहंकार का विसर्जन हो, तो फिर ज्ञान अपने आप बरस जाता है।
अज्ञान ज्ञान से मुक्त होने से मिलता है। अज्ञान ज्ञान से ऊपर की अवस्था है। उपनिषद ठीक कहते हैं, उपनिषदों में एक बहुत अदभुत वचन है, जैसा दुनिया के किसी भी शास्त्र में कहीं भी नहीं है। उपनिषदों में एक वचन है कि अज्ञानी तो भटकते ही हैं, लेकिन ज्ञानी और महा अंधकार में भटक जाते हैं। अज्ञानी भटकते हैं, यह तो समझ में आने वाली बात है। ये सभी साधु, संत, पंडित, पुरोहित करते हैंः ज्ञानी भटकते हैं, लेकिन उपनिषद कहता है कि ज्ञानी तो और महा अंधकार में भटक जाते हैं। कौन ज्ञानियों की बात हो रही है? पांडित्य; थोथा, उधार, बासा।
तुम पढ़ लेते होओगे वेद, पुराण और गीता और समझ भी लेते होओगे, लेकिन जब तुम वेद पढ़ते हो तो तुम वेद के ऋषियों को समझ सकते हो? वेद के ऋषियों को समझने के लिए वेद के ऋषियों की चेतना चाहिए, उनके साक्षी का अनुभव चाहिए। उनकी ऋचाएं समझने के लिए ऋषि हुए बिना और कोई उपाय नहीं। क्या समझोगे तुम वेद को? स्वरूपानंद, तुम वही समझ लोगे जो तुम समझ सकते हो। ऋषियों ने क्या कहा है, उसकी तो तुम्हें झलक भी न मिलेगी, तुम अपने ही अर्थ निकाल लोगे। और कुछ संभव भी नहीं है। तुम सोचते हो दस लोग वेद को पढ़ेंगे तो एक ही अर्थ निकालेंगे? दस अर्थ निकालेंगे। गीता पर एक हजार टीकाएं हैं। या तो कृष्ण का मस्तिष्क खराब था कि एक हजार अर्थ! और या फिर कृष्ण का तो एक ही अर्थ रहा

था, लेकिन निकालने वालों ने हजार निकाल लिए। शब्द तो अवश है। तुम उसे उलटा करो, सीधा करो, धक्का मारो इधर से, उधर से, खींच-तान करो, तुम जो भी अर्थ निकालना चाहो निकाल लो।
एक मनोवैज्ञानिक ने छोटे बच्चों को शिक्षा देने के लिए एक स्कूल खोला। उसका विचार था कि बच्चों को उनकी गलती पर दंड नहीं मिलना चाहिए; इससे उनकी प्रतिभा नष्ट होती है। उसने अखबारों में विज्ञापन निकलवाया कि शिक्षक पद हेतु ऐसे सज्जन की आवश्यकता है जो शांतिप्रिय, वात्सल्यपूर्ण और क्षमावान हों। इंटरव्यू के लिए जो पहला उम्मीदवार आया, वह था मुल्ला नसरुद्दीन--लाल लंगोट लगाए, मूंछों पर ताव देता हुआ।
मनोवैज्ञानिक ने उसके पहलवानी रंग-ढंग देखकर कहाः महाशय जी, क्या आपने विज्ञापन को ठीक से पढ़ा था?
मुल्ला क्रोधपूर्ण नजरों से उसे घूरते हुआ बोलाः हां, पढ़ा था; तभी तो यहां आया हूं। वरना मुझे यह पता भी न था कि तुम्हारे जैसे गीदड़ भी शहर के इस कोने में रहते हैं।
मनोवैज्ञानिक तो घबड़ा गया। डरते हुए उसने पूछाः माफ करिए, भाई साहब! मैंने शांतिप्रिय, वात्सल्यपूर्ण और क्षमावान सज्जन को इंटरव्यू के लिए बुलाया था; क्या आपके पास कोई प्रमाण है कि आप में ये गुण हैं?
एक नहीं, सैकड़ों प्रमाण हैं--नसरुद्दीन ने ताल ठोंककर जवाब दिया--मेरी पड़ोसिन का नाम शांति है, और मुझे वह प्रिय लगती है, अतः मैं शांतिप्रिय हूं। पिछले बीस वर्षों में मैंने खुद की बीबी से बारह और अन्य औरतों से करीब डेढ़ सौ बच्चे पैदा किए हैं, अतः आप सोच ही सकते हैं कि कैसा अति मानवीय वात्सल्य भाव मुझमें है! विगत तीस सालों में लगभग तीन सौ जगह नौकरी कर चुका हूं; हमेशा अधिकारियों से दंगा-फसाद और मार-पीट हुई। अंततः वे बोले, भाई साहब, हमें क्षमा करो, कहीं और जाकर काम करो। और हर बार मैंने उन्हें क्षमा कर दिया। अर्थात मैं क्षमावान सिद्ध हुआ। और रही सज्जन होने की बात। तो सुन बे, मरियल चूहे, यदि मैं सज्जन न होता, तो प्रमाण पूछने के दुस्साहस पर अब तक तेरी टांगें न तोड़ देता!
अर्थ तुम क्या लगाओगे? अर्थ तुम कैसे लगाओगे? अर्थ तो तुम्हारे होंगे। वेद तो जरूर पढ़ोगे, मगर वेद के बहाने अपने को ही पढ़ोगे। किताबों तो दर्पण हैं, तुम्हारे चेहरे तुम्हें दिखा देंगी।
मैंने सुना कि मुल्ला नसरुद्दीन को रास्ते पर चलते हुए एक आइना मिल गया। उसे आइना पहली दफा मिला। उसने आइना नहीं देखा था। उठा कर आइना देखा। अरे, उसने कहा, बड़े मियां, यह तो मेरे पिताजी की तसवीर है! यह तो मैंने कभी सोचा ही नहीं था कि पिताजी ऐसे शौकीन थे कि तस्वीर भी उतरवाएं। अच्छा हुआ मिल गई, घर में कोई तस्वीर भी नहीं पिताजी की, पिताजी तो चल बसे, सम्हाल कर रख लूंगा। सम्हाल कर ले आया, सोचा पत्नी को बताना ठीक नहीं। क्योंकि पत्नी को मेरे पिताजी से बहुत चिढ़ थी। फेंक-फांक देगी, आग लगा देगी। तस्वीर को बरदाश्त न कर सकेगी। जब पिताजी मरे, उनकी मौत हुई, तो उसने लड्डू बांटे थे मोहल्ले में। सो छिपा कर वह ऊपर गया, एक पिटारी में उसने आइने को छिपाने की कोशिश की--लेकिन पत्नियों से कोई पति कभी कुछ छिपा पाया है? अब तक तो यह नहीं हुआ; सदियां बीत गई, मगर कोई पति पत्नी से कुछ नहीं छिपा पाया। हर पति छिपाने की कोशिश करता है, हर पति पकड़ा जाता है। वह जितनी कोशिश करता है, उसी में पकड़ा जाता है। कोशिश में ही दिखाई पड़ जाता है कुछ छिपा रहे हो। मुल्ला नसरुद्दीन का चोरी-चोरी घर में घुसना, दबे पांव भीतर आना, पत्नी समझ गई कि कुछ मामला है! बची आंख देखती रही। मुल्ला जब खाना खा-पीकर सो गया तो ऊपर गई, खोली पिटारी, निकाला आइना, देखा और बोली--अच्छा, तो इस चुड़ैल के पीछे पड़ा है!
आइना तो उसी चेहरे को बता देगा जो उसमें झांकेगा। मुल्ला समझा पिताजी
की तस्वीर, पत्नी समझी कि इस चुड़ैल के पीछे पड़ा है!
तुम वेद पढ़ोगे, स्वरूपानंद, तुम अपने को ही पढ़ोगे। तुम गीता पढ़ोगे, अपने को ही पढ़ोगे। तुम होश में कहां हो? तुम अभी बेहोश हो। तुम्हारी बेहोशी ही वहां झलकेगी। इसलिए कुरान-पुराण पढ़ना आसान है। क्योंकि कुरान रोक नहीं सकती, पुराण रोक नहीं सकता कि ठहरो स्वरूपानंद, तुम गलत पढ़ रहे

हो; यह प्रयोजन नहीं है, यह अर्थ नहीं है। लेकिन जब तुम मेरे जैसे व्यक्ति के पास आओगे तो तुम मेरा वही अर्थ नहीं कर सकते जो तुम करना चाहोगे। मैं तुम्हें झकझोरूंगा। मैं तुम्हें बार-बार हिलाऊंगा। मैं तुम्हें रोज-रोज चोट करूंगा। मैं रोज-रोज तुम्हें समझाऊंगा कि यह नहीं मेरा अर्थ। जब तक तुम मेरा अर्थ नहीं समझ लोगे, तब तक मैं तुम्हें चैन से न जीने दूंगा।
एक शास्त्रीय संगीतज्ञ बड़ी धुन में गा रहे थे! और जैसे ही उनका गीत पूरा हो कि जनता में से आवाज आएः फिर से, फिर से! बड़े खुश हो रहे थे। फिर दुबारा गाएं। लेकिन जैसे ही गीत पूरा हो कि फिर जनता चिल्लाएः फिर से, फिर से! दुबारा भी गा दिया, तीसरी बार भी यही हुआ, जब चौथी बार जनता फिर चिल्लाने लगीः फिर से, फिर से, तो उन्होंने कहा, भाई, आगे का गीत गाने दोगे कि नहीं? तो एक आदमी जनता में से खड़ा हुआ, उसने कहा कि जब तक पहला ठीक से न गाओगे तब तक हम फिर से फिर से कहते ही रहेंगे।
किताब तो यह नहीं कर सकती! लेकिन जब तक मेरी बात तुम्हारी समझ में नहीं आएगी, मैं फिर से, मैं फिर से; लगा ही रहूंगा। मैं तुम्हें चैन से न जीने दूंगा, न चैन से बैठने दूंगा, न चैन से उठने दूंगा। मैं तुम्हारा पीछा करूंगा। दिन और रात। जब तक बात ठीक से समझ में न आ जाएगी, जब तक तुम ठीक से गाना न गाओगे। जरा भी भूल-चूक होती रही तो मेरी चोट जारी रहेगी। इसलिए तुम्हें अड़चन होती है।
तुम कहते, आप इतने प्रेम से समझाते हैं, पर मुझ अज्ञानी के पल्ले कुछ
भी नहीं पड़ता। घबड़ाओ मत। मैं तुम्हारा पल्ला जोर से पकड़े हूं, छोडूंगा नहीं! जब तक समझ में न आ जाए तब तक मैं हारने वाला नहीं हूं। तुम कहते हो, वैसे वेद, पुराण, गीता इत्यादि सब मेरी समझ में आ जाते हैं। उन्हें समझना आसान है। क्योंकि वे तुम्हारा किसी तरह का विरोध नहीं कर सकते। तुम जो भी उन पर थोप दोगे, वही ठीक है। तुम अपनी बेहोशी उन पर थोपोगे। और तुम खूब बेहोश हो! तुम्हारे पास ध्यान नहीं है तो होश कहां?
मेरे पति इतने भुलक्कड़ हैं कि कल शाम को खिचड़ी खाते समय बोले, गुलजान!
कब से खिचड़ी नहीं बनाई, एकाध दिन खिचड़ी बनाओ न! --मुल्ला नसरुद्दीन की बीबी ने अपनी पड़ोसिन को बताया।
यह तो कुछ भी नहीं, पड़ोसिन बोली, मेरे दार्शनिक पति प्रोफेसर भोंदूमल
तो और भी गजब ढाते हैं! कल रात की ही बात कहूं। वे करीब ग्यारह बजे पुस्तकालय से वापस आए। मेरी नींद लग चुकी थी। उन्होंने आकर छाते को मेरे बाजू में पलंग पर लिटा दिया और खुद कमरे के कोने में जाकर टिक कर खड़े हो गए। अब बोलो, इससे ज्यादा भुलक्कड़ और बेहोश आदमी कौन होगा? वह तो अच्छा हुआ, मेरी नींद करीब एक बजे खुल गई; और तब मैंने उन्हें बिस्तर पर लाकर सुलाया, वरना वे सारी रात खड़े रहते! अजीब बेहोश इंसान हैं! ऐसे मदहोशों से तो खुदा बचाए! गुलजान ने पूछा, बहन, यह तो कहो, तुम्हारी नींद कैसे खुल गई? मैंने तो सुना है कि तुम्हें खूब गहरी नींद आती है।
हां, गहरी नींद तो जरूर आती है, पड़ोसिन बोली, मगर कितनी भी गहरी नींद हो, दो घंटे में समझ में आ ही जाता है कि जिसके साथ इतनी देर से प्रेम-क्रीड़ा चल रही है, वह प्रोफेसर भोंदूमल नहीं, भोंदूमल का छाता है।
सब तरफ बेहोशी है। भोंदूमल ही बेहोश नहीं हैं, श्रीमती भोंदूमल उनसे
भी ज्यादा बेहोश हैं। दो घंटे लग गए यह समझ में आने में कि छाते से प्रेम-क्रीड़ा चल रही है! तो भोंदूमल ने ही ऐसा कौन सा कुसूर किया जो कोने में खड़े रहो!
और यह कहानी एकदम कहानी नहीं है।
पश्चिम का बहुत बड़ा विचारक इमैनुअल कांट नियमित रूप से ऐसा कर पाता था। नियमित रूप से। कहानी नहीं, वस्तुतः। उसके नौकर ने उसे कई बार पकड़ा-- छाता बिस्तर पर लेटा है, वह कोने में खड़ा है... विवाह तो उसने कभी किया नहीं, नौकर ही सब कुछ था। नौकर को बहुत जांच-पड़ताल रखनी पड़ती थी। क्योंकि इस आदमी का क्या भरोसा? भुलक्कड़पन की भी एक सीमा होती है।
पश्चिम का एक दूसरा बहुत बड़ा वैज्ञानिक एडीसन तो एक बार अपना खुद का नाम भूल गया। जरा मुश्किल मामला है खुद का नाम भूलना! दूसरों का नाम तो लोभ

भूल जाते हैं, भूले सुने जाते हैं, मगर कभी तुमने ऐसा आदमी देखा जो अपना नाम भूल गया हो! एडीसन भूल गया।
पहले महायुद्ध में क्यू में खड़ा था। अनाज खरीदने गया था। जब उसके आगे
का आदमी भी हट गया और उसका नंबर आया और अनाज देने वाले ने आवाज लगाई कि थामस अल्वा एडीसन कौन है? तो उसने अपने आस-पास देखा कि थामस अल्वा एडीसन कौन है? खड़ा रहा अपनी जगह। जब कोई थामस अल्वा एडीसन नहीं बोला, तो उस आदमी ने फिर आवाज दी कि भाई, ये एडीसन कौन है? कतार में एक दसवें नंबर पर खड़े आदमी ने कहा कि जहां तक मैं समझता हूं, अखबारों में मैंने फोटो देखा है, जो सज्जन नंबर एक खड़े हैं, ये थामस अल्वा एडीसन हैं।... बड़ा प्रसिद्ध वैज्ञानिक था। एक हजार आविष्कार किए। इतने आविष्कार किसी ने नहीं किए।... तब एडीसन को याद आया, कहा कि भाई, धन्यवाद! खूब याद दिलाई! नहीं तो आज यहां हम खड़े ही खड़े रहते। और घर पत्नी राह देख रही होगी।
अपना नाम भी लोग भूल सकते हैं। सच तो यह है, किसको अपना नाम मालूम है?
जो नाम तुमने समझा है तुम्हारा है, तुम्हारा नहीं। वह तो दिया हुआ नाम है। लेबिल लगा दिया मां-बाप ने। कोई दूसरा लगा देते तो दूसरा हो जाता। राम कहा तो राम।
एक सज्जन थे रामदास, वे मुसलमान हो गए। बहुत दिन बाद मुझे मिले। मैंने उनसे पूछा कि रामदास, उन्होंने कहा, मेरा नाम रामदास नहीं है... खुदाबख्श! मैंने कहा जरा सोचो भी तो तुम, दोनों का मतलब एक ही होता है! रामदास कहो कि खुदाबख्श कहो, क्या फर्क हुआ?
नाम एक हटा कर दूसरा लगा दो कि तीसरा लगा दो। कोई भी नाम काम दे देगा।
यह तुम्हारा नाम नहीं है। तुम अनाम आए, अनाम जाओगे। इस नाम के भीतर किसी दिन खोजोगे तो हरिनाम पाओगे। उस दिन पाओगे कि एक ही नाम है तुम्हाराः अहं ब्रह्मास्मि। अभी तो तुम क्या समझोगे वेद और क्या समझोगे गीता और क्या समझोगे कुरान, क्या समझोगे बाइबिल?
स्वरूपानंद, किसी सदगुरु के सत्संग को पहले समझना होता है। क्योंकि वहीं तुम जगाए जा सकते हो, किताबें नहीं जगा सकतीं। किताबें तो खुद ही मुर्दा हैं, तुम्हें क्या खाक जगाएंगी! तुम तो उन्हें जहां रख दोगे वहां पड़ी रहेंगी! पूजा के फूल चढ़ा दोगे तो ठीक और कमरे के बाहर निकाल कर फेंक दोगे, तो ठीक!
पूना में मुझे प्रेम करने वाली एक महिला हैं... उनका नाम नहीं बताऊंगा; क्योंकि उनके प्रति एकदम पागल हो जाएंगे।... सुनने तो आने ही नहीं देते पत्नी को यहां, मेरी किताबें भी नहीं पढ़ने देते। लेकिन पत्नी कभी-कभी चोरी-छिपे आकर मुझसे मिल जाती है। वर्ष-दो वर्ष में एकाध बार, किसी तरह! उसने मुझे बताया कि एक बड़ी मजे की बात है, कि मेरे पति आपकी किताब देखकर ही आगबबूला हो जाते हैं। पढ़ती तो मैं हूं ही, छिप कर पढ़ना पड़ता है, लेकिन कभी-कभी वे पकड़ लेते हैं। जैसे अब वे बाथरूम में स्नान करने गए हैं और मैं आपकी किताब पढ़ रही हूं, वे एकदम बीच में ही आ गए निकल कर--जब उनको नहीं आना चाहिए--बस तो किताब लेकर वे खिड़की के बाहर फेंक देते हैं। और उनसे मैं ज्यादा झंझट करना भी नहीं चाहती। तो मैं चुप ही रहती। मगर एक बड़े चमत्कार की बात है कि जब मैं नहीं होती, तो वे किताब उठाकर अपने सिर से लगाते हैं। फेंकते भी हैं और अपने सिर से भी लगाते हैं। तो उसने कहा, मेरी कुछ राज समझ में नहीं आता। मैंने कहा, राज साफ है। तेरे सामने आकर दिखाने के लिए फेंक देते हैं, फिर डरते होंगे कि कहीं कोई पाप न हो जाए! या कहीं कोई गड़बड़ न हो जाए! कहीं कोई नुकसान न हो जाए! कौन जाने यह आदमी ठीक ही हो! अब इधर मेरे पास तार पर तार आ रहे हैं सारे देश से, तारों में खबर यह हैः बधाइयां, मुझे! क्योंकि मोरारजी भाई डूब गए। लोग सोच रहे हैं कि मैंने डुबा दिया। दिल्ली से भी तार आ रहे हैंः बधाई। मेरा इसमें कुछ हाथ नहीं है। मुझे क्या लेना-देना उनको डुबाने से? उनकी अपनी करतूतें काफी डुबाने के लिए, मुझे क्या डुबाने की पड़ी! लेकिन लोग यह समझ रहे हैं कि मैं उनको डुबा दिया। और हो सकता है वे भी भीतर-भीतर समझ रहे हों कि कहां की झंझट में पड़े! क्योंकि किताब तो वे भी चोरी-छिपे पढ़ते हैं।

तो मैंने उनकी पत्नी को कहा, लगा लेते होंगे सिर से किताब को कि माफ करो, आपको नहीं फेंक रहा हूं, मैं तो सिर्फ पत्नी को शिक्षा देने के लिए फेंक देता हूं। नाराज आप न हो जाएं। लोग अपने मन में हिसाब लगा लेते हैं। अजीब-अजीब हिसाब लगा लेते हैं।
मैं अहमदाबाद से बंबई आ रहा था, हवाई जहाज पर। एक आदमी मुझे मिले, उन्हें मैं जानता भी नहीं था। उन्होंने एकदम मेरे पैर पड़े और कहा कि आपका जितना धन्यवाद करूं उतना कम। मैंने कहा, हुआ क्या? मुझसे कोई गलती हुई? उन्होंने कहा, नहीं-नहीं, आप भी कैसी बात करते हैं! मुकदमा जिता दिया आपने। कौन सा मुकदमा, मुझे कुछ पता नहीं आपके मुकदमे का! उन्होंने कहा, चार साल से मुकदमा चल रहा था, कोई पंद्रह लाख रुपये उलझे थे, जीत गया। आपकी कृपा से जीता। मैंने उनको कहा, लेकिन मुझे कुछ पूरी खबर तो दो, क्योंकि मुझे पता ही नहीं कौन सा मुकदमा, मैं तुम्हें जानता ही नहीं। उन्होंने कहा, आप कितना ही छिपाओ... वे मेरी भी मानने को राजी नहीं, वे कह रहे हैं, आप कितना ही छिपाओ, छिपा न सकोगे। जाते वक्त हवाई जहाज में आपके बगल में ही बैठा था, तभी मुझे पक्का हो गया था कि ऐसा सान्निध्य मिल गया कि इस बार मुकदमा जीत जाना है। पक्का ही हो गया। और मैं जीत भी गया। तब से मैं पता लगा कर बैठा हूं कि किस हवाई जहाज से आप वापस लौटेंगे। आपके साथ ही वापस जाना है। जब आने में इतना फायदा हुआ तो जाने की कौन जाने? और लाटरी खुल जाए! या कुछ हो जाए! मैंने उनको कहा, भइया, मुझे तुम क्षमा करो, मुझे तुम्हारे मुकदमे का कुछ पता नहीं है और किसी को भूलकर मत कहना! लेकिन वे मेरी मानने को राजी नहीं।
जिंदा आदमी की भी मानने को लोग राजी नहीं होते, किताबों की तो कहना क्या? किताब पर फूल चढ़ा दो तो किताब कुछ नहीं कर सकती, किताब को आग लगा दो तो किताब कुछ नहीं कर सकती। लेकिन अगर तुम मेरे सत्संग में आकर बैठे हो... और स्वरूपानंद संन्यासी हैं! हिम्मत की है। क्योंकि वेद, पुराण, गीता जिसको समझ में आई हो, वह संन्यासी हो जाए, यह हिम्मत का काम है। हां, स्वरूपानंद किसी पुराने ढब के आश्रम में संन्यासी हो जाते, वह ठीक था, मेरे संन्यासी हो गए हैं, हिम्मतवर आदमी हैं। साहसी हैं। जरूर थोड़ा बल है, आत्मबल है।...
घबड़ाओ न! शायद मेरी बातें इसलिए समझ में नहीं आ रही हैं कि वे वेद और गीता और उपनिषद खूब तुम्हारे सिर में भरे हुए हैं। ठूंस-ठूंस कर भरे हुए हैं। पहले उन्हें निकालना पड़ेगा। निकाल लूंगा, घबड़ाओ मत, वही मेरा काम है। वही मेरी कुशलता है। उपनिषद पर ही बोलता हूं और उपनिषद ही खोपड़ी से निकालता हूं। गीता पर बोलता हूं और तुम समझते हो कि चलो गीता सुनने चल रहे हैं और तुम्हें पता नहीं कि यहां मामला कुछ और है! यहां जेब कट जाएगी! सर्जरी मेरा धंधा है।
लेकिन थोड़ा समय तो लगता है। थोड़े टिके रहो, घबड़ाओ मत। आज नहीं समझ में आता, कोई फिकर न करो। वह पुराना है जो समझ में आ गया है, बाधा डाल रहा है। जरा पुराना कूड़ा-कचरा मुझे निकाल लेने दो, फिर नया अपने आप समझ में आने लगेगा। मैं तो जो कह रहा हूं, सीधा-साफ है, स्फटिक जैसा स्पष्ट है। मेरी भाषा में कोई उलझन नहीं है। मैं कोई बहुत सैद्धांतिक, शास्त्रीय, पारिभाषिक भाषा नहीं बोल रहा हूं, बोलचाल की भाषा बोल रहा हूं। यह कोई प्रवचन नहीं है, सीधी-सीधी बातचीत है। यह कोई व्याख्यान नहीं है, यहां कोई उपदेश नहीं दिया जा रहा है, मैं तो अपना हृदय खोलकर तुम्हारे सामने रख रहा हूं। जिस दिन तुम भी अपना हृदय खोलकर मेरे सामने रख दोगे, बस घटना घट जाएगी, क्रांति हो जाएगी। अभी तुम बंद हो। तुम्हारी किताबों ने तुम्हें बंद किया है। अभी तुम सुन तो जरूर रहे हो लेकिन ठीक-ठीक नहीं सुन पा रहे हो, क्योंकि बीच-बीच में तुम्हारे वेद आ जाते होंगे। इधर मैं कुछ कहता हूं, तुम्हारा वेद भीतर से कहता होगा, हां, ठीक है, यही तो ऋग्वेद में लिखा है। बस चूक गए! या तुम्हारे भीतर से वेद कहता होगा, नहीं-नहीं, यह ठीक नहीं हो सकता, यह तो ऋग्वेद के विपरीत पड़ता है। चूक गए!

मैं जो कह रहा हूं, उसे सीधा-सीधा जिस दिन सुन पाओगे, बीच में कुछ नहीं आएगी अड़चन--कोई व्याख्या, कोई सिद्धांत, कोई शास्त्र--उस दिन तुम्हें मेरी बातें इतनी सरल मालूम होंगी कि इनसे सरल और कोई बात नहीं हो सकती। अभी तुम अज्ञानी नहीं हो, ज्ञानी हो। स्वरूपानंद, अज्ञानी हो जाओ तो धन्यभागी हो! क्योंकि जो अज्ञानी हैं वे निर्दोष हैं। और जो राजी हैं स्वेच्छा से अज्ञानी होने को, उनके ऊपर ज्ञान की वर्षा होगी। जो खाली हो जाते हैं, वे भर दिए जाते हैं।
शून्य बनो, ज्ञान से शून्य हो जाओ और मैं तुमसे कहता हूंः ज्ञान से पूर्ण हो जाओगे।
ज्ञान और ज्ञान में फर्क है। एक ज्ञान है जो शास्त्रों से आता है और
एक ज्ञान है जो आकाश से उतरता है, इल्हाम होता है। मैं उसी ज्ञान की तरफ तुम्हें ले चलना चाहता हूं।

आज इतना ही।